प्रस्तावना ।

शार्ङ्गधरके जीवनचरित्रको त्यागके हम इस ग्रंथके विषयमें कुछ लिखते हैं । सबको विदित है कि, यह "शार्ङ्गधरग्रथ" ऋषिप्रोक्त नहीं है तथापि ऋषिप्रोक्तग्रंथोंसे प्रतिष्ठामें न्यून नहीं है । इसी कारण एतद्देशीय वैद्योंने इसकी लघुत्रयीमें गणना की और इसको संहिता संज्ञा दी । क्यो न हो जब स्वयं ग्रंथकार प्रथमही प्रतिज्ञा करते है ।

प्रसिद्धयोगा मुनिभिः प्रयुक्ताश्चिकित्सकैर्ये बहुशोऽनुभूताः ।

अर्थात् जो प्रसिद्ध योग मुनीश्वरोंके कहे और वैद्योंके वारंवार अनुभव कियेहुए हैं उनका संग्रह सत्पुरुषोंके प्रसन्न करनेको शार्ङ्गधरनामा मैं करताहूं ।

इस लिखनेसे यह प्रयोजन है कि, यह शार्ङ्गधर ग्रथ ग्रथकारका स्वकपोलकल्पित नहीं है, किंतु ऋषि मुनियोंके सर्वत्र प्रसिद्ध और प्राचीन आचार्योंके परिचित प्रयोग जो अत्यत दुष्प्राप्य थे उनका संग्रहरूप यह ग्रंथ अस्मदादि मूढबुद्धिवालोंके निमित्त निर्माण किया । इसकारण इस ग्रथको ऋषिप्रोक्तही समझना ।

अब आप इसको ध्यान देकर देखिये कि, किस प्रणालीसे ग्रंथकारने इसे निर्माण किया है । देखिये प्रथम मंगलाचरणमें विलक्षणता कि, अभीष्ट श्रीशिवको प्रणाम कर उनकी उपमा वैद्यके प्रयोजनीय और औषधपर घटित की. फिर मुनिप्रोक्त और चिकित्सकोंके आनुभविक प्रयोगसे यह कथनद्वारा ग्रथकी उत्तमता दिखाय, रोगोंके निदानपंचकका दिग्दर्शनमात्र वर्णन कर, कर्षणबृंहणात्मक द्विविध चिकित्सा कही ।

परंतु वह चिकित्सा औषधके विना नहीं होसके इसवास्ते औषधोंकी अचिंत्यशक्तिके वर्णनसे संपूर्ण प्राणिमात्रको औषधमें पूर्ण विश्वास कराय दी । फिर औषध रोगोंकी करीजाती है इसवास्ते चतुर्विध रोगोंके भेद दिखलाय उनको शांतिकारी प्रयोगाचरण करे यह कहा । कदाचित् फिरभी रोगियोंको अश्रद्धा न हो इसवास्ते इस ग्रथके प्रयोगोंको सप्रमाणता दिखाई ।

---

१ बृहत्संहितामें लिखाहै–मुनिविरचितमिदमिति यच्चिरंतनं साधु न मनुजग्रथितम् ॥
तुल्येर्थेक्षरभेदादमन्त्रके का विशेषोक्तिः ॥ १ ॥

इस श्लोकका यह तात्पर्य है कि, यह ग्रथ प्राचीन मुनियोंका बनाया है इससे उत्तम है और यह मनुष्यरचित है इससे श्रेष्ठ नहीं परतु यह महान् भूल है । सिवाय वेदके अन्यग्रंथमे एकसा अर्थ होनेसे इसका विचार नहीं है । इसीप्रकार वाग्भट ग्रथके अंतमेभी लिखा है उसको बुद्धिमान् देखलेवेंगे ।

फिर देखिये कि, बुद्धिमान् वह कहाता है जो पूर्वही विचारके कार्य आरंभ करता है । यह नहीं कि, विचारा तो कुछ और कुछका कुछ लिखमारा इसवास्ते इस आचार्यने प्रथमही अपने कथनीय विचारको अनुक्रमणिका द्वारा लिख दियाहै । फिर कोई पामरजन न्यूनाधिक करके इस ग्रंथको न बिगाडे इससे—

द्वात्रिंशत्संमिताध्यायैर्युक्तेयंसंहितास्मृता ।
षड्विंशतिशतान्यत्रश्लोकानांगणनापिच ॥

यह लिखकर मानो इस ग्रथपर अपनी मुद्रा करदी और २६०० छब्बीससौ श्लोकोंकी संख्या लिखनेका तात्पर्य यह है कि, मैंने इस शार्ङ्गधरसहितामें बत्तीस अध्याय और छब्बीससौ श्लोक कहेहैं । इससे न्यूनाधिकको बुद्धिमान् पुरुष प्रक्षित जाने अर्थात् वे मेरे बनाए नहीं हैं पीछेसे मिलाए गएहैं ।

फिर पूर्वोक्त अनुक्रमणिकाके अनुसार तोल, युक्तायुक्तविचार, औषधकी योजना आदि लिख औषध खानेकी विधि और औषधकी परीक्षा आदि लिखीहैं । फिर औषधग्रहणका काल, रस, वीर्य, विपाकादिका वर्णन, ऋतुवर्णन, और उनमें दोषोंका संचय, कोप और शमनआदिका वर्णन, करके फिर नाडीपरिक्षा, दीपन पाचनादि कहके आगे शारीरभाग सक्षेपसे दिखाय फिर मुख्य २ रोगोंकी गणना लिखीहै ।

फिर दूसरे खंडमें पंचविध कषाय, तेल, चूर्ण, गुटिका, संधान तथा पारद आदि रसोपरसकी शुद्धि, तथा जारण मारण लिख साधारण रस लिखे हैं । फिर उत्तरखडमे स्नेहपान, स्वेदन, वमन विरेचन, वस्तिकर्म, नस्य, धूमपान, गंडूप, कवल, प्रतिसार लेपादि और रुधिरमोक्षविधि कहके अंतमें नेत्रकर्मविधि लिखी है ।

इसप्रकार ग्रंथका क्रम दूसरे किसी ग्रंथमें नहीं है । इत्यादि गुणगुफित ग्रथको देखा तो इस ग्रंथकी सर्वत्र दुर्दशा देखी । ग्रंथकर्त्ताके रचित करनेपरभी पामर जनोंने ऐसा बिगाडा कि, कुछ लिखा नहीं जाय । कहीं अधिक पाठ बढायदिया कहीं असलमें भी न्यून करदिया । फिर और देखिये कि, इन ग्रथशत्रु और हमारे देशके अवनतिकर्त्ता मूर्ख छापनेवालोंने सर्वनाश कर दिया कि, यदि ग्रंथ शुद्धभी होय तथापि छापकर सर्वथा अशुद्ध करके भोले भाले ग्राहकोंको ठगना । इसका मुख्य कारण यही है कि, वे मुसलमान, कायस्थ, बांनेये, दूसर, खत्री, कहार, कलवार और इतर शूद्रादिक हैं जो संस्कृत लेशमात्रभी नहीं जानते । ऐसे छापनेवाले हिन्दीके लखनऊ, देहली, आगरा मथुरा आदि शहरोंमें वेशुमार हैं परंतु पूना, बंबई, काशी, कलकत्ते आदिमें संस्कृत ग्रंथ तथा स्वदेशभाषाके ग्रथ अतिपरिश्रमके साथ बहुतसी प्रतियोंको एकत्र कर शुद्ध करके छापते हैं उनको देशहितैषी अवश्य जानना । इत्यादि छापेके दोषसे इस शार्ङ्गधरको

अशुद्ध देखके हमने इसको शुद्ध करना विचारा तो कईप्रति एकत्र करी उनसे तथा इस ग्रंथकी दो संस्कृतटीका मिलीं एकका नाम गूढार्थदीपिका और दूसरीका नाम आढमल्ली । इनमें आढमल्ली टीका सर्वोत्तम और बहुधा दुष्प्राप्य है । इन सबसे प्रथम ग्रंथका यथायोग्य शोधन करके उक्त टीकाओंकी सहायतासे इस शार्ङ्गधरकी माथुरी भाषाटीका निर्माण करी । यद्यपि यह टीका सर्वोत्तम नहीं है परंतु अन्य २ जो हिन्दी टीका छपी हैं उनसे सर्वप्रकार उत्कृष्ट है । हमारे कहनेसेही क्या है विद्वान् जन आपही कहदेवेंगे । जब यह ग्रंथ सटीक बनके तैयार होगया इतनेहीमें श्रीयुत गोब्राह्मणप्रतिपालक वैश्यवंशकुलकैरवेन्दु श्रीवेङ्कटेशचरणकमलचंचरीक श्रीसेठजी श्रीकृष्णदासात्मज खेमराजजीका पत्र आया कि, आप इस शार्ङ्गधरकी भाषाटीका जल्दी बनायके भेजो । यह पत्र देखतेही चित्तको अत्यंत हर्ष हुआ और यह पुस्तक उनको अर्पण की गई । तो उन्होंनेभी हमारा दानमत्ताने पूर्ण सत्कार किया और इस ग्रंथको निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" यंत्रालयमें छापकर प्रकाशित किया. मित्रहो ! यह वही पुस्तक आपके करकमलमें है जो कुछ भली और बुरी है आप देखलीजिये । इसमें जो कुछ शुद्धाशुद्ध रहगयाहै उसको आप मत्सरता त्यागके शोधन करदेना क्योंकि, भूलना यह मनुष्यका धर्म है ।

परंतु नीच और पामरोंमें "सुंदरमणिमयभवने पश्यति छिद्रं पिपीलिका सततम्" यह वाक्य चारितार्थ होवेगा परंतु उनसे हमारी क्षति किसीप्रकार नहीं होसकती अलमतिविस्तरेण ।

आपका कृपाभाजन—

मथुरानिवासि पं० दत्तरामचौबे.

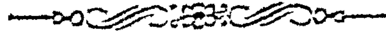
पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस खेतवाडी—बम्बई.

ओ३म् ।

शार्ङ्गधरसंहिताग्रंथकी विषयानुक्रमणिका ।



षष्ठोऽध्यायः ।

इति प्रथमखंडः ।

सप्तमोऽध्यायः।

अष्टमोऽध्यायः ।

नवमोऽध्यायः ।

तैलसाधनप्रकार ।

मध्यमखंडः समाप्तः ।

तृतीयखंडः प्रमथोऽध्यायः ।

द्वितीयोऽध्यायः।

तृतीयोऽध्यायः।

विषयाः	पृष्ठांकाः	विषयाः	पृष्ठांकाः

चतुर्थोऽध्यायः ।

पंचमोऽध्यायः ।

षष्ठोऽध्यायः ।

सप्तमोऽध्यायः ।

इत्यनुक्रमणिकासंपूर्णा ।

ॐ श्रीशं वन्दे ।

श्रीधन्वन्तरये नमः ।

शार्ङ्गधरसंहिता ।

भाषाटीकासमेता ।



आर्या ।

मथुरानगरनिवासी कृष्णतनयदत्तराममाथुरने ॥
शार्ङ्गधरकी भाषाटीकाकीनीसुआढमल्लीसों ॥ १ ॥

इस पृथुतर और दुरधिगमनीय आयुर्वेद शास्त्रतत्त्वके जाननेमें वैद्योंको अधिक परिश्रम होताहै और उसके मध्यमें अनेक विघ्न आते हैं इसीसे सर्व ग्रथकर्त्ता ग्रथकार ग्रंथके आदि मध्य और अन्तमें मंगलाचरण करते है ऐसा शिष्टाचार है, तथा शास्त्रकीभी आज्ञाहै, अतएव यह शारंगधर ग्रथकर्त्ताभी निजेष्टदेव श्रीशिवपार्वतीको प्रणामपूर्वक आशीर्वादात्मक मंगलाचरण करते हैं जैसे ।

श्रियं स दद्याद्भवतां पुरारिर्यदंगतेजःप्रसरे भवानी ॥
विराजते निर्मलचन्द्रिकायां महौषधीव ज्वलिता हिमाद्रौ ॥ १ ॥

---

१ यदगतेजः प्रसरे—इस पदके कहनेसे यह दिखाया कि श्रीशिवका विभूतीविभूषित अंग होने परभी अति शुभ्रताके कारण पर्वतकी उपमादेना युक्तही है। और उस सुन्दर स्वरूपमे खचित श्रीभगवतीजीको औषधी स्वरूप करके कहा यह शारगधर आचार्यकी बुद्धिकी चातुर्यता सराहने योग्य है। प्रायः वैद्योंको पर्वत और औषधिसेही कार्य रहता है अतएव इस शारंगधरसंहितामे शिव पार्वतीको पर्वत और औषधीरूप उपमा देना अपना अभीष्ट दिखलाया। कोई कहते हैं कि इस अर्द्धांगी स्वरूपके वर्णनमें वात पित्त और कफ तीनोंका आधिपत्य वर्णन करा है जैसे पित्त उष्ण होता है उसीप्रकार श्रीशिवका तेज उष्ण सो पित्ताधिप हुआ और श्रीपार्वजीकी चंद्रिका शीतल सो श्लेष्माधिप हुई, तथा सर्पभूषणसे वाताधिपत्व सूचना करी, जैसे ये तीनों गुण सदैव शिवमे स्थित रहते हैं उसी प्रकार इस शारंगधर ग्रथमें वातपित्तकफकी साम्यता जाननी। और जैसे हिमालयमे औषधी प्रकाशित है उसीप्रकार इस ग्रथमभी औषधियोंका वर्णन है। यद्यपि यह ग्रथकीभी उपमा कही परन्तु मुख्य उपमा पर्वत और शिवकीही यथार्थ है. इस ग्रथमे त्रिविध मगलाचरणोमे आशीर्वादात्मक मगलाचरण कहाहै. इसका यह प्रयोजन है कि दुष्ट उक्तिके प्रभावसे जो दुःखस्वरूपरोग प्रकट हो उनका नाश हो और रोगनिवृत्ति करके सुखरूप श्रीकी प्राप्तिहो। २ निर्मलचंद्रिकायते इति पाठांतरम्, ३ आशीर्नमस्क्रियावस्तुनिर्देशोवापितन्मुखम्। इति त्रिविधकाव्यलक्षणं भवति ॥

अर्थ—हिमालय पर्वतमें अत्यंत देदीप्यमान (सजीवन्यादि) महौषधी जैसे निर्मल चन्द्रमाकी चाँदनीमें शोभाको प्राप्त होती है उसीप्रकार जिनके तेजसमूहमें अर्थात अर्धागमें श्रीपार्वती महाराणी विराजमान (शोभित) ऐसे श्रीशिव तुमको कल्याण अथवा लक्ष्मी देओ ॥१॥

अब कहते हैं कि यह ग्रंथ संपूर्ण प्राणिजनोंके उपकारार्थ होय इसप्रकार विचारकर इस ग्रंथका सबंध कहना चाहिये क्यों कि (संबंधके कहनेसे श्रोता और वक्ताकी सिद्धि हैं अत एव सर्व शास्त्रोंमें प्रथम सबध कहतेहैं) इसीकारण शार्ङ्गधर आचार्यभी प्रथम संबंधको कहते हैं—

प्रसिद्धयोगा मुनिभिः प्रयुक्ताश्चिकित्सकैर्ये बहुशोनुभूताः ॥
विधीयते शार्ङ्गधरेण तेषां सुसंग्रहः सज्जनरंजनाय ॥ २ ॥

अर्थ—चरक सुश्रुतादि मुनीश्वरोंके कहेहुये और प्राचीन सद्वैद्योंने वारंवार नाम रूप योजनादिक करके अनुभव (निश्चित) किये ऐसे जे विख्यात योग उनका संग्रह सज्जनोंके मनोरजनार्थ शार्ङ्गधर नामक मैं करताहूँ, तात्पर्य यह है कि, चरक सुश्रुतादि मुनीश्वरोंके प्रयोग जहाँतहाँसे लेकर प्रकारातरसे उन्हींको शुद्धकरके मैं लिखताहूँ, इसके कहनेसे ग्रंथकी उत्तमता दिखाई—और त्रिकालदर्शीको मुनि कहतेहैं उनके कहे प्रयोग मेरे इस ग्रथमें हैं इस वाक्य कहनेसे ग्रंथकी प्रामाणिकता दिखाई-एवं वैद्योंके अनुभव करे प्रयोग इसमें कहे हैं, इससे इस ग्रथकी अन्य सर्व ग्रथोसे उत्कृष्टतादिखाईहै अर्थात् सर्व आयुर्वेदके ग्रंथोंमें यह सर्वोत्तम है ॥ २ ॥

अब (प्रथम रोगकी परीक्षा करे फिर औषधकी) इत्यादि मतको विचार शार्ङ्गधर भी कहते हैं।

हेत्वादिरूपाकृतिसात्म्यजातिभेदैः समीक्ष्यातुरसर्वरोगान् ॥
चिकित्सितं कर्षणबृंहणाख्यं कुर्वीत वैद्यो विधिवत्सुयोगैः ॥ ३ ॥

अर्थ—प्रथम वैद्य हेतु आदिरूप आकृति सात्म्य जाँति इनभेदोसे रोगीके सपूर्ण

१ सिद्धिःश्रोतृप्रवक्तृणा संबधकथनाद्यतः। तस्मात्सर्वेषु शास्त्रेषु सबधः पूर्वमुच्यते ॥

२ रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनतरमौषधम्। ततः कर्म भिषक्पश्चाज् ज्ञानपूर्वं समाचरेत् ॥

३ जिससे रोग होय उसका नाम हेतु है उसीको निदान कहतेहैं, जैसे मृत्तिका भक्षणसे पीलिया होताहै। ४ रोग होनेके प्रथम जंभाई आना अगोंका टूटना अरुचि इत्यादिक लक्षण होतेहैं उसका नाम आदिरूप है और उसको पूर्वरूप ऐसे कहतेहैं। ५ रोगोके तृषा, मूर्च्छा, भ्रम,दाह, निद्रा नाश इत्यादि लक्षण प्रकट होते हैं उस अवस्थाका नाम आकृति उसीको रूप कहते हैं। ६ औषध विहार इनका रोगीके प्रकृत्यनुसार सुखकारी प्रयोगहो उसका नाम सात्म्य और उसीको उपशय कहते हैं। ७ जिन कारणोंसे वाताद्यन्यतमदोष दूषित हो ऊर्ध्वाधरातिर्यक् यथेष्ट विचरनेसे जो रोगा-

रोगोको जान फिर यथाशास्त्र उत्तम प्रकारके प्रयोगोंसे कर्षण और बृंहणरूप द्विविध चिकित्सा यथाक्रम करे। अन्यथा दोष लगताहै जैसे वाग्भट लिखते हैं। (कि जो विना-दोषोंके जाने वैद्य चिकित्सा कर्मको करताहै वो उस कर्मकी सिद्धिको तथा सुख और सद्गतिको नहीं प्राप्तहोता) ॥ ३ ॥

अथवा हेतु है आदिमें जिनके ऐसे जे रूपादिक तिन्होंसे प्रथम रोगपरीक्षा करके फिर चिकित्सा करे। जैसे वाग्भटमें लिखाहै (कि दर्शन स्पर्शन प्रश्न और निदान पूर्वरूप-रूप-उपशय-तथा संप्राप्ति इनसे रोगियोंके रोगकी परीक्षाकरै) तहाँ हेत्वादिक पाँच तो कहे। अब रूपादित्रयको कहतेहैं. तहाँ रूपके कहनेसे देहका स्थूल और कृशता तथा बल वर्ण और विकारादिकी परीक्षा देखनेसे करे। तथा (आसमंतात् कृतिःकरण) जिससे सर्वत्र कर्म कराजाय ऐसी त्वगिंद्रीसे शीत, उष्ण, मृदु, कठोर आदिकी परीक्षाकरे। और सात्म्यके कहनेसे हितकारी पदार्थ जानना अर्थात् आपको कौनसी वस्तु हितहै इस वाक्यसे प्रश्नकरनेको कहा अथवा सात्म्यकरके कोई अभिलापका ग्रहण करतेहैं. अर्थात् जिसरोगीको जिस खानेपीने आदि आहार विहारकी इच्छा होय उस इच्छाद्वाराही वैद्य रोगीके देहस्थित दोषोंके क्षीण वृद्धिका ज्ञान करे।

इस प्रकार दर्शनादित्रयपरीक्षा कही और जातिके कहनेसे शेषइन्द्रियोंकी परीक्षा जाननी क्योंकि सुश्रुतमे रोगकी परीक्षा छः प्रकारकी कही है (जैसे पाच श्रोत्रादिइन्द्रियोसे और छठी प्रश्नसे) तहां दर्शनादि तीन परीक्षा कहआये अब शेष श्रोत्रादिकोकी परीक्षा कहते हैं (तहाँ कर्णइन्द्रीकरके प्रनष्टशल्य स्थानीय रुधिर निकलनेके शब्दकी परीक्षा करे। जिह्वाइन्द्री करके प्रमेहादि रोगोमें रसकी परीक्षा करे। और घ्राणइन्द्रीकरके अरिष्ट लिंगादि व्रणोके गंधकी परीक्षा करे) इसप्रकार हेत्वादिकोकी व्याख्या करी। तहाँ प्रथम अर्थ ठीक है दूसरा अर्थ जो त्रिविध और षड्विधपरीक्षापरत्व कहा है सो कल्पित है तथापि उत्तम है स-

---

त्पत्ति होय उसकारण तथा उस दुष्टदोष तथा उस विचरना इन सबके वास्तविक होनेसे जो आनुपूर्विकज्ञान उसको जाति अथवा सप्राप्ति कहते हैं।

१ शरीरमे बढेहुये वातादि दोषोको औषधि करके घटानेको कर्षण चिकित्सा कहते हैं।

२ अतिक्षीण दोषोंके पुष्ट करनेको बृहण चिकित्सा कहते हैं।

३ यस्तु दोषमविज्ञाय कर्माण्यारभते भिषक्। न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्।

४ दर्शनस्पर्शनप्रश्नैः परीक्षेत च रोगिणाम्। रोग निदानप्राग्रूपलक्षणोपशयाप्तिभिः।

५ पचभिः श्रोत्रादिभिः प्रश्नेन चेति-तत्र श्रोत्रेन्द्रियविज्ञेया विशेषा रोगेषु प्रनष्टशल्यविज्ञानीयादिषु वक्ष्यते। सफेनं रक्तमीरयन्ननिल. सशब्दो निर्गच्छतीत्येवमादयः। रसनेन्द्रियविज्ञेयाः प्रमेहादिषु रसविशेषाः। घ्राणेन्द्रियविज्ञेया अरिष्टलिंगादिषु व्रणानां च गधविशेषाः।

मोह्य इसपदके धरनेसे अज्ञानकी निवृत्ति कही (अर्थात् बहुतसे रोग यथार्थ देखे नहीं गये, तथा ठीक ठीक कहनेमें नहीं आये और ठीक ठीक विचारमें नहीं आये, अथवा जो ठीक पूछनेमें नहीं आये, ऐसे रोग वैद्यको मोहित करते हैं) अतएव वारंवार परीक्षाद्वारा रोगनिश्चय करना चाहिये । रोगनाशक कर्म, व्याधिप्रतीकार, धातुसात्म्यार्थक्रिया, ये चिकित्साके पर्यायवाचक शब्द हैं जैसे लिखाहै (उत्तम भिषगादिचतुष्टयोका विकृतधातुके समान करनेके अर्थ जो प्रवृत्ति है उसको चिकित्सा कहते हे) इस कर्षण बृंहण चिकित्सा करके दोषोको घटावे और बढावे जैसे लिखा है (कि दोषोकी विषमताको रोग कहते हैं और दोषोंकी समानताको आरोग्य कहते हैं) सुयोगैः इस पदसे यह सूचनाकरी कि सुंदरद्रव्योंके प्रयोगोंसे अर्थात् शीघ्र आरोग्यकर्त्ता औषधोकरके वैद्य रोगोंकी चिकित्सा करे ।

औषधियोंके प्रभाव ।

दिव्यौषधीनां बहवः प्रभेदा वृन्दारकाणामिव विस्फुरन्ति ॥
ज्ञात्वेति संदेहमपास्य धीरैः संभावनीया विविधप्रभावाः ॥ ४ ॥

अर्थ-जैसे देवताओंके अपरिमितभेद और उत्कृष्ट प्रभाव प्रकट है उसीप्रकार दिव्यौषधियोंके अनेकभेद और अपरिमितशक्ति प्रगट होती है । इस प्रकार जान गंभीर बुद्धिवाले (वैद्य अपने चित्तसे) संदेहको दूरकर आदरपूर्वक औषधोको विविधप्रभाववती माने । इस कहनेका यह तात्पर्य है कि, मणि मंत्र और औषधियोंके प्रभाव अचिंत्य है ॥ जो बाहरके और आत्माके भावोंको हिताहितकर्त्ता हे उसका नाम धीर है. धीरशब्दका ग्रहण इसजगह निश्चयार्थज्ञानके वास्ते है ॥ ४ ॥

अब प्रयोजन कहते हैं क्योंकि * सर्वशास्त्रोंका और कर्मका जबतक प्रयोजन नहीं हो तबतक कोई ग्रहण नहीं करे अतएव उस प्रयोजनको कहते है-

स्वाभाविकागंतुककायिकान्तरा रोगा भवेयुः किलकर्मदोषजाः ॥
तच्छेदनार्थं दुरितापहारिणः श्रेयोमयान्योगवरान्नियोजयेत् ॥ ५ ॥

अर्थ-स्वाभाविक--आगतुक-कायिक-और आंतरिक ऐसे चारप्रकारके कर्मज और

---

१ मिथ्यादृष्टा विकारा हि दुराख्यातास्तथैव च । तथा दुःपरिसृष्टाश्च मोहयेयुश्चिकित्सकम् । २ चतुर्णां भिषगादीनां शस्ताना धातुवैकृते । प्रवृत्तिर्धातुसाम्यार्थं चिकित्सेत्यभिधीयते । ३ रोगस्तु दोषवैषम्य दोषसाम्यमरोगता ।

* सर्वस्यैव हि शास्त्रस्य कर्मणो वापि कस्यचित् । यावत्प्रयोजनं नोक्तं तावत् तत्केन गृह्यते । ४ स्वभावकरके होनेवाले जे क्षुधा, तृषा, जरा, निद्रा आदि उनको स्वाभाविक व्याधि कहते हैं । ५ जो अभिघात निमित्त करके रोग होते हैं (जैसे सर्पका काटना शस्त्र आदिका लगना) उनको आगन्तुक कहते हैं । ६ शरीरमे वातादिदोष वैषम्यताकरके उत्पन्न हुवे ज्वर, रक्तपित्त, कासादिक रोग उनको कायिक कहते हैं । ७ मनोविकारकरके उत्पन्न हुवे जे मद, मूर्च्छा, सन्यास, ग्रह, भूतोन्मादादिक रोग उनको आंतरिक (मानस) कहते हैं ।

दोषज रोग उत्पन्न होते हैं, उनके शांतिके अर्थ दुःखसे छुडानेवाले और पुण्यरूप ऐसे जे उत्तम योग उनकी योजना करनी चाहिये ॥ ५ ॥

योगग्रान् इस पदके धरनेसे यह दिखाया कि समस्त आर्ष ग्रंथोंके उत्तम २ प्रयोग शार्ङ्गधरने सग्रह करके इस अपने ग्रंथमें रक्खे हैं । अव कहते हैं कि रोग तीन प्रकारके हैं जैसे ग्रथांतरमें लिखा हैं कि (एक तो कर्मके कोपसे, दूसरे दोषोंके कोपसे तीसरे कर्म और दोषोंके कोपसे, कायिक और मानसिकरोग प्राणियोंके देहमें होते हैं) अव इन तीनोंके पृथक् २ लक्षण कहते हैं तहा (परद्रव्ये) (धरोवर आदि) और ऋण इनके न देनेसे–गुरुस्त्रीके गमनसे ब्राह्मण आदिके मारनेसे जो रोग प्रगट होते हैं उनको कर्मज रोग कहते हैं ये औषधि करके वैद्यसे अच्छे नहीं होते) (किंतु दानै–दया–आदिकरके ब्राह्मण–गौकी सेवा करनेसे गुरुकी आज्ञा पालन करनेसे तथा इनके साथ नम्रता रखनेसे जप और तप इत्यादि करनेसे पूर्वजन्मके सचित कर्मसे उत्पन्न व्याधिका शमन होता है अव दोषजव्याधिके लक्षण कहते हैं (कि वातादि दोप अपने कारणसे कुपित हो आपसमें मिलकर इतस्ततश्चलायमान हो जो विकारोंको प्रगट करते हैं उनको दोषजरोग कहते हैं ये औषध करनेसे दूर होते हैं) अव कर्मदोषोद्भव विकारोको कहते हैं (कि दानादिक कर्म और औषधी इन दोनोंके करनेसे जो रोग कथंचित् कर्म और दोषोके क्षीण होनेसे कुछ २ शांति हो उनको कर्मदोषज विकार कहते हैं) ॥

अव प्रत्यक्षादि अविरुद्ध प्रयोगोंके कहनेसे और संक्षेप करनेसे इस ग्रंथका माहात्म्य कहते हैं.

प्रयोगानागमात्सिद्धान् प्रत्यक्षादनुमानतः ॥
सर्वलोकहितार्थाय वक्ष्याम्यनतिविस्तरात् ॥ ६ ॥

अर्थ–समस्त लोकके हितार्थ इस ग्रंथमें प्रत्यक्ष–अनुमान–और आगम (शास्त्र) से सिद्ध प्रयोगोंको संक्षेप रूपसे वर्णन करते हैं ॥ ६ ॥ आगमादिकोंके लक्षण जैजटादि आचार्योंने कहे हैं उनको सवके जाननेके अर्थ मैं इस जगह लिखताहूं (तहाँ आगम कहिये वेद अथवा आप्तपु-

---

१ कर्मप्रकोपेन कदाचिदेके दोषप्रकोपेन भवति चान्ये । तथापरे प्राणिषु कर्मदोषप्रकोपजाः कायमनोविकाराः ।

२ दुष्टामयाः परकलत्रधनर्णहारगुर्वङ्गनागमनविप्रवधादिभिर्वा । दुष्कर्मभिस्तनुभृतामिह कर्मजास्ते नोपक्रमेण भिषजामुपयांति सिद्धिम् ॥ ३ दानैर्दयादिभिरपि द्विजदेवतागोगुरुसेवनप्रणतिभिश्च जपैस्तपोभिः । इत्युक्तपुण्यनिचयैरपचीयमानाः प्राक्कर्मजा यदि रुजः प्रशमं प्रयान्ति ।

४ स्वहेतुदुष्टैरनिलादिदोषैरवप्लुतैःस्वेषु मुहुश्चलद्भिः । भवति ये प्राणभृतां विकारास्ते दोषजा भेषजसिद्धिसाध्या. । ५ दानादिभिः कर्मभिरौषधीभिः कर्मक्षये दोषपरिक्षयाच्चान् । सिद्ध्यति ये यत्नवतां कथंचित्तेकर्मदोषप्रभवाविकाराः ।

रुषोका वाक्य है जैसे लिखा है कि जो सिद्ध[1] प्रमाणोकरके सिद्ध हो और इसलोक तथा परलोकमे हितकारी हो वह आप्तोंका आगम शास्त्र है और जो सत्य अर्थके जाननेवाले हैं उनको आप्त कहते है) अब आगमसिद्ध जो सुननेमें आता है उसको कहते हैं. जैसे लिखा है (कि इस-प्रयोगके प्रभावसे हजारवर्ष जीवे और वृद्धास्त्रीभी इसके सेवन करनेसे सोलहवर्षकी अवस्थावालीसी होय[2]) यह आगमसिद्धि कही । अब कहते हैं कि जो कुछ अर्थका साक्षात्कारी ज्ञान है उसको प्रत्यक्ष कहते है. जैसे लिखा है कि (मनइन्द्रीगत भ्रांतिरहित जो वस्तु है उसको प्रत्यक्ष कहते हैं और जिसमें इन्द्रियोको यथार्थ ज्ञान न हो उसको भ्रम कहते है[3]) जैसे—वमन, विरेचनादि योग प्रत्यक्ष फल दिखानेवाले हैं । तथा जिस वस्तुका अव्यभिचारी लक्षणोंकरके पीछेसे ज्ञान होय उसको अनुमान कहते हैं जैसे पांडुरोग मिट्टी खानेसे होता है—और वमन मक्खीके खानेसे होती है ऐसा अनुमान कराजाता है, उसी प्रकार त्वचाके फटने और राध (रुधिर) निकलनेसे व्रण पकगया ऐसा अनुमान कराजाता है ॥ ६ ॥ प्रत्यक्ष अनुमान और आगम ये तीन प्रमाण आयुर्वेदमें माने जाते हैं ? अब कदाचित् कोई प्रश्न करे कि यह ग्रंथ तुम किस हेतुसे करतेहो तहां कहते हैं कि (सर्वलोकहितार्थाय) अर्थात् सर्वलोकके हितके अर्थ करताहू, तहा लोक दो प्रकारका है एक स्थावर (वृक्षादि) और दूसरा जगम (पशुपक्षी मनुष्यादि) इन दोनो प्रकारके लोकमें यहापर इस मनुष्य देहका लोक शब्दकरके ग्रहण है,

कदाचित् कोई कहे कि आप जो शार्ङ्गधर ग्रंथमे लिखते हो यह अन्य प्राचीन ग्रंथद्वाराही ज्ञान हो सक्ताहै फिर इस पिष्टपेषण ग्रंथसे क्या फलसिद्धि होयगी ? तहा कहते हैं कि (अनतिविस्तरात्) अर्थात् विस्ताररहित इस ग्रंथको मैं कहताहूं अन्य आर्ष ग्रंथ बहुप्रपंचयुक्त है पूर्वपक्ष समाधानादि करके चित्तको उद्वेग करते हैं इस कारण मैने यह उक्तदोषरहित संक्षेपसे कहाहै अतएव यह ग्रंथ उत्तम हैं ॥ ६ ॥

अथ अनुक्रमणिका ।

प्रथमं परिभाषा स्याद्भैषज्याख्यानकं तथा ॥
नाडीपरीक्षादिविधिस्ततो दीपनपाचनम् ॥ ७ ॥
ततः कलादिकाख्यानमाहारादिगतिस्तथा ॥
रोगाणां गणना चैव पूर्वखण्डोऽयमीरितः ॥ ८ ॥

अर्थ—अब तीनो खण्डोंकी अनुक्रमणिका कहते हैं । तहां परिभाषासे आदिले रोग गण-

१ सिद्ध सिद्धैः प्रमाणैस्तु हितं चात्र परत्र च । आगमः शास्त्रमाप्तानामाप्ता. सत्यार्थवेदिनः ।
२ जीवेद्वर्षसहस्राणि योगस्यास्य प्रभावतः । वृद्धा च शतवर्षीया भवेत्षोडशवार्षिकी
३ मनोऽक्षगतमभ्रांतं वस्तु प्रत्यक्षमुच्यते । इन्द्रियाणामसंज्ञाने वस्तुतत्त्वे भ्रमः स्मृतः ॥

नांत पर्यन्त सात अध्यायों करके यह पूर्वखंड आचार्यने कहाहै । जैसे प्रथमाध्यायमें परिभाष (तोलआदि) कथन, दूसरी अध्यायमें औषधाख्यान अर्थात् औषधभक्षणादि विधि और तथाके कहनेसे द्रव्य, रस, गुण, वीर्य, विपाकादिकोका कथन है, तीसरी अध्यायमें नाडी-परीक्षाविधि और आदिशब्दसे दूत स्वप्नादिकोंका कथन है, चतुर्थ अध्यायमें दीपनपाचना-दिलक्षण और अनुलोमन विरेचन वमन लेखन स्तंभनादिकथन है, पंचमाध्यायमें कलादिकोंका कथन तथा सृष्टिक्रम शारीरादिकोका कथन है, छठी अध्यायमें आहारादिकोंकी गति और गर्भोत्पत्ति कुमारपोपणोक्ति प्रकृतिलक्षण कथन है, सप्तमाध्यायमें रोग (ज्वरादिकोंकी) गणना कथन इस प्रकार सात अध्यायोंकरके प्रथम खण्ड कहा है ॥ ७ ॥ ८ ॥

मध्यखंडकी अनुक्रमणिका ।

स्वरसः क्वाथफांटौ च हिमः कल्कश्च चूर्णकम् ॥
तथैव गुटिकालेहौ स्नेहः संधानमेव च ॥
धातुशुद्धिरसाश्चैव खंडोऽयं मध्यमःस्मृतः ॥ ९ ॥

अर्थ–१ अध्यायमे स्वरस और पुटपाकविधि कही है २ अध्यायमें काढे और प्रमथ्यादि तथा उष्णोदक-क्षीरपाक-अन्नक्रिया-इनकी विधि कही है ३ अध्यायमे फाँट और मंथ इनकी विधिकथन ४ अध्यायमें हिमविधिका कथन ५ अध्यायमें कल्ककथन ६ अध्यायमे चूर्णोंका कथन ७ सातवे अध्यायमें गुटिकाओका कथन ८ अध्यायमें अवलेहोका कथन ९ अध्यायमे घृत और तेलका कथन १० अध्यायमें मद्यभेदकथन ११ अध्यायमे स्वर्णादिकधातु और उपधातु इनका शोधन मारणकथन १२ अध्यायमे रस उपरस इनका शोधन मारण और सिद्धरस इनका कथन कहा है इस प्रकार बारह अध्यायोकरके मध्यमखड कहाहै ॥ ९ ॥

उत्तरखंडकी अनुक्रमणिका ।

स्नेहपानं स्वेदविधिर्वमनं च विरेचनम् ॥ ततस्तु स्नेहबस्तिः स्यात्ततश्चापि निरूहणम् ॥ १० ॥ ततश्चाप्युत्तरो बस्तिस्ततो नस्यविधिर्मतः ॥ धूमपानविधिश्चैव गंडूषादिविधिस्तथा ॥ ११ ॥ लेपादीनां विधिः ख्यातस्तथा शोणितविस्रुतिः ॥ नेत्रकर्मप्रकारश्च खंडः स्यादुत्तरस्त्वयम् ॥ १२ ॥

अर्थ—१ अध्यायमें स्नेहपानविधि । २ अध्यायमें स्वेदविधि । ३ अध्यायमें वमनविधि । ४ अध्यायमे विरेचनविधि । ५ अध्यायमें स्नेहबस्तिकथन । ६ अध्यायमें निरूहणविधि । ७ अध्यायमे उत्तरबस्तिकथन । ८ अध्यायमें नस्यविधि । ९ अध्यायमें धूमपानविधि तथा व्रणधूपन और ग्रहधूपन जानना । १० अध्यायमें गंडूषादिविधि और कवलप्रतिसारण कथन ११ अध्यायमे लेपादिकोंकी और मस्तकमे तैल डालना तथा कर्णपूरणकी विधि जाननी । १२ अध्यायमे रुधिरनिकालनेकी विधि । १३ अध्यायमें नेत्रकर्मप्रकार इस प्रकार तेरह अध्यायों-करके उत्तरखड कहाहै ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥

अब संहिताकी निरुक्तिपूर्वक ग्रंथकी श्लोकसंख्या कहते हैं.

द्वात्रिंशत्सम्मिताध्यायैर्युक्तेयं संहिता स्मृता ॥
षड्विंशतिशतान्यत्र श्लोकानां गणितानि च ॥ १३ ॥

अर्थ—शारंगधरसंहिता ३२ अध्याय करके युक्त है और इसमें २६०० छव्वीससौ श्लोकोंकी संख्या कही है । पदके समूहसे वाक्य वाक्योंके समूहोंसे प्रकरण और प्रकरणके समूहोंसे अध्याय होती है.

औषधोंके मानकी परिभाषा ।

न मानेन विना युक्तिर्द्रव्याणां ज्ञायते क्वचित् ॥
अतःप्रयोगकार्यार्थं मानमत्रोच्यते मया ॥ १४ ॥

अर्थ—मान (परिमाण) के विना औषधोंकी युक्ति (कर्त्तव्यविधि) कहीं नहीं होती अत एव औषध बनानेके लिये मान (तोलने आदि) विधि इस संहितामें मागध परिभाषा करके कहताहूं यह तोलनेका प्रमाण हैं और भक्षणकी मात्राका प्रमाण आगे प्रत्येक प्रयोगमें कहेंगे.

त्रसरेणुका परिमाण ।

त्रसरेणुर्बुधैः प्रोक्तस्त्रिंशता परमाणुभिः ॥

---

१ घृत और तैल पीनेके प्रयोगको स्नेहपान कहते हैं । २ देहमेसे पसीने निकालनेकी विधिको स्वेदविधि कहते हैं । ३ गुदादिकोंमें तेलकी पिचकारी मारनेके प्रयोगको स्नेहबस्ति कहते हैं । ४ काढे तथा दूध इत्यादिकरके पिचकारी मारनेके प्रयोगको निरूहणबस्ति कहते हैं । ५ उत्तरबस्तिलिंग भगादिमे पिचकारी लगानेके प्रयोगको कहते हैं । ६ नाकमे औषध डालनेके प्रयोगको नस्यविधि कहते हैं । ७ चिलम हुक्का अथवा बीडीमें औषध करके जो धुआँ पीते हैं उसको धूमपान कहते हैं । ८ काढे अथवा रसादिकोंके कुल्ले करनेके प्रयोगको गंडूषविधि कहते हैं । ९ लेपादिक करनेके प्रयोगको लेपविधि कहते हैं ।

१० गुंजा, मासे, तोले, पौसेरा, अधसेरा, इत्यादिक जानना ।

त्रसरेणुस्तु पर्यायनाम्ना वंशी निगद्यते ॥ १५ ॥

अर्थ–तीसपरमाणुका १ त्रसरेणु होताहै, और वंशी शब्द उसी त्रसरेणुका पर्यायवाचक शब्द है। परमाणु अत्यंत सूक्ष्म होते हैं वह स्वभावसे अथवा अणुभाव करके जाने जाते हैं नेत्रोंकरके नहीं प्रतीत होते ।

परमाणुके लक्षण ।

जालान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः ॥
तस्य त्रिंशत्तमो भागः परमाणुः स उच्यते ॥ १६ ॥

अर्थ–जाली झरोंकेमें सूर्यकी किरण पडनेसे उन किरणोंमे जो धूलके बहुत बारीक कण उडते दीखते हैं उस एक एक कण (रज) का जो तीसवाँ भागहै उसको परमाणु कहतेहैं. कोई इसके आगे वंशीके लक्षण कहता जैसे (जालांतरगतैः सूर्यकरैर्वंशी विलोक्यते) अर्थात् जाली झरोंखोंमें जो सूर्यकी गिरणोंमें रज उडती दीखतीहै उसको वंशी कहते हैं ।

मरीची आदिका परिमाण ।

षड्वंशीभिर्मरीचिः स्यात्ताभिःषड्भिस्तु राजिका ॥
तिसृभी राजिकाभिश्च सर्षपः प्रोच्यते बुधैः ॥
यवोऽष्टसर्षपैः प्रोक्तो गुंजा स्यात्तच्चतुष्टयम् ॥ १७ ॥

अर्थ–६ वंशीको १ मरीचि (जो रेतली जमीनमें धूलके बारीक कण सूर्यकी किरणोंसे चमकतेहैं) होती है। छः मरीचियोंकी १ राई, ३ राईकी १ सपेद सरसों होती है, ८ सपेद सरसोंका १ यव होताहै, और ४ यव (जों) की १ गुजा) रत्ती घूघची होती है ।

मासेका परिमाण ।

षड्भिस्तु रत्तिकाभिः स्यान्माषको हेमधान्यकौ ॥

अर्थ–६ रत्तीका मासा होताहै उसको हेम और धान्यकभी कहतेहैं, (कोई सात रत्तीका कोई पाचरत्तीका और कोई दश रत्तीका मासा होताहै ऐसा कहतेहैं) ।

शाण और कोलका परिमाण ।

माषैश्चतुर्भिः शाणः स्याद्धरणः स निगद्यते ॥ १८ ॥
टंकः स एव कथितस्तद्द्वयं कोल उच्यते ॥
क्षुद्रभो वटकश्चैव द्रंक्षणः स निगद्यते ॥ १९ ॥

अर्थ– ४ मासेका शाण होताहै उसको धरण टकभी कहतेहैं. (जहां जहा मासा आवे वहा २ छः रत्तीका मासा जानना) २ शाणका कोल होताहै उसको क्षुद्रम, वटक और द्रक्षणभी कहतेहैं, (कोलनाम बेरका है, उसके बराबर होनेसे इस तोलकी कोलसंज्ञा रक्खी है) ।

कर्षका परिमाण ।

कोलद्वयं च कर्षः स्यात्स प्रोक्तः पाणिमानिका ॥ अक्षःपिचुः पाणितलं किंचित्पाणिश्च तिन्दुकम् ॥ २० ॥ बिडालपदकं चैवतथा षोडशिका मता ॥ करमध्यं हंसपदं सुवर्णकवलग्र-हम् ॥ उदुंबरं च पर्यायैः कर्ष एव निगद्यते ॥ २१ ॥

अर्थ–दो कोलका कर्प होताहै, उसको पाणिमानिका, अक्ष, पिचु, पाणितल, किंचित्पाणि, तिंदुक, विडालपदक, षोडशिका, करमध्य, हसपदक, सुवर्ण, कवलग्रह और उदुवर भी कहतेहैं अर्थात् ये १२ नाम भी उसी कर्पके हैं। (तहा अक्षनाम वहेडे का है. उसके वरावर होनेसे इस कर्षको अक्षभी कहतेहैं, तेदूके फल समान होनेसे तिंदुक सज्ञा है, हथेली भरकी पाणितल सज्ञा है, तीनउगली करके ग्राह्य अत एव इसकी विडालपद संज्ञा है, सोलह मासेका होताहै इस कारण इसकी पोडशिका:संज्ञा है और गूलरके समान होनेसे इस कर्षकी उदुबर संज्ञा आचार्योंने दीनी है इसी प्रकार जितनी सज्ञा इस परिभापामे है वो सब सार्थकहैं) व्यवहारमें १ कर्पका १ तोला होताहै ।

अर्द्धपल और पलका परिमाण ।

स्यात्कर्षाभ्यामर्द्धपलं शुक्तिरष्टमिका तथा ॥ शुक्तिभ्यां च-पलं ज्ञेयं मुष्टिराम्रं चतुर्थिका ॥ प्रकुंचः षोडशीबिल्वं पल-मेवात्र कीर्त्यते ॥ २२ ॥

अर्थ–२ कर्पका एक अर्द्धपल उसीको शुक्ति (शीप) और अष्टमिका कहते है २ शुक्तिका पल होताहै उसको मुष्टि, आम्र (आम्रफल) चतुर्थिका, प्रकुंच, पोडशी और बिल्व (वेलका फल) येभी पलके पर्यायवाचक नाम हैं ।

प्रसृतिसे आदिले मानिकापर्यंतकी संज्ञा ।

पलाभ्यां प्रसृतिर्ज्ञेया प्रसृतश्च निगद्यते ॥ प्रसृतिभ्यामंजलिः स्यात्कुडवोऽर्धशरावकः ॥ २३ ॥ अष्टमानं च संज्ञेयं-कुडवाभ्यां च मानिका ॥ शरावोऽष्टपलं तद्वज्ज्ञेयमत्र विच क्षणैः ॥ २४ ॥

अर्थ–दोपलकी प्रसृती होतीहै फैलीहुई उंगलियोवाली हथेलीको प्रसृति और उसको प्रसृत भी कहतेहैं) दो प्रसृतीकी १ अजली (पस्सा) होताहै, उसीको कुडव (पावसेर) अर्द्धशरावक

और अष्टमानभी कहते हैं दो कुडवकी १ मानिका होती है उसको शराव. अष्टपलभी कहते हैं. एक शरावके १२८ टंक होते है।

प्रस्थका और आढकका परिमाण।

शरावाभ्यां भवेत्प्रस्थश्चतुःप्रस्थैस्तथाढकम् ॥
भाजनं कंसपात्रं च चतुःषष्टिपलं च तत् ॥ २५ ॥

अर्थ—दो शरावका १ प्रस्थ (सेर) होताहै चार प्रस्थका १ आढक होता है उसको भाजन कंसपात्रभी कहते हैं यह ६४ पलका होताहै. ।

द्रोणसे लेकर द्रोणीपर्यंतका परिमाण।

चतुर्भिराढकैर्द्रोणः कलशो नल्वणोन्मनौ ॥ उन्मानश्च घटो राशिर्द्रोणपर्यायसंज्ञकाः ॥२६॥ द्रोणाभ्यां शूर्पकुंभौ च चतुःषष्टिशरावकाः॥शूर्पाभ्यां च भवेद्द्रोणी वाहो गोणी च सा स्मृता२७

अर्थ—चार आढकका १ द्रोण होताहै, उसको कलश, नल्वण, उन्मान, घट (घडा) और राशिभी कहतेहैं। दो द्रोणका शूर्प (सूप) होताहै उसको कुम्भभी कहते हैं उस शूर्पके ६४ शराव होतेहैं। एवं दो शूर्पकी १ द्रोणी होतीहै उसको वाह और गोणीभी कहते हैं।

खारीका परिमाण।

द्रोणीचतुष्टयं खारी कथिता सूक्ष्मबुद्धिभिः ॥
चतुःसहस्रपलिका षण्णवत्यधिका च सा ॥ २८ ॥

अर्थ—चार द्रोणीकी १ खारी होतीहै. उसके ४०९६ पल होतेहैं।

भार और तुलाका परिमाण।

पलानां द्विसहस्रं च भार एकः प्रकीर्त्तितः ॥
तुला पलशतं ज्ञेया सर्वत्रैवैष निश्चयः ॥ २९ ॥

अर्थ—२००० पलका १ भार होताहै और १०० पलकी १ तुला होती है। यह केवल मगध देशमेही नही किंतु सर्व देशमें यही तोलका निश्चय जानना।

अब सर्व मान ज्ञापनार्थ एक श्लोककरके मान कहते हैं।

माषटंकाक्षबिल्वानि कुडवः प्रस्थमाढकम् ॥
राशिर्गोणीखारिकेति यथोत्तरचतुर्गुणा ॥ ३० ॥

अर्थ—मासेसे लेकर खारीपर्यंत एकसे दूसरी तोल चौगुनी जाननी जैसे ४ मासेका १ शाण,

---

१ तुला पलशतं तासां विंशतिर्भार उच्यते। खारी भारद्वयेनैव स्मृता षड्भाजनाधिकेति।

४ शाणका एककर्ष, ४ कर्षका एकबिल्व, ४ बिल्वकी एक अंजली, ४ अंजलीका एक प्रस्थ, ४ प्रस्थका १ आढक, ४ आढककी एक राशि, ४ राशिकी एक गोणी, ४ गोणीकी एक खारी, इस प्रकार एकसे दूसरी चौगुनी जाननी।

अब गीली-सूखी और दूध आदि पतली वस्तुओंका तोल।

गुंजादिमानमारभ्य यावत्स्यात्कुडवस्थितिः ॥
द्रवार्द्रशुष्कद्रव्याणां तावन्मानं समं मतम् ॥ ३१ ॥
प्रस्थादिमानमारभ्य द्विगुणं तद्द्रवार्द्रयोः ॥
मानं तथा तुलायास्तु द्विगुणं न क्वचिन्मतम् ॥ ३२ ॥

अर्थ-जल आदि पतले पदार्थ और गीली औषध तथा सूखी औषध ये रत्तीसे लेकर कुडवपर्यंत समान लेवे और जल आदि पतले पदार्थ तथा गीली औषध ये लेनी होय तो प्रस्थसे लेकर तुलापर्यंत इनका तोल सूखी औषधकी अपेक्षा दुगुनी लेवे तथा तुलासे लेकर द्रोणपर्यंत इनकी तोल दुगुनी लेवे ऐसा कहीं नहीं कहा अत एव इनका मान सूखी औषधीके समान लेवे। इस अभिप्रायको स्नेहपाकमें प्रायः मानते हैं। तत्कालकी लाई हुई औषधको गीली कहते हैं.। जो धूपमें सुखायलीनीहो अथवा बहुत दिनकी धरी हुई औषधको शुष्क कहते हैं।

कुडवपात्र बनानेकी रीति।

मृद्वस्तुवेणुलोहादेर्भांडं यच्चतुरंगुलम् ॥
विस्तीर्णं च तथोच्चं च तन्मानं कुडवं वदेत् ॥ ३३ ॥

अर्थ-चार अंगुल लंबा चार अंगुल चौडा-तथा चार अंगुल गहरा ऐसे माटीके अथवा बांसके अथवा लोह (सोना-चाँदी-ताँबा-जस्त-राँग-काँसा-शीशा-और लोह) के आदिशब्दसे चामके, अथवा सींग और दाँतके पात्र बनावे उसकी कुडवसंज्ञा है इसके द्वारा दूध-जल तेल-घृत-नापा जाताहै।

प्रयोगके प्रथम औषधोंके नाम विशिष्ट प्रयोगोंका धरना।

यदौषधं तु प्रथमं यस्य योगस्य कथ्यते ॥
तन्नाम्नैव स योगो हि कथ्यतेऽसौ विनिश्चयः ॥ ३४ ॥

अर्थ-जिस प्रयोगमें जो प्रथम औषध है उसी औषधके नाम करके इस प्रयोगको

---

१ रक्तिकादिषु मानेषु यावन्न कुडवो भवेत्। शुष्कद्रव्यार्द्रयोस्तावत्तुल्यं मानं प्रकीर्त्तितम्।

२ प्रस्थादिमानमारभ्य द्रव्यादिद्विगुणं त्विदम्। कुडवोपि क्वचित् दृष्टं यथा ढतीघृते मतः।
शुष्कद्रव्यस्य या मात्रा त्वार्द्रस्य द्विगुणा हि सा। शुष्कस्य गुरुतीक्ष्णत्वात्तस्मादर्धं प्रयोजयेत्।

जानना, उदाहरण—जैसे क्षुद्रादि, रास्नादि, गुडूच्यादिकाथ, इनमे प्रथम कटेरी रास्ना और गिलोयहै इसीकारण क्षुद्रादिकाढा रास्नादिकाढा और गुडूच्यादिकाढा कहाया इसी प्रकार चंदनादितैल कुष्माण्डपाक हिंग्वष्टकचूर्ण आदिमेंभी जानना चाहिये ॥

* इति मागधपरिभाषा *

अथ कलिंगपरिभाषा।

स्थितिर्नास्त्येवमात्रायाः कालमग्निंवयोबलम् ॥
प्रकृतिं दोषदेशौ च दृष्ट्वा मात्रां प्रयोजयेत् ॥ २५ ॥

अर्थ—अब मात्राकी स्थिति नहींहै यह कहतेहै जैसे कि औषधोंके सेवनका प्रमाण निश्चय करके करनेमें नहीं आता इसीकारण काल, जठराग्नि, अवस्था, बल, प्रकृति, दोष और देश, इनको वैद्य विचारकरके अपने बुद्धिके अनुसार मात्राकी कल्पना करे। तहाँ कालकरके शीत—गरमी—वर्षा जानना। जठराग्निकरके रोगीकी मंद—तीक्ष्ण—विषम—सम—चतुर्विध अग्नि जानना। अवस्था तीनहैं आदि मध्य और अंत्य। बल तीन प्रकारका है हीन—मध्यम—और उत्तम। प्रकृति तीन प्रकारकी है हीन—मध्य—और उत्तम अथवा देश—जाति—शरीर आदिके भेदसे प्रकृतिके बहुत भेद है। दोष तीन प्रकारका है वात पित्त कफात्मक। देशभी दोप्रकारका है एक भूमिदेश और एक देहदेश तहाँ भूदेश तीन प्रकारका है जैसे जांगल, अनूप और साधारण इसीप्रकार देहभी जांगलादिभेदोंकरके तीनही प्रकारका है।

भक्षणार्थप्रथमकहीहुईकलिंगपरिभाषाकोभी दिखाते हैं।

यतो मंदाग्नयो ह्रस्वा हीनसत्त्वा नराः कलौ ॥
अतस्तु मात्रा तद्योग्या प्रोच्यते सुज्ञसंमता ॥ २६ ॥

अर्थ—कलियुगके मनुष्य मंदाग्नि, छोटी देहवाले, और तुच्छबलके होते हैं अतएव इनके उपयोगी तथा वैद्योंको मान्य ऐसी औषधका प्रमाण कहते हैं.

कलिंगपरिभाषाका तोल।

यवोद्वादशभिर्गौरसर्षपैः प्रोच्यतेबुधैः ॥ यवद्वयेन गुंजास्यात्त्रिगुंजो वल्ल उच्यते ॥ २७ ॥ माषो गुंजाभिरष्टाभिः सप्तभिर्वा भवेत्क्वचित् ॥ स्याच्चतुर्माषकैः शाणः सनिष्कष्टंक एव च ॥ गद्याणो माषकैः षड्भिः कर्षः स्याद्दशमाषकः ॥ २८ ॥ चतुः कर्षैः पलं प्रोक्तं दशशाणमितं बुधैः ॥ चतुः पलैश्च कुडवं प्रस्थाद्याः पूर्ववन्मताः ॥ २९ ॥

अर्थ–बारह सपेद सरसोंका १ यव (जौं) दोयवकी १ गुंजा (रत्ती) ३ रत्तीका एक वल्ल (कहीं दोरत्तीकाभीवल्ल होताहै) आठरत्तीका १ माषा, कही कहीं सातरत्तीका माषा होताहै (यह तन्त्रान्तरका मत है इसको विषकल्पमें लेना चाहिये क्योंकि सर्वत्र अप्रसिद्ध है) चार माषेका १ शाण होताहै उसको निष्क और टकभी कहते है ६ मासेका एक गद्याणक. दश मासेका १ कर्ष होताहै, चारकर्षका एक पल. उस पलके दश शाण होते हैं । चार पलका १ कुडव होताहै और प्रस्थादिकोंका तोल मागध परिभाषाके समानही जानना परंतु वह तोल इसीके अनुक्रमसे लेना मागधपरिभाषाका कर्ष और पलकरके नहीं लेनी चाहिये । यद्यपि देशान्तरोंमें अनेक मान है तथापि मागध और कलिंगमान ए दो प्रसिद्ध हैं यह कहते हैं ।

कालिंगं माधवं चेति द्विविधं मानमुच्यते ॥
कालिंगान्मागधं श्रेष्ठं मानं मानविदो जनाः ॥ ४० ॥

अर्थ–मान दो प्रकारका है एक कालिंग (अर्थात् उडिया देशमें प्रसिद्ध होनेसे) और दूसरा मागध (मागधदेशमें प्रसिद्ध होनेसे) तहाँ कलिंगमानसे मागधमान श्रेष्ठ है ऐसे मानके ज्ञाता वैद्य कहते हैं । मागधमान चरकका और कलिंगमान सुश्रुतका है ।

औषधोंका युक्तायुक्तविचार ।

नवान्येव हि योज्यानि द्रव्याण्यखिलकर्मसु ॥
विनाविडंगकृष्णाभ्यां गुडधान्याज्यमाक्षिकैः ॥ ४१ ॥

अर्थ–दशधा द्रव्यकल्पनादि सपूर्ण विषयमें नवीन औषधकी योजना करनी चाहिये परतु वायविडंग, पीपर, गुड, अन्न, घृत और सहत ये छः पदार्थ पुराने गुणकारी होते हैं अतएव ये पुराने लेने चाहिये (घृत भोजनमें–तृप्तिके लिये सदा नवीन ताजा) लेना और तिमिरादिकी औषधोंमें पुराना लेना उक्तञ्च भावप्रकाशे "योजयेन्नवमेवाज्यं भोजने तर्पणे श्रमे" इत्यादि इसी प्रकार शहतभी बृंहण कार्यमें नया लेना और कर्षणमें पुराना लेना उक्तञ्च सुश्रुते "बृंहणीय मधु नव नातिश्लेष्महर सरम् । मेद श्लेष्मापह ग्राहि पुराणमतिलेखनम् ॥" विडंगादिकोका पुरातनत्व १ वर्षके बाद होताहै ॥

जो औषध सदैव गीली लेनी उनको कहते हैं.

गुडूची कुटजो वासा कूष्माण्डं च शतावरी ॥ अश्वगंधा सहचरी शतपुष्पा प्रसारणी ॥ प्रयोक्तव्याः सदैवार्द्रा द्विगुणा नैवकारयेत् ४२

अर्थ–गिलोय, कूडा (कुरैया), अडूसा, पेठा, सतावर, असगध, पीयावांसा, सौंफ-

---

१ सर्वच क्षीरविषवद्युक्तं भवति भेषजम् । तेषामलाभे गृह्णीयादनतिक्रान्तवत्सरम् ॥

२ घृतमन्दात्पर पक्व हीनवीर्य प्रजायते । तैलपक्वमपक्व वा चिरस्थायि गुणाधिकम् ॥

और प्रसारणी, ये नौ औषध सर्वकालमें गीली लेनी चाहिये परंतु गीली जानके द्विगुणित न लेवे।

साधारण औषधकी योजना।

शुष्कं नवीनं द्रव्यं च योज्यं सकलकर्मसु ॥
आर्द्रं च द्विगुणं युंज्यादेष सर्वत्र निश्चयः ॥ ४३ ॥

अर्थ–पूर्वोक्तश्लोककी नौ औषधियोंके विना इतर औषध संपूर्ण कार्यमें सुखी हुई नवीन लेनी चाहिये और गीली होय तो दूनी लेना यह निश्चय सर्वत्र जानना।

अनुक्तकालादिकोंकी योजना।

कालेऽनुक्ते प्रभातं स्यादंगेऽनुक्ते जटा भवेत् ॥
भागेऽनुक्ते तु साम्यं स्यात्पात्रेऽनुक्ते च मृण्मयम् ॥ ४४ ॥

अर्थ–जिस प्रयोगमें काल नहीं कहाहो वहां पर प्रातःकाल लेना,–जहाँ औषधका अंग नहीं कहाहो वहां औषधकी जड लेनी, जिस प्रयोगमें औषधके भाग न कहे हो उसजगह सब समान भाग लेवे और जिस जगह पात्र न कहाहो तहाँ मिट्टीका पात्र लेना चाहिये, चकारसे जहाँ द्रव्य नहींहो तहाँ जल लेना चाहिये।

योगमें पुनरुक्त द्रव्यका मान कहतेहै।

एकमप्यौषधं योगे यस्मिन्यत्पुनरुच्यते ॥
मानतो द्विगुणं प्रोक्तं तद्द्रव्यं तत्त्वदर्शिभिः ॥ ४५ ॥

अर्थ–जिस प्रयोगमें एक औषधका नाम पर्याय करके दोवार कहाहो उसे आयुर्वेदरहस्यज्ञाता वैद्य दूनी लेवे।

चूर्णादिकोंमें कौनसा चन्दन लेवे।

चूर्णस्नेहासवालेहाः प्रायशश्चन्दनान्विताः ॥
कषायलेपयोः प्रायो युज्यते रक्तचन्दनम् ॥ ४६ ॥

अर्थ–चूर्ण (लवंगादि) घृत तेल (लाक्षादि) आसव (कुमार्यासवादि) लेह (च्यवनप्राशावलेहादि) इनमें प्राँयः सपेद चदन लेना और काढे तथा लेप आदिमें प्रायः लाल चंदन लेना चाहिये, प्राँयःशब्दसे यह दिखाया कि कहीं (एलादिचूर्णमें भी) लाल चंदन लेवे, क्योंकि व्याधिविहितहै और काढे आदिमे सपेद चदन ले.।

---

१ द्रव्येऽप्यनुक्ते जलमात्रदेये भागेप्यनुक्ते समताभिधेया। अगेप्यनुक्ते विहित तु मूल कालेप्यनुक्ते दिवसस्यपूर्वम्।

२ घृते तैले च योगे तु यद्द्रव्यं पुनरुच्यते। तज्ज्ञातव्यमिहार्येण मानतो द्विगुणं भवेत् ॥

३ प्रायःशब्दा विशेपार्थे क्वचिन्न्यूनेऽपि दृश्यते।

अब सिद्धकरीहुई औषधोंके काल व्यतीत होनेसे गुणहीनत्व कहतेहैं.

गणहीनं भवेद्वर्षादूर्ध्वं तद्रूपमौषधम् ॥
मासद्वयात्तथा चूर्णं हीनवीर्यत्वमाप्नुयात् ॥ ४७ ॥
हीनत्वं गुटिकालेहौ लभेते वत्सरात्परम् ॥
हीनाः स्युर्घृततैलाद्याश्चतुर्मासाधिकास्तथा ॥ ४८ ॥
औषध्यो लघुपाकाः स्युर्निर्वीर्या वत्सरात्परम् ॥
पुराणाःस्युर्गुणैर्युक्ता आसवा धातवो रसाः ॥ ४९ ॥

अर्थ—वनसे लाईहुई औषध एक वर्षके पश्चात् तेज और गुणरहित होजातीहै, तालीसादि चूर्ण दोमहीनेके पश्चात् हीनवीर्य होजातेहैं (अर्थात् कुछ २ गुणोंमे न्यूनहोजातेहैं सर्वथा वीर्यरहित नहीं होते. क्योंकि लवणभास्करादि चूर्णोंका प्रमाण अधिक कहा है वह अधिक कालतक सेवनके लियेही कहाहै अन्यथा यह व्यर्थ होजायगा) और विजयादि गुटिका तथा खंडकादि अवलेह आदि बहुत काल रखनेसेभी अपने गुणको नहीं त्यागते परंतु कुछ २ गुणरहित होजातेहैं । और घृत तेल आदि १६ महीनेके उपरात गुणहीन होतेहैं. कोई (चतुर्मासाधिकास्तथा) ऐसा पाठ कहकर अर्थ करते हैं कि, वर्षाकालके चारमहीना व्यतीत होनेपर घृततैलादि हीनवीर्य होतेहैं. लघुपाक हुई यव गेहूँ चना आदि औषधी १ वर्षके अनंतर निर्वीर्य होतीहै, बहुतकालके रहनेसे गुड अधिक गुणवान् होताहै. एव आसव (कुमार्यासवादि) सुवर्ण आदि धातुकी भस्म और चद्रोदयादि रस वा रसायन ये जितने पुराने होंय उतनेही अधिक गुणवाले होतेहै ।

रोगोंको उक्तानुक्त द्रव्यकथन ।

व्याधेरयुक्तंयद्द्रव्यंगणोक्तमपितत्त्यजेत् ॥
अनुक्तमपियुक्तं यद्युज्यतेतत्रतद्बुधः ॥ ५० ॥

अर्थ—व्याधिमें चूर्ण कषायादिकोंकी योजना करनेमें जो औषधी दीजावे उस चूर्ण कषाय आदिमें यदि एकदो ऐसी औषध जो व्याधिके विरुद्ध होय तो गणोक्त भी हो तथापि उस विरुद्ध औषधको वैद्य निकाल डाले और यदि कोई ऐसी औषधी हो कि, जो उस व्याधिको हितकारी है परतु चूर्ण काढे आदिमे नहीं कही होय तो उसको वैद्य अपनी बुद्धिसे मिलाय देवे ।

---

१ घृतमब्दात्पर किंचिद्धीनवीर्यत्वमाप्नुयात् । तैल पक्वमपक्व वा चिरस्थायि गुणाधिकम् । एतेषु यवगोधूमतिलमाषा नवा हिताः । रूढाः पुराणा विरसा न तथा गुणकारिणः । २ हीन तु स्याद्घृतं पक्व तैलं वा वत्सरात्परम् ॥

द्रव्यहरणार्थ कालादिकथन।

आग्नेया विंध्यशैलाद्याः सौम्यो हिमगिरिर्मतः॥ ५१॥
अतस्तदौषधानि स्युरनुरूपाणि हेतुभिः॥
अन्येष्वपि प्ररोहंति वनेपूपवनेषु च॥ ५२॥

अर्थ-विंध्याचल (आदिशब्दसे मलयाचल, सह्यादि, पारियात्र) आदिकोंकी उत्पन्न होनेवाली ओषधि अग्निगुणभूयिष्ट अर्थात् उष्णवीर्य होती हैं और हिमालय पर्वत आदिकी औषधी शीतवीर्य होती हैं, ये केवल पर्वतोहीमें नहीं होती किंतु वन और उपवन (वगीचा) आदिमेंभी होती हैं, अत एव जैसी २ पृथ्वीमें जैसी २ ऋतु (शरदी, गरमी, चातुर्मास्य) होती है उसीके अनुसार वीर्यवान् औषधी होतीहैं।

औषध लानेकी विधि।

गृह्णीयात्तानि सुमनाः शुचिः प्रातः सुवासरे॥
आदित्यसंमुखो मौनी नमस्कृत्य शिवं हृदि॥
साधारणं धराद्रव्यं गृह्णीयादुत्तराश्रितम्॥ ५३॥

अर्थ—औषधी लानेके निमित्त प्रातःकाल उठ स्वस्थ चित्त करके, पवित्र होवे और उत्तम दिन (अर्थात् उत्तम तिथि, नक्षत्र, योग और लग्नमें) सूर्यके सन्मुख मुख करके तथा सूर्यको प्रणामकर और हृदयमे श्रीशिव (परमात्माका) ध्यान कर मौनमें स्थितहो जागल और अनूपरहित ऐसी साधारण पृथ्वीमे उत्पन्न होनेवाली और उत्तर दिशामे स्थित जो औषधी हैं उनको ग्रहण करे, कोई कहता है कि उत्तराश्रितं अर्थात् उत्तराभिमुख होकर औषधको उखाडे, इस जगह गृह्णीयात् यह पद दो वार आनेसे निश्चयार्थ ज्ञापन जानना।

अब दुष्टस्थानमें प्रगट औषधका त्याग कहते हैं।

वल्मीककुत्सितानूपश्मशानोषरमार्गजा॥
जंतुवह्निहिमव्याप्ता नौषधी कार्यसाधिका॥ ५४॥

अर्थ—सर्प आदिकी वँवईकी, दुष्ट पृथ्वीकी जलप्रायस्थानकी श्मशानकी ऊपर (बंजड) पृथ्वीकी—मार्ग (रस्ते) मे उत्पन्न होनेवाली—एवं जो कीडानकी खाई हुई—अग्निसे जरी हुई—सरदीकी मारी हुई ऐसी औषधी कार्यसाधक नही होती, अतएव ऐसे स्थानकी और विगडी औषध नहीं लानी चाहिये इस जगह हमारा कथन इतनाही है कि ये संपूर्ण औषध

---

१ सर्वलक्षणसंपन्ना भूमिः साधारणा स्मृता।

लानेकी आज्ञा वैद्यको है यदि स्वय वैद्य जायगा तभी वल्मीकादि स्थानकी और जतु अग्नि पाले आदिसे दूषित औषधोंकी परीक्षा करेगा नीच जंगली मनुष्य यह बात काहेको देखेगा उसको तो कहींसे मिले ग्राहकको देकर अपने पैसे लेनेसे काम है दूसरे शुभाशुभ दिन वो क्यों देखने लगा अतएव आजकल औषधी अपना गुण नहीं दिखातीं, दूसरेके यहाँके वैद्य हकीम और डाक्टरोंसे कोई औषधीकी परीक्षाके विषयमें कुछ प्रश्न किया जावे तो वो केवल बछियाके बावाही निकलेंगे ! कारण इसका भी यही है कि इन्होंने कभी परीक्षा न सीखी. न अपने आँखोंसे देखी जो कुछ बजारमे जगली आदमी दे जाते हैं और जो कुछ उसका नाम बता जाते है वोही उनके वास्ते ठीक है, फिर औषध विपरीत गुण करे तो कौन आश्चर्य है अतएव हमारे भारतनिवासी वैद्योंको इस परीक्षामें कटिबद्ध होना चाहिये । कि जिससे यह विद्या सर्वथा अस्त न हो ।

औषधिग्रहणकाल ।

शरद्यखिलकार्यार्थं ग्राह्यं सरसमौषधम् ॥
विरेकवमनार्थं च वसंतान्ते समाहरेत् ॥ ५५ ॥

अर्थ--शरद् ऋतु (आश्विन कार्त्तिकके महीने) मे सपूर्ण औषधी रससे परिपूर्ण होती हैं अतएव सर्व कार्य करनेके अर्थ इन दोनों महिनोंमे औषध लेकर धर रक्खे, तथा विरेक (जुल्लाब) और वमन (रद्द) के लिये ग्रीष्मऋतु (ज्येष्ट आषाढ इन दो महीनों) में औषध लेनी चाहिये । यद्यपि अखिल कार्यके कहनेसे विरेक और वमनका बोध होगया तथापि विशेषतो सूचनार्थ पृथक् २ कहा है ।

द्रव्योंके ग्राह्यअंग कहते हैं ।

अतिस्थूलजटा याः स्युस्तासां ग्राह्यास्त्वचो बुधैः ॥
गृह्णीयात्सूक्ष्ममूलानि सकलान्यपि बुद्धिमान् ॥ ५६ ॥

अर्थ--जिन वृक्षोंकी बडी जड हो (जैसे वड--नीम--आमआदि) उनकी छाल लेनी चाहिये और जिन वनस्पतियोंकी छोटी जड हो (जैसे कटेरी धमासा गोखरू आदि) उनके सर्व अंग अर्थात् जड-पत्ता-फूल-फल-और शाखा सब लेनी चाहिये [1]। कोई कहताहै कि, बडे वृक्षोंके जडकी छाल लेवे और छोटे वनस्पतिकी जड मात्र लेनी चाहिये ।

अब ओषधोंका प्रसिद्ध अंगहरण कहतेहैं ।

न्यग्रोधादेस्त्वचो ग्राह्याः सारं स्याद्बीजकादितः ॥

---

१ ग्रीष्मे मजरिकास्येषु वर्षासु दलचर्मणि । वसंते मूलमाश्रित्य वृक्षाणां तु रसस्थितिः ॥

तालीसादेश्च पत्राणि फलं स्यात्रिफलादितः ॥ ५७ ॥
धातक्यादेश्च पुष्पाणि स्नुह्यादेः क्षीरमाहरेत् ॥ ५८ ॥

इति शार्ङ्गधरे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अर्थ–वड आदिशब्दसे पाखर, आम, जामुन, अंवाडे आदिकी छाल लेनी, विजयसार आदिशब्दसे खैर, महुआ, बबूर आदिका सार लेना, तालीस आदिशब्दसे पत्रज, घीकुवार पान पत्तेनका शाक इनके पत्ते लेने चाहिये, त्रिफला आदिशब्द करके सुपारी, कलोल, मैनफल, आदिके फल लेने चाहिये। धाय आदिशब्दकरके सेवती, कमोदनी, कमलआदिके पुष्प लेने चाहिये। और थूहर आदिशब्द करके आक, दुद्धी, मंदार आदिका दूध लेना चाहिये, एवं चकारसे नहीं कहेगये गोंद आदि जानना।

इति श्रीमाथुरकृष्णलालपाठकतनयदत्तरामप्रणीतशार्ङ्गधरसाहितार्थबोधिनीमाथुर-भाषाटीकायां प्रथमखंडे परिभाषाऽध्यायः प्रथमः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

भैषज्यमभ्यवहरेत्प्रभाते प्रायशो बुधः ॥
कषायांश्च विशेषेण तत्र भेदस्तु दर्शितः ॥ १ ॥

अर्थ–प्रथमाध्यायमें कह आए है कि (भैषज्याख्यानक तथा) अर्थात् इस शार्ङ्गधरकी दूसरी अध्यायमें भैषज्य (औषध) भक्षणका काल कहेंगे अत एव उसको कहते हैं. वैद्य बहुधा प्रातःकालमें रोगीको औषध भक्षण करावे और कषाय (स्वरस, कल्क, काढा, फाट और हिम) ये विशेष करके प्रातःकालमेंही देवे (बुधः) इसपदके धरनेसे यह सूचना करी कि औषधके कालको विचारके वैद्य अपनी बुद्धिके अनुसार औषध देवे केवल प्रातःकालकाही नियम नहीं है अब अन्यकालोंको वक्ष्यमाण प्रकार करके कहते हैं।

औषधभक्षणके पांचकाल।

ज्ञेयः पंचविधः कालो भैषज्यग्रहणे नृणाम् ॥
किंचित्सूर्योदये जाते तथा दिवसभोजने ॥
सायंतने भोजने च मुहुश्चापि तथा निशि ॥ २ ॥

अर्थ–मनुष्योंके औषधभक्षण विषयमें पांच काल हैं उनको कहते हैं. किंचित् सूर्योदय होने-पर औषध लेना यह प्रथम काल, तथा दिनमें भोजनके समय औषधी लेना दूसरा काल, तथ

सायकालमे भोजनके समय औषध लेना तृतीयकाल और वारवार औषधी लेना चतुर्थकाल. एवं रात्रिमे औषध लेना वह पचमकाल, इस प्रकार पाच काल जानना ।

तहां प्रातःकाल कषायके सेवनमें कहा है, दूसरा काल जो भोजनके समयका है वह पाच प्रकारका है, जैसे भोजनके प्रथम लवण और अदरखका सेवन, भोजनमे मिलायके हिंग्वष्टकादि चूर्ण, भोजनके मध्यमें जैसे पानी आदि पीना भोजनान्तमे जैसे लौग और हरीतक्यादिका सेवन और एक भोजनके आदि अन्तमें जैसे अम्लपित्त रोगमें धात्री अवलेह भोजनके आदि अन्तमें दिया जाता है ।

तीसरा काल सायकाल भोजनका समय है. वो भी तीन प्रकारका है, जैसे कि ग्रास ग्रासके पिछाडी, और भोजनके अन्तमें बाकीके काल प्रसिद्ध हैं ।

प्रथमकाल ।

प्रायः पित्तकफोद्रेके विरेकवमनार्थयोः ॥
लेखनार्थं च भैषज्यं प्रभातेऽनन्नमाहरेत् ॥
एवं स्यात्प्रथमः कालो भैषज्यग्रहणे नृणाम् ॥ ३ ॥

अर्थ–पित्त और कफके कुपित होनेपर पित्तको विरेचन और कफको वमन इसी प्रकार लेखन (दोषोंको पतला करनेके) अर्थ प्रात.कालमे निरन्तर औषध देवे, तथा रोगीको प्रात.काल भोजन न देवे । यदि दोप उत्कट होय तो अन्य समयभी देना हितकारी लिखा है इसप्रकार औषध ग्रहणमें मनुष्योको प्रथम काल जानना ।

(वक्तव्य श्लोक ३) विरेचनकी औषधि निरन्न दीजाती है, परन्तु वमनकी औषध निरन्न नही दीजाती यवागू पिलाकर दीजाती है. देखो वमनविधि ।

द्वितीयकाल ।

भैषज्यं विगुणेऽपाने भोजनाग्रे प्रशस्यते ॥ अरुचौ चित्रभोज्यैश्च मिश्रं रुचिरमाहरेत् ॥ ४ ॥ समानवाते विगुणे मन्देग्नावग्निदीपनम् ॥ दद्याद्भोजनमध्ये च भैषज्यं कुशलो भिषक् ॥५॥ व्यानकोपे च भैषज्यं भोजनांते समाहरेत् ॥ हिक्काक्षेपककंपेषु पूर्वमंते च भोजनात् ॥ ६ ॥ एवं द्वितीयकालश्च प्रोक्तो भैषज्यकर्मणि ॥ ७ ॥

अर्थ–अपान कहिये गुदासवन्धी वायु उसके कुपित होनेपर भोजनके किचित् पूर्व औषध भक्षण करै । अरुचि होनेपर अनेक प्रकारके अन्न तथा नाना प्रकारकी रुचिकारी वस्तुमे औषध मिलायके भोजन करै । तथा नाभिसम्बन्धी समानवायुके कोप एव अग्निमाद्य होनेपर अग्निदीपनकर्ता औषध भोजनके मध्यमें सेवन करै । सर्व देहव्यापी व्यान वायुके

कुपित होनेमें भोजनके अंतमें औषध भक्षण करे। तथा हिचकी, आक्षेपक वायु एवं कंपवायु इनके कुपित होनेपर भोजनके प्रथम और अंतमें औषध भक्षण करे इसप्रकार दूसरा काल कहा है।

तृतीयकाल।

उदाने कुपिते वाते स्वरभंगादिकारिणि ॥ ग्रासे ग्रासांतरे देयं भैषज्यं सांध्यभोजने॥८॥प्राणे प्रदुष्टे सांध्यस्य भक्ष्यस्यान्ते च दीयते ॥ औषधं प्रायशो धीरैः कालोऽयं स्यात्तृतीयकः ॥ ९ ॥

अर्थ—कंठसवर्ती उदानवायुके कुपित (स्वरभंगादि कंठका बैठजाना, वा गूंगा होजाना अथवा अन्य कंठके रोग) होनेसे सायकालके भोजनसे ग्रास (गस्सा) के साथ अथवा दो दो ग्रासोंके बीचमें औषध भक्षण करावे। तथा हृदयस्थित प्राण वायुके कुपित होनेमें बहुधा साय-कालके भोजनके अंतमें औषध भक्षण करावे इसप्रकार तीसरा काल जानना।

कदाचित् कोई प्रश्न करे कि शार्ङ्गधरने पवनके पाच भेद कहे इसी प्रकार कफ और पित्तके जो पाच २ भेद हैं वो क्यों नहीं कहे? तहाँ कहते हैं कि सब दोष, धातु मलादिकोंमें वायुको प्रधानता है और वायुही अन्य कफादिकोंके प्रकोपका कारण है अतएव इसके प्रकोप करके पित्तकफका प्रकोप होता है ऐसा जानना। जैसे कहा है कि एक दोष कुपित हो संपूर्ण दोषोंको कुपित करता है[१]. तथा सुश्रुतमें लिखा है कि 'अचित्यवीर्यवान् दोषोंका नियता, सर्व रोग समूहोंका राजा ऐसा यह वायु स्वयभू और भगवान् ऐसे कहा है[२]' अतएव इसको प्रधानत्व होनेसे इसीके भेद कहे हैं अन्य कफादिकोंके नहीं।

चतुर्थकाल।

मुहुर्मुहुश्च तृट्छर्दिहिक्काश्वासगरेषु च ॥
सान्नं च भेषजं दद्यादिति कालश्चतुर्थकः ॥ १० ॥

अर्थ—तृषा वमन हिचकी श्वास तथा विषदोष ये रोग होनेसे वारंवार अन्नसहित औषध भक्षण कराना चाहिये। इस श्लोकमें जो चकार है इससे यह सूचना करी कि, तृषादि रोगोंमें अन्नरहितभी औषध देवे. इस प्रकार चतुर्थकाल कहा।

पंचमकाल।

ऊर्ध्वजत्रुविकारेषु लेखने बृंहणे तथा॥ पाचनं शमनं देयमनन्नं

---

१ एकदोषस्तु कुपितो दोषानन्यान्प्रकोपयेत्। २ स्वयंभूरेष भगवान्वायुरित्यभिशब्दितः। अचिन्त्यवीर्यो दोषाणां नेता रोगसमूहराट्।

भेषजं निशि॥इति पंचमकालः स्यात्प्रोक्तो भैषज्यकर्मणि॥११॥

अर्थ—जत्रु (हसली) के ऊपरभागके (कर्णरोग १ नेत्ररोग १ मुखरोग तथा नासिकारोग इत्यादि) रोगोंके विषयमें तथा बढे हुए वातादि दोषोके घटानेके विषयमे और अति क्षीण दोषोंके बढानेके विषयमे रात्रिके समय पाचनरूप तथा शमनरूप औषध अन्नरहित भक्षण करावे, (तहा कोई रात्रिके कहनेसे सब रात्रिभर औषध देवे ऐसा कहते है परतु व्यवहारमे तो रात्रिके प्रथम प्रहरमे औषध देना ठीक है) इस प्रकार पचमकाल जानना ।

अब द्रव्यमें रसादिकोंकी विशेष अवस्था कहते हैं ।

द्रव्ये रसो गुणो वीर्यं विपाकः शक्तिरेव च ॥
संवेदनक्रमादेताः पंचावस्थाः प्रकीर्त्तिताः ॥ १२ ॥

अर्थ—द्रव्यमें रस, गुण, वीर्य, विपाक और शक्ति ये पाच अवस्था है । इनका ज्ञान क्रमकरके जानना । तहा मधुरादि भेदसे रस छः प्रकारका है । गुरु मदादिके भेदसे गुण २० प्रकारका है । शीत उष्णके भेदसे वीर्य दो प्रकारका हैं । कोई शीत, उष्ण, रूक्ष विशदादि भेद करके अष्टविधवीर्यको मानतेहै । विपाक ३ प्रकारका है । कोई लघु गुरुके भेदसे विपाक दोही प्रकारका मानतेहै । और द्रव्योकी शक्ति अचिन्त्य हैं, अतएव द्रव्यप्रधान है जैसे किसीने कहाहै कि 'विनावीर्यके[1] पाक नही और रसके विना वीर्य नही, द्रव्यके विना रस नही अतएव द्रव्यको प्रधानत्व है' द्रव्यके कहनेसे सामान्यतः जल, छाल, सार, गोंदआदि जानना । जैसे लिखा है 'जडे[2], छाल, सार, गोद, नाल, स्वरस, पल्लव. दूध, दूधवाले फल, फूल, भस्म, तेल, काटे, पत्र, शुग (कोमल पत्तेकी कली) कंद, प्ररोह और उद्भिज आदि' तथा जगम[3] पार्थिव[4] सब द्रव्य शब्द करके ग्रहण किये जाते है ।

रसका स्वरूप ।

मधुरोऽम्लः पटुश्चैव कटुतिक्तकषायकाः ॥
इत्येते षड्रसाः ख्याता नानाद्रव्यसमाश्रिताः ॥ १३ ॥

अर्थ—मधुर[5], अम्ल[6], क्षार[7], चरपरा[8], कडुआ[9] और कषैला[10] ये छः प्रकारके रस नाना द्रव्यके आश्रयकरके रहते है ऐसे जानना ।

---

१ पाको नास्ति विना वीर्याद्वीर्यं नास्ति विना रसात् । रसो नास्ति विना द्रव्याद्द्रव्य श्रेष्ठमतः स्मृतम् ॥

२ मूलत्वक्निर्यासनालस्वरसपल्लवदुग्धदुग्धफलपुष्पभस्मतैलकंटकपत्रशुंगकन्दप्ररोहउद्भिदादि तथा जंगमपार्थिवादीनि सर्वाणि द्रव्यशब्देनाभिधीयते ।

३ मनुष्य पशु आदि. ४ पृथ्वीके पदार्थ सुवर्णादि. ५ मीठा. ६ खट्टा. ७ खारी. ८ तीक्ष्ण मरिच आदि. ९ कडुआ गिलोय आदि. १० कषैला हरड बहेडा आदि ।

रसोंका उत्पत्तिक्रम।

धराम्बुक्ष्मानलजलज्वलनाकाशमारुतैः ॥
वाय्वग्निक्ष्मानिलैर्भूतद्वयै रसभवः क्रमात् ॥ १४ ॥

अर्थ—पृथ्वी और जलसे मधुर (मीठा) रस उत्पन्न हुआहै। पृथ्वी और अग्निसे अम्ल (खट्टा) रस, जल और अग्निसे क्षार (नोन) रस आकाश और वायुसे तीक्ष्ण (चरपरा) रस, वायु और अग्निसे तिक्त (कडुआ) रस एवं पृथ्वी और वायुसे कषाय (कषैला) रस उत्पन्न हुआ है इस प्रकार दोदो भूतोंकरके एक एक रस उत्पन्न होताहै इसप्रकार छः रसोकी उत्पत्ति जाननी।

गुणोंके स्वरूप।

गुरुः स्निग्धश्च तीक्ष्णश्च रूक्षो लघुरिति क्रमात् ॥१५॥ धराम्बुवह्निपवनव्योम्नां प्रायो गुणाः स्मृताः ॥ एष्वेवान्तरभवन्त्यन्ये गुणेषु गुणसंचयाः ॥ १६ ॥

अर्थ--पृथ्वीका भारी गुण, जलका स्निग्ध (चिकना) गुण, अग्निका तीक्ष्ण गुण, वायुका रूक्ष गुण और आकाशका हलका गुण इसप्रकार पाच गण क्रम करके पांच महाभूतोके जानने। तथा इन्हीं गुणोंमें दूसरे सांद्र, मृदु, श्लक्ष्ण इत्यादि गुण रहते हैं उनको अनुमानसे जानना। " गुणाः " इस बहुवचनसे व्यवायी, विकाशी आदि अन्य बाईस गुण जानना कोई सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण, ए तीनही गुण कहते है, इसका विस्तार सुश्रुत प्रथमे देखिये।

वीर्यका स्वरूप।

वीर्यमुष्णं तथा शीतं प्रायशो द्रव्यसंश्रयम् ॥ तत्सर्वमग्निषोमीयं दृश्यते भुवनत्रये ॥ अत्रैवांतर्भविष्यंति वीर्याण्यन्यानि यान्यपि ॥ १७ ॥

अर्थ—वीर्य बहुधा द्रव्यके आश्रय रहताहै, वह दो प्रकारका है, एकशीतल और दूसरा उष्ण इसीसे त्रिलोकीमे ये वीर्य अग्न्यात्मक और सोमात्मक दीखते है तथा इन शीतोष्णवीर्यके अंतर्गत अन्यवीर्य (स्निग्ध, रूक्ष, विशद, पिच्छिल, मृदु, तीक्ष्ण इत्यादि) रहते हैं।

विपाकका स्वरूप।

मिष्टः पटुश्च मधुरमम्लोम्लं पच्यते रसः॥कषायकटुतिक्तानां पाकः स्यात्प्रायशः कटुः ॥ मधुराज्जायते श्लेष्मा पित्तम-

म्लाच्च जायते ॥ कटुकाज्जायते वायुः कर्माणीति विपाकतः ॥ १८ ॥

अर्थ—मिष्टरस और क्षाररस इनका मधुर पाक होताहै खट्टे रसका खट्टा पाक होताहै । कषैले, चरपरे और कडुए रसोका पाक बहुधा तीक्ष्ण होताहै अतएव उन तीन पाकोंकरके जो तीन कर्म होतेहैं, उनको कहतेहैं--मधुर पाक करके कफ होताहै अम्ल पाक करके पित्त होताहै, और तीक्ष्ण पाक करके वायु होताहै इस प्रकार तीन प्रकारके पाक करके तीनों दोष उत्पन्न होतेहैं ।

प्रभावके स्वरूप ।

प्रभावस्तु यथा धात्री लघुश्चापि रसादिभिः ॥ समापि कुरुते दोषत्रितयस्य विनाशनम् ॥ क्वचित्तु केवलं द्रव्यं कर्म कुर्यात्प्रभावतः ॥ ज्वरं हंति शिरे बद्धा सहदेवीजटा यथा ॥ १९ ॥

अर्थ--आवले रस गुण वीर्य विपाकादि गुण करके समान होने तथा हलके होनेपरभी अपने प्रभावकरके वातादि तीनों दोषोका नाश करतेहैं । 'लकुचस्य रसादिभिः' ऐसाभी पाठ है इसका यह अर्थ है कि आमले क्षुद्रफनसके रसादिक करकेसमानभी होनेपर अपने प्रभाव (उत्कृष्टशक्ति) करके त्रिदोषको शमन करतेहैं । इस शक्तिको प्रभाव कहते हैं। कहीं एकही द्रव्य ऐसाहै कि अपने प्रभावसे शीघ्रही रोगको दूर करता है जैसे, सहदेईकी जडको मस्तकमें बाधनेसे ज्वर दूर होताहै इसप्रकार प्रभावका गुण जानना ।

रसादिकोंकी उत्कृष्टता ।

क्वचिद्रसो गुणो वीर्यं विपाकः शक्तिरेव च ॥
कर्म स्वंस्वंप्रकुर्वंति द्रव्यमाश्रित्य ये स्थिताः ॥ २० ॥

अर्थ--कहीं रस, कहीं गुण, कहीं वीर्य, कहीं विपाक, कहीं शक्ति ये द्रव्यके आश्रय करके रहनेसे अपने २ कर्म करते है उन कर्मोको उदाहरण करके दिखाते है प्रथम रसके उदाहरण--जैसे गिलोयका रस कटु और उष्ण होनेपरभी पित्तको शमन करताहै, कारण उष्ण और कटुरस होनेसे । गुणका उदाहरण जैसे तीक्ष्णगुणवालीभी मूली कफकी वृद्धि करती है, कारण इसका यह है कि यह स्निग्ध गुणवाली है । वीर्यका उदाहरण जैसे बडा पचमूल कपैला और कडुवेसा होनेपरभी वादीको शमन करताहै, कारण यह उष्णवीर्य है । विपाकका उदाहरण जैसे सोठ तीक्ष्ण होनेपरभी वायुको शमन करतीहै कारण यह है कि इसका मधुर पाकहै । शक्तिका उदाहरण जो कर्म रस, गुण, वीर्य, विपाक करके नहीं होते वो कर्म शक्ति कहिये प्रभाव करके होतेहैं. जैसे-खेर कुष्ठका नाश करताहै, कारण इसका यह है कि,

इसकी विलक्षण शक्ति है । इसीकारण औषधोंका प्रभाव अचिंत्यहै । कदाचित् कोई प्रश्न करे कि गुण वीर्यमें क्या भेद है, क्योंकि जो गुण हरडमें है वही आमलेमें है । तहां कहतेहैं कि आमला शीतलवीर्य है और हरड उष्णवीर्य हैं अतएव वीर्यका भेद होनेसे दोनो पृथक् २ कोहैं ।

इति द्रव्यादिकथनम् ।

वातादिदोषोंका संचय प्रकोप और उपशम।

चयकोपसमा यस्मिन्दोषाणां संभवंति हि ॥
ऋतुषट्कं तदाख्यातं रवे राशिषु संक्रमात् ॥ २१ ॥

अर्थ–जिन छ. ऋतुओंमें दोषोंकी वृद्धि, प्रकोप और उपशमका सभव होताहै वे ऋतु सूर्यके बारह राशिओंमें संक्रमण करनेसे होतीहै ।

ऋतुओंके नाम ।

ग्रीष्मे मेषवृषौ प्रोक्तौ प्रावृण्मिथुनकर्कयोः ॥ सिंहकन्ये स्मृता वर्षा स्तुलावृश्चिकयोः शरत् ॥ धनुर्ग्राहौ च हेमंतो वसंतः कुंभमीनयोः ॥ २२ ॥

अर्थ–मेष सक्रांतिसे लेकर वृष सक्रांतिकी समाप्ति पर्यंत ग्रीष्मऋतु होतीहै । इसी प्रकार मिथुन–संक्रांतिसे लेकर कर्कसंक्रांति पर्यंत प्रावृट्ऋतु. सिंह और कन्याकी संक्रातिको वर्षाऋतु, तुला और वृश्चिकसंक्रांतिको शरदृऋतु, धनसंक्रांति और मकरसक्रातिकी हेमंतऋतु, एवं कुंभकी संक्रांतिसे लेकर मीनकी संक्रांतिकी समाप्तिपर्यंत वसंत ऋतु कहलातीहै । इस प्रकार दोराशियों करके दो दो महिनेकी एक ऋतु होतीहै, ऐसे छः ऋतु जानना । ये दोषोंके सचय होनेमें ग्राह्य हैं, अयन विषयमें ग्राह्य नहीं हैं जैसे सुश्रुतमें लिखा है ।

ऋतुभेदकरके वातादिदोषोंका संचय कोप और शमन।

ग्रीष्मे संचीयते वायुः प्रावृट्काले प्रकुप्यति ॥ वर्षासु चीयते पित्तं शरत्काले प्रकुप्यति ॥ हेमंते चीयते श्लेष्मा वसंते च प्रकुप्यति ॥ प्रायेण प्रशमं याति स्वयमेव समीरणः ॥ शरत्काले वसंते च पित्तं प्रावृडृतौ कफः ॥ २३ ॥

---

१ अमीमांस्यान्यचिंत्यानि प्रसिद्धानि स्वभावतः ॥ आगमेनोपयोज्यानि भेषजानि विचक्षणैः ॥ इति- सुश्रुते ।

२ इह तु वर्षाशरद्धेमन्तवसंतग्रीष्मप्रावृषः षडृतवो भवति दोषोपचयप्रकोपप्रशमनिमित्तम् ।

अर्थ-ग्रीष्मऋतुमे वायुका संचय होकर प्रावृट् कालमे प्रकोप होताहै वर्षाऋतुमें पित्तक सचय होकर शरद्ऋतुमें प्रकोप होताहै, एव हेमतऋतुमें कफका सचय होकर वसंतऋतुमे कफ कुपित होताहै । वायु शरद् कालमे अपने आपही स्वय शात होजाताहै और पित्त वसतऋतुमें स्वयं शात होजाताहै तथा कफ प्रावृट् कालमें अपने आप शात होजाताहै ।

दोपसंचयप्रकोपशमनचक्रम्.

नाम	वात	पित्त	कफ
संचय	ग्रीष्मऋतु वैशाख-ज्येष्ठ मेप—वृष	वर्षाऋतु भाद्रपद--आश्विन सिंह--कन्या	हेमतऋतु पौष—माघ धन—मकर
कोप	प्रावृट्ऋतु मिथुन—कर्क आपाढ—श्रावण	शरद्ऋतु तुला-वृश्चिक कार्तिक--मार्गशिर	वसतऋतु कुभ—मीन फाल्गुन—चैत्र
शमन	शरदृतु तुला—वृश्चिक कार्तिक--मार्गशिर	वसतऋतु कुभ--मीन फाल्गुन--चैत्र	प्रावृट्ऋतु मिथुन—कर्क आपाढ—श्रावण

वैद्यकशास्त्रमें तीन दोषोंमें वायुको प्रधानता है अतएव ग्रीष्म ऋतुसे आरंभकर अतमे वसतऋतु कही है । गोदावरीके दक्षिणभागमे चारमहीने निरतर वर्षा होतीहै इसीसे चातुर्मास्यमें प्रावृट् और वर्षा ये दो ऋतु कल्पना की गई । हेमंत और शिशिर इन दोनों ऋतुके गुण दोष समान हैं अतएव शिशिरऋतुका परित्याग करके इस जगह हेमंत मात्र धराहै । यह कल्पना त्रिदोषोके सचय प्रकोपके अनुभव करके की है, देव पितृ कार्यमे यह ऋतु कल्पना ग्रहण नहीं करना उसमें चैत्र वैशाख वसतऋतु इत्यादिक जो धर्मशास्त्रमे कही है वही संकल्प कालमे कहनी चाहिये ।

यहा पर वातादिकोंके सचय और कोपका कारण सुश्रुतसे लिखते हैं कि इस ग्रीष्म ऋतुमें औषधि (गिलोयचनादि) साररहित, रूक्ष और अत्यन्त हलकी होती हैं. तथा इसी प्रकारके रूक्षादि गुणयुक्त जल होते हैं.ऐसे अन्नजल (आवहवा) के सेवन करनेसे सूर्यके तेजकरके शोषितहै दह जिन्होंकी ऐसे मनुष्योंके रूक्ष, लघु और विशदगुणवान् होनेके कारण वायुका संचय होताहै-

वहीं वातका संचय प्रावृट् ऋतुमे अत्यत जलमे भीगी पृथ्वीमे भीगीहुई देहवाले प्राणियोंके शीत वात वर्षाकरके प्रेरित वातजन्य व्याधियोंको उत्पन्न करती है।

कदाचित् कोई प्रश्न करे कि शीतगुण वायुका ग्रीष्म ऋतुमें क्योंकर संचय होता है ? तहा कहते हैं कि संपूर्ण वातके गुणोंमे रौक्ष्य गुणकी प्रधानता है अतएव औषधियोंके अतिरूखे होनेसे रूक्ष वायुका ग्रीष्मऋतुमेंभी संचय होताहै।

जिनको कफ पित्तके संचय प्रकोपका कारण जानना होय वे बृहन्निघण्टुरत्नाकरके "चर्याचंद्रोदय" में देखलेवें इस जगह ग्रंथ बढनेके भयसे नहीं लिखा।

किसी २ पुस्तकमें यह श्लोक अधिक है।

[कार्तिकस्य दिनान्यष्टावष्टावग्रहणस्य च ॥
यमदंष्ट्रा समाख्याता अल्पाहारः स जीवति] ॥ २४ ॥

अर्थ–कार्तिकके अंतके आठ दिन और मार्गशिरके आदिके आठ दिन 'यमदंष्ट्रासंज्ञक हैं इनमें थोडा भोजन करनेवाला जीवित रहता है यह श्लोक प्रक्षिप्त है।

कोई प्रश्न करे कि जिस ऋतुमे दोषोंका सचय होता है उसी ऋतुमें कोप क्यो नहीं होता ? तहा कहते हैं कि जैसे वायुका ग्रीष्म ऋतुमें संचय होता है परंतु इसमें ऋतु उष्ण होनेके कारण वातका कोप नहीं होता कोई दिन रात्रिमेंही छः ऋतुके धर्म होते हैं ऐसा कहते हैं। जैसे दिनके पूर्वभागमें वसतके, मध्याह्नमे ग्रीष्मके, अपराह्नमे प्रावृट्के, प्रदोषमें वर्षाके, अर्ध रात्रिमें शरदके और दो घडीके तडके, हेमत ऋतुके लक्षण होते है।

अब दोषोंका अकालमेंभी चयादि निमित्तकारण कहते हैं।

चयकोपशमान्दोषा विहारा रससेवनैः ॥
समानैर्यात्यकालेऽपि विपरीतैर्विपर्ययम् ॥ २५ ॥

अर्थ–वातादि दोषोंके जो गुण हैं उन गुणोंके समान है गुण जिन्होंके ऐसे आहार और विहार इनके सेवन करके वातादि दोषोंका सचय प्रकोप और उपशम होता है। और वातादि दोषोंके गुणोके विपरीत गुणकर्ता ऐसे विहार और गुरु स्निग्धादि पदार्थ इनके सेवन करके अकालमें वातादि दोषोका नाश होता है।

---

१ लघु रूक्ष शीतादिपदार्थ वात गुणोंके समान विदाही तीक्ष्ण अम्ल इत्यादि पदार्थ पित्तगुणोंके समान तथा मधुर स्निग्ध इत्यादि पदार्थ कफगुणोंके समान हैं।

२ तात्पर्य यह है कि वातादिकोंके संचयकालमे समानगुणके विहारादिक पदार्थोंके सेवन करनेसे उन वातादिकोंका सचय होताहै। एवं प्रकोपकालमें ऐसे पदार्थोंका सेवन करनेसे प्रकोप होताहै। और उपशमकालमें सेवन करनेसे उन दोषोंका शमन होताहै।

३ गुरु स्निग्ध उष्ण इत्यादिक पदार्थ वातगुणके विपरीत हैं कटु उष्ण रूक्ष इत्यादि पदार्थ कफ गुणके विरुद्ध हैं। और अविदाही मधुर शीतल इत्यादि पदार्थ पित्तगुणके विपरीत जानना।

वायुका प्रकोप तथा शमन ।

लघुरूक्षमिताहारादतिशीताच्छ्रमात्तथा ॥ प्रदोषे कामशोकाभ्यां भीचिंतारात्रिजागरैः॥अभिघातादपां गाहाज्जीर्णेऽन्ने धातुसंक्षयात् ॥ वायुः प्रकोपं यात्येभिः प्रत्यनीकैश्च शाम्यति ॥२६॥

अर्थ--लघु[1] आहार, तथा रूक्ष[2] आहार, एवं मित[3] आहार इनके सेवन करके तथा अतिशीतकाल, अति शीत पदार्थोंके सेवन, अत्यत परिश्रम करना, प्रदोषकाल, काम[4] धन पुत्रादिक वियोग जनित दुःख, भय और चिंता, रात्रिमें जागरण, शस्त्र लकडी आदिकी चोट लगना, जलमे अत्यंत बैठा रहना तथा आहारका पाक होना एव धातुका क्षीण होना, इत्यादिक कारणोंसे वायुका कोप होता है और इतने कहे हुए कारणोंके प्रत्यनीक (विरुद्ध--कहिये उष्ण तथा स्निग्धादि) पदार्थोंके सेवन करनेसे वायु शात होता है ।

पित्तकोप और शमन ।

विदाहिकटुकाम्लोष्णभोज्यैरत्युष्णसेवनात् ॥
मध्याह्ने क्षुत्तृषारोधाज्जीर्यत्यन्नेऽर्धरात्रिके ॥
पित्तं प्रकोपं यात्येभिः प्रत्यनीकैश्च शाम्यति ॥ २७ ॥

अर्थ--दाहकारी[6], तीक्ष्ण[7], खट्टे, उष्ण पदार्थोंके सेवन करनेसे, अत्यत अग्निके तापनेसे दो प्रहरके समय भूख और प्यासके रोकनेसे, अर्द्धरात्रिके समय, अन्नके परिपाक होते समय, इत्यादि कारणोकरके पित्तका प्रकोप होता है इन उक्त कारणोंके विरोधी मधुर शीतल आदि पदार्थोंके सेवन करनेसे पित्तका शमन होता है ।

कफका कोप और शमन ।

मधुरस्निग्धशीतादिभोज्यैर्दिवसनिद्रया॥ मंदेऽग्नौ च प्रभाते च भुक्तमात्रे तथा श्रमात्॥२८॥ श्लेष्मा प्रकोपं यात्येभिः प्रत्यनीकैश्च शाम्यति ॥ २९ ॥

---

१ जो पदार्थ खानेसे जल्दी पचजावे उनको लघु जानने उदाहरण मूग मोठ आदि । २ चना आदि पदार्थ रूक्ष जानने । ३ जितना अपना आहार है उससे कम खानेको मिताहार कहते हैं ।

४ स्त्रीविषयमें इच्छा होनेको काम कहते हैं । ५ धातुक्षयात्स्रुते रक्ते मदः स जायतेऽनलः । पवनश्च परं कोपं याति तस्मात्प्रयत्नत' इत्यादि । ६ जिनके खानेसे दाह होय उनको विदाही कहते हैं जैसे वाम और करीलकी कोपल । ७ राई मिरच आदि तीक्ष्ण पदार्थ जानने ।

अर्थ--मधुर[1], स्निग्ध[2], शीतल[3] तथा आदिशब्दसे भारी[4], श्लक्ष्णादि[5] पदार्थोंके सेवन करनेसे, दिनमें निद्रा लेनेसे, मंदाग्निमें अधिक भोजन करनेसे, प्रातःकालमें भोजन करते ही देहको परिश्रम न देनेसे अर्थात् बैठे रहनेसे, इत्यादि कारणोंसे कफका प्रकोप होताहै, तथा इन कारणोंके विरुद्ध कहिये उष्ण तथा रूक्षादि पदार्थोंके सेवन करनेसे कफका शमन होता है।

इति माथुरदत्तरामप्रणीतशार्ङ्गधरसंहिताभाषाटीकायां भैषज्याख्यानं द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

प्रथम लिख आए हैं कि 'नाडीपरीक्षादिविधिः' अतएव भैषज्याख्यानके अनंतर नाडीपरीक्षा लिखते हैं।

नाडीपरीक्षा।

करस्यांगुष्ठमूले या धमनी जीवसाक्षिणी[6] ॥
तच्चेष्टया सुखं दुःखं ज्ञेयं कायस्य पण्डितैः ॥ १[7] ॥

अर्थ—जीवकी साक्षिणी ऐसी धमनीनाडी हाथके अंगूठेकी जडमें है, उसकी चेष्टा करके शरीरके सुखदुःखको पंडित जाने। ×

दोषोंके निजस्वरूपकी चेष्टाको कहतेहैं।

नाडी धत्ते मरुत्कोपे जलौकासर्पयोर्गतिम्[8] ॥ कुलिंगकाकमंडूकगतिं पित्तस्य कोपतः॥हंसपारावतगतिं धत्ते श्लेष्मप्रकोपतः ॥२॥

अर्थ—वादीके कोपसे नाडी जोंख और सर्पकी चालके समान गमन करती है. पित्तके

---

१ गुड खांड मिश्रीआदि मधुर पदार्थ जानने २ घी-तेल-आदि स्निग्ध पदार्थ जानने ३ केलेकी फली, बरफ आदि शीतल पदार्थ जानने ४ भैंसका दूधआदि भारी पदार्थ जानने ५ उडद आदि श्लक्ष्ण पदार्थ जानने ६ प्राणवायुकी साक्षीभूत ७ नाडीपरीक्षा किस समय करनी किस समय नहीं करनी इसको जाननेवाला।

× प्रदर्शयेद्दोषनिजस्वरूपं व्यस्तं समस्तं युगलीकृतं च। मूकस्य मुग्धस्य विमोहितस्य दीपप्रभावा इव जीवनाडी ॥ सद्यः स्नातस्य भुक्तस्य तथा तैलावगाहिनः। क्षुत्तृषार्त्तस्य सुप्तस्य सम्यङ्नाडी न बुद्ध्यते ॥

८ जोंख और सर्प इनका टेढातिरछा गमन है.

कोपसे नाडी कुलिंग (घरका चिडा) कौआ और मेंडक इनकी गतिके समान चलती है. एवं कफके कोपसे नाडी हंस और कबूतरकी चालके सदृश चलतीहै ।

सन्निपात और द्विदोषकी नाडी ।

लावतित्तिरवर्तीनां गमनं सन्निपाततः ॥ कदाचिन्मंदगमना कदाचिद्वेगवाहिनी ॥३॥ द्विदोषकोपतो ज्ञेया हंति च स्थानविच्युता ॥

अर्थ–सन्निपातमें नाडी लवा, तीतर और बटेरकीसी चाल चलतीहै । दो दोषोंके कोपमें नाडी धीरे २ चलकर तत्काल जलदी २ चलने लगतीहै. तथा अपने स्थानसे अन्यत्र निजगतिमें चलतीहै जैसे पित्तके स्थानमे चक्रगतिसे चले तो वातपित्त जानना इत्यादि वर्तिक पक्षीको कोई गरुडभी कहते हैं ।

असाध्यनाडीके लक्षण ।

स्थित्वा स्थित्वा चलति या सा स्मृता प्राणनाशिनी ॥ ४ ॥ अतिक्षीणा च शीता च जीवितं हंत्यसंशयम् ॥

अर्थ–जो नाडी अपने स्थानको त्यागदे अर्थात् उस स्थानसे आगे पीछे चलनेलगे और जो ठहर ठहरके चले इन दोनों प्रकारकी नाडी रोगियोंके प्राणोको नाश करती है । जो नाडी अत्यन्त क्षीण होगईहो और अत्यत शीतल होगई हो वह निश्चय प्राणोंको हरण करतीहै । चकार से जो नाडी कुटिल और ऊँची नीची चले उस नाडीकोभी प्राण हरण करनेवाली जानो ।

ज्वरादिकी नाडीके लक्षण ।

ज्वरकोपेन धमनी सोष्णा वेगवती भवेत् ॥ ५ ॥ कामक्रोधाद्वेगवहा क्षीणा चिंताभयप्लुता ॥ मंदाग्नेः क्षीणधातोश्च नाडी मंदतरा भवेत् ॥ ६ ॥ असृक्पूर्णा भवेत्कोष्णा गुर्वी सामा गरीयसी ॥

अर्थ–सामान्यज्वरके कोपमे नाडी गरम और जल्दी जल्दी चलती है इत्यादिकोंमें इच्छा होनेपर उनके न मिलनेसे तथा क्रोधसे नाडी बहुत जल्दी चलतीहै एवं चिन्ता (सोच–विचार) और भय (दुश्मन आदिका भय) से नाडी क्षीण होतीहै । कोई " चिंताभयश्रमात् " ऐसा पाठ कहतेहैं तहा श्रम कहिये ग्लानिसे नाडी क्षीण होतीहै. मंदाग्नि और धातुक्षीणवाले मनुष्योंकी नाडी अत्यंत मंद होतीहै तथा रुधिरके

---

१ कुलिंग कौवा और मेंडक इनका उछल २ कर चलन होताहै । कोई कुलिंगके जगह 'कलापि' ऐसा पाठ कहते हैं, उनके मतसे कलापी कहिये मोर इनकीसी चालके समान नाडी चलती है. २ हंस (बतक) और कबूतर इनकी धीरी २ चाल है ३ लवा और तीतर ये पक्षी चपलगतिवाले हैं ४ नाडी-सप्यवहांगुष्ठमूले मात्यर्थमुच्छलेत् । शनैरूर्ध्वं गमनी कुटिला इति मानवम् ॥

कोपसे अर्थात् रुधिरपूरित नाडी कुछ गरम और भारी होती है। कोई (कोष्णाकी जगह सोष्णा) ऐसा पाठ कहते हैं। और आमयुक्त नाडी अत्यन्त भारी होती है, जठराग्निके दुर्बल होनेसे जो विना पचाहुआ रस शेष रहता है उसकी आमसंज्ञा है। अथवा आम करके इस जगह आमाजीर्ण जानना।

उत्तमप्रकृतिके लक्षण।

लघ्वी वहति दीप्ताग्नेस्तथावेगवती भवेत्॥७॥सुखितस्य स्थिरा ज्ञेया तथा बलवती मता॥ चपला क्षुधितस्यापि तृप्तस्य वहतिस्थिरा॥८॥

अर्थ--जिस पुरुषकी जठराग्नि प्रदीप्त होती है उसकी नाडी हल्की और वेगवती होती है, स्वस्थ (रोगरहित) मनुष्यकी नाडी स्थिर और बलवती होती है, भूखे मनुष्यकी नाडी चंचल होती है, और भोजन कर चुकाहो उसकी नाडी स्थिर होती है। इति नाडी-परीक्षा।

अब प्रथम लिख आए हैं, कि आदि शब्दसे दूत स्वप्नादिक जानने अतएव दूतके लक्षणोंको कहते हैं।

दूतपरीक्षा।

दूताः स्वजातयोऽव्यंगाः पटवो निर्मलांबराः॥ सुखिनोऽश्ववृषारूढाः शुभ्रपुष्पफलैर्युताः॥९॥ सुजातयः सुचेष्टाश्च सजीवदिशि संगताः॥ भिषजं समये प्राप्ता रोगिणः सुखहेतवे॥१०॥

अर्थ—वैद्यके बोलनेको अथवा प्रश्न करनेके विषयमे दूत कैसा होय सो कहते हैं। जो बोलनेको जाय वो उस रोगीकी जातिका हो, हाथ पैर आदिसे हीन न हो, सर्व कर्ममें कुशल है, सफेद वस्त्रोको धारण करता है और सुखी तथा उत्तम घोडे और बैलपर बैठाहुआ, सफेद पुष्प और रसभरे फल करके युक्त तथा उत्तम कुलका और उत्तम

---

१ जठरानलदौर्बल्यादविपक्वस्तु यो रसः। स आमसंज्ञको देहे सर्वदोषप्रकोपक इति। २आम विदग्ध विष्टब्धक चेति–कोई सामा गरीयसी इस पदका अर्थ यह करते हैं, कि आमके साथ जो रहे उसे साम कहते वे दोष हैं दूष्य दूषितादिक जानने–जैसे लिखा है।

आमेन तेन संपृक्ता दोषा दूष्याश्च दूषिताः। सामा इत्युपदिश्यते ये च रोगास्तदुद्भवाः इति।

तहा सामदोषते सामदूष्यसे और सामदूष्यतासे रसादिधातु दूष्य हैं मलमूत्रआदि दूषित हैं।

२ पाखण्डाश्रमवर्णानां सपक्षा. कर्मसिद्धये। त एव विपरीताः स्युर्दूताः कर्मविपत्तये। ३ तैलकर्दमदिग्धांगा रक्तस्रगनुलेपनाः। फलं पक्वमसारं वा गृहीत्वान्यच्च तद्विधम्। वैद्यं य उपसर्पंति दूतास्ते चापि गर्हिताः।

चेष्टाको करनेवाला दूत होना चाहिये, इस श्लोकमें जो चकार है इससे उत्तम दर्शन और उत्तम वेष हो तथा सजीव कहिये नासिकाकी पवन जिधरको वह रही हो उधरको बैठनेवाला, अथवा उस दिशामें आनेवाला। तथा समयपर वैद्यको मिलनेवाला इस प्रकारका दूत वैद्यके घर रोगीके लिये उत्तमें तिथि नक्षत्रमे आया हुआ रोगीका कल्याणकारी जानना। कोई स्वजातयः इस जगह 'सजातयः' ऐसा पाठ कहते हैं।

दूतके शकुन।

वैद्याह्वानाय दूतस्य गच्छतो रोगिणः कृते ॥
न शुभं सौम्यशकुनं प्रदीप्तं च सुखावहम् ॥ ११ ॥

अर्थ-जिस समय दूत वैद्यके बुलानेको जाय उस समय रस्तेमे भेरी मृदगादिक सौम्य शकुन होय तो रोगीको शुभदायक नहीं होते अगार तैल कुलथी इत्यादिक प्रदीप्त (अशुभ) शकुन होतो शुभदायक है; अर्थात् अशुभ शकुन शुभ है और शुभ शकुन अशुभ होते है जैसे ज्योतिष शास्त्रमें लिखा है।

वैद्यके शकुन।

चिकित्सां रोगिणः कर्तुं गच्छतो भिषजः शुभम् ॥
यात्रायां सौम्यशकुनं प्रोक्तं दीप्तं न शोभनम् ॥ १२ ॥

---

१ छिंदतस्तृणकाष्ठानि स्पृशतो नासिकास्तनम्। वस्त्रातनामिकाकेशनखरोमदशास्पृशः। स्रोतोऽवरोध-हृद्‌डमूर्द्धोरःकुक्षिपाणय.। कपालोपलभस्मास्थितुषागारकराश्रये। विलिखन्तो महीं किंचित्काष्ठलोष्ठविभेदिनः। २ नपुंसकाः स्त्रीबहवो नैककार्या असूयकाः। पाशदंडायुधधराः प्राप्ता वा स्युः परंपराः। आर्द्रीजीर्णापसव्यैकमलिनोद्धतवाससः। न्यूनाधिकाङ्गा उद्विग्ना विकृता रौद्ररूपिणः। वैद्य य उपसर्पंति दूतास्ते चापि गर्हिताः। ३ यस्यां प्राणमरुद्याति सा नाडी जीवसंयुतेति। ४ याम्यां दिशि प्रांजलयो विषमैकपदेस्थिताः। वैद्यं य उपसर्पंति दूतास्ते चापि गर्हिताः। ५ वैद्यस्य पित्र्ये दैवे वा कार्ये चोत्पातदर्शने। मध्याह्ने चार्धरात्रे वा सन्ध्ययो. कृत्तिकासु च। आर्द्राश्लेषामघामूलपूर्वासु भरणीषु च। चतुर्थ्यां वा नवम्यां वा षष्ठ्या संधिदिनेषु च। दक्षिणाभिमुखे देशे त्वशुचौ वा हुताशनम्। ज्वलयंतं पचंतं वा क्रूरकर्मणि चोद्यते। नग्नं भूमौ शयानं वा वेगोत्सर्गेषु वा शुचिम्। प्रकीर्णकेशमभ्यक्तं स्विन्नविक्लवमेव च। वैद्य य उपसर्पंति दूतास्ते चापि गर्हिताः इति ॥

६ सौम्यशकुन-भेरी, मृदग, शंख, वीणा, वेदध्वनि, मंगलगीत, पुत्रान्वित स्त्री, बछरासहित गौ, धुलेहुए वस्त्र, ये सन्मुख आवे तो अनुत्तम जानना।

७ प्रदीप्तशकुन-कुलथी, तिल, कपास, तिनका, पाषाण, भस्म, अगार, तेल, काली सरसो, मुर्दा, ढाककी राख, इत्यादि जानने।

८ सद्यो रणे कर्मणि वा प्रवेशे क्षुभग्रहे नष्टविलोकने च। व्याधौ च नद्युत्तरणे भयार्ते ग्रस्तः प्रयाणादिपरीतभाग. ॥

अर्थ-रोगीको औषध करनेको जाननेवाले वैद्यको मार्गमे × साम्य शकुन शुभदायक हैं और दीप्त ÷ शकुन अच्छे नहीं।

निजप्रकृतिवर्णाभ्यां युक्तः सत्त्वेनसंयुतः ॥
चिकित्स्योभिषजारोगीवैद्यभक्तोजितेंद्रियः ॥ १३ ॥

अर्थ-जिस रोगीकी मूलप्रकृति पलटी न हो तथा देहका वर्ण* पलटा न हो, और सतोगुणी,

---

× मृगराजनवर्द्धमाननकुलावर्द्धकपश्चामिष शलक्षीरनृपनपूर्णकलशच्छत्राणिसिद्धार्थकाः। वीणाकेतनमीनगकजर्दावर्क्षाद्राज्यगोरोचनाकन्यारत्नसितेश्ववस्त्रसुमनाविप्राश्वरत्नानिच ॥

÷ गमनदक्षिणेवामान्नशस्तंश्वसृगालयोः। वामनकुलचाषाणांनोभयंशशसर्पयोः॥ भासकौशिकयोश्चाणां नप्रशस्तकिलोभयम्। दर्शनेचरुतचापि न सम्यक् कृकलासयो ॥ कुलत्थतिलकार्पासतुषपाषाणभस्मनाम्। पात्रनेष्टंतथांगारतैलकर्दमपूरितम्॥ प्रश्नेतरमद्यानापूर्णवारक्तसर्षपैः। शवकाष्ठपलाशानाशुष्का णांनयिसगमाः। नेष्यंतिपतितास्थीनादीनावरिपवल्तथा ॥

१ कोई आचार्य पांचतत्त्वकरके पाचभौतिकी प्रकृति कहतेहैं जैसे-पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश तत्त्वोंकरके जाननी। कोई२ सतोगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी तीन प्रकारकी प्रकृति कहते हैं। इसप्रकार प्रकृतियोंको कहकर अब वर्णको कहते हैं।

प्रकृति सात प्रकारकी है पृथक् २ दोषोंसे, दो दोषोंके मिलापसे और सन्निपातसे जैसे सुश्रुतमें लिखा है, 'शुक्रशोणितसंयोगाद्योभवेद्दोषउत्कट.। प्रकृतिर्जायतेतेनतस्यामेलक्षणंशृणु '

कोई प्रकृति अन्यउपाधियोंसेभी होतीहै। जैसे चरकमे लिखाहै कि जातिप्रसक्ता, कुलप्रसक्ता, देशानुपातिनी, कालानुपातिनी, वयोनुपातिनी, और प्रत्यात्मनियता प्रकृति तहां जातिप्रसक्ता प्रकृति जाति २ में पृथक् २ होतीहै जैसे सुनार, लोहार, दरजी, नाऊ, कुम्हार, आदिमे बोलना चाल चलना आदि। कुलप्रसक्ता प्रकृति जैसे-ब्राह्मणोंके कुलमे तपःप्रियता, क्षत्री कुलमें शूरवीरता आदि धर्म होतेहैं। देशानुपातिनीप्रकृति जैसे-कर्नाटक, पजाब, उडिया, आसाम, गुजरातके रहनेवालेके कायिक वाचिक मानसिक धर्म पृथक् २ हैं। कालानुपातिनी प्रकृति जैसे-समय २ मे देहादिकोंने दुर्बलता स्थूलता आदि और दोषोंका संचय कोप प्रशमादि पृथक् २ होते हैं। वयोनुपातिनीप्रकृति जैसे-बाल्यअवस्था, यौवनअवस्था और वृद्धावस्थादिकके धर्म पृथक् २ होते हैं। और सातवीं प्रत्यात्मनियता प्रकृति है-जैसे प्रत्येक मनुष्यके रहती हैं वो सब प्रकृतियां कायिक, वाचिक, और मानसिकस्वभावविशेष करके पृथक् २ हैं।

* तहां वर्णशब्दकरके प्रभा जानना, उसीको छाया भी कहते हैं। परंतु कोई आचार्य प्रभा और छायामें भेद मानतेहैं जैसे-

-" वर्णप्रभामिश्रितायाछायासापरिकीर्तिता। वर्णमाक्रामतिच्छायाप्रभा वर्णप्रकाशिनी। आसन्नालक्ष्यतेछायाप्रभादूराचलक्ष्यते "

वैद्यका आज्ञाकारी तथा इन्द्रियोका जीतनेवाला ऐसा रोगी होय तो उसकी वैद्य चिकित्सा करे अर्थात् औषधी देवे ।

तहां दुष्ट स्वप्न ।

स्वप्नेषुनग्नान्मुंडांश्चरक्तकृष्णांबरावृतान् ॥ व्यंगांश्चविकृतान्कृष्णान्सपाशान्सायुधानपि ॥१४॥ बध्नतोनिघ्नतश्चापिदक्षिणां दिशमाश्रितान् ॥ महिषोष्ट्रखरारूढान्स्त्रीपुंसोयस्तुपश्यति । सस्वस्थोलभतेव्याधिंरोगीयात्येवपंचताम् ॥ १५ ॥

अर्थ--स्वप्नमे नगे, सन्यासी, अथवा साई इत्यादि मुडे हुये, लाल, काले वस्त्रोंको पहने हुए नाक कान कटेहुए, पांगुर कुबडे खजे, काले, हाथोंमें फास तलवार भाला बरछी इत्यादिक धारण करे हुए, बान्धते मारते हुए, दक्षिण दिशामें स्थित, भैंसा, ऊंट, गधा इनपर चढे हुए, पुरुष किंवा स्त्रियोंको देखे तो रोगरहित मनुष्य रोगी होवे; और रोगी मनुष्य देखे तो मरणको प्राप्तहो ।

अधोयोनिपतत्युच्चाज्जलेग्नौवाविलीयते ॥ श्वापदैर्हन्यतेयोपि मत्स्याद्यैर्गिलितोभवेत् ॥ १६ ॥ यस्यनेत्रेविलीयेतदीपो निर्वाणतांव्रजेत् ॥ तैलंसुरांपिबेद्वापिलोहंवालभतेतिलान् ॥ १७ ॥ पक्वान्नंलभतेऽश्नातिविशेत्कूपरसातलम् ॥ सस्वस्थो लभतेव्याधिंरोगीयात्येवपंचताम् ॥ १८ ॥

अर्थ–जो मनुष्य स्वप्नमें अपनेको पर्वत अथवा वृक्ष इत्यादि उच्चस्थानसे गिरताहुआ देखे तथा जलमे डूबजावे, अग्निमें गिरजावे, कुत्तेने काटाहो, अथवा अपने कुटुंबके नाश करके पीडितहो, मछली आदि जिसको निगल जावे (आदिशब्दसे, मगर, सूस, फीट आदि निगल जावे), स्वप्नमे नेत्र जाते रहैं, जलता दीपक बुझ जावे, तेल

इस वर्णमें प्रभा छायाका केवल लक्षणभेदही नहीं है किंतु संख्यामेभी भेद है । जैसे–गौर, कृष्ण, श्याम, और गौरश्याम, ऐसे वर्ण चार प्रकारके हैं । प्रभाके सात भेद हैं–रक्त, पीत, असित, श्याम, हरित, पाडुर और असित, छायाके पांच भेद हैं–स्निग्ध, विमल, रूक्ष, मलिन और संक्षिप्त । दुःख सहनशीलताको सत्त्व कहते हैं जैसे लिखा है–

'सत्त्ववान्सहतेसर्वंसस्तम्यात्मानमात्मना । राजसः स्तंभमानोन्यै. सहतेनैवतामसः ॥'

तहा प्रवर और मध्यमके भेदसे सत्त्वके तीन भेद हैं । इन सबके लक्षणयहापर ग्रंथ बढनेके भयसे नहीं लिखे सो ग्रंथान्तरसे जानलेना ।

१ आढ्योरोगीभिषग्वश्योज्ञापकः सत्त्ववानपीति ।

२ लौहम् इति पाठान्तरम् । ३ जननींप्रविशेद्वाः इतिपाठांतरम् ।

सुराको पीवे, लोह (सुवर्ण, तांबा, रांगा, शीशा, लोहा आदि) का ग्रहणसे कपास खल-त्वचा आदिको प्राप्तहो और तिलमिले, एवं पक्वान्न (पूडी कचौडी लड्डू) प्राप्तहों अथवा पक्वान्नका भोजन करे (तथा माताके घरमें, माताके उदरमें, अथवा माताकी गोदमें माताके साथ शयन करे) जो कुएमें अथवा पातालमें प्रवेश करे तो रोगरहित मनुष्य रोगीहो और रोगी मनुष्य मरे।

दुःस्वप्नका परिहार।

दुःस्वप्नानेवमादींश्चदृष्ट्वाब्रूयान्नकस्यचित् ॥ स्नानंकुर्यादुषस्येवदद्याद्धेमतिलानथ ॥ १९ ॥ पठेत्स्तोत्राणिदेवानांरात्रौदेवालयेवसेत् ॥ कृत्वैवंत्रिदिनंमर्त्योदुःस्वप्नात्परिमुच्यते ॥ २० ॥

अर्थ—पूर्वोक्तकहेहुए (नग्नमुंडितादिक) खोटे स्वप्नोंको देखकर किसीसे न कहे। प्रातःकाल उठ स्नानकर काले तिल, और सुवर्णका दानकरे और दुष्ट स्वप्ननाशक (विष्णुसहस्रनाम गजेन्द्रमोक्षादि) देवस्तोत्रोंका पाठकरे। इसप्रकार दिनमें कृत्यकर रात्रिमें देवमंदिरमें रहकर जागरणकरे। इसप्रकार तीनदिन करनेसे यह मनुष्य दुष्टस्वप्न (खोटेसपने) के दोषसे छुटजाताहै।

अथ शुभस्वप्न।

स्वप्नेषुयःसुरान्भूपाञ्जीवतःसुहृदोद्विजान् ॥
गोसमिद्धाग्नितीर्थानिपश्येत्सुखमवाप्नुयात् ॥ २१ ॥

अर्थ—जो मनुष्य स्वप्नमें इन्द्रादिक देवता, राजा महाराजा, जीवतेहुए मित्र, कुटुंबके लोग और ब्राह्मण, गौ, देदीप्यमान अग्नि मथुरा प्रयागादितीर्थ इत्यादिकोंको देखे अथवा तीर्थ कहिये गुरु-आचार्य आदिको देखे तो सुखको प्राप्तहो।

तीर्त्वाकलुषनीराणिजित्वाशत्रुगणानपि ॥
आरुह्यसौधगोशैलकरिवाहान्सुखीभवेत् ॥ २२ ॥

अर्थ—जो मनुष्य स्वप्नमें कीचके पानियोंको (आदिशब्दसे नदी नद समुद्रको) तरे अर्थात् पारहोवे, तथा शत्रुओंको जीतके आवे, और सफेद घर, बैल, पर्वत और हाथी, घोडा, इनपर आपको चढाहुआ देखे तो उसको सुखकी प्राप्तिहो।

शुभ्रपुष्पाणि वासांसि मांसं मत्स्यान् फलानि च
प्राप्तातुरः सुखी भूयात्स्वस्थो धनमवाप्नुयात् ॥ ॥ २३ ॥

१ धान्यादिकोंको पीस सिद्ध कीहुई जो सुरा (कहिये मद्य) उसको स्वप्नमें पीवे तो अशुभ है और इससे व्यतिरिक्त अर्थात् अन्यप्रकारकी दारू पीवे तो शुभ है। जैसे लिखा है—
"रुधिरपिबतिस्वप्नेमद्यंवाग्निकप्रचन। ब्राह्मणोलभतेविद्यामितरस्तुधनलभेत्"

अर्थ-जो मनुष्य सफेद पुष्प, सफेद वस्त्र, कच्चा माछ, मछली और आम्र आदि फलोंको स्वप्नमें देखे वह रोगी रोगरहित हो और रोगहीन देखे तो उसको धनकी प्राप्तिहो ।

अगम्यागमनंलेपोविष्ठयारुदितंमृतिम् ॥
आममांसाशनंस्वप्नेधनारोग्यातयेविदुः ॥ २४ ॥

अर्थ-जो मनुष्य स्वप्नमे अगम्यास्त्री (रजस्वला, बहिन, बेटी, गुरुस्त्री आदि) से गमन-करे, अथवा अगम्यस्थानमे जाय, तथा विष्ठासे अपनीदेह लिपीहुई देखे, तथा आपको अथवा अन्यको रुदन करता अथवा मराहुआ देखे, तथा कच्चेमांसको भक्षण करता देखे तो रोग-युक्त निरोगी हो और अरोगीमनुष्यको धनकी प्राप्तिहोवे ।

जलौकाभ्रमरीसर्पोमक्षिकावापियंदशेत् ॥
रोगीसभूयादारोग्यः स्वस्थोधनमवाप्नुयात् ॥ २५ ॥

अर्थ-जिस मनुष्यको सपनेमें जोख, भँवरी, सर्प और मक्खी काटे, वा शब्दसे वरें, ततैया, मच्छर आदि डसे तो रोगी रोगरहित हो और स्वस्थ मनुष्यको धनकी प्राप्ति होवे ।

इति श्रीआयुर्वेदोद्धारसंपादकमाथुरदत्तरामप्रणीतशार्ङ्गधरभाषाटीकाया नाडीपरीक्षादिविधिर्नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

प्रथम यह लिख आएहैं कि "ततो दीपनपाचन" अतएव दीपनपाचनाध्यायको कहतेहैं ।

दीपनपाचन औषध ।

पचेन्नामंवह्निकृच्चदीपनं तद्यथामिशिः ॥ पचत्यामंनवह्निं च कुर्या-द्यत्तद्धि पाचनम् ॥ नागकेशरवद्विद्याच्चित्रोदीपनपाचनः ॥ १ ॥

अर्थ-जो औषध आमको न पचावे और अग्निको प्रदीप्त करे उसको दीपनसंज्ञक जानना । जैसे सौंफ । और जो औषध आमको पचावे और अग्निको प्रदीप्त न करे उसको 'पाचन' संज्ञक

---

१ द्रव्यगुणावल्या-'शतपुष्पालघुस्तीक्ष्णापित्तकृद्दीपनीकटु.' । कदाचित् कोई प्रश्न करे कि जब सौंफ दीपनी है फिर आमको क्यों नही पचाती और विना आमके पचे अग्नि कदाचित् दीप्त नहीं होती । तहां कहते हैं कि द्रव्योके प्रभाव अचिंत्य हैं यह सुश्रुतमे लिखा है । इन हेतुनसे विचारनेमे नही आते । जैसे "नौषधिर्हेतुभिर्विद्वान्परीक्षेत्कथचन । सहस्राणां च हेतूनानांवष्ठादिर्विरेचयेत्" इत्यादि ।
२ 'जठरानलदौर्बल्यादविपक्वस्तुयोरसः । सआमसंज्ञकोज्ञेयःसर्वदोषप्रकोपनः' ॥

कहते हैं जैसे नागकेशर। और जो अग्निको प्रदीप्त करे और आमकोभी पचावे उस औषधको 'दीपनपाचन' कहते हैं जैसे चित्रक।

संशमनऔषध।

नशोधयतिनद्वेष्टिसमान्दोषांस्तथोद्धतान्॥
शमीकरोति विषमाञ्छमनं तद्यथामृता॥२॥

अर्थ—जो औषध वातादिदोष समान हों उनको बिगाडे नहीं और न शोधन करे तथा बिगडेहुए दोषोंमें मिलकर समान दशामें प्राप्तकरे, तात्पर्य यह है कि जो कुछ इस प्राणीने खायापियाहै उसको विना निकाले अर्थात् न वमन करावे न दस्त करावे किंतु जो दोष हो उसमें मिलकर उसी जगह उसको शमन करदेवे, उसको 'शमन' संज्ञक कहते हैं। इस जगह दोषशब्द दोषोंमें और उन दोषोंके कार्यमेंभी कार्यकारणके उपचारसे लेना चाहिये। उदाहरण—जैसे गिलोय।

अनुलोमन औषध।

कृत्वापाकंमलानांयद्भित्त्वाबंधमधोनयेत्॥
तच्चानुलोमनंज्ञेयं यथाप्रोक्ताहरीतकी॥३॥

अर्थ—जो औषध मल कहिये वातादिदोषोंके पाक अर्थात् कोपको शांतिकरके परस्पर बद्ध अथवा अबद्धोंको पृथक् २ कर नीचेको गिरावे, अथवा वात मूत्र पुरीषादिकोंका बंध अर्थात् बद्धकोष्ठको स्वच्छकरके मलादिकोंको अधोभागमें प्राप्तकर गुदाद्वारा निकाले उस औषधको 'अनुलोमन' जानना। उदाहरण जैसे हरड।

स्रंसन औषध।

पक्तव्यंयदपक्त्वैवश्लिष्टं कोष्ठेमलादिकम्॥
नयत्यधःस्रंसनंतद्यथा स्यात्कृतमालकः॥४॥

अर्थ—पश्चात् पाक होने योग्य जो वातादिक दोष उनके कोष्ठाश्रित होनेसे जो औषध उनको विनाही पाककरें नीचेके भागमें लाकर गुदाके द्वारा निकाले उसको 'स्रंसन' संज्ञक औषधि कहते हैं। उदाहरण जैसे अमलतासका गूदा।

---

१ नागकेशरकल्कमुर्ण लघ्वामपाचनामिति। २ चित्रक·कटुकःपाकेवह्निकृत्पाचनोलघुः।

※ नशोधयतियद्दोषान्समान्नोदीरयत्यपि। समीकरोतिकुद्धांश्चतत्संशमनमुच्यते। इति पाठांतरम्।

३ रसायनीसंग्रमनीदोषाणांज्वरनाशिनी। गुडूचीकटुकालघ्वीतिक्ताग्निदीपनीतिच।

४ आदि शब्दकरके मलमूत्रादिक जानने। ५ पाचकस्थानके आश्रय करके कोई कोष्ठशब्द करके हृदयादिकोंकाभी ग्रहण करते हैं जैसे "स्थानान्यामाग्निपक्वानामूत्रस्यरुधिरस्यच। हृदुंडुफुप्फुसानांचकोष्ठ मित्यभिधीयते"।

भेदन औषध ।

मलादिकमबद्धं वा बद्धं वा पिंडितं मलैः ॥
भित्त्वाधःपातयतितद्भेदनं कटुकीयथा ॥ ५ ॥

अर्थ–जो औषध वातादिदोषोंकरके बंधेहुए अथवा विना बंधेहुए गाठके समान मलमूत्रादिकोंको तोड फोडकर नीचेके भागमे लायके गुदाके द्वारा निकाले उसको 'भेदन' संज्ञक कहते है । जैसे कुटकी ।

रेचनऔषध ।

विपक्वं यदपक्वं वा मलादि द्रवतां नयेत् ॥
रेचयत्यपि तज्ज्ञेयं रेचनं त्रिवृता यथा ॥ ६ ॥

अर्थ–जो औषध पेटके अन्नादिकोंका उत्तम पाक होनेपर अथवा कुछ कच्चे रहनेपर उन अन्नादिकोंको तथा वातादिमलोंको पतला करके अधोभागमे लाय गुदाद्वारा दस्त करावे उसको 'रेचन' संज्ञक कहते हैं. जैसे निसोथ । रेचकमात्र द्रव्योमे पृथ्वीतत्व और जलतत्वके गुरुत्वादि गुण अधिक होनेसे नीचेको जाती है अतएव दस्त कराते है । गुरुत्व शब्द करके इस जगह प्रभाव विशेष जानना अन्यथा मत्स्य मसूर पिष्टान्नादिकोंको विरेचकत्व आवेगा ।

वमन औषध ।

अपक्वपित्तश्लेष्माणौबलादूर्द्ध्वंनयेत्तुयत् ॥
वमनंतद्धिविज्ञेयं मदनस्यफलंयथा ॥ ७ ॥

अर्थ–जो औषध पक्वदशाको नही प्राप्तहुए ऐसे पित्त और कफको बलात्कार करके मुखके द्वारा निकाले (रद्दकरावे) उसे 'वमन' संज्ञक जानना । उदाहरण जैसे मैनफल । सपूर्ण वमनकारी द्रव्योंमे पवन और अग्निके गुण लघुत्वादि अधिक होनेके कारण ऊपरको जाते हैं अतएव रद्द होती हैं । इस जगहभी लघुत्वादि करके प्रभाव विशेष जानना अन्यथा तीतर–खील आदिको वमनत्व आवेगा । कोई प्रश्न करे कि कफको वमन और पित्तको विरेचनद्वारा निकाले ऐसा शास्त्रमे लिखा है, फिर इस जगह पित्तको वमन द्वारा निकालना कैसे कहा ? तहां कहते हैं कि अपक्व पित्तको वमनद्वाराही निकालना

---

१ शुष्क और गाठदार । २ मलशब्दसे इसजगह दोषोंका ग्रहण है । आदि शब्दसे रूक्ष दूषितादिकोंकाभी ग्रहण है । ३ आदिशब्दकरके दूष्य और दूषितादिकोंका ग्रहण है । ४ मदनस्य फलं बलादीति पाठांतरम् ।

चाहिये. जैसे लिखा है कि कटुतिक्त और अम्लोको वमन करके निकाले देखो दग्धपित्त अम्लताको प्राप्त होता है अतएव अम्लपित्तकी चिकित्सामें प्रथम वमन कराना लिखा है!

संशोधन औषध।

स्थानाद्बहिर्नयेदूर्ध्वमधोवामलसंचयम् ॥
देहसंशोधनंतत्स्याद्देवदालीफलंयथा ॥ ८ ॥

अर्थ–जो औषध स्वस्थानमें संचित मलो (वातादिकों) को ऊपरके भागमे लायकर (मुखे--नासिका) द्वारा बाहर निकाले, अथवा उस सचयको अवो अधो भागमे लायकर (गुदा--लिंग--भग) द्वारा बाहर निकाले, उसको 'सशोधन' जानना। उदाहरण जैसे देव-दालीका फल. जिसको बंदाल और बवरबेलभी कहते हैं। देहके कहनेसे फस्त खोलनाभी शोधनमें लिया है।

छेदन औषध।

श्लिष्टान्कफादिकान्दोषानुन्मूलयतियद्बलात् ॥
छेदनंतद्यवक्षारो मरिचानिशिलाजतु ॥ ९ ॥

अर्थ–जो औषध परस्पर एकसे एक मिले हुए कफादि दोषोंको अपनी शक्ति करके फोडकर पृथक् २ करदेवे उसको 'छेदन' औषध कहते है। उदाहरण जैसे जवाखार, कालीमिरच, और शिलाजीत (मरिचानि) इस बहुवचनसे लाल मिरचभी छेदनकर्त्ता जाननी। उन वातादि क्रम त्यागकर इस जगह श्लोकमें कफादि क्रम क्यों कहा उत्तर देहको ऊर्ध्वमूलत्व अधःशाखत्व है इस कारण कफक्रम रक्खा है।

लेखन औषध।

धातून्मलान्वादेहस्य विशोष्योल्लेखयेच्चयत् ॥

---

१ मुखसे रद्दके द्वारा और नाकमें नास देनेसे वमन और नासके साथ वो दोष निकलते हैं।

२ शोधन बाह्य और अभ्यंतरके भेदसे दोप्रकारका है। तहा बहिराश्रय जैसे शस्त्र क्षार अग्नि प्रलेपादि। और अभ्यंतराश्रय चार प्रकारका है जैसे वमन विरेचन आस्थापन और शोणितावसेचन। कोई शोणिताव-सेचनकी जगह शिरोविरेचन कहते हैं परन्तु उसे वमनके अन्तर्गत जानना, क्योंकि ऊर्ध्वशोधक है।

३ कोई परस्पर गठे हुए ऐसा कहता है और कोई 'श्लिष्ट' का अर्थ अत्यन्त कुपित ऐसा कहता है। और आदि शब्द करके वात पित्त रुधिर और कृमि इनकाभी दोष शब्द करके ग्रहण है जैसे सुश्रुतमे लिखा है "नतद्देहः कफादस्तिनपित्तान्नचमारुतात्। शोणितादपिवानित्यदेह एतैस्तुधार्यते" और कृमिको दोषत्व गुग्गुलुकल्पमे लिखा है यथा "पंचादिदोषान्समये" इत्यादि यहां पचदोष करके वात. पित्त, कफ, रुधिर और कृमियोंका ग्रहण है।

लेखनंतद्यथाक्षौद्रंनीरमुष्णंवचायवाः ॥ १० ॥

अर्थ–जो औषधी रसादिधातु और वातादिदोष इनको सुखायके देहसे बाहर निकाल देवे उसको 'लेखन' औषधि कहते हैं। उदाहरण जैसे–सहत, गरमजल, वच और जो (मलान् वा) इसमें ग जो पडा है उसे मनके दोष पृथक् करनेको जानना। क्योंकि मनके दोषोंकी चिकित्सा दूसरी है। प्रश्न–मनके दोष कौनसे हैं? उत्तर–"रजस्तमश्च मनसो द्वौ च दोषावुदाहृतौ" इत्यादि–अर्थात् रजोगुण और तमोगुण ये दो मनको बिगाडनेवाले दोष हैं।

ग्राही औषध।

दीपनं पाचनं यत्स्यादुष्णत्वाद्द्रवशोषकम् ॥
ग्राहि तच्च यथा शुंठी जीरकं गजपिप्पली ॥ ११ ॥

अर्थ–जो औषध अग्नि प्रदीप्त करे और आमादिकोंका पाचन करे तथा उष्णवीर्य होनेसे जलस्वरूप जो कफादि दोष, धातु और मल इनका शोषण करे उसको 'ग्राही' कहते हैं उदाहरण जैसे सोंठ, जीरा और गजपीपल।

स्तंभन औषध।

रौक्ष्याच्छैत्यात्कषायत्वाल्लघुपाकाच्चयद्भवेत् ॥
वातकृत्स्तंभनंतत्स्याद्यथावत्सकटुंटुकौ ॥ १२ ॥

अर्थ–जो औषधी रूक्ष गुणकरके, शीतवीर्य करके, कषैले रसकरके युक्त होनेसे एवं पाककरके हलकी होवे; ऐसे प्रकारकी जो औषध वो वादीको उत्पन्न करे है। अतएव उस औषधको 'स्तंभन' जाननी। उदाहरण जैसे–कुडा और स्योनाक (टैंटु)

रसायन औषध।

रसायनंचतज्ज्ञेयंयज्जराव्याधिनाशनम् ॥
यथामृतारुदंतीचगुग्गुलुश्चहरीतकी ॥ १३ ॥

अर्थ–जो औषध देहकी वृद्धावस्था और ज्वरादि रोगोंका नाश करे उसको रसा-

---

१ नीरकोष्णवचायवाः इति पाठान्तरम् अयपाठः कपोलकल्पनया केनापिलिखितः।

२ प्रश्न–वच संग्राही नहीं हो सक्ती क्योंकि अनिलगुणभूयिष्ठ है और अनिल है सो शोषण करता है। उत्तर–संग्राही औषध पक्व और आमग्रहण करनेसे दो प्रकारकी है. तहां जो संग्रहणीमें आमको पचायके अग्नि प्रज्वलितकर उसी ग्रहणीमें स्थित द्रवताको सुखायके स्तंभन करे उसे उष्णग्राहक जाननी। और जो औषध अतिसारादिकोंमे पक्वमलादिकोंको स्तंभन करे उसका संग्रह कर उसे शीतग्राहक जाननी। ये दो अनिलगुणभूयिष्ट हैं परन्तु फिरभी संग्राहित्वमें दोषता नहीं आती। ३ धीधैर्यात्मादिविज्ञानं मनोदोषौषधपरम्।

न जानना । उदाहरण जैसे—गिलोय, रुदंती (शाकका भेद, पश्चिममें बहुत विख्यात है) गूगल और हरड । प्रश्न—व्याधिके कहनेसेही वृद्धावस्थाका ग्रहण होगया फिर पृथक् क्यों कही ? उत्तर—जराशब्द करके इस जगह स्वाभाविकी वृद्धावस्थाका ग्रहण है क्योंकि सत्तरवर्षके उपरांत स्वाभाविक वृद्धावस्था कहलाती है । जो रसादिधातुओंका अयन अर्थात् पोषणकारी होय उसको 'रसायन' कहते हैं.

वाजीकरण औषध ।

यस्माद्द्रव्याद्भवेत्स्त्रीषुहर्षोवाजीकरंचतत् ॥
यथानागबलाद्यास्तुबीजंचकपिकच्छुजम् ॥ १४ ॥

अर्थ—जो औषध धातुको बढायकर स्त्रियोंमें हर्षयुक्त शक्तिको करे अर्थात् मैथुन शक्तिको बढावे उसको वाजीकरण जानना । उदाहरण जैसे नागबला (खरेटी) (आदि शब्दसे जायफल, शतावर, दूध, मिश्री, इत्यादिक) और कौंचके बीज वाजीकरण दो प्रकारका है एक वीर्यस्तंभकर्ता दूसरा वीर्यवृद्धिकारी ।

धातुवृद्धिकारी औषध ।

यस्माच्छुक्रस्यवृद्धिः स्याच्छुक्रलंचतदुच्यते ॥
यथाश्वगंधामुशलीशर्कराचशतावरी ॥ १५ ॥

अर्थ—जिस औषधसे धातुकी वृद्धि हो उस औषधको शुक्रल जानना । उदाहरण जैसे—असगंध, मुसली, मिश्री, शतावर इत्यादि ।

धातुको चैतन्यकर्ता तथा वृद्धिकारी औषध ।

दुग्धं माषाश्च भल्लातफलमज्जामलानि च ॥
प्रवर्तकानि कथ्यंते जनकानि च रेतसः ॥ १६ ॥

अर्थ—शुक्रधातुको चैतन्य करनेवाली तथा उत्पन्नकारी ऐसी औषध दूध, उडद, भिलावेके फलकी गिरी और आमले इत्यादिक जानना ।

वाजीकरण औषधविशेष ।

प्रवर्तनं स्त्रीशुक्रस्य रेचनं बृहतीफलम् ॥
जातीफलं स्तंभकं च शोषणी च हरीतकी ॥ १७ ॥

अर्थ—स्त्री वीर्यकी प्रगट करनेवाली है. और बडी कटेरीका फल शुक्रका रेचन कर्ता है. एवं जायफल वीर्यका स्तंभक है. और हरड शुक्रको सुखानेवाली है. कोई प्रथम पदका यह अर्थ करते हैं कि कटेरीका फल स्त्रीके वीर्यको प्रवर्तन और रेचन कर्ता है । पर यह अर्थ श्रेष्ठ नहीं ।

१ कालिङ्गं क्षयकारीच इति पाठान्तरम् ।

× स्त्रीस्मरणकीर्तनदर्शनसंभाषणस्पर्शनचुम्बनालिंगनादिभिः शुक्रस्य प्रवर्तनं (इति. भाव प्र.)

सूक्ष्म औषध ।

देहस्य सूक्ष्मच्छिद्रेषु विशेद्यत्सूक्ष्ममुच्यते ॥
तद्यथासैंधवं क्षौद्रं निंबस्तैलं रुवूद्भवम् ॥ १८ ॥

अर्थ–जो औषध देहके सूक्ष्म छिद्र (रोमकूपों) में प्रवेश करे उसको सूक्ष्म औषधि कहते हैं. उदाहरण. जैसे–सैंधानिमक, सहत, नीम, और अंडीका तेल (अथवा नीमका तेल और अंडीका तेल ।)

व्यवायि औषध ।

पूर्वंव्याप्याखिलं कायं ततः पाकं च[१] गच्छति ॥
व्यवायि तद्यथा भंगा फेनं चाहिसमुद्भवम् ॥ १९ ॥

अर्थ–जो औषध अपक्व हो सकल देहमे व्याप्तहो फिर मद्य विषके समान पाकको प्राप्त होय. उस औषधको 'व्यवायि' जानना । उदाहरण जैसे भाग और अफीम ।

विकाशी औषध ।

संधिबंधांस्तुशिथिलान्यत्करोति विकाशितत् ॥
विश्लेष्यौ[२]जश्चधातुभ्यो यथाक्रमुककोद्रवाः ॥ २० ॥

अर्थ–जो औषध सर्व अगोकी सन्धियोंके बधनोंको शिथिलकरे और रसादि धातुसे उत्पन्न हुआ जो ओज[३] (अर्थात् सर्व धातुओंका तेज) उसको धातुओमेसे शोषण करे उस औषधको 'विकाशी' जानना उदाहरण जैसे–सुपारी और कोदो धान्य चकारसे अपक्वही उक्त कर्मोंको करे ऐसा जानना ।

मदकारी औषध ।

बुद्धिं लुंपति यद्द्रव्यं मदकारि तदुच्यते ॥
तमोगुणप्रधानं च यथा मद्यं सुरादिकम् ॥ २१ ॥

अर्थ–जो पदार्थ बुद्धिका लोप करे उसको मदकारी कहते हैं यह तमोगुण प्रधान है उदाहरण–जैसे सुरादिक, मद्य, दारू ।

बुद्धिशब्द मेधा, धृति, स्मृति, मति और प्रतिपत्तिआदिवाचक है. प्रसंगवश इनके लक्षणोंको कहते हैं. ग्रन्थधारणाशक्तिको 'मेधा' कहते हैं । सतुष्टताको 'धृति'

---

१ ततो भावय कल्पते इति पाठान्तरम् । पुनर्भाव स विद्राति इति वा पाठान्तरम् । २ 'विशोष्यौ' इति पा० ।

३ रसादीनां शुक्रान्तानां यत्पर तेजस्तत् बल्योजस्तदेवबलमुच्यते यतः "देहः सावयवस्तेन व्याप्तो भवति देहिनामिति–" तात्पर्यार्थ यह है कि कोई कहता है कि संधिप्रभृतियोंके शिथिल होनेसे श्रम उत्पन्न होता है और उस कामसे ओज क्षीण होताहै । जैसे लिखा है–"अभिघातात्क्षयात्कोपाद्ध्यानाच्छोकाच्छ्रमात्क्षुधः । ओजः सक्षीयते ह्येभ्यो धातुग्रहणमिश्रितम्" ।

कहते हैं कोई नियमात्मिका बुद्धिको 'धृति' कहते हैं। बीतीहुई वार्त्ताके याद रहनेको 'स्मरण' कहते हैं कोई अर्थधारणशक्तिको 'स्मरण' कहते हैं। बिना जानी वस्तुके ज्ञानको' मति ' कहते हैं कोई २ त्रिकालज्ञानको मति कहते हैं और अर्थावबोधप्राकट्यको ' प्रतिपत्ति ' कहते हैं। (सुरादिकं) इस पदमें आदि शब्दकरके सम्पूर्ण मदकारी वस्तु जाननी । प्रश्न–मद्य तो बुद्धि, स्मृति; वाणी और चेष्टा कर्त्ता लिखाहै यथा " बुद्धिस्मृतिप्रीतिकरः सुखश्च पानान्न निद्रारतिवर्द्धनश्च । संपाठगीतस्वरवर्द्धनश्च प्रोक्तोतिरम्यः प्रथमो मदोहि " ॥ फिर इस जगह मदकारी द्रव्योंको बुद्धिलोपकर्त्ता कैसे लिखा है ? उत्तर–मदकी चार पानावस्थाहैं, तहाँ प्रथम मदपान बुद्ध्यादिकका लोपकरता है. शेष बुद्ध्यादिकके लोपकर्ता है अतएव शार्ङ्गधरने लिखाहैं।

प्राणहारक औषध।

व्यवायि च विकाशि स्यात्सूक्ष्मं छेदि मदावहम् ॥
आग्नेयं जीवितहरंयोगवाहि स्मृतं विषम् ॥ २२ ॥

अर्थ–पूर्व कही हुई जो व्यवायि, विकाशि, सूक्ष्म, छेदि, मदकारी और आग्नेय और प्राण हरनेवाला तथा योगवाही (गरमके सग अतिगरम और शीतद्रव्यके सग अतिशीतल हो) उसे विष कहते हैं. कोई आचार्य श्लोकमे " योगवाह्यमृतं विष " ऐसाभी पाठ कहते हैं उसका अर्थ यह है कि वह विष योगवाही कहिये किसी संस्कार विशेष करके जिस २ अनुपानके साथ देवे उसी अनुपानके गुणोंको बढायके अमृतके तुल्य गुण करै।

प्रमाथी औषध।

निजवीर्येण यद्द्रव्यं स्रोतोभ्यो दोषसंचयम् ॥
निरस्यति प्रमाथि स्यात्तद्यथा मरिचं वचा ॥ २३ ॥

अर्थ–जो द्रव्य अपनी शक्तिसे कान, मुख, नासिका आदि छिद्रोंसे तथा अन्य छिद्रोंसे कफादि दोष संचयको (और व्याधिसंचयको) निकाले उसको प्रमाथि कहते हैं उदाहरण जैसे वच, कालीमिरच, (तथा लाल मिरच ।)

अभिष्यन्दि लक्षण।

पैच्छिल्याद्गौरवाद्द्रव्यं रुद्ध्वा रसवहाः शिराः ॥
धत्ते यद्गौरवं तस्मादभिष्यन्दि यथा दधि ॥ २४ ॥

अर्थ–जो द्रव्य अपने पिच्छल गुणकरके भारीपनेसे रसवाहिनी २४ शिराओंको रोक कर शरीरको भारीकरे उस पदार्थको अभिष्यन्दि कहिये स्रोतःस्रावी जानना उदाहरण जैसे–दही ।

इति श्रीशार्ङ्गधरभाषाटीकायां दीपनपाचनादिर्नामविधिचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पंचमोऽध्यायः।

प्रथम यह लिख आये हैं कि "ततः कलादिकाख्यानं" अतएव कलादिकोंको कहते है।

कलाः सप्ताशयाः सप्तधातवः सप्ततन्मलाः ॥ सप्तोपधातवः सप्त त्वचः सप्त प्रकीर्त्तिताः॥१॥ त्रयोदोषानवशतंस्नायूनांसंधयस्तथा ॥ दशाधिकं च द्विशतमस्थ्नां च त्रिशतं तथा ॥२॥ सप्तोत्तरंमर्मशतंशिराः सप्तशतंतथा ॥ चतुर्विंशतिराख्याता धमन्यो रसवाहिकाः ॥ ३ ॥ मांसपेश्याः समाख्याता-नृणांपंचशतंबुधैः ॥ स्त्रीणांचविंशत्यधिकाः कंडराश्चैव षोडश ॥ ४ ॥ नृदेहेदशरंध्राणिनारीदेहे त्रयोदश ॥ एतत्समासतः प्रोक्तं विस्तरेणाधुनोच्यते ॥ ५ ॥

अर्थ–शरीरमे रसादि धातुओंके जो स्थान हैं उनकी मर्यादाभूत ऐसी सात कलां हैं। कोष्टमें सात आशय कहिये स्थान हैं। रस, रुधिर, मास, मेदा, अस्थि (हड्डी) मज्जा और शुक्र ये सप्त धातु हैं, तथा उन धातुओंके सात मल हैं। धातुओंके समीप रहनेवाले ऐसे सात उपधातु हैं। शरीरमें सात त्वचा हैं। वात, पित्त, और कफ ये तीन दोष हैं। शरीरमें डोरीके समान और वेलके समान ९०० बंधन हैं उनको स्नायु कहते हैं। दोसौ दश संधि हैं। श्लोकमें जो चकार हैं इससे संधि दोसौ दशसे अधिक जानना। शरीरके आधारभूत और बलकारी ३०० हड्डी हैं जीवके आधारभूत ऐसे १०७ मर्मस्थान हैं। दोष और धातु तथा जलके वहानेवाली ७०० शिरांहै। चकारसे कुछ अधिक भी है ऐसा जानना। रस वहानेवाली २४ (धमनी) नाडी है, और पुरुषके देहमे मासपेशी अर्थात् मासके लंबे २ टुकडे पाचसौ हैं।

---

१ धात्वाशयांतरैस्तस्य यत्क्लेदस्त्वधितिष्ठति। देहोष्मणाविपक्वोय साकलेत्यभिधीयते।

२ आशयः स्थानानि तानि कोष्ठशब्देनोपलक्षितानि तथाच–स्थानानामग्निपक्वानांमूत्रस्य रुधिरस्यच। हृद्दुकः फुप्फुसश्चकोष्ठमित्यभिधीयते। ३ बडीबडीजड और बारीक २ अग्रभाग ऐसी शिरा जितने देहमे रोम हैं इतनी हैं जैसे लिखा है–तावन्ति नाड्यो देहे यावन्त्योरोमकूट्यः। स्थूलमूलाश्च सूक्ष्माग्राः पत्ररेखाप्रतानवत्। ४ धमनी नाडी शिरा इनके कार्य पृथक् २ हैं अतएव इनके नामभी पृथक् २ हैं वास्तविक ये सब एकही हैं। ५ वो मांसके टुकडे किसी आचार्योंके मतसे चौकोन हैं. जैसे लिखाहै "चतुरस्रा भवेत्पेशी"।

तथा स्त्रियोंके २० अधिक हैं। कंडरा कहिये बडे स्नायु सोलह हैं। पुरुषोंके देहमें दश रंध्र कहिये छिद्र हैं और स्त्रियोंके तीन छिद्र अधिक हैं, अर्थात् तेरह छिद्रहैं। इस प्रकार कलादिक संक्षेपसे कहा अब इन्हींको विस्तार करके कहते हैं।

कलानकी व्यवस्था।

मांसासृङ्मेदसांतिस्रोयकृत्प्लीह्नोश्चतुर्थिका ॥ पंचमी च तथांत्राणांषष्ठीचाग्निधरामता ॥ ६ ॥ रेतोधरासप्तमीस्यादितिसप्तकलाः स्मृताः ॥

अर्थ—पहली कला मांसको धारण करती है इसलिये उसको मांसधरा कहते हैं। दूसरी कला रुधिरको धारण करती है अतः उसको रक्तधरा कहते है इसी प्रकार मेदके धारण करनेवालीको मेदधरा कहते है। यकृत् और प्लीहाकी चोथी कला है जो इन दोनोंके मध्यमें रहती है अतएव उसको कफधरा कहते हैं। अब कहिये आंतडेनको धारण करनेवाली पांचवीं कलाको 'पुरीषधरा' ऐसे कहते हैं। अग्निको धारण करनेवाली छठी कला उसको 'पित्तधरा' कहते हैं और सातवीं कला *शुक्रको धारण करती है अतएव उसको रेतोधरा जाननी, इस प्रकार सात कला जाननी।

श्लेष्माशयः स्यादुरसितस्मादामाशयस्त्वधः ॥ ७ ॥ उर्द्ध्वमग्न्याशयोनाभेर्वामभागेव्यवस्थितः ❀ ॥तस्योपरितिलंज्ञेयं तदधः पवनाशयः ॥८॥ मलाशयस्त्वधस्तस्यबस्तिर्मूत्राशयः स्मृतः ॥ जीवरक्ताशयकुरोज्ञेयाः सप्ताशयास्त्वमी ॥ ९ ॥

---

१ वीस अधिक हैं उनके स्थान कहते हैं दोनों स्तनोंमें पांच २ हैं और योनिमें चार गर्भमार्गमें तीन तथा गर्भस्थानमें तीन इसप्रकार वीस जाननी। २ उन सोलहोंके स्थान बतातेहैं कि दोनों पैरोंमें चार, दोनों हाथोंमें चार, नाडमें चार और पीठमें चार इसप्रकार सोलह जाननी । ३ पांचवी कला आंतडोंके आधारसे उदरस्थ मलके विभाग करतीहै अतएव उसको 'पुरीषधरा' कहतेहैं। ४ छठीकला खाद्यपेयादिक ऐसे चार प्रकारके आमाशयसे प्रच्युत हुए अन्नको पक्काशयमें ले जाकर धारण करती है इसीसे उसको 'पित्तधरा' कहतेहैं जैसे लिखाहै—"अशित खादित पीत लीढं कोष्ठगतं नृणाम्। तज्जीर्यति यथाकाले शोषित पित्ततेजसा" इति।

* यथा पयांसि सर्पिश्च गुडश्चेक्षुरस यथा। शरीरेषु तथा शुक्र नृणां विद्याद्भिषग्वरः ॥ द्व्यंगुले दक्षिणे पार्श्वे बस्तिद्वारस्य चाप्यधः। मूत्रस्रोतपथः शुक्र पुरुषस्य प्रवर्तते। कृत्स्नदेहाश्रितं शुक्र प्रसन्नमनसस्तथा। स्त्रीषु व्यायामतश्चापि हर्षात्तत्प्रवर्तते।

(श्लो. ८) वामभागे व्यवस्थितः इत्यत्रमध्यभागे व्यवस्थित इतिवा पाठः।

पुरुषेभ्योऽधिकाश्चान्येनारीणामाशयास्त्रयः ॥ धरागर्भाशयः प्रोक्तः स्तनौस्तन्याशयौमतौ ॥ १० ॥

अर्थ—वक्षस्थलमे कफका आशय कहिये कफका स्थान है. कफस्थानके किंचित् अधोभागमे आमका[१] स्थान है. नाभिके ऊपर बाईतरफ अग्निका स्थान है. उसीको 'ग्रहणी'[२] स्थान कहते है। उस अग्निस्थानके ऊपर जो तिल हैं उसको क्लोम कहते हैं वह पिपासास्थान है अर्थात् प्यास इसी जगहसे उत्पन्न होती है। कोई आचार्य "तस्योपरिजलज्ञेय" ऐसा पाठ लिखकर अर्थ करते है कि उस तिलके ऊपर जल है। जैसे लिखाहै "अग्नेरूर्द्ध जल स्थाप्य तदन्न च जलोपरि ॥ अग्नेरध स्वय वायु स्थितोऽग्नि धमते शनै ॥ वायुना धममानोग्निरत्युष्ण कुरुते जलम् । तदन्नमुष्णतोयेन समंतात्पच्यते पुन!" इति ॥ अर्थात् अग्निके ऊपर जल है. उसके ऊपर अन्न है और अग्निके नीचे पवन स्थिर होकर स्वय अग्निको धमाता है। वह वायुसे धमाईहुई अग्नि ऊपरके जलको अत्यत गरम करती है तब वह उष्णजल ऊपरके अन्नका अच्छे प्रकार परिपाक करता है।

अग्निस्थानके नीचे पवनका स्थान है उस पवनकी समान संज्ञा है फिर उस पवनाशयके नीचे मलाशय अर्थात् मलका स्थान है; इसीको पक्वाशय कहते है वह वामभागमे है। (इसीके एकदेशमें विभाजित मलधारक उदुक कहलाता है) लोकमे इसको 'पेडूलक' कहते है अतएव उदुकसे पक्वाशय पृथक् है परतु चरकमे पुरीष अंत्रशब्दकरके उंदुक कहा।

उसके पासही कुछ नीचे दहनीतरफ चमडेकी थैलीके आकार मूत्राशय है जिसको वस्ती कहते हैं। जीवतुल्य रक्त है कि जिसका स्थान उर है। ऐसे सात आशय कहिये स्थान जानने। पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंके तीन आशय अधिक हैं, जैसे एक गर्भाशय और दो स्तन्याशय अर्थात् स्तनसबधी दूध रहनेके स्थान। तहा गर्भाशय, पित्त और पक्वाशयके मध्यमे है ऐसा जानना।

रसादि सातधातुओंका विवरण।

रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः ॥
जायंतेऽन्योन्यतः सर्वे पाचिताः पित्ततेजसा ॥ ११ ॥

अर्थ—रस, रुधिर, मास, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र ये सात धातु पित्तके तेजसे पाचित होकर क्रमसे एकसे एक उत्पन्न होते हैं। जैसे रससे रुधिर, रुधिरसे मास, माससे मेद, मेदसे हड्डी, हड्डीसे मज्जा, मज्जासे शुक्र धातु उत्पन्न होतीहै।

---

१ 'नाभिस्तनांतरजतोरामाशय उदाहृत.'। जिस स्थानमे आम अर्थात् कच्चा अन्नरस रहताहै उस स्थानको आमाशय कहते हैं। २ अन्नाधिष्ठानमन्नस्य ग्रहणात् ग्रहणीमता। नाभेरुपरि सा ह्यग्निबलोपस्तम्भबृंहिता।

अब कहते हैं कि, धातुओंके मलका परिणामभी स्थूल और अणुभाग विशेष करके तीन प्रकारका है। उदाहरण जैसे अन्नके पचनेसे विष्टामूत्र ये मल होते हैं और सारवस्तु रसधातु प्रगट होती है वही रस पित्ताग्निकरके पच्यमान होनेसे उसका कफ है सो मल प्रगट होता है, स्थूल भाग रस और सूक्ष्मभाग रुधिर होताहै। रक्तके परिपाकसे पित्त मल होता है, स्थूल भाग रक्तका रक्तही है और सूक्ष्मभाग मांस प्रगट होता है। इसी प्रकार परिपक्व होकर माससे कानका मल प्रगट होता है सो जानना। स्थूलभाग मास और सूक्ष्मभाग मेद, उसका अपनी अग्निसे परिपक्व होनेपर पसीना मल होता है और स्थूल भाग मेद और उसका सूक्ष्मभाग हड्डी होती है वह हड्डीभी परिपक्व होकर केश रोमादिमलको प्रगट करती है। इसका स्थूलभाग हड्डी है और सूक्ष्मभाग मज्जा कहाती है। उस मज्जाके परिपक्व होनेसे स्थूल भाग मज्जा सूक्ष्मभाग शुक्र होता है और नेत्र पुरीष तथा त्वचा इनमे जो मैल आता है वह मज्जा धातुका मल है। यह शुक्रभी अपनी अग्निसे पचकर मलको प्रगट नहीं करता जैसे हजारवार धमाया हुआ सुवर्ण मैलको नहीं त्यागता इस शुक्रका स्थूल भाग शुक्र है और सूक्ष्म भाग ओज जानना।

धातुओंके मल।

जिह्वानेत्रकपोलानांजलंपित्तंचरंजकम् ॥ कर्णविड्रसनं दंतकक्षामेढ्रादिजंमलम् ॥ १२ ॥ नखानेत्रमलंवक्त्रस्निग्धत्वंपिटिकास्तथा ॥ जायंतेसप्तधातूनांमलान्येतान्यनुक्रमात् ॥१३॥

अर्थ—सात धातुओंके क्रमसे मल होते हैं। जैसे जीभका जल, नेत्रोंका जल, और कपोलका जल, इनको रसधातुका मल जानना। रंजक पित्त (अर्थात् रसको रंगनेवाला पित्त) रुधिरका मल है। कानका मैल मासका मल है। जीभ, दात, कांख और शिश्न इनका मैल है सो मेद धातुका मैल है। आदिशब्दसे पसीनाभी मेद धातुका मल है। परन्तु यह शार्ङ्गधरका मत नहीं है क्योंकि स्वेदको उपधातुओंमें वर्णन किया है। नख (नाखून) हड्डीका मल है। 'नखा.' यह जो बहुवचन है इससे केश (बाल) (लोम) रोआं इत्यादिकभी हड्डीका मल है। नेत्रोंका मैल, मुखकी चिकनाई यह मज्जाधातुका मल है। और मुहमे मुंहासोका होना यह शुक्र धातुका मल है। तथा केश ग्रहणसे डाढी मूछ येभी शुक्रधातुके मल है।

कोई आचार्य छः धातूनके छः ही मल मानते है। नेत्रमल, मुखकी चिकनाई और मुहाँसे इनको मज्जा धातुका मल कहते हैं।

---

१ जीभ आदिका जो जल है सो कफसदृशी है अतएव कफही रस धातुका मल है।

२ "किट्टमन्नस्य विण्मूत्रं रसस्य तु कफोऽसृजः। पित्तं मांसस्य तु मलं खेपुस्वेदस्तुमेदसः। नखसस्थ्नस्तुलोमाद्यामज्जःस्नेहोऽक्षिविट्त्वचः। प्रसादकिट्टधातूनांपाकादेवविवर्धते। शुक्रस्यातिप्रसन्नत्वान्मलाभावइतिस्मृतः।

अब मनुष्यकी धातुओंको कहते हैं ।

स्तन्यंरजश्चनारीणांकालेभवतिगच्छति ॥ शुद्धमांसभवःस्नेहः सावसापरिकीर्तिता ॥ १४ ॥ स्वेदोदन्तास्तथाकेशास्तथैवौजश्चसप्तमम् ॥ इतिधातुभवाज्ञेयाएतेसप्तोपधातवः ॥ १५ ॥

अर्थ–स्तनसम्बधी दूध रसधातुकी उपधातु है अर्थात् रसधातुसे प्रगट होता है और रज अर्थात् स्त्रियोके मासिक रुधिर जो गिरता है वह रुधिरधातुका उपधातु ये दोनों उपधातु स्त्रियोंके कालविशेषमे प्रगट होती हैं और नष्ट होती हैं (इसी प्रकार स्त्रियोके रोमराजी आदिभी काल करके प्रगट होती है) और (कोई आचार्य रस धातुसे ही आर्तवकी उत्पत्ति कहते हैं.) शुद्ध मांससे उत्पन्न हुए स्नेह (चिकनाई) को वसा कहते हैं, यह मांसधातुका उपधातु है । स्वेद कहिये पसीना, यह मेदधातुका उपधातु है. दात अस्थि अर्थात् हड्डी धातुका उपधातु है । केश मज्जाधातुका उपधातु है । ओज[1] शुक्रधातुका उपधातु है । इस प्रकार साते धातुसे उत्पन्न सात उपधातु जानने कोई आचार्य इन उपधातुओको मलकेही अतर्गत मानते हैं[2] ।

सप्तत्वचा ।

ज्ञेयाऽवभासिनीपूर्वंसिध्मस्थानंचसामता ॥ द्वितीयालोहिताज्ञेयातिलकालकजन्मभूः ॥ १६ ॥ श्वेतातृतीयासंख्यातास्थानंचर्मदलस्यच ॥ ताम्राचतुर्थीविज्ञेयाकिलासश्वित्रभूमिका ॥ १७ ॥ पंचमीवेदिनीख्यातासर्वकुष्ठोद्भवस्ततः ॥ १८ ॥ स्थूलात्वक्सप्तमीख्याताविद्रध्यादेःस्थितिश्चसा ॥ इतिसप्तत्वचःप्रोक्ताःस्थूलाव्रीहिद्विमात्रया ॥ १९ ॥

अर्थ–पहली त्वचाका नाम ‘ अवभासिनी[3] ’ है सो सिध्मरोग[4]की जन्मभूमि है इस श्लोकमें चकार जो है इससे पद्मकटकादिकरोगोकी भी जन्मभूमि जानना । यह जौके

---

१ “ओजः सर्वशरीरस्थ स्निग्ध शीतं स्थिरसितम् । सोमात्मक शरीरस्यबलपुष्टिकरंमतम् ।”

२ “रसात्स्तन्य ततो रक्तमसृज. स्नायुकंडरा. । मांसाद्वसा त्वच. स्वेदो मेदसः स्नायुसंधयः । अस्थ्नो दंतास्तथा मज्ज. केशा ओजश्चसप्तमात् । धातुभ्यश्चोपजायन्ते तस्मात्ते उपधातव. ॥”

३ अवभासिनीकी व्युत्पत्ति इसप्रकार है कि “अवभासयति पराजयति भ्राजकाग्निना सर्वान् वर्णानिति तथा पंचविधा छायां प्रकाशयतीति” अर्थात् जो भ्राजकाग्नि करके सपूर्ण वर्णोको करे तथा पंच प्रकारकी छायाको प्रकाशित करे उसे अवभासिनी कहते हैं।

४ सिध्मरोग कुष्टका भेद है। उसको विभूत वा बनरफ कहते हैं ।

अठारहवें भाग प्रमाण मोटीहै २ दूसरी त्वचाका नाम 'लोहिता' है यह तिलकोलककी जन्मभूमि है (तथान्यैव। व्यंगादिकोंकीभी जाननी) और जौके सोलहवें भाग प्रमाण मोटी है। तीसरी त्वचाका नाम 'श्वेता' है. यह चर्मदल कुष्ठकी जन्मभूमि है और जौके १२ वे भाग प्रमाण मोटी है. चौथी त्वचाका नाम 'ताम्रा' है। यह किलासकुष्ठके होनेकी जगहहै,-और जौके आठवें भाग प्रमाण मोटी है। पांचवीं त्वचाका नाम 'वेदनी' है। यह संपूर्ण कुष्ठोंकी जन्मभूमि है 'तत्' इस पदके कहनेसे विसर्पादिरोगोंकीभी जन्मभूमि जानना। यह मुटाईमें जौके पाचवें भागके समान मोटी है। छठी त्वचाका नाम 'रोहिणी' है। यह ग्रंथि (गाँठ) गंडमाला तथा गंडमालाका भेद अपची इनकी जगह है। ग्रंथि आदि कफ मेद प्रधान हैं अतएव इनके साधर्म्यसे श्लीपद अर्बुदका जन्मस्थान भी यही छठी त्वचा है यह जौके प्रमाण मोटीहै। सातवीं त्वचाका नाम 'स्थूला' है। यह विद्रधिरोग तथा आदिशब्दसे अर्श (बवासीर) और भगदरादिरोगोंके होनेकी जगह है। इस प्रकार सात त्वचा कही हैं। ये सातो त्वचा दो जौकी बराबर मोटी हैं—यह प्रमाण पुष्टस्थानोंमें जानना, ललाट और छोटी उँगली आदिमें नही क्योंकि लिखाहै कि स्फिक् (कला) और उदर आदिमें व्रीहिमुखशास्त्रसे अँगूठेके वीच इतना मोटा चीरा देवे।

वातादि दोषत्रय।

वायुःपित्तंकफोदोषाधातवश्चमलास्तथा॥
तत्रापिपंचधाख्याताःप्रत्येकंदेहधारणात्॥ २०॥

अर्थ—शरीरमें वात, पित्त और कफ ये तीन दोष हैं जो रसादि धातुओंको दूषित करते हैं अतएव उनको दोष कहते हैं, और शरीरके धारण करनेसे उनकी धातु सज्ञाहै वे रसादि धातुओंको मलीन करते हैं अतएव उनकी मल सज्ञा कही है वे दोष शरीरधारकत्व करके एक २ पाच पाच प्रकारके हैं उदाहरण। जैसे सुश्रुतमें लिखाहै कि प्रस्पन्दन, उद्वहन, पूरण, विवेचन और धारण लक्षणात्मक वायु पांच प्रकारकी होकर शरीरको धारण करतीहै। इसी प्रकार राग, पक्ति, ओजस्तेजसात्मक पित्तके पाच विभागोंमें बँटकर अग्निकर्मसे देहका पालन करता है। तथा वृद्धि, सन्धि, श्लेष्मण, स्नेहन, रोपण, प्रपूरणात्मक कफके पाच विभागोंसे विभक्त होकर जल कर्म करके देहका पालन पोषण करता है।

वायुका प्राधान्यतापूर्वक स्वरूप तथा विवरण।

पवनस्तेषुबलवान्विभागकरणान्मतः॥ रजोगुणमयः सूक्ष्मः

---

१ तिलकालक जिसको तिल कहते हैं इसे क्षुद्ररोगोंमें लिखा है। २ चकारसे मस्से अजगली आदिकीभी जन्मभूमि तीसरी त्वचाही है।

शीतोरूक्षोलघुश्चलः ॥ २१ ॥ मलाशयेचरन्कोष्ठवह्निस्थाने तथाहृदि ॥ कंठेसर्वांगदेशेषुवायुःपंचप्रकारतः ॥ २२ ॥ अपानः स्यात्समानश्चप्राणोदानौतथैव च ॥ व्यानश्चेतिसमीरस्यनामान्युक्तान्यनुक्रमात् ॥ २३ ॥

अर्थ—वात, पित्त, कफ इन तीन दोषोंमे वायु बलवान् है । इसको मलादिकोंके पृथक् २ विभाग करनेसे, तथा पित्त और कफ इनको जहा इच्छा होय तहा लेजानेकी सामर्थ्य है, अतएव उस (वायु) को प्रधानताहै । इस वायुमें रजोगुण अधिक है. (शीतलस्वभाव होनेसे तथा देहके छिद्रोमें प्रवेशकरनेसे) बहुत बारीक है, शीतल और रूखी है. तथा हलकी चंचल अर्थात् एकस्थानपर स्थित नही रहती यह पांच स्थानोमें गमन करती है अतएव पांचप्रकारकी जाननी उन पाचस्थान और पांचनामोंको अनुक्रमसे कहते हैं । मलाशय अर्थात् पक्काशयमें जो वायु रहता है उसको 'अपान' वायु कहते हैं । कोष्ठमे अग्निका स्थान है उसमे जो वायु रहै उसको 'समान' वायु कहते हैं । हृदयमे रहनेवाले वायुको 'प्राण' वायु कहते हैं । कंठमे रहनेवाले वायुको 'उदान' वायु कहते हैं । और संपूर्ण देहमें रहनेवाले पवनको 'व्यान' वायु कहते हैं । इसप्रकार वायुके पाच स्थान तथा पांच नाम जानना ।

पित्तका विवरण ।

पित्तमुष्णंद्रवंपीतंनीलंसत्त्वगुणोत्तरम् ॥ कटुतिक्तरसंज्ञेयंविदग्धंचाम्लतांव्रजेत् ॥ २४ ॥ अग्न्याशयेभवेत्पित्तमग्निरूपंतिलोन्मितम् ॥ त्वचिकांतिकरंज्ञेयंलेपाभ्यंगादिपाचकम् ॥ २५ ॥ हृश्यंयकृतियत्पित्तंताहशंशोणितंनयेत् ॥ यत्पित्तंनेत्रयुगले रूपदर्शनकारितत् ॥ २६ ॥ यत्पित्तंहृदयेतिष्ठन्मेधाप्रज्ञाकरंचतत् ॥ पाचकंभ्राजकंचैवरंजकालोचकेतथा ॥ २७ ॥ साधकं चेतिपंचैवपित्तनामान्यनुक्रमात् ॥

---

१ पित्तं पङ्गु कफः पङ्गुः पङ्गवो मलधातवः ॥ वायुना यत्र नीयते तत्र वर्षन्ति मेघवत् ।

२ कोई प्रश्न करे कि देहके कहनेसेही सर्व अंगोका बोध होगया फिर सर्वांगका पृथक् ग्रहण क्यो किया । तहा कहते हैं कि अंगग्रहण इस जगह प्रत्यंगादिकोंके निरासार्थ अर्थात् प्रत्यंगोंमे वातका कोई विशेष स्थान नहीं । अतएव विशेष स्थानग्रहणार्थ इस जगह सर्वांग देहका ग्रहण किया है । कोई २ पवनके अन्य नामभी कहते हैं जैसे—" नागःकूर्मोथ कृकलो देवदत्तो धनंजयः " इति ।

अर्थ-अब पित्तका वर्णन करते हैं। पित्त गरम और एक पतला पदार्थ है, दूषित पित्तका नीलवर्ण है और निर्मल पित्त पीले रंगका होताहै। इस पित्तमे सतोगुण अधिक है तथा निर्दूपित पित्तका स्वाद चरपरा और कडुवा होताहै, तथा उष्णादिपदार्थोंके संयोग करके विदग्ध (विकृति) होनेसे खट्टा होजाता है। यह पित्त पाच स्थानोमे रहता है। उन पांच स्थान और उसके नामोको क्रम करके कहताहूं कोठेमे अग्निका स्थान है। उस स्थानमे जो पित्त है वह अग्निस्वरूपहोकर तिलके बराबर है। वह पित्त उस पित्तके स्थानमे चार प्रकारके अन्नको पचाता है अतएव उसको 'पाचक' पित्त कहतेहैं। त्वचाॅमे जो पित्त रहताहै वह शरीरमें कान्ति उत्पन्न करता है चंदनादिकोंके लेप-तैलादिकोंके अभ्यग आदिशब्दकरके. स्नानादिक इनको पचाता है अतः उसको 'भ्राजक' पित्त कहते हैं। वह पित्त बाँईतरफ प्लीहाके स्थानमें रहकर, जैसे रससे रुधिरको प्रगट करता है उसी प्रकार दहनी तरफ यकृत्के स्थानमे रहकरभी रससे रुधिरको प्रगट करता है वह दृश्य कहिये दृष्टिगोचर है और उसको 'रंजक' पित्त कहते हैं. (कोई कहताहै कि यकृति कहिये कालखड (कलेजे) में जैसे रुधिर दीखता है उसी प्रकारका प्लीहामे रुधिरको उत्पन्न करता है) दोनो नेत्रोमे जो पित्त रहता है वह सफेद, नीले, पीत आदि रूपका दर्शन करता है उसको 'आलोचक' पित्त कहते हैं। जो पित्त हृदयमें है, वह मेधारूप और प्रज्ञारूप बुद्धिको उत्पन्न करता है। अतः उसको 'साधक' पित्त कहते हैं। इस प्रकार पित्तके पांच स्थान और पाच नाम क्रम करके जानने।

कफका विवरण।

कफः स्निग्धोगुरुःश्वेतः पिच्छिलः शीतलस्तथा ॥ २८ ॥ तमोगुणाधिकः स्वादुर्विदग्धोलवणोभवेत् ॥ कफश्चामाशये मूर्ध्निकंठेहृदिचसंधिषु ॥ २९ ॥ तिष्ठन्करोतिदेहेषुस्थैर्यं सर्वांगपाटवम् ॥ क्लेदनः स्नेहनश्चैवरसनश्चावलंबनः॥ ३० ॥

अर्थ-कफ चिकना, भारी, सपेद, पिच्छल (मलाईके सदृश) और शीतल है। तथा

---

१ विदग्धाजीर्णसस्टं पुनरम्लरस भवेत् ॥

२ स्थूलकायेषु सत्त्वेषु यवमात्रं प्रमाणतः। ह्रस्वमात्रेषु सत्त्वेषु तिलमात्र प्रमाणतः। कृमिकीटपतंगेषु वालमात्रं हि तिष्ठति।

३ भक्ष्य-भोज्य-लेह्य-चोष्य-। ४ त्वचात्रावभासिनीनामधेया-बाह्यत्वगित्यभिप्रायः।

५ दृश्यमानः सन्नंगुलिग्राही अर्थात् चेपदार

कफमें तमोगुण अधिक है और मीठा है तथा विकृत (दूषित) कफका स्वाद निमकीन होताहै । वही कफ पाच स्थानोंमें रहकर देहकी स्थिरता और पुष्टताको करताहै । अब इन पांच स्थान तथा उन पांचोंके नाम क्रमपूर्वक कहते हैं । आमके स्थानमें जो कफ रहता है उसको 'क्लेदन' कफ कहते हैं वह आमाशयमे चार प्रकारके आहारका आधार है, तथा मधुर, पिच्छिल और प्रक्लेदित्व होनेपरभी अपनी शक्ति करके सपूर्णकफके स्थानोंपर उसके कर्म करके उपकार करता है ।

मस्तकमें रहनेवाले कफको 'स्नेहन' कफ कहते हैं । वह तर्पणादि द्वारा इन्द्रियोको अपने अपने कार्यमें सामर्थ्ययुक्त करताहै । और कंठमे स्थित कफको 'रसन' कफ कहतेहैं । यह जिह्वाकी जडमें स्थित और कटुतिक्तादि रसोके ज्ञानका कारण है हृदयमे रहनेवालेको अवलंबन कफ कहते हैं । यह अवलंबनादि कर्मद्वारा हृदयका पोषण करता है । सधियोंमे रहने वाले कफको सश्लेषण कहते हैं यह सधिनको यथास्थित करता है । इस प्रकार कफके पांच स्थान और पांचनाम क्रमपूर्वक जानने ।

स्नायुके कार्य ।

स्नायवोबंधनंप्रोक्तादेहेमांसास्थिमेदसाम् ॥ ३१ ॥

अर्थ--स्नायु अर्थात् मासरज्जु ये मांस, हड्डी और मेद इनके बधनहैं इनको हिन्दीमें पट्टे कहते हैं । इन्हींके द्वारा हड्डी, मांस और मेद खिंचीहुई है ।

संधिके लक्षण ।

संधयश्चांगसंधानादेहेप्रोक्ताःकफान्विताः ॥

अर्थ--शरीरमें हाथपैर आदि अंग जिस जगह एकत्रित हुएहैं उस स्थानको अर्थात् जोडके स्थानको सधि[२] कहते हैं । उन सन्धियोंमें कफके सदृश पदार्थ भराहुआहै ।

---

१ स्नायु ९०० नौसौ प्रतान (फैलनेवाली) वृत्त (गोल) और भीतरसे पोली हैं । इनमेसे, हाथ पैर आदि शाखाओंमें कमलनाल तन्तुके समान फैलनेवाली और गोल महान् ६०० छःसौ स्नायु हैं । और कोठेमें २३० दोसौ तीस स्नायु मोटी और छिद्रवाली हैं । तथा ग्रीवा (नाड) मे ७० स्नायु हैं, वे भी मोटी और पोली हैं । इसप्रकार सब मिलकर ९०० हुई । ये देहके बधनरूप हैं जैसे लिखा है "नौर्यथा फलकैस्तीर्णा बधनैर्बहुभिर्युता । भारक्षमा भवेदप्सु नृयुक्ता सुसमाहिता । एवमेव शरीरेस्मिन् यावंतः संधयः स्मृताः । स्नायुभिर्बहुभिर्बद्धास्तेन भारसहा नराः" इति ।

२ सधि दो प्रकारकी हैं एक चल दूसरी अचल तहां ठोडी-कमर और हाथ पैरोंमेकी तथा नाडकी संधि चलायमान है, बाकीकी सब संधियां अचल हैं सब संधियां २१० हैं इनमें जो कफके सदृश पदार्थ भरा है उसका प्रयोजन यह है कि जैसे रथचक्रादि तैलादिकके संयोगसे निर्विघ्नतासे फिरते हैं उसी प्रकार संधि इस पदार्थके योगसे चलनचलन विषयमें समर्थ होतीहैं ।

अस्थिके कार्य।

आधारश्चतथासारकायेऽस्थीनिबुधाजगुः ॥ ३२ ॥

अर्थ—देहमें अस्थि (हड्डी) सार (बलरूप) और आधार है वह कपाल, रुचक, वलय, तरुण नलक, ऐसी पांच प्रकारकी हैं।

मर्मके कार्य।

मर्माणिजीवाधाराणिप्रायेणमुनयोजगुः ॥

अर्थ—देहमें मर्म प्रायः करके आत्माके आधारभूतहैं. ऐसे मुनीश्वरोंने कहा है।

शिराओंके कार्य।

संधिबंधनकारिण्योदोषधातुवहाः शिराः ॥ ३३ ॥

अर्थ—शिरा (नश) सन्धिके बंधनकरनेवाली और वातादिदोष तथा रसादि धातु इनके वहाने वाली हैं।

धमनीके कार्य।

धमन्योरसवाहिन्योधमंतिपवनंतनौ ॥

अर्थ—देहमे जो रसवाहिनी नाडी हैं वे पवनको धमन करती हैं अर्थात् धमाती हैं अतएव उनको धमनी कहते हैं।

---

१ मांसनेत्रनिबद्धानि शिराभिः स्नायुभिस्तथा। अस्थीन्यालम्बनं कृत्वा न शीर्यंते पतति च।

२ अभ्यंतरगतैः सारैर्नून तिष्ठति भूरुहाः। अस्थिसारैस्तथा देहा भ्रियन्ते देहिनां ध्रुवम्। तस्माच्चिरविनष्टेषु त्वङ्मांसेषु शरीरिणाम्॥ अस्थीनि न विनश्यंति साराण्येतानि देहिनाम्॥

३ वे मर्म पांच प्रकारके हैं। जैसे—मांसमर्म ११, शिरामर्म ४१, स्नायुमर्म २७, अस्थि मर्म ८ और सधिमर्म २०, इसप्रकार सब मर्म १०७ जानने। ये मर्म सद्यः प्राणहरणकर्ता—कालांतरमें प्राणहरणकर्ता, वैशल्यघ्न—वैकल्यकारी और पीडाकारी हैं 'सोममारुततेजांसि रजःसत्त्वतमांसि च। मर्माणि प्रायशः पुंसां भूतात्मायोवतिष्ठते। मर्मस्वभिहतो जीवो न जीवंति शरीरिणः। ४ शिरा स्थूल सूक्ष्म भेदकरके दो प्रकारकी हैं, उनका नाभिस्थान मूल है। उसी नाभिस्थानसे ये शिरा ऊपर नीचे और तिरछी फैली हुई हैं मूलाशिरा ४० हैं उनमें दश वातवाहिनी हैं, दश पित्तवाहिनी हैं, दश कफवाहिनी और दश रुधिरवाहिनी हैं। इस प्रकार सब चालिस जाननीं। उनमे वातवाहिनी जो दश शिरा हैं उनमेंसे १७५ दूसरी शिरा निकलीहैं इसी प्रकार पित्तवाहिनी, कफवाहिनी और रक्तवाहिनी शिरा इन प्रत्येकमेंसे १७५ एकसौ पचहत्तर २ निकली हैं। इसप्रकार सब मिलानेसे ७०० शिरा होती हैं।

५ धमनीनाडियां चौवीस हैं। ये भी नाभिस्थानसे प्रकट होकर दश नीचे गईहैं कि जो वात, मूत्र, मल, शुक्र, आर्तव आदि और अन्न जल रस इनको वहतीहैं। और दश ऊर्ध्वगामिनी धमनी हैं। ये शब्द, रूप, रस, गंध, श्वासोच्छास, जंभाई, ...लना, रुदन करना इत्यादिकोंको

पेशीके कार्य ।

मांसपेश्योबलायस्युरवष्टंभायदेहिनाम् ॥ ३४ ॥

अर्थ–मांसपेशी अर्थात् मासके टुकडे मनुष्योंके बलके अर्थ और अवष्टंभ कहिये देहके सीधे खडारहनेके अर्थ जाननी ।

कंडराके कार्य ।

प्रसारणाकुंचनयोरंगानांकंडरा मता ॥

अर्थ–कडरा कहिये बडी स्नायु वो हाथ पेर आदि अंगोंके प्रसारण (फैलाने) और आकुंचन (समेटने) के विषयमे समर्थ जाननी ।

रंध्रों (छिद्रों) का विवरण ।

नासानयनकर्णानां द्वेद्वे रंध्रेप्रकीर्तिते॥३५॥मेहनापानवक्त्राणामेकैकंरंध्रमुच्यते ॥ दशमंमस्तकेचोक्तंरंध्राणीतिनृणांविदुः ॥ ३६ ॥ स्त्रीणांत्रीण्यधिकानिस्युःस्तनयोर्गर्भवर्त्मनः ॥ सूक्ष्मच्छिद्राणि चान्यानिमतानित्वचिजन्मिनाम् ॥ ३७ ॥

अर्थ–नाक, नेत्र, कान इनमें दो दो छिद्र है, लिग गुदा और मुख इनमें एकएक छिद्रहे मस्तकमे एक छिद्रहै कि जिसको ब्रह्मरध्र कहतेहै : इसप्रकार पुरुषोके नौ छिद्र खुले हुए हैं और मस्तकमे जो ब्रह्मरंध्र है वह ढकाहुआ है–ऐसे दश छिद्र हैं। तथा स्तनसबंधी दो छिद्र और गर्भमागमे ऐसे तीन छिद्र, पुरुषोकी अपेक्षा स्त्रियोके अधिक हैं । तथा इस प्राणीकी त्वचामे अनेक छिद्रहैं परतु अत्यंत बारीक होनेसे नहीं दीखते । चकारसे प्राण, जल, रस, रुधिर, मांस, मेद, मूत्र, मल, शुक्र और आर्तवके वहनेवाले अन्य छिद्र और भी है ऐसा किसी आचार्यका मतहै ।

–बहाकर देहको धारण करतीहैं। तिरछी जानेवाली ४ धमनी हैं । इन चारोमेसे असंख्यात धमनी उत्पन्न हुईहैं इनसे यह देह जालके सदृश परिव्याप्त है । इनके मुख रोमकूपो (रोआँ) से बधे हुएहैं और ये रसको सर्वत्र पहुँचातीहैं, पसीनेको वहातीहैं, तथा उबटना, स्नान और लेपादिक इनके वीर्यको भीतर ले जातीहैं । इसप्रकारसे २४ धमनी हैं । १ सिरास्नाय्वस्थिपर्वाणि संधयस्तु शरीरिणाम् । पेशीभिः सभृतान्यत्र बलवंति भवंत्यतः ॥ तासां तु स्थानविशेषान्नानास्वरूपत्वं दर्शितम् । तद्यथा 'बहलपेलवस्थूला सुपृथुवृत्तह्रस्वदीर्घस्थिरमृदुश्लक्ष्णकर्कशाभावाः' । आसां लक्षणं तु अस्माद्विरचितबृहन्निघंटुरत्नाकरस्य शारीरभागेप्यवलोकनयिम् अत्र ग्रंथविस्तरभयान्न लिखितम् । २ कंडरा जो १६ हैं उनके प्ररोहके अर्थ जाननी जैसे हाथ पैरकी कंडराओके नख (नाखून) अग्रप्ररोह है इसीप्रकार औरभी जानो । सोलह संख्याका जो ग्रहणहै सो इस जगह शस्त्रकर्मके निषेधार्थ है । यथा "जालानि कंडराश्चाग्रे पृथक् षोडश निर्दिशेत् । षट्कूर्चाः सप्तजीविन्यो मेढ्रजिह्वाशिरोगताः ॥ शस्त्रेण ताः परिहरेच्चतस्रो मांसरज्जवः ।

अब शारीरकथनके प्रसंगसे अन्यफुप्फुसादिकोंका स्वरूप दिखाते हैं।

तद्वामेफुप्फुसंप्लीहादक्षिणांगेयकृन्मतम्॥ उदानवायोराधारः फुप्फुसंप्रोच्यतेबुधैः॥ ३८॥ रक्तवाहिशिरामूलंप्लीहाख्यातामहर्षिभिः॥ यकृद्रंजकपित्तस्यस्थानंरक्तस्यसंश्रयम्॥ ३९॥

अर्थ—हृदयके वामभागमें प्लीहा और फुप्फुस तथा दक्षिण भागमे यकृत् है उसको कालखण्ड (कलेजा) कहते है। अब इनके कार्य कहते है। फुप्फुस (फेफडा) जो है सो उदान अर्थात् कंठस्थवायुका आधार हे और प्लीहा है सो रुधिर वहनेवाली शिराओंका मूल है, एंव यकृत् हे सो रंजक पित्त और रुधिरका स्थान है।

तिलके लक्षण।

जलवाहिशिरामूलंतृष्णाच्छादनकंतिलम्॥

अर्थ—रुधिरके कीट (कीटी) से प्रगट और दक्षिणभागमे यकृत्के समीप तिल नामका एक स्थान है उसको क्लोम कहते हैं। वह तिल जल वहनेवाली नाडियोंका मूल है अतएव तृष्णा कहिये प्यासको आच्छादन करता है।

वृक्कके लक्षण।

वृक्कौपुष्टिकरौप्रोक्तौजठरस्थस्यमेदसः॥ ४०॥

वृक्क कहिये कुक्षिगोलक यह जठर (पेट) में रहनेवाले मेदको पुष्टकरते हैं अर्थात् बढाते हैं. जठर शब्दका ग्रहण अन्यस्थानाश्रित मेदके निषेधार्थ है--जैसे लिखा हे "स्थूलास्थिषु विशेषेण मज्जा त्वभ्यंतराश्रिता। अथेतरेषु सर्वेषु सरक्तं मेद उच्यते" इति।

वृषणके लक्षण।

वीर्यवाहिशिराधारौवृषणौपौरुषावहौ॥

अर्थ—वृषणें कहिये आँड। ये वीर्यवाही नाडियोंके आधार हैं अतएव पुरुषार्थ अर्थात् पुरुषत्वको देतेहैं। 'बीजवाहि' ऐसाभी पाठान्तर है।

लिंगके लक्षण।

गर्भाधानकरंलिंगमयनंवीर्यमूत्रयोः॥ ४१॥

---

१ प्लीहा रक्तसे उत्पन्न है और उसको भाषामे फीहा कहते हैं। २ फुप्फुस अर्थात् फेफडा यह रुधिरके झागसे प्रगट होकर हृदयनाडिकासे लगा हुआ है इसीसे श्वासका कार्य होता है, कि, जिसके द्वार सर्व देहकी चेष्टा होती है। (यह वाम भागमे उत्पन्न होकर दोनो तरफ फैलाहुआ होता है)

३ दो कुक्षिगोलक रक्त और मेदके साराशसे उत्पन्न होते हैं (इन्हे भाषामें गुरदे कहते हैं)

४ वृषण मांस, कफ और मेदके सारांशसे उत्पन्न होते है।

अर्थ-लिंगकहिये शिश्नेन्द्री जो वीर्यद्वारा गर्भको प्रगट करती है और वीर्य तथा मूत्र निकलनेका मार्ग है। जैसे लिखा है. "द्व्यंगुले दक्षिणे पार्श्वे बस्तिद्वारस्य चाप्यधः। मूत्रस्रोतःपथः शुक्रपुरुषस्य प्रवर्तते' इति। "बीजमूत्रयोः" ऐसाभी पाठान्तर है।

हृदयके लक्षण।

हृदयंचेतनास्थानमोजसश्चाश्रयंमतम्॥

अर्थ-कमलकी कलीके समान किंचित् विकसित्त और अधोमुख ऐसा हृदय है यह चैतन्यताका स्थान होकर ओज कहिये सपूर्ण धातुओके तेजोंका सारहै। यद्यपि सामान्यता करके सर्वदेहही चेतनाका स्थान है जैसे चरकमें लिखाहै "चेतनानामाविष्ठानं मनो देहश्च सेन्द्रियः। केशलोमनखाग्रातमलद्रव्यगुणैर्विना" इति। परतु विशेषता करके हृदयही चेतनाका मुख्य स्थान है। और जैसे दूधमें सार वस्तु घृतहै इसी प्रकार सब धातुओंका तेज-स्नेहरूप ओज है अर्थात् तेजरूप हैं जैसे सुश्रुतमे लिखाहै"रसादीनां शुक्रान्तानां धातूनां यत्पर तेजस्तदेव ओजस्तदेव बलमित्युच्यते" कोई आचार्य ओज शब्द करके जीव और रुधिरको ग्रहण करते है, कोई निर्विकार कफकोही ओज कहते हैं और किसी २ ग्रथमे ओज शब्द करके रसका ग्रहण करते हैं।

शरीरपोषणार्थव्यापार।

शिराधमन्योनाभिस्थाःसर्वांव्याप्यास्थितास्तनुम्॥ ४२॥
पुष्णंतिचानिशंवायोः संयोगात्सर्वधातुभिः॥

अर्थ-नाभिस्थानमे रहनेवाली शिरा और धमनी संपूर्ण शरीरमें व्याप्तहो रात्रि दिवस वायुके संयोग करके रसादि सर्व धातुओंको सर्व शरीरमें लेजाकर शरीरका पोषण करती हैं और चकारसे पालन करती हैं। ये तरुण पुरुषोंके शरीरका पोषण (पुष्ट) करती हैं और वृद्ध मनुष्यके देहका पालन करती हैं। जैसे लिखा है"सएवान्नरसो वृद्धानां परिपक्वशरीरत्वादप्रीणनो भवति।" कोई कहे कि कैसे पोषण करती है? तहा कहतेहैं कि पवनके सयोगसे अर्थात् प्राकृत पवनकी सहायतासे पोषण करती हैं। जैसे लिखाहै "क्रियाणामप्रतीपातसमोह बुद्धिकर्मणा। करोत्यन्यान्गुणाश्चापि स्वाःशिराः पवनश्चरन्"कौनसी वस्तुओंसे पोषण करती हैं? तहा कहते हैं कि,सपूर्ण रसादि धातुओंकरके पोषग करती हैं। इस वाक्यसे सबका समान्य कर्म कहा। जैसे लिखा है कि "याभिरिदं शरीरमाराम इव जलहारिणीभिः केदारइव कुल्याभिरुपपद्यते अनुगृह्यते चाकुचनप्रसारणादिभिर्विशेषैरिति"

---

१ लिंगके साथ वर्तमान हृदयके बंधनकरनेवाले ऐसे चार कंडरा (बडे २ स्नायु) हैं उनके अग्रभागसे यह लिंग प्रगट होता है। २ हृदय रुधिरके सारसे निर्मित है।

कदाचित् कोई प्रश्न करे कि ये शिरा और धमनीनाडी नाभिमें स्थित हो सर्व देहको कैसे पोषण करती हैं ? तहां कहते हैं "व्याप्नुवंत्याभितो देहं नाभिस्थप्रसृताः शिराः। प्रतानाः पद्मिनीकंद बिसादीनां यथा जलम्"।

प्राणवायुका व्यापार।

नाभिस्थःप्राणपवनः स्पृष्ट्वाहृत्कमलांतरम्॥ ४३॥ कंठाद्बहिर्विनिर्यातिपातुंविष्णुपदामृतम्॥पीत्वाचांबरपीयूषंपुनरायाति वेगतः॥ ४४॥ प्रीणयन्देहमखिलंजीवं च जठरानलम्॥

अर्थ—नाभिमें स्थित प्राणपवन (प्राणाश्रितवायु) हृदयका स्पर्शकर बाह्य आकाशसे अमृत (हवा) पीनेके वास्ते कंठसे बाहरजाता है वहां अमृतको पीकर फिर उसी वेगसे नासिकाद्वारा अपने स्थानमें आयकर संपूर्ण देह और जीव इनको सन्तुष्ट और जठराग्निको प्रदीप्त करता है।

वह प्राणवायु सकलशरीरमें व्यापक होनेसे नाभिमे आवृत जो शिरा हैं उनमेंभी स्थित है। अतएव लिखाहै "नाभिस्थाः प्राणिना प्राणाः प्राणान्नाभिर्व्यपाश्रिताः। शिराभिरावृता नाभिश्चक्रनाभिरिवारकैः" इति। औरभी ग्रंथान्तरमें लिखाहै कि "ब्रह्मग्रंथौ नाभिचक्रं द्वादशारमवस्थितम्। लूतेव तंतुजालस्थस्तत्र जीवो भ्रमत्ययम्। सुषुम्नया ब्रह्मरंध्रमारोहत्यवरोहति। जीवप्राणसमारूढो रज्ज्वा कोल्हाटिको यथा।" इसप्रमाण पवनका कारणभी ग्रंथान्तरोंमें इसप्रकार लिखा है।

---

१ प्राण, अग्नि और सोमादिक ये नाभिमें रहतेहैं। अतएव यहां "नाभिस्थः प्राणपवनः" ऐसा कहा। २ ऊपर लिखे श्लोकसे प्रत्यक्ष मालूम होताहै कि इस प्राणीके देहसे पवन विष्णुपदामृत पीनेको निकलताहै और फिर देहके भीतर जाताहै। परतु मुख्य इसका तात्पर्य यहीहै कि, भीतरकी पवन देहमे किंचिन्मात्रभी रहनेसे विषैल अर्थात् विषरूप होजातीहै अतएव वह विषामिश्रित पवन बाहर निकलतीहै और विष्णुपदनाम आकाशका है उसमें प्राप्तहो स्वच्छ पवनसे मिश्रित होकर अपने विषैलेगुणको त्यागतीहै और आकाशकी नवीन पवनको श्वासद्वारा भीतर लेजाकर रुधिरकी शुद्धिकरनेसे देहको और जीवको पालन करतीहै। इसीलिये एक छोटेसे मकानमे बहुतसे मनुष्योंके बैठनेसे उस मकानकी पवन विषैली होजातीहै परंतु जिस मकानमें चारोंतरफसे पवन आनेजानेका संचार अच्छी तरह होवे उसमें यह अवगुणकारी पवन नहीं ठहरसक्ती। और इसीसे बडे २ मेलोंमें इंग्रेज जो बहुत दिनतक मेलेको ठहरने नहीं देते उसकाभी मुख्य यही कारणहै। इससे जो जो सफाई करनेके बंदोबस्त करतेहैं उन सबका कारण हमारे शास्त्रमें लिखाहै परतु अब मूर्खानंद वैद्य और हकीम तथा डाक्टर इन सब बातोंको अंग्रेजोंकी निर्मित्त बतलाते हैं। ठीकहै कुएँकी मेढकी कुएँकोही समुद्र मानतीहै।

"तेषां मुख्यतमः प्राणो नाभिकन्दादधः स्थितः । चरत्यास्ये नासिकायां नाभौ हृदयपंकजे । शब्दोच्चारणनिश्वासे श्वासकासादिकारणम्" ।

इत्यादि गुणविशिष्ट प्राणपवन हृदयकमलके अभ्यंतरको स्पर्श करके अर्थात् हृदयकमलको प्रफुल्लितकर कंठको उल्लंघनकर मस्तकमे विष्णुपदामृत (ब्रह्मरंध्राश्रित अमृत) पीनेको प्राप्त होता है, "चक्र सहस्रपत्र तु ब्रह्मरंध्रे सुधाधरम् । तत्सुधासारधाराभिरभिवर्द्धयते तनुम्" । भरतोऽपि "ब्रह्मरंध्रे स्थितो जीवः सुधया संप्लुतो यदा । तुष्टो गीतादिकार्याणि स प्रकर्षाणि साधयेत्" उस जगह उस ब्रह्मरंध्रस्थितअमृतको पीकर जिस वेगसे ऊपरगई उसी वगसे फिर तत्क्षण लौटकर अपने स्थानपर आकर प्राप्त होती है वह अपनी जगहपर आकर सकलदेह (चोटीसे लेकर चरणपर्यंत) को तथा जीव और जठरानल (पाचकाग्नि) को पुष्टकरती है।

यद्यपि देह ग्रहणहीसे जीवानलादिकका ग्रहण होगया तोभी फिर कहना है सो विशेषताद्योतक है अर्थात् सामान्यता करके देहके अंगप्रत्यंग विभाग जानना और जीव तथा अग्नि ये विशेषताकरके जानने क्योंकि "शरीराद्भिन्नो जीवः" इति श्रुतेः । अर्थात् जीवको शरीरसे भिन्न होनेके कारण पृथक् कहा इसवास्ते दोष नही है "आयुर्वर्णोबलंस्वास्थ्यमुत्साहोपचयप्रभाः । ओजस्तेजोऽग्नयः प्राणाः स्वक्ता देहेऽग्निहेतुकाः । शांतेग्नौ म्रियते युक्ते चिरजीवत्यनामयम् । रोगीस्वाद्विरतेमूलमग्निस्तस्मान्निरुच्यते" ।

आयुके और मरणके लक्षण ।

शरीरप्राणयोरेवंसंयोगादायुरुच्यते ॥ ४५ ॥
कालेनतद्वियोगाद्धिपंचत्वं कथ्यतेबुधैः ॥

अर्थ—एवं पूर्वोक्त श्लोकके अभिप्रायसे शरीर और प्राण इनके सयोगको आयु कहते हैं और काल करके शरीर और प्राण इन दोनोके वियोग होनेको पंचत्व (मरण) कहते हैं ।

वैद्यको क्या कर्तव्यहै ।

नजंतुःकश्चिदमरःपृथिव्यांजायतेक्वचित् ॥ ४६ ॥
अतोमृत्युरवार्यःस्यात्किंतुरोगान्निवारयेत् ॥

अर्थ—पृथ्वीमे कोई प्राणी अमर (मृत्युरहित) नहीहै अत एव मृत्युके निवारण करनेमें

१ भूतात्माके शरीरानिधन पर्यंत धर्म, अधर्म नैमित्तिक सांसारिक सुखदुःखको उपभोग साधनको आयु कहते हैं । २ कालभी स्वयम्भू, अनादि १ मध्य, निधनका कारण है । प्राणियोके संहार करनेवाला काल कहलाता अथवा प्राणियोको सुखदुःखादिमे नियोजन करताहै इसवास्ते उसे काल कहते हैं ३ ३वा मृत्युके समीप प्राप्तकरता इसवास्ते उसको काल कहा है ।

कोई समर्थ नहीं है परंतु वैद्य रोगोंका निवारण करे। प्रसग वश वैद्यके लक्षण "व्याधेस्तत्त्वपरिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः। एतद्वैद्यस्य वैद्यत्व न वैद्यः प्रभुरायुषः" अर्थात् व्याधिका निदानादिद्वारा यथार्थ ज्ञान करके रोगजन्य पीडाका शमन करना यही वैद्यका वैद्यत्व है किंतु वैद्य आयुका प्रभु नहीं है।

अब साध्य व्याधिका यत्न न करनेसे अवस्थांतर कहते हैं।

याप्यत्वंयातिसाध्यश्चयाप्योगच्छत्यसाध्यताम् ॥ ४७ ॥
जीवितंहंत्यसाध्यस्तुनरस्याप्रतिकारिणः ॥

अर्थ—साध्य व्याधिकी चिकित्सा न करनेसे याप्य[1] होती है. याप्यकी चिकित्सा न करनेसे व्याधि असाध्य होजाती है और असाध्य होनेसे व्याधि प्राणहरण करती है अतएव व्याधिके उत्पन्न होतेही चिकित्सा करनी चाहिये। जैसे लिखा है "जातमात्रश्चिकित्स्यस्तु नोपेक्ष्योऽल्पतया गदः। वह्निशत्रुविषैस्तुल्यः स्वल्पोपि विकरोत्यसौ" याप्य यह असाध्यका भेद है जैसे लिखा है कि "असाध्यो द्विविधो ज्ञेयो याप्यो यश्चाप्रतिक्रियः" तथा च "यापनीय तु जानीयात् क्रिया धारयते तु यः। क्रियायां तु निवृत्तायां सद्य एव विनश्यति." उसी प्रकार साध्यभी दोप्रकारका है. एक सुखसाध्य और दूसरा कृच्छ्रसाध्य, एकदोषसे उत्पन्न, उपद्रवरहित और नवीन इत्यादि लक्षणयुक्त व्याधि सुखसाध्य कहीगई है और शस्त्रादिसाधनद्वारा चिकित्सा योग्य व्याधिको कृच्छ्रसाध्य कहते हैं।

धर्मार्थकाममोक्षाणांशरीरंसाधनंयतः ॥ ४८ ॥
अतोरुग्भ्यस्तनुंरक्षेन्नरःकर्मविपाकवत् ॥

अर्थ—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इनका साधन (कारण) ऐसा यह देह है अतएव शुभाशुभकर्मके[2] फलको जाननेवाले मनुष्य रोगोंसे शरीरकी रक्षाकरें।

अब दोषोंकी विषम और सम अवस्थाको कहते हैं।

धातवस्तन्मलादोषानाशयंत्यसमास्तनुम् ॥ ४९ ॥
समाःसुखायविज्ञेयाबलायोपचयायच ॥

अर्थ—रसादि सात धातु और धातुओंके मल तथा वातादि तीन दोष ये न्यूनाधिक

---

१ चकारसे यह दिखाया कि व्याधि प्रथमही याप्यत्वको नही प्राप्त होती किंतु प्रथम कृच्छ्रसाध्य होती है फिर याप्यत्वको प्राप्त होती है। २ पूर्वजन्मकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते। अतो दानादिकं कुर्यात्संप्रतीक्ष्य विचक्षणः। इति।

होनेसे शरीरका नाश करते हैं और सम (स्वप्रमाणस्थित) होनेसे सुख, बल और शरीरकी वृद्धिको देते हैं।

इति शारीरे कालादिकथनम्।

प्रथम यह कह आये हैं कि आदिशब्दसे सृष्टिक्रम कहेंगे सोही वर्णन करते हैं।

जगद्योनेरनिच्छस्यचिदानंदैकरूपिणः॥ ५० ॥
पुंसोस्तिप्रकृतिर्नित्याप्रतिच्छायेवभास्वतः॥

अर्थ–महदादि रूप जे जग (पृथिव्यादिभूत) उनका आदि कारण होकर इच्छा रहित तथा चिदानद ज्ञानमय ऐसा जो पुरुष उसको ईश्वर कहते हैं। उस पुरुषकी नित्य और सूर्यकी छायाके प्रमाण प्रकृति है उसको अव्यक्तभी कहते हैं।

प्रकृति कैसे विश्वनिर्माण करती है तथा पुरुषको कर्तृत्व कैसे हैं यह कहते हैं।

अचेतनापिचैतन्ययोगेनपरमात्मनः॥ ५१ ॥
अकरोद्विश्वमखिलमनित्यंनाटकाकृति॥

अर्थ–वह मूलप्रकृति चेतनरहित (जड) होकर परमात्माके चैतन्यसंबंधकरके अनित्य ऐसे सपूर्ण महदादि रूप विश्वको करता है। इस विषयमें दृष्टात जैसे ऐन्द्रजालिक (बाजीगर) मत्रप्रभावसे झूठे नाटकोंको दिखाता है इस श्लोकका सबंध पूर्व श्लोकके साथ है।

---

१ अत्र ग्रन्थातरसे दोपादिकोंका परिमाण लिखते हैं 'यःप्रसादपरोन्नस्य परजीर्णस्य सर्वशः। सरसोजलयस्तस्य नव देहेपु देहिनः॥ रक्तस्यांजलयस्त्वष्टौशकृतः सप्तसर्वशः। पित्तस्यांजलयः पंच पट् कफस्य प्रचक्षते। मूत्रस्य विद्याच्चत्वारो वसायाश्चांजलित्रयम्। द्वावंजली मेदसस्तु मज्जा एकांजलिर्मता। शुक्रस्यैकांजलिर्ज्ञेया मस्तिष्कस्योजसस्तथा। चत्वारोञ्जलयः स्त्रीणां रजसः प्रकृतिस्थितिः। द्वावंजली प्रसूतायाः स्तन्यस्यापि हि योषितः। प्रमाणमेतद्धातूनामदुष्टानामुदाहृतम्॥हीनाः स्वेन प्रमाणेन विविधाश्चापि धातवः। योजयति विकारैस्तु दोपा वृद्धिक्षयप्रदाः' इति। अतएवाह वाग्भटः ''रोगस्तु दोषवैषम्यं दोषसाम्यमरोगता'। ग्रंथान्तरेऽपि 'विकृताविकृता देहं घ्नति ते वर्द्धयति च'। तथा च चरकेऽपि ''विकारो धातुवैषम्यं साम्यं प्रकृतिरुच्यते। सुखसंज्ञकमारोग्य विकारो दुःखमेव च'' इति।

२ अस्ति ब्रह्मचिदानन्द स्वयं ज्योतिर्निरंजनम्। ईश्वरो लिंगमित्युक्तमद्वितीयमजं विभुम्। निर्विकारं निराकार सर्वेश्वरमुनीश्वरम्। सर्वशक्ति च सर्वज्ञं तदंशा जीवसंज्ञकाः। अनाद्यविद्यापरिता यथाग्नौ विस्फुलिंगकाः।

अब एकसे कार्यकी उत्पत्तिक्रम कहते हैं।

प्रकृतिर्विश्वजननीपूर्वंबुद्धिमजीजनत् ॥५२॥ इच्छामयींमहद्रूपामहंकारस्ततोऽभवत् ॥ त्रिविधःसोऽपिसंजातो रजःसत्त्वतमोगुणैः ॥ ५३ ॥

अर्थ–विश्वकी जननी ऐसी जो प्रकृति है वह प्रथम इच्छामयी (सत्व रजतमोगुण स्वभावोंसे अनेक प्रकारकी) और महद्रूप (महान् है पर्याय नाम जिसका अथवा स्फटिकमणिके समान) बुद्धिको उत्पन्न करती भई. उस बुद्धिसे अहंकार उत्पन्न हुआ वह राजसी तामसी और सतोगुण भेदसे तीन प्रकारका है। तहां वैकारिक सतोगुणी तैजस रजोगुणी और भूतादि तामसी जानना।

त्रिविध अहंकारके कार्य।

तस्मात्सत्त्वरजोयुक्तादिन्द्रियाणिदशाभवन् ॥ मनश्चजातंतान्याहुःश्रोत्रंत्वङ्नयनंतथा ॥ ५४ ॥ जिह्वाघ्राणत्वचोहस्तपादोपस्थगुदानि च ॥ पंचबुद्धींद्रियाण्याहुःप्राक्तनानीतराणि च ॥ ५५ ॥ कर्मेन्द्रियाणिपंचैवकथ्यंतेसूक्ष्मबुद्धिभिः ॥

अर्थ–राजस अहकार है सहायक जिसका तथा तमोमात्रकरके अनुविद्ध (मिश्रित) जो सात्विक अहकार है उससे श्रोत्र (कान) त्वचा, नेत्र, जीभ, नासिका, वाणी, हाथ, पैर, उपस्थ (लिंग और भग) गुदा और मन ये ग्यारह इन्द्री उत्पन्न हुई। उनमे पहली (कान त्वचा आदि) ज्ञानेंद्री हैं क्योंकि इनको बुद्धिका आश्रय है, अवशिष्ट (बाकी) रही जो पाच वे कर्मेंद्री हैं क्योंकि इनको कर्मका आश्रय है। तथा उभयात्मक (बुद्ध्यात्मक और कर्मात्मक मन है) अथवा, राजस अहंकारसे इन्द्री, सात्विकसे इन्द्रियोके देवता और मन ऐसे पृथक्त्व करके उत्पत्तिक्रम जानना। कोई 'तस्मात्' इस जगह 'तमःसत्वरजोयुक्तात्' ऐसा पाठ कहतेहैं और व्याख्या करते हैं ' तमःसत्त्वरजोयुक्त' से इंद्रीहुई तात्पर्य यह है कि सांख्यशास्त्रमें इंद्रियोंको अहंकारजन्य कहा है और वैद्यकमें भौतिकी कही हैं इतना फरक है।

तन्मात्राओंकी उत्पत्ति।

तमःसत्त्वगुणोत्कृष्टादहंकारादथाभवत् ॥ ५६ ॥ तन्मात्रपंचकंतस्यनामान्युक्तानिसूरिभिः ॥ शब्दतन्मात्रकंस्पर्शतन्मात्रं रूपमात्रकम् ॥ ५७ ॥ रसतन्मात्रकंगंधतन्मात्रंचेतितद्विदुः ॥

अर्थ–राजस अहंकार है सहायक जिसका तथा सत्वमात्रकरके अनुविद्ध (युक्त)

ऐसा जो तामस अहंकार उससे तन्मात्रा कहिये उसी उसी आश्रयपर मुख्यत्वकरके रहनेवाले ऐसे गुण उत्पन्न हुए, उनके पांच नाम-शब्दतन्मात्र, स्पर्शतन्मात्र, रूपतन्मात्र, रसतन्मात्र और गंधतन्मात्र इसप्रकार जानने। इन तन्मात्राओंको योगी पुरुषही जानसकतेहैं।

तन्मात्रापंचकोंका विशेष।

शब्दःस्पर्शश्चरूपंचरसगंधावनुक्रमात् ॥ ५८ ॥
तन्मात्राणांविशेषाःस्युःस्थूलभावमुपागताः ॥

अर्थ-शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ये क्रम करके तन्मात्रपंचकोंके विशेष जानने। इनका सुख दुःख और मोह इन्हींसे अनुभव होता है अतएव स्थूलभावको प्राप्तहुए जानने तथा तन्मात्रपंचकोंका अनुभव सूक्ष्महै इसीसे नहीं होता।

भूतपंचकोंकी उत्पत्ति।

तन्मात्रपंचकात्तस्मात्संजातंभूतपंचकम् ॥ ५९ ॥
व्योमानिलानलजलक्षोणीरूपंचतन्मतम् ॥

अर्थ-शब्दादि पंचतन्मात्राओंसे भूतोंके पंचक उत्पन्न हुए उनके नाम आकाश[1] पवन[2] अग्नि[3] जल[4] और पृथ्वी[5] इसप्रकार जानने।

इंद्रियोंके विषय।

बुद्धींद्रियाणांपंचैवशब्दाद्याविषयामताः ॥६०॥ कर्मेन्द्रियाणांविषयाभाषादानविहारतः ॥ आनंदोत्सर्गकौ चैव कथितास्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ६१ ॥

अर्थ-श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण ये पाच बुद्धीन्द्रिय हैं, इनके शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, ये पाच विषय क्रमपूर्वक जानने। उदाहरण-जैसे, कर्णइन्द्रीका शब्द, त्वगिन्द्रीका स्पर्श, चक्षुइन्द्रीका रूप, जिह्वाइन्द्रीका रस और घ्राण (नासिका) इन्द्रीका गंध विषय जानना। वाणी, हाथ, पैर, उपस्थ, गुदा ये कर्मेन्द्री हैं इनके भाषण, आदान, विहार, आनंद, उत्सर्ग, ये पाच विषय क्रमकरके जानने उदाहरण जैसे वाणीइन्द्रीका विषय भाषण, हस्तइन्द्रीका ग्रहण, पैरोंका विहार, उपस्थका आनंद और गुदाका उत्सर्ग ये विषय जानने।

---

१ आकाश-आकाशका शब्दमात्रगुण जानना। २ वायु-वायुका मुख्यगुण स्पर्श तथा आनुषंगिक शब्द गुण जानना। ३ तेज-तेजका मुख्य गुण रूप और आनुषंगिक शब्द और स्पर्श ये गुण जानना। ४ उदक-उदकका मुख्यगुण रस और आनुषंगिक शब्द, स्पर्श, रूप ये गुण जानना। ५ पृथ्वी-पृथ्वीका मुख्य गुण गंध तथा आनुषंगिक शब्द, स्पर्श, रूप और रस ये गुण जानना।

मूलप्रकृतिके पर्यायनाम।

प्रधानंप्रकृतिः शक्तिर्नित्याचाविकृतिस्तथा ॥
एतानितस्यानामानिशिवमाश्रित्ययास्थिता ॥ ६२ ॥

अर्थ—प्रधान, प्रकृति, शक्ति, नित्या और अविकृति ये प्रकृतिके पर्यायशब्द जानना। वह प्रकृति शिव कहिये ईश्वरके आश्रय करके ऐसे रहतीहै जैसे सूर्यका प्रतिबिंब सूर्यके आश्रय रहताहै। वह सत्व, रज, तमरूपा है, जैसे सुश्रुतमें लिखाहै "सर्वभूतानां कारणमकारण सत्त्वरजस्तमोलक्षणमष्टरूपमखिलस्य जगतः सभवे हेतुमव्यक्तं नाम" इति।

अब चौबीसतत्त्वराशिको पृथक्‌निकालके कहतेहैं।

महानहंकृतिः पंचतन्मात्राणिपृथक्पृथक् ॥
प्रकृतिर्विकृतिश्चैवसप्तैतानिबुधाजगुः ॥ ६३ ॥

अर्थ—महत्तत्व अहंकार और पंचतन्मात्रा ये सात इन्द्रियादिकोंके कारण हैं अर्थात् प्रकृतिरूप और प्रकृतिके कर्मरूप कहिये विकृतिरूप हैं।

षोडशविकार।

दशेंद्रियाणिचित्तंचमहाभूतानि पंच च ॥
विकाराः षोडशज्ञेयाः सर्वंव्याप्यजगत्स्थिताः॥ ६४॥

अर्थ—दशइन्द्री, उभयात्मक मन और पांच महाभूत ये सोलहविकार हैं। ये सपूर्ण जगतमें व्याप्त होकर स्थित हैं।

चौबीसतत्त्वराशी।

एवंचतुर्विंशतिभिस्तत्त्वैःसिद्धेवपुर्गृहे ॥ जीवात्मानियतोनित्यं वसतिंस्वांतदूतवान् ॥ ६५ ॥ सदेहीकथ्यतेपापपुण्यदुःखसुखादिभिः ॥ व्याप्तोबद्धश्चमनसाकृत्रिमैःकर्मबंधनैः॥६६॥

अर्थ--अव्यक्त १ महान् २ अहकार ३ शब्दतन्मात्रा ४ स्पर्शतन्मात्रा ५ रूपतन्मात्रा ६ रस तन्मात्रा ७ गंधतन्मात्रा ८ श्रोत्र (कान) ९ त्वक् (त्वचा) १० चक्षु (नेत्र) ११ घ्राण (नासिका) १२ रसना (जीभ) १३ वाक् (वाणी) १४ हाथ १५ पैर १६ उपस्थ (लिंग और योनि) १७ पायु (गुदा) १८ मन १९ पृथ्वी २० आप २१ तेज २२ वायु २३ और आकाश २४ इस प्रकार चौबीस तत्व हुए। इनकरके सिद्ध (निर्मित) शरीररूप घरमें पचीसवाँ पुरुष सर्वकाल रहता हैं, उसको जीवात्मा कहते हैं। मन है सो उसका दूत है। वह जीवात्मा महदादिकृत सूक्ष्मलिंगशरीरसे रहता है अतएव उसको देही अथवा कर्म पुरुषभी कहते हैं। भत

एव पापपुण्य सुखदुःख इनकरके वह युक्त है तथा मनके साथ वर्तमान ऐसा जो कृत्रिम कर्मबंधन तिसकरके बद्ध है.

आदिशब्दसे इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, प्राण, अपान, उन्मेष, बुद्धि, मन, संकल्प विचार, स्मृति, विज्ञान, अध्यवसाय, विषय, उपलब्धी इत्यादिक गुणभी उत्पन्न होते हैं अर्थात् इन सेभी बद्ध है।

कदाचित् कोई प्रश्नकरे कि विकाररहित जीवात्मा विकारवस्तुओं करके कैसे बद्ध होताहै ? तहा कहते हैं कि जीवात्मा निर्विकारभी हैं परन्तु विकारवान् वस्तुके संयोगसे विकारवान् होजाता है। इसमें दृष्टांत देतेहैं कि जैसे सायकालमें आकाश सूर्यकिरणके सयोगसे लाल होजाता है उसी प्रकारजीव विकारवान् होजाताहै वास्तवमें आकाशके समान निर्विकार है। कोई आचार्य कहते हैं कि ये संपूर्ण विकार उस लिंगदेहमें प्रतिबिंबके सदृश रहते है जैसे तलाव पुष्करिणी आदिके जलमें, जलके काँपनेसे समीपस्थित वृक्षादि कंपित दृष्टि पडते हैं।

जीवके बंधन।

(कामक्रोधौलोभमोहावहंकारश्चपंचमः ॥
दशेन्द्रियाणिबुद्धिश्चतस्यबंधाय देहिनः ॥)

अर्थ—काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, दश इन्द्री और बुद्धि ये उस जीवके बधन हैं इनके लक्षण क्रमसे हम अन्य ग्रंथांतरोंसे कहतेहैं।

काम।

(स्त्रीषुजातोमनुष्याणां स्त्रीणां च पुरुषेषुवा ॥
परस्परकृतःस्नेहः कामइत्यभिधीयते ॥)

अर्थ—पुरुषोंके स्त्रियोंमें और स्त्रियोंके पुरुषोंमें परस्पर प्रीति करनेको काम कहते हैं परंतु यह प्रीति उपभोगनिमित्त जाननी।

क्रोध।

(यऊष्माहृदयाज्जातः समुत्तिष्ठति वै सकृत् ॥
परहिंसात्मकः क्लेशः क्रोधइत्यभिधीयते ॥)

अर्थ—एकवारही इस प्राणीके हृदयसे गरमी प्रगट होकर परको हिंसात्मक दुःख देनेवाली होतीहै इससे चित्तको एक प्रकारका क्लेशहोताहै उस क्लेशको क्रोध कहते हैं।

लोभ।

परार्थं परभागांश्चपरसामर्थ्यमेवच ॥

(दृष्ट्वाश्रुत्वाचयातृष्णा जायते लोभ एव सः)॥

अर्थ—परधन, परभाग और पराई सामर्थ्यको देखकर और सुनकर इस प्राणीके चित्तमे जो तृष्णा उत्पन्न होतीहै उसको लोभ कहते हैं।

मोह।

(अश्रेयःश्रेयसोर्मध्ये भ्रमणं संशयो भवेत्॥
मिथ्याज्ञानं तु तं प्राहुरहिते हितदर्शनम्॥)

अर्थ—अश्रेय (अकल्याण) और कल्याण इन दोनोमें बुद्धिके भ्रमणको संशय कहते हैं। और अहितमें हित देखना उसको मिथ्याज्ञान कहते है।

अहंकार।

(अहमित्यभिमानेन यः क्रियासु प्रवर्त्तते॥
कार्यकारणयुक्तस्तु तदहंकारलक्षणम्॥)

अर्थ—जो प्राणी कार्य कारण करके युक्त अह (मैं करताहूं) इस अभिमानके साथ क्रियाओंमे प्रवृत्त होताहै उसको अहंकार कहतेहै।

अब बंधन अबंधन व्याधि और आरोग्यके लक्षण।

आप्नोतिबंधमज्ञानादात्मज्ञानाच्चमुच्यते॥
तदुःखयोगकृव्याधिरारोग्यंतत्सुखावहम्॥ ६७॥

अर्थ—यह पुरुष अज्ञानकरके क्लेशादिक बंधनको प्राप्त होताहै और आत्मज्ञान (धर्माधर्मके विचार) से उस बंधनसे छूटताहै। शरीर और शरीरी इनको जो दुःख देवे उसको व्याधि कहतेहै, तथा इनको सुख देवे उसको आरोग्य कहते है। दुःख है सो इस प्राणीके स्वभावके प्रतिकूल है और सुख अनुकूल है॥ इति सृष्टिक्रमशारीरं समाप्तम्॥

इति श्रीशार्ङ्गधरभाषाटीकायां कलादिकथन नाम पंचमोऽध्यायः॥ ५॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

प्रथम लिखआयेहैं कि, "आहारादिगतिस्तत्र" अतएव उसी आहारगतिअध्यायको कहतेहैं।

आहारकी गति और अवस्था।

यात्यामाशयमाहारः पूर्वं प्राणानिलेरितः॥ माधुर्यं फेनभा-
वंच षड्रसोऽपिलभेतसः॥ १॥ अथ पाचकपित्तेन विद-

ग्धश्चाम्लतां व्रजेत् ॥ ततः समानमरुता ग्रहणीमभिधीयते ॥ २ ॥ ग्रहण्यां पच्यते कोष्ठवह्निना जायते कटु ॥

अर्थ—पाचभौतिक अन्नादिकोका आहार प्राणवायुकरके प्रेरित हुआ प्रथम आमाशयमें प्राप्त होताहै । फिर वही छ.रसयुक्तभी आहार मधुरभाव और फेन (झाग) रूपको प्राप्त होताहै । फिर वही आहार उसी आमाशयमे पाचकपित्तके तेजसे विदग्ध (कर्पट) होकर अम्ल (खट्टे) भावको प्राप्त होताहै पश्चात् उस आमाशयसे समान वायुकरके ग्रहणी (अग्निस्थान) मे प्राप्त होताहै । उस ग्रहणीस्थानमें कोष्ठाग्निकरके उस आहारका पाक होताहै । वह पाक कटु (चरपरा) होताहै । आहारकी प्रथमावस्था मधुर, दूसरी अम्ल और तीसरी अवस्था कटु जाननी ।

उक्तआहारकी दो अवस्था ।

रसो भवति संपक्वादपक्वादामसंभवः ॥ ३ ॥

अर्थ—उस आहारका उत्तम पाक होनेसे रस होताहै और कच्चा परिपाक होनेसे उसकी आम होतीहै ।

रस और आमके कार्य ।

वह्नेर्बलेन माधुर्यं स्निग्धतां याति तद्रसः ॥ पुष्णाति धातूनखिलान्सम्यक्पक्वोऽमृतोपमः ॥ ४ ॥ मंदवह्निविदग्धश्चकटुश्चाम्लोभवेद्रसः ॥ विषभावंव्रजेद्वापि कुर्याद्वा रोगसंकरम् ॥ ५ ॥

अर्थ—वही पूर्वोक्त रस अग्निके बलकरके मधुरभाव और स्निग्धताको प्राप्तहोकर संपूर्ण रक्तादि धातुओंको पोषण करताहै अतएव उत्तम प्रकारसे परिपक्वहुआ रस अमृतके तुल्य है और वही रस मंदाग्निकरके विदग्धहुआ विषभावको प्राप्त होताहै, अर्थात् कटु अम्ल होकर प्राणनाशकारी

---

१ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश इनके अंशसे प्रगट होताहै अतएव आहारकी पाचभौतिक संज्ञाहै । जैसे लिखाहै "चतुर्धा षड्रसोपेतोऽनेकविध्यनुपक्रमः । द्विविधोष्टविधो वीर्यैराहारः पांचभौतिकः" २ हृदि प्राणोनिलो मतः । ३ नाभिस्तनांतरे जतोराहुरामाशयं बुधाः इति । ४ आमाशय कफका स्थान है और कफका मिष्ट रस है अतएव इस स्थानमें छ. प्रकारकाभी रस मिष्ट होजाताहै । अत एव ग्रंथांतरमें लिखाहै कि "भुक्त्वादौ कफस्य वृद्धि" इसी मिष्ट अवस्थाके आहारकी आमाजीर्ण संज्ञा है जैसे लिखा है "माधुर्यमन्न सृजतामपूर्वम्" । ५ पाचक पित्त एक पीले रंगका द्रव पदार्थ है । जब वह पूर्वोक्त मधुर आहारमें मिलताहै तब उसको खट्टा कर देता है । ६ जैसे अमृत—जीव मधुरादिगुणयुक्त होताहै उसी प्रकार उत्तम रस जीवन धारण, तर्पणादि गुणयुक्त होताहै । क्योंकि सौम्यगुणवाला है । जैसे सुश्रुतमें लिखा है "सखलु द्रवानुसारी स्नेहनजीवनतर्पणधारणादिभिर्विशेषैः सौम्यावगम्यते ।

होता है, अर्थात् कटु अम्ल होकर प्राणनाशकारी होता है । कदाचित् अल्प होनेसे मारणात्मक नहीं होता तो दोषोंके दूषित होनेसे अनेक रुधिरविकार, ज्वर, भगंदर, कुष्ठादि रोगोंको करता है ।

आहारके सारको कहकर निःसारको कहतेहैं ।

आहारस्यरसःसारःसारहीनोमलद्रवः॥ शिराभिस्तज्जलंनीतंबस्तौ मूत्रत्वमाप्नुयात् ॥६॥ तत्किट्टं च मलंज्ञेयंतिष्ठत्पक्वाशयेचतत् ॥

अर्थ–उस आहारके रसको सार कहते हैं और आहारका निस्सार जो पदार्थ है उसको मलद्रव कहते हैं । तहां वह द्रव मूत्रवाहिनी शिराद्वारा वस्तिमें जाकर मूत्र होजाता है और अवशिष्ट रहा हुआ जो किट्ट वह पक्वाशयके एक देशमें जायकर मल (विष्टा) होजाता है ।

मलका अधोगमन।

वलित्रितयमार्गेण यात्यपानेननोदितम् ॥७॥
प्रवाहिनीसर्जनीचग्राहिकेतिवलित्रयम् ॥

अर्थ–गुदास्थित मल अपानवायु करके अधःप्रेरित वलि[2] त्रितयात्मक गुदाके द्वारा वाहर गिरता है उन वलियोंके नाम कहते हैं । प्रवाहिनी सर्जनी और ग्राहिका इस प्रकार शंखावर्त्त (शखके आँटेके समान) तीन वली हैं ।

सारभूत रसकोभी कार्यत्वकरके स्थानांतरप्राप्ति कहतेहैं ।

रसस्तु हृदयं याति समानमरुतेरितः ॥ ८ ॥
रंजितः पाचितस्तत्रपित्तेनायातिरक्तताम् ॥

अर्थ–वह रस समान वायु करके ऊपरके प्रेरित अग्निस्थानसे हृदयमें आकर रजक-

---

१ दोषोंके दूषित होनेसे रोगोंको करता है किंतु स्नेहदग्धके सदृश आप नहीं करता अर्थात् घृत तैलसे जला हुआ मनुष्य घृतसे जला, तैलसे जला कहाता है परतु वास्तवमें अग्निहीसे जला हुआ होताहै । जैसे लिखाहै "रसादिस्थेपु दोषेषु व्याधयः संभवंति ये । तज्जा इत्युपचारेण तान्याहुर्घृत दग्धवत्" । २ गुदाके अवयवभूत भीतर तीन २ वली एकसे एक ऊपर हैं इनका आकार शंखकी नाभिके समान है ।

३ रस सकल–शरीर–गमन–शीलत्व होनेसे ग्रहणीस्थानसे हृदयमें प्राप्त होताहै । जैसे लिखा है 'सर्वदेहानुसारत्वेऽपि, तस्य हृदयस्थानं सहृदयाच्चतुर्विंशतिधमनीरनुप्रवेश्योर्ध्वगा दशदश चाधोगामिन्यश्चतस्त्रस्तीर्यगास्ताः कृत्स्नं शरीरमहरहस्तर्पयति वर्द्धयति यापयति चादृष्टहेतुकेन कर्मणा तस्य सरसस्यानुमानाद्गतिरुपलक्षयितव्या' ।

पित्त करके रागयुक्त तथा पाचकपित्तमें पाचित हो रुधिररूपको प्राप्त होताहै ।

रक्तको प्राधान्य ।

रक्तंसर्वशरीरस्थंजीवस्याधारमुत्तमम् ॥ ९ ॥
स्निग्धंगुरुचलं स्वादुविदग्धंपित्तवद्भवेत् ॥

अर्थ—सर्वशरीरस्थ (पांचभौतिक) रुधिर (देहमूलत्व होनेसे) जीवका उत्तम आधार है उसके गुण स्निग्ध, गुरु चंचल और स्वादु हैं वही रुधिर विदग्ध कहिये विकृत होनेसे पित्तके समान कटु (तीक्ष्ण) और खट्टा होता है ।

रसादिधातुओंकी उत्पत्तिका क्रम ।

पाचिताः पित्ततापेनरसाद्याधातवःक्रमात् ॥ १० ॥
शुक्रत्वं यांतिमासेनतथास्त्रीणांरजोभवेत् ॥

अर्थ—रसादिक सातधातु पित्ततापकरके परिपक्व हो क्रमकरके एकमहीने शुक्र धातुको उत्पन्न करती हैं उसी क्रमसे एक महीनेमें स्त्रियोंके रज होता है ।

गर्भोत्पत्तिक्रम ।

कामान्मिथुनसंयोगेशुद्धशोणितशुक्रजः ॥ ११ ॥
गर्भः संजायतेनार्याःसजातोबालउच्यते ॥

---

१ प्रथम कुछ २ रंगता हुआ क्रमसे अत्यंत लाल होजाता है जैसे लिखा है "रस.किलैकाहेनैव संपद्यते द्वितीयेकपोतवर्णाभः पित्तस्थानेषु तिष्ठति, दिवसे तृतीये चतुर्थे वा पञ्चवर्णो भवेत्, पञ्चमेहनि षष्ठे वा किंशुकाभः सप्तमेहनि सम्प्राप्ते शक्रगोपकाभः एवंसप्ताहाद्रसोरक्तं भवतीति" । २ विस्रता द्रवतारागः स्पंदनं लघुता तथा । भूम्यादीनां गुणा ह्येते दृश्यंते शोणिते यतः । इति । ३ देहस्य रुधिरंमूलं रुधिरेणैव धार्यते । तस्माद्यत्नेद्धि रुधिरं रुधिरं जीवमुच्यते । ४ रसके ग्रहणसे यह दिखाया कि रसही शुक्रत्वको प्राप्त होता है इसीवास्ते 'शुक्रत्वं याति' ऐसा एक वचन कहा । आदि शब्दके ग्रहणसे वही रस, रक्त, मांस, मेद, मज्जा और अस्थिभावको प्राप्त होताहै ।

कोई आचार्य कार्य कारणके अभेदोपचारसे रसादि प्रत्येकधातु एकमहीनेमे शुक्र होता है ऐसा कहतेहैं ।

और स्त्रियोंके रज होताहै जैसे "रसादेव रजः स्त्रीणां मासिमासित्र्यहं भवत् । तद्वर्षाद्वादशादूर्ध्वं याति पंचाशतः क्षयम्" । उक्तश्लोकमें तथा इसपदके ग्रहणसे यह दिखाया कि स्त्रियोंकेभी शुक्र होताहै, क्योंकि द्रावणादि प्रयोगमें प्रत्यक्ष देखाजाताहै । अन्यथा उनको मैथुनानंद कैसे प्राप्तहोताहै, तथा लिखाभीहै "सौम्यत्वगाश्रयं स्वच्छं स्निग्धं योनिमुखोद्गतम् । स्त्रीणां शुक्रं नगर्भाय भवेद्गर्भाय चानंवम्" । अत्र कहतेहैं एक मासमे रसका शुक्र होताहै उसका हिसाव इसप्रकार है कि, आहारका रस एकही दिनमे होताहै और रक्तादिधातु पांच २ दिनमें होतीहैं । विशेष देखना हो तो हमारे बनाये "बृहन्निघंटुरत्नाकर"में देखलेवें ।

अर्थ—मनके संकल्पकरके स्त्रीपुरुषोंका रतिसंग होनेसे शुद्ध[1] शोणित (आर्त्तव) और शुद्ध[2] धातु इनके मिलापकरके स्त्रियोंके गर्भाशयमें गर्भधारण होता है जब वह गर्भ प्रगट होताहै तब उसको वालक[3] कहते हैं।

पुत्रकन्याहोनेमें कारण।

आधिक्येरजसःकन्यापुत्रःशुक्राधिकेभवेत् ॥ १२ ॥
नपुंसकंसमत्वेनयथेच्छा[4]पारमेश्वरी ॥

अर्थ—गर्भाधान कालमें ऋतुसम्बन्धी रक्तकी आधिक्यतासे कन्या होतीहै और शुक्रधातुके आधिक्य होनेसे पुत्र होता है तथा आर्त्तव और शुक्रधातुके समान होनेसे नपुंसक संतान होती है। इसका कारण कर्मके अनुसरणादि परमेश्वरकी इच्छा है।

बालककी मात्राका प्रमाण।

वालस्य[5]प्रथमेमासि[6]देयाभेषजरक्तिका ॥ १३ ॥ अवलेहीकृतै-कैवक्षीरक्षौद्रसिताघृतैः[7] ॥ वर्द्धयेत्तावदेकैकांयावद्भवतिवत्सरः ॥ ॥ १४ ॥ माषैर्वृद्धिस्तदूर्ध्वंस्याद्यावत्षोडशवत्सरः ॥ ततः स्थिराभवेत्तावद्यावद्वर्षाणिसप्ततिः ॥ १५ ॥ ततोबालकव-न्मात्रा ह्रसनीया शनैःशनैः [ ]॥ मात्रेऽयंकल्कचूर्णानां कषा-याणां चतुर्गुणा ॥ १६ ॥

अर्थ—वालकको प्रथम महीनेमें दूध, सहत, खांड और घृत इनमेंसे जो उपयुक्त होय उसीके साथ एक रत्ती सुवर्णादिक औषध[8] डाल अवलेहभूत (चाटनेके योग्य) करके देवे। दूसरे

---

१ शुद्धआर्तवके लक्षण—" शशासृक्प्रतिमं यच्च यद्वा लाक्षारसोपमम्। तदार्तवं प्रशंसंतियद्वासो नविरंजयेत्। त्र्यहं गत्वाऽप्रवृत्तिं च कुरुते शोणितं स्त्रियः। व्युपद्रवा स्रंसते या गर्भस्तस्याध्रुवं भवेत् "। २ शुद्धशुक्रकेलक्षण—"स्फटिकाभं द्रवं स्निग्धं मधुरं मधुगंधि च। शुक्रमिच्छंति केचित्तुतैलक्षौद्रनिभतया। वातादिदूषितं पूतिकुणपग्रंथिरूपिणम्। क्षीणमूत्रपुरीषाभ्यां गंधशुक्रं तु निष्फलम्"। ३ बालशब्द कन्या पुरुष और नपुंसक तीनोंका वाचक है।

४ " यथेच्छा " इसपदके कहनेसेही यमल (जोडला) होनेकी सूचना की है अर्थात् ईश्वरकी इच्छासे दो वा तीन इत्यादिकभी वालक होते हैं। जैसे लिखाहै " वीजेन्तर्वायुनाभिन्ने द्वौजीवौकुक्षिमागतौ। यमावित्यभिधीयेते धर्मेतरपुरःसरौ "। ५ बालक तीनप्रकारका होताहै एक तो दूधपीनेवाला, दूसरा दूध अन्नका आहारकर्ता और तीसरा केवल अन्नका भोजनकर्ता जानना—इनको क्रमसे दूध सहत और खांडके साथ औषध देनी चाहिये। ६ प्रथमग्रहण इस जगे. वालकके जन्मदिनसे कहाहै। ७ घृत गौका लेवे।

८ औषध इसजगे सुश्रुतोक्त लेनी चाहिये जैसे लिखाहै "सौवर्णं सुकृतं चूर्णं कुष्ठं मधु घृतं वचा। मत्स्याक्ष्याख्या शंखपुष्पी मधुसर्पिः सकाञ्चनम्। अर्कपुष्पीघृतं क्षौद्रचूर्णितं कनकंवचा। हेमचूर्णानिकै-

महीनेमें दो रत्ती—तीसरे महीनेमे तीन रत्ती, इसप्रकार एक एक रत्तीके हिसावसे औषधकी वृद्धि एकवर्ष करानी चाहिये तो मासेके प्रमाण होय । दूसरे वर्षमें दोमासे—तीसरेमें—तीनमासे इस प्रमाण मासे २ औषधकी वृद्धि सोलह वर्षपर्यंत करनी चाहिये। सोलह वर्षके उपरात सत्तर वर्षकी अवस्था पर्यंत औषध भक्षणमें सोलह मासेकाही प्रमाण जानना । फिर सत्तरवर्षके उपरान्त उस मात्राको जैसे वालकको वढाई थी उसी प्रमाण क्रमसे मात्राको घटाता चलाआवे । इसका यह कारणहै कि बालक और वृद्ध इनकी समान चिकित्सा है तथा कल्करूप चूर्णरूप और काढा इनकी मात्रा वालकसे चौगुनी देनी चाहिये ।

अंजनादिकरनेका काल ।

अंजनंचतथालेपःस्नानमभ्यंगकर्मच ॥
वमनंप्रतिमर्शश्चजन्मप्रभृतिशस्यते ॥ १७ ॥

अर्थ—वालकोंके नेत्रोमें काजल आदिका लगाना, उवटना करना, स्नान (न्हवाना) करना तैलादिककी मालिश करना, उलटी कराना, और प्रतिमर्श (निरूहणवस्ति अर्थात् गुदामे पिचकारी देना) इत्यादिकर्म वालकके जन्मसेही हितकारी है ।

वमनविरेचनादिकर्म ।

कवलःपंचमाद्वर्षादष्टमान्नस्यकर्मच ॥
विरेकःषोडशाद्वर्षाद्विंशतेश्चैवमैथुनम् ॥ १८ ॥

अर्थ—पांचवर्षके उपरांत कवल (गंडूपभेद जो औषधादि करके कुल्ले करना) करे (पाच-वर्षके भीतर न करे) । आठवर्ष उपरात नस्य (नास) लेवे, सोलहवर्षके पश्चात् विरेचन[2] (जुलाब) देवे, वीसवर्षके[3] पश्चात् मैथुन करना चाहिये ।

—डयेः श्वेतादूर्वावृतमधु । चत्वारोभिहिताः प्राग्याः श्लोकार्द्धेषु चतुर्ष्वपि, ॥ " कुमाराणा वपुर्मेधावलपु-ष्टिविवर्द्धनाः " इति । कोई आचार्य प्राचीन विश्वामित्रोक्त मात्रा वालकको कहते हैं जैसे " विडंगफल-मात्र तु जातमात्रस्य भेपजम् । अनेनैव प्रमाणेन मासिमासि प्रवर्धितम् । कोलास्थिमात्र क्षीरादेर्दद्याद्भैप-ज्यकोविदः । क्षीरान्नादेः कोलमात्रमन्नादेर्दुंवरोपमम् " इति । १ मासा इसजगे मागधोक्तपरिभाषानुसार छः रत्तीका लेनाचाहिये ।

२ इसजगह तीक्ष्ण जुल्लाव देना वर्जितहै परन्तु मृदु जुल्लावका निषेध नहीं है । जैसे लिखाहै, " अग्निक्षारविरेकैस्तुवालवृद्धौ विवर्जयेत् । तत्साध्येषु विकारेषु मृद्वींकुर्याल्लघुक्रियाम् । "

३ वीसवर्षका ग्रहण पुरुषके प्रति है स्त्रियोके प्रति नहीं है क्योकि स्त्रियोको १६ वर्षकी अवस्थाने समानवीर्यत्व कहा है यथा "पंचविंशतिमे वर्षे पुमान्नारी तु षोडशे । समत्वागतवीर्यौ तौ जानीयात्कु-शलोभिषक् ॥ "

बाल्यादिदशपदार्थोंका ह्रास।

बाल्यंवृद्धिर्वपुर्मेधात्वग्दृष्टिःशुक्रविक्रमौ ॥
बुद्धिःकर्मेंद्रियंचेतोजीवितंदशतोह्रसेत् ॥ १९ ॥

अर्थ—जन्म होनेके दशवर्ष पश्चात् बाल्यावस्था नष्ट होतीहै। वीस वर्षके पश्चात् शरीरका बढना नष्ट होताहै। तीसवर्षके पश्चात् शरीर मोटा नही होता इस श्लोकमें "छविर्मेधा" ऐसा पाठभी है उस पक्षमें तीसवर्षपर्यंत कांति रहतीहै फिर नही रहती चालीसवर्षके उपरांत ग्रंथ पढकर याद रखनेकी शक्ति नहीं रहती। पचासवर्षके पश्चात् शरीरकी त्वचा शिथिल होती है। साठवर्षके उपरात दृष्टिकी तेजी नष्ट होतीहै अर्थात् दृष्टिमंद पडजाती है। सत्तरवर्षके उपरात वीर्य नहीं रहता। अस्सीवर्षके पश्चात् पराक्रम नष्ट होजाताहै। नब्बेवर्षके पश्चात् बुद्धि नहीं रहती सौवर्षके पश्चात् इस प्राणीकी कर्मेन्द्रियोंके चलनवलनादि धर्म जाते रहतेहैं। एकसौ दश वर्षके पश्चात् चैतन्य नष्ट होताहै और एकसौ वीसवर्षके पश्चात् जीव नष्ट होताहै अर्थात् मरताहै। इस प्रकार दश दश वर्षके अनंतर एकएकका ह्रास (हानी) होती है।

वातप्रकृतिके लक्षण।

अल्पकेशःकृशोरूक्षोवाचालश्चलमानसः ॥
आकाशचारीस्वप्नेषुवातप्रकृतिकोनरः ॥ २० ॥

अर्थ—छोटे २ बाल, कृश और रूखा (तेजरहित) शरीर, वाचाल (बकवादी) चंचलचित्त, स्वप्नमें आकाशमें गमनकरे, इत्यादि लक्षण वातप्रकृतिवाले मनुष्यके होतेहैं।

पित्तप्रकृतिमनुष्यके लक्षण।

अकाले पलितैर्व्याप्तोधीमान्स्वेदीचरोषणः ॥
स्वप्नेषुज्योतिषांद्रष्टापित्तप्रकृतिकोनरः ॥ २१ ॥

अर्थ—विनासमय बाले सफेद होजावें, बुद्धिवान् हो, अत्यत पसीना आता हो, क्रोधी हो और स्वप्नमें नक्षत्र अथवा अग्न्यादिकको देखे, उस पुरुषकी पित्तप्रकृति जाननी।

कफप्रकृतिवालेके लक्षण।

गंभीरबुद्धिः स्थूलांगःस्निग्धकेशोमहाबलः ॥
स्वप्नेजलाशयालोकीश्लेष्मप्रकृतिकोनरः ॥ २२ ॥

---

१ यह १२० की मनुष्योंकी परमायु जानना। यथा "समापष्टिर्द्विघ्ना" मनुजकरिणा पंच च निशा ह्यानाद्वात्रिंशद्वरकरभयोः पंच च कृतिः। विरूपातश्चायुर्वृषमहिषयोर्द्वादशशुनः स्मृता छागादीनां दशकं सहितषट्चपरमम्।"

२ "क्रोधशोकश्रमकृतः शरीरोष्माशिरोगतः। पित्तंचकेशान् पचति पलितं तेन जायते।"

अर्थ—गंभीर (संपूर्ण कार्यमे क्षमाशीलवुद्धि जिसकी) हो, पुष्ट शरीर, चिकने बाल और जिसकी देहमें बहुत बल हो तथा सपनेमें जलाशयों (तालाब सरोवर आदि) को देखे उस मनुष्यकी कफकी प्रकृति जाननी ।

द्विदोषज और त्रिदोषज प्रकृतिके लक्षण ।

ज्ञातव्यामिश्रचिह्नैश्चद्वित्रिदोषोल्वणानराः ॥

अर्थ—दो दोषोंके लक्षण मिलनेसे द्विदोषजप्रकृतिवान् जानना और तीन दोषोंके लक्षणोंसे मनुष्य त्रिदोषजन्यप्रकृतिवाला जानना चाहिये ।

निद्रादिकोंकी उत्पत्ति ।

तमःकफाभ्यांनिद्रास्यान्मूर्च्छापित्ततमोभवा ॥ २३ ॥
रजःपित्तानिलैर्भ्रान्तिस्तन्द्राश्लेष्मतमोनिलैः ॥

अर्थ—तमोगुण और कफके संसर्गसे निद्रा आती है, पित्त और तमोगुण करके मूर्च्छा आती है रजोगुण पित्त और वायु इन करके भ्रम होता है, कफ, तम और वायु इनकरके घटपटादि पदार्थोंका ज्ञान होकर शरीर गुरु (भारी) होय जंभाई और क्लम कहिये परिश्रमविना श्रम ये लक्षण होते हैं इस स्थितिको तंद्रा कहते हैं ।

ग्लानिके लक्षण ।

ग्लानिरोजःक्षयाद्दुःखादजीर्णाच्चश्रमाद्भवेत् ॥ २४ ॥

अर्थ—संपूर्ण धातुओंके सारभूत ओजके क्षय करके दुःखसे अजीर्णसे और श्रमसे ग्लानि होतीहै । ग्लानिशब्द क्रमका दूसरा पर्यायवाचक नाम है अर्थात् हर्षक्षय जानना ।

आलस्यके लक्षण ।

यः सामर्थ्येप्यनुत्साहस्तदालस्यमुदीर्यते ॥

---

१ रूपादिके अविज्ञानको मूर्च्छा कहतेहैं अर्थात् मोहसंज्ञक अचेतनरूप जाननी । यद्यपि वातादिक तीनों दोषोंसे और रुधिरसे मूर्च्छा होतीहै तथापि पित्त प्रधान होनेसे ग्रहण कियाहै जैसे लिखाहै ॥ वातादिभिः शोणितेन मद्येन च विशेषतः । षट्स्वप्येतासु पित्तं तु प्रभुत्वेनावतिष्ठते । २ "येनायासः श्रमो देहे प्रवृद्धः श्वासवर्जितः। भ्रमः स इति विज्ञेय इन्द्रियार्थप्रबाधकः।" ३ "इन्द्रियार्थेष्वसंप्राप्तिर्गौरवंजृम्भणंक्लमः।निद्रार्तस्यैव यस्यैते तस्य तंद्राविनिर्दिशेत्"॥दुःख तीन प्रकारकाहै आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक । ४ शरीरके परिश्रम करनेको (दण्ड कसरतको) परिश्रम कहतेहैं "शरीरायासजननं कर्म व्यायाम उच्यते ।"

५ ग्लानिके लक्षण तन्त्रांतरमें इसप्रकार लिखेहैं "येनायासश्रमो देहे हृदयोद्वेष्टनं क्लमः । नचान्नमभिकांक्षेत ग्लानिं तस्य विनिर्दिशेत् ॥"

अर्थ—देहमे सामर्थ्य होनेपरभी काम करनेमें उत्साहरहित होउसको आलस्य कहते हैं।

जंभाईके लक्षण।

चैतन्यशिथिलत्वाद्यःपीत्वैकश्वासमुद्धरेत॥ २५॥
विदीर्णवदनःश्वासंजृंभासाकथ्यतेबुधैः॥

अर्थ—चेतनके शिथिल होनेसे मनुष्य एक श्वासको पी कुछ देर मुखमें रखकर फिर उसको मुख फाडकर वाहर निकाले उसको जंभाई कहते हैं।

छींकके लक्षण।

उदानप्राणयोरूर्ध्वंयोगान्मौलिकफस्रवात्॥ २६॥
शब्दःसंजायते तेन क्षुतंतत्कथ्यतेबुधैः॥

अर्थ—उदान (कंठस्थित) वायु और प्राण (हृदयस्थ) वायु इनका ऊपर मस्तकमें सयोग हो उससे (मस्तकसे) कफ गिरे इन दोनोके संयोग होनेसे जो शब्द होय उसको क्षुत (छीक) कहते हैं।

डकारके लक्षण।

उदानकोपादाहारस्वस्थितत्वाच्चयद्भवेत्॥
पवनस्योर्ध्वगमनं तमुद्गारं प्रचक्षते॥ २७॥

अर्थ—उदान (कंठस्थित) वायुके कुपित होनेसे तथा अन्नादिकोंके आहारको अपने स्थानमें जायकर सुस्थिर रहनेसे जो वायुका ऊर्ध्वगमन होता है उसको उद्गार (डकार) कहते हैं।

इति श्रीशार्ङ्गधरसहिताभाषाटीकायां कलादिकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

सप्तमोऽध्यायः।

प्रथमाध्यायमें यह कहआएहैं कि "रोगाणां गणनाचेति" अतएव उसी रोगोंकी गणनाको दिखाते हैं।

रोगाणांगणनापूर्वं मुनिभिर्याप्रकीर्तिता॥
मयात्रप्रोच्यतेसैवतद्भेदाबहवोमताः॥ १॥

---

१ आलस्यके लक्षण—सुखस्पर्शप्रसङ्गित्वदुःखद्वेषमलोलता। शक्तस्य चाप्यनुत्साहः कर्माण्यालस्यमुच्यते।
२ जृंभाके लक्षणान्तर—पीत्वैकमनिलश्वासमुद्वमेद्विवृताननः। यन्मुचाति च नेत्रांभः सजृंभ इति कीर्तितः।
३ नस्तइतिपाठांतरम्। अन्यत्राप्युक्तं "प्राणोदानौयदास्यातां मूर्ध्नि श्रोत्रापथिस्थितौ। नस्तः प्रवर्त्तते शब्दः क्षुत तदभिनिर्दिशेत्।"

अर्थ–ज्वरादिरोगोंकी गणना (संख्या) प्रथम जो मुनीश्वरोंने कहीहै उसी संख्याको हम इस ग्रंथमें कहते हैं क्योकि उन रोगोंके अनेकभेद मुनीश्वरोंने कहे हैं तात्पर्य यह है कि इस ग्रंथमे रोगोकी गणनामात्र कही है अन्य नहीं संख्याभी इस ग्रंथमे प्रयोजनके वास्ते कही है क्योकि निदानादि पंचक रोगज्ञानके उपाय हैं । तिन्होंमें संप्राप्ति जो कही है उसीका दूसरा नाम संख्या है । जैसे लिखाहै " संख्याविकल्पप्राधान्यबलकालविशेषतः । साभिद्यते यथात्रैव वक्ष्यंतेऽष्टौज्वरा" इति ।

ज्वररोग संख्या ।

पंचविंशतिरुद्दिष्टा ज्वरास्तद्भेद उच्यते ॥ २ ॥ पृथग्दोषैस्तथा द्वंद्वभेदेन त्रिविधः स्मृतः ॥ एकश्चसंन्निपातेन तद्भेदा वहवः स्मृताः ॥ ३ ॥ प्रायशः सन्निपातेन पंचस्युर्विषमज्वराः ॥ तथागंतुज्वरोप्येकस्त्रयोदशविधोमतः ॥ ४ ॥ अभिचारग्रहावेशशापैरागंतुकस्त्रिधा ॥श्रमाद्दाहात्क्षताच्छेदाच्चतुर्धा घातकज्वरः ॥ ५ ॥ कामाद्भीतेः शुचोरोषाद्विषादौषधगंधतः ॥ अभिषंगज्वराः षट्स्युरेवंज्वरविनिश्चयः ॥६॥

अर्थ–ज्वर पचीस प्रकारका कहा है उसके भेद कहते हैं । १ वातज्वर[1] २ पित्तज्वर[2] ३ कफज्वर[3] ४ वातपित्तज्वर[4] ५ वातकफज्वर[5] ६ पित्तकफज्वर[6] ७ वातादि तीनो दोषोके

---

१ शरीरमे कंप- ज्वरका विषमवेग (कभी अधिक कभी थोडा,) कंठ, होठ, मुख इनका सूखना, निद्राका नाश, छींक न आवे, देहका रूखापन, मस्तक और अंगोमे पीडा, मुखका विरस होना, मलका न उतरना, शूल, अफरा और जभाई ये वातज्वरके लक्षण हैं ।

२ ज्वरका तीक्ष्ण वेग, अतिसार, अल्पनिद्रा, वमन, कण्ठ, होठ, मुख, नाक इनका पकना पसीने आवे, अनर्थ बकना, मुखमे कडुआट, मूर्च्छा, दाह, उन्मत्तपना, प्यास, मल, मूत्र, नेत्र और त्वचाका पीला होना आर भ्रम ये लक्षण पित्तज्वरके हैं ।

३ गीलेवस्त्रसे अंगोको ढकनेके समान देहका होना, ज्वरका मदवेग, आलस्य, मुखमीठा, मलमूत्र सफेदहो, देहका जकडजाना, अन्नमें अरुचि, देहभारी, शीत लगे, सूखी उलटियोका आना, रोमाचोका होना, अतिनिद्रा, नाडियोका रुकना, थोडादस्तहो, सरेकमा, मुखमे नोनकाखा सवाद, देह थोडा गरम, रदका होना, लारका गिरना, मुखपाक, तथा नाक और मुखसे कफका स्राव, खाँसी, नेत्रोका सफेदरंग, तथा देहमे पीडा, शीतका लगना, गरमी प्यारी लगे और मदाग्निहो ये कफज्वरके लक्षण हैं । ४ प्यास मूर्च्छा, भ्रम, दाह, निद्रानाश, मस्तकपीडा कंठ मुखका सूखना, वमन, रोमांच, अरुचि अंधकार दर्शन, जोडोमे पीडा और जभाई ये वातपित्तज्वरके लक्षण हैं । ५ देहमे आर्द्रता संधियोमे पीडा, निद्राआना, देहभारी,मस्तकभारी,नाकसे पानीका गिरना,खाँसी, पसीने दाह और ज्वरका मध्यम वेगहो ये वातकफज्वरके लक्षण हैं ।

६ कफसे लिहसा मुख तथा मुखमे कडुआट, तंद्रा, मूर्च्छा खाँसी, अरुचि, प्यास, वारम्वार दाह और शीतलगे, तथा पसीने, कफ पित्तका गिरना, ये कफपित्तज्वरके लक्षण हैं ।

मिलनेसे एक सन्निपातज्वर१ तथा संन्निपातज्वरके भेद अनेक है तिनमें प्रायःकरके पाच विषमज्वर हैं–जैसे संतत२, सतत३, अन्येद्यु४, तृतीयक५, चतुर्थक६ ।

एक प्रकारका आगंतुकज्वर । उसके तेरह भेद हैं उनको कहताहूं अभिचार७ज्वर ग्रहावेश८ज्वर ओर शाप९ज्वर ये तीन प्रकारके ज्वर आगतुक ज्वर हैं । श्रमसे उत्पन्न हुआ ज्वर अग्न्यादि दाहकरके उत्पन्न हुआ, घावसे उत्पन्न, शस्त्रादिके प्रहारसे उत्पन्न, ये चार ज्वर 'अभिघात' संज्ञक जानने । तथा मनमे इच्छित स्त्रीके प्राप्त न होनेसे जो ज्वर होता है उसको कामज्वर कहते हैं । और भीति (डरने) से जो होय उसे भयज्वर कहते हैं । शोक (सोच) से होय सो शोकज्वर । क्रोधसे होय सो क्रोधज्वर, स्थावर कहिये वच्छनागादिक विष तथा जंगम कहिये सर्पादिकविष इनके सेवनसे जो ज्वर होवे उसको विषज्वर कहते हैं । तीव्र औषधिके गधसे जो ज्वर होताहै उसको गंधज्वर कहते हैं, वे छः प्रकारके ज्वर 'अभिषग' संज्ञक है । इस प्रकार तेरह प्रकारके आगंतुकज्वर और पहले वारह ज्वर सव मिलानेसे पचीस प्रकारके ज्वर होते है ।

---

१ एकाएक क्षणमे दाह लगे, क्षणमें शीत लगे, हड्डी जोड–और मस्तकमे दर्द, आँसू भरे, काले और लाल तथा फटे हुएसे नेत्रहो, कानोमे शब्द और दर्द, कठमे काँटे पडजावे, तद्रा, वेहोसी, अनर्थभाषण, खाँसी, प्यास, अरुचि, भ्रम, जलीके माफिक काली और खरदरी तथा शिथिल जीभ होवे, रुधिर मिला थूके, शिरको इधर उधर पटके, अत्यंत प्यासका लगना, निद्रा जाती रहै, छातीमे पीडा, पसीने आवे, कभी २ वहुत देरमे मलमूत्र थोडे २ उतरे, कठमे घर्घर्र कफका बोलना, देहमे काले लाल चकत्तोका होना, वहुत धीरे बोलना कान–नाक–मुख–इत्यादि छिद्रोका पकना, पेट भारी हो, वात, पित्त और कफका देरमे पाक, शीतलगना, दिनमें घोर निद्राका आना, रात्रिमे जागना, अथवा बिलकुल निद्राका नाश होना, कभी गावे, कभी रोवे, कभी नाचे, कभी हसे और देहकी चेष्टा जाती रहै ये सव लक्षण सन्निपातज्वरके हैं । वाकी और जो तेरह सनिपात हैं उनके लक्षण माधवनिदानमे देखो ।

२ सातदिन वा दशदिन, वा वारहदिन जो देहमें एकसा ज्वर रहै उसको सतत ज्वर कहते हैं ।

३ दिनरात्रिमे दोवार आवे उसको सततज्वर कहते हैं ।

४ दिनरात्रिमे एकसा ज्वर आवे उसको अन्येद्यु (इकतरा) कहते हैं ।

५ जो एकदिन वीचमे देकर आवे उस ज्वरको तृतीयक (तिजारी) कहते हैं ।

६ दोदिन वीचमे देकर जो तीसरे दिन आवे उस ज्वरको चातुर्थिक (चौथैया) जानना ।

७ श्येनादिक (शत्रुमारणार्थ शिकराआदिके) होम करनेसे जो ज्वर उत्पन्नहो अथवा विमत्र करके सरसोंका हवन करनेसे जो ज्वर उत्पन्न होवे उसको अभिचारिक ज्वर जानना ।

८ ब्रह्मराक्षसादिके सवन्धसे जो ज्वर होवे उसको ग्रहावेश ज्वर कहते हैं ।

९ ब्राह्मण, गुरु, सिद्ध और वृद्ध, इनके शापसे जो ज्वर हो उसको शापज्वर जानना ।

अतिसार रोग।

पृथक त्रिदोषैः सवश्च शोकादामाद्भयादपि ॥ ७ ॥
अतिसारः सप्तधास्यात् ॥

अर्थ-अतिसाररोग सातप्रकारका है जैसे-१ वात २ पित्त ३ कफ ४ सन्निपात ५ शोक ६ आम और ७ भयसे उत्पन्न होनवाला, इनके लक्षण नीचे लिखे अनुसार जानने।

संग्रहणी रोग।

ग्रहणीपंचधामता ॥पृथग्दोषः सन्निपातात्तथाचामेन पंचमी॥८॥

अर्थ-संग्रहणी रोग पाच प्रकारका है। जैसे १ वातसंग्रहणी. २ पित्तसंग्रहणी. ३ कफ-

---

१ कुछ ललाईको लिये, झाग मिला तथा रूखा, थोडा थोडा और वारंवार आम मिला हुआ दस्त उतरे और शूल चले, तथा मल उतरतेसमय शब्द होवे तो वातातिसार जानना। २ पित्तसे पीला, काला, धूँसरे रगका मल उतरे, तथा तृष्णा, मूर्च्छा, दाह, गुदा, पकजाय ये लक्षण पित्तातिसारके हैं।

३ कफातिसारवाले पुरुपका मल सफेद, गाढा, चिकना, कफमिश्रित, दुर्गंधयुक्त और शीतल उतरे, तथा रोमाञ्च खडे होय. यह लक्षण कफातिसारके जानने। ४ शूकरकी चरवी सदृश अथवा मांसके धोये हुये पानीके सदृश और वातादि त्रिदोषोंके जो लक्षण कहेहैं उन लक्षण सयुक्त हो उस त्रिदोपजनित अतिसारको कष्टसाध्य जानना।

५ जिस पुरुषके पुत्र, मित्र, स्त्री, धन इनका नाश होजावे वह उसी २ वस्तुका शोचकरे इसीसे क्षुधा मन्द होनेसे (धातुक्षय होय) उस प्राणीके बाष्प, नेत्र, नासा, गले आदिसे जो शोकद्वारा जल गिरे सो आर ऊष्मा कहिये शोकजन्य देहका तेज ये दोनो वाष्पोष्मा कोठेमें प्राप्तहो अग्निको मदकर रुधिरको कुपितकरें, तव यह रुधिर चिरमिटीके रगसदृश गुदाके मार्ग होकर मलयुक्त अथवा मलरहित निकले तथा गन्धयुक्त अथवा गन्धरहित दस्त उतरे इसको शोकातिसार कहते हैं. इसी प्रकार भयातिसारभी जान लेना।

६ अन्नके न पचनेसे दोष (वात पित्त कफ) स्वमार्गको छोडकर कोठेमे प्राप्तहो कोठेको दूषित कर रक्तादि धातु और पुरीषादि मलको वारंवार गुदाके मार्गसे वाहर निकाले और इसका रंग अनेक प्रकारका होय. तथा शूलयुक्त दस्त उतरे इसको छठा आमातिसार वैद्य कहते हैं।

७ भयसे होनेवाले अतिसारमें जिस दोपका कोपहो उसी दोपके समान लक्षण होते हैं।

८ वातग्रहणीवालेके अन्न दुःखसे पचे, अन्नका पाक खट्टा होय, अगमें कर्कशता (यह वायुके त्वचाके चिकनेपनको शोखनेसे होता है) कठ, मुखका सूखना, भूख, प्यास न लगे। मन्द दीखै, कानोमे शब्द हो, पसवाडे, जाँघ, पेडू और कंधामे पीडा होवे, विपूचिका हो (अर्थात् दोनो द्वारसे कच्चे अन्नकी प्रवृत्ति होवे) हृदय दूखे, देह दुवला होजाय, जीभका स्वाद जाता रहै, गुदामेकतरने कीसी पीडाहो, मीठेसे आदि ले सर्व रसोंके खानेकी इच्छा, मनमे ग्लानि, अन्न पचे उपरांत पेटका फूलना, भोजन करनेसे स्वस्थता, पेटमें गोला, हृद्रोग, तापतिल्लीकीसी शका, वातके योगसे खाँसी श्वाससे पीडित बहुत देरमे बडे कष्टसे कभी पतला कभी गाढा थोडा शब्द और झाग मिला वारवार दस्त आवे।

९ जिस पुरुपके कटु, अजीर्ण, मिरच आदि तीखी दाहकारक (वंश करीलकी कोपल आदि)

संग्रहणी ४ त्रिदोषजसंग्रहणी और पांचवी आमजन्य संग्रहणी, इसप्रकार संग्रहणीके पाँच भेद जानने।

प्रवाहिका रोग।

प्रवाहिकाचतुर्धास्यात्पृथग्दोषैस्तथास्रतः॥

अर्थ–प्रवाहिकारोग चार प्रकारका है। जैसे १ वातकी प्रवाहिका २ पित्तकी प्रवाहिका ३ कफकी प्रवाहिका ४ और रुधिरकी प्रवाहिका। इसप्रकार प्रवाहिकाके चार भेद जानने।

अजीर्ण रोग।

अजीर्णंत्रिविधंप्रोक्तंविष्टब्धंवायुनामतम्॥ १॥ पित्ता-द्विदग्धंविज्ञेयंकफेनामंतदुच्यते॥ विषाजीर्णंरसादेकम्-

---

–खट्टी खारी (ओगा आदिका खार) नोन, गरम पदार्थसेवन इन कारणोसे कुपित हुआ जो पित्त सो जठराग्निको बुझायदे और कच्चाही नीले पीले रंगके पतले मलको निकाले, तथा धूमयुक्त डकार आवे, हिये आर कंठमें दाह होवे, अरुचि और प्यासकरके पीडित होवे यह पित्तकी सग्रहणीके लक्षण हैं।

१ भारी, अत्यत चिकने, शीतल आदि पदार्थके खानेसे, अतिभोजनसे तथा भोजनकरके सोनेसे कुपित हुआ कफ जठराग्निको शांतकरे तव इसके खाया हुआ अन्न कष्टसे पचे, हृदयमे पीडा होय, वमन अरुचि, मुख कफसे लिसासा, तथा मुखका मीठा रहना, खाँसी, कफ थूके, सरेकमा होय, हृदय पानीसे भरे सदृश होय, पेट भारी और जड हो, दुष्ट और मीठी डकार आवे, अग्नि शांति हो, स्त्रीरमणमे अरुचि, पतला आम कफ मिला और भारी ऐसा मल निकले, वल विना शरीर पुष्ट दीखे, आलस्य वहुत आवे यह कफकी सग्रहणीके लक्षण हैं। २ वातादि तीनो दोषोके जो लक्षण कहेहैं वे सव जिसमे मिलतेहो उसको त्रिदोषकी संग्रहणी जानिये। ३ आमवातसे जो आमसग्रहणी उत्पन्न होती है उसके ये लक्षण हैं कि कभी आठदिनमे, कभी चौदह दिनमे अथवा नित्य आम गिरे उसको आमसंग्रहणी कहतेहैं।

४ वातकी प्रवाहिकामें शूल होताहै, वातकी प्रवाहिका रूखे पदार्थसे होतीहै।

५ पित्तकी प्रवाहिका तीक्ष्णपदार्थसे होतीहै, उसमे दाह होताहै।

६ कफकी प्रवाहिका चिकने पदार्थसे होतीहै, उसमे कफ वहुत होताहै।

७ रुधिरकी प्रवाहिका रक्तयुक्त होतीहै, वह खट्टेपदार्थसे होतीहै।

अर्थ–अजीर्ण रोग तीन प्रकारका है तहां वायुसे विष्टब्धाजीर्ण, पित्तसे विदग्धाजीर्ण, कफसे आमाजीर्ण होताहै. अन्नके रससे जो अजीर्ण होवे उसको विषाजीर्ण कहतेहैं ।

अलसकविषूच्यादि रोग ।

दोषैः स्यादलसस्त्रिधा ॥ १० ॥ विषूची त्रिविधाप्रोक्ता दोषैः सा स्यात्पृथक्पृथक् ॥ दण्डकालसकश्चैक एकैव स्याद्विलम्बिका ॥ ११ ॥

अर्थ–वातपित्त और कफ इन तीन दोषोंसे पृथक् २ लक्षण करके 'अलस' रोग तीन प्रकारका है यह अजीर्णसे उत्पन्न होताहै । उसीप्रकार विषूचिको (हैजा) वातादि भेदोसे पृथक् २ लक्षणों करके तीन प्रकारका है उसको 'मोडी निवाही' कहतेहैं 'दडकालसक' और 'विलंबिका' ये दो रोग उसी मोडीके भेद हैं ।

मूलव्याधि (ववासीर) ।

अर्शांसि षड्विधान्याहुर्वातपित्तकफास्त्रतः ॥ संनिपाताच्च संसर्गात्तेषां भेदो द्विधा स्मृतः ॥ १२ ॥ सहजोत्तरजन्मभ्यांतथाशुष्कार्द्रभेदतः ॥

---

१ शूल, अफरा, अनेक वातकी पीडा मल और अधोवायुका रुकजाना, देहका जकटजाना मोह और देहमे पीडा होना ये विष्टब्ध अजीर्णके लक्षण हैं ।

२ विदग्ध अजीर्णमें भ्रम, प्यास और मूर्च्छा ये लक्षण होतेहैं और पित्तके अनेक रोग प्रगट होतेहैं तथा धुएंके साथ खट्टी डकार आवै, पसीना आवै और दाह होय ।

३ कूख और पेटमें अफरा हो, मोह होय, पीडासे पुकारे, पवन चलनेसे रुककर कूखमे और कठादिस्थानोमे फिरे मल मूत्र और गुदाकी पवनरुके, प्यास बहुत लगे, डकार आवे ये लक्षण जिसमे होय उसको अलसक रोग कहतेहैं । ४ मूर्च्छा, अतिसार, वमन, प्यास, शूल, भ्रम, जांघोमें पीडा, जंभाई, दाह, देहका विवर्ण, कम्प, हृदयमे पीडा और मस्तकमे पीडा ये लक्षण हो उसको विषूचिका कहतेहैं इसीको महामारी अथवा हैजा कहतेहैं ।

५ दडके समान मनुष्योंको नचाय देवै उसको दंडकालसक कहतेहैं । वह दंडकालसक विलंबिकाके बहुत कुपित होनेसे होताहै वह वातादि तीन दोषोकरके व्याप्त रहताहै. उसके होनेसे प्राणका नाश शीघ्रही होताहै । ६ जिस मनुष्यके भोजन कियाहुआ अन्न कफवातकरके दूषित होय ऊपर नीचे नही आवे अर्थात् वमन विरेचन न होय, उसको वैद्यविद्याके जाननेवाले जिसकी चिकित्सा नहीं ऐसा विलंबिकारोग कहतेहैं ।

अर्थ—अर्श (बवासीर) रोग ६ प्रकारका है जैसे १ वातार्श २ पित्तार्श ३ कफार्श ४ संनिपातार्श ५ रक्तार्श ६ संसर्गार्श। इसप्रकार छः प्रकारकी बवासीर है, इसको

---

१ वातविकृयसे गुदाके अंकुर सखे (स्रावरहित) चिमचिम पीडायुक्त, मुरझायेहुये, काले, लाल टेढे, विशद, कर्कश, खरदरे, एकसे न हों बांके, तीखे, फटे मुखके, कंदूरी, वेर, खजूर, कपासके फलसदृश हों, कोई कदंबके फलसमान हों कोई सरसोंके सदृश हो शिर, पसवाडे, कन्धा, कमर, जांघ, पेडू इनमें अधिक पीडाहो, छींक, डकार, दस्तका न होना, हृदय पकडासा मालूम हो, अरुचि, खांसी, श्वास, अग्निका विषम होना अर्थात् कभी अन्न पचे कभी नहीं पचे, कानोंमें शब्द होय, भ्रम होय उस बवासीरकरके पीडित मनुष्यके पत्थरके समान, थोडा—शब्दयुत और वातकी प्रवाहिकाके लक्षणसयुक्त शूल, झाग, चिकना इन लक्षणसयुक्त हौले २ दस्त होय, उस मनुष्यकी त्वचाका रंग तथा नख, विष्ठा, मूत्र, नेत्र, मुख ये काले हों, गोला, तापतिल्ली, (उदररोग) अष्ठीला (वातकी गांठ) रोगोंके ये उपद्रव जिस बवासीरमें होते हैं उसको वातार्श कहते हैं।

२ मस्सोंका मुख नीला, लाल, पीला और सुफेदी लिये होवे, उन मस्सोंमेंसे महीनधारसे रुधिर चुचाय और रुधिरकी बास आवे, महीन और कोमल शीतल हो और उनका आकार तोताकी जीभ कलेजा और जोंकके मुखके समान हो और देहमें दाह हो, गुदाका पकना, ज्वर, पसीना प्यास मूर्च्छा, अरुचि और मोह ये हों और हाथके स्पर्शकरनेसे गरम मालूम होवे और जिसके मलका द्रव नीला, पीला, लाल, गरम, आमसंयुक्त होय जवके समान बीचमें मोटे हो और जिसकी त्वचा, नख, नेत्रादिक ये पीले हरतालके समान और हलदीके समान हों ये लक्षण पित्ताधिक बवासीरके हैं।

३ कफकी बवासीरके लक्षण ये हैं. जैसे कि गुदाके मस्से, महामूल (दूर धातुके प्रति जाननेवाले) कठिन मंद पीडाके करनेवाले सफेद, लंबे, मोटे, चिकने, करडे. गोल, भारी, स्थिर, गाढे, कफसे लिपटे मणिके समान स्वच्छ, खुजली बहुत होय और प्यारी लगे, करील कटहर इनके कांटेके समान होय गायके मनकेसदृश होय, पेटूमें अफरा करनेवाले, गुदा, मूत्रस्थान और नाभि इनमें पीडा करनेवाले, श्वास, खासी लारका टपकना, अरुचि, पीनस इनको करनेवाले, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, मस्तकका भारी होना, शीतज्वर, नपुसकपना, अग्निका मदहोना, वमन और आम जिनमें बहुत ऐसे अतिसार, संग्रहणी आदि रोगके करनेवाले, वसा (चर्बी) और कफ मिला दस्त होवे, प्रवाहिका उत्पन्नकरनेवाले और मस्सोंमेंसे रुधिर न निकले, गाढा मल होनेसेभी मस्से न फूटें और शरीरका रंग पीला और चिकना हो ये कफकी बवासीरके लक्षण हैं।

४ जो पूर्व वातादिक तीनों दोषोंकी बवासीरोंके लक्षण कहे सो सब लक्षण मिलते हों उसको निपातकी बवासीर जानना और येही लक्षण सहज बवासीरके हैं।

५ गुदाके मस्सोंका रंग चिरमिटीके रंगके समान होवे, अथवा वटके अंकुरसे हों और पित्तकी बवासीरके लक्षण जिसमें मिलतेहों, मूँगाके सदृश हों और दस्त कठिन उतरनेसे मस्से दबे तब मस्सोंमेंसे दुष्ट और गरमागरम रुधिर पडे और रुधिरके बहुत पडनेसे वर्षाऋतुके मेढकके समान पीला रंग होजाय, रुधिरके निकलनेसे जो प्रगट त्वचाका कठोरपना, नाडीका शिथिलपना और खट्टी-

कोई कोई देशवाले मूलव्याधिभी कहतेहैं । इस छःप्रकारकी अर्शके भेद दो हैं एक सहज कहिये देहके साथ उत्पन्न हो वह, दूसरी उत्तर प्रगटे अर्थात् जन्म होनेके उपरांत मिथ्या आहार विहारादिकरके वातादि कुपित हो उत्पन्न करे ये एवं आर्द्र और शुष्क इन भेदोंसे दोप्रकारकी है । आर्द्र कहिये गीली और शुष्क कहिये सूखी । लौकिकमे इनको खूनी और वादी ऐसा कहा है ।

चर्मकील रोग ।

त्रिधैव चर्मकीलानि वातात्पित्तात्कफादपि ॥ १३ ॥

अर्थ–चर्मकील रोगभी तीन प्रकारका है, जैसे १ वातजचर्मकील २ पित्तजचर्मकील और ३ कफज चर्मकील इस प्रकार चर्मकीलके तीन भेद कहेहैं ।

कृमिरोग ।

एकविंशतिभेदेन कृमयः स्युर्द्विधोच्यते ॥ बाह्यास्तथाभ्यन्तरेचतेषु यूकाबहिश्चराः ॥ १४ ॥ लिख्याश्चान्येन्तरचराः कफात्ते हृदयादकाः ॥ अन्त्रादा उदरावेष्टाश्चुरवश्चमहागुहाः ॥ १५ ॥ सुगन्धा दर्भकुसुमास्तथा रक्ताश्च मातराः ॥ सौरसा लोमविध्वंसारोमद्वीपाह्युदुम्बराः ॥ १६ ॥ केशादाश्च तथैवान्ये शकृज्जाता मकेरुकाः ॥ लेलिहाश्च मलूनाश्च सौसुरादाः ककेरुकाः ॥ १७ ॥ तथान्यःकफरक्ताभ्यां संजातः स्नायुकःस्मृतः ॥

अर्थ–इक्कीस भेदकरके कृमिरोग बाहर और भीतरके भेदसे दोप्रकारका है तिनमें यूका[४] (जूआ) लीख[५] जमजूआं[६] यह तीनप्रकारकी कृमि देहके बाहर रहतीहैं और

–वस्तु तथा शीतको इच्छा इत्यादि दुःख तिनसे) पीडित होय, हीनवर्ण, बल, उत्साह, पराक्रमका नाश होय. सपूर्ण इद्रियोंका व्याकुल होना, उसका काला, कठिन और रूखा ऐसा मल होय, अपानवायु सरे नहीं, यह लक्षण ' खूनी ' ववासीरके जानने चाहिये ।

६ कुलपरपराकरके देहके साथ उत्पन्नहोय उसको संसर्गार्श जानना ।

१ वातसे सुईके चुभाने जैसी पीडा होय ऐसी पीडा होय ।

२ पित्तसे कठोरता होय ।

३ कफसे काला और कुछ लाल तथा चिकनी गाठके समान देहके वर्णके समान वर्ण होवे ।

४ देहमे केश और मलीनवस्त्रके आश्रयसे जो कृमि रहतीहै है उसको यूका (जूँ) कहते हैं । ये यूका तिलके सदृश होकर काली और सफेद होती है. इनके वहुत पांव होतेहैं. वे जूँ होतेहैं ।

५ वहुतही वारीक होती हैं वे लीख कहाती हैं ।

६ जमजूआं एक जूआकाही भेद है. इसकेभी वहुत पैर होते हैं ।

अठारह प्रकारकी क्रमि देहके भीतर रहतीहैं। उनको लौकिकमे जंतु कहते है। उनके भेद मैं कहता हू—१हृदयादक २ अंत्राद ३ उदरावेष्ट ४ चुरव (चिनूना जो बालकोंके होतेहैं) ५ महा गुह ६ सुगंध ७ दर्भकुसुम ये सातप्रकारके क्रमि कफसे उत्पन्न होतेहैं । १ मातर २ सौरस ३ लोमविध्वंस ४ रोमद्वीप ५ उदुंबर ६ केशाद ये छःप्रकारकी क्रमि रुधिरसे उत्पन्न होतीहैं। १ मकेरुक २ लेसिव्ह ३ मलून ४ सौसुराद ५ ककेरुक ये पाचप्रकारकी क्रमि मलसे उत्पन्न होतीहै । इसप्रकार अठारह प्रकारकी भीतरकी क्रमि और तीनप्रकारके पूर्वोक्त बाहरके क्रमि ये सब मिलकर २१ प्रकारके क्रमि होते हैं। उसीप्रकार कफरक्तसे जो उत्पन्न होता है उसको स्नायुक (नहरुआ अथवा नारू) कहतेहैं ।

पांडुरोग।

पांडुरोगाश्च पंचस्युर्वातपित्तकफास्त्रिधा॥त्रिदोषैर्मृत्तिकाभिश्च-

अर्थ—पांडुरोग पांचप्रकारका है जैसे १ वातपांडु २ पित्तपाडु ३ कफपांडु ४ संनिपात-

---

१ देहमे अठारह प्रकारके क्रमि हैं, उनका कोप होनेसे ये सामान्य लक्षण होतेहैं. ज्वर, शरीरमें निस्तेजपन, शूल, हृदयमे पीडा, वमन, भ्रम, अन्नका द्वेष और अतिसार इस प्रकार सामान्य लक्षण जानने । २ कफसे आमाशयमे प्रगटहुई क्रमि जब बढजाती हैं तब चारो तरफ डोलतीहैं. कोई चामके सदृश, कोई गिडोहेके आकार, कोई धान्यके अकुरके समान होतीहैं. कितनीही छोटी बडी चौडी होती और किसीका वर्ण श्वेत, किसीका ताँबेके समान होताहै। उन्होके सात नाम हैं. इन क्रमियोंसे वमनकीसी इच्छा होय, मुखसे पानी गिरै, अन्नका पाक न हो अरुचि, मूर्च्छा, वमन, प्यास, अफरा, शरीर कृश हो, सूजन और पीनस इतने विकार होतेहैं । ३ रुधिरकी रहनेवाली नाडीमें रुधिरसे प्रगट क्रमि बारीक, पादरहित, गोल, ताँबेके रंगकी होतीहैं. कोई बहुत बारीक होतीहैं व देखनेसेभी नहीं दीखती ये कुष्ठको पैदा करती हैं। ४ पक्वाशयमे विष्ठासे प्रगट क्रमि गुदाके मार्ग होकर बाहर निकस-तीहैं जब यह बढ जाती हैं तब आमाशयमे प्राप्त होकर डकार और श्वाससे विष्ठाकीसी वास आने लगती है । ये क्रमि बडी छोटी, गोल, मोटी, रंगमे काली, पीली, सफेद, नीली होतीहैं। जब ये मार्गको छोड अन्य मार्गमें जातीहैं तब इतने रोग प्रगट करतीहैं दस्तका पतला होना, शूल, अफरा, देहमे कृशता तथा कठोरता, पांडुरोग, रोमांच, मदाग्नि और गुदामे खुजलीका होना ।

५ वातादि दोष कुपित होकर रुधिरको दूषित करके शरीरकी त्वचाको पाडुरवर्ण (पीली) करतेहैं उसको पाडुरोग (पीलिया) कहतेहै । ६ वातके पांडुरोगमे त्वचा, मूत्र, नेत्र इनमे रूखापन और कालापन होताहै तथा कंप सुई छेदनेकासा चभका, अफरा, भ्रम, भेद और शूलादिक होतेहैं । ७ पित्तपांडुरोगके य लक्षण होतेहैं मल, मूत्र और नेत्र पीले हो, दाह, प्यास, ज्वर इनसे पीडितहो, मल पतला हो और उस रोगीके देहकी काति अत्यत पीली होतीहै । ८ मुखसे कफका गिरना, सूजन, तन्द्रा, आलसक, शरीरका भारी होना, त्वचा, मूत्र, नेत्र, मुख इनका सफेद होना इन लक्षणोंसे कफका पाडुरोग जानना । ९ ज्वर, अरुचि ओकारी, प्यास और क्लम तथा वमन इतने उपद्रवयुक्त-

पांडु ५ मृत्तिकाभक्षणसे जो होता है वह मृत्तिकाभक्षणका पांडु इसप्रकार पांडुरोगके पांच प्रकार हैं।

कामला कुंभकामला व हलीमक रोग।

-तथैका कामला स्मृता ॥ स्यात्कुंभकामला चैका तथैव च हलीमकम् ॥ १८ ॥

अर्थ-कामला रोग एक प्रकारका है यह रोग पाडुरोगकी अपेक्षा करनेसे होता है। तथा यह स्वतत्र है और उस कामलाके दो भेद हैं एक कुभकामला और दूसरा हलीमक।

रक्तपित्तरोग।

रक्तपित्तं त्रिधा प्रोक्तमूर्ध्वगं कफसंगतम् ॥
अधोगं मारुताज्ज्ञेयं तद्द्वयेन द्विमार्गगम् ॥ १९ ॥

अर्थ-रक्तपित्त तीन प्रकारका है एक उर्ध्वगामी दूसरा अधोगामी और तीसरा वह

-त्रिदोषजन्य पाडुरोग होता है, इस पाडुरोगसे रोगीके इन्द्रियोकी, अपना अपना विषय ग्रहण करनेकी शक्ति जाती रहतीहै।

१ मिट्टी खानेका जिस मनुष्यको अभ्यास पडजाय उसके वातादिक दोष कुपित होते हैं। कषैली माटीसे वात, खारी माटीसे पित्त और मीठी माटीमे कफ कुपित होताहै। फिर वही मिट्टी पेटमे जायकर रसादिक धातुओंको रूखा करतीहै जब रौक्ष्यगुण प्रगट होजाय तब जो अन्न खाय सो रूखा होजाताहै फिर वही मिट्टी पेटमें विना पके रसको रस वहनेवाली नसोंमें प्राप्तकर उनके मार्गको रोक-देतीहै। रसके वहनेवाली नसोका मार्ग जब रुकजाताहै तब इद्रियोका वल अर्थात् अपने विषय ग्रहण करनेकी शक्ति नष्ट होजातीहै शरीरकी काति तेज और ओज कहिये सब धातुओका सार (हृदयमे रहताहै सो) क्षीण होकर पाडुरोग प्रगट होताहै उसमे बल, वर्ण और अग्निका नाश होताहै, नेत्र, कपोल, भ्रकुटी, पैर, नाभि और लिंग, इनमे सूजन हो और कोठेमें कृमि पडजाँय तथा रुधिर और कफ मिला दस्त उतरे। सब पाडुरोगोंमें जब पेटमे कृमि पडजातेहैं तब ये (पूर्वोक्त) लक्षण होतेहैं।

२ वमन, अरुचि, ओकारीका आना, ज्वर, अनायास श्रम इनसे पीडित तथा श्वास खासी इनसे जर्जरित और अतिसारयुक्त ऐसा कुभकामलावाला रोगी मरजाताहै।

३ पाडुरोगीका वर्ण हरा, काला, पीला होजाय और बल व उत्साह, इनका नाश, तद्रा, मदाग्नि, महीनज्वर, स्त्रीसभोगकी इच्छाका नाश, अंगोका टूटना, दाह, प्यास, अन्नमे अप्रीति और भ्रम ये उपद्रव वातपित्तसे प्रगटे हलीमक रोगके हैं।

४ घाम बहुत डोलनेसे, अति परिश्रम करनेसे, शोकसे, बहुत मार्ग चलनेसे, अतिमैथुन करनेसे, मिर्च आदि तीखी वस्तु खानेसे, अग्निके तापनेसे, जवाखार आदि खारे पदार्थ नोनको आदिले लवणके पदार्थ, खट्टी, कडुवी ऐसी वस्तुके खानेसे कोपको प्राप्तभया जो पित्त सो अपने तीक्ष्ण द्रव पूति इत्यादि गुणोसे रुधिरको विगाडताहै तब रुधिर ऊपरके अथवा नीचेके मार्ग अथवा-

जो ऊपर और नीचे दोनों मार्गसे जावे। इनमें जो ऊर्ध्वगामी अर्थात् जो मुखादि मार्गसे गिरताहै वह कफसंबंध करके होता है और अधोमार्ग कहिये गुदादि द्वारा गिरे वह वातके संबंधसे होता है और दोनोमार्ग अर्थात् गुदा और मुखमें गिरनेवाला रक्तपित्त कफ और वादीके संबंधसे गिरता है। रक्तपित्तके ये तीन भेद जानने।

कासरोग।

कासाः पञ्च समुद्दिष्टास्ते त्रयस्तु त्रिभिर्मलैः॥
उरःक्षताच्चतुर्थःस्यात्क्षयाद्धातोश्च पंचमः॥ २०॥

अर्थ—कास (खाँसी) का रोग पाँच प्रकारका है १ वातकास २ पित्तकास ३ कफकास ४ छातीमें कुठार आदिके प्रहारके समान पीडा होकर होता है वह उरःक्षतकास

—दोनो मार्ग होकर प्रवृत्तहो (निकले) ऊपरके मार्ग नाक, कान, नेत्र, मुख इनके द्वारा निकले और अधोमार्ग कहिये लिंग, गुदा और योनि इनके रास्ते होकर निकले और जब रुधिर अत्यन्त कुपित होय तब दोनों मार्ग और सब रोमांचोंसे निकलता है, उसको रक्तपित्त कहते हैं।

१ नाक, मुखमें धूर वा धूआँ जानेसे, दंडकसरत, रूक्षान्न, इनके नित्य सेवन करनेसे, भोजनके कुपथ्यसे, मल मूत्रके रोकनेसे, उसी प्रकार छिक्का अर्थात् आतीहुई छींकको रोकनेसे, प्राणवायु अत्यन्त दुष्ट होकर और दुष्ट उदान वायुसे मिलकर कफ पित्तयुक्त अकस्मात् मुखसे बाहर निकले उसका शब्द फूटे कास्यपात्रके समान होय उसको विद्वान्लोग कास (खाँसी) कहते हैं।

२ हृदय, कनपटी, मस्तक, उदर, पसवाडा इनमें शूल चले, मुँह उतरजाय, बल, स्वर, पराक्रम क्षीण पडजाय, वारवार खाँसीका उठना स्वरभेद और सूखी खाँसी उठे यह वातकी खाँसीके लक्षण हैं।

३ पित्तकी खाँसीसे हृदयमें दाह, ज्वर, मुखका सूखना इनसे पीडित हो, मुख कडुआ रहे. प्यास लगे पीले रंगकी और कडवी पित्तके प्रभावसे वमन होय रोगीका पीलावर्ण होजाय और सब देहमें दाह होय।

४ कफकी खाँसीसे मुख कफसे लिपटा रहै, मथवाय रहै और सब देह कफसे परिपूर्ण रहै, अन्नमें अरुचि, शरीर भारी रहै, कंठमें खुजली, और रोगी वारवार खाँसे। कफकी गाँठ थूकनेसे सुख मालूम होवे।

५ बहुत स्त्रीसंग करनेसे, भारके उठानेसे, बहुत मार्ग चलनेसे, मल्लयुद्ध (कुश्ती) करनेसे, हाथी, घोडा दौडनेसे रोकनेसे रूक्ष पुरुषका हृदय फूटकर वायु कुपित होकर खाँसीको प्रगट करता है सो पुरुष प्रथम सूखा खाँसे, पीछे रुधिर मिला थूके, कंठ अत्यन्त दूखे, हृदय फूटेसदृश मालूम होय और तीखी सुईकसे चभका चले उसको हृदयका स्पर्श नहीं सुहावे दोनो पसवाडोंमें शूल तथा दाह होय, गांठ गांठमें पीडा होय, ज्वर, श्वास, प्यास, स्वरभेद इनसे पीडित होय, खाँसीके वेगसे रोगी कबूतरकी तरह घुघु शब्द करे, ये लक्षण उरःक्षत कासके हैं।

और वातुर्क्षयकास ऐसे कास (खाँसी) का रोग पाँच प्रकारका है।

क्षयरोग ।

क्षयाः पंचैव विज्ञेयास्त्रिभिर्दोषैस्त्रयश्चते ॥
चतुर्थः सन्निपातेन पञ्चमःस्यादुरःक्षतात् ॥ २१ ॥

अर्थ—क्षयरोग पांच प्रकारका है जैसे १ वातक्षय[3] २ पित्तक्षय ३ कफक्षय ४ संनिपातक्षय[6] पांचवा उर.क्षतके होनेसे इस प्राणीके होता है. इस. भाँति क्षयरोगको

---

१ कुपथ्य और विषमाशनके करनेसे, अतिमैथुनसे मल मूत्र आदिका वेग धारनेसे, अतिदया करनेसे, अतिशोक करनेसे अग्नि मद होय, अर्थात् आहार थककर वायु कुपित हो, अग्निको नष्टकरे, तब तीनों दोष कोपको प्राप्तहो क्षयजन्य देहकी नाशक खाँसीको प्रगट करे तब वह खासी देहको क्षीण करे, शूल, ज्वर दाह और मोह ये होय तब यह प्राणका नाश कर, सूखी खांसी रुधिर मास और शरीरको सुखावे रुधिर और राध थूके ये सर्व लक्षणयुक्त और चिकित्सा करनेमें अतिकाठिन ऐसी इस खांसीको वैद्य क्षयज कहतेहैं।

२ क्षयरोगका पूर्वरूप—श्वास, हाथ पैरका गलना, कफका थूकना, तालुएका सूखना, वमन मंदाग्नि, उन्मत्तता, पीनस, खांसी और निद्रा ये लक्षण धातुशोष होनेवालेके होतेहैं। उस मनुष्यके नेत्र सफेद होतेहैं और मांस खानेपर तथा स्त्रीसग करनेकी इच्छा होतीहै। वह सपनेमे कौआ, तोता सेह, नीलकंठ (मोर) गीध, बदर, करकैटा इनपर अपनेको बैठा देखे, और जलहीन नदीको देखे तथा पवन, धूर और धुआँ इनसे पीडित वृक्ष देखे, ये सब स्वप्न क्षयी रोग होनेके दीखतेहैं, कंधा और पसवाडेमें पीडा, हाथ पैरमें जलन और सर्व अगोंमे ज्वर ये तीन लक्षण क्षयके अवश्य होतेहै । ३ वादीके प्रभावसे स्वरभेद, कंधा और पसवाडे इनसे संकोच और पीडा होतीहै। ४ पित्तसे ज्वर, दाह, अतिसार और मुखसे रुधिरका गिरना। ५ कफके कोपसे मस्तकका भारीपन, अन्नसे द्वेष, खासी, स्वरभेद ये लक्षण होतेहैं। ६ वात, पित्त, कफ इन तीनोंके लक्षणो करके युक्त जो होताहै उसको संनिपातक्षय कहते है। ७ बहुत तीरदाजी करनेसे, बहुत भारी वस्तु उठानेसे, बलवान् पुरुषके साथ युद्ध करनेसे, ऊँचे स्थानसे गिरनेसे, बैल, घोडा, हाथी, ऊँट इत्यादि दौडतेहुओंको थामनेसे, भारी शत्रुको मारनेवाला, शिला, लकडे, पत्थर, निर्घात (अस्त्रविक्षेप) इनके फेंकनेसे, जोरसे वेदादिक शास्त्र पढनेसे, अथवा दूर दिगावर शीघ्र चलकर जानेसे, गंगा यमुनादि महानदीको तरनेवाला, अथवा घोडेके साथ दौडनेवाला, अकस्मात् कला खानेवाला, जल्दी जल्दी बहुत नाँचनेसे इसीप्रकार दूसरे मल्लयुद्धादि क्रूरकर्म करनेसे, उरः (छाती) फट जातीहै। ऐसे पुरुषकी छाती दूखनेसे बलवान् उरःक्षतरूप व्याधि उत्पन्न होती है और रूखा थोडा कुसमय तथा छातीमें चोट-लगनेसे, अत्यन्त स्त्रीरमण करनेसे और रूखा थोडा और अनुमानका भोजन करनेवाले पुरुषका हृदय फटेके सदृश मालूमहो अथवा हृदयके तो टूककर डाले ऐसा मालूम होय और हृदय तथा पसवाडोंमें अत्यन्त पीडा होय, अग सब सूखने और थरथर काँपने लगे, शक्ति, मांस, वर्ण, रुचि और अग्नि ये सब क्रमसे घटने लगे, ज्वर रहै, व्यथा होय, मनमे संताप हो दीन होजाय, अग्नि मन्द होनेसे दस्त होने लगे और वारवार खाँसते २ दुष्ट काला, अत्यन्त दुर्गंधयुक्त, पीला, गाँठके समान—

पांच प्रकारका जानना। इसको क्षयी राजयक्ष्मा और राजारोगभी कहते हैं।

शोषरोग।

शोषाःस्युः षट्प्रकारेण स्त्रीप्रसंगाच्छुचो व्रणात्॥
अध्वश्रमाच्चव्यायामाद्वार्धक्यादपि जायते॥ २२॥

अर्थ–क्षयरोगका भेद शोषरोग है। उसके कारण अत्यंत स्त्रीप्रसंग करना। अति शोक करना, घाव, अत्यन्त रस्ता चलना, बहुत दंड कसरत करना और वृद्धावस्थाआनाहै। इस छः कारणोंसे शोषरोग (जिसमें देह सूखजाता है वह रोग) होताहै।

श्वासरोग।

श्वासाश्च पंच विज्ञेयाः क्षुद्रः स्यात्तमकस्तथा॥
उर्ध्वश्वासो महाश्वासश्छिन्नश्वासश्च पंचमः॥ २३॥

अर्थ–श्वासरोग पाच प्रकारकाहै १ क्षुद्रश्वास २ तमकश्वास ३ ऊर्ध्वश्वास

–बहुत और रुधिर मिला ऐसा कफ गिरे इसप्रकार क्षतरोगी अत्यंत क्षीण होय सो केवल क्षतसेही क्षीण होजाय ऐसा नहीं किंतु स्त्रीसेवन करनेसे शुक्र और ओज (सब धातुओंका तेज) का क्षय होनेसे ये मनुष्य क्षीणहोताहै ये उरःक्षतरोगके लक्षण हैं।

१ रसादि सात धातुके शोषण (सूखने) से शरीर क्षीण होताहै इस रोगको शोषकहते हैं।

२ रूखा पदार्थ खाने और श्रमकरनेसे प्रगट हुआ जो श्वास सो पवनको ऊपर लेजाता है। यह क्षुद्रश्वास अत्यंत दुःखदायक नहीं और अंगोको कुछ विकार नहीं करता जैसे ऊर्ध्वश्वासादिक दुःखदायक हैं ऐसे यह नहींहै यह भोजनपानादिकोंकी उचित गतिको नहीं करता, न इंद्रियोंको पीडा करता और न कोई रोग प्रगट करता यह क्षुद्रश्वास साध्य कहागयाहै।

३ जिस कालमें शरीरकी पवन उलटीगतिसे नाडियोंके छिद्रमें प्राप्तहोकर मस्तक तथा कंठका आश्रयकर कफसंयुक्त होताहै तब कफसे रुककर अति वेगपूर्वक कंठमें घुरघुर शब्द करता है और मस्तकमें पीनस रोग करता है वह अत्यंत तीव्रवेगसे हृदयको पीडित करनेवाले श्वासको उत्पन्न करता है उस श्वासके वेगसे रोगी मूर्च्छित होताहै त्रासको प्राप्त होताहै चेष्टारहित होजाता है और खाँसीके उठनेसे बडे मोहको वारवार प्राप्तहोताहै, जब कफ छूटे तब दुःख होय और कफ छूटनेके बाद दोघडीपर्यंत सुख पावे, कंठमें खुजली चले, बडे कष्टसे बोले, श्वासकी पीडासे नींद न आवे सोवे तो वायुसे पसवाडोंमें पीडा होय, बैठेही चैन पडे और गरमीके पदार्थसे सुख होय, नेत्रोंमें सूजन होय, ललाटमें पसीना आवे अत्यंत पीडा होय, मुख सूखे, वारवार श्वास और वारवार हाथीपर बैठनेके सदृश सर्व देह चलायमान होवे यह श्वास मेघके वर्षनसे, शीतसे, पूर्वकी पवनसे और कफकारक पदार्थोंके सेवन करनेसे बढता है। यह तमकश्वास याप्य है यदि नया प्रगट भया होय तो साध्य होय है।

४ बहुत देरपर्यंत ऊंचा श्वासलेय, नीचे आवे नहीं, कफसे मुख भरजावे और सब नाडियोंके मार्ग कफसे बंद होजाँय, कुपितवायुसे पीडित होय ऊपरको नेत्रकर चंचलदृष्टिसे चारो ओर देखे मूर्छा और पीडासे अत्यंत पीडितहोय, मुख सूखे तथा बेहोश होय ये उर्ध्वश्वासके लक्षण हैं।

४महाश्वासको और ५ छिन्नश्वास इसप्रकार श्वास रोगपाच प्रकारहैं ।

हिक्कारोग ।

कथिताः पञ्च हिक्कास्तु तासु क्षुद्रान्नजा तथा ॥
गम्भीरायमला चैव महती पंचमीतिच ॥ २४ ॥

अर्थ—हिक्का हिचकी रोगपाच प्रकारका है। उसमे १ क्षुद्राहिचकी २ अन्नजा हिचकी३गभीरा हिचकी ४ यमला हिचकी और पाँचवीं महती हिचकी इसप्रकार हिचकी पाच प्रकारकी है ।

जठराग्निके विकार ।

चत्वारोऽग्निविकाराः स्युर्विषमो वातसम्भवः ॥
तीक्ष्णःपित्तात्कफान्मन्दो भस्मको वातपित्तकः॥ २५ ॥

अर्थ—जठर अर्थात् उदरकी अग्निके चार प्रकारके विकार हैं । जैसे वादीसे

---

१ जिसका वायु ऊपरको जायके प्राप्त होय, ऐसा मनुष्य दुःखित होकर मुखसे शब्दयुक्त श्वासको ऊँचे स्वरसे निकाले अथवा जैसे मतवाला बैल शब्द करे इसप्रकार रात्रिदिन श्वाससे पीडित होय, उसका ज्ञान विज्ञान जाता रहै, नेत्र चचल होय और जिसका श्वास लेनेमे नेत्र और मुख फटजाय, मल मूत्र बंद होजाय, नहीं बोलाजाय अथवा बोले, तो मंद बोले मन खिन्न होय और जिसका श्वासदूरसे सुनाईदेय यह महाश्वास जिस पुरुषको होय वह तत्काल मरणको प्राप्त होय ।

२ जो पुरुष ठहर ठहरकर जितनी शक्ति उतनी शक्तिसे श्वासको त्यागकरे, अथवा क्लेशको प्राप्त हो श्वासको नहींछोडे और मर्म कहिये, हृदह वस्ती (मूत्रस्थान) और नाडियोको मानो कोई छेदन करे ऐसी पीडाहोय, पेटका फूलना, पसीना और मूर्च्छा इनसे पीडितहोय, वस्ती (मूत्रस्थान) मे जलन होय, नेत्र चलायमानहोय, अथवा नेत्र आँसुओसे भरे होय, श्वास लेते लेते थक जाय, तथा श्वास लेते लेते एक नेत्र लालहोजाय, उद्विग्नचित्त होजाय, मुख सूखे, देहका वर्ण पलट जाय, बकवाद करे, संधिके सब बंध शिथिलहोजाँय, इस छिन्नश्वासकरके मनुष्य शीघ्र प्राणका त्याग करता है ।

३ जो हिचकी बहुत देरमे कठ हृदयकी संधिसे मन्दमन्द चले उसको क्षुद्रानामहिचकी कहते हैं ।

४ अन्न और पानीके बहुत सेवन करनेसे वात अकस्मात् कुपितहो ऊर्ध्वगामी होयकर मनुष्यके अन्नजा हिचकी प्रकट करता है ।

५ हिचकी नाभिके पाससे उठ घोर गभीर शब्दकरे और जिसमे प्यास,ज्वरादि अनेक उपद्रवहो उसको गभीराहिचकी कहते हैं ।

६ ठहर ठहरके दोदो हिचकी चले, शिर कधाको कँपावे उसको यमला हिचकी जाननी ।

७ जो हिचकी मर्मस्थानमे पीडाकरतीहुई और सर्व गात्रको कंपातीहुई सर्वकाल प्रवृत्तहोय,उसको महती हिक्का कहते हैं ।

विषमाग्नि होती है, पित्तसे तीक्ष्ण अग्नि होती है, कफसे मंदाग्नि होती है और वातपित्तसे भस्में अग्नि होती है।

अरोचक रोग।

पञ्चैवारोचका ज्ञेया वातपित्तकफैस्त्रिधा ॥ संनिपातान्मनस्तापाच्-

अर्थ-अरोचक रोग पाचप्रकारका है १ वातारोचक २ पित्तारोचक ३ कफारोचक ४ सनिपातारोचक ५ और मनको दुःख होनेसे जो सताप होताहै उससे (इसप्रकार उत्पन्न होनेवाला) पाचप्रकारका अरोचक (अरुचि) रोग जानना।

छर्दिरोग।

-छर्दयः सप्तधा मताः॥२६॥ त्रिभिर्दोषैः पृथक्तिस्रः कृमिभिः संनिपाततः ॥ घृणया च तथा स्त्रीणां गर्भाधानाच्च जायते ॥२७॥

अर्थ-छर्दि कहिये वमनरोग सात प्रकारका है। जैसे १ वाँतकी छर्दि

---

१ कभी कभी अन्नका पचन होता है और कभी कभी नहीं होता, उसको विषमाग्नि जानना, यह वातकी प्रकृतिसे होती है।

२ भोजनके ऊपर भोजन करनेसे भी सुखकरके अन्नपाक होजाता है सो तीक्ष्ण अग्नि जानना. यह पित्तकी प्रकृतिसे होता है।

३ थोडा भोजन करनेमेभी अन्नका पाक नही होता उसको मंदाग्नि जानना. यह कफकी प्रकृतिसे होता है।

४ भूख अत्यत प्रबल लगती है इसकारण वारंवार भोजन करता है तोभी वह अन्न पचन होजाता है परंतु उस अन्नके रससे शरीरमं पुष्टता नही आती और शरीर कृश होता है उसको भस्मकाग्नि जानना। अन्य ग्रथोंमे भस्मक अग्निका तीक्ष्णाग्निमेंही अन्तर्भाव माना है।

५ वातकी अरुचिसे दाँत खट्टे होय और मुख कषैला होता है।

६ पित्तकी अरुचिसे कडुआ, खट्टा, गरम, विरस, दुर्गन्धयुक्त मुख होजाता है।

७ कफकी अरुचिसे खारा, मीठा, पिच्छल, भारी, शीतल होता है और मुख बंधासरीखा अर्थात् ग्राय नही और आँत कफसे लिप्त होजाय।

८ संनिपातकी अरुचिसे अन्नमें अरुचि तथा मुखमें अनेक रस मालूम हो।

९ शोक, भय, अतिलोभ, क्रोध, अहृद्य (अर्थात् मनको बुरी लगे ऐसी वस्तु) अपवित्र वास इनसे प्रगट हुई अरुचिमे मुख स्वाभाविक रहै, अर्थात् वातजादिकोंके सदृश कषैला, खट्टा आदि नहीं होय।

१० हृदय और पसवाडोंमें पीडा और मुखशोप होवे मस्तक और नाभिमे शूल होय, खाँसी स्वरभेद और सुई चुभनेकीसी पीडा होय, डकारका शब्द प्रबल होय, वमनमें झाग आवे, ठहर ठहरकर वमन होय, तथा थोडी होय, वमनका रग काला होय, पतली और कषैली होय वमनका वेग बहुत होय परंतु वमन थोडा होय और वेगके प्रभावसे दुःख बहुत होय ये लक्षण वायुकी छर्दिके हैं।

२ पित्तकी छर्दि ३ कफकी छर्दि ४ कृमियोंके विकारकी छर्दि ५ सन्निपातकी छर्दि ६ अमेध्य और दुर्गन्धयुक्त पदार्थोंके दुर्गंधसे तथा मनके तिरस्कार होनेसे होतीहै सातवीं छर्दि स्त्रियोंके गर्भ रहनेके पश्चात् होती है । इस प्रकारसे सात प्रकारकी छर्दि जानना ।

स्वरभेदरोग ।

स्वरभेदाः षडेव स्युर्वातपित्तकफैस्त्रयः ॥
मेदसा संनिपातेन क्षयात्षष्ठः प्रकीर्तितः ॥

अर्थ—स्वरभेद (गलेका बैठजाना) रोगके छः प्रकार हैं । जैसे १ वातका स्वरभेद १ पित्तका स्वरभेद ६ कफका स्वरभेद ४ मेदबढनेका स्वरभेद ५ सन्निपातका स्वरभेद

१मूर्च्छा, प्यास, मुखशोष, मस्तक, तालुआ, नेत्र इनमे संताप अर्थात् ये तपायमान रहैं, अन्धेरा आवे, चक्कर आवे, रोगी पीला, हरा, गरम, कडुआ, धुआँके रंगका और दाहयुक्त पित्तको वमन करे, यह पित्तकी छर्दीके लक्षण हैं ।

२ तंद्रा, मुखमें मिठास, कफका पडना, संतोष (अन्नमें अरुचि) निद्रा, अरुचि, भारीपना इनसे पीडित हो, चिकना, गाढा, मीठा, सफेद कफको वमन करे और जब रद्द करे तब पीडा थोडी होय रोमाञ्च होय, ये कफकी छर्दीके लक्षण हैं ।

३ कृमिकी छर्दीमे शूल, खाली रद्द ये विशेष होते हैं बहुधा कृमि और हृदयरोगके लक्षण सदृश इसके लक्षण जानने ।

४ शूल, अजीर्ण, अरुचि, दाह, प्यास, श्वास, मोह इन लक्षणोंसे प्रबल भई जो वमन सो संनिपातसे होती है । रद्द करनेवालेकी वमन खारी, खट्टी, नीली, सघट्ट, (जिसको देशवारे मनुष्य जाडी कहते हैं) गरम, लाल, ऐसी होती है ।

५ अमेध्य मांस मछली आदि पदार्थोंके दुर्गंधसे मनको तिरस्कार आके जो वमन होताहै, उसमें जिस दोषका कोपहो उस दोषकी रद्द जाननी । स्त्रियोंके गर्भ रहने पश्चात् जो वमन होताहै, उसके भी ऐसेही लक्षण जानने ।

६ बहुत जोरसे बोलनेसे, विषके खानेसे, ऊँचे स्वरके पाठ करनेसे (अर्थात् वेदादिपाठ करनेसे) कंठमें लकडी काष्ठ आदिकी चोट लगनेसे कोपको प्राप्त हुये जो वात, पित्त, कफ सो कंठमें बहनेवाली चार नसे हैं उनमे प्राप्तहो अथवा उनमे वृद्धिको प्राप्तकर स्वरका नाश करै उसको स्वरभेद रोग कहतेहैं ।

७ वायुसे स्वरभेद होय तो रोगीके नेत्र, मुख, मूत्र, और विष्ठा ये काले होय वह पुरुष टूटा हुआ शब्द बोले, अथवा गधाके स्वरप्रमाण कर्कश बोले ।

८ पित्तस्वरभेदवाले मनुष्यके नेत्र, मुख, मूत्र, और विष्ठा ये पीले होते हैं और बोलते समय गलेमें दाह होता है ।

९ कफके स्वरभेदसे कंठ कफसे रुकारहै, मन्दमन्द तथा थोडा बोले और दिनमें बहुत बोले ।

१० मेदके सम्बन्धसे कफ अथवा मेदसे गला लिप्त होय, अथवा मेदसे स्वरके मार्ग रुकजानेसे प्यास बहुत लगे, गलेके भीतर और मद बोले ।

११ संनिपातके स्वरभेदमे तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं स्वरभेद असाध्य है ऐसा ऋषि कहते हैं ।

और छठा क्षयरोगका स्वरभेद ऐसे स्वरभेदरोग छःप्रकारका जानना।

तृष्णारोग।

तृष्णा च षड्विधा प्रोक्ता वातात्पित्तात्कफादपि ॥
त्रिदोषैरुपसर्गेण क्षयाद्धातोश्च षष्ठिका ॥ २९ ॥

अर्थ–तृष्णारोग छः प्रकारका है जैसे १ वाततृष्णा २ पित्ततृष्णा ३ कफतृष्णा ४ त्रिदोषतृष्णा ५ आगंतुक जो शस्त्रादिकों करके क्षत होनेसे होतीहै सो उपसर्गज तृष्णा और जो धातुक्षयसे होतीहै सो ६ धातुक्षयजन्य तृष्णा ऐसे छः प्रकारका तृष्णा (प्यास) रोग है मनुष्योंको जो वारंवार पानी पिनेकी इच्छा होतीहै और पानी पीनेसेभी प्यास जाती नहीं फिर फिर इच्छा होती है उसको तृष्णा कहते है।

मूर्च्छारोग।

मूर्च्छा चतुर्विधा ज्ञेया वातपित्तकफैः पृथक् ॥
चतुर्थी संनिपातेन--

---

१ क्षयीके स्वरभेदवाले पुरुषके बोलते समय मुखसे धुआँसा निकले और वाणी क्षय होजाय अर्थात् यथार्थ स्वर नहीं निकले इस स्वरभेदमें जिस समय वाणी हत होजाय, अर्थात् ओजका क्षय होनेसे बोलनेकी सामर्थ्य नहीं हो तब यह असाध्य होताहै और ओजका क्षय (नाश) नहीं होय तो साध्यहै।

२ वातकी तृषा (प्यास) में मुख उतर जाय, अथवा दीन होय, कनपटी और मस्तक इन ठिकानेमें नोचनेके समान पीडा होय और जल वहनेवाली नाडियोंका मार्ग रुकजाय, मुखका स्वाद जातारहै और शीतल जलके पीनेसे प्यास बढे। ३ पित्तकी तृषामे मूर्छा, अन्नमें अरुचि, बडबड, दाह, नेत्रोंमें लाली, अत्यंत शोष, शीतपदार्थकी इच्छा, मुखमें कडुआट और संताप ये लक्षण होते हैं। ४ अपने कारणसे कुपित कफकरके जठराग्नि आच्छादित होती है तब अग्निकी गरमी अधोगत जलके वहनेवाली नाडीनको सुखाय कफकी तृषाको प्रगटकरती है। केवल कफसे तृषाका प्रगट होना असभव है, केवल कफ बढे भयका द्रवीभूतधर्म होनेसे प्यासकर्तृत्व असभव है। और वात- पित्तकी तृषा होनेसे होता है सो अर्थांतरमें लिखामी है. इसीसे चरकाचार्यने कफकी तृष्णा नहीं कही सुश्रुतने चिकित्सामें भेद होनेसे कही है। हारीतनेभी सपित्तकफकी तृषा मानी है, केवल कफकी नहीं मानी इस तृषामे निद्रा, भारीपन, मुखमें मिठास ये लक्षण होतेहैं, इस तृषासे पीडित पुरुष अत्यत सूख जाता है। ५ वात, पित्त, कफ इन तीनोंके तृष्णाके समान जिस तृष्णामे लक्षण होय उसको त्रिदोषज तृष्णा कहते हैं। ६ हीनस्वर, मोह, मनमे ग्लानि होय, मुख दीन होजाय, हृदय, गला और तालु सूखजाय ये तृष्णाके उपद्रव हैं, कि जो मनुष्यको सुखाय डालते है और व्याधिके कारण शरीर कृश होनेसे यह कष्टसाध्य होजाय है वे उपद्रव यह हैं. ज्वर, मोह, क्षय, खाँसी, श्वास, अतिसारादिक। ये रोग जिसके होय उसकी तृष्णा कष्टसाध्य जाननी। ७ रसक्षयसे जो तृष्णा होय उसमें जो लक्षण होते हैं सोही सब क्षयजतृष्णामें होते हैं। तिससे पीडित पुरुष रात्रिदिन वारवार पानी पीवे परतु संतोष नहीं होता।

अर्थ—मूर्च्छा चार प्रकारकी है १ वातकी मूर्च्छा २ पित्तकी मूर्च्छा ३ कफकी मूर्च्छा और चौथी सन्निपातकी मूर्च्छा है। इस प्रकार चार प्रकारकी मूर्च्छा जानना।

तहां पित्ततमोगुणसे मोह उत्पन्न होताहै। संज्ञा और चेष्टाके वहनेवाले छिद्र वातके विकारसे आच्छादित होनेसे अकस्मात् शरीरमे तमोगुण बढकर सुखदुःखका ज्ञान जाता रहै और मनुष्य लकडीके समान पृथ्वीपर गिरजावे उसको मूर्च्छा कहते हैं।

भ्रम, निद्रा, तंद्रा, सन्यास रोग।

-तथैकश्च भ्रमः स्मृतः ॥ ३० ॥
निद्रा तन्द्रा च संन्यासो ग्लानिश्चैकैकशः स्मृतः ॥

अर्थ—भ्रम १ निद्रा २ तद्रा ३ संन्यास ४ ग्लानि ५ ये पांच रोग एक एक प्रकारके हैं इनके क्रमसे लक्षण कहते हैं। रजोगुण पित्त और वायु इनसे भ्रम उत्पन्न होताहै। तमोगुण और कफ इन दोनोसे उत्पन्न हो इद्रिय और मन इनको मोहितकर बाह्य घटपटादिक पदार्थोंका ज्ञान न रहे उस अवस्थाको निद्रा कहते हैं। और इन्द्रियोंको मोहित कर कुछ सोवै और कुछ जागता रहनेपर नेत्र खुले मुँदे रहैं उसको तन्द्रा कहते हैं। देह मन इनका व्यापार बंद होकर मरेके समान लकडीसा गिर पडे उसको प्राणसन्यास कहते हैं। यह एक घोर निद्राकी अवस्था है। ग्लानिके लक्षण इसी खडके छठे अध्यायके अतमें कह आये है सो जानना।

मदरोग।

मदाः सप्त समाख्याता वातपित्तकफैस्त्रयः ॥ ३१ ॥

---

१ जो मनुष्य नीले अथवा लाल रगके आकाशको देखे पीछे मूर्छाको प्राप्त होय और जल्दी बेहोश हो जाय, देहमे कप अगोका फूटना हृदयमे पीडा होय, शरीर कृश होजाय, शरीरका रंग काला लाल पडजाय, उसको वातकी मूर्छा जानना।

२ जिसको आकाश लाल हरा, पीला दोखे पीछे मूर्छा आवे और सावधान होते समय पसीना आवे प्यास होय सताप होय, नेत्र लाल पीले होय, मल पतला होय, देहका वर्ण पीला होय, ये लक्षण पित्तकी मूर्छाके है।

३ कफकी मूर्च्छामे आकाशको मेघके समान अथवा अंधकारके समान अथवा बद्दल इनसे व्याप्त देखकर मूर्च्छागत होय, देरमे सावधान होय, देहपर भारी बोझासा भार मालूम होय अथवा गीला चमडा धारण कियाहुआसा मालूम होय, मुखसे पानी गिरे, रद्द होवगी ऐसा मालूम होय।

४ सन्निपातकी मूर्छामे सब दोषोके लक्षण होतेहैं, इस रोगको दूसरा अपस्मार(मृगी) जानना चाहिये परतु अपस्मारोंमे दाँतका चबाना मुखसे झाग गिरना, नेत्रोका हाल औरही प्रकारका होजाना इत्यादिक लक्षण होतेहै, सो इस रोगमे नहीं होते, इतनाही भेद है।

५ सन्यास रोगका उपाय जल्दी होवे तो मनुष्य बचताहै नहीं तो मरताहै. उसका उपाय यही है कि, हाथ पैरोंकी उँगलियोको सुईसे छेदनकरे अथवा फस्त खोलकर रुधिर निकाले।

त्रिदोषैरसृजो मद्याद्विषादपि च सप्तमः ॥

अर्थ-मदरोग सात प्रकारका है जैसे १ वातमद २ पित्तमद ३ कफमद ४ त्रिदोषमद ५ रुधिरकुपित होनेसे जो होय और ६ प्रमाणसे अधिक मद्य पीनेसे होय सो तथा ७ वच्छनाग आदि विष भक्षण करनेसे होय सो इस प्रकार सात प्रकारके मदरोग जानने। सुपारी, कोदो-धान्य, धतूरा इत्यादिके भक्षण करनेसे जैसे मतवाला आदमी हो जाता है उसी प्रकारका वातादि दोष दुष्ट होकर मनको विभ्रम करते हैं उसको मद कहते हैं इसमे जिस दोषका अधिक कोप होता है उसी दोषके लक्षण होते हैं। इस रोगवालेको मतवाला कहते हैं।

मदात्ययरोग।

मदात्ययश्चतुर्धा स्याद्वातात्पित्तात्कफादपि ॥ ३२ ॥
त्रिदोषैरपि विज्ञेय एकः परमदस्तथा ॥ पानाजीर्णं त-
था चैकं तथैकः पानविभ्रमः ॥३३॥ पानात्ययस्तथा चैकः-

अर्थ-मद्यका प्रमाण इस प्रकार लेना कि प्रातःकाल दातन आदि शरीरकी शुद्धिके कर्मसे निवटकर ८ तोले मद्य पीवे। दुपहरको चिकने पदार्थ घी मिला गेहूँका चून (मैदाआदि) तथा मास इत्यादिकोंके साथ पीवे। तथा रात्रिके आरंभमें चौगुनी पीवे परतु जितना अपनी देहको सहन होवे उतना पीवे वढती न पीवे इस प्रकार सेवन करनेसे वह मद्य रसायनरूप होकर आयुष्यकी तथा शरीरकी वृद्धि करता है तथा बल देता है और अमृतके समान हितकारक होता है। इसमें अतर पडनेसे अर्थात् जितनी सेवन करते हैं उससे अधिक सेवन करनेसे बुद्धिभ्रंश होवे तथा वह मद्य विषके समान होकर दाहादिक उपद्रवके चिह्न करता है। प्राण व्याकुल होते है तथा कहीं कहीं प्राणहानिभी होती है। उसको मदात्यय रोग कहते हैं वह मदात्यय वात पित्त[2] कफ[3] त्रिदोष[4] इन भेदोंसे चार प्रकारका है। परमद, पानाजीर्ण, पानविभ्रम और पानात्यय ये चार मदात्यय रोगके भेद जानने। यदि मद्यपीने आदिके गुणागुण अधिक जानने हो तो चरक सुश्रुत आदि बृहद्ग्रन्थोंको देखो।

---

१ हिचकी, श्वास, मस्तकका कप होना, पसवाडेमें पीडा, निद्राका नाश और अत्यंत बकवाद ये लक्षण जिसमें होंय उसको वातप्रधान मदात्यय रोग जानना।

२ प्यास, दाह, ज्वर, पसीना, मोह, अतिसार, विभ्रम (कुछ कुछ ज्ञान होय) देहका वर्ण हरा होय, इन लक्षणोंसे पित्तप्रधान मदात्यय जानना।

३ वमन (रद्द) अन्नमे अरुचि, खालीरद्द (ओकारी) तन्द्रा, देह गीली भारी और शीतलगे, इन लक्षणोंसे कफप्रधान मदात्यय जानना।

४ जिसमे त्रिदोषमदात्ययके लक्षण मिलते हो उसको सनिपातप्रधान मदात्यय जानना।

दाहरोग ।

--दाहाः सप्त मतास्तथा॥रक्तपित्तात्तथा रक्तात्तृष्णायाः पित्त-तस्तथा ॥ ३४ ॥ धातुक्षयान्मर्मघाताद्रक्तपूर्णोदरादपि ॥

अर्थ—देहमें जो जलन होती है उसको दाह रोग कहते हैं यह सात प्रकारका है १ रक्तपि-त्तके कुपित होनेसे होय सो २ रुधिरके कोपसे होय सो ३ तृषाके रोकनेसे ४ पित्तके कोपसे ५ रसादिक धातुओंके क्षय करके ६ मर्मस्थलमे चोट लगनेसे जो होय और जो ७ बडे भारी घोर शस्त्रादिका प्रहार होकर कोठेमें रुधिर जमनेके कारणसे होवे । इस प्रकार दाह रोग सात प्रकारका जानना ।

उन्मादरोग ।

उन्मादाः षट् समाख्यातास्त्रिभिर्दोषैस्त्रयश्च ते ॥
संनिपाताद्विषाज्ज्ञेयः षष्ठो दुःखेन चेतसः ॥ ३५ ॥

अर्थ—उन्माद रोग छः प्रकारका है जैसे १ वातोन्माद २ पित्तोन्माद ३ कफोन्माद ।

---

१ जिसमे कुछ लक्षण रक्तके मिलते हो और कुछ पित्तके हों उसको रक्तपित्तज दाह कहते हैं ।

२ सर्व देहका रुधिर कुपित होकर अत्यंत दाहकरे और वह रोगी अग्निके समीप रहनेसे जैसा तपता है ऐसा तपे, प्यासयुक्त, ताम्रके रंग सदृश देहका रंग होय और नेत्रभी लाल होय, तथा मुखसे और देहसे तप्तलोहेपर जल डालनेकीसी गंध आवे और अंगमे मानो किसीने अग्नि लगायदीनी है ऐसी वेदना होय उसे रुधिरके कोपसे उपजी दाह कहते हैं ।

३ प्यासके रोकनेसे जलरूप धातुक्षीण होकर तेज कहिये पित्तकी गरमीको बढावे, तब वह गरमी देहके बाहर और भीतर दाहकरे । इस दाहसे रोगी बेसुध होय और गला, तालु, होठ यह अत्यत सूखे और जीभको बाहर काढदे और कांपे ,

४ पित्तसे जो दाह होय उसमें पित्तज्वरकेसे लक्षण होते हैं । उसपर पित्तज्वरकी चिकित्सा करनी चाहिये पित्तज्वरमें और पित्तके दाहमे इतना अन्तर है कि पित्तज्वरमे अग्नि और आमाशयका दुष्ट होना होता है और पित्तके दाहमे नहीं होता है और सब लक्षण एकही हैं ।

५ धातुक्षयसे जो दाह होय उसे रोगी मूर्च्छा प्यास इनसे युक्त स्वरभग तथा चेष्टाहीन होता है इस दाहमें पीडित होकर यदि चिकित्सा न करावे तो वह रोगी मरणको प्राप्त होताहै ।

६ मर्मस्थान (हृदय-शिर-वस्ति) मे चोट लगनेसे होय जो दाह सो असाध्य है ।

७ शस्त्र कहिये तल्वार आदिके लगनेसे प्रगट रुधिरसे कोष्ठ कहिये हृदय भरजावे तब अत्यंत दुःसह दाह प्रगट होता है एव क्षतजदाहसे कोष्ठ शब्दसे यहांपर हृदय आमाशय आदि स्थान जानना उसे आहार थोडा रह जावे, अनेक प्रकारके शोककर दाह होय और इस दाह करके आभ्यंतर दाह होय तथा प्यास, मूर्च्छा, और प्रलाप (बकवाद) ये लक्षण होंय ।

८ रूखा, थोडा और शीतल अन्न, धातुक्षय और उपवास इन कारणोंसे अत्यंत बढी जो वायु सो चिंता शोकादि करके युक्त होकर हृदय (मन) को अत्यत दुष्टकर बुद्धि और स्मरण—

४ सन्निपातोन्माद ५ विषसेवनका उन्माद ६ धनबंधुनाशजन्य मनको दुःख होनेसे होता है सो शोकज उन्माद वातादिक दोषोंके बढनेसे अपना २ नित्यका मार्ग छोडकर अन्य मनोवाहिनी नाडियोंमें जायके चित्तको विभ्रम करे हैं इसीसे इस रोगको उन्माद कहते हैं।

भूतोन्मादरोग।

भूतोन्मादा विंशतिः स्युस्ते देवाद्दानवादपि॥ गन्धर्वात्किनराद्यक्षात्पितृभ्यो गुरुशापतः॥ ३६॥ प्रेताच्च गुह्यकाद् वृद्धात्सिद्धाद्भूतात्पिशाचतः॥ जलादिदेवतायाश्च नागाच्च ब्रह्मराक्षसात्॥ ३७॥ राक्षसादपि कूष्माण्डात्कृत्यावेतालयोरपि॥

अर्थ—भूतोन्माद बीस प्रकारका है उनके नाम कहते हैं जैसे १ देवग्रह कहिये गणमातृका-

---

—इनका शीघ्र नाश करती है हँसनेके कारण विना हँसे. मन्दमुसकान करे,नाचे, विना प्रसंगके गीत गावे और बोले, हाथोंको सर्वत्र चलावे, रोवे और शरीर रूखा तथा कृश और लाल होजाय और आहारका परिपाक भये पर जियादह जोर होय, ये वातउन्मादके लक्षण हैं।

९ अधकच्ची, कडवी, खट्टी, दाह करनेवाली और गरम वस्तुका भोजन करनेसे सञ्चित भया जो पित्त सो तीव्रवेग होकर अजितेंद्री पुरुषके हृदयमें प्रवेश कर पूर्ववत् अति उग्र उन्माद तत्काल उत्पन्न करता है इस उन्मादसे असहनशील, हाथ पैरोंको पटकना, नग्न होजाय, डरपे, भाजने लगे, देह गरम हो जाय, क्रोधकरे, छायामें रहे, शीतल अन्न और शीतल जल इनकी इच्छा, पीला मुख हो जाय यह लक्षण पित्तज उन्मादके हैं। १० मन्द भूखमें पेटभर भोजनकर कुछ परिश्रम न करे ऐसे पुरुषके पित्तयुक्त कफ हृदयमें अत्यन्त बढकर बुद्धि, स्मरण और चित्त इनकी शक्तिका नाश करता है और मोहित कर उन्मादरूप विकारको उत्पन्न करता है उस विकारसे वाणीका व्यापार कहिये बोलना इत्यादि मन्द होय, अरुचि होय, स्त्री प्यारी लगे, एकात वास करे, निद्रा अत्यन्त आवे वमन होय, मुखसे लार बहे, भोजन करनेके पीछे रोगका जोर हो, नख त्वचा मूत्र नेत्रादिक सफेद होय यह लक्षण कफके उन्मादके हैं।

---

१ जो उन्माद वातादिक तीनों दोषोंके कारण करके होता है वह सन्निपातजन्य उन्माद बहुत भयंकर होता है उसमें सब दोषोंके लक्षण होते हैं। इसमें विरुद्ध औषधकी विधि वर्जित है यह उन्माद वैद्योंकरके त्याज्य है कारण कि यह असाध्य है। २ विषसे प्रगट उन्मादमें नेत्र लाल होय, बल, इन्द्रिय और शरीरकी कांति नष्ट होजाय, अतिदीन हो जाय, उसके मुखपर कालोंच आय जाय और संज्ञा जाती रहै। ३ चोरोंने, राजाके मनुष्योंने अथवा शत्रुओंने उसी प्रकार सिंह, व्याघ्र, हाथी आदि किसीने त्रास दिया होय, अथवा धन बन्धुके नाश होनेसे, इस पुरुषका अन्तःकरण अत्यन्त दूखे, अथवा प्यारी स्त्रीसे संभोग करनेकी इच्छावाले पुरुषके मनमें भयंकर विकार उत्पन्न होय, पुरुष गुणवानको भी कहने लगे और अनेक प्रकारका बोले, विपरीत ज्ञान होय, गावे, हँसे और रोवे, तथा मूर्ख हो जाय। ये लक्षण शोकज उन्मादके हैं। ४ देवग्रह जो गणमातृकादिक पीडित मनुष्य सदा संतोषयुक्त रहे, पवित्र रहै देहमें दिव्यपुष्पके समान सुगन्ध, नेत्रोंके पलक लगे नहीं,सत्य और संस्कृतका बोलनेवाला हो, तेजस्वी स्थिरदृष्टि, वरका देनेवाला 'तेरा कल्याण हो' ऐसा वर देय और ब्राह्मणसे प्रीति रक्खे।

दिक २ दानव (पापबुद्धि असुर) ३ गन्धर्व (देवताओंके आगे गान करनेवाले) ४ किन्नर (उन्हीं गन्धर्वोंका भेद है) ५ यक्ष ६ पितर (अग्निष्वात्तादिक) ७ गुरु ८ प्रेत ९ गुह्यक १० वृद्ध ११ सिद्ध १२ भूत १३ पिशाच १४ जलादिदेवता १५ नाग १६ ब्रह्मराक्षस १७ राक्षस १८ कूष्माडराक्षस १९ कृत्या २० वेताल इसप्रकार वीस भेद

---

१ पसीनायुक्तदेह, ब्राह्मण, गुरु और देव इनमें दोषारोपण करनेवाला, टेढी दृष्टिसे देखनेवाला, निर्भय, वेदविरुद्धमार्गका चलनेवाला और बहुत अन्न जलसे भी जिसके संतोष न होय और दुष्टबुद्धि, ऐसे मनुष्यको दैत्यग्रहपीडित जानना।

२ गन्धर्वग्रहसे पीडित मनुष्य प्रसन्नचित्त, पुलिन और बाग बगीचामे रहनेवाला, अनिन्दित आचारका करनेवाला, गान, सुगन्ध और पुष्प ये जिसको प्यारे लगे ऐसा होता है। वही पुरुष, नाचे, हँसे, सुन्दर बोले, थोडा बोले।

३ किन्नर ग्रहसे पीडित मनुष्योंके लक्षण गन्धर्वग्रहके सदृशही होते हैं।

४ यक्षपीडित मनुष्यके नेत्र लाल होते हैं और वह सुदर वारीक ऐसे रक्त वस्त्रका धारण करनेवाला, गंभीर, बुद्धिमान्, जलदी चलनेवाला, प्रमाणका बोलनेवाला, सहनशील, तेजस्वी किसको क्या देऊँ ऐसे बोलनेवाला होता है।

५ कुशोंके ऊपर प्रेतोंको (पितरोंको) पिंडदेय, चित्तमे भ्राति रहे और उत्तरीय वस्त्र अपसव्य करके तर्पण भी करे, मांस खानेकी इच्छा होय, तथा तिल, गुड, खीर इनपर मन चले (इस कहनेका प्रयोजन यह है कि, जिसकी जिस पदार्थपर इच्छा होय उसको उसी पदार्थकी बली देनेसे उस ग्रहकी शाति होती है ऐसेही सर्वत्र जानना यह डल्लनका मत है) और वह मनुष्य पितरोंकी भक्ति करे। ये लक्षण पितृग्रहपीडित मनुष्यके हैं।

६ गुरु कहिये ब्राह्मणादिक माता पिता आदि बडोंके अपराध करनेसे जो शाप होता है तिससे मनुष्योंको उन्माद उत्पन्न होता है उसके लक्षण प्रेत, गुह्यक, वृद्ध, सिद्ध और भूत इनके लक्षणोंके सदृशही होते हैं।

७ पिशाचजुष्टके लक्षण ये हैं कि, जो अपने हाथ ऊपरको करे नगा होजाय, तेजरहित, बहुत देरपर्यंत बकनेवाला, जिसके देहमे अपवित्र दुर्गन्ध आवे तथा अतिचचल कहिये सब अन्नपानमें इच्छा करनेवाला, खानेको मिले तो बहुत भोजन करे, एकात वनातरोमे रहनेवाला, विरुद्ध चेष्टा करनेवाला, रुदनकर्ता, डोलनेवाला ऐसा मनुष्य होता है।

८ जलादि देवता कहिये जलदेवता अप्सरा आदिक और स्थलदेवताभी इनके लक्षण अनुमान करके समझ लेना।

९ जो मनुष्य सर्पके समान पृथ्वीमें लोटा करे, अर्थात् छातीके बल चले, तथा सर्पके समान अपने ओष्ठप्रात (होठों) को चाटा करे, सदा क्रोधी रहै, सदत, गुड, दूध और खीरकी इच्छा रहै उसे सर्पग्रहग्रस्त जानना।

१० देव, ब्राह्मण, गुरुसे द्वेषकर्ता, वेद और वेदके अग (शिक्षा, व्याकरण, ज्योतिष, छन्द, निघण्टु, निरुक्त) का पढाभया, शीघ्र पीडाका कर्ता, हिंसा करे नहीं, ये लक्षण ब्रह्मराक्षससेवी मनुष्यके हैं।

११ राक्षसोंसे पीडित जो उन्मादरोगी वह मास, रुधिर और नानाप्रकारके मद्य इनमे प्रीति-

देवतादि ग्रहोके कहे हैं। तिनमें ग्रहका शरीरमें संचार होकर उस ग्रहकीसी चेष्टाके समान मनुष्य चेष्टा करते हैं उसको भूतोन्माद कहते हैं।

अपस्माररोग।

अपस्मारश्चतुर्धा स्यात्समीरात्पित्ततस्तथा ॥ ३८ ॥
श्लेष्मणोपि तृतीयः स्याच्चतुर्थः संनिपाततः ॥

अर्थ—अपस्मार रोग चार प्रकारका है जैसे १ वातापस्मार २ पित्तापस्मार ३ कफापस्मार ४ और संनिपातापस्मार इस प्रकारसे अपस्मार (मृगी) रोगको चार प्रकारका जानना।

आमवातरोग।

चत्वारश्चामवाताःस्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा॥३९॥चतुर्थःसंनिपाताच्च-

अर्थ—आमवात रोग चार प्रकारका है। जैसे १ वातामवात २ पित्तामवात

—रखनेवाला और निर्लज्ज होता है अर्थात् नगा रहनेसेभी लाज नहीं धरता निर्दय होता है शूरता दिखाता है, क्रोधी, बलिष्ठ, रात्रिमें भटकनेवाला और अच्छे कर्मोंसे द्वेषकरनेवाला होता है इसीके सदृश कूष्मांड राक्षस कृत्या और वेताल इनकरके पीडित मनुष्योंके लक्षण अनुमानसे जानलेना।

१ चिंता, शोक, क्रोध, लोभ, मोहादिसे कुपित जो दोष वात, पित्त, कफ सो हृदयमें स्थित जो मनको कहनेवाली नाडी उनमें प्राप्तहो स्मरण (ज्ञान) का नाशकर अपस्मार रोगको प्रगट करते हैं।

२ वातके अपस्मारमें रोगी कांपे दांतोंको चबावे मुखसे लार गेरे और श्वास भरे तथा कर्कश अरुणवर्ण मनुष्योंको देखे अर्थात् कोई नीलवर्णका मनुष्य मेरे पास दौडा आता है ऐसा देखे।

३ पित्तकी मिरगीवालेके झाग, देह, नेत्र और मुख ये पीले होते हैं और वह पीले रुधिरके रंगकीसी सब वस्तु देखे, प्यासयुक्त और गरमीके साथ अग्निसे व्याप्तभया ऐसा सब जगतको देखे और मेरे पास पीले वर्णका पुरुष दौडा आता है ऐसा देखे।

४ कफकी मृगीवालेके झाग, अंग, मुख और नेत्र सफेद होय, देह शीतल होय, देह तथा देहके रोमांच खडे रहैं, भारी होय और सब पदार्थ सफेद दीखे और सफेद रंगका पुरुष मेरे सामने दौडा आता है ऐसा देखे यह अपस्मार (मिरगी) रोग देरमें छोडे अर्थात् वातपित्तकी मृगी जलदी रोगीको छोड देती है।

५ जिसमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलते हों उसको त्रिदोषज अपस्मार जानना यह असाध्य है और जो क्षीण पुरुषके होय वह भी असाध्य है, तथा पुराना पडगया हो वह भी अपस्मार (मिरगी) रोग असाध्य है।

६ अंगोका टूटना अरुचि, प्यास, आलसक, भारीपना, ज्वर, अन्नका न पचना और देहमें शून्यता हो जाय इस रोगको आमवात कहतेहैं।

७ वातके आमवातमें शूल होता है।

८ पित्तसे जो आमवात होय उसमें दाह और लालरंग होताहै।

३ कफामवात ४ सन्निपातामवात । इन भेदोंसे आमवात रोग चार प्रकारका है।

शूलरोग।

शूलान्यष्टौ बुधा जगुः ॥ पृथग्दोषैस्त्रिधाद्वन्द्वभेदेन त्रिविधान्यपि ॥ ४० ॥ आमेन सप्तमं प्रोक्तं संनिपातेन चाष्टमम् ॥

अर्थ—शूलरोग आठ प्रकारका है। १ वातशूल २ पित्तशूल ३ कफशूल ४ वातपित्तशूल ५ पित्तकफशूल ६ कफवातशूल ७ आमशूल ८ संनिपातशूल इसप्रकार

---

१ कफसबंधी आमवातमें देहमें आर्द्रता (गीला) और भारीपन तथा खुजली चलती है। २ त्रिदोषसे प्रगट आमवातमे तीनो दोषोंके लक्षण होते हैं, यह कष्टसाध्य है। ३ दड, कसरत, बहुतचलना, अतिमैथुन, अत्यत जागना, बहुत शीतल जल पीना, कागनी, मूँग, अरहर, कोदो, अत्यंत रूखे पदार्थके सेवनसे और अध्यशन (भोजनके ऊपर भोजन) लकडी आदिके लगनेसे, कषैला, कडुआ, भीजा अन्न जिसमे अंकुर निकस आये हो, विरुद्ध-क्षीर मछली आदि, सूखामांस, सूखाशाक, (कचरिया आदि) इनके सेवनसे, मल मूत्र शुक्र और अधोवायु इनके वेगको रोकनेसे, शोकसे, उपवासके करनेसे, अत्यत हँसनेसे, बहुत बोलनेसे कोपको प्राप्त भई जो वात सो बढकर हृदय, पसवाड पीठ, त्रिकस्थान, मूत्रस्थानमें शूलको करे और भोजन पचनेके पीछे प्रदोषकालमे, वर्षाकालमें, शीत कालमे, इन दिनोमे शूल अत्यत कोपकरे और वारवार कोप होय. मल, मूत्रका अवरोध, पीडा और भेद ये लक्षण वातशूलके हैं. तथा स्वेदन और अभ्यंजन तथा मर्दन इत्यादिकसे और चिकने गरम अन्नसे यह शूल शांत होता है।

४ यवक्षार आदि खार, मिरच आदि तीक्ष्ण, और गरम, विदाहकारक बीज और करील आदि तेल, खिली, खल, कुलथीका यूष, कडुआ, खट्टा, सौवीर (मद्यविशेष) सुराविकार, (काँजी इत्यादिक) क्रोधसे, अग्निके समीप रहनेसे, परिश्रमसे, सूर्यकी तीव्र धूपमें डोलनेसे, अति मैथुन करनेसे, विदाहकारक अन्न आदि इन कारणोंसे पित्त कुपित होकर नाभिस्थानमें शूल उत्पन्न करे वह शूल तृषा, मोह, दाह, पीडा, पसीना, मूर्छा, भ्रम शोष इनको करे दुपहरके समय, मध्यरात्रिमे अन्नके विदाहकालमे, शरद्कालमे शूल अधिक होय। शीतकालमें शीतलपदार्थसे और अत्यन्त मधुर (मीठा) शीतल अन्नसे यह शूल शात होय।

५ जलके समीप रहनेवाले पक्षियोंका मांस, मछली आदिका मांस दही, घृत, मक्खन आदि दूधके विकार, मांस, ईखका रस, पिसा अन्न, खिचडी, तिल, पूरी कचोडी आदि और कफकारकपदार्थ खानेसे कफ कुपित होकर आमाशयमे शूलरोगको प्रगट करे, उसे सूखी रद्द, खासी, ग्लानि, अरुचि, मुखसे लार गिरे, बद्धकोष्ठता, मस्तक भारी हो, ये लक्षण होय, भोजन करते समय पीडा होय. सूर्योदयके समय, शिशिरऋतुमे और वसंतकालमे शूल बहुत होव।

६ दाह ज्वर करनेवाला, ऐसा भयंकर शूल होय सो वातपित्तका जानना।

७ कूख, हृदय, नाभि और पसवाडे इनमें पित्तकफका शूल होता है।

८ वस्ति (मूत्रस्थान) हृदय, कंठ, पसवाडे इन ठिकाने शूल होय उसे कफवातका शूल जानना।

९ पेटमे गुडगुडाहट होय, उबाकियोंका आना रद्द, देह भारी, मन्दता, अफरा, मुखसे कफका स्राव इन लक्षणोंसे तथा कफशूल लक्षणोंके समान ऐसे शूलको आमशूल कहते हैं।

१० जिसमे तीन (वात, पित्त, कफ) के लक्षण मिलते हो उसको संनिपातका शूल कहते हैं, मांस, बल, और अग्नि जिसके क्षीण होगये हों ऐसा शूलरोग असाध्य जानना।

आठ प्रकारका शूल रोग है इन आठोंमें बहुधा वायु मुख्य शूलकर्त्ता है।

परिणामशूलरोग।

परिणामभवं शूलमष्टधा परिकीर्तितम् ॥ ४१ ॥ मलैर्यैःशूलसंख्या स्यात्तैरेव परिणामजे ॥ अन्नद्रवभवं शूलं जरत्पित्तभवं तथा ॥ ४२ ॥ एकैकं गणितं सुज्ञैः--

अर्थ—भोजन पचनेपर जो शूल होय उसको परिणामशूल कहते हैं। वह वातादि दोषों करके आठ प्रकारका है उन्हीं दोषो करके यह परिणाम शूल आठ प्रकारका है। अन्नद्रव शूल और जरत्पित्तशूल ये दो शूल एक एक प्रकारके जानने।

उदावर्तरोग।

उदावर्तास्त्रयोदश ॥ एकःक्षुधानिग्रहजस्तृष्णारोधाद्वितीयकः ॥४३॥ निद्राघातात्तृतीयः स्याच्चतुर्थःश्वासनिग्रहात् ॥ छर्दिरोधात्पंचमःस्यात्षष्ठःक्षवथुनिग्रहात् ॥ ४४ ॥ जृम्भारोधात्सप्तमःस्यादुद्गारग्रहतोऽष्टमः नवमःस्यादश्रुरोधाद्दशमःशुक्रवारणात् ॥ ४५ ॥ मूत्ररोधान्मलस्यापि रोधाद्वातविनिग्रहात् ॥ उदावर्तास्त्रयश्चैते घोरोपद्रवकारकाः ॥ ४६ ॥

अर्थ—उदावर्त रोग १३ प्रकारका है जैसे १ क्षुधा[3] २ तृषा[4] ३ निद्रा[5] ४ श्वास[6] ५ वमन[7]

---

१ अन्न पचगयाहोय अथवा पचरहा होय अथवा अजीर्ण हो, अर्थात् सर्वदा जो शूल प्रगट होय, वह पथ्यापथ्यके योगसे अथवा भोजन करनेसे नियमसे शांत नहीं होय उसको अन्नद्रव शूल कहते हैं, यह शूल त्रिदोषविकृतिसे एक प्रकारका है. परंतु असाध्य नहीं है क्योंकि इसकी चिकित्सा कही है।

२ अम्लपित्तसे जो शूल होता है, उसको जरत्पित्त शूल कहते हैं।

३ क्षुधा (भूक) रोकनेसे तंद्रा, अंगोंका टूटना, अरुचि, श्रम और दृष्टिका मंद होना ये रोग प्रगट होय।

४ प्यासके रोकनेसे कंठ और मुखका सूखना, कानोंसे मंद सुनना और हृदयमें पीडा ये लक्षण होंय।

५ आतीहुई निद्राको रोकनेसे जंभाई, अंगोंका टूटना नेत्र और मस्तकका अत्यंत जडता होना और तंद्रा होय।

६ जो मनुष्य हारगयाहो और वह श्वासको रोके उसके हृदयरोग, मोह और वायुगोला ये रोग होय।

७ जो मनुष्य आतीहुई वमनके वेगको रोके उसके अंगोंमें खुजली चले, देहमें चकत्ते होजाँय, और मुखपर झाँईसी पडे, सूजन, पांडुरोग, ज्वर, कुष्ठ, खालीरद, विसर्प ये रोग होय।

६ छींक ७ जँभाई ८ डकार ९ नेत्रसंबंधी जल १० शुक्रधातु ११ मूत्र १२ मल और १३ वायु इन तेरह प्रकारके वेगोको रोकनेसे तेरह प्रकारका उदावर्त उत्पन्न होता है इनमें सूत्र, मल और वायु इन तीनोंके रोकनेसे जो उदावर्त हो वह घोर उपद्रव करताहै ।

आनाहरोग ।

आनाहो द्विविधः प्रोक्त एकः पक्काशयोद्भवः ॥
आमाशयोद्भवश्चान्यः प्रत्यानाहः स कथ्यते ॥ ४७ ॥

अर्थ—आनाहरोग दो प्रकारका है । एक पक्वाशयमे होनेसे पेटको फुलाता है दूसरा आमाशयमे होता है जिसको प्रत्यानाह कहतेहैं । इसप्रकार दो प्रकारका आनाह रोग अर्थात् अफरा रोग जानना ।

---

१ आतीहुई छींकके रोकनेसे मन्या (कहिये नाडके पिछाडीकी नस) का स्तंभ कहिये जकडजाना, शिरमें शूलका चलना, अधोमुख टेढा होजाय, अर्धांगवात और इंद्री दुर्बल होजाय इतने रोग होते हैं ।

२ आतीहुई जंभाईको रोकनेसे मन्या कहिये नाडके पीछेकी नस और गला इनका स्तम्भ और वातजन्य विकार मस्तकमें होय उसी प्रकार नेत्ररोग, नासारोग, मुखरोग और कर्णरोग ये तीव्र होतेहैं ।

३ आतीहुई डकारके वेगको रोकनेसे वातजन्य इतने रोग होते हैं, कंठ और मुख भारीसा मालूम होय, अत्यंत नोचनेकीसी पीडा होय, अव्यक्त भाषण (अर्थात् जो समझनेमें न आवे) होय ।

४ आनंदसे अथवा शोकसे प्रगट अश्रुपातोको जो मनुष्य नहीं त्यागकरे उसके इतने रोग प्रगट होय. मस्तक भारी रहै, नेत्ररोग और पीनस ये प्रबल हो ।

५ मैथुन करते समय वीर्य निकलतेको जो मनुष्य रोके, अथवा और प्रकारसे शुक्रके वेगको रोके, उसके मूत्राशयमें सूजन होय, तथा गुदामे और अंडकोशोंमे पीडा होय, मूत्र बडे कष्टसे उतरे, शुक्राश्मरी होय, शुक्रका स्राव होय, ऐसे अनेक प्रकारके रोग होय ।

६ मूत्रका वेग रोकनेसे बस्ति (मूत्राशय) और शिश्नइंद्रीमे पीडा होय, मूत्र कष्टसे उतरे, मस्तकमे पीडा, पीडासे शरीर सीधा होय नहीं, पेटमे अफरा होय ।

७ मलका वेग रोकनेसे गुडगुडाहट होय, शूल होय गुदामे कतरनेकीसी पीडा होय, मल उतरे नही, डकार आवे, अथवा मल मुखके द्वारा निकले ।

८ अधोवायुके रोकनेसे अधोवायु, मल, मूत्र ये बन्द होय, पेट फूलजाय, अनायास श्रम और पेटमें वादीसे पीडा होय, तथा अन्य वातकृत (तोद शूलादिक) पीडा होय ।

९ आम अथवा पुरीष क्रमसे संचित होकर, विगुणवायुसे वारंवार विबद्ध होकर अपने. मार्गसे अच्छीतरह प्रवृत्त होय नहीं, इस विकारको आनाह कहते हैं ।

१० पक्वाशयमे आनाहरोग होनेसे आध्मान, वातरोधादि आलसरोगोक्त लक्षण होतेहैं ।

११ आमसे प्रगट आनाहरोगमे प्यास, पीनस, मस्तकमे दाह, आमाशयमे शूल, देहमें भारीपना, हृदयका जकडजाना, शूल, मूर्छा, डकार, कमर, पीठ, मल, मूत्र, इनका रुकना, शूल, मूर्छा और विष्ठा मिलीहुई रद्द और श्वास ये लक्षण होते हैं ।

उरोग्रह और हृदयरोग।

उरोग्रहस्तथाचैको हृद्रोगाः पंच कीर्तिताः॥ वातादयस्त्रयः प्रोक्ताश्चतुर्थः संनिपाततः॥ ४८॥ पंचमः कृमिसंजातः-

अर्थ—छातीमें खीचनेके समान पीडा होवे उसे उरोग्रह कहते है उसे एक प्रकारका जानना। तथा हृदयरोग पाच प्रकारका है। जैसे १ वातहृद्रोग २ पित्तहृद्रोग ३ कफहृद्रोग ४ सनिपातज हृद्रोग ५ तथा कृमिरोगजन्य हृद्रोग इसप्रकार हृद्रोग पांच प्रकारका है।

उदररोग।

-तथाष्टावुदराणिच॥वातात्पित्तात्कफात्त्रीणित्रिदोषेभ्योजलादपि॥ ४९॥प्लीह्नःक्षताद्बद्धगुदादष्टमं परिकीर्तितम्॥

अर्थ—उदररोग आठ प्रकारका है १ वातोदर २ पित्तोदर ३ कफोदर ४ त्रिदो-

---

१ उरोग्रह यह हृद्रोगका एक भेद है। उसका विशेष लक्षण यह है कि रक्त, मास प्लीहा और यकृत् इनकी उरोग्रह होतेही समय वृद्धि होती है ऐसा जानना और वातादिदोष कुपितहोकर रसधातु दूषित करके हृदयमे जाकर हृदयको पीडा करे।

२ वातज हृदयरोगमे हृदयऐंचने सरीखा सुईसे टोंचने सरीखा, फोडने सरीखा, दो टुकडा करनेके समान, मथनेके समान कुलाडीसे फाडनेके समान पीडा होती है।

३ पित्तके हृदयरोगमें प्यास, किंचित् दाह, मोह और हृदयकी धुआं निकलतासा मालूम होय, मूर्च्छा पसीना और मुखका सूखना, ये लक्षण होते हैं।

४ कफके हृदयरोगमें भारीपना, कफका गिरना, अरुचि, हृदय जकड जाय, मदाग्नि, मुखमे मिठास ये लक्षण होते हैं।

५ जिसमे तीनों दोषोंके लक्षण मिलतेहो उसे त्रिदोषका हृद्रोग जानना। इसमे कुछभी अपथ्य होनेमे गांठ उत्पन्न होती है उस गांठसे कृमि पैदा होतीहैं ऐसा चरकमे लिखाहै।

६ तीव्र पीडा करके तथा नोचनेकीसी पीडाकरके तथा खुजली करके युक्त ऐसा हृद्रोग कृमिजन्य जानना, उत्क्लेद, (ओकारी आनेके समान मालूम हो) थूकना, तोद (सुईचुभानेकीसीपीडा) शूल, हृल्लास, अधेरा आवे, अरुचि, नेत्र काले पडजांय और मुखशोष यह लक्षण कृमिज हृदयरोगमें होते हैं।

७ अफरा, चलनेकी शक्तिका नाश, दुर्बलता मदाग्नि, सूजन, अगग्लानि, वायुका तथा मलका रुकना दाह, तंद्रा ये लक्षण सब उदरोंमें होते हैं।

८ वातोदरमें हाथ, पैर नाभि और कूख इनमें सूजन होय, सधियोका टूटना तथा कूख, पसवाडे, पेट कमर इनमे पीडा, सूखी खांसी, अंगोंका टूटना, कमरसे नीचे भागमे भारीपना, मलका सग्रह होना त्वचा, नख, नेत्रादिका काला लालहोना, पेट अकस्मात् (निमित्तक विना) बडा होजाय, छोटी सुई चुभानेकीसी तथा नोचनेकीसी पीडा होय पेटमें चारो तरफ बारीक काली शिरा (नाडियो) से व्याप्त होय,-

पोदर ५ जलोदर ६ प्लीहोदर ७ क्षतोदर ८ बद्धगुदोदर इसप्रकार आठप्रकारके उदररोग जानने ।

गुल्मरोग ।

गुल्मास्त्वष्टौ समाख्याता वातपित्तकफैस्त्रयः ॥ ५० ॥ द्वन्द्वभेदा-त्रयः प्रोक्ताः सप्तमः सन्निपाततः ॥ रक्तस्त्वष्टम आख्यातः—

—चुटकी मारनेसे फूली पखालके समान शब्द होय, इस उदरमे वायु चारोतरफ डोलकर शूल करता तथा गूँगता है ।

९ पित्तके उदररोगमे ज्वर, मूर्च्छा, दाह, प्यास, मुखमे कडुआस, भ्रम, अतिसार, त्वचा, नख, नेत्र इनमे पीलापना, पेट हरा होय, पीलीताँबेके रंगकी नाडियोंसे उदर व्याप्त हो, पसीना आवे गरमीसे सब देहमे दाह होय, आंतोसे धुआँसा निकलता दीखे, हाथके स्पर्श करनेसे नरम मालूम हो, शीघ्र पाक होय अर्थात् जलोदरत्वको प्राप्त होय और उसमे घोर पीडा होय ।

१० कफके उदररोगमे हाथ, पैर आदि अंगोमे शून्यता हो और जकड जाय, सूजन होय, अंग भारी होजाय, निद्रा आवे, वमन होयगी ऐसा मालुम होय, अरुचि होय, खासी होय त्वचा नख नेत्रादिक सफेद हों, पेट निश्चल, चिकना, सफेद, नाडियोंसे व्याप्तहो इसकी वृद्धि बहुत कालमे होय, पेट करडा और शीतल मालुम होय, तथा भारी और स्थिर होय ।

११ खोटे आचरणवाली स्त्री जिस पुरुषको नख, केश (बार) मल, मूत्र और आर्तव (रजो-दर्शका रुधिर) मिला अन्न पान देय, अथवा जिसका शत्रु विषदेवे, अथवा दुष्टांबु (जहरमिलाई मछली तिनका पत्ता आदि औटाहुआ ऐसा जल) और दूषीविष (मन्दविष) इनके सेवन करनेसे रुधिर और वातादिक दोष शीघ्र कुपित होकर अत्यंत भयकर त्रिदोपात्मक उदररोग उत्पन्न करते हैं वे शीतकालमे अथवा पवन चलते समय, अथवा जिस दिन वर्षाका झड लगे उस दिन विशेष करके कोपको प्राप्त होते हैं । और दाह होय, वह रोगी निरन्तर विषके सयोगसे मूर्छित होय देहका पीलावर्ण तथा कृश होय और परिश्रम करनेसे शोष होय, इसी सन्निपातोदरको दूष्योदर भी कहते हैं ।

---

१ जिसने स्नेह घृत तैलादि पान कियाहोय, अथवा अनुवासन वस्ति की हो, वमन कियाहो, अथवा दस्त कियेहो, अथवा निरूह वस्ति कीहो, ऐसा पुरुष शीतल जल पीवे तब उसकी जलवहनेवाली नसोके मार्ग तत्काल दुष्ट होते हैं । वे उदक वहनेवाले स्रोत (मार्ग) स्नेहसे उपलिप्त (चीकने) होनेसे उदरको उत्पन्न करते हैं. वह जलोदर होता है. उसमे चिकनापन दीखे, ऊँचा होय, नाभीके पास बहुतऊँचा होय, चारो ओर तनासा मालूम होय, पानीकी पोट भरीसी होय, जैसी पानीसेभरी पखालमें जल हिलता है उसी प्रकार हिले, गुडगुड शब्द करे, काँपे, इसको जलोदर, अर्थात् जलंधररोग कहते हैं ।

२ विदाही (बंगकरीरादि) अर्थात् दाह करनेवाली और अभिष्यंदि (दध्यादि) अर्थात् स्रोत रोकनेवाले ऐसे अन्न निरन्तर सेवन करनेवाले मनुष्यके अत्यत दुष्टभए जे रुधिर और कफ (छिद्र) बढकर प्लीह (तापातिल्ली) को बढाते हैं इस उदरको प्लीहोत्थ उदर कहते हैं । यह बाईतरफ बढता है इस अवस्थामे रोगी बहुत दुःख पाता है देहमे मंद ज्वर होय, मंदाग्नि होय तथा कफपित्तोदरके लक्षण इसमे मिलतेहों, बल क्षीण होय और अत्यंत पीला वर्ण होजाय ।

अर्थ-गुल्म (गोलेका) रोग आठ प्रकारका है जैसे १ वातगोला २ पित्तगोला ३ कफगुल्म ४ वातपित्तगुल्म ५ पित्तकफगुल्म ६ कफवातगुल्म ७ सनिपातगुल्म ८ रक्तगुल्म इसप्रकार आठ प्रकारका गुल्मरोग जानना।

---

३ काँटा-धूल आदि-अन्नके साथ मिलकर पेटमे चला जाय, अर्थात् पक्वाशयमे विलोम (टेटा तिरछा) चलाजाय तब आँतोको काटे और सीधा जायतो नहीं काटे, अथवा जँभाई, अतिअशन करनेसे अर्थात् रोकनेसे आँत फटजायँ। उन फटे आँतोसे गलित पानीके समान स्राव गुदाके मार्ग होकर झरे, नाभिके नीचेका भाग बढे, नोचनेकीसी तथा भेद (चीरने) कीसी पिडासे अत्यंत व्यथित होय, इस क्षतोदरको ग्रथांतरमें परिस्रावि उदर कहते है और कहीं छिद्रोदर कहते है ऐसा वह क्षतोदर है।

४ जिस पुरुषकी आँत उपलेपी अर्थात् गाढेअन्न (शाकादिक) करके अथवा बाल तथा बारीक पत्थरके टुकडे करके बद्ध होजाय, उस पुरुषका दोषयुक्त मल धीरे धीरे आँतडीकी नलीमे होकर जैसे बुहारीसे झारा तृण धूर आदि क्रमसे बैठता है उसी प्रकार यहाँ बढता है। और वह मल बडे कष्टसे गुदाद्वारा थोडा थोडा निकलता है। जब मलका निकसना बंद होजाय, तब मल दोषो-करके गुदासे ऊपर आता है, इसीसे उदर बढता है. अर्थात् हृदय और नाभिके मध्य अन्नपक्व-स्थानकी वृद्धि हो इसीसे इस उदरको बद्धगुदोदर कहते है। अथवा गुदाके ऊपर आँतोंको बद्ध होनेसे बद्धगुद कहते है।

---

१ जो गुल्म कभी नाभि, कभी बस्ति, कभी पसवाडेमे चलाजाय, तथा कभी लंबा, कभी मोटा गोल अथवा छोटा होय, तथा उसमे कभी थोडी, कभी बहुत पीडा होय तोद भेद (सुई चुभाने कीसी पीडा) होय, अथवा अनेक प्रकारकी पीडा होय मलकी और अधोवायुकी अच्छी रीतिसे प्रवृत्ति होय नहीं, गला और मुख सूखे शरीरका वर्ण नीला अथवा लाल होय, शीतज्वर, हृदय, कूख, पसवाडे कंधा और मस्तक इनमे पीडा होय। जो गोला जीर्ण होनेपर अधिक कोप करे और भोजन करनेके पिछाडी नरम होजाय, वह गोला बादीसे प्रगट होता है। उसमे रूखा, कसैला कडुआ, तीखा पदार्थ खानेसे सुख नहीं होता।

२ ज्वर, प्यास, मुख और अंगोंमे ललाई, अन्न पचनेके समय अत्यत शूल होय, पसीना आवे, जलन होय, फोडाके समान स्पर्श न सहजाय, ये पित्तगुल्मके लक्षण हैं।

३ देहका गीलापना, शीतज्वर, शरीरकी ग्लानि, सूखी रद्द, (उबाकी) खांसी, अरुची, भारीपन, शीतका लगना, थोडी पीडा होय, गुल्म (गोला) कठिन होय और ऊंचा होय ये सब कफात्मक गुल्मके लक्षण है।

४ जिस गुल्ममे वात और पित्त इन दोनो दोषोके लक्षण मिलते हो उसको वातपित्तक गुल्म जानना।

५ जिस गुल्ममे पित्त और कफ इन दोनो दोषोके लक्षण मिलते हो उसको पित्तकफका गुल्म जानना

६ जिस गुल्ममे कफ और वात इन दोनो दोषोके लक्षण मिलते हो उसे कफवातका गुल्म जानना।

७ भारी पीडा करनेवाला, दाह करके व्याप्त, पत्थरके समान कठिन, तथा ऊँचा और शीघ्र दाह करके भयंकर, मन, शरीर, अग्नि और बल इनका नाश करनेवाला, ऐसे त्रिदोषज गुल्मके असाध्य जानना।

मूत्राघातरोग।

--मूत्राघातास्त्रयोदश ॥ ५१ ॥ वातकुण्डलिकापूर्वं वाताष्ठीला ततःपरम्॥वातबस्तिस्तृतीयःस्यान्मूत्रातीतश्चतुर्थकः ॥५२॥ पंचमं मूत्रजठरं षष्ठो मूत्रक्षयः स्मृतः ॥ मूत्रोत्सर्गःसप्तमःस्यान्मूत्रग्रन्थिस्तथाष्टमः ॥५३॥ मूत्रशुक्रंतुनवमं विड्घातोदशमः स्मृतः॥ मूत्रसादश्चोष्णवातो बस्तिकुण्डलिकातथा॥५४॥ त्रयोऽप्येतेमूत्रघाताः पृथग्घोराःप्रकीर्तिताः ॥

अर्थ—मूत्राघातरोग १३ प्रकारका है। जैसे १ वातकुंडलिका २ वाताष्ठीला ३ वातबस्ती ४ मूत्रातीत ५ मूत्रजठर ७ मूत्रक्षय ७ मूत्रोत्सर्ग ८ मूत्रग्रंथी ९ मूत्रशुक्र

---

८ नई प्रसूतभई स्त्रीके अपथ्य सेवन करनेसे अथवा अपक्व गर्भपात होनेसे अथवा ऋतुकालके समय अपथ्य भोजन करनेसे वायु कुपित होकर उस स्त्रीके रुधिर (जो ऋतुसमय निकले) को लेकर गुल्म करता है वो गुल्म पीडायुक्त व दाहयुक्त होता है। यह गुल्म बहुत देरमें गोल गोल हिले, अवयव कहिये हाथ पैरके साथ नही हिले, शूलयुक्त होय गर्भके समान सब लक्षण मिले (अर्थात् मुखसे पानी छूटे, मुख पीला पडजाय, स्तनका अग्रभाग काला होजाय और दोहदादि लक्षण सब मिले ये लक्षण व्याधिके प्रभावसे होते है) यह रक्तजगुल्म स्त्रियोंके होता है. दश महीना व्यतीत होजाय तब इस रक्तगुल्मकी चिकित्सा करनी चाहिये।

---

१ मूत्रके वेग रोकनेसे कुपित भये दोषोंसे वातकुडलिकादिक तेरह प्रकारके मूत्राघात रोग होते हैं।

२ रूखे पदार्थ खानेसे अथवा मल मूत्रादिवेगोंके धारण करनेसे कुपित भई जो वायु सो बस्ति (मूत्राशय) मे प्राप्त हो पीडा करे और मूत्रसे मिलकर मूत्रके वेगको विगुण (उलटा) करके वहां आप कुंडलके आकार (गोलाकार) मूत्राशयमें विचरे तब मनुष्य उस वातसे पीडित हो मूत्रको वारंवार थोडा २ पीडाके साथ त्यागकरे। इस दारुण व्याधिको वातकुंडलिका कहते है।

३ बस्ति और गुदा इनमें वह वायु अफरा करे; तथा गुदाकी वायुको रोककर चचल और उन्नत (ऊँची) ऐसी अष्ठीला (पत्थरकी पिण्डीके सदृश) को प्रगटकरे, यह मूत्रके मार्गको रोकनेवाली और भयंकर पीडा करनेवाली है। उसको वाताष्ठीला कहते हैं।

४ जो मनुष्य अड (जिद) से मूत्रबाधाको रोकता है उसको बस्ति (मूत्राशय) के मुखको वायु बन्द कर देता है तब उसका मूत्र बद होजाय और वह वायु बस्तिमे और कूखमे पीडा करे। उस व्याधिको वातबस्ति कहते है, यह बडे कष्टसे साध्य होतीहै।

५ मूत्रको बहुत देर रोकनेसे पीछे वह जलदी नही उतरे और मूतते समय धीरे धीरे उतरे इस रोगको मूत्रातीत कहते है।

६ मूत्रके वेगको रोकनेसे मूत्रवेगधारणजनित और उदावर्तका कारणभूत ऐसा अपानवायु-

१० विड्घात ११ मूत्रसाद १२ उष्णवात १३ वस्तिकुंडलिका ऐसे तेरह प्रकारके मूत्राघात जानने तिनमें मूत्रसाद उष्णवात वस्ति ये तीन बडे भारी प्राण संकट करने वाले हैं। पीडा थोडी होकर मूत्रका रुकना अधिक होवे उस व्याधिको मूत्राघात कहते हैं। और मूत्रकृच्छ्रमे मूत्रका रुकना अल्प होकर पीडा अत्यंत होती है इतना मूत्राघात और मूत्रकृच्छ्रमें भेद है।

मूत्रकृच्छ्र।

मूत्रकृच्छ्राणि चाष्टौ स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा ॥ ५५ ॥ संनि-

—कुपित होनेसे पेट बहुत फूल जाय और नाभिके नीचे तीव्र वेदना संयुक्त अफरा करे, अधोवस्तिका रोध करनेवाला ऐसे इस रोगको मूत्रजठर कहते हैं।

७ रूखा अथवा श्रांत (थक गया) देह जिसका ऐसे पुरुषके वस्तिमूत्राशयमे रहे जो पित्त और वायु सो मूत्रका क्षय करे और पीडा तथा दाह होता है. उसको मूत्रक्षय कहते हैं।

८ प्रवृत्त भया मूत्र वस्तिमे अथवा शिश्न (लिंग) मे अथवा शिश्नके अग्रभागमे अटक जाय और बलसे मूतको करै भी तो बादीसे वस्तिको फाडकर जो मूत्र निकले वह मन्द मन्द थोडा पीडाके साथ अथवा पीडारहित रुधिर सहित निकले ऐसी विगुण वायुसे उत्पन्न हुई इस व्याधिको मूत्रोत्सर्ग कहते हैं।

९ वस्तिके मुखमे गोल स्थिर छोटीसी गाँठ अकस्मात् होय, उसमे पथरीके समान पीडा होय इस रोगको मूत्रग्रंथि कहते हैं।

१० मूत्रबाधाको रोकके जो पुरुष स्त्रीसंग करे उसका वायु शुक्रको उडाय स्थानसे भ्रष्ट करे, तब मूतनेके पहिले अथवा मूतनेके पीछे शुक्र गिरे और उसका वर्ण राख मिले पानीके समान होय, उसको मूत्रशुक्र कहते हैं।

---

१ रूक्ष और दुर्बल पुरुषके शकृत् (मल) जब वायुकरके उदावर्तको प्राप्त हो तब वह मलमूत्रके मार्गमे आवे उस समय मनुष्य मूतने लगे तो बडे कष्टसे मूत्र उतरे और उसके मूत्रमे विष्ठाकीसी दुर्गन्ध आवे उसको विड्घात कहते हैं।

२ पित्त अथवा कफ वा दोनो वायुकरके विगडे हुए होय तब मनुष्य पीला, लाल, सफेद, गाढा ऐसा कष्टसे मूते और मूतनेके समय दाह होय जब वह मूत्र पृथ्वीमे सूख जाय तब गोरोचन, शंखका चूर्ण ऐसा वर्ण होय अथवा सर्व वर्णका होय, इस रोगको मूत्रसाद कहते हैं।

३ व्यायाम, दंड, कसरत, अतिमार्गका चलना और धूपमे डोलना इन कारणोसे कुपित भया जो पित्त है वस्तिमे प्राप्त होय वायुसे मिल वस्ति, अंडकोश और गुदा इनमे दाह करे और हलदीके समान अथवा कुछ रक्तसे युक्त वा लाल ऐसा मूत्र वारंवार कष्टसे होय, उसको उष्णवात रोग कहते हैं।

४ जल्दी जल्दी चलनेसे, लंघन करनेसे, परिश्रमसे, लकडी आदिकी चोट लगनेसे, पीडासे वस्ति अपने स्थानको छोड ऊपर जाय मोटी होकर गर्भके समान कठिन रहै, उससे शूल, कंप और दाह ये होय मूतकी एक एक बूंद गिरे। यदि वस्ति जोरसे पीडित होय तो बडी धार पडे वस्तिमें सूजन होय, पेटमे पीडा होय इस रोगको वस्तिकुंडलिका कहते हैं।

पाताच्चतुर्थं स्याच्छुक्रकृच्छ्रंतु पञ्चमम् ॥ विट्कृच्छ्रं षष्ठमाख्यातं घातकृच्छ्रं च सप्तमम् ॥५६॥ अष्टमं चाश्मरीकृच्छ्रं–

अर्थ–मूत्रकृच्छ्र आठ प्रकारका है। जैसे १ वातमूत्रकृच्छ्र २ पित्तमूत्रकृच्छ्र ३ कफकृच्छ्र ४ संनिपातमूत्रकृच्छ्र ५ शुक्रमूत्रकृच्छ्र ६ विड्मूत्रकृच्छ्र ७ धातुकृच्छ्र और ८ अश्मरीकृच्छ्र। इसप्रकार मूत्रकृच्छ्र आठ प्रकारका है। मूत्रकृच्छ्र कहिये वातादिक दोष अपने २ कारण करके पृथक् २ अथवा मिलकर कुपित हो मूत्राशयमें प्रवेशकर मूत्रमार्गको पीडितकरें। उससमय वह मनुष्य अत्यंत क्लेश करके मूते उस रोगको मूत्रकृच्छ्र कहते हैं।

अश्मरीरोग।

चतुर्धा चाश्मरी मता ॥ वातात्पित्तात्कफाच्छुक्रात्–

अर्थ–अश्मरी (पथरी) रोग चार प्रकारका है। जैसे १ वाताश्मरी २ पित्ताश्मरी ३ कफाश्मरी और ४ शुक्राश्मरी। इसप्रकार चार प्रकारकी पथरी जाननी।

---

१ वातके मूत्रकृच्छ्रमे वक्षण (जांघ और ऊरु इनकी संधि) मूत्राशय और इंद्री इनमे पीडा होय और मूत्र वारवार थोडा उतरे।

२ पैत्तिक मूत्रकृच्छ्रमें पीला कुछ लाल, पीड़ायुक्त, अग्निके समान वारंवार कष्टसे मूत्र उतरे।

३ कफके मूत्रकृच्छ्रमे लिंग और मूत्राशय भारी हो, तथा सूजन होय और मूत्र चिकना होय।

४ संनिपातके मूत्रकृच्छ्रमे सर्व लक्षण होते हैं. यह मूत्रकृच्छ्र कष्टसाध्य है।

५ दोषोंके योगमें शुक्र (वीर्य) दुष्ट होकर मूत्रमार्गमे गमन करे, तब उस मनुष्यके मूत्राशय और लिंग इनमे शूल होय और मूतते समय मूत्रके संग वीर्य पतन होय।

६ मल (विष्ठा) के अवरोध होनेसे वायु विगुण (उलटा) होकर अफरा, वात, शूल और मूत्रनाश करे तब मूत्रकृच्छ्र प्रगट होय।

७ मूत्र वहनेवाले स्रोत (मार्ग) शल्य (तीर आदि) से विंधजाय; अथवा पीडित होय तो उस कारणसे भयकर मूत्रकृच्छ्र होता है, इसके लक्षण वातमूत्रकृच्छ्रके समान होते हैं।

८ पथरीके निदानसे जो मूत्रकृच्छ्र होय उसको पथरीका मूत्रकृच्छ्र कहते हैं।

९ वायुकी पथरीसे रोगी अत्यन्त पीडा करके व्याप्त होय, दांतोको चबावे, कांपे, लिंगको हाथसे रगडे, नाभिको रगडे और रातदिन दुःखसे रोवे और मूत्र आनेके समय पीडा होनेके कारण अधोवायुका परित्याग करे, मूत्र वारंवार टपक टपकके गिरे, उसकी पथरीका रंग नीला और रूखा होय उसके ऊपर कांटे होय।

१० पित्तकी पथरीसे रोगीके वस्तिमे दाह होय और खारसे जैसा दाह होय, ऐसी वेदना होय, वस्तिके ऊपर हाथ धरनेसे गरम मालूम होय और भिलाएकी मींगीके समान होय, लाल, पीली काली होय।

११ कफकी पथरीसे वस्तिमें नोचनेकीसी पीडा होय शीतलपन होय और पथरी बडी मुर्गीके–

वायु कुपित हो वस्तिमें जायके मूत्र, शुक्र, धातु, पित्त, कफ इनको सुखायके उसीके मुखमें क्रम करके पाषाणके गोलेके समान गाँठ उत्पन्न करे इसरोगको पथरी कहते हैं। जैसे गौके पित्तेमें क्रमसे गोलोचन होता है उसी प्रकार पथरी होती है। इसमें वस्तिका फूलना, तथा वस्ति, शिश्न (लिंग) और अंडकोश इनमें पीडा तथा मूत्रकृच्छ्र, अरुचि इत्यादिक उपद्रव होते हैं। उस पथरीका पाक होकर वालूके समान मूत्रमार्गमें होकर गिरे उसको शर्करास्मरी कहते हैं।

प्रमेहरोग।

तथामेहाश्चविंशतिः ॥ ५७ ॥ इक्षुमेहः सुरामेहःपिष्टमेहश्च सान्द्रकः ॥ शुक्रमेहोदकाख्यौच लालामेहश्चशीतकः ॥५८॥ सिकताह्वःशनैर्मेहो दशैतेकफसंभवाः ॥ मंजिष्ठाख्योहारिद्राह्वोनीलमेहश्चरक्तकः ॥५९॥कृष्णमेहः क्षारमेहःषडेतेपित्तसंभवाः ॥ हस्तिमेहो वसामेहो मज्जमेहो मधुप्रभः ॥६०॥ चत्वारो वातजा मेहा इति मेहाश्च विंशतिः ॥

अर्थ—प्रमेहरोग वीस प्रकारका है। जैसे १ इक्षुप्रमेह, २ सुरामेह, ३ पिष्टमेह, ४ सान्द्रमेह ५ शुक्रमेह ६ उदकमेह, ७ लालामेह, ८ शीतमेह ९ सिकतामेह और १० शनैर्मेह

—अडके समान, स्वच्छ और मद्य (दारू) के रंगकीसी अर्थात् कुछ पीलीसी होय। यह कफकी पथरी बहुधा बालकोंके होती है।

१२ शुक्राश्मरी शुक्र (वीर्य) के रोकनेसे होती है। यह पथरी बडे मनुष्योंकेही होती है। मैथुन करनेके समय अपनेस्थानसे वीर्य चलायमान होगयाहो उस समय मैथुन न करे तब शुक्र (वीर्य) बाहर नहीं निकले भीतरही रहे, तब वायु उस शुक्रको उठाकर सुखादेता है. उसीको शुक्रजा अश्मरी कहते हैं। इसकरके अंडकोषोंमें सूजन, वलीमें पीडा और मूत्रकृच्छ्रता होती है। इस शुक्राश्मरीकी आदिमें लिंग और अंडकोष, पेडू इनमें पीडा होती है वीर्यके नाश होनेके कारण पथरीकी नाई शर्करा उत्पन्न होती है।

---

१ इक्षुप्रमेहसे ईखके रसके समान अत्यंत मीठा मूत्र होय।

२ सुराप्रमेहसे दारूके समान ऊपर निर्मल और नीचे गाढा मूते।

३ पिष्टप्रमेहसे पिसे चावलोंके पानीके समान सफेद और बहुतसा मूते तथा मूतते समय रोमांच होंय।

४ सांद्रप्रमेहसे, रात्रिमें पात्रमें धरनेसे जैसा मूत्र होवे ऐसा मूत्र होय।

५ शुक्रप्रमेहसे शुक्र (वीर्य) के समान अथवा शुक्र मिला होय।

६ उदकप्रमेह करके स्वच्छ बहुत सफेद, शीतल, गंधरहित, पानीके समान कुछ गाढा और चिकना मूत्र होता है।

७ लालाप्रमेहसे लारके समान तारयुक्त और चिकना मूत्र होता है।

ये दश प्रमेह कफजन्य हैं अर्थात् कफसे प्रगट होते हैं १ मजिष्ठमेह २ हारिद्रमेह ३ नीलमेह ४ रक्तमेह ५ कृष्णमेह और ६ क्षारमेह ये छः प्रमेह पित्तजन्य हैं। १ हस्तिमेह २ वसामेह ३ मज्जामेह ४ मधुमेह। ये चारप्रकारके प्रमेह वातजन्य हैं अर्थात् वातसे प्रगट हैं। इसप्रकार सब मिलकर बीसप्रकारके प्रमेह जानना।

सोमरोग।

सोमरोगस्तथा चैकः—

अर्थ—सब देहमें उदक क्षोभित होकर योनिमार्गसे सफेद रंगका गिरता है उसको सोमरोग कहते हैं वह एकही प्रकारका है।

प्रमेहपिटिका।

प्रमेहपिटिका दश ॥ ६१ ॥ शराविका कच्छपिका पुत्रिणी विनतालजी ॥ मसूरिकासर्षपिकाजालिनीचविदारिका ॥ ६२ ॥ विद्रधिश्चदशैताःस्युःपिटिका मेहसंभवाः ॥

अर्थ—प्रमेहकी पिटिका (फुन्सी) दशप्रकारकी हैं। जैसे १ शराविका, २ कच्छ-

---

८ शीतप्रमेहसे मधुर तथा अत्यंत शीतल ऐसा बारबार बहुत मूते।
९ सिकताप्रमेहसे मूत्रके कण और बालूरेतके समान मलके रवा गिरे।
१० शनैर्मेहसे धीरे धीरे और मंद मद मूते।

---

१ मांजिष्ठप्रमेहसे आम दुर्गंध और मजीठके समान मूते।
२ हारिद्रप्रमेहसे तीक्ष्ण, हल्दीके समान और दाहयुक्त मूते।
३ नीलप्रमेहसे नीले रंगका अर्थात् पपैया पक्षीके पंखके सदृश मूते।
४ रक्तप्रमेहसे दुर्गंधयुक्त गरम खारी और रुधिरके समान लाल मूत्र करे।
५ कृष्ण (काले) प्रमेहसे स्याहीके समान काला मूते।
६ क्षारप्रमेहसे खारी जलके समान गंध, वर्ण, रस और स्पर्श ऐसा मूत्र होता है।
७ हस्तिप्रमेहसे मस्तहाथीके समान निरंतर वेगरहित जिसमे तार निकले और ठहरठहरके मूते।
८ वसाप्रमेहसे वसा (चर्बी) युक्त अथवा वसाके समान मूते।
९ मज्जाप्रमेहसे मज्जाके समान अथवा मज्जा मिला बारंबार मूते।
१० मधुप्रमेहसे कषेला, मीठा और चिकना ऐसा मूते।
११ शराविका पिटिका ऊपरके भागमे ऊँची और मध्यमे बैठीसी होय जैसे कि मिट्टीका शराव होता है।
१२ कच्छपिका पिटिका कछुआकी पीठके समान कुछ दाहयुक्त होय है।

पिका, ३ पुत्रिणी, ४ विनता, ५ अलजी, ६ मसूरिका, ७ सर्षपिका, ८ जालिनी, ९ विदारिका और १० विद्रधिका। इसप्रकार दशप्रकारकी पिटिका प्रमेहकी उपेक्षा करनेसे होती हैं। यह संधिमें मर्मस्थलमें तथा जिस जगह मांस विशेष होता है उस जगह तथा देहमें मेदादुष्ट होनेसे उत्पन्न होती हैं।

मेदोरोग।

मेदोदोषस्तथाचैकः--

अर्थ—मेदरोग एक प्रकारका है। उसके लक्षण ये हैं कि, कफको उत्पन्न करनेवाला आहार, मद्यपान, मधुररस, स्नेहान्न कहिये घृतपक्व गोधूमपिष्टादिक लड्डू शकलपारे इत्यादिकोंके सेवन करनेसे मेद बढता है उससे अन्यधातु, अस्थ्यादि शुक्रांत, उनका पोषण नहीं होता है किंतु मेद बढता है जिससे मनुष्य सर्व कर्ममें अशक्त होजाता है। और अल्पश्वास, तृषा, मोह, निद्रा, श्वासावरोध, सोतेमें अत्यंत ठोरना, शरीरमें ग्लानि, छींक, पसीनोंकी दुर्गंधि, अल्पप्राण और अल्पमैथुन इत्यादिक उपद्रव होते हैं। मेद सर्व प्राणीमात्रोंके प्रायःकरके रहती है। अतएव जिस मनुष्यको मेद रोग होता है उसको बहुधा पेटकी अधिक वृद्धि होती है। और उस मेद करके मार्गरुद्ध होनेपर पवन कोष्ठाग्निमें विशेष करके संचार करने लगताहै और अग्निको प्रदीप्त करके आहारको शोषण करलेता है। इसीसे भोजन कियाहुआ पदार्थ तत्काल जीर्ण होकर दूसरे भोजनकी इच्छा होती है। कदाचित् भोजनका समय टलजावे तो घोर विकार प्रमेह-पिडिका, ज्वर, भगंदर, विद्रधि, और वातरोग इनमेंसे कोईसा एक रोग होता है। और विशेष-कर अग्नि और वायु ये उपद्रवकारी होनेसे मेदोरोगीके शरीरको जलाते हैं। इस विषयमें दृष्टांत है कि जैसे वनसंबंधी अग्नि वायुकी सहायतासे वनको जलाता है इसप्रकार जलावे तथा वह मेद अत्यंत कुपित होनेसे एकाएकी वातादिदोष कुपित हो घोर उपद्रव करके मनुष्यको शीघ्र मारते हैं। उस मेदके योगसे शरीर अत्यंत मोटा होनेसे मनुष्यका उदर, स्तन, और कूले

---

१ पुत्रिणी पिटिका यह बीचमें बडी फुन्सी होय. उसके चारों ओर छोटी छोटी फुन्सियां और होयं उसको पुत्रिणी कहते हैं।

२ विनता फुन्सी पीठमें अथवा पेटमें होती है। इसकी पीडा बहुत होय, ठढी होय तथा बडी और नीले रंगकी होती है।

३ अलजी पिटिका लाल, काली, बारीक फोडों करके व्याप्त और भयंकर होती है।

४ मसूरिका पिटिका मसूरकी दालके समान बडी होती है।

५ सर्षपिका पिटिका सफेद सरसोंके समान बडी होती है।

६ जालिनी पिटिका तीव्र दाहकरके संयुक्त और मांसके जालसे व्याप्त होती है।

७ विदारिका पिटिका विदारीकंदके समान गोल और करडी होती है।

८ विद्रधिका पिटिका विद्रधिके लक्षणकरके युक्त होती है।

ये चलते समय थलर २ हिलते हैं तथा विसर्प, भगदर, ज्वर, अतिसार, प्रमेह, बवासीर, श्लीपद इत्यादि उपद्रव होते हैं । इसप्रकार मेदरोगके लक्षण जानने ।

शोथरोग ।

शोथरोगा नव स्मृताः॥६३॥दोषैः पृथग्द्वयैः सर्वैरभिघाताद्विषादपि॥

अर्थ—शोथरोग नौ प्रकारका है १ वातशोथ २ पित्तशोथ ३ कफशोथ ४ वातपित्तशोथ ५ पित्तकफशोथ ६ कफवातशोथ ७ त्रिदोषकी शोथ ८ अभिघातशोथ और ९ विषशोथ । इसप्रकार शोथ रोग नौप्रकारका है । इसको लोकमे सूजन कहते हैं । स्वकारणसे वायु कुपित होकर उसीप्रकार दुष्ट हुआ रक्त पित्त और कफ इनको बाहरकी शिराओंमें लायकर फिर वह वायु उस रक्तपित्त और कफकरके रुद्धगतिहो त्वचा और मांस इनके आश्रित जो उसे कहिये सूजन उसको अकस्मात् उत्पन्नकरे उस रोगको सूजन कहते हैं ।

---

१ वातसे सूजन चंचल, त्वचा पतली हो जाय कठोर कठोर हो, लाल, काली, तथा त्वचा शून्य पड जाय, भिन्न भिन्न वेदना होय, अथवा रोमांच और पीडा हो । कदाचित् निमित्तके विना शांत हो जाय, उस सूजनके दावनेसे तत्क्षण ऊपरको उठ आवे, दिनमें जोर बहुत करे ।

२ पित्तकी सूजन नरम नरम, कुछ दुर्गंधयुक्त, काली, पीली और लाल ।

३ कफकी सूजन भारी, स्थिर और पीली होती है इसके योगसे अन्नद्वेष, लारका गिरना, निद्रा, वमन, मदाग्नि ये लक्षण होयँ, तथा इस सूजनकी उत्पत्ति और नाश बहुत कालमे होय । इसको दबा--नेसे ऊपरको नही उठे, रात्रिमे इसकी प्रबलता होती है ।

४ वात, पित्त इन दोनोके लक्षण जब सूजनमे हो उसको वातपित्तकी सूजन कहते हैं ।

५ पित्त और कफ इनके लक्षण जिस सूजनमें मिलते हो उसको पित्तकफकी सूजन जानना ।

६ कफ और वात इन दोनोके लक्षण जिस सूजनमें मिलें उसको कफ और वातकी सूजन जानना ।

७ सन्निपातके सूजनमे वात, पित्त और कफ इन तीनोंकेभी लक्षण होतेहैं ।

८ अभिघातज सूजन काष्ठादिककी चोट लगनेसे, शस्त्रादिकसे छेदन होनेसे, पत्थर आदिसे फूटनेसे, अथवा घावके होनेसे, लकडीआदिके प्रहारसे, शीतल पवन लगनेसे, समुद्रकी पवन लगनेसे, भिलावेका तेल लगजानेसे और कौंचकी फलीका स्पर्श होनेसे जो सूजन होय सो चारोंतरफ फैल जाय उसमें अत्यत दाह होय, उसका रंग लाल होय और विशेष करके इसमे पित्तके लक्षण होते हैं ।

९ विषवाले प्राणियोके अंगपर चलनेसे अथवा मूतनेसे, अथवा निर्विष (विषरहित मनुष्यादिक) प्राणीके दाढ, दांत, नख लगनेसे, अथवा सविष प्राणियोके विष्ठा, मूत्र, शुक्र इनसे भरा, अथवा मलीन वस्त्र अंगमे लगनेसे, अथवा विषवृक्षकी हवाके लगनेसे, अथवा संयोगविष अंगमें लगनेसे जो सूजन उत्पन्न होय सो विषज कहलाती है । वो सूजन नरम, चंचल, भीतर प्रवेश करनेवाली जल्दी प्रगट होने-वाली, दाह और पीडा करनेवाली होती है ।

वृद्धिरोग।

वृद्धयः सप्त गदिता वातात्पित्तात्कफेन च ॥६४॥
रक्तेन मेदसा मूत्रादन्त्रवृद्धिश्च सप्तमा ॥

अर्थ-वृषण जिससे वडे होवें उस रोगको वृद्धि कहते हैं। वह रोग सातप्रकारका है जैसे १ वातवृद्धि २ पित्तवृद्धि ३ कफवृद्धि ४ रक्तवृद्धि ५ मेदोवृद्धि ६ मूत्रवृद्धि होय उसके होनेसे भ्रम, ज्वर, पसीना, प्यास और मस्तपना ये लक्षण होंय। दाह होय, हाथ लगानेसे दूखे, इसीसे नेत्र लाल होय, उसमें अत्यंत दाह तथा पाक होय। और ७ अन्त्रवृद्धि। इस प्रकार वृद्धिरोग सातप्रकारका है। वृद्धिरोग अर्थात् वायु अपने स्वकारण करके कुपित हो सूजन और शूलको करती नीचेके भागमें जायकर वंक्षणद्वारा अंडकोशोंमें जायके वृषणवाहिनी नाडियोको दूषितकर कफ जैसे वृषणकी गोलाके ऊपरकी त्वचाको वढाय देवै उसको वृद्धिका रोग कहते हैं।

---

१ वातसे भरी मस्तक जैसी और हाथके लगनेसे मालूम होय ऐसी मालूम होय रूक्ष और विनाकारण दूखने लगे उसे वातकी अंडवृद्धि जानना।

२ जिसमें पित्तके लक्षण मिलतें हों उस अंडवृद्धिको पित्तकी अंडवृद्धि जानना। इससे अंड पके गूलरके समान होता है तथा दाह, गरमी और पाक होतीहै।

३ कफकी अंडवृद्धिमें अंड शीतल, भारी, चिकना (तथा खुजलीयुक्त) कठिन और थोडीपीडायुक्त होताहै।

४ काले फोडोसे व्याप्त तथा जिसमें पित्तवृद्धिके लक्षण मिलते हों उस अंडवृद्धिको रक्तज अंडवृद्धि कहतेहैं।

५ मेदसे जो अंडवृद्धि होती है वह कफकी वृद्धिके समान मृदु, नरम तथा तालफलके समान अर्थात् पीले रंगकी होय।

६ मूत्रको रोकनेका जिसको अभ्यास होय उसके यह रोग मूत्रवृद्धि होय है, वह पुरुष जब चले तब पानीसे भरे पखालके समान डवक डवक हिलें तथा वजे और उसमें पीडा थोडी हो हाथके छूनेसे नरम मालूम होय, उसमें मूत्रकृच्छ्रकीसी पीडा होय, फल और कोश दोनो इधर उधर चलायमान होयँ।

७ वातकोपकारक आहारके सेवनसे, शीतल जलमें प्रवेश करके स्नान करनेसे उपस्थित मूत्रादिकके वेगोंके धारण करनेसे, अप्राप्तवेग (अर्थात् करनेकी इच्छा न होय) उसको बलपूर्वक करनेसे, भारी बोझके उठानेसे, अतिमार्गके चलनेसे, अंगोंकी विषम चेष्टा (अर्थात् टेढा तिरछा अंगकरके गमनादिक करना) बलवान्से वैर करना कठिन धनुषका ईंचना इत्यादि ऐसेही और कारणोंसे कुपितभई जो वायु सो छोटी आंतोंके अवयवोंके एक देशको विगाडकर अर्थात् उनका संकोचकर अपने रहनेके स्थानसे उसको नीचे लेजाय तब वंक्षण संधिमें स्थित होकर उस स्थानमें गांठके समान सूजनको प्रगट करे उसकी उपेक्षा करनेसे (अर्थात् औषध न करनेसे) तथा अंडकोशोंके दावनेसे जो वायु को को शब्द करै, तथा हाथके दावनेसे वायु ऊपरको चढ जाय और छोडनेसे फिर नीचे उतरकर अंडोंको फुलायदे यह रोग अन्त्रवृद्धि कहलाता है।

अंडवृद्धिरोग।

अण्डवृद्धिस्तथाचैकः-

अर्थ-अंडकोशकी वृद्धिको (पोतेछिटकना) तथा कुरंड कहते हैं। यह एक प्रकारका है। इसके लक्षण बहुधा अंत्रवृद्धिके समान होते हैं।

गंडमाला गलगण्ड और अपचीरोग।

--तथैका गण्डमालिका ॥ ६५ ॥ गण्डापचीतिचैका स्यात्-

अर्थ-गंडमाला, गंड (गलगंड) और अपची ये तीनरोग एक एक प्रकारके हैं। इनके लक्षण नीचे लिखे सो देखना।

ग्रंथीरोग।

-ग्रन्थयो नवधा मताः ॥ त्रिभिर्दोषैस्त्रयो रक्ताच्छिराभिर्मेद-सोव्रणात् ॥ ६६ ॥ अस्थ्नामांसेन नवमः-

अर्थ-ग्रथिरोग नौ प्रकारका है। जैसे १ वातग्रथी २ पित्तग्रंथी ३ कफग्रथी

---

१ मेद और कफसे प्रगट भया कूख, कंधा, नाडके पिछाडी मन्या नाडीमें, गलेमे और वंक्षण (जानुमेढूसंधि) इन ठिकानोंमे छोटे वेरके बराबर, बडे वेरके समान, आमलेके समान, ऐसी अनेक प्रकारकी गड होती हैं, वे बहुत दिनमें हौले हौले पके, उनको गंडमाला कहते हैं।

२ मन्या, नाडी, टोडी, इन ठिकानेपर अंडके बराबर ग्रंथिरूप सूजन लंबायमान होतीहै और वह सूजन बडी छोटीभी रहती है, उसको गंड अथवा गलगड कहते हैं, वह गलगंडरोग गलेमे जो होता है सो वायु और इनके दुष्ट होनेसे होता है और मन्यानाडीमें जो होता है सो मेदके दुष्ट होनेसे होता है।

३ गंडमालाकी गांठ पके नही, अथवा पाक होनेसे स्रवे, कोई नष्ट हो जाय, दूसरी नवीन उठे, ऐसी पीडा बहुत दिनरहे उसको अपची कहते हैं।

४ वादीकी गांठ तनेके समान करडी मालूम हो, छीलनेके समान मालूम हो सूई चुभनेकीसी पीडा होय, मानो गिरा चाहती है, मथनेकीसी पीडा होय, फोरनेकीसी पीडा होय, कालावर्ण हो बस्तिके समान चाडी होय और उसके फूटनेसे स्वच्छ रुधिर निकले।

५ पित्तकी गांठ आगसे भरेके समान अत्यत दाहकरे, आंतोंसे धुआँ निकलतासा मालूम होय मानो सिंगी लगायके कोई चूसे है. खार जगानेके सदृश पका मालूम हो, अग्निके समान जलीसी मालूम हो उस गांठका रग लाल अथवा किंचित् पीला होय और फूटनेसे उसमेसे दुष्ट रुधिर बहुत निकले।

६ कफकी ग्रथि (गांठ) शीतल, प्रकृतिसमान वर्ण (किंचित् विवर्ण) थोडी पीडा हो, अत्यन्त खुजली चले, पत्थरके समान कठिन-बडी होय और चिरकालमें बढनेवाली होय, फूटनेसे सफेद गाढी राध निकले।

४ रक्तग्रंथी ५ शिराग्रंथी ६ मेदोग्रंथी ७ व्रणग्रंथी ८ अस्थिग्रंथी और ९ मांसग्रंथी। इसप्रकार ग्रंथिरोग नौ प्रकारका है। ग्रंथी कहिये गाँठ। वातादिदोष मांस और रक्त ये दुष्ट होकर मेद और शिरा इनको दूषितकर गोल और ऊंची तथा गाठके समान सूजन उत्पन्न करे उसको ग्रंथी अर्थात् गांठ कहते हैं।

अर्बुदरोग।

–षड्विधं स्यात्तथार्बुदम्॥ वातात्पित्तात्कफाद्रक्तान्मांसादपि च मे-

अर्थ–अर्बुदरोग छःप्रकारका है। जैसे १ वातार्बुद २ पित्तार्बुद, ३ कफार्बुद, ४ रक्तार्बुद, ५ मांसार्बुद. और ६ मेदकी अर्बुद ऐसे अर्बुद रोगको छःप्रकारका जानना।

---

१ रक्त दुष्ट होकर उससे जो ग्रन्थि उत्पन्न होती है उसको रक्तग्रन्थि कहते हैं. इनके लक्षण पित्त-ग्रन्थिके सदृश जानना।

२ निर्बल पुरुष शरीरको परिश्रमकारक कर्म करे तब वायु कुपित होकर शिराके जालको संकुचित कर, एकत्रकर और सुखायकर ऊँची गाँठ शीघ्र प्रगट करती है।

३ मेदकी ग्रंथि शरीरके बढनेसे बढे और शरीरके क्षीण होनेसे क्षीण होजाय, चिकनी बडी खुजली युक्त पीडारहित होय और जब वह फूटजाय, तब उसमेंसे तिलकल्कके समान अथवा घृतके समान मेदा निकले।

४ क्षतादिकोंकरके व्रण होकर उससे जो ग्रंथि उत्पन्न होती है उसको व्रणग्रन्थि कहते हैं।

५ वातादिक दोष कुपितहोकर हड्डियोंको दूषित करें तिनसे जो ग्रंथि उत्पन्न होती है उसको अस्थि ग्रंथि कहते हैं।

६ मांसके दुष्ट होनेपर उससे जो ग्रंथि उत्पन्न होती है उसको मांसग्रन्थि कहते हैं और व्रणग्रन्थि तथा अस्थिग्रंथियोंमें जिस दोषका कोप हो उसीके लक्षणसे जानलेना।

७ शरीरके किसी भागमें दुष्ट भये जो दोष सो मांस रुधिरको दुष्ट कर गोल, स्थिर मन्द पीडायुक्त, पूर्वोक्त ग्रंथियोंसे बडी, बडी जिसकी जड होय, बहुकालमें बढनेवाली तथा पकनेवाली ऐसी मांसकी गाँठ उठे उसको वैद्य अर्बुद कहते हैं।

८ इन वातादि तीन दोषोंके अर्बुदोंके लक्षण सर्वदा ग्रंथिके समान होते हैं।

९ दुष्टभये जो दोष सो नसोंमें रहा जो रुधिर उसको संकोचकर तथा पीडितकर मांसके गोलेको प्रगट करे वह यत्किंचित् पकनेवाला तथा कुछ स्रावयुक्त हो और मांसांकुरसे व्याप्त और शीघ्र बढनेवाला ऐसा होता है, उसमेंसे रुधिर बहाकरै. यह रक्तार्बुद असाध्य है। वह रक्तार्बुदपीडित रोगी रक्तक्षयरूप उप-द्रवों करके पीडित होता है इससे उसका वर्ण पीला होजाता है। ये रक्तार्बुदके लक्षण हैं।

१० मुक्का आदिक लगनेसे अंगमें पीडा होय, उस पीडासे दुष्ट भया जो मांस सो सूजन उत्पन्न करे। उस सूजनमें पीडा नहीं होय और वह चिकनी, देहकेवर्ण होय, पके नहीं, पत्थरके समान कठिन, हले नहीं, ऐसी होती है। जिस मनुष्यका मांस बिगडजाय अथवा जो नित्य मांसको खाया करे, उसके यह अर्बुद रोग होता है। वह मांसार्बुद असाध्य कहागया है। कोई मांसार्बुदका भेद मोरली कहते हैं।

श्लीपदरोग ।

दस्ः ॥ ६७ ॥ श्लीपदंचत्रिधाप्रोक्तं वातात्पित्तात्कफादपि ॥

अर्थ–श्लीपद रोग तनिप्रकारका है । वातका श्लीपद २ पित्तका श्लीपद ३ कफका श्लीपद ऐसे तीन प्रकार जानने ।

विद्रधिरोग ।

विद्रधिःषड्विधःख्यातोवातपित्तकफैस्त्रयः ॥ ६८ ॥
रक्तात्क्षतात्त्रिदोषैश्च--

अर्थ–विद्रधिरोग छःप्रकारका है । जैसे १ वातकी विद्रधि २ पित्तकी विद्रधि ३ कफकी विद्रधि ४ रुधिरजन्यविद्रधि ५ क्षतजन्यविद्रधि और ६ संनिपातकी विद्रधि इस प्रकार छः भेद विद्रधिके हैं ।

---

१ जो सूजन प्रथम वंक्षण (जाघकी सधि) मे उत्पन्न होकर धीरे धीरे पैरोमे आवै और उसके साथ ज्वरभी होय तो इस रोगको श्लीपद कहते हैं । यह श्लीपद हाथ, कान, नेत्र, शिश्न, होठ, नाक, इनमेमी होती है ऐसा किसीका मत है ।

२ वातकी श्लीपद काली, रुखी, फटी और जिसमें पीडा होय, विनाकारणके दूखे और उसमे ज्वर बहुत होय ।

३ पित्तकी श्लीपद पीलेरंगकी दाह और ज्वरयुक्त होय, तथा नरम होय ।

४ कफकी श्लीपदका वर्ण चिकना सफेद, पीला, भारी और कठिन होता है ।

५ अत्यत बढे तथा अस्थि (हड्डी) का आश्रयकरके रहनेवाले वातादिदोष त्वचा, रुधिर, मास और मेद इनको दुष्टकर धीरेमे भयकर शोथ उत्पन्नकरे, उसकी जड हड्डीपर्यंत पहुँच जाय । उत्पत्तिकालमे अत्यंत पीडाकारक तथा गोल अथवा लंबा जो शोथ (सूजन) होय, उसको विद्रधि कहते हैं ।

६ जो विद्रधि काली, लाल, विषम कहिये कदाचित् छोटी कदाचित् मोटी हो, अत्यत वेदनायुक्त और उसका प्रगट होना तथा पाक नाना प्रकारका होय, उसको वातविद्रधि कहते हैं ।

७ पित्तकी विद्रधि पके गूलरके समान होय अथवा कालावर्ण होय, ज्वर, दाह करनेवाली उसका प्रगट और पाक शीघ्र होय ।

८ कफकी विद्रधि मिट्टीके शरावसदृश वडी होय पीलावर्ण, शीतल, चिकनी, अल्पपीडा होय, उसकी उत्पत्ति और पाक देरमे होती है ।

९काले फोडोंसे व्याप्त, श्यामवर्ण, दाह, पीडा और ज्वर ये उसमे तीव्र होयँ, तथा पित्तकी विद्रधिके लक्षणकरके युक्त होय. उसको रक्तविद्रधि जानना ।

१० लकडी, पत्थर, ढेला आदिका अभिघात (चोट लगना पिचजाना इत्यादि) होनेसे अथवा तलवार, तीर, बरछी इत्यादिक लगनेसे घाव होजानेसे, अपथ्य करनेवाले पुरुषके कुपित वायुकरके विस्तृत (फैली) क्षतोष्मा (घावकी गरमी) और रुधिर सहित पित्तको कोपकरे उस पुरुषके ज्वर, प्यास और दाह होय और उसमे पित्तकी विद्रधिकेलक्षण मिलतेहों । इसको क्षतज विद्रधिजानना । इसकोही आगंतुज विद्रधि कहतेहैं ।

११ संनिपातज विद्रधिमें अनेकप्रकारकी पीडा (जैसे तोद, दाह,खुजली आदि) तथा अनेक प्रका-

व्रणरोग।

व्रणाःपंचदशोदिताः ॥ तेषांचतुर्धाभेदःस्यादागंतुर्देहजस्तथा ॥६९॥ शुद्धोदुष्टश्चविज्ञेयस्तत्संख्याकथ्यतेपृथक् ॥वातव्रणः पित्तजश्चकफजोरक्तजोव्रणः ॥७०॥ वातपित्तभवश्चान्योवात-श्लेष्मभवस्तथा ॥ तथापित्तकफाभ्यांच सन्निपातेन चाष्टमः ॥७१॥ नवमो वातरक्तेन दशमो रक्तपित्ततः ॥श्लेष्मरक्तभव-श्चान्योवातापितासृगुद्भवः ॥७२॥वातश्लेष्मासृगुत्पन्नः पित्तश्ले-ष्मास्रसंभवः ॥ संनिपातासृगुद्भूत इतिपंचदशव्रणाः ॥७३ ॥

अर्थ–व्रण (घाव) पंद्रह प्रकारके हैं। उनके चार भेद हैं। जैसे १ आगंतुक व्रण २ देहजव्रण ३ शुद्धव्रण ४ दुष्टव्रण । इसप्रकार चार प्रकारके व्रण जानने । उनकी संख्या कहते हैं। जैसे १ वातव्रण २ पित्तव्रण ३ कफव्रण ४ रक्तजव्रण ५ वातपित्तव्रण ६ वातकफव्रण ७ *पित्तकफव्रण ८ सनिपातव्रण ९ वातरक्तव्रण १० रक्तपित्तव्रण

–रका स्राव (जैसे पतला, पीला सफेद स्रावहोय, घटाल कहिये नीचे स्थूल होय और ऊपर पतरीहो अर्थात् अग्रभाग अति ऊँचाहोय) छोटी, वडी, कदाचित् पके कदाचित् नहीं पके ऐसी होय ।

---

१ अनेक प्रकारकी धारवाले तथा मुखवाले शस्त्रोंके अनेक ठिकानेपर लगनेसे अनेक प्रकारकी आकृतिवाले व्रण होते हैं उनको आगंतुकव्रण कहतेहैं ।

२ वात, पित्त, कफ ये दोष दुष्ट होकर उनसे व्रण होता है उसको देहज व्रण कहतेहैं ।

३ जो व्रण जीभके नीचे भागके समान अत्यंत नरमहोय, स्वच्छ, चिकना, थोडीपीडायुक्त भले प्रकार का होय, दोष रक्तादि स्रावरहित होय उसको शुद्धव्रण जानना ।

४ जिसमेंसे दुर्गंधयुक्त राध और सडाभया रुधिर बहै, जो ऊपर ऊँचा तथा भीतरसे पोलाहो बहुत दिन रहनेवाला होय उसको दुष्टव्रण कहते हैं वह शुद्धलिंगके विपरीत होताहै ।

५ वादीसे प्रगट व्रणमें जिकडना, तथा हाथके छूनेसे कठिन मालूम होय, उसमेंमें थोडा स्राव होय, तथा पीडा बहुत होय. तथा सुईके चुभानेकीसी पीडाहोय और उसका रंग काला होय ।

६ प्यास, मोह, ज्वर, क्लेद, दाह, सडना, चिरासा होय, वास आवे, स्रावहो ये पित्तव्रणके लक्षणहैं ।

७ कफका स्राव अत्यंत गाढा, भारी, चिकना, निश्चल, मंदपीडा, स्रवनेवाला और बहुत कालमें पके ।

८ जो रक्तके कोपसे होय वह रक्तव्रण। उसमेंसे रुधिर स्रवै ।

९ वात और पित्त इसके लक्षण जिस व्रणमें होय, उस वातपित्तव्रण जानना ।

१० वायु और कफके लक्षण जिस व्रणमें हो उसे वातकफजव्रण जानना ।

* इसी प्रकारसे पित्तकफव्रण, सनिपातव्रण और वातरक्तव्रण जानने ।

११ कफरक्तव्रण १२ वातपित्त और रक्तजन्यव्रण १३ वातकफ और रुधिर जन्यव्रण १४ पित्तकफरुधिरजन्यव्रण १५ सन्निपात और रुधिरजन्यव्रण । इस प्रकार पंद्रह प्रकारके व्रण जानने।

आगंतुकव्रणरोग।

सद्योव्रणस्त्वष्टधास्यादवकृत्तविलम्बितौ ॥
छिन्नभिन्नप्रचलिता घृष्टविद्धनिपातिताः ॥७४॥

अर्थ—सद्योव्रण (आगतुक) आठ प्रकारका है। जैसे १ अवकृत्त[2] २ विलंबित[3], ३ छिन्न[4] ४ भिन्न[5] ५ प्रचलित[6] ६ घृष्ट[7] ७ विद्ध[8] और ८ निपातित[9]। इसप्रकार आगंतुकव्रण आठ प्रकारके हैं।

कोष्ठरोग।

कोष्ठभेदोद्विधाप्रोक्तच्छिन्नान्त्रो निःसृतान्त्रकः ॥

अर्थ—कोष्ठभेद दो प्रकारका है जैसे १ छिन्नात्रक[10] २ निःसृतांत्रक[11] है।

---

१ अनेक प्रकारकी धारवाले तथा मुखवाले शस्त्र अनेक ठिकानेपर लगनेसे अनेक प्रकारकी आकृतिवाले व्रण होते हैं. उनको आगतुक व्रण कहते हैं।

२ जिस व्रणके भीतर कतरनीसे कतरनेके सदृश पीडा होय, उसको अवकृत्त व्रण कहते हैं ।

३ जिस व्रणका मास लटकता है उसको विलंबित व्रण कहते हैं।

४ जो व्रण तिरछा, सरल (सीधा) अथवा लंबा होय, उसको छिन्नव्रण कहते हैं।

५ बर्छी, भाला, बाण, तल्वारके अग्रभाग विषाण (दाँत सींग) इनसे आशय (कोष्ठ) को वेधकर थोडासा रुधिर स्रवे (निकले) उसको भिन्नव्रण कहते हैं।

६ जो अग हाडसहित प्रहार कहिये मुद्गर आदिकी चोट अथवा दबना किवार आदि इनके योगसे पिचजाय, तथा मज्जा, रुधिर करके युक्त होय (घाव न हो) उसको प्रचलित व्रण कहते हैं. इसको कोई पिच्चित व्रणभी कहते हैं।

७ कठिन वस्त्र आदिके घर्षण (घिसने) से, चोटके लगनेसे, जिस अंगके ऊपरकी त्वचा जाती रहै, तथा आगके समान गरम रुधिर चुआय उसको घृष्टव्रण कहते हैं।

८ बारीक अग्रभागवाले (सुई आदि) शस्त्रसे आशय विना जे अग हैं उनमें वेध होनेसे त्रुटित (कहिये उनमेंसे वह शस्त्र न निकला होय) निर्गत (कहिये शस्त्र निकल गया) हो उसको विद्धव्रण कहते हैं।

९ जिसमे अग अतिच्छिन्न तथा अतिभिन्न न भया हो और छिन्नभिन्न इन दोनोंके लक्षण जिसमे मिलते हों, तथा व्रण तिरछा बाका होय, उसको निपातितव्रण कहते हैं. इसको क्षतव्रणभी कहते हैं।

१० शस्त्रादिको करके पेटकी आँत टूटगई हो और शस्त्र और आँत ये दोनों भी पेटके भीतर हों उसको छिन्नात्रक कहते हैं।

११ शस्त्रादिकोंकरके पेटकी आँत टूटके बाहर निकल आई हो उसको निःसृतांत्रक कहते हैं

अस्थिभंगरोग।

अस्थिभंगोऽष्टधाप्रोक्तो भग्नपृष्ठविदारिते ॥ ७५ ॥ विवर्तित-श्चविश्लिष्टस्तिर्यक्क्षिप्तस्त्वधोगतः ॥ ऊर्ध्वगः संधिभंगश्च-

अर्थ—अस्थिभग शब्द करके इस जगह हस्तादिकोंके काडका भग और सधिभग इन दोनोंका ग्रहण है। वह भग्नरोग आठ प्रकारका है। जैसे १ भग्नपृष्ट २ विदारित ३ विवर्तित ४ विश्लिष्ट ५ तिर्यक्क्षिप्त ६ अधोगत ७ ऊर्ध्वग ८ और संधिभग। इस रीतिसे आठ प्रकार जानने। हड्डी टूटने आदिको भग्न कहते हैं।

वह्निदग्धरोग।

-वह्निदग्धश्चतुर्विधः॥७६॥प्लुष्टोऽतिदग्धोदुर्दग्धःसम्यग्दग्धश्चकीर्तितः

अर्थ—अग्निसे जलेहुएको दग्ध कहते हैं। वह रोग चार प्रकारका है। जैसे १ प्लुष्ट २ अतिदग्ध ३ दुर्दग्ध और ४ सम्यग्दग्ध। इसप्रकार अग्निदग्ध रोग चार प्रकारका जानना।

---

१ सधियोंके दोनों तरफकी हड्डियोंके परस्पर घिसनेसे सूजन होती है और रात्रिमें पीडा बहुत होय उसको भग्नपृष्ठ कहते हैं। कोई इसको उत्पिष्ट भी कहते हैं।

२ विश्लिष्ट सधियोंके दोनों तरफकी हड्डिया टूटके उनमें बहुत पीडा होय, उसको विदारित कहते हैं।

३ विवर्तित सधियोंमें दोनों तरफसे हाड सधिसे पलटजॉय, तब अत्यत पीडा होय इस सधिमे हाड दोनों तरफ फिरा करे।

४ विश्लिष्ट संधिमें सूजन और रात्रिमें पीडा होकर सर्वकालमें अत्यंत पीडा होय। सधि शिथिलमात्र होय, इसमें हाडके हटनेसे बीचमें गढेला होजाय।

५ हड्डीके तिरछे हटनेसे पीडा बहुत हो और एक हड्डी सधिस्थान छोडकर टेढी होजाय।

६ संधिकी हड्डी एक नीचेको हट जाय तो पीडा होय और संधिकी विरुद्ध चेष्टा होय इसमें संधिके हाड परस्पर दूर होंय परतु नीचेको गमन करे।

७ संधिके ऊपरका हाड सधिसे बाहर होजाय, उसमें पीडा होय, उसको ऊर्ध्वग कहते हैं।

८ संधिकी हड्डी चूर्ण होजावे, अथवा टूटके दो टूकडे हों, उसको सधिभग कहते हैं।

९ अग्नि करके अग दग्ध होनेसे जो अंगका वर्ण पलटजाय उसको प्लुष्ट कहते हैं।

१० अग्निसे दग्ध होकर रक्त, मास, शिरा, स्नायु, सधि और हड्डी दीखनेलगे और ज्वर दाह प्यास मूर्च्छा इनकरके व्याप्त हो. उसको अतिदग्ध कहते हैं।

११ अग्निसे दग्ध होनेसे बहुत पीडा होय, अगमें फोडे हों और वे फोडे जल्दी अच्छे न हों. उसको दुर्दग्ध कहते हैं।

१२ अग्निसे जो अग दग्ध होय और ताड वृक्षके समान अग काला हो, उसको सम्यग्दग्ध

नाडीव्रणरोग।

नाड्यः पंच समाख्याता वातपित्तकफैस्त्रिधा ॥ ७७ ॥ त्रिदोषैरपि शल्येन-

अर्थ–नाडीव्रण (नासूर) पांच प्रकारके हैं। जैसे १ वातनाडीव्रण २ पित्तनाडीव्रण ३ कफनाडीव्रण ४ त्रिदोषनाडीव्रण और ५ शल्यनाडीव्रण। इसप्रकार नाडीव्रण पांच प्रकारका है।

भगंदररोग।

-तथाष्टौ स्युर्भगन्दराः ॥ शतपोनस्तुपवनादुष्ट्रग्रीवस्तु पित्ततः ॥ ७८ ॥ परिस्रावीकफाज्ज्ञेयऋजुर्वातकफोद्भवः ॥ परिक्षेपी मरुत्पित्तादर्शोजः कफपित्ततः ॥ ७९ ॥ आगंतुजातश्चोन्मार्गी शंखावर्तस्त्रिदोषजः ॥

अर्थ–भगंदररोग आठ प्रकारका है। तहा १ वातसे शतपोनक २ पितसे उष्ट्रग्रीव

---

१ जो मूर्ख मनुष्य पके हुए फोडेको कच्चा समझकर उपेक्षा करे, किंवा बहुत राध पडे फोडेको उपेक्षा करदे, तब वह बढी हुई राध पूर्वोक्त त्वङ्मांसादिक स्थानमें जायकर उनको भेदकर बहुत भीतर पहुंच जाय, तब एकमार्गकर उसमें वह राध नाडीके समान बहे इसीसे इसको नाडीव्रण (नासूर) कहते हैं।

२ वादीसे नाडीव्रणका मुख रूखा तथा छोटा होय और शूल होय, इसमेंसे फेनयुक्त स्राव होय रात्रिमें अधिक स्रवे।

३ पित्तके नाडीव्रणमे प्यास, ज्वर और दाह होय। उसमेंसे पीले रंगका और बहुत गरम राध स्रवे, और दिनमें स्राव अधिक होय।

४ कफज नाडीव्रणमे सफेद, गाढी, चिकनी राध निकले, खुजली चले, रातमें स्राव बहुत होय।

५ जिस नाडीव्रणमे दाह, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा, मुखका सूखना और तीनो दोषोंके लक्षण होय उसको त्रिदोषप्रकोपजन्य नाडीव्रण जानना। इसे भयकर–प्राणनाश करनेवाली कालरात्रिके समान जानना।

६ किसी प्रकारसे शल्य (कंटकादि) रक्त, मांस, राध आदिके स्थानमें पहुँचकर टूट जाय तो नाडीव्रणको उत्पन्न करै. उस नाडीव्रणमे झाग मिला तथा रुधिरयुक्त मथेके समान गरम नित्य राध बहै, तथा पीडा होय।

७ गुदाके समीप दो अगुल ऊँची पिढाडी एक पिटिका (फुन्सी) होय उसमें बहुत पीडा होय और वह पिटिका फूट जाय उसको भगदर रोग कहते हैं. यदाह भोजः–"भगंगारिश्मन्ताच्च गुदवस्तितार्थवच्च। भगवद्दारयेद्यस्मात्तस्माज्ज्ञेयो भगदरः" इति।

८ कषैले और रूखे पदार्थ खानेसे वायु अत्यत कुपित होकर गुदस्थानमे जो पिटिका (फुन्सी) करे, उनकी उपेक्षा करनेसे वे फुंसी पके और फूट जाय तब पीडा होय उनमेसे

३ कफसे परिस्रावी ४ वातकफसे ऋजु ५ वातपित्तसे परिक्षेपी ६ कफपित्तसे अर्शोज ७ आगतुज उन्मार्गी और त्रिदोषसे ८ शंखावर्त भगदर होता है। इस प्रकार आठ प्रकारके भगंदर जानने।

उपदंशरोग।

मेढ्रे पंचोपदंशाःस्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा॥८०॥ संनिपातेनरक्ताच्च-

अर्थ—लिंगमे उपदंश रोग पाचप्रकारका होता है। जैसे वात, पित्त, कफ, सनिपात और रक्तसे उपजाहुआ तहा लिंगेन्द्रीमे किसी कारणसे हस्तका कठोर स्पर्श होनेसे, वडी कामबाधा प्राप्त हो नख (नाखून) दांत इनका अभिघात होनेसे, मैथुनके पश्चात् लिंग धोनेसे, दासी आदिके साथ अत्यत विषय करनेसे, दीर्घ कठोर, केश

—लाल झाग मिली राध वहे, तथा अनेक छिद्र हो जायं। उन छिद्रोमे होकर मूत्र मल और शुक्र (रेत) वहे चालनीकेसे अनेक छिद्र होय, इसी कारण इस रोगको शतपोनक कहते हैं शतपोनक नाम संस्कृतमें चालनीका है।

९ पित्तकारक पदार्थ खानेसे कुपित भया जो पित्त सो गुदामे लाल रंगकी पिटिका उत्पन्न करे वो शीघ्र पक जाय और उनमेसे गरम राध वहे। पिटिका (फुन्सियां) ऊटकी नाडके समान होय इसीसे इनको उष्ट्रग्रीव कहते हैं।

१ कफसे प्रगटभये भगदरमें खुजली चले, तथा उसमेंसे गाढी राध वहे वो पिटिका कठिन होय उसमे पीडा थोडी होय और उसको वर्ण सफेद होय उसको परिस्रावी भगंदर कहते हैं।

२ जो भगदर वात और कफ इनके लक्षणोकरके युक्त होय और सीधा वहताहो उसको ऋजु भगंदर कहते है।

३ जो भगदर वात और पित्तके लक्षणोंकरके युक्त हो उसको परिक्षेपी भगंदर कहते है।

४ जो कफ पित्तके लक्षणोंकरके युक्त हो, उसको अर्शोज भगदर कहते है।

५ गुदामे काटे आदिके लगनेसे क्षत (घाव) हो जाय उस घावकी उपेक्षा करनेसे उसमे कृमि पडते जायँ वो कृमि उस क्षतको विदारण करे ऐसे वो घाव बढकर गुदापर्यत पहुचे तथा कृमि उसमे अनेक मुख कर लेवे उसको उन्मार्गो भगंदर कहते है।

६ जिसमे गौके थनके समान अनेक पिडिका होय, उनका रंग पीला और स्राव अनेक प्रकारका होय, और व्रण शखके आँटके समान गोल होय. इसको शखावर्त अथवा शंबुकावर्तभी कहतेहैं।

७ लिंगेद्रीके ऊपर काले फोडे उठे, उनमें तोडनेकीसी पीडा होय और स्फुरण हो ये लक्षण वातोपदंशके जानने।

८ पित्तके उपदंश करके पीले रंगके फोडे होते है। उनमेसे पानी वहुत वहे, दाह होय।

९ कफके उपदश करके सफेद मोटा फोडा होय उसमे खुजली चले, सूजन होय, और गाढी राध वहे।

१० जिस उपदशमे अनेक प्रकारका स्राव और पीडा होय। वह त्रिदोपज उपदश असाध्य है।

११ रुधिरके उपदंशसे मांसके समान लालरंगके फोडे होंय।

तथा रोगादि करके दूषित योनि जिसकी हो उस दोषसे, ब्रह्मचारिणी (रजस्वला) में गमनादिक तथा वाजीकरणादिकके अनेक उपचार करनेसे इन सब कारणोंसे लिंगेन्द्रीमे रोग प्रगट होवे उसको उपदश कहते है ।

शूकरोग ।

-मेढ्रशूकामयास्तथा ॥ चतुर्विंशतिराख्याता लिंगार्शो ग्रथितं तथा ॥ ८१ ॥ निवृत्तमवमंथश्च मृदितं शतपोनकः ॥ अष्ठीलिकासर्षपिका त्वक्पाकश्चावपाटिका ॥८२॥ मांसपाकः स्पर्शहानिर्निरुद्धमणिरुद्धतः ॥ मांसार्बुदं पुष्करिका संमूढपिटिकालजी ॥ ८३ ॥ रक्तार्बुदं विद्रधिश्च कुंभिकातिलकालकः ॥ निरुद्धं प्रकशिः प्रोक्तस्तथैवपरिवार्तिका ॥ ८४ ॥

अर्थ—लिंगन्द्रीमें शूकरोग चौवीस प्रकारका होता है । जैसे १ लिंगार्श २ ग्रथित ३ निवृत्त ४ अवमंथ ५ मृदित ६ शतपोनक ७ अष्ठीलिका ८ सर्षपिका ९ त्वक्पाक

---

१ जो मंदबुद्धिवाला पुरुष शास्त्रोक्त क्रमके विना लिगको मोटा किया चाहे, वो विषक्रमिका लिंगके ऊपर लेपादिक करे, अथवा जलयोग वात्स्यायन ऋषिके कहे उनका साधन करे, उसके लिंगपर शूकरोग होता है सूकनाम जलके मलसे उत्पन्न जलजंतुका है उसके सदृश यह रोग होनेसे इसका भी नाम शूक कहा है ।

२ लिंगार्श शूकरोगमे अर्शके लक्षण जानना ।

३ निरतर शूक लेप करनेसे लिंगेद्रीके ऊपर गांठ पैदा होय उसको ग्रथित कहते हैं ।

४ निवृत्त रोगमे कफका संबंध ज्यादा रहता है ।

५ कफ रक्तसे लिंगेद्रीके बाह्य प्रदेशमे लवीलवी पिटिका होती हैं और वो पिटिका फूट फूट भीतर फैलती हैं उसको अवमथ रोग कहते हैं ।

६ वायुके कोपसे लिंगमे फुन्सीहोय, उससे लिंगको पीडा होय लिंग जोरसे टाढा होय, सूजन आवे, इसको मृदित कहते है ।

७ जिस पुरुषके लिंगमे बारीक छिद्र हो जाय, वह व्याधि वातशोणितसे प्रगट होती है इसको शतपोनक कहते है ।

८ शूकाके लेपसे वायु कुपित होकर करडी निहाईके समान पिडिका होय, और कोई छोटी कोई बडी, टेढे ऐसे मासाकुरोसे व्याप्त होय इसको अष्ठीलिका कहते है ।

९ दुष्ट जलजतुका दुष्ट रीतिसे लेप करनेसे कफवात कुपित होकर सपेद सरसोके समान जो फुन्सी होय इसको सर्षपिका कहते है ।

१० वातपित्तसे लिगकी त्वचा पक जाय उसको त्वक्पाक कहते है इसमे ज्वर और दाह होता है ।

१० अवपीडिका ११ मांसपाक १२ स्पर्शहानि १३ निरुद्धमणि १४ मांसार्बुद १५ पुष्करिका १६ संमूढपिटिका १७ अलजी १८रक्तार्बुद १९ विद्रधि २० कुम्भिका २१ तिलकालक २२ निरुद्ध २३ प्रकश और २४ परिवर्तिका। इस प्रकार शूक रोग चौबीस प्रकारका जानना।

कुष्ठरोग।

कुष्ठान्यष्टादशोक्तानि वातात्कापालिकं भवेत्॥ पित्तादौदुम्बरं प्रोक्तं कफान्मण्डलचर्चिके॥ ८५॥ मरुत्पित्तादृष्यजिह्वं श्लेष्मवाताद्विपादिका॥ तथासिध्मैककुष्ठं च किटिभंचालसं तथा॥ ८६॥ कफपित्तात्पुनर्दद्रूःपामा विस्फोटकं तथा॥ महाकुष्ठंचर्मदलं पुण्डरीकंशतारुकम्॥ ८७॥ त्रिदोषैःकाकणंज्ञेयंतथान्यच्छ्वित्रसंज्ञितम्। तथा वातेन पित्तेन श्लेष्मणा च त्रिधाभवेत्॥ ८८॥

---

१ अवपीडिका शूकरोगमे लिंग फटासा मालूम होय।

२ जिसकी इन्द्रीका मास गलजाय और अनेक प्रकारकी पीडा हो इस व्याधिको मासपाक कहते हैं। यह व्याधि त्रिदोषज है।

३ शूकका लेप करनेसे रुधिर दूषित होकर त्वचाके स्पर्शज्ञानको नष्ट करे।

४ निरुद्धमणि शूकरोगमें लिंगकी मणिकी चेतना जाती रहती है।

५ मास दुष्ट होनेसे मांसार्बुद प्रगट होता है।

६ पित्त रक्तसे उत्पन्न भई पिटिका उसके चारोतरफ अनेक छोटी छोटी फुसिया होयँ और कमलकी भीतरकी केसरके समान सब फुन्सी होय, उसको पुष्करिका कहते हैं।

७ लेप करनेके अनंतर जब लिंगमें खुजली चले तब उसको दोनों हाथोसे खूब खुजानेसे एक मूढ (बिना मुखकी) पिटिका होय, उसको समूढपिटिका कहते हैं।

८ यह पिटिका प्रमेहपिटिकामे जो अलजी नाम पिटिका कह आए हैं उसके समान लाल काले फोडोंसे व्याप्त होय, तथा उसके लक्षण उस अलजीके समान होते हैं।

९ जिस पुरुषके लिंगेद्रीके ऊपर काले, लाल फोडे उत्पन्न हो उसको रक्तार्बुद कहते हैं।

१० विद्रधिके लक्षणमे जो सनिपातविद्रधिके लक्षण कहे हैं, वोही यहां विद्रधि शूकके लक्षण जानने।

११ रक्तपित्तसे जामुनकी गुठलीके समान काले रगकी पिटिका होय, उसको कुम्भिका कहते हैं।

१२ काले अथवा चित्र विचित्र रंगके विषशूकोंके लेपकरनेसे तत्काल सर्वलिंग पकजाय तथा सब मास तिलके समान काला होकर गलजाय। इस त्रिदोषोत्पन्न व्याधिको तिलकालक कहते हैं।

१३ निरुद्ध, प्रकाश और परिवर्तिक इनके लक्षण ग्रंथातरमे निदानस्थानमे क्षुद्ररोगोमे लिखे हैं। उनके समान शिश्नमे रोग होते हैं ऐसा जानना।

अर्थ-कुष्ठरोग अठारह प्रकारका है। जैसे १ कापालिक २ औदुंबर ३ मंडल ४ विचर्चिका ५ ऋक्षजिह्व ६ विपादिका ७ सिध्मकुष्ठ ८ किटिभ ९ अलस १० दद्रु ११ पामा

---

१ विरोधि कहिये क्षीरमत्स्यादि, पतले, स्नेहयुक्त, भारी ऐसे अन्नपानके सेवनकरनेसे रद्दके वेगको रोकनेसे और मलमूत्रादिवेगोंके रोकनेसे, भोजनकरके अत्यत व्यायाम (दंड कसरत) अथवा अतिसंताप करनेसे, सूर्यका ताप सहनेसे, शीत, गरमी, लंघन और आहार इनके सेवनोक्त क्रम छोडके सेवन करनेसे, पसीना, श्रम और भय इनसे पीडित हो और उसीसमय शीतल जल पीवे इस कारणसे, अजीर्णपर अन्न भक्षण करनेसे, तथा भोजन ऊपर भोजन करनेसे, वमन, विरेचन, निरूहण, अनुवासन नस्यकर्म, इन पचकर्मके करते समय अपथ्य करनेसे, नया, अन्न दही, मछली, खारी, खट्टा, पदार्थके सेवन करनेसे, उडद, पूरी, मिष्टान्न (लड्डू, खजला, फेनी आदि) तिल दूध गुड इनके खानेसे, अन्नके पचेविना स्त्रीसंगकरनेसे, तथा दिनमें सोनेसे, ब्राह्मण, गुरु इनका तिरस्कार करनेसे पापकर्मको आचरण करनेसे, पुरुषोंके वातादि तीनो दोष त्वचा, रुधिर मांस और जल, इनको दुष्टकर कुष्ठरोग (कोट) उत्पन्न करते हैं, कुष्ठ होनेके वातादिदोष, और त्वचादि दूष्य ये सात (वात, पित्त, कफ, त्वचा, रक्त, मांस, जल) पदार्थ अवश्यकारणभूत हैं इनसे ही अठारह प्रकारके कुष्ठ होते हैं तिनमें सात महाकुष्ठ और ग्यारह क्षुद्रकुष्ठ हैं।

२ जो चेढ काले तथा लाल खीपडाके सदृश, रूखे, कठोर पतले ऐसे त्वचावाले तथा नोंचने कीसी पीडायुक्त होय, वे दुश्चिकित्स्य हैं इसको कापालिक कुष्ठ कहते हैं।

३ औदुंवरकुष्ठ-यह शूल, दाह, लाल और खुजली इनसे व्याप्तहोय, इनमें बाल कपिल वर्णके होय तथा ये गूलरफलके समान होते हैं।

४ मडलकुष्ठ सफेद, लाल, कठिन, गीला, चिकना जिसका, आकार मडलके सदृश होय तथा एक दूसरेसे मिला होय, ऐसा यह मडलकुष्ठ असाध्य है।

५ खुजलीयुक्त, कालेरगकी जो फुन्सी (माताके समान) होय तथा उनमेंसे स्राव बहुत होय उसको चर्चिका अथवा विचर्चिका कहते हैं।

६ ऋक्षजिह्व कुष्ठ कठोर अतविषे लाल होय, वीचमें काला होय, पीडाकरे, तथा रीछकी जीभके समान होता है, इसको ऋक्षजिह्व कहते हैं।

७ विपादिकाकुष्ठ जिसमें हाथकी हथेली और पैरके तरवा फटजायँ और पीडा बहुत होय।

८ सिध्मकुष्ठ सफेद, लाल, पतला हो, खुजानसे भूमीसी उडे यह विशेषकरके छातीमें होता है और घीयाके फूलके आकारका होता है।

९ किटिभकुष्ठ नीलवर्णका हो, व्रणकी चटके समान कठोर स्पर्श मालूम होय और रूक्ष हो।

१० अलसकुष्ठ-इस कुष्ठमें पीडा बहुत होय और जिसमें पिडिका पित्तीके समान बहुत और लाल होय, इसमें बहुतसे मूर्ख वैद्य पित्तकी शका करते हैं।

११ दद्रुकुष्ठमें खुजली होय, लाल होय और फोडा होय और ये ऊँचे ऊठ आवे मंडलके आकार गोल उत्पन्न होय इसीसे इसको दद्रुमडल भी कहते हैं।

१२ पामाकुष्ठ-जो पिटिका छोटी और बहुत होंय, उनमेंसे स्राव होय तथा खुजली चले और दाह होय इस कुष्ठको पामा (खाज) कहते हैं।

विस्फोटक १३ महाकुष्ठ १४ चर्मदल १५ पुंडरीक १६ शतारुक १७ काकण और १८ श्वित्रकुष्ठ इस प्रकार अठारह प्रकारका कुष्ठ जानना।

क्षुद्ररोग, विस्फोटक और मसूरिका रोग।

क्षुद्ररोगाःषष्टिसंख्यास्तेष्वादौ शर्कराबुर्दम्॥ इंद्रवृद्धापनसिका विवृत्तांधालजीतथा ॥८९॥ वराहदंष्ट्रावल्मीकं कच्छपी तिलकालकः ॥ गर्दभीरकसाचैवयवप्रख्याविदारिका ॥ ९० ॥ कंदरो मसकश्चैव नीलिकाजालगर्दभः ॥ ईरिवेल्ली जंतुमणिर्गुदभ्रंशोऽग्निरोहिणी ॥ ९१ ॥ संनिरुद्धगुदः कोठः कुनखोऽनुशयीतथा ॥ पद्मिनीकंटकश्चिप्यमलसो मुखदूषिका ॥ ९२ ॥ कक्षावृषणकच्छूश्च गंधःपाषाणगर्दभः॥राजिका च तथा व्यंगश्चतुर्धा परिकीर्तितः ॥ ९३ ॥ वातात्पित्तात्कफाद्रक्तादित्युक्तं व्यंगलक्षणम् ॥ विस्फोटाः क्षुद्ररोगेषु तेऽष्टधा परिकीर्त्तिताः ॥ ९४ ॥ पृथग्दोषैस्त्रयोद्वन्द्वैस्त्रिविधाः सप्तमोऽसृजः॥अष्टमः

---

१ विस्फोटककुष्ठ—जो फोडे काले वा लाल रंगके होय और जिनकी त्वचा पतली होय उसको विस्फोटक कुष्ठ कहते हैं।

२ जो कुष्ठ घर्म (पसीना) से रहित होता है और जिस करके सर्व अंग मक्खियोंके अंगके सदृश होता है और रसादि धातुओंको व्याप्त करता है इसको महाकुष्ठ कहते हैं। कहीं इसको चर्मकुष्ठभी कहते हैं।

३ चर्मदलकुष्ठ—यह लाल हो, शूलयुक्त, खुजलीयुक्त, फोडोंसे व्याप्त होकर फूट जाय, इसमें हाथ लगानेसे सहा न जाय इसमें त्वचा फटजाती है।

४ पुंडरीक कुष्ठ जो कुष्ठ पुंडरीक (कमल) पत्रके समान सफेद होय और उसका अंतभाग लाल होय, यत्किंचित् ऊँचा निकल आवे और मध्यमे थोडा लाल होता है।

५ शतारुक कुष्ठ—जो लाल होय, श्याम होय, जिसमे जलन होय, शूल हो, तथा अनेक फोडे हो उसको शतारुक कुष्ठ कहते हैं।

६ काकण कुष्ठ—जो चिरमिटीके समान लाल अर्थात् बीचमे काला होय और आसपास लाल अथवा बीचमे लाल और पास काला होय, किंचित् पका, तीव्रपीडायुक्त, जिसमे तीनो दोषोंके लक्षण मिलते हो यह कुष्ठ अच्छा नही होता।

७ चित्रकुष्ठ—पूर्वोक्त कुष्ठोंके समान है निदान और चिकित्सा जिसकी ऐसी होती है और उसमेसे स्राव होता है और वह श्वित्रकुष्ठ रक्त, मांस और मज्जा इन तीनो धातुओंसे उत्पन्न होता है. यह कुष्ठ वात, पित्त, कफ इनके भेदोंसे तीन प्रकारका होता है। वायुसे रूक्ष और लाल होय, पित्तसे लाल कमलपत्रके समान लाल होय, उसमे दाह होय, उसके ऊपरके बाल गिरपडें, कफके योगसे यह कोढ सफेद गाढा और भारी होता है, उसमे खुजली चलती है, ऐसे तीन भेदका श्वित्रकुष्ठ जानना

संनिपातेन क्षुद्ररुक्षु मसूरिका ॥ ९५ ॥ चतुर्दशप्रकारेणत्रिभिर्दोषैस्त्रिधाचसा ॥ द्वन्द्वजा त्रिविधाप्रोक्ता संनिपातेन सप्तमी ॥ ९६ ॥ अष्टमी त्वग्गता ज्ञेया रक्तजा नवमी स्मृता ॥ दशमी मांसजा ख्याता चतस्रोऽन्याश्चदुस्तराः ॥ मेदोऽस्थिमज्जशुक्रस्थाः क्षुद्ररोगा इतीरिताः ॥ ९७ ॥

अर्थ-क्षुद्ररोग ६० साठ प्रकारके है जैसे १ शर्करार्बुद २ इन्द्रवृद्धा ३ पनसिका ४ विवृत्ता ५ अंधालजी ६ वराहदंष्ट्र ७ वल्मीक ८ कच्छपी ९ तिलकालक १० गर्दभी

---

१ कफ, मेद और वायु ये मास, शिरा और स्नायु इनमे प्राप्त हो गाँठ करते हैं । जब वह फूटे तब उसमेसे सहत, घृत, चर्बीके समान स्राव हो तिसकरके वायु पुनः बढकर मासको सुखाय उसकी बारीक खिंचीसी गाँठ करे, उसको शर्करा कहते हैं । शर्करा होनेके अनंतर नाडियोंसे दुर्गंधयुक्त क्लेदयुक्त अनेक प्रकारके वर्णका (घृत, मेद और वसा इनके वर्णका) रुधिर स्रवे, उसको शर्करार्बुद कहते हैं ।

कमलकर्णिकाके समान बीचमे एक पिडिका होय, उसके चारोओर छोटी छोटी फुन्सियाँ हो उसको इन्द्रवृद्धा कहते हैं यह वात पित्तसे उत्पन्न होती हैं ।

३ कानके भीतर वात, पित्त, कफसे जो फुन्सी उग्रवेदनासहित प्रगट होय और वह स्थित होय उसको पनसिका कहते हैं ।

४ पित्तके योगसे कटे मुखकी, अत्यत दाहयुक्त, पके गूलरके समान, चारोंओर वल पडीहुई जो पिडिका होय उसको विवृत्ता कहते हैं ।

५ कफवातसे प्रगट, कठिन, जिसमे मुख न हो, तथा ऊँची ऐसी पिडिका होय तथा जिसके चारो ओर मडलाकार हो और जिसमे राध थोडी होय, उसको अधालजी कहते हैं ।

६ शरीरमे गाँठके समान कठिन सजन उत्पन्न होय, उसका आकार सूअरकी ठोडीके सदृश होय. उसमे दाह, खुजली और पीडा होय और उसके ऊपरकी त्वचा पकजाय उसको वराहदंष्ट्र, सूकरदंष्ट्र, वराहडाढभी कहते हैं ।

७ कंठ, कधा कूख, पैर, हाथ, सधि, गला इन ठिकानोपर तीनों दोषोसे सर्पकी बाँबीके समान गाँठ होय. उसका उपाय न करे तब वह धीरे धीरे बढे उसमें अनेक मुख होजायँ, उनमेसे स्राव होय नोचनेकीसी पीडा होय, तथा वह मुखके ऊपर कुछ ऊँची होकर विसर्पके समान फैल जाय इस रोगको वैद्य वल्मीक कहते हैं, इसके ऊपर औषधि उपचार नही चले और पुरानी होनेसे विशेष असाध्य जानना ।

८ कफवायुसे प्रगट गाँठ बधी, पाच अथवा छः कठिन कछुआकी पीठके समान ऊँची जो पिडिका होय उनको कच्छपिका कहते हैं ।

९ वात, पित्त, कफके कोपसे काले तिलके समान पीडारहित, त्वचासे मिले ऐसे अगमें दाग होय, उनको तिलकालक (तिल) कहते हैं ।

१० वातपित्तसे प्रगट एक गोल ऊँची तथा लाल और फोडेसे व्याप्त ऐसा मंडल होय, वह बहुत दूखे, उसको गर्दभी अथवा गर्दभिका ऐसे कहते हैं ।

११ रकसा १२ यवप्रख्या १३ विदारिका १४ कंदर १५ मसक १६ नीलिका १७ जालगर्दभ १८ इरिवेल्लिका १९ जंतुमणि २० गुदभ्रंश २१ अग्निरोहिणी २२ सनिरुद्धगुद २३ कोठ २४ कुनख २५ अनुशयी २६ पद्मिनाकंटक २७ चिप्य २८ अलस

१ शरीरमें जो पिटका (फुन्सी) स्रावरहित होकर खुजलीयुक्त हो उनको रकसा कहते हैं।

२ कफवातसे प्रगट जौके समान, कठिन, गाँठके सदृश मांसमिश्रित जो पिडिका होय उसको यवप्रख्या कहते हैं. तथा इसको अचालजीभी कहते हैं।

३ विदारीकंदके समान गोल काँखमे अथवा वक्षणस्थानमे जो गाँठ ताँबेके रंगकीसी हो, उसको विदारिका कहते हैं. यह सनिपातसे होयहै अर्थात् इसमे तीनो दोषोके लक्षण होते है।

४ पैरोमे कंकर छिदनेसे, अथवा काँटे लगनेसे बेरके समान ऊंची गाँठ प्रगट होय उसको कदर अथवा ठेक कहते है. यह कदररोग हाथोंममी होताहै. ऐसा भोजका मत है।

५ वादीसे शरीरके ऊपर उडदके समान काली, पीडारहित, स्थिर, कठिन, कुछ ऊँची गाँठसी प्रगट होय, उसको मसक माष मस्सा ऐसे कहते हैं।

६ व्यंगके लक्षणसदृश जो काला मडल अंगमे होय, अथवा मुखपर होय, उसको नीलिका कहतेहैं।

७ पित्तसे विसर्पके समान इधर उधरको फैलनेवाली, पतली तथा कुछ पकनेवाली ऐसी सूजन होय, उसमे दाह होय और ज्वर होय उसको जालगर्दभ कहते हैं।

८ त्रिदोषसे प्रगट मस्तकमे गोल, अत्यत पीडा और ज्वर करनेवाली, त्रिदोषके लक्षण सयुक्त ऐसी पीडिका होय उसको इरिवेल्ली कहते हैं।

९ कफरक्तसे जन्मसेही प्रगटभई समान, तथा कुछ ऊँचा, जिसमे पीडा होय नहीं, ऐसा गोलमडलके समान देहमें चिह्न होय उसको लक्ष्म कोई लक्ष्य तथा कोई जतुमणि ऐसे कहते हैं यह स्त्रीपुरुषोको अग भेदकरके शुभाशुभ फलदायक है।

१० जिस पुरुषकी देह रूक्ष और अशक्त होय, उस पुरुषके प्रवाहन (कुथन) तथा अतिसार हेतु करके गुदा बाहर निकल आवे, अर्थात् काँच बाहर निकल आवे उस रोगको गुदभ्रंश रोग कहते हैं उस रोगमें धातुक्षय होनेसे वात कुपित होय है।

११ काँखके आसपास मासके विदारण करनेवाले जो फोडा होते हैं. तिनकरके अतर्दाह होय, तथा ज्वर होय वह फोडा प्रदीप्त अग्निके समान लाल होय. इन फोडोंमें वायु अधिक होनेसे सात दिन, पित्ताधिक्यसे बारह दिन और कफाधिक्यसे ५ पाच दिनमे रोगी मरे यह अग्निरोहिणीनामक त्रिदोषज पीडिका असाध्य है और कठिन है।

१२ मल मूत्रादिकोंके वेग रोकनेसे गुदाश्रित अपानवायु कुपित होकर महास्रोत (गुदा) का अवरोध करे और वह द्वारको छोटा करे पीछें मार्ग छोटा होनेसे उस पुरुषका मल बडे कष्टसे बाहर निकले, इस भयकर रोगको सनिरुद्धगुद कहते हैं।

१३ कफ रक्त पित्त इनके कोपसे देहमें मोहारकी मक्खीके दंशसे जैसे सूजन आती है ऐसी किंचित् लालरंगकी सूजन आवे. उनमे खुजली बहुत चले, क्षणमे उत्पन्न होती है और क्षणमे चली जाती है उसको कोठ ऐसे कहते हैं।

१४ किसी कठोर पदार्थके अभिघातकरके नख (नखून) दुष्ट होकर रूक्ष, कालेवर्णके और खरदरे हो उसको कुनख कहते हैं।

२९ मुखदूषिका ३० कक्षा ३१ वृषणकच्छु ३२ गंधं ३३ पापाणगर्दभ ३४ राजिका ३५ व्यंग (यह १ वात २ पित्त ३ कफ ४ रुधिर इन भेदोंसे चार प्रकारका है) सब चौंतीस और ये चार ऐसे अडतीस प्रकारके क्षुद्ररोग हुए । तथा स्फोट रोगसे देहमें फुन्सी होती है अतएव उनका क्षुद्ररोगोंमे संग्रह किया। वह विस्फोट आठ प्रकारका है । १ वातविस्फोटक २ पित्तविस्फोटक ३ कफविस्फोटक ४ वात

---

१५ पैरोमें त्वचाके समान वर्ण यत्किंचित् सूजनयुक्त, भीतरसे पकी जो पिडिका होय उसको अनुशयी कहते हैं।

१६ देहमे सफेद रंगका गोल ऐसा मंडल उत्पन्न होताहै. उसके ऊपर कॉटेके सदृश मांसके अंकुर आते हैं और उनको खुजली बहुत चले उस रोगको पद्मिनीकटक कहते हैं।

१७ वायु और पित्त नखोके मासमें स्थिर होकर दाह और पाकको करे, इस रोगको चिप्य ऐसे कहते हैं. यह अल्प दोषोंसे होय तो इसको कुनख कहते हैं।

१८ दुष्ट कीच (वर्षा आदिके पानी और सडी कींच) मे डोलनेसे पैरोकी उँगली गीली रहनेसे उँगलियोंके बीचमे सफेद सफेद चकत्ता होय, उनमें खुजली दाह और गीलापन तथा पीडा होय उसको अलस अर्थात् खारुआ कहतेहैं. यह कफरक्तके दोषसे होताहै।

१ कफ वायुके कोपसे सेमरके काँटेके समान तरुण (जवान) पुरुषके मुखके ऊपर जो फुन्सी होय उनको मुखदूषिका अर्थात् मुहाँसे कहते हैं. इनके होनेसे मुख बुरा होजाताहै।

२ बाहु (भुजा) की जड कधा और पसवाडे इन ठिकाने पित्त कुपित होकर काले फोडोंसे व्याप्त तथा वेदनायुक्त जो पिडिका होय उसको कृक्षा वा कँखलाई कहते हैं।

३ जो मनुष्य स्नान करते समय लगेहुये मलको नहीं धोवे, उस पुरुषका मल अडकोशमें संचित होय । पीछे वह पसीना आनेसे गीला होय, तब अडकोशोंमे घोर पीडा होय और खुजानेसे तत्काल फोडे होय। पीछे वे फोडे स्रवकर आपसमे मिल जाते हैं। कफरक्तसे होनेवाली इस व्याधिको वृषणकच्छु कहते हैं।

४ पित्तके कोपसे त्वचाके भीतर जो एक पिडिका फोडाके समान बडी होय, उसको गंधनाम्नी पिटिका कहते हैं।

५ वातकफसे ठोडीकी सधिमे कठिन मदपीडा करनेवाली, चिकनी ऐसी सूजन होय, उसको पाषाणगर्दभ कहतेहैं।

६ कफवायुकरके देहमे सरसोंके सदृश फुन्सी होती हैं उनको राजिका कहते हैं. कोई कोद्रवभी कहतेहैं।

७ क्रोध और श्रम इनसे कुपितभया वायु सो पित्तसयुक्त होकर मुखमे प्राप्त होकर एक मडल उत्पन्न करे। वह दूखे नहीं, पतला तथा श्यामवर्णका होय, उसको व्यग (झाँई) ऐसे कहते हैं।

८ कडुआ, खट्टा, तीखा (मरिचादि) गरम, दाहकारक, रूखा, खारा, अजीर्ण, भोजनके ऊपर भोजन और गरमी, ऋतुदोप कहिये शीतोष्णका अतियोग अथवा ऋतुविपर्यय (ऋतुका पलटना) इन कारणोंसे वातादिदोप कुपित हो त्वचाका आश्रयकर रुधिर, मास और हड्डी इनको दूषितकर भयंकर विस्फोटक (फोडा) उत्पन्न करे। उनके प्रगट होनेके पूर्व घोर ज्वर होताहै।

पित्तविस्फोटक ५ कफपित्तविस्फोटक ६ वातकफविस्फोटक ७ रक्तविस्फोटक ८ संनिपातविस्फोटक । इस प्रकार आठ प्रकारका विस्फोटक जानना । देहमे शीतला रोगसे ये फुन्सियाँ होती हैं इसवास्ते क्षुद्ररोगमें मसूरिका रोगका संग्रह किया है वह मसूरिका चौदह प्रकारकी है जैसे १ वातमसूरिका २ पित्तमसूरिका ३ कफमसूरिका

---

९ मस्तकमें पीडा, शूल देहमें पीडा, ज्वर, प्यास, संधीमें पीडा, फोडोका वर्ण काला होय ये वातविस्फोटकके लक्षण हैं।

१० ज्वर, दाह, पीडा, स्राव, फोडोका पकना, प्यास, देह पीला अथवा लाल होय ये पित्तविस्फोटकके लक्षण हैं।

११ वमन, अरुचि, जडता, तथा फोडा खुजलीयुक्त हो, कठिन पीले और उनमे पीडा होय नहीं और वे बहुत कालमें पकें। यह विस्फोटक कफका जानना।

---

१ वातपित्तके विस्फोटकमें तीव्र पीडा होती है।

२ खुजली, दाह, ज्वर और वमन इन लक्षणोंसे कफपित्तजन्य विस्फोटक जानना।

३ खुजली, गीलापन, भारीपन इन लक्षणोंसे वातकफका विस्फोटक जानना।

४ रक्तसे प्रगटभया विस्फोटक ताँबेके रंगका, गुंजा (चिरमिटी) के समान लाल। वह रुधिरके दुष्ट होनेसे अथवा पित्तके दुष्ट होनेसे होता है यह सैकडो अनुभवकारी औषधके करनेसेभी साध्य नहीं होता।

५ जो फोडा बीचमें नीचा होय और ओरपाससे ऊँचा होय, कठिन और कुछ पका होय तथा जिसके योगसे दाह, अंगमे लाली, प्यास, मोह, वमन, मूर्च्छा, पीडा, ज्वर, प्रलाप, कंप, तंद्रा ये लक्षण, होतेहैं उसे संनिपातका विस्फोटक जानना, वह असाध्य है।

६ कडुआ, खट्टा, नोनका, खारी, विरुद्धभोजन, अध्यशन (भोजनके ऊपर भोजन), दुष्ट अन्न-निष्पाव (सिंबीबीज उडद मूँग) आदि शाक विषैल फूल आदिसे मिला पवन तथा जल, शनैश्चरादि क्रूरग्रहोंका देखना, इन सबकारणोका देखना इन सब कारणोंकरके शरीरमें वातादिदोष कुपित होकर दुष्ट रुधिरमें मिलकर मसूरके समान देहमें अनेक मसोरी करें उनको मसूरिका (माता) ऐसे कहते हैं तिस माता (शीतला)के पूर्व ज्वर होय खुजली चले, देहमें फूटनी होय, अन्नमें अरुचि, भ्रम होय अंगके ऊपरकी त्वचामें सूजन होय, तथा वर्ण पलट जाय, नेत्र लाल होयँ ये शीतलाके पूर्वरूप होते हैं।

७ वातमसूरिकाके फोडे काले लाल और रूक्ष होते हैं, उनमे तीव्र पीडा होय, कठिन होयँ शीघ्र पकें नहीं इसके योगसे संधि हाड और पर्वोंमें फोटनेकीसी पीडा होय, खाँसी, कंप, चित्त स्थिर न हो, विना परिश्रमके श्रम होय तालुआ होठ और जीभ ये सूखने लगे, प्यास, अरुचि हो ये लक्षण होते हैं।

८ पित्तकी मसूरिकाका मुख लाल, पीला, सफेद होता है। उसमें दाह तथा पीडा बहुत होय और यह शीतला शीघ्रपके। इसके योगसे मल पतला होय, अंग टूटे, दाह, प्यास, अरुचि, मुखपाक और नेत्रपाक होय, ज्वर तीव्र हो ये लक्षण होयँ।

९ कफकी मसूरिकामें मुखके द्वारा कफका स्राव होय, अंगमें आर्द्रता तथा भारीपन, मस्तकमें शूल वमन आनेकीसी इच्छा होय, अरुचि, निद्रा, तंद्रा आलस्य ये होयँ और फोडा सफेद चिकने अत्यंत मोटे होयँ इनमें खुजली बहुत चले, पीडा मंद होय और वे बहुत दिनमें पकें।

४ कफपित्तमसूरिका ५ वातपित्तमसूरिका ६ वातकफमसूरिका ७ संनिपातमसूरिका ८त्वक्शब्दोक्त जो रसधातु, उससे होनेवाली मसूरिका ९ रक्तजा १० मांसजा ११ मेदोजा १२ अस्थिजा १३ मज्जाजन्य तथा १४ शुक्रधातुसे होनेवाली इनमें अंतकी चार मसूरिका कष्टसाध्य जाननी इसप्रकार सब १४ मसूरिका ८ विस्फोट और पूर्वोक्त ३८ क्षुद्ररोग सब मिलनेसे ६० प्रकारका क्षुद्ररोग जानना।

विसर्परोग।

विसर्परोगानवधा वातपित्तकफैस्त्रिधा॥त्रिधाचद्वन्द्वभेदेन संनिपातेनसप्तमः॥९८॥ अष्टमो वह्निदाहेन नवमश्चाभिघातजः॥

---

१ कफ पित्तसे केशों (बालों) के छिद्र समान वारीक और लाल, ऐसी मसूरिका होती हैं इनके होनेसे खाँसी, अरुचि होय तथा इनके होनेसे ज्वर होय । इनको रोमान्तिक (कसूमीमाता) ऐसे कहते हैं।

२ जिन मसूरिकाओमे वातपित्तके लक्षण मिलते हो उन्हे वातपित्तकी मसूरिका जाननी।

३ जिनमें वातकफके लक्षण मिलते हों उनको वातकफकी मसूरिका जाननी।

४ त्रिदोषकी मसूरिकाके फोडे नीले, चिपटे, लंबे, बीचमें नीचे ऐसे होयँ, उनमे पीडा अत्यंत होय तथा वे बहुत दिनमें पके और उनमेंसे दुर्गंधयुक्त स्राव होय वे सर्व दोषोंके फोडे बहुत होते हैं।

५ रसगत मसूरिका पानीके बबूलेके सदृश हो इनके फूटनेसे पानी बहै। यह त्वग्गतमसूरिका है कारण इसका यह है कि दोष स्वल्प है ।

६ रुधिरगतमसूरिका ताँबेके रंगकी और जलदी पकनेवाली होती है उसके ऊपरकी त्वचा पतली होती है यह अत्यंत दुष्ट होनेसे साध्य नहीं हो और इसके फूटनेसे इसमेसे रुधिर निकले।

७ मांसस्थमसूरिका कठिन और चिकनी होती है यह बहुत दिनमे पके तथा इसकी त्वचा पतली होय अंगोमें शूल होय, चैन पडे नही, खुजली चले, मूर्च्छा, दाह और प्यास ये लक्षण होते हैं।

८ मेदोगतमसूरिका मंडलके आकार अर्थात् गोल होय, नरम, कुछ ऊँची, मोटी तथा काली होती है, इसके होनेसे भयंकर ज्वर, पीडा, इन्द्रिय मनको मोह, चित्तका अस्थिर होना, संताप ये लक्षण होते हैं। इस मसूरिकासे कोई एक आदि मनुष्य बचता होगा कारण कि यह अत्यत कृच्छ्रसाध्य है।

९ अस्थिगत मसूरिका बहुत छोटी, देहके समान रूक्ष, चिपटी, कुछ ऊँची होती है उसे अस्थिगत मसूरिका जाननी। —

१० जिस मसूरिकामें अत्यत चित्तविभ्रम, पीडा, अस्वस्थता ये होवे हैं. वह मर्मस्थानोको भेद करके शीघ्र प्राण हरण करे। इसके होनेसे सर्व हड्डिनसे भौंराके काटनेके समान पीडा होती है। उसे मज्जागत मसूरिका जानना।

११ शुक्रधातुगत मसूरिका पकेके समान चिकनी और अलग अलग होती है। इनमे अत्यत पीडा होय इनके होनेसे गीलापन, अस्वस्थता, मोह, दाह, उन्माद ये लक्षण होते हैं रोगी बचे ऐसे इनमें कोई लक्षण नहीं दीखे. इसीसे इनको असाध्य जानना।

अर्थ–विसर्परोग नव प्रकारका है । जैसे १ वातविसर्प २ पित्तविसर्प ३ कफविसर्प ४ वातपित्तविसर्प ५ कफवातविसर्प ६ कफपित्तविसर्प ७ संनिपातविसर्प ८ जठराग्नितप-

---

१ खारी, खट्टा, कडुआ, गरम आदि पदार्थ सेवन करनेसे वातादि दोषोंका कोप होकर, विसर्परोग होता है, वह सर्वत्र फैलजाय, इसीसे इसको विसर्प कहते हैं ।

२ वादीसे जो विसर्प होय उसके लक्षण वातज्वरके समान होते हैं तथा उसमें सूजन, फरकना नोचनेंकीसी पीडा, तोडनेकीसी पीडा, दर्द और रोमाञ्च खडे हो तथा वह विसर्प लवा होता है ।

३ पित्तके विसर्पकीगति शीघ्र होय अर्थात् वह जल्दी फैलजाय तथा पित्तज्वरके लक्षण इसमें मिलते हो तथा अत्यंत लाल होयँ ।

४ कफविसर्पमें खुजली बहुत होय, तथा चिकनी हो, और उसमें कालज्वरकीसी पीडा हो ।

५ वातपित्तसे प्रगट विसर्प ज्वर, वमन, मूर्च्छा, अतिसार, प्यास और हडफूटन, मंदाग्नि, अन्धकार, दर्शन, अन्नद्वेष इन लक्षणकरके संयुक्त होवे, इनके संयोगसे सर्व शरीर अंगारोंसे भरासा मालूम होय जिस जिस ठिकाने वह विसर्प फैले उसी उसी ठिकानेपर अग्निरहित अगारके समान काला, लाल होकर शीघ्र सूजे आगसे फुकेके समान ऊपर फफोला होय और उस विसर्पकी शीघ्रगति होनेसे जल्दी हृदयमें जायकर मर्मानुसारी विसर्प होय । अथवा वह अत्यत बलवान् होय अर्थात् अगोंको व्यथा करे, सज्ञा और निद्रा इनका नाश करे श्वास वढावे, तथा हिचकी उत्पन्न करे । ऐसी मनुष्यकी अवस्था अ-स्वस्थ होनेके कारण, धरती, तेज, आसन, इत्यादिकोंमें सुख होवेनही हिलने चलनेसे क्लेश होय, मन तथा देहको क्लेश होनेसे उत्पन्न भई ऐसी दुर्बोध निद्रा (मरणरूपी निद्रा) को प्राप्त होय, इस रोगको अग्नि विसर्प कहते हैं ।

६ स्वहेतुसे कुपितभया जो कफ सो पवनकी गतिको रोक कफको भेदकर अथवा वढे भए रुधिरको भेदकर त्वचा, नस, (नाडी) और मांस इनमें प्राप्त हो और इनको दुष्टकर लम्बी, छोटी, गीली, मोटी, खरदरी, लाल, गंठोंकी माला प्रगट करे । उन गाठोंमें पीडा अधिकहोय, ज्वर होय श्वास, खासी अतिसार, मुखमें पपडीपरे, हिचकी, वमन, भ्रम, मोह, वर्णका पलटना, मूर्च्छा, अंगोंका टूटना, मंदाग्नि ये लक्षण होतेहैं इस रोगको ग्रंथिविसर्प कहते हैं । यह कफवातके कुपित होनेसे उत्पन्न होता है, इसको सुश्रुतमें अपची कहते हैं ।

७ कफपित्तके विसर्पमें ज्वर, अगोंका जिकडना, निद्रा, तंद्रा, मस्तकशूल, अगग्लानि, हाथपैरोंका पट-कना, वकवाद, अरुचि, भ्रम, मूर्च्छा, मंदाग्नि, हडफूटन, प्यास, इन्द्रीनका जकडना, आमका गिरना, मुखादिस्त्रोतों (छिद्रों) में कफका लेप इत्यादि लक्षण होते हैं, तथा वह विसर्प आमाशयमें उत्पन्न हो पीछे सर्वत्र फैले उसमें पीडा थोडी होय, सर्वत्र पीली तावेके रगकी सफेद रगकी पिडिका होय, तथा वह विसर्प चिकनी, स्याहीके समान काली, मलीन, सूजनयुक्त, भारी, गभीरपाक कहिये भीतरसे पकी हो उनमें घोर दाह हो और वह दवानेसे तत्क्षण गीली होजाय तथा फटजाय वह कीचके समान हो और उसका मांस गलजाय उसमें शिरा, नाडी, (नस) ये दीखने लगे उसमे मुर्दाकीसी वास आवे, इस विस-र्पको कर्दमविसर्प कहते हैं ।

८ सन्निपातजन्य विसर्पमें जो वातादिकोके लक्षणकहे हैं सो सब होयँ ।

९ जठराग्निके बहुत संतप्त होनेसे रक्त दूषित होकर जो विसर्प होताहै उसको वह्निदाहज विसर्प कहते हैं । इसके लक्षण पित्तविसर्पके समान जानना ।

जन्यविसर्प और ९ अभिघातजविसर्प इस प्रकार नव प्रकारका विसर्परोग जानना ।

शीतपित्तरोग ।

तथैकः श्लेष्मपित्ताभ्यामुदर्दःपरिकीर्तितः ॥ ९९ ॥
वातपित्तेन चैकस्तु शीतपित्तामयः स्मृतः ॥

अर्थ–शीतलवायुके संपर्ककरके कफ और वायु ये दुष्टहोकर पित्तसे मिल भीतर रक्तादि धातुमें और बाहर त्वचामे प्रवेशकर देहमे जैसे मोहारकी मक्खीके काटनेके समान ददोडा उत्पन्न होता है उसप्रकार ददोडा उत्पन्न हो उनमे खुजली पीडा और दाह ये उपद्रव होवें । कफ पित्तके कोपसे जिसमें खुजली अधिक चले और पीडा न्यूनहो उसको उर्दर्द कहतेहैं । वह रोग एक प्रकारका है । वातपित्तके कोपकरके जिसमें खुजली थोडी और व्यथा अधिक होवे उसको शीतपित्त (पित्ती) कहतेहैं । इतनाही इनमे भेद जानना तथा ज्वर वमन और दाह इत्यादि ये दोनोंके साधारण लक्षण जानने ।

अम्लपित्तरोग ।

अम्लपित्तंत्रिधाप्रोक्तं वातेनश्लेष्मणातथा॥१००॥ तृतीयंश्लेष्म–

अर्थ–अम्लपित्तरोग तीन प्रकारका है १ वातजअम्लपित्त २ कफजअम्लपित्त

---

१ बाह्य कारण करके क्षत (घाव) होकर उसमे वायु कुपित होकर वह रुधिरसहित पित्तको व्रणमें प्राप्तकर विसर्परोग उत्पन्न करे । उसमे कुलथीके समान श्याम वर्णके फोडे होतेहैं. सूजन ज्वर और दाह होय, उसका रुधिर काला निकले । ये अभिघातज (क्षतज) विसर्पके लक्षण जानने ।

२ बरटी (ततैया) के काटनेके समान त्वचाके ऊपर चकत्ते होजायँ, उनमे खुजली चले और सूई चुभानेकीसी पीडा होय उसके संयोगसे वमन, संताप और दाह होय, इसके उदर्द कहतेहैं ।

३ शीतल पवनके लगनेसे कफ, वायु दुष्ट होकर पित्तसे मिल भीतर रक्तादिकोमे और बाहर त्वचामे विचरे, प्यास, अरुचि मुखमेसे पानी गिरना अंग गलना और भारी होना नेत्रमे लाली, ये शीतपित्त होनेके पूर्व होतेहैं. शीतपित्तको लौकिकमें पित्ती कहते हैं । इसमे खुजली होती है सो कफसे जानना । चोटनी बादीसे होतीहै । ओकारी, संताप और दाहसे पित्तसे होते हैं ऐसे जानना ।

४ विरुद्ध (क्षीरमत्स्यादि) और दुष्टान्न, खट्टा, दाहकारक, पित्त बढानेवाला ऐसे अन्नपानके सेवन करनेसे, वर्षादि ऋतुमे जलौषधिगत विदाहादि स्वकारणसे सञ्चित भया पित्त दुष्ट होय, उसको अम्लपित्त कहते हैं, अन्नका न पचना, विना परिश्रम करे परिश्रमसा मालूम हो, वमन, कडुवी तथा खट्टी डकार आवे, देह भारी रहै, हृदय और कंठमे दाह होय, अरुचि होय, ये लक्षण होनेसे अम्लपित्त जानना ।

३ और कफवातज अम्लपित्त इस प्रकार अम्लपित्तके तीन भेद जानने चाहिये।

वातरक्तरोग।

-वाताभ्यां वातरक्तं तथाष्टधा॥वाताधिक्येन पित्ताच्चकफाद्दोषत्र-येणच॥१०॥रक्ताधिक्येनदोषाणां द्वन्द्वेन त्रिविधः स्मृतः॥

अर्थ—वातरक्तरोग आठ प्रकारका है। जैसे वायुकी आधिक्यता जिस वातरक्तमें है वह १ वातज २ पित्तजवातरक्त ३ कफजवातरक्त ४ त्रिदोषजवातरक्त और ५ रक्तके

---

५ वातयुक्त अम्लपित्तमे कंप, प्रलाप, मूर्च्छा, चिमचिमा (चैटी काटनेसे प्रगट खुजलीके समान) देहग्लानि, पेटदूखना, नेत्रोंके आगे अधकार दीखे, भ्रांति होना, इन्द्री मनको मोह, रोमांच खडे हो ये लक्षण होते हैं।

६ कफयुक्त अम्लपित्तमें कफके ढेला गिरे, शरीरका अत्यंत जडपडना, अरुचि, शीत लगे, अंगग्लानि, वमन, मुख कफसे लिहसारहै, मदाग्नि, बलनाश, खुजली और निद्रा ये लक्षण होतेहैं।

---

१ वातकफयुक्त अम्लपित्तमें ऊपर केहेहुए दोनोंके लक्षण होतेहैं।

२ नोन, खटाई, कडवी, खारी, चिकना, गरम, कच्चा ऐसे भोजनसे, सडे और सूखे ऐसे जलसंचारी जीवोंके और जलके समीप रहनेवाले जीवोंके मांससे, पिण्याक (खर) मूली, कुलथी, उडद, निष्पाव (सेम,) शाक (तरकारी,) पलल (तिलकी चटनी,) ईख, दही, कांजी, सौवीरमद्य, सुक्त (सिरकाआदि,) छाछ, दारु, आसव (मद्यविशेष,) विरुद्ध (जैसे दूध मछली) अध्यशन (भोजनके ऊपर भोजन,) क्रोध, दिनमें निद्रा, रातमें जागना इन कारणोंसे, विशेष करके सुकुमार पुरुषोंके और मिथ्या आहार विहार करनेवाले पुरुषोंके और जो मोटा होय, तथा सूखा होय ऐसे मनुष्यके वातरक्त रोग होता है। हाथी, घोडा, ऊंट इनपर बैठकर जानेसे (यह वायुके बढ-नेका और विशेष करके रुधिरके उतरनेका कारण है.) विदाहकारी अन्नके खानेवाले पुरुषके (इसीसे दग्धरुधिरकी वृद्धि होती है) गरमागरम अन्नके खानेवाले पुरुषके सब शरीरका रुधिर दुष्ट होकर पैरोंमे इकठा होय और वह दुष्ट वायुसे दूषित होकर मिले इस रोगमें वायु प्रबल है, इसीसे इसरोगको वातरक्त कहते हैं।

३ वाताधिक वातरक्तमे शूल, अगोंका फरकना, चोटनेकीसी पीडा ये अधिक होते हैं, सूजन रुखा-पन, नीलापन, अथवा श्यामवर्णता, एव वातरक्तके लक्षणोंकी वृद्धि होय और क्षणभरमें न्हास (कम) हो, धमनी और अंगुलिनकी सन्धिमे सकोच होय, शरीर जकड बंध होय, अत्यत पीडा होय, सर्दी बुरीलगे, और शीतके सेवन करनेसे दुःख होय, स्तंभ होय, कप और शून्यता होय ये लक्षण होते हैं।

४ पित्ताधिक वातरक्तमे अत्यत दाह, इन्द्री मनको मोह, पसीना, मूर्च्छा, मस्तपना, प्यास, स्पर्श बुरा मालूम होय, पीडा, लाल रंग, सूजन, छोटे छोटे पीरे फोडा, अत्यत गरमी, ये लक्षण होते हैं।

५ कफाधिक वातरक्तमें स्तैमित्य (गीले कपडासे आच्छादित समान) भारीपना, शून्यता, चिक-नापन, शीतलता, खुजली और मंदपीडा ये लक्षण होते हैं।

६ तीनो दोषो (वात, पित्त, कफ) के वातरक्तमे तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं।

२ हनुस्तंभ ३ ऊरुस्तंभ ४ शिरोग्रह ५ बाह्यायाम ६ अभ्यंतरायाम ७ पार्श्वशूल ८ कटिग्रह ९ दंडापतानक १० खल्ली ११ जिह्वास्तंभ १२ अर्दित १३ पक्षाघात १४ क्रोष्टुशीर्ष १५ मन्यास्तंभ १६ पंगु १७ कलायखंज १८ तूनी १९ प्रतितूनी

१ जिह्वाके अतिवर्षण करनेसे, चना आदि सूखी वस्तुके खानेसे, अथवा किसी प्रकारकी चोटके लगनेसे, हनुमूल (कपोल) के अर्थात् डाढकी जडमें रहा जो वायु सो कुपित होकर हनुमूलको नीचेकर मुखको खुलाही रख दे, अथवा मुखको बंद करदे, उसको हनुस्तंभ अथवा हनुग्रह कहते हैं।

२ वायु कफ और मेद इनसे मिलकर जाँघोंमे जाके जाँघोंको जड करके जकडता है. उस करके जाँघे अचेतन होती हैं, हिलने चलनेका सामर्थ्य नही रहता उसको ऊरुस्तंभ कहते हैं।

३ वायु रुधिरका आश्रयकर मस्तकके धारण करनेवाली नाडीनको रूखी, पीडायुक्त और काली करदे यह शिरोग्रह रोग असाध्य है. इसको शिराग्रहभी कहते हैं।

४ बाहरकी नसोंमे रहती जो वात सो बाह्यायाम अर्थात् पीठको वाँकी करदे, उरःस्थल, जाँघो और कमरको मोडदे, ऐसे इस रोगको पंडित असाध्य बाह्यायाम कहते हैं। -

५ पैरकी उँगली, घोटू, हृदय, पेट, उरःस्थल और गला इन ठिकानोंमे रहनेवाला वायु सो वेगवान् होकर वहांके नसोंके जाल उसको सुखाय बाहर निकालदे, उस मनुष्यके नेत्र स्थिर होजायँ भज रहिजाय, पसवाडोंमे पीडा होय, मुखसे कफ गिरे और जिस समय मनुष्य धनुषके सदृश नीचेको नमजाय तब यह वली वायु अन्तरायाम रोगको करे. इसको धनुर्वात भी कहते हैं।

६ कोष्ठाशयमें वायु कुपित होकर पसवाडोंमे शूलकरे उसको पार्श्वशूल कहते हैं।

७ जो वायु कमरको स्तभन करे उसको कटिग्रह कहतेहैं।

८ वायु अत्यंत कफयुक्त होकर सब धमनी नाडीनमे प्राप्त होकर सब देहको दंड (लकडी) के समान तिरछा करदे यह दंडापतानक रोग कष्टसाध्य है।

९ जो वायु पैर, जंघा, ऊरु और हाथके मूलमें कंपन करे उसको खल्ली (मलाम्नाय) रोग कहतेहैं।

१० वायु वाणीकी वहनेवाली नाडीनमें प्राप्तहो जिह्वाका स्तभन करदे, उसको जिह्वास्तभ रोग कहते हैं. यह अन्न पान तथा बोलनेकी सामर्थ्यका नाशकरे।

११ ऊंचे स्वरसे वेदादिकका पाठ करनेसे अथवा कठिन पदार्थ सुपारीआदिके खानेसे बहुत हँसने और बहुत जंभाईके लेनेसे, ऊँचे नीचे स्थानमे सोनेसे, विषमाशन (विरुद्ध भोजन) के करनेसे कोपको प्राप्तभई जो वायु सो मस्तक, नाक, होठ, ठोडी, ललाट और नेत्र इनकी सन्धिनमे प्राप्त हो मुखमें पीडा करे अर्थात् अर्दित रोगको उत्पन्न करे। उस पुरुषका मुख आधा टेढा होजाय, उसकी नाड मुडे नहीं, मस्तक हिलाकरे, अच्छीतरह बोला नहीं जाय, नेत्र, भ्रुकुटी, गाल इनकी विकृति कहिये पीडा, फरकना, टेढा होना इत्यादि होंय और जिस तरफ अर्दित रोग होय उस तरफकी नाड, ठोडी और दाँत इनमें पीडा होय. इस व्याधिको अर्दित रोग कहते हैं।

१२ वायु आधे शरीरको पकड सब शरीरकी नसोंको सुखायकर दहने अंगको अर्धनारीश्वरके समान कार्य करनेको असामर्थ्य करदे और सन्धिके बंधनोंको शिथिल करदे पीछे उस रोगीके सब वा आधे अंग हिलेचले नहीं और उसको देखने स्पर्श करने आदिका थोडाभी ज्ञान नहीं रहै, इसको एकांगरोग अथवा पक्षवध किंवा पक्षाघात कहतेहैं।

१३ वातरक्तसे जानु, घंटू इन दोनोंकी सन्धिमे अत्यन्त पीडाकारक सूजन हो और स्यारके मस्तकसमान मोटी हो, उसको क्रोष्टुशीर्ष कहते हैं।

२० खंज २१ पादहर्ष २२ गृध्रसी २३ विश्वाची २४ अवबाहुक २५ अपतन्त्रक २६ व्रणायाम २७ वातकटक २८ अपतानक २९ अंगभेद ३० अंगशोष ३१ मिम्मिण

१४ दिनमे सोनेसे, अन्न, स्नान, ऊँचेको विकृतिपूर्वक देखनेसे इनकारणोंसे कोपको प्राप्तभई जो वात सो कफयुक्त होकर मन्यानाडीको स्तभनकरे। इस रोगको मन्यास्तंभ कहते हैं (अर्थात् गर्दन रहजावे)।

१५ दोनो जाँघोकी नसोको पकड दोनो पैरोको स्तभित करदे, उसको पाँगुला कहतेहैं।

१६ जो पुरुष चलतेसमय थरथर काँपे और खञ्ज अर्थात् एक पैरसे हीन मालूम होय। इस रोगमे सधिके बन्धन शिथिल होते हैं, इस रोगको कलायखज कहते है।

१७ पक्वाशय और मूत्राशयमे उठी जो पीडा सो नीचे जायकर प्राप्तहो और गुदा तथा उपस्थ कहिये स्त्रीपुरुषोके गुह्यस्थान इनमे भेदकरे अर्थात् पीडाकरे, उसको तूनीरोग कहते हैं।

१८ गुदा और उपस्थ इनसे उठी जो पीडा, सो उलटी ऊपर जायकर प्राप्तहो और, जोरसे पक्वाशयमे प्राप्तहो और तूनीके समान पीडा करे, उसको प्रतितूनी अथवा प्रतूनी भी कहते हैं।

१ कमरमे रहा जो वात सो जघाकी नसोको ग्रहण कर. एक पगको स्तभित करदेय, उसको खञ्ज (खोडा) रोग कहतेहैं।

२ जिसके पैर हर्षयुक्त (कहिये झनझनाहट पीडायुक्त) होय, उसको पादहर्ष कहतेहै, यह रोग कफवातके कोपसे होताहै।

३ प्रथमा स्फिक् कहिये कमरके नीचेका भाग जिसको कूला कहतेहैं उसको स्तभित करदेय पीछे क्रमसे कमर, पीठ, ऊरू, जानु, जघा और पग, इनको स्तंभित करदे, अर्थात् ये रहिजॉय वेदना और तोद कहिये चोटनेकीसी पीडा होय और वारवार कप होय, यह गृध्रसीरोग वादीमे होता है और वातकफसे होय तो इसमे तद्रा और भारीपना और अरुचि ये विशेप होते हैं।

४ वाहुके पिछाडीसे लेकर हाथके ऊपर भागपर्यन्त प्रत्येक उँगलियोके नीचे मोटी नस हैं उनको दुष्टकर हाथसे लेना, देना, पसारना, मुट्ठी मारना इत्यादिककार्योंका नाशकर्ता जो रोग होय उसको विश्वाची रोग कहते हैं।

५ कधामे रहै जो वायु सो नसोका सकोच करता है, उसको अवबाहुक अथवा अपबाहुक रोग कहते हैं।

६ दृष्टिका स्तभन होजाय, सज्ञा जाती रहै गलेमे घुरघुर शब्द होय वायु जब हृदयको छोडे तब रोगीको होश होय और वायु हृदयको व्याप्तकरै तब फिर मोह होजाय इस भयंकर रोगको अपतानक कहते है. गर्भपातके होनेसे, अथवा अतिरिक्तस्रावके होनेसे, अथवा अभिघात कहिये दंडादिकोकी चोट लगनेसे जो प्रगट अपतन्त्रक रोग सो असाध्य है।

७ जो वायु अभिघातकरके व्रण उत्पन्न होनेसे उसमे पीडा करताहै, उसको व्रणायाम कहते हैं।

८ ऊंची नीची जगहमे पैर पडनेसे, अथवा श्रमके होनेसे वायु कुपित होकर टकनामे प्राप्त होकर पीडाकरे, उस रोगको वातकटक कहतेहैं।

९ रूक्षादि स्वकारणोसे कोपको प्राप्तहुई जो वायु सो अपने स्वस्थानको छोड ऊपर जायकर प्राप्तहो और हृदयमे जायकर पीडा करे, मस्तक और कनपटी इनमे पीडा करे और देहको धनुषकी समान नवाय देवे और चले तो मूर्छित करदे वह रोगी बडे कष्टसे श्वास लेय, नेत्र मिचजावें, अथवा टेटे होजाँय, कबूतरके समान गूँजे, तथा बेहोश होय इस रोगको अपतानक कहते हैं।

३२ कलत्ता[1] ३३ प्रत्यष्ठीलिका[2] ३४ अष्ठीला[3] ३५ वामनत्वं[4] ३६ कुब्जत्वं[5] ३७ अंगपीडा[6] ३८ अंगशूल[7] ३९ संकोच[8] ४० स्तंभ[9] ४१ रूक्षता[10] ४२ अंगभंग[11] ४३ अंगविभ्रंश[12] ४४ विड्ग्रह[13] ४५ बद्धविट्कता[14] ४६ मूकत्वं[15] ४७ अतिजृंभ[16] ४८ अत्युद्गार[17] ४९ अन्त्रकूजन[18] ५० वातप्रवृत्ति[19] ५१ स्फुरण[20] ५२ शिरापूरण[21] ५३ कम्पवायु[22] ५४ कार्श्य[23] ५५ श्यावता[24]

---

१० जो वायु सब अंगोका भेद करता है अर्थात् अंगमें फूटन उपजाता है उसको अंगभेद कहते हैं।

११ जो वायु सब अंगोको सुखाय देता है उस रोगको अंगशोष कहते हैं।

१२ कफयुक्त वायु शब्दके वहनेवाली नाडीमें प्राप्त होकर मनुष्योके वचनको क्रियारहित मिम्मिण ऐसा करदे मिम्मिण कहिये गिनगिनायकर नाकसे बोलना।

---

१ जिस वायु करके कण्ठमे स्पष्ट शब्द नहीं निकले है उसको कलरोग कहते हैं।

२ जो वाताष्ठीला अत्यन्त पीडायुक्त हो वात, मूत्र, मलकी रोधन करनेवाली और तिरछी प्रगट भई होय उसको प्रत्यष्ठीला कहते हैं।

३ नाभिके नीचे उत्पन्न हो और इधर उधर फिरे, अथवा अचल अष्ठीला गोल, पाषाणके समान कठिन और ऊपरका भाग कुछ लंबा होय और आडी कुछ ऊँची होय और बहिर्मार्ग कहिये अधोवायु, मल, मूत्र, इनका अवरोध कहिये रुकना हो ऐसी गाँठको अष्ठीला अथवा वाताष्ठीला कहते हैं।

४ दुष्ट हुआ वायु गर्भाशयमें जाकर गर्भको विकार करता है. उस करके मनुष्य बौना होता है, इस रोगको वामनरोग कहते हैं।

५ शिरागत वायु दुष्ट होकर पीठ, अथवा छातीको कुबडा करदे उसको कुब्जरोग कहते हैं।

६ जिस वायुकरके सब अंगोको पीडा होती है उस रोगको अंगपीडा कहते हैं।

७ जिस वायुकरके सब अंगोंमे शूल (चमका) चले उसको अङ्गशूल कहते हैं।

८ जिस वायुकरके सब अंगोंका संकोच (सुकडना) होय उसको संकोच कहते हैं।

९ जिस वायुकरके सब अंगोका स्तंभ होवे (सब अंग स्तब्ध होवे) उसको स्तंभ कहते हैं।

१० जो वायु शरीरको तेजहीन करता है, उसको रूक्ष कहते हैं।

११ जिस वायुकरके अंगमें पीडा होती है उसको अंगभंग कहते हैं।

१२ जिस वायुकरके शरीरका कोई एक अवयव काष्ठ (लकडी) के समान चेतनारहित हो उसको अंगविभ्रंश कहते हैं।

१३ जिस वायुकरके मलका अवरोध हो अर्थात् मल साफ नहीं निकले उसको विड्ग्रह कहते हैं।

१४ जिस वायुकरके मल पक्वाशयमें संघट्ट (गाढा) हो उसको बद्धविट्क कहते हैं।

१५ कफयुक्त वायु शब्दके वहनेवाली नाडीनमें प्राप्त होकर मनुष्योको वचनक्रियारहित करदे उसको मूकरोग कहते हैं।

१६ वायु दुष्ट होकर जभाई बहुत लावे उसको अतिजृंभ कहते हैं।

१७ आमाशयमें वायु दुष्ट होनेसे बहुत डकार आती हैं उसको अत्युद्गार कहते हैं।

१८ जो वायु पक्वाशयमें रहकर आँतोमें जाकर शब्द करता है. उसको अन्त्रकूजन कहते हैं।

१९ जो वायु गुदाके द्वारा बाहर निकले उसको वातप्रवृत्ति कहते है।

२० जिस वायुकरके अंग फुरफुराता है उसको स्फुरण कहते हैं।

२१ वायु शिरा (नाडी) गत होनेसे शूल, नाँडीका संकोच और स्थूलत्व करे और बाह्यायाम, आभ्यन्तरायाम, खल्ली और कुबडापन इन रोगोको उत्पन्न करे। इसको शिरापूरण कहते हैं।

५६ प्रलाप[१] ५७ क्षिप्रमूत्रता[२] ५८ निद्रानाश[३] ५९ स्वेदनाश[४] ६० दुर्बलत्व[५] ६१ बलक्षय[६] ६२ शुक्रातिप्रवृत्ति[७] ६३ शुक्रकार्श्य[८] ६४ शुक्रनाश[९] ६५ अनवस्थितचित्तत्व[१०] ६६ काठिन्य[११] ६७ विरसास्यता[१२] ६८ कषायवक्त्रता[१३] ६९ आध्मान[१४] ७० प्रत्याध्मान[१५] ७१ शीतता[१६] ७२ रोमहर्ष[१७] ७३ भीरुत्व[१८] ७४ तोद[१९] ७५ कण्डू[२०] ७६ रसाज्ञता[२१] ७७ शब्दाज्ञता[२२]

---

२२ सब अंगोंको और मस्तकको कपावे उस वायुको वेपथु (कंप) वायु कहते हैं ।

२३ जो वायु सब अंगोंको कृश करदे उसको कार्श्य कहते हैं ।

२४ जिस वायु करके सब शरीर काले वर्णका हो जाय उसको श्याव कहते हैं ।

---

१ अपने हेतुसे कुपित भई जो वात सो असबद्ध (अर्थरहित) वाणी बोले अर्थात् बकवाद करे, अथवा बडबड़ शब्द करे उसको प्रलाप कहते हैं ।

२ जिस वायु करके वारवार मूते उसको क्षिप्रमूत्ररोग कहते हैं ।

३ जिस वायु करके निद्रा न आवे उसको निद्रानाश कहते हैं ।

४ जिस वायु करके शरीरको स्वेद (पसीना) नहीं आवे उसको स्वेदनाश कहते हैं ।

५ जिस वायु करके पुरुषका बल हीन होवे उसको दुर्बलता (दुबलेपना) कहते हैं ।

६ जिस वायु करके शरीरके बलका क्षय होवे उसको बलक्षय कहते हैं ।

७ शुक्रस्थानकी वायुका कोप होनेसे वह वायु बहुत शुक्र (वीर्य) को जल्दी पतन करे उसको शुक्राति-पात कहते हैं ।

८ जो वायु शुक्र (वीर्य) धातुको क्षीण करदे उसको शुक्रकार्श्य कहते हैं ।

९ जिस वायु करके शुक्र (वीर्य) नाश होवे उसको शुक्रनाश कहते हैं ।

१० जिस वायु करके मन इन्द्रीको स्वस्थता नहीं रहती है उसको अनवस्थितचित्तत्व कहते हैं ।

११ जिस वायु करके शरीर कठिन रहता है उसको काठिन्य कहते हैं ।

१२ जिस वायु करके मुखमें स्वाद नहीं रहे उसको विरसास्य कहते हैं ।

१३ जिस वायु करके मुख कषैला होवे उसको कषायवक्त्र कहते हैं ।

१४ गुडगुड शब्दयुक्त, अत्यन्त पीडायुक्त ऐसा उदर (पक्वाशय) अत्यन्त फूले अर्थात् वादीसे भरकर चमडेकी थैलीके समान होजाय इस भयकर रोगको आध्मान कहते हैं यह वातके रुकनेसे होती है ।

१५ वही पूर्वोक्त आध्मान रोग आमाशयमें उत्पन्न होय तो उसको प्रत्याध्मान कहते हैं । इसमें पस-वाडे और हृदय इनमें पीडा नहीं होय और वायु कफ करके व्याकुल होता है ।

१६ जिस वायु करके देह शीतल होय उसको शैत्य रोग कहते हैं ।

१७ वायु त्वचागत होनेसे सब शरीरमें रोमाच खडे हो. उसको रोमहर्ष कहते हैं ।

१८ जिस वायु करके भय उत्पन्न होता है उसको भीरुरोग कहते हैं ।

१९ जिस वायु करके शरीरमें सुई चुभानेकीसी पीडा हो उसको तोद कहते हैं ।

२० जिस वायु करके शरीरमें खुजली चले उसको कण्डू कहते हैं ।

२१ जो मनुष्य भोजन करे उसकी जीभको मधुर (मीठा) खट्टा इत्यादिक रसोका ज्ञान न होय उस रोगको रसाज्ञान कहते हैं ।

२२ कान इन्द्रीमे वायु कुपित होनेसे शब्दका ज्ञान जाता रहै अर्थात् कोई शब्द करे सो सुननेमें आवे नहीं उसको शब्दाज्ञान कहते हैं ।

७८ प्रसुप्ति ७९ गधाज्ञत्वे और ८० दर्शःक्षय इसप्रकार वादीके अस्सी भेद जानने।

पित्तरोग।

अथ पित्तभवारोगाश्चत्वारिंशदिहोदिताः ॥ धूमोद्गारो विदाहःस्यादुष्णांगत्वं मतिभ्रमः ॥ ११३ ॥ कांतिहानिःकंठशोषो मुखशोषोऽल्पशुक्रता ॥ तिक्तास्यताम्लवक्रत्वं स्वेदस्रावोऽग पाकता॥ ११४॥क्लमोहरितवर्णत्वमतृप्तिःपीतकामता॥रक्तस्रावोऽगदरणंलोहगंधास्यतातथा॥११५॥ दौर्गंध्यं पीतमूत्रत्वमरतिः पीतविक्कता ॥ पीतावलोकनंपीतनेत्रतापीतदंतता ॥११६॥ शीतेच्छापीतनखतातेजोद्वेषोऽल्पनिद्रता ॥ कोपश्चगात्रसादश्चाभिन्नविक्कत्वमंधता ॥ ११७ ॥ उष्णोच्छ्वासत्वमुष्णत्वं मूत्रस्यचमलस्यच ॥ तमसोऽदर्शनं पीतमण्डलानां च दर्शनम् ॥११८॥ निःसरत्वं च पित्तस्य चत्वारिंशद्रुजः स्मृताः ॥

अर्थ–पित्तरोग ४० चालीस प्रकारका है उनके नाम कहते हैं–१ धूमोद्गार २ विदाह ३ उष्णागत्व ४ मतिभ्रम ५ कातिहानि ६ कंठशोप ७ मुखशोप ८ अल्पशुक्रता

---

१ जिस वायु करके त्वचामे स्पर्श करनेसे मृदु, कठिन, शीत, उष्ण पदार्थका ज्ञान नहीं होवे उसको प्रसुप्ति कहते हैं।

२ जिस वायु करके घ्राणेंद्रियका ज्ञान जाता रहे अर्थात् सुगंध वा दुर्गंध कुछभी समझनेमे नहीं आवे उसको गधाज्ञान कहते हैं।

३ जिस वायु करके दृष्टिका नाश होता है अर्थात् कुछ पदार्थ नहीं दीखता उसको दृग.क्षय (दृष्टिका नाश) कहते है।

४ डकार आते समय मुखमेंसे धुआँसा निकले वह धूमोद्गाररोग पित्तके कुपित होनेसे होता है।

५ जिस पित्तसे शरीरमे बहुत दाह होय उसको विदाह कहते हैं।

६ जिस पित्तसे सब अग उष्ण होवे उसको उष्णांग कहते है।

७ जिस पित्तकरके बुद्धिकी चेष्टा ठिकानेपर न रहे उसको मतिभ्रम कहते है।

८ जिस पित्तकरके शरीरके तेजका नाश होता है उसको कांतिहानि कहते हैं।

९ जिस पित्तकरके कठका शोष (सूखना) होता है उसको कंठशोष कहते है।

१० जिस पित्तकरके मुख सूखजाता है उसको मुखशोष कहते हैं।

११ जिस करके शुक्र (वीर्य) थोडा उत्पन्न होवे उसको अल्पवीर्य जानना।

९ तिक्तास्यता[1] १० अम्लवक्रत्व[2] ११ स्वेदस्राव[3] १२ अंगपाकता[4] १३ क्लम[5] १४ हारितवर्णत्व[6] १५ अतृप्ति[7] १६ पीतकायता[8] १७ रक्तस्रावे[9] १८ अंगदरण[10] १९ लोहगंधास्यता[11] २० दौर्गंध्य[12] २१ पीतमूत्रत्व[13] २२ अरति[14] २३ पीतविट्कता[15] २४ पीतावलोकन[16] २५ पीतनेत्रता[17] २६ पीतदंतता[18] २७ शीतेच्छा[19] २८ पीतनखता[20] २९ तेजोद्वेष[21] ३० अल्पनिद्रता[22] ३१ कोप[23] ३२ गात्रसाद[24] ३३ भिन्नविट्कत्व[25] ३४ अंधता[26] ३५ उष्णोच्छ्वासत्व[27]

---

१ जिस पित्तसे मुख कडआ होता है उसको तिक्तास्य कहते हैं।

२ जिस पित्तकरके मुख खट्टासा रहे उसको अम्लवक्र कहते हैं।

३ जिस पित्तसे देहमे पसीना बहुत आवे उसको स्वेदस्राव कहते हैं।

४ जिस पित्तसे अंग पकजाय उसको अगपाक कहते हैं।

५ जिस पित्तके योगसे शरीरमें ग्लानि उत्पन्न होय उसको क्लम कहते हैं।

६ जिस पित्त करके देहका वर्ण हरा, नीला होजावे उसको हरितवर्ण कहते हैं।

७ जिस पित्तके योगसे कितना भी अच्छा भोजन पान किया हो तोभी भोजनपानकी इच्छा निवृत्ति नहीं होती है उसको अतृप्ति कहते हैं।

८ जिसमे सब शरीरका वर्ण पीला दीखे उसको पीतकाय कहते है।

९ जिस पित्तसे स्रोतो (छिद्रो) मे से अर्थात् मुख, नाक, आदिसे रुधिरका स्राव होवे उसको रक्तस्राव कहते है।

१० जिस पित्तसे अग फटजाय उसको अंगदरण कहते है।

११ जिस पित्तसे मुखमेंसे अग्निमे तपाये लोहेके गधके सदृश गध आवे उसको लोहगधास्य कहतेहैं।

१२ जिस पित्त करके सब अगसे बुरा गंध आवे उसको दौर्गंध्य कहते है।

१३ जिस पित्त करके मूत्रका वर्ण पीला होवे उसको पीतमूत्र कहते है।

१४ जिस पित्तकरके मनकी कभी पदार्थमे प्रीति नही रहती है उसको अरति कहते है।

१५ जिस पित्तकरके मल (विष्ठा) का वर्ण पीला होवे इसको पीतविट्क कहते हैं।

१६ जिस पित्त करके पुरुष सब पदार्थोंका पीला वर्ण देखे उसको पीतावलोकन कहते है।

१७ जिस पित्तकरके नेत्र पीले वर्णके रहे उसको पीतनेत्र कहते हैं।

१८ जिस पित्तसे दाँत पीले वर्णके होवे उसको पीतदंत कहते है।

१९ जिस पित्तसे पुरुषको शीतल जलादिककी इच्छा रहे उसको शीतेच्छा कहते है।

२० जिस पित्तसे पुरुषके नख पीले हो उसको पीतनख कहते हैं।

२१ जिस पित्तसे पुरुषसे सूर्यादिकोका तेज नहीं देखा जाय उसको तेजोद्वेष कहते है।

२२ जिस पित्तसे पुरुषको निद्रा थोडी आवे उसको अल्पनिद्रता कहते है।

२३ जिस पित्तकरके पुरुषको हर किसीभी पदार्थपर सदा क्रोध आवे उसको कोप कहते है।

२४ जिस पित्तसे शरीरके संधिभाग दूखे उसको गात्रसाद कहते है।

२५ जिस पित्तसे पुरुषका मल (विष्ठा) पतला होवे उसको भिन्नविट्क कहते हैं।

२६ जिस पित्तसे दृष्टिसे कुछ देखनेमे नहीं आवे उसको अंध कहते है।

२७ जिस पित्तसे नासिकाके द्वारा गरम गरम पवन निकले उसको उष्णोच्छ्वास कहते हैं।

३६ उष्णमूत्रत्व ३७ उष्णमलत्व ३८ तमोदर्शन ३९ पीतमंडलदर्शन और ४० निःसरत्व। इस प्रकार चालीस प्रकारका पित्तरोग जानना।

कफरोग।

कफस्य विंशतिः प्रोक्ता रोगास्तंद्रातिनिद्रता ॥ ११९ ॥ गौरवंमुखमाधुर्यं मुखलेपः प्रसेकता ॥ श्वेतावलोकनंश्वेतविट्कत्वंश्वेतमूत्रता ॥ १२० ॥ श्वेतांगवर्णताशैत्यमुष्णेच्छातिक्तकामिता ॥ मलाधिक्यंचशुक्रस्यबाहुल्यंबहुमूत्रता ॥ १२१ ॥ आलस्यंमन्दबुद्धित्वं तृप्तिर्घर्घरवाक्यता ॥ अचैतन्यं च गदिता विंशतिः श्लेष्मजागदाः ॥१२२॥

अर्थ—कफरोग वीस प्रकारका है जैसे १ तन्द्रा २ अतिनिद्रा ३ गौरव ४ मुखमीठा रहना ५ मुखलेप। ६ प्रसेकता ७ श्वेतदेखना ८ श्वेतविष्ठाका उतरना ९ श्वेतमूत्रहोना १० देहका वर्ण सफेद होना ११ शैत्यता १२ उष्णेच्छा १३ तिक्तकामिता १४ मलाधिक्य

---

१ जिस पित्तसे पुरुषका मूत्र गरम उतरे उसको उष्णमूत्र कहते हैं।

२ जिस पित्तसे मल (विष्ठा) गरम उतरे उसको उष्णमल कहते है।

३ जिससे नेत्रके सामने अंधेरासा दीखे उसको तमोदर्शन कहते है।

४ जिस पित्तसे देहके ऊपर पीले वर्णके चकत्ते देखनेमें आवे उसको पीतमंडलदर्शन कहते हैं।

५ जो पित्त मुख तथा नासिकाके द्वारा गिरे उसको निःसर कहते हैं।

६ जिससे नेत्र भारी होते हैं उसको तंद्रा कहते हैं।

७ जिस कफसे बहुत निद्रा आवे उसको अतिनिद्रता कहते है।

८ जिस कफसे सब शरीरमें जडता हो उसको गौरव कहते हैं।

९ जिस कफसे मुखमें निरंतर मीठासा स्वाद आता रहे उसको मुखमाधुर्य कहते हैं।

१० जिस कफसे मुख कफकरके लिपटारहे उसको मुखलेप कहते हैं।

११ जिस कफसे मुखमेंसे लार गिराकरे उसको प्रसेक कहते हैं।

१२ जिस कफसे सब पदार्थ सफेद दीखें उसको श्वेतावलोकन कहते हैं।

१३ जिस कफसे मल (विष्ठा) सफेद उतरे उसको श्वेतविट्क कहते हैं।

१४ जिस कफकरके मूत्र सफेद उतरे उसको श्वेतमूत्र कहते हैं।

१५ जिस कफसे सब अंगोका वर्ण सफेद हो जाय उसको श्वेतांगवर्ण कहते हैं।

१६ जिससे सर्दी बहुत होवे उसको शैत्य कहते हैं।

१७ जिस कफ करके उष्ण सूर्य अग्नि आदिके तापकी इच्छा होवे उसको उष्णेच्छा कहते हैं।

१८ जिस कफकरके तिक्त पदार्थ (मिरच) आदिके खानेकी इच्छा चले उसको तिक्तकामिता कहते हैं।

१९ जिस कफके योगमें मल (विष्ठा) बहुत उतरे उसको मलाधिक्य कहते हैं।

१५ शुक्रबाहुल्य १६ बहुमूत्रता १७ आलस्य १८ मन्दबुद्धि १९ तृप्ति २० घर्घरवाक्यता २१ अचैतन्य इसप्रकार कफके बीसरोग जानने। परन्तु यहाँ सख्याकरनेपर २१ होते है सो शैल्य और उष्णेच्छा एक माननेसे संख्या ठीक हो जाती है।

रक्तरोग।

रक्तस्यच दशप्रोक्ताव्याधयस्तस्यगौरवम्॥ रक्तमंडलता रक्तनेत्रत्वंरक्तमूत्रता॥१२३॥ रक्तष्ठीवनतारक्तपिटिकानां च दर्शनम्॥ उष्णत्वं पूतिगंधित्वं पीडापाकश्च जायते॥१२४॥

अर्थ–रुधिरसे उत्पन्न होनेवाले १० रोग है। जैसे १ गौरव २ रक्तमंडलता ३ रक्तनेत्रत्व ४ रक्तमूत्रता ५ रक्तष्ठीवनता ६ रक्तपिटिकादर्शन ७ उष्णत्व ८ पूतिगंधित्व ९ पीडा और १० पाक ऐसे दश प्रकारके रक्तरोग है।

ओष्ठरोग।

चतुःसप्ततिसंख्याका मुखरोगास्तथोदिताः॥तेष्वोष्ठरोगागणिता एकादशमिताबुधैः॥१२५॥ वातपित्तकफैस्त्रेधात्रिदोषैरसजस्तथा॥ क्षतमांसार्बुदंचैव खंडौष्ठश्च जलार्बुदम्॥१२६॥

---

१ जिस कफकरके शुक्र (वीर्य) बहुत होवे तथा उतरे उसको शुक्र बाहुल्य कहतेहैं।

२ जिस कफकरके मूत्र बहुत उतरे उसको बहुमूत्र कहतेहैं।

३ जिस कफसे मनुष्य भारी रहे, कोई काम करनेमें उत्सुकता नहीं रहे उसको आलस्य कहते हैं।

४ जिस कफके बुद्धि मंद होवे उसको मदबुद्धि कहते है।

५ जिस कफकरके खाने पीनेमे इच्छा न चले उसको तृप्ति कहते हैं।

६ जिस कफसे बोलते समय कंठमेसे घरड घरड आवाज निकले उसको घर्घरवाक्य कहते हैं।

७ जिस कफसे मनुष्य चैतन्यतामे मद होय उसको अचैतन्यता कहतेहैं।

८ जिस रक्तसे अग जड होताहै उसको रक्तगौरव कहते हैं।

९ जिस रक्तसे शरीरके ऊपर लालवर्णके चकत्ते उठे उसको रक्तमंडल कहते हैं।

१० जिस रक्तसे नेत्र लालवर्णके हो उसको रक्तनेत्र कहते हैं।

११ जिस रक्तसे लालवर्णका मूत्र मूते उसको रक्तमूत्र कहते हैं।

१२ जिस रक्तसे लालवर्णका थूके उसको रक्तष्ठीवन कहते हैं।

१३ जिस रक्तसे लालवर्णके फोडे (फुन्सी) अगपर दीखें उसको रक्तपिटिकादर्शन कहतेहैं।

१४ जिस रक्तसे शरीरमे गरमी मालुम हो उसको उष्णत्व कहतेहैं।

१५ जिस रक्तसे शरीरमेसे दुर्गंध आवे उसको पूतिगंध कहते हैं।

१६ शरीरमे रक्तकरके जो पीडा होती है उसको रक्तपीडा कहते है।

१७ शरीरमे जो रुधिर पकताहै उसको रक्तपाक कहतेहैं।

मेदोऽर्बुदंचार्बुदंचरोगाएकादशौष्ठजाः॥

अर्थ–मुखके रोग चौहत्तर हैं उनमें ओष्टरोग ग्यारह प्रकारके है जैसे १ वातज २ पित्तज २ कफज ४ संनिपातज ५ रक्तज ६ क्षतज ७ मासार्बुद ८ खडौष्ठ ९ जलार्बुद १० मेदोर्बुद ११ अर्बुद ये ओष्ठके ग्यारह रोग हैं।

दंतरोग।

दन्तरोगादशाख्याता दालनःक्रुमिदंतकः॥१२७॥ दंतहर्षःकरालश्च दंतचालश्च शर्करा॥ अधिदंतःश्यावदंतो दंतभेदःकपालिका१२८॥

अर्थ–दाँतके १० रोग है उनको कहते हैं १ दालन २ क्रुमिदंत ३ दंतहर्ष

---

१ वादीके कोपसे होठ कर्कश, खरदरे, कठोर, काले होतेहैं उनमे तीव्र पीडा हो और दो टुकडोंके समान होजाते हैं तथा होठकी त्वचा किंचित् फटजाती है।

२ पित्तसे होठ चारोओरसे फुन्सीनसे व्याप्तहो, उनमे पीडा होय, तथा पक जावे और पीलेसे दीखे।

३ कफसे होठ त्वचाके समान वर्णवाले फुन्सीनसे व्याप्त होय, कुछ दूखे, तथा मलाईके समान चिकने और शीतल तथा भारी होय।

४ सन्निपातसे होठ कभी काले, कभी पीले, उसीप्रकार कभी सफेद, तथा अनेक प्रकारकी फुन्सीनसे व्याप्त होय।

५ रक्तसे होठोंमे खजूर फलके वर्णकी फुन्सी होय उनमेसे रुधिर गिरे, तथा वह होठ रुधिरके समान लाल होय।

६ अभिघातसे (चोट लगनेसे) होठ सर्वत्र चिरजाय, पीडा होय, उनमे, गाँठ होजाय तथा खुजली चलते समय पीव बहे।

७ मांस दुष्ट होनेसे होठ जड (भारी) मोटे होतेहैं मासपिंडके समान ऊँचे होय इस रोगवाले मनुष्यके दोनो होटोंमे अथवा होठोंके प्रांतभागमे कीडे पडजावे।

८ होठोंके एक भागमे चीराजावे और उसमेसे स्राव होय उसको खडौष्ठ कहते हैं।

९ मांसके भाग बढके होठ ऊँचे और मोटे होकर उनमेसे पानी स्रवे उसको जलार्बुद कहते हैं।

१० मेदसे होठ घृतके झागसमान खुजलीसयुक्त तथा भारी होय, तथा उनसे स्फटिकके समान निर्मल स्राव बहुत होय इसमे भया हुआ व्रण नहीं भरता है तथा उसमे मृदुता नहीं रहती है।

११ वातादिक दोष कुपित होनेसे होठोंमे ग्रंथि उत्पन्न होती है, उसको अर्बुद कहते हैं।

१२ जिसकेदाँतोमे फोडनेकीसी पीडा होय, उसको दालनरोग कहते हैं यह रोग वादीसे होताहै।

१३ वादीके योगसे दाँतोमे काले छिद्र पड जाँय, तथा हिलनेलगे उनमेसे स्राव होय, शोथयुक्त पीडा होनेवाले और कारण विना दूखनेवाले ऐसे दाँत होयँ, उसको क्रुमिदंतरोग कहते हैं यहा दांतोमे काले छिद्र पडनेका यह कारण है कि दुष्टरुधिरसे क्रुमि (कीडा) पैदा होकर दांतोमे छिद्र करते हैं।

१४ शीतल, रुक्ष, खटाई इत्यादि पदार्थ और पवन इनके लगनेको जो दांत नहीं सहिसके, उसको दंतहर्ष कहते हैं यह रोग पित्तवायुके कोपसे होता है यह रोग वातज होनेपरभी उष्ण (गरमी) को नहीं सहि सके, यह व्याधिका स्वभाव है।

४ करोल ५ दंतचाल ६ दंतशर्करा ७ अधिदंत ८ श्यावदंत ९ दंतभेद और १० कपालिका इस प्रकार दश भेद जानने ।

दंतमूलरोग ।

तथा त्रयोदशमिता दंतमूलामयाः स्मृताः ॥ शीतादोपकुशौ द्वौतु दंतविद्रधिपुप्पुटौ ॥ १२९ ॥ अधिमांसो विदर्भश्च महासौषिरसौषिरौ ॥ तथैवगतयः पंचवातात्पित्तात्कफादपि ॥ १३० ॥ संनिपातगतिश्चान्या रक्तनाडीचपंचमी ॥

अर्थ–अब दंतमूलके रोगोको कहते हैं । तहा दाँतकी जडके रोग तेरह हैं । जैसे १ शीताद २ उपकुश ३ दंतविद्रधि ४ पुप्पुट ५ अधिमास ६ विदर्भ ७ महासौपिर ८ सौपिर

---

१ वादी धीरे धीरे मसूढेका आश्रय लेकर दातोको टेढे तिरछे करे उसको करालरोग कहते हैं यह रोग साध्य नहीं होता ।

२ वादीके योगसे तिस तिस अभिघातादिक करके हनुसधि (ठोडी)मे चोट लगनेसे दाँत चलायमान होजाँय उसको दतचाल अथवा हनुमोक्ष कहते हैं ।

३ दातोका मल पित्तवायुके प्रभावसे सूखकर रेतके समान खरदरा स्पर्श मालूम होय, उस रोगको दतशर्करा कहते है ।

४ वादीके योगसे दाँतके ऊपर दूसरा दाँत ऊगे उससमय पीडा होय जब वह दाँत ऊगआवे तब पीडा शांत होय उसको अधिदंत अथवा खल्लीवर्द्धन कहते है ।

५ जो दाँत रुधिरसे मिले पित्तसे जलेके समान सब काले होजाँय उसको श्यावदंत कहते हैं ।

६ जिस व्याधिकरके मुख टेढा होकर दाँत फूटने लगे, उसको दतभेद कहते है यह व्याधि कफ वात करके होती है इस दत भंगकारी दोषके प्रभावसे मुखभी टेढा होता है ।

७ कपाल कहिये मट्टीके बडा आदिके जैसे टूक होते हैं ऐसे दात मलकरके सहित होजाँय उसको कपालिका ऐसे कहते है यह रोग दांतोका सदा नाश करता है ।

८ जिसके मसूढेमेसे अकस्मात् रुधिर वहे और दांतोका मांस दुर्गधयुक्त, काला, पीवसहित तथा नरम होकर गिरे और एक दांतका मसूढा पकनेसे दूसरे मसूढेको पकावे. इस कफरुधिरसे प्रगट व्याधिको शीताद नाम कहते है ।

९ जिसके मसूढेमे दाह होकर पाक होय और दात हिलने लगे, मसूढोमे घिसनेसे रुधिर मद पीडाके साथ, निकले, रुधिर निकलनेके पिछाडी फिर मसूढे फूल आवे और मुखमे वास आवे । इस पित्तरक्तकृत विकारको उपकुश कहते हैं ।

१० वातादिक दोष और रक्तकुपित होकर दातोके मसूढोके भीतर और वाहर सूजन करे और रुधिरसे मिली राध गिरावे, पीडा और दाह होय इसको दंतविद्रधि कहते है ।

११ जिसके दो अथवा तीन दातोकी जडमे महान् सूजन होय, उसको दंतपुप्पुट रोग कहते है यह व्याधि कफरक्तसे होती है ।

१२ जिसके पीछेकी डाढके नीचे अर्थात् मसूढेमे वहुत सूजन होय और घोर पीडा होय, तथा लार वहुत वहे, उसको अधिमासक कहते हैं । यह कफके कोपसे होता है ।

९ वातनाडी १० पित्तनाडी ११ कफनाडी १२ सन्निपातनाडी और १३ रक्तनाडी ऐसे तेरह प्रकारके दतमूलरोग हैं ।

जिह्वारोग ।

तथा जिह्वामयाः षट् स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा ॥१३१॥ अलस-सश्चचतुर्थः स्यादधिजिह्वश्चपंचमः ॥ षष्ठश्चैवोपजिह्वः स्यात्-

अर्थ—जीभके रोग छः प्रकारके हैं उनके नाम १ वातज २ पित्तज ३ कफज ४ अलस ५ अधिजिह्व और ६ उपजिह । इस प्रकार जिह्वाके रोग छः प्रकारके हैं ।

---

१३ मसूढे रगडनेसे सूजन बहुत होय और दात हिलने लगे उसको विदर्भ कहते हैं यह रोग चोटके लगनेसे होता है ।

१४ जिस त्रिदोष व्याधिसे मसूढेके समीपसे दांत हले और तालुएमे छिद्र पडजायँ, दांत और होठ भी फटजाय, उसको महासौषिर रोग कहते हैं । यह रोग मनुष्यको सात दिनमे मार डालता है ।

१५ कफरुधिरसे दांतोकी जडमे सूजन होय,उसमे पीडा और स्राव होय, उसको सौषिररोग कहतेहैं ।

---

१ दंतमूलमे व्रण होनेसे उसके बीच नली होजाती है । उस नलीमेसे दुर्गंधयुक्त राध बहने लगे उसको नाडी कहते हैं । जिसमे वात दुष्ट होनेसे शूलादिक होते हैं उसको वातनाडी कहते हैं ।

२ उस पूर्वोक्त नाडीकी नलीमे दाहादिक पित्तके लक्षण होनेसे पित्तनाडी जानना ।

३ जिस नाडीमेसे गाढी और सफेद राध वहे उसमे खुजली और जडपना इत्यादिक कफके लक्षण हो उसको कफनाडी कहते हैं ।

४ जो नाडी तीनो दोषोके लक्षणोसे युक्त होती है, उसको सनिपातनाडी कहते हैं ।

५ जिस नाडीमेसे लाल वर्णकी और दाहयुक्त राध वहे और उसमे पित्तके दाहादिक लक्षण हो उसको रक्तनाडी कहते हैं ।

६ वादीसे जीभ फटीसी, प्रसुप्त (अर्थात् रसका ज्ञान जाता रहे) और पर्वतीय वृक्षके पत्रसमान कांटेयुक्त खरदरी हो ।

७ पित्तसे जीभ पीली हो, उसमे दाह होय तथा लम्बे लम्बे ताँबेके समान कांटे होय, इस रोगको लौकिकमे जाली अथवा जोडी कहते हैं ।

८ कफसे जीभ मोटी भारी होती है और उसमे सेमरकेसे कॉटके समान मांसके अकुर होते हैं ।

९ जीभके नीचे कफरुधिरसे प्रगट ऐसी भयकर सूजन होय उसको अलस कहते हैं उसके बढनेसे स्तभ होय तथा जीभके मूलमे सूजन होय. यह रोग असाध्य है ।

१० कफरक्तके विकारसे जीभके ऊपर जीभके अग्रभागके समान अकुर आवे उसको अधिजिह्व कहते हैं ।

११ कफरुधिरसे जिह्वाग्रके समान जैसा जीभका आगेका भाग होता है ऐसी सूजन जीभको नीची दबायकर उत्पन्न होय उसके योगसे लार बहुत वहै और उसमे खुजली तथा दाह होय । इस रोगको वद्यै उपजिह्व कहते हैं ।

तालुरोग।

तथाष्टौ तालुजा गदाः ॥ १३२ ॥ अर्बुदं तालुपिटिका कच्छपी मांससंहतिः ॥ गलशुंडी तालुशोषस्तालुपाकश्च पुप्पुटः ॥ १३३ ॥

अर्थ–तालुएके रोग आठ प्रकारके हैं। जैसे १ अर्बुद[1] २ तालुपिटिका[2] ३ कच्छपी[3] ४ मांससंहति[4] ५ गलशुंडी[5] ६ तालुशोष[6] ७ तालुपाक[7] और ८ पुप्पुट[8] ऐसे हैं।

गलरोग।

गलरोगास्तथाख्याता अष्टादश मिता बुधैः ॥ वातरोहिणिका पूर्वं द्वितीया पित्तरोहिणी ॥ १३४ ॥ कफरोहिणिका प्रोक्ता त्रिदोषैरपि रोहिणी ॥ मेदोरोहिणिका वृंदो गलौघो गलविद्रधिः १३५ स्वरहा तुंडिकेरी च शतघ्नी तालुकोऽर्बुदम् ॥ गिलायुर्वलयश्चापि वातगंडः कफस्तथा ॥ १३६ ॥ मेदोगंडस्तथैव स्यादित्यष्टादश कंठजाः ॥

अर्थ–कंठरोग अठारह प्रकारके हैं. जैसे—१ वातरोहिणी[9] २ पित्तरोहिणी[10]

---

१ रुधिरसे तालुएमे कमलकी कर्णिकाके समान सूजन होय और उसमें पीडा थोडी होय उसको अर्बुद कहते हैं।

२ रुधिरसे तालुएमे लाल, स्तब्ध (लठर ऐसी सूजन होय) उसमे पीडा और ज्वर होय, उसको तालु पिटिका अथवा अध्रुव कहते हैं।

३ कफसे तालुएमे कछुआकी पीठके समान ऊंची सूजन होय उसमे पीडा थोडी होय वह शीघ्र बढे नहीं, उसको कच्छपी कहते हैं।

४ कफकरके तालुएमे दुष्ट मांस होकरके जो सूजन होय और वह दूखे नहीं, उसको मांससंहति कहते हैं।

५ कफरुधिरसे तालुएके मूलमे फूली बस्तीके समान सूजन होय इसके प्रभावसे प्यास, खासी, श्वास ये होते हैं इस रोगको गलशुंडी कहते हैं।

६ वादीसे तालु अत्यंत सूखकर फटजाय, तथा भयंकर श्वास होय, उसको तालुशोष कहते हैं।

७ पित्त कुपित होकर तालुएमे अत्यंत भयंकर पाक (पकी फुन्सी) उत्पन्न करे उसको तालुपाक कहते हैं।

८ मेदयुक्त कफकरके तालुएमे पीडारहित और स्थिर तथा बेरके समान सूजन होय, उसको पुप्पुट वा तालुपुप्पुट कहते हैं।

९ जीभके चारो ओर अत्यंत वेदनायुक्त जो मांसांकुर उत्पन्न होंय, उनसे कंठका अवरोध होयहै तथा कंप, विनाम, (कंठ नवै) स्तंभ आदि वातके विकार होते हैं इसको वातरोहिणी कहतेहैं।

१० पित्तसे प्रगटभई रोहिणी शीघ्रही बढे तथा पके, उसके योगसे तीव्र ज्वर होय।

३ कफरोहिणी ४ सन्निपातरोहिणी ५ मेदोरोहिणी, ६ वृन्दे, ७ गलौघ, ८ गलविद्रधि, ९ स्वरहा १० तुंडिकेरी ११ शतघ्नी १२ तालुक १३ अर्बुद १४ गिलायु १५ वलय १६ वातगंड १७ कफगंड १८ मेदोगंड, इसप्रकार अठारह प्रकारके कंठरोग हैं।

मुखान्तर्गतरोग।

मुखांतःसंश्रयारोगा ह्यष्टौख्यातामहर्षिभिः॥१३७॥ मुखपाकोभवेद्वातात्पित्तात्तद्रक्तकफादपि॥ रक्ताच्चसंनिपाताच्चपूत्यास्योर्ध्वगुदावपि॥१३८॥अर्बुदंचेतिमुखजाश्चतुःसप्ततिरामयाः॥

अर्थ–मुखके भीतरके रोग आठ प्रकारके हैं। जैसे १ वातमुखपाक २ पित्तमुखपाक ३ कफमुखपाक ४ रक्तमुखपाक ५ सन्निपातमुखपाक ६ दुर्गंधास्य ७ ऊर्ध्वगुद और ८ अर्बुद। इसप्रकार मुखपाक रोग आठ प्रकारका है।

---

१ जो रोहिणी कंठके मार्गको रोधकरे (रोकदे) तथा हौले हौले पके तथा जिसके अंकुर कठिन होय, उसे कफजन्यरोहिणी जाननी।

२ त्रिदोषसे उत्पन्न भई रोहिणी गंभीरपाकिनी होती है। तिन करके गला रुक जाताहै ज्वरयुक्त जो उसमें राध बहुत हो जिसमें औषधिका प्रभाव नही चले और तीन दोषोंके लक्षणोंसे युक्त होय यह तत्काल प्राणोंको हरण करे।

३ मेद दुष्ट होनेसे गलेमें फुंसी उत्पन्न होती हैं उसको मेदोरोहिणी कहते हैं।

४ गलेमें ऊंची गोल तीव्रदाह तथा सूजन होय, उसको वृंद कहते हैं यह वृंद रक्तपित्तके कोपसे होता है। इसमें वायुका संबंध होनेसे चोटनेकीसी पीडा होय।

५ रक्तयुक्त कफसे गलेमें भारी सूजन होय उसके योगसे कंठमें अन्नजलका अवरोध (रुकावट) होय, तथा वायुका संचार होय नहीं, इसको गलौघ कहतेहैं।

६ जो सूजन सब गलेमें व्याप्त होवे, तथा जिसमें सर्वप्रकारकी पीडा हो उसको विद्रधि कहते हैं।

७ वायुका मार्ग कफसे लिप्त होनेसे वारंवार नेत्रोंके आगे अंधकार आकर जो पुरुष श्वासको छोडे, अथवा मूर्च्छा आकर जिसका श्वास निकले, जिसका स्वर भिन्न होय, कंठ सूखे, और विमुक्त कहिये कंठ स्वाधीन नही, अर्थात् थोडा भी अन्न खायाहो तथापि कंठके नीचे न उतरे इस वातजरोगको स्वरहा (स्वरघ्न) कहते हैं।

८ वादीके योगसे मुखमें सर्वत्र छाले होजांय और चिनमिनावे, मुख, जिह्वा, गला, होट, मसूडे, दांत और तालु इन सबमें व्याप्त होता है। इस रोगको मुखपाक (मुखआना) अथवा सर्वसर कहते हैं।

९ पित्तसे मुखमें लाल तथा पीले छाले होय और दाह होवे।

१० कफसे मुखमें मंद पीडा और त्वचाके समान वर्ण जिनका ऐसे छाले सर्वत्र होय।

११ रक्तके कोपसे मुखमें लाल फोडे होने हैं उनके लक्षण पित्तके सदश होय। उसको रक्तज मुखपाक कहतेहैं।

कर्णरोग ।

कर्णरोगाःसमाख्याता अष्टादशमितावुधैः ॥ १३९ ॥ वातात्पित्तात्कफाद्रक्तात्संनिपाताच्चाविद्रधिः॥शोथोऽर्बुदंपूतिकर्णःकर्णार्शः कर्णहल्लिका ॥१४०॥बाधिर्यंतंत्रिकाकंडूःशष्कुलिः कृमिकर्णकः ॥ कर्णनादः प्रतीनाह इत्यष्टादश कर्णजाः ॥ १४१ ॥

अर्थ—कर्णरोग १८ प्रकारके है जैसे—१ वात २ पित्त ३ कफ ४ रक्त ५ संनिपात ६ विद्रधि ७ शोथ ८ अर्बुद ९ पूतिकर्ण १० कर्णार्श ११ कर्णहल्लिका १२ बाधिर्य

---

१२ मुखमे जो फोडे होतेहैं उनमे वात, पित्त, कफ इन तीनोके लक्षण मिलनेसे उन्हे संनिपातज मुखपाक कहतेहैं ।

१३ मुखमे फोडेकीसी दुर्गंध आवे उसको पूत्यास्य अर्थात् दुर्गंधमुख कहते हैं ।

१४ मुखमे जो फोडे होतेहैं उनके फूटनेसे उनका आकार गुदाके सदृश होवे उसको ऊर्ध्व गुद कहतेहैं ।

१५ संनिपातके योगसे मुखमे गोल आकारवाली ग्रंथि उत्पन्न होतीहै उसको अर्बुद कहतेहैं ।

---

१ वादीसे कानमे शब्द होय, पीडा होय, कानका मैल सूखजाय, पतला स्राव होय, सुनाई नहीं देवे अर्थात् बहरा होजाय ।

२ पित्तसे कानमे सूजन होय, कान लाल हो, दाह हो, चिराखा होजाय, तथा किंचित् पीला दुर्गंधियुक्त स्राव होय ।

३ कफके प्रभावसे विरुद्ध सुनना, खुजली चले, कठिन सूजन होय, सफेद और चिकना ऐसा स्राव होय ।

४ पित्तके लक्षणसे रक्तज कर्णरोग जानना ।

५ संनिपातसे सब लक्षण होय, स्राव होय, वा जौनसा दोष अधिक होय वैसेही दोषानुसार कर्णका स्राव होय ।

६ कानमें खुजानेसे व्रण होजाय, अथवा चोटलगनेसे कानमे व्रण होकर विद्रधि होय, उसी प्रकार वातादि दोषोंकरके दूसरे प्रकारकी विद्रधि होयहै, जब वह फूटे तब उससे लाल पीला रुधिर बहै, नोचनेकीसी पीडा होय, धूंआसा निकलता मालूम होवे, दाह होवे, चूसनेकीसी पीडा होवे ।

७ सुकुमार स्त्री अथवा बालक कानकी लौरको एकसाथ बहुत बढावे तो कानकी लौरमे सूजन होकर फूलजावे और पूर्ण हो उसको कर्णशोथ कहते हैं ।

८ त्रिदोषके कोपसे कानमे गोलाकार मासकी फुन्सी उत्पन्न होवे उसको कर्णार्बुद कहतेहैं ।

९ कानमेंसे राध निकले और दुर्गंध आवे उसको कर्णपूति कहते हैं ।

१० वातादिक दोष कुपित होनेसे कानमे मांसके अंकुर उत्पन्न होतेहैं, उनमे शूल, कंडू, दाह ये उपद्रव होते हैं उसको कर्णार्श कहतेहैं ।

१३ तंत्रिका १४ कडू १५ शष्कुल १६ कृमिकर्णक १७ कर्णनाद और १८ प्रतीनाह । इस प्रकार कानके रोग अठारह प्रकारके जानने ।

कर्णपाली रोग।

कर्णपालीसमुद्भूता रोगाः सप्त इहोदिताः ॥ उत्पातः पालिशोषश्च विदारी दुःखवर्द्धनः ॥ १४२ ॥ परिपोटश्च लेही च पिप्पली चेति संस्मृताः ॥

अर्थ—कर्णपालीके रोग सात प्रकारके हैं। जैसे १ उत्पात २ पालिशोष ३ विदारी ४ दुःखवर्धन ५ परिपोट ६ लेही और ७ पिप्पली ।

---

११ पतंग, कानखजूरा, गिजाई आदिके कानमे घुसनेसे बेचैनी होय, जीव व्याकुल होय और कानमें पीडा होय, तथा कानमे नोचनेकीसी पीडा होय वह कीडा कानमें फडके और फिरे उस समय घोर पीडा होय, और जब वह बंद होय, तब पीडा बंद होय इसको कर्णहल्लिका कहते हैं।

१२ जिस समय केवल वायु अथवा कफयुक्त वायु शब्द बहनेवाली नाडियोमे स्थित हो जाय, तब उस पुरुषको शब्द सुनाई नहीं देता अर्थात् बहरा हो जाता है उसको बाधिर्य कहते हैं।

---

१ पित्तादि दोषोंकरके युक्त वायुसे कानोमे वेणु (बंशी) का शब्द सुनाई देता है, उसको तंत्रिका अथवा कर्णक्ष्वेड कहते हैं।

२ कफसे मिला हुआ वायु कानोमें खुजली उत्पन्न करता है उसको कर्णकण्डू कहते हैं।

३ मस्तकमे पाषाण, लकडी आदिका अभिघात होनेसे अथवा पानीमे गोता मारनेसे, अथवा कानमें विद्रधि पकनेसे वायु कुपित होकर कानमेंसे राध बहे उसको कर्णशष्कुलि अथवा कर्णस्राव कहते हैं।

४ जिस समय कानमे कृमि पडजाँय, अथवा मक्खी अण्डा धरे, तब कृमिके लक्षण होते हैं। इसको कृमिकर्ण कहते हैं।

५ वायु कानके छिद्रमे स्थित होनेसे अनेक प्रकारके स्वर, तथा भेरी, मृदग और शख इनके सदृश शब्द सुनाई देवे इस रोगको कर्णनाद कहते हैं।

६ जिस समय कानका मैल पतला होकर मुखमे और नाकमे उतरता है उसको प्रतीनाह रोग कहते हैं, इसमें आधा मस्तक दूखता है।

७ कानमे भारी आभरण (गहना) पहननेसे, चोटके लगनेसे अथवा कानको खींचनेसे रक्त पित्त कुपित होकर कानकी पालिमे हरा, नीला, अथवा लाल सूजन होय, उसमे दाह होवे, पीडा होवे और रक्त बहे, इस रोगको उत्पात कहते हैं।

८ वायुके कोपसे कानकी पाली सूखजाय उसको पालीशोष कहते हैं।

९ कानकी लौर फटकर उसमे खुजली चले उसको विदारी कहते हैं।

१० दुष्टरीति करके कानको छेदने तथा बढानेसे खुजली दाह पीडायुक्त सूजन होय, वह पकजाय, उसको दुःखवर्द्धन कहते हैं।

कर्णमूलरोग ।

कर्णमूलामयाःपंचवातात्पित्तात्कफादपि ॥१४३॥ संनिपाताच्च-

अर्थ-कर्णमूलरोगोंको वात, पित्त, कफ, सन्निपात और रक्त इन भेदोंसे पांच प्रकारका जानना ।

नासारोग ।

रक्ताच्च तथानासाभवागदाः ॥ अष्टादशैवसंख्याताःप्रतिश्यायास्तुतेष्वपि ॥ १४४ ॥ वातात्पित्तात्कफाद्रक्तात्संनिपातेन पंचमः ॥ आपीनसःपूतिनासोनासार्शो भ्रंशथुःक्षवः ॥१४५॥नासानाहःपूतिरक्तमर्बुदं दुष्टपीनसम् ॥ नासाशाषो घ्राणपाकःपुटस्रावश्च दीप्तकः ॥ १४६ ॥

अर्थ-नासारोग कहिये नाकमें होनेवाले रोग अठारह हैं. १ जैसे वातप्रतिश्याय २ पित्तप्रतिश्याय ३ कफप्रतिश्याय ४ रक्तप्रतिश्याय ५ सन्निपातप्रतिश्याय ६ आपीनस

---

११ सुकुमार स्त्री अथवा बालकोंके कानोमें अलंकार (गहने) पहनानेके लिये प्रथम छिद्र करके कई दिन उनमे गहने नही पहने, फिर किसी कालमें कानमें गहने पहननेका समय आवे तब ये छिद्र मोटे होनेके वास्ते कानमें सींक आदि डालकर बढानेको चाहे, तब उससे काले वर्णकी वा लाल वर्णकी सूजन उत्पन्न होवे, उसमें पीडा होवे, वह बादीसे होती है, उसको परिपोट कहते हैं ।

१२ कफ, रक्त, कृमिसे उत्पन्न भई तथा सर्वत्र विचरनेवाली जो सूजन कानकी पालीमें होव, वह कानकी पालीको खाय जाय अर्थात् उसका मांस झरने लगे उसको परिलेही ऐसे कहते हैं ।

१३ कानको बलपूर्वक पालीमें (लौरमें) वायु कुपित होकर कफको संग लेकर कठिन तथा मन्द पीडायुक्त सूजनको प्रगट करे, उसमें खुजली चले इस कफवातजन्य विकारको पिप्पली अथवा उन्मन्थक कहते हैं ।

---

१ कानके नीचे मूलकी जगहपर गाँठके आकार सूजन उत्पन्न हो । उसमें जिस दोषको कोप हुआ हो उसके लक्षण होते हैं । जैसे वायुका कोप होनेसे पीडा होती है, पित्तका कोप होनेसे दाह होता है, कफका कोप होनेसे खुजली होती है, सन्निपातसे तीनो लक्षण होते हैं और रक्तसे दाह होता है, इस प्रकार करके पांच कर्णमूल रोग जानने ।

२ जिसके नाकका मार्ग रुकजाय, आच्छादित होजाय और उसमेंसे पतला पानी निकले, गला, तालु, होठ ये सूख जाँय और कनपटी दूखे, गला बैठजाय ये वातके प्रतिश्याय (पीनस) के लक्षण जानने ।

३ जिसकी नाकसे दाह और पीला स्राव निकले, वह मनुष्य पीला और कृश होजाय उसका देह गरम रहे, नाकसे अग्निके समान धूआँ निकले ये पित्तके पीनसके लक्षण हैं ।

७ पूतिनास ८ नासार्श ९ भ्रंशथु १० क्षव ११ नासानाह १२ पूतिरक्त १३ अर्बुद १४ दुष्टपीनस १५ नासाशोष १६ घ्राणपाक १७ पुटस्राव और १८ दीप्तक ऐसे ये अठारह नासिकाके रोग हैं।

---

४ नाकसे सफेद पीला बहुत कफ गिरे, उसकी देह सफेद होजाय, नेत्रोके ऊपर सूजन होय और मस्तक भारी रहे तथा गला, तालु, तथा होठ और शिर इनमें खुजली विशेष चले ये कफके पीनसके लक्षण हैं।

५ रुधिरकी पीनसमे नाकसे रुधिर गिरे, नेत्र लाल होय, उरःक्षतकी पीडाके सदृश पीडा होय, श्वास अथवा मुखमें वास आवे, दुर्गंधिका ज्ञान नहीं होय ये रक्तके पीनसके लक्षण हैं।

६ जिसके नाकमे वात, पित्त, कफके पीनसके लक्षण होय, तथा वह पीनस वारंवार होकर पककर अथवा विना पके नष्ट होजाय उसको संनिपातकी पीनस कहते हैं। यह विदेह आचार्यके मतसे साध्य है।

७ जिसके नाक रुकजाय, वात, शोणित कफसे नाक भीतरमें सूखासा रहे, गीला रहे, धुआँसा निकले, जिसके, नाकमें सुगंध, दुर्गंध मालुम न हो उसके पीनस प्रगट भई जाननी। इस वातजन्य विकारको आपीनस कहते हैं।

---

१ गले और तालुएमें दुष्टभया पित्त रक्तादिदोषकरके वायुमिश्रित होकर नाक और मुखके मार्गसे दुर्गंधि निकले इस रोगको पूतिनास वा पूतिनस्य कहते हैं।

२ वात, पित्त, कफ ये दूषित होकर, त्वचा, मांस और मेदा इनको दूषित करते हैं उससे नाकमें मांसके अंकुर उत्पन्न होते हैं उसको नासार्श कहते हैं।

३ सूर्यकी गरमी करके, मस्तक तप्तहोनेसे पूर्व संचितभया विदग्ध, गाढा, खारी, ऐसा कफ नाकसे गिरे, उस व्याधिको भ्रंशथुरोग कहते हैं।

४ नासिकाश्रित मर्म (शृंगाटक मर्म) के विषे वायु दुष्ट होकर कफसहित भारी शब्दको नासिकाके बाहर निकाले, इसको क्षव (छींक) कहते हैं।

५ वायुसहित कफ श्वासके मार्गको बंद करे, तब नाकका स्वर अच्छीरीतिसे नहीं चले, इसको नासानाह कहते हैं।

६ जो दुष्ट होनेसे अथवा कपालमें चोट लगनेसे नाकमेसे राध और रुधिर बहे, इसको पूतिरक्त अथवा पूयरक्त कहते हैं।

७ वातादिदोष कुपित होनेसे नाकमें ऊँची गाँठ उत्पन्न होती है उसको नासार्बुद कहते हैं।

८ वारंवार जिसकी नाक भड़ा करे और सूखजाय नाकसे अच्छी तरह श्वास नहीं आवे, नाक रुकजाय और फिर खुलजाय। श्वास लेनेमें वास आवे तथा उस रोगीको सुगंध दुर्गंधिका ज्ञान न रहे। ऐसे लक्षण होनेसे इसको दुष्ट प्रतिश्याय वा दुष्ट पीनस कहते हैं यह कष्टसाध्य है।

९ वायुसे नासिकाका द्वार अत्यंत तप्त होकर सूखजाय, तब मनुष्य बडे कष्टसे ऊपर नीचेको श्वास लेय, उस रोगको नासाशोष कहते हैं।

१० जिसकी नाकमें पित्त दूषित होकर फुन्सी प्रगट करे और नाक भीतरसे पकजाय उसको घ्राणपाक कहते हैं।

११ नाकसे गाढा, पीला अथवा सफेद, पतला दोष (कफ) स्रवे, उसको पुटस्राव कहते हैं।

१२ नाक अत्यंत दाहयुक्त होनेसे उसमें वायु धुआँके सदृश विचरे और नाक प्रदीप्त अर्थात् गरम होवे उसको दीप्तक कहते हैं।

शिरोरोग ।

तथा दश शिरोरोगा वातेनार्धावभेदकः ॥ शिरस्तापश्च वातेन पित्तात्पीडातृतीयका ॥ १४७ ॥ चतुर्थी कफजापीडा रक्तजा संनिपातजा ॥ सूर्यावर्ताच्छिरःपाकात्कृमिभिःशंखकेनच ॥ १४८ ॥

अर्थ—मस्तकरोग दश प्रकारका है । जैसे—१ अर्धावभेदक २ वातजशिरोभिताप ३ पित्तजशिरोभिताप ४ कफजाशिरोभिताप ५ रक्तजशिरोभिताप ६ सन्निपातजशिरोभिताप ७ सूर्यावर्त्त ८ शिरःपाक ९ कृमिज और १० शंखक ऐसे मस्तकके दश रोग हैं ।

---

१ रूखे अन्नसे, अत्यंत भोजन, अध्यशन (भोजनके ऊपर भोजन) ,पूर्व दिशाकी पवन सेवन करनेसे, वर्फसे, मैथुनसे, मलमूत्रादिका वेग धारण करनेसे, परिश्रम और दंडकसरत करनेसे इन कारणोंसे कुपित भई जो केवल वात अथवा कफयुक्त वायु सो आधे मस्तकको ग्रहणकर मन्यानाडी, भृकुटी, कनपटी, कान, नेत्र, ललाट ये सब एक ओरसे आधे दूखे, कुरहाडीसे घाव करनेकीसी, अथवा अरणिके (आंच लगानेके काष्ठके) मथनेकीसी पीडा होय उसको अर्धावभेदक अर्थात् आधाशीशी कहते हैं । यह रोग जब बहुत बढ जाता है तब एक ओरके कानसे बहरापन होजाता है । अथवा एक ओरकी आँख मारी जाती है जिस ओरको पीडा होय उधर ये उपद्रव होते हैं ।

२ जिसका मस्तक अकस्मात् दूखे और रात्रीमे विशेष दूखे,बाँधनसे अथवा सेकनेसे शांति हो, उसको वातजशिरस्ताप कहते हैं ।

३ जिसका मस्तक अंगारसे तपायेके समान गरम होवे और नाकमें दाह होय, शीतल पदार्थसे किंवा रात्रिमे शांतहो, उस मस्तकशूलको पित्तका जानना ।

४ जिसका मस्तक भीतरसे कफकरके लिप्त (लिहसासा) होवे, भारी, बँधासा और शीतल होवे तथा नेत्र सुजाकर मुखको सुजाय देवे इस मस्तकरोगको कफके कोपका जानना ।

५ रक्तजन्य मस्तकरोगमे पित्तकृत मस्तकरोगके सब लक्षण होते हैं तथा मस्तकका स्पर्श सहानहीं जाता यह विशेष होता है ।

६ त्रिदोषसे उत्पन्न मस्तकरोगमे वात, पित्त कफ इन तीनोंके लक्षण होते हैं ।

७ सूर्यके उदय होनेसे धीरेधीरे मस्तक दूखनेका आरंभ होय और जैसे जैसे सूर्य बढे तैसे तैसे वह शूल नेत्र और भ्रुकुटी (भौंह) मे दो प्रहर दिन बढेतक बढता जाय और सूर्यके साथ बढकर फिर जैसे सूर्य अस्त होय तैसे २ पीडा मंद होतीजाय, शीतल और गरम उपचार करनेसे मनुष्यको सुख होय इस सनिपातिक विकारको सूर्यावर्त कहते हैं ।

८ मस्तकके रुधिर, वसा, कफ और वायु इनके क्षय होनेसे अत्यत भयकर मस्तकशूल होता है छींक बहुत आवे, मस्तक गरम होवे, तथा उसमे स्वेदन, वमन, धूमपान, नस्य और रुधिर निकलना ये कर्म करनेसे यह मस्तकशूल बढता है इसको शिरःपाक अथवा क्षयजाशिरोरोग कहते हैं ।

९ जिसके मस्तकमें टाँकीके तोडनेकीसी पीडा होवे, तथा कृमि भीतरसे मस्तक खाकर पोला.

कपालरोग।

तथा कपालरोगाःस्युर्नवतेषूपशीर्षकम् ॥ अरूंषिकाविद्रधिश्च दारुणं पिटिकार्बुदम् ॥ १४९ ॥ इन्द्रलुप्तं च खालित्यं पलितं चेति ते नव ॥

अर्थ—कपालके रोग नव प्रकारके हैं। जैसे १ उपशीर्षक २ अरूंषिका ३ विद्रधि ४ दारुण ५ पिटिका ६ अर्बुद ७ इन्द्रलुप्त ८ खालित्य और ९ पलित। ऐसे नव प्रकारके कपालके रोग हैं।

—कराडेदे, तथा भीतरसे मस्तक फडके तथा नाकमें रुधिर, राध और कीडे पडें यह कृमिजशिरोरोग बडा भयङ्कर है।

१० दुष्टभये जो पित्त रक्त और वायु सो विशेष बढकर नेत्रोंमे भयकर सूजन उत्पन्न करे इसमे घोर पीडा होय, घोर दाह होय तथा नेत्र लाल बहुतहो यह विषके वेगके समान बढकर गलेमे जाकर गलेको रोकदे इस शंखक रोगसे रोगीके तीन दिनमें प्राणोंका नाश होवे इन तीन दिनमें कुशल वैद्यकी औषध पहुँचनेसे रोगी बचे, परतु प्रथम निश्चयकरके चिकित्सा करना।

---

१ वातादिक दोष कुपित होनेसे मस्तकके समीप माथेके ऊपरके भागपर सूजन उत्पन्न होती है उसको उपशीर्षक कहते हैं।

२ रुधिर, कफ और कृमिके कोपसे माथेमें बहुत फुन्सी होजांय उनमेंसे चेप विशेष निकले और क्लेद युक्त होय इन फुन्सीको अथवा व्रणोंको अरुंषिका कहते हैं।

३ वातादिक दोषोंसे माथेमें गांठ होकर पके और फूटे उसमे शूल दाह ये होंय उसको विद्रधि कहते हैं।

४ कफ वायुके कोपसे केशोंकी जमीन अति कठिन होकर खुजावे, खबरदारी होय तथा बारीक फुन्सी होकर पके उसको दारुण कहते हैं कफवातके कोपसे यह रोग होताहै इसका कारण यह है कि, बिनापित्तके पाक नहीं होय।

५ त्रिदोषके कोपसे मस्तकमें गोल फुन्सी होती है उससे शूल दाह आदि पीडा होंवे उसको पिटिका कहते हैं।

६ माथेमें वातादि दोष कुपितहोकर रुधिर और मांसको दूषितकर मोटी और गोल ऐसी गांठ उत्पन्न करे उसमें पीडा थोडी होवे उसकी जड नीचे रहती है यह गाठ बहुत देरमें बढती और बहुत देरमे पकती है उसको अर्बुद ऐसे कहते हैं।

७ पित्तवादीके साथ कुपित होकर रोमकूपोंमें अर्थात् बालोंके छिद्रोंमें प्राप्त हो, तब मस्तक अथवा अन्यस्थानके बाल झडने लगें पीछे कफ और रुधिर रोमकूप कहिये बालोंके प्रगटहोनेके स्थानको रोकदे उससे फिर बाल नहीं ऊगे इस रोगको इन्द्रलुप्त अर्थात् चाईरोग कहते हैं यह रोग स्त्रियोंके नहीं होता कारण यह कि, उसका रुधिर महीनेके महीने शुद्ध होता है और निकलतारहता है इसीसे वह रोमकूपोंको नहीं रोकता।

८ इंद्रलुप्त सदृशही खालित्यरोगके लक्षण हैं। तहां इंद्रलुप्त रोग मूँछ डाढीमें होता है और खालित्य रोग शिरमें होता है।

९ क्रोध, शोक और श्रमके करनेसे शरीरमें उत्पन्न भई जो ऊष्मा (गरमी) और पित्त सो मस्तकमें जायकर बालोंको पकायदे अर्थात् सफेद करदे यह पलित रोग होताहै।

वर्त्मरोग ।

तथानेत्रभवाः ख्याताश्चतुर्नवतिरामयाः ॥ १५० ॥ तेषुवर्त्म गदाः प्रोक्ताश्चतुर्विंशतिसंज्ञिताः ॥ कृच्छ्रोन्मीलः पक्ष्मशातः कफोत्क्लिष्टश्च लोहितः ॥ १५१ ॥ अरुङ्निमेषः कथितो रक्तोत्क्लिष्टः कुकूणकः ॥ पक्ष्मार्शः पक्ष्मरोधश्च पित्तोत्क्लिष्टश्च पोथकी ॥ १५२ ॥ क्लिष्टवर्त्माचबहलः पक्ष्मोत्संगस्तथार्बुदम् ॥ कुंभिकासिकतावर्त्मालगणोऽञ्जननामिका ॥ १५३ ॥ कर्दमःश्याववर्त्मादि बिसवर्त्म तथालजी ॥ उत्क्लिष्टवर्त्मेतिगदाः प्रोक्ता वर्त्मसमुद्भवाः ॥ १५४ ॥

अर्थ-नेत्रके रोग ९४ हैं उनमे पलकोके रोग २४ हैं, जैसे । १ कृच्छ्रोन्मील २ पक्ष्मशात ३ कफोत्क्लिष्ट ४ लोहित ५ अरुङ्निमेष ६ रक्तोत्क्लिष्ट ७ कुकूणक ८ पक्ष्मार्श ९ पक्ष्मरोध १० पित्तोत्क्लिष्ट ११ पोथकी १२ क्लिष्टवर्त्म १३ बहल १४ पक्ष्मोत्संग

---

१ वातादि दोष जब कोएके मार्गको सकुचित करे तब मनुष्य नेत्रको उघाड कर नही देख सके । उस रोगको कुचन अथवा कृच्छ्रोन्मील कहते हैं ।

२ पलकोकी जडमे रहनेवाला पित्त कुपित होकर नेत्रोके बाल जिनको बरुनी अथवा वाफणी कहतेहैं उनका नाश करे नेत्रोमे खुजली चले और दाह होय, उसको पक्ष्मशात कहते हैं ।

३ कोएमे अल्पपीडा तथा बाहरसे सूजा हुआ अत्यंत कीचडसे व्याप्त हो उसको कफोत्क्लिष्ट वा प्रक्लिन्नवर्त्म कहते हैं ।

४ रुधिरके संबधसे नेत्रके कोएके भीतरके भागमे लाल तथा नरम अकुर बढे उसको शोणितार्श वा लोहित कहते हैं इसको जैसे जैसे काटे तैसे तैसे बढता है इस रक्तज व्याधिको विदेहाचार्य असाध्य मानते हैं ।

५ वर्त्माश्रित (कोएमे आस्थित) जो वायु सो निमेष (कहिये पलकके उघाडने मूदनेवाली नसोंमे प्राविष्ट होकर वारंवार पलकोको चलायमान करे उसको अरुङ्निमेष (नेत्रका मिचकाना) कहतेहैं । यह रोग सन्निपातज है ।

६ नेत्रके कोएमे लबे खरदरे कठिन दुःखदायक ऐसे मासाकुर होतेहैं उसको शुष्कार्श अथवा रक्तोत्क्लिष्ट कहते हैं ।

७ दूधके विकारसे छोटे बालकोके नेत्रमे खुजली, दाह और वारवार स्राव होताहै उसको कुकूणक कहते हैं ।

८ ककडीके बीजके बराबर, मदपीडायुक्त, पृथक् ऐसी फुन्सी कोएमे उठे उसको पक्ष्मार्श कहते हैं. यह सनिपातात्मक है ऐसा निमि और विदेह आचार्यका मत है ।

९ जिसके नेत्रके कोयोमें सूजनसे नेत्रके बराबर सूजन आयजावे उससे उस मनुष्यको कुछ नही दीखे । इस रोगको पक्ष्मरोध वा वर्त्मबंध कहते हैं ।

१० बादीसे चलायमान कोएके बाल नेत्रमे प्रवेश करे और वे वारम्वार नेत्रसे रगडेजांय इसीसे

१५ अर्बुद १६ कुंभिका १७ सिकतावर्त्म १८ अलगण १९ अंजननामिका २० कर्दम २१ श्यावर्वर्त्म २२ विसवर्त्म २३ अलजी और २४ उक्लिष्टवर्त्म । इस प्रकार चौवीस प्रकारके पलकोंके रोग है।

—नेत्रके काले वा सफेद भागमें सूजन होय, वह केश (बाल) जडसे टूटजावें, अतएव इस व्याधिको पक्ष्मकोप, उपपक्ष्म, अथवा पित्तोत्क्लिष्टभी कहतेहैं।

११ कोयोंमे लाल सरसोंके समान रुधिरस्रावयुक्त, खुजलीसंयुक्त, भारी, तथा पीडासयुक्त ऐसी फुन्सी होय उसको पोथकी कहते हैं।

१२ नेत्रके वर्त्म धोनेसे अथवा नही धोनेसे वारवार चिपकजावे, कोए पककर राधसे नहीं चिकटे तो इस रोगको अक्लिष्टवर्त्म अथवा क्लिष्टवर्त्म कहते है।

१३ नेत्रका कोया त्वचाके समान वर्ण, तथा कठिन फुन्सीसे व्याप्त होय, उस रोगको बहुल-वर्त्मरोग कहते हैं।

१४ नेत्रके ढकनेवाली वाफणी अर्थात् कोएमे फुन्सी होय और उसका मुख भीतर होय, वह, लाल बडी तथा खुजली संयुक्त होय, उसको पक्ष्मोत्संग पिटिका कहते हैं, यह त्रिदोषजन्यहै।

---

१ नेत्रके कोएके भीतर गोल, मद वेदनायुक्त, कुछ लाल, जल्दी बढनेवाली ऐसी जो गाँठ होय उसको अर्बुद कहते है, यह संनिपातज है।

२ पल्कोंके समीप कुंभिकाके बीजके समान फुन्सी होय वह पककर फूटजाय और फूटकर वहे उसको कुंभिका कहते हैं, कोई आचार्य कहते हैं कि, कच्छदेशमे दाडिम (अनार) के बीजके आकार कुंभिका होती है।

३ कोएमें जो पिडिका कठिन और बडी होकर सर्वत्र छोटी छोटी फुन्सियोंसे व्याप्त होय उसको वर्त्मशर्कर, अथवा सिकतावर्त्म कहते हैं।

४ नेत्रके कोएमें बेरके समान बडी कठिन खुजलीसयुक्त चिकनी गाँठ होय उसको अलगण कहते हैं यह रोग कफजन्य है इसमें पीडा और पकना; नहीं होता।

५ दाह तोद (चोंटनी) संयुक्त, लाल, नरम, छोटी, मद पीडा करनेवाली ऐसी फुन्सी नेत्रके कोएमें होय उसको अजना कहते हैं. यह सानिपातज है।

६ क्लिष्टवर्त्मरोग (जो पूर्व कहा) फिर पित्तयुक्त रुधिरको दहनकरे तब वह दही दूध, माखनके समान गीला होजाय अतएव इस व्याधिको वर्त्मकर्दम कहते हैं।

७ जिसके नेत्रके कोएके बाहर अथवा भीतर काली सूजन तथा पीडा होय। उसको श्याववर्त्म कहते हैं यह वाताधिक त्रिदोपजन्य है।

८ तीनों दोष कुपित होकर नेत्रके कोयोंको सुजाय देवें, तथा उनमे छिद्र होजाय, उन कोयोंमेसे कमलतंतुके समान भीतरसे पानी झरे इस रोगको बिसवर्त्म कहते हैं।

९ नेत्रकी सफेद काली सन्धियोंमे ताँबेके समान बडी फुन्सी उठे उसको अलजी कहतेहैं।

१० जिसके नेत्रके पलक पृथक् पृथक् होय, तथा जिसके पलक मींचे और खुलें नहीं ऐसे नेत्रके कोए मिले नहीं उसको उक्लिष्टवर्त्म कहते हैं। इसकोही शालाक्यसिद्धांतवाला वातहतवर्त्म कहता है।

नेत्रसंधिगरोग ।

नेत्रसंधिसमुद्भूता नवरोगाः प्रकीर्तिताः ॥ जलस्रावः कफस्रावो रक्तस्रावश्च पर्वणी ॥ १५५ ॥ ॥ पूयस्रावः कृमिग्रन्थिरुपनाह-स्तथालजी ॥ पूयालस इति प्रोक्ता रोगानयनसंधिजाः ॥ १५६ ॥

अर्थ—नेत्रोकी संधिके रोग नौ हैं । जैसे १ जलस्राव २ कफस्राव ३ रक्तस्राव ४ पर्वणी ५ पूयस्राव ६ कृमिग्रंथि ७ उपनाह ८ अलजी और ९ पूयालस । इस प्रकार नेत्रके रोग हैं ।

नेत्रके सफेदबबूलेके रोग ।

तथाशुक्लगता रोगा बुधैः प्रोक्तास्त्रयोदश ॥ शिरोत्पातः शिराहर्षः शिराजालं च शुक्तिकः ॥१५७॥शुक्लार्म चाधिमांसार्म प्रस्तार्य-र्मचपिष्टकः ॥ शिराजापिटिकाचैवकफग्रंथितकोऽर्जुनः ॥१५८ ॥ स्नाय्वर्मचाधिमांसः स्यादिति शुक्लगतागदाः ॥

अर्थ-नेत्रके सफेद भागके ऊपर तेरह रोग होते हैं जैसे १ शिरोत्पात २ शिराहर्ष,

---

१ जिसकी संधिमें पित्तसे पीला गरम जल वहे उसको जलस्राव कहते हैं ।

२ जिसमेंसे सफेद, गाढी और चिकनी राध वहे उसको कफस्राव कहते हैं ।

३ जिस विकारमेंसे विशेष गरम रुधिर वहे, उसको रक्तस्राव कहते है ।

४ नेत्रकी सफेद काली संधियोंमें तांबेके समान छोटी गोल जो फुन्सी होवे और वह फुन्सी दाह होकर पके उसको पर्वणी कहते है ।

५ नेत्रकी संधिमे सूजन होकर पके तथा उसमे राध वहे, उसको पूयस्राव कहते है । यह रोग सान्निपातात्मक है ।

६ जिसके नेत्रके शुक्लभागकी संधिमे और पलकोंकी संधिमें उत्पन्नहुई अनेक प्रकारकी कृमि खुजली और गाँठ उत्पन्न करे और नेत्रकी पलक और सफेदी भागके संधिमें प्राप्त होकर नेत्रके भीतरके भागको दूषित करे, भीतर फिरे, उसको कृमिग्रंथी कहते हैं ।

७ नेत्रकी संधिमे वडी गाँठ होवे, वह थोडी पके, उसमे खुजली वहुत हो, दूखे नहीं उसको उपनाह कहते है ।

८ नेत्रकी सफेद काली संधियोंमें तांबेके समान वडी फुन्सी उठे उसको अलजी कहते हैं ।

९ नेत्रकी संधिमे सूजन होवे और पककर फूटजाय, उसमेंसे दुर्गंधि आवे और राध वहे, तथा तोद (सुईछेदनेकीसी पीडा) होय, उसको पूयालस कहते हैं ।

१० जिसके नेत्रकी नस पीडा सहित अथवा पीडारहित तांबेके समान लाल रंगकी होजाय और वह बरावर अधिकाधिक (जियादहसे जियादह) लाल होजाय इस रोगको शिरोत्पात (सबलवायु) कहतेहैं । यह रोग रक्तजन्य है ।

११ अज्ञानकरके शिरोत्पात (सबलवायु) की उपेक्षा करनेसे शिराहर्षरोग होता है । अर्थात् इलाज नकरनेसे शिराहर्ष रोग होताहै उसमे नेत्रोंसे लाल स्वच्छ ऐसे आंसू गिरे और उस रोगीको नेत्रसे कुछदिखलाई न देवे ।

३ शिराजाल ४ शुक्तिके ५ शुक्लार्म ६ अधिमांसार्म ७ प्रस्तार्यर्म ८ पिष्टक ९ शिराजपिटिका १० कफग्रथितिक ११ अर्जुन १२ स्नाय्वर्म १३ अधिमांस इसप्रकार नेत्रके सफेद भागमें होनेवाले १३ रोग जानने।

नेत्रके काले बबूलेके रोग।

तथा कृष्णसमुद्भूताःपंचरोगाः प्रकीर्तिताः॥ १५९॥ शुद्ध-शुक्रं शिराशुक्रं क्षतशुक्रं तथाजकः॥ शिरासंगश्चसर्वेऽपिप्रोक्ताः कृष्णगतागदाः॥ १६०॥

अर्थ—नेत्रके काले भागमें होनेवाले रोग ५ हैं. जैसे १ शुद्धशुक्र २ शिराशुक्र

---

१ नेत्रके सफेद भागमें शिरा (नस) का समूह जालीके समान होय और वह कठिन तथा रुधिरके समान लाल होवे इसको शिराजाल कहते हैं।

२ नेत्रके सफेद भागमें श्यामवर्ण मांसतुल्य सीपीके समान जो बिन्दु होय उसको शुक्तिक कहतेहैं।

३ नेत्रके शुक्लभागमें सफेद मृदु मांस बहुत दिनमें बढे, उसको शुक्लार्म कहते हैं।

४ नेत्रमें जो मांस विस्तीर्ण, स्थूल, कलेजाके समान (कुछ लाल काला) दीखे उसको अधिमांसार्म कहते हैं।

५ नेत्रोंके सफेद भागमें पतला, विस्तीर्ण, श्यामवर्ण तथा लाल, ऐसा मांस बढे। उसको प्रस्तारिअर्मरोग कहते हैं।

६ कफवायुके कोपसे शुक्लभागमें पिष्ट (पिसा) सा जो मांस बढे उसको पिष्टक कहते हैं, वह मलसे मिले अर्श (बवासीर) के समान होता है।

७ नेत्रके शुक्लभागमें शिरा (नसों) से व्याप्त सफेद फुन्सी होय, उसको शिराजपिटिका कहते हैं। वह कृष्णभागके समीप होती है।

८ नेत्रके सफेद भागमें कांसेके समान कठिन अथवा पानीके बूंदके समान कुछ ऊँची जो गांठ होय उसको कफग्रथितक अथवा बलास कहते हैं।

९ शुक्लभागमें खरगोशके रुधिरके समान जो बिंदु (बूँद) नेत्रमें उत्पन्न होय उसको अर्जुन कहतेहैं।

१० नेत्रमें जो कठिन तथा फैलनेवाला स्रावरहित मांस बढे उसको स्नाय्वर्म कहते हैं।

११ नेत्रके सफेद भागमें लालकमलके सदृश लाल वर्णका और मृदु ऐसा मांस बढता है उसको अधिमांस अथवा रक्तार्म कहते हैं।

१२ नेत्रके काले भागमें अभिष्यंदसे थोडा तुमटीकी पीडायुक्त, शंख, चंद्र, कुंदपुष्प इनके समान सफेद, आकाशके समान पतला जो व्रणरहित शुक्र कहिये फूला होय उसको शुद्धशुक्र कहते हैं, वह सुखसाध्य है।

१३ जिस शुक्रके बीचका मांस गिरजाय इसीसे शुक्रके स्थानमें गढेला हो जाय, अथवा उसके विपरीत पिशितावृत (अर्थात् उसके चारों ओर मांस होय) चंचल कहिये एक ठिकाने न रहे, शिराओंकरके व्याप्त हो बारीक होगयाहो, दृष्टिका नाश करनेवाला, दो पटल कहिये परदोंके भीतर भयाहो, चारों ओरसे लाल हो और बीचमें सफेद और बहुत दिनका शुक्र (फूला) हो इसको शिराशुक्र कहतेहैं, वह असाध्य है।

३ क्षतशुक्र ४ अजक ५ शिरोसंग । इसप्रकार पाच भेद जानने ।

काचविंदुरोग ।

काचंतुषड्विधंज्ञेयं वातात्पित्तात्कफादपि ॥ संनिपाताच्चरक्ताच्च षष्ठं संसर्गसंभवम् ॥ १६१ ॥

अर्थ—वातादिदोष कुपितहो दृष्टिके पटलमें प्राप्त हो काचरोगको प्रगट करते हैं । वह छः प्रकारका है. जैसे १ वातज २ पित्तज ३ कफज ४ सन्निपातज ५ रक्तज ६ संसर्गज ऐसे मोतियाबिंदु छः प्रकारके हैं ।

---

१ नेत्रके काले भागमें शुक्र कहिये फूलासा होजाय और भीतरसे गढासा होय उसमें सुईके छेदके समान छिद्र पडाहुआ देखनेमें आवे, तथा नेत्रोंमेंसे अति गरम और बहुतसा स्राव होवे, इन रोगको क्षतशुक्र कहते हैं । इसमें पीडा बहुत होतीहै ।

२ काले भागमें बकरीकी शुष्क विष्टाके समान, दूखनेवाला लाल हो और गाढा, कुछ कालेसे आंसु बहे उसको अजक कहतेहैं ।

३ नेत्रके कृष्ण भागमें वातादि दोषोंके योगसे चारों ओर सफेद शुक्र (फूला) फैल जावे, उसे सन्निपातजन्य शिरासंग अथवा अक्षिपाकात्यय रोग जानना ।

४ दृष्टिके सर्वपटलोंके भीतर कालिकास्थिके समीप पहले पडदेमें तथा दूसरे पडदेमें वातादि दोष प्राप्तहोकर मनुष्य, नेत्रके आगे अनेक प्रकारके स्वरूप देखे उसको तिमिर कहतेहैं । फिर वही तिमिर कुछदिन रोग दशाको प्राप्त होता है उसको काच (मोतियाबिंदु) कहते हैं ।

५ वादीके काच (मोतियाबिंदु) में रोगीको मलीन, कुछ लाल तिरछी और भ्रमती ऐसी वस्तु दीखे, इसे वातजकाचबिंदु जानना ।

६ जिस मोतियाबिंदुसे रोगीको सूर्य खद्योत (पटबीजना), इंद्रधनुष बिजली और नाचनेवाले मोर तथा सर्व वस्तु नीली दीखे, वह पित्तजकाचबिंदु कहाता है ।

७ चिकनी और सफेद तथा पानीमे कर निकालनेके समान और भारी ऐसा रूप. कफज काचरोगसे दीखे ।

८ अनेक प्रकारके विपरीत (अर्थात् एकके अनेक, दो अथवा अनेकप्रकारके रूप दीखे) हीन अंगके अथवा अधिक अंगके रूप दीखे और ज्योतिःस्वरूपसे सब पदार्थ दीखे, इस काचबिंदुको सन्निपातज जानना ।

९ रक्तज काचबिंदुरोगमे लाल और अनेक प्रकारका तथा अंधकार किंचित् सफेद, काली और पीली ऐसी वस्तु दीखे ।

१० रक्तके तेजसे मिश्रित हुए पित्तसे संसर्गज काचबिंदु होता है इसके योगसे रोगीको दिशा, आकाश और सूर्य ये पीले दीखे उसे सर्वत्र सूर्य ऊगेसे दीखे तथा वृक्षभी तेजस्वरूपसे दीखे, इसको परिम्लायि रोगभी कहते हैं, परिम्लायि पित्तको नील कहते हैं, इस रोगको कोई आचार्य रक्तपित्तसे होता है ऐसा कहते हैं ।

तिमिररोग।

तिमिराणि षडेव स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा ॥
संसर्गेण च रक्तेन षष्ठं स्यात्संनिपाततः ॥ १६२ ॥

अर्थ—नेत्रके पटल (पडदे) वातादि दोषोंसे दुष्ट हो तिमिररोगको प्रगट करते हैं। तिस करके मनुष्य नानावर्ण और विपरीत स्वरूप देखता है। उन दोषोंके लक्षण दृष्टिके पहले पटलमें वातादि दोष जानेसे इस प्राणीको रूपवान् पदार्थ धुंधर २ से दीखें तथा वातादि दोषोंके समान उन पदार्थोंके वर्ण दीखें, अर्थात् वादीसे काजलके समान पित्तसे नीले रंगके, कफसे सफेद रंगके, रुधिरसे लालरंगके और सन्निपातसे अनेक वर्णके दीखते हैं। ऐसे लक्षण सर्व पटलोंमें जानने। दूसरे पडदोमें वातादि दोष जानेसे दृष्टि विह्वल होती है। अर्थात् नेत्रके सामने मच्छर, मुली, बाल, मंडल, जाली, पताका, किरण, कुंडल, वर्षा बादल ये सब अँधेरेके समूह और जालसे देखते हैं। दूरका पदार्थ समीप और समीपका पदार्थ दूर है ऐसा मालूम होवे। बडे यत्नसेभी सुई पिरोनेमें न आवे इत्यादि नेत्रके तीसरे पडदेमे दोष पहुँचनेसे ऊपरके पदार्थ कपडेसे मढेहुयेसे दीखें और नीचेके बिलकुल नहीं दीखे। नाक और कानके विना मुखदीखे इत्यादि। वह तिमिर वात, पित्त, कफ, संसर्ग, रक्त और सन्निपात इनसे प्रगट छः प्रकारका है। इनके लक्षण मोतियाबिंदु जो छः प्रकारके प्रथम लिख आये हैं, उसके समान जानना।

लिंगनाशरोग।

लिंगनाशः सप्तधा स्याद्वातात्पित्तात्कफेनच ॥
त्रिदोषैरुपसर्गेण संसर्गेणासृजा तथा ॥ १६३ ॥

अर्थ—तिमिररोग नेत्रके चतुर्थ पटल (पर्दे) मे पहुँचनेसे संपूर्ण दृष्टिको व्याप्तकर न दीखनेसमान करता है उसको लिंगनाश कहते हैं। वह लिंगनाश १ वातजन्य २ पित्तजन्य ३ कफजन्य ४ त्रिदोषजन्य ५ उपसर्गजन्य ६ संसर्गज और ७ रक्तज इन सात कारणोंसे सातप्रकारका है।

---

१ वातके लिंगनाशमें दृष्टिके ऊपर मोटा काँचके समान लाल मंडल होता है, वह चञ्चल और खरदरा होता है।

२ पित्तसे दृष्टिमंडल किंचित् नीला तथा काचके समान पीला होवे।

३ कफसे भारी, चिकना, कुंदफूलके समान और चंद्रके समान सफेद होय और उसके नेत्रमे हलनेवाले कमलपत्रके ऊपर पानीकी बूँदके समान टेढी तिरछी सफेद बूँद फैलीसी दिखलाई दे।

४ त्रिदोषज लिंगनाशमे तरह तरहके मंडल होय तथा सर्व दोषोंके लक्षण न्यारे न्यारे दीखे।

दृष्टिरोग।

अष्टधा दृष्टिरोगाः स्युस्तेषु पित्तविदग्धकम्॥ अम्लपित्तविदग्धं च तथैवोष्णविदग्धकम्॥ १६४॥ नकुलांध्यं धूसरांध्यं रात्र्यांध्यं ह्रस्वदृष्टिकः॥ गंभीरदृष्टिरित्येते रोगा दृष्टिगताः स्मृताः॥ १६५

अर्थ—दृष्टिमंडलमें जो रोग होते हैं उनको दृष्टिरोग कहते हैं वे १ पित्तविदग्ध २ अम्लपित्तविदग्ध ३ उष्णविदग्ध ४ नकुलांध्य ५ धूसरांध्य ६ रात्र्यांध्य ७ ह्रस्वदृष्टि ८ गभीर ऐसे आठप्रकारके हैं।

---

५ उपसर्गज अर्थात् अभिघातज लिंगनाश दो प्रकारका है. एक निमित्तजन्य और दूसरा अनिमित्तजन्य. तिनमे शिरोभितापकरके (विषवृक्षके फलसे मिले पवनका मस्तकमे स्पर्श होनेसे) होय उसको निमित्तजन्य कहते हैं. इसमे रक्ताभिष्यदके लक्षण होते हैं. देव, ऋषि, गधर्व, महासर्प और सूर्य इनके सन्मुख दृष्टिको लगाकर (टकटकी लगाकर) देखनेसे जिस मनुष्यकी दृष्टि नष्ट होय उसको अनिमित्तज लिंगनाश कहते हैं इस रोगमे नेत्र स्वच्छ दीखते हैं और दृष्टि वैडूर्यमणिके समान स्वच्छ कहिये श्यामवर्ण होय।

६ संसर्गज लिंगनाशमे पित्त दुष्ट हुए रुधिरसे दूषित होनेसे दृष्टिका मंडल लाल और पीला हो जाता है।

७ रुधिरसे दृष्टिमडल मूँगाके समान अथवा लाल कमलके समान लाल होवे।

---

१ पित्त दुष्ट होकर वढनेसे जिस मनुष्यकी दृष्टि पीली होय तथा उसके योगसे उस मनुष्यके सर्व पदार्थ पीले रंगके दीखे, उस दृष्टिको पित्तविदग्ध कहते है।

२ अम्लपित्त करके मनुष्यको रद्द करनेके समय दृष्टिको अभिघात होनेसे सर्व. पदार्थ सफेद रंगके दीखने लगजाते है उस दृष्टि रोगको अम्लपित्तविदग्ध कहते है।

३ तीसरे पटलमे दोष (पित्त) जानेसे दिनमे रोगीको नही दीखे, रात्रिमे शीतलताके कारण पित्त कम होनेसे दीखे इसको उष्णविदग्ध अथवा दिवांध रोग कहते हैं।

४ जिस पुरुषकी दृष्टि दोषोंसे व्याप्त होकर नौलेकी दृष्टिसे समान चमके वह पुरुष दिनमे अनेक प्रकारके रूप देखे, इस विकारको नकुलांध्य कहते हैं।

५ शोक, ज्वर, परिश्रम और मस्तकताप इन कारणोसे पित्त कुपित होकर जिसकी दृष्टिमे विकार होय, उससे उस मनुष्यको सर्व पदार्थ धूँआके रगके दीखे इस रोगको धूसरांध्य, धूमदर्शी अथवा शोकविदग्धदृष्टि कहते है।

६ जो दोष (कफ) तीनो पटलोमे रहे वो नक्तांध (रतौंधा) को उत्पन्न करे वो पुरुष दिनमें सूर्यके तेजमे कफ कम होनेसे देखे, रातको नहीं देखे उसको रात्र्यांध्य वा नक्तांध्य कहते है।

७ दृष्टिके मध्यगत पित्त दुष्ट होनेसे मनुष्यको दिनमे वडे पदार्थ छोटे दीखे. और रात्रिमें अच्छे दीखे उसको ह्रस्वदृष्टि कहते हैं।

८ जो दृष्टि वायुसे विकृत होकर भीतरसे संकुचित होवे तथा उसमें पीडा होवे, उसको गंभीरदृष्टि कहते हैं।

अभिष्यन्दरोग।

अभिष्यन्दाश्च चत्वारो रक्तादोषैस्त्रिभिस्तथा ॥

अर्थ—संपूर्ण नेत्ररोगोके कारणभूत ऐसे अभिष्यंद रोग चार हैं। १ रक्ताभिष्यद २ वाताभिष्यद ३ पित्ताभिष्यद और ४ कफाभिष्यंद।

अधिमंथरोग।

चत्वारश्चाधिमंथाःस्युर्वातपित्तकफास्रतः ॥ १६६ ॥

अर्थ—उस अभिष्यंद रोगकी उपेक्षा करनेसे उससे वात, पित्त, कफ और रक्त इन चार कारणोंसे चार प्रकारके अधिमंथ रोग उत्पन्न हो उनके निस्तोद (चपका) स्तंभ इत्यादि पूर्वोक्त अभिष्यंदोंके लक्षण होते हैं. व कपालसे गिरते हुए प्रतीत हों, नेत्रोंमे कोई धसगया ऐसा मालूम हो. आधामस्तक बहुत दूखे. ये इसके विशेष लक्षण हैं. अधिमंथ वातज होनेसे वातके लक्षण शूलादिक, पित्तज होनेसे पित्तके लक्षण दाहादिक और कफज होनेसे कफके लक्षण खुजली आदि होते हैं। इस अधिमथमें अजनादिक मिथ्या उपचार करनेसे दृष्टि नष्ट होती है। वह प्रकार इसप्रकार है जैसे कफाधिमंथ मिथ्योपचारसे कुपित होनेसे सातदिनमे, रक्ताधिमंथ पांच दिनमें, वाताधिमथ छः दिनमे और पित्ताधिमथ तत्काल दृष्टिनाश करता है।

सर्वाक्षिरोग।

सर्वाक्षिरोगाश्चाष्टौ स्युस्तेषु वातविपर्ययः ॥ अल्पशोथोऽन्यतोवातस्तथा पाकात्ययः स्मृतः ॥ १६७ ॥ शुष्काक्षिपाकश्च तथा शोफोऽध्युपित एवच ॥ हताधिमंथ इत्येते रोगाः सर्वाक्षिसंभवाः ॥ १६८ ॥

---

१ रक्ताभिष्यदसे नेत्रोसे लाल पानी गिरे, नेत्र लाल होय और नेत्रोके ओर पास रेखासी लाल दीखे और जो पित्ताभिष्यदके लक्षण कहे हैं वे सब लक्षण इसमे होवे।

२ वादीसे नेत्र दूखने आये हो उनमे सुई चुभानेकीसी पीडा होय, नेत्रोका स्तंभन (ठहरजाना) रोमांच, नेत्रोंमे रेत गिरनेसमान खटके तथा रूक्ष होय मस्तकमे पीडा हो, नेत्रोसे पानी गिरे परन्तु नेत्र सूखेसे रहें और नेत्रोसे जो पानी गिरे वह शीतल होय।

३ पित्तसे नेत्र दूखने आनेसे उनमे बहुत दाह हो नेत्र पकजाय उनमे शीतल पदार्थ लगानेकी इच्छा हो, नेत्रोसे धुआँ निकले अथवा नेत्रोमे धुआँ जानेकीसी पीडा होय तथा नेत्रोसे अश्रु (आँसू) बहुत पडें और गरम पानी निकले आँख पीलीसी मालूम पडे।

४ कफसे नेत्र दूखने आये हो उसको गरम वस्तु नेत्रोंमे लगानेसे आराम मालूम हो (अर्थात्) नेत्रमे सेक अच्छा मालूम हो तथा नेत्र भारी होय, सूजनहो, खुजली चले, कीचडसे नेत्र दूषित हो और शीतल हो, उनमेसे स्राव होय सो गाढा और बहुत होय।

अर्थ–संपूर्ण नेत्रमें व्याप्त जो रोग होते हैं उनको सर्वाक्षिरोग कहते हैं । वे आठ प्रकारके हैं. जैसे–१ वातविपर्यय २ अल्पशोथ ३ अन्यतोवात ४ पाकात्यय ५ शुष्काक्षिपाक ६ शोफ ७ अध्युषित ८ हताधिमंथ इसप्रकार सर्वाक्षिरोग आठ हैं इसप्रकार सब नेत्ररोग मिलानेसे ९४ होते हैं ।

षंढरोग ।

पुंस्त्वदोषाश्चपंचैव प्रोक्तास्तत्रेर्ष्यकः स्मृतः ॥
आसेक्यश्चैव कुंभीकः सुगंधिः षंढसंज्ञकः ॥ १६९ ॥

अर्थ–पुस्त्वदोष कहिये वीर्यक्षीणताके कारण मनुष्यको नपुसकत्व प्राप्त होता है उसे १ ईर्ष्यक २ आसेक्य ३ कुंभिक ४ सुगंधि ५ षंढ इसप्रकार पाच प्रकारका जानना ।

---

१ वायु क्रमसे कभी भ्रुकुटीमें प्राप्त हो और कभी कभी नेत्रोंमे प्राप्त होकर अनेक प्रकारकी तीव्र पीडा करे उसको वातविपर्यय कहते हैं ।

२ नेत्रोंमे सूजन आकर पकजाय, उनमें आँसू वहे और पके गूलरके समान लाल होंय ये अल्पशोथके लक्षण है यह अल्पशोथ त्रिदोषज है ।

३ घाटी (घार) कान, मस्तक, ठोढी, मन्यानाडी इनमें अथवा इतर ठिकाने स्थित जो वायु भ्रुकुटी (भौंह) वा नेत्रोंमें तोद भेदादि पीडा करे, इसरोगको अन्यतोवात कहते हैं अर्थात् अन्य स्थानोंमें स्थित होकर अन्यस्थानोंमें पीडा करे इसीसे इसको अन्यतोवात कहते हैं ।

४ वातादि दोषोंकरके नेत्रके काले भागपर छर होके सब नेत्र सफेद होजावें और तीव्र वेदना होय उसको पाकात्यय कहते हैं ।

५ नेत्र खुलें नहीं अर्थात् संकुचित होजाँय, जिनकी बाफणी कठिन और रूक्ष होय, जिसके नेत्रोंमें दाह विशेष होय यथार्थ दीखे नहीं, खोलनेमें बहुत दुःख होय उसको शुष्काक्षिपाकरोग कहते हैं । यह रोग रक्तसहित वादीसे होता है ।

६ नेत्रोंमें सूजन आकर पकजाँय, उनमे आँसू बहे और पके गूलरके समान लाल होय । ये लक्षण शोथसहित नेत्ररोगके हैं यह व्याधि त्रिदोषजन्य है ।

७ मध्यमें कुछनीलवर्ण और आसपास लाल भराहो ऐसे सब नेत्र पकजांय और उनमे पीली रंगकी फुन्सी होय, उनमें दाह होकर सूजन होय, तथा नेत्रोंसे पानी झरे यह अम्ल (खटाई) के खानेसे होताहै । इसको अध्युषित वा अम्लाध्युषित कहते हैं ।

८ वातज अधिमंथकी उपेक्षा करनेसे वह नेत्रोंको सुखाय देवे. उस मनुष्यके नेत्रोंमें तोद (सुइंके चुभानेकीसी पीडा) दाहादि भारी पीडा होय यह हताधिमंथनामक नेत्ररोग असाध्य है । इसको दृष्टघुस्रोत्पन्न, दृष्टिनिर्गम तथा सकलाक्षिशोष ऐसे कहते हैं. इस रोगसे नेत्र सूखे कमलसे हो जाते हैं ।

९ जो मनुष्य दूसरेको मैथुन करते देख आप मैथुन करे उसको ईर्ष्यक नपुंसक कहतेहैं, इसका दूसरा पर्यायवाचक नाम दृग्योनि है ।

शुक्ररोग।

शुक्रदोषास्तथाष्टौ स्युर्वातात्पित्तात्कफेन च ॥ कुणपं-चास्रपित्ताभ्यांपूयाभं श्लेष्मपित्ततः ॥ १७० ॥ क्षीणंचवा-तपित्ताभ्यां ग्रंथिलं श्लेष्मवाततः ॥ मलाभं संनिपाताच्च शुक्रदोषा इतीरिताः ॥ १७१ ॥

अर्थ–१ वातजन्य २ पित्तजन्य ३ कफजन्य ४ रक्तपित्तजन्य कुर्णपसंज्ञक ५ कफपित्तजन्य पूयाभ ६ वातपित्तजन्य क्षीण ७ कफवातजन्यग्रंथिल ८ संनिपातजन्यमलाभ ऐसे आठ पुरुषोंके शुक्रधातुके दोष हैं।

---

१० मातापिताके अति अल्पवीर्यसे जो गर्भ रहे वह आसक्यनामके नपुंसक होता है. वह अन्य पुरुषसे अपने मुखमे मैथुन कराकर उसके वीर्यको खाजाय, तब उसको चैतन्यता (अर्थात् लिंग सतर) होवे तब स्त्रीसे मैथुन करे इसका दूसरा नाम मुखयोनि है।

११ जो पुरुष पहले अपनी गुदा भजन करावे जब उसको चैतन्यता प्राप्त हो तब स्त्रीकेविषे पुरुषके समान प्रवृत्त होय उसको कुम्भिक नपुसक कहते हैं. इसका गुदायोनि यह पर्याय शब्द है। इस कुम्भिक नपुंसककी उत्पत्ति ऐसे होती है कि, ऋतुकालमें अल्परजस्क स्त्रीसे श्लेष्मरेतवारे पुरुषके सभोग करनेसे उस स्त्रीका कामदेव शांत नहो, इस कारण उस स्त्रीका मन अन्य पुरुषसे संभोग करनेकी इच्छा करे तब उसके कुम्भिकनामक नपुसक होता है. कोई आचार्य कुम्भिक नपुसकका लक्षण ऐसा कहते हैं कि, जो पुरुप लौंडेबाजी करते हैं. वे पहले स्त्रीके पीछे बैठकर पशूके समान शिथिल लिंगसेही उसकी गुदा भजन करे। इस प्रकार करनेसे जब चैतन्यता प्राप्त हो तब मैथुन करे। इसको कुम्भिकनामक नपुसक कहते हैं।

१२ जो पुरुष दुष्ट योनिमें उत्पन्न होय उसको योनि तथा लिंगके सूंघनेसे चैतन्यता प्राप्त होय उसको सुगंधि वा सौगंधिक तथा नासायोनि कहते हैं।

१३ जो पुरुष ऋतुकालमें मोहसे स्त्रीके सदृश प्रवृत्त होवे अर्थात् आप नीचेसे सीधा होकर ऊपर स्त्रीको चढायकर मैथुन करे। उससे जो गर्भ रहे वह पुरुष स्त्रीकीसी चेष्टा करे और स्त्रीके आकार होय स्त्रीकी चेष्टा करे (अर्थात् स्त्रीके समान नीचे सोकर अन्य पुरुषसे अपने लिंगके ऊपर वीर्य पतन करावे)।

---

१ वादीसे शुक्र झागवाला, सूखा, कुछ गाढा और थोडा तथा क्षीण हो यह गर्भके अर्थका नहीं है।

२ पित्तसे दूषित शुक्र नीला, पीला अत्यन्त गरम होता है उससे बुरी बास आवे और जब निकले तब लिंगमें दाह होय।

३ कफसे शुक्र (वीर्य) शुक्रवहा नाडियोके मार्ग रुकनेसे अत्यन्त गाढा होजाता है।

४ कुणप शुक्र दोषमें शुक्रकी गंध मुर्दाके सदृश आवे।

५ पित्त कफसे दूषित शुक्रमें राधकीसी बास आवे।

स्त्रियोंके आर्तवदोष ।

अथ स्त्रीरोगनामानि प्रोच्यन्ते पूर्वशास्त्रतः ॥ अष्टावार्तवदोषाः स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा॥१२७॥ पूयाभं कुणपं ग्रंथि क्षीणं मलसमंतथा ॥

अर्थ–स्त्रियोका आर्तव कहिये ऋतुसमयका रुधिर वहता है जिसको रज कहते हैं उसके दोष आठ प्रकारके हैं जैसे–१ वातज २ पित्तज ३ कफज ४ पूयाभ ५ कुणप ६ ग्रंथी ७ क्षीण और मलसम इसप्रकार आर्तवदोष आठ प्रकारके हैं ।

प्रदररोग ।

तथाच रक्तप्रदरं चतुर्विधमुदाहृतम् ॥ १७२ ॥
वातपित्तकफैस्त्रेधा चतुर्थं संनिपाततः ॥

अर्थ–रक्तप्रदरके १ वातजन्य २ पित्तजन्य ३ कफजन्य और ४ संनिपातजन्य इसप्रकार चार भेद हैं ।

---

६ पित्तवादीसे शुक्र क्षीण होजाता है ।

७ कफवादीसे शुक्र गाठदार होता है ।

८ सनिपातसे दूषित हुए शुक्रमे सव दोषोंके लक्षण होते हैं और पीडा होय तथा उसमे मूत्र और विष्ठाकीसी वास आवे ।

---

१ आर्तव अर्थात् स्त्रियोके यौवनमे महीनेकी महीने जो योनिके द्वारा रज निकलता है सो आठ प्रकारके दोष वात, पित्त, कफ, रक्त, द्वंद्व और सन्निपात इन करके दुष्ट होनेसे गर्भ धारणके अयोग्य होता है तिन तिन दोषोके अनुसार शुक्र दोषोके लक्षण जानलेना ।

२ विरुद्ध मद्यसेवन, अजीर्ण, गर्भपात अतिमैथुन, अत्यंत भोजन, अत्यंत बोझेका उठाना तथा दिनमे सोना इत्यादिक सर्वकारणोकरके स्त्रियोका रज दुष्ट होकर प्रवाह वहै उसको प्रदर कहते हैं, उसके पूर्वरूप ये हैं अगोका टूटना, पीडा, दुर्बलता,ग्लानि, मूर्च्छा, प्यास, दाह, प्रलाप, देहमे पिलास, नेत्रोंमे तद्रा और वातजन्य रोग इत्यादि उपद्रव होते हैं ।

३ वातसे प्रदर रूक्ष, लाल, झागसंयुक्त मांसके और सफेद पानीके समान थोडा वहै उसमे वांदीकी आक्षेपकादि पीडा होती है ।

४ पित्तसे किंचित् पीला, नीला, काला, लाल, गरम ऐसा प्रदर वहै उसमें दाह चिमचिमादि पीला होय तथा उसका वेग अत्यत होय ।

५ कफसे आमरस (कचा रस) सयुक्त, चिकना, किंचित् पीला, मांसके धुले जलके समान स्राव होय इसको श्वेतप्रदर अथवा सोमरोग कहते हैं ।

६ जो प्रदर शहद, घृत, हरिताल और मज्जा इनके रगके समान तथा मुर्दाकी दुर्गंधियुक्त होय इसको त्रिदोषज प्रदर जानना वह असाध्य है अर्थात् इसकी वैद्य चिकित्सा न करे ।

योनिरोग।

विंशतिर्योनिरोगाःस्युर्वातपित्तकफादपि ॥ १७४ ॥ संनिपा-
ताच्च रक्ताच्चलोहितक्षयतस्तथा ॥ शुष्काचवामिनीचैव षंढी-
चांतर्मुखीतथा ॥ १७५ ॥ सूचीमुखी विप्लुताच जातघ्नी च
परिप्लुता ॥ उपप्लुता प्राक्चरणा महायोनिश्चकर्णिका॥१७६॥
स्यान्नंदा चातिचरणा योनिरोगा इतीरिताः ॥

अर्थ–१ वातला २ पित्तला ३ श्लेष्मला ४ सान्निपातजा ५ रक्तजा ६ लोहितक्षया ७ शुष्का ८ वामिनी ९ षंढी १० अंतर्मुखी ११ सूचीमुखी १२ विप्लुता १३ पुत्रघ्नी १४ परिप्लुता १५ उपप्लुता १६ प्राक्चरणा १७ महायोनि १८ कार्णिका १९ नंदा और २० अतिचरणा ऐसे बीस प्रकारके योनिरोग हैं।

---

१ जो योनि कठोर स्तब्ध होकर शूलतोदयुक्त होवे उसको वातला कहते हैं।

२ जो योनि दाह, पाक, ज्वर आदि पित्तके लक्षणोसे युक्त होय और उसमेंसे नीला, पील काला, आर्तव (रज) निकले उसको पित्तला कहते है।

३ जो योनि बहुत शीतल और सेमरके गोंदके समान चिकनी होय तथा उसमे खुजली चले उसको श्लेष्मला कहते हैं।

४ जिस योनिमे वात, पित्त, कफ इन तीनोके लक्षण मिले उसको सान्निपातजा कहते हैं।

५ जो योनि स्थानभ्रष्ट होय, वह बडे कष्टसे बालकको प्रसूत करे उसको रक्तजा वा प्रस्रंसिनी कहते हैं. जिस योनिका अग बाहर निकल आवे और इसे विमर्दित करनेसे प्रसव योग नही होता है।

६ जिस योनिसे दाहयुक्त रुधिर बहे उसको लोहितक्षया कहते हैं।

७ जिस योनिका आर्तव नष्ट हो उसको शुष्का अथवा वंध्या कहते हैं।

८ जिसमेंसे रजोयुक्त शुक्रवायु बराबर बहे उसको वामिनी कहते हैं।

९ जो योनि आर्तवसे रहित रहती है उस स्त्रीके स्तन नही होते। और मैथुनके समय जिस योनिका खरदरा स्पर्श मालूम होय उसको षंढी कहतेहै।

१० बडे लिंगवाले पुरुषको तरुणस्त्रीके साथ मैथुन करनेसे उस स्त्रीके योनिके बाहर दोनो तरफ अंडकोशके समान मासकी दो गाँठ उत्पन्न हो उस योनिको अंतर्मुखी कहते हैं।

११ जिस योनिका छिद्र सुईके अग्रभागके समान सूक्ष्म होता है उसको सूचीमुखी कहते हैं।

१२ जिसमें निरतर पीडा हो उसको विप्लुता कहते है।

१३ जिस योनिमे रुधिर क्षय होनेसे गर्भ न रहे उसको जातघ्नी वा पुत्रघ्नी कहतेहैं।

१४ जिसके मैथुन करनेमे अत्यंत पीडा होय उसको परिप्लुता कहतेहैं।

१५ जिस योनिसे झागसे मिला आर्तव (रज) ऊपरके भागमे बडे कष्टसे उतरे उसको उप-प्लुता कहते हैं।

योनिकंदरोग ।

चतुर्विधं योनिकंदं वातपित्तकफैस्त्रिधा ॥ १७७ ॥ चतुर्थं संनिपातेन-

अर्थ-योनिकंद[1] रोग १ वातज[2] २ पित्तज[3] ३ कफज[4] और ४ सन्निपातज[5] ऐसे योनिकंद-रोग चार प्रकारका है ।

गर्भके रोग ।

तथाष्टौ गर्भजा गदाः ॥ उपविष्टकगर्भःस्यात्तथा नागोदरः स्मृतः ॥ १७८ ॥ मक्कल्लो मूढगर्भश्च विष्टंभो गूढगर्भकः ॥ जरायुदोषो गर्भस्य पातश्चाष्टमकः स्मृतः ॥ १७९ ॥

अर्थ-गर्भसंबधी रोग आठ प्रकारके हैं. जैसे- १ उपविष्टकगर्भ[6] २ नागोदर[7]

---

१६ जो योनि थोडे मैथुनसे लिंगसे पहले स्रवे उसको प्राक्चरणा कहते हैं । उसमें गर्भ धारण नहीं होता है ।

१७ जिस योनिका मुख निरंतर फटारहे उसको महायोनि वा विवृता कहते हैं ।

१८ जिसमें कफ रुधिर करके कर्णिका (कमलके भीतर जो होता है ऐसा मांसकंद) होय उसको कर्णिका कहते हैं ।

१९ जो योनि अति मैथुनसेभी संतोषको प्राप्त नहीं होवे उसको नदा कहते हैं ।

२० जो योनि बहुवार मैथुल करनेसे पुरुषके पीछे द्रवे (छूटे) उसको अतिचरणा योनि कहते हैं. यह कफजनित रोग है ।

---

१ दिनमें सोनेसे, अतिक्रोध, अतिशय परिश्रम, अत्यत मैथुन करनेसे और योनिमें नख आदिसे क्षत पडनेसे, वातादिक दोष कुपित होनेसे योनिमें संतराके आकारका राधसे मिला ऐसा मांसका गोला होता है उसको योनिकंद कहते हैं ।

२ वादीसे योनिकद रूक्ष, विवर्ण और तनाहुआ ऐसा होता है ।

३ पित्तसे योनिकंद लाल, दाह और ज्वर इनकरके युक्त होता है ।

४ कफसे योनिकंद नीला और कड्डयुक्त होता है ।

५ संनिपातज योनिकंद वात, पित्त, कफ, इनके लक्षणोसे युक्त होता है ।

६ स्त्रीको गर्भ रहनेके पश्चात् विदाही और तीक्ष्ण पदार्थ खानेसे देहमें गरमी बढती है उससे योनिके द्वारा रक्तस्राव होता है । रक्तस्राव होनेसे गर्भ वढता नहीं और पेटमें किंचित् हले उसको उपविष्ट गर्भ कहते हैं ।

७ शुक्र धातु और आर्तव इनका संयोग होते समय वायु उस गर्भका आकार सर्पके सदृश करदे उसको नागोदर कहते हैं । यह गर्भ निर्वल होकर पडता है अथवा पेटमेंही नष्ट होजाता है ।

३ मक्कल ४ मूढगर्भ ५ विष्टंभ ६ गूढगर्भ ७ जरायुदोष और ८ गर्भपात ऐसे आठ प्रकारके गर्भपात रोग हैं।

स्तनरोग।

पंचैवस्तनरोगाःस्युर्वातात्पित्तात्कफादपि ॥ संनिपातात्क्षताच्चैव तथा स्तन्योद्भवा गदाः ॥ १८० ॥बालरोगेषु गदिताः—

अर्थ—स्तनरोग १ वातजन्य २ पित्तजन्य ३ कफजन्य ४ सन्निपातजन्य और

---

१ माताके मानसिक तथा आगतुक दुःखसे प्रसूत होनेके प्रथम वायु कुपित होकर कूखमे शूल उत्पन्न करके गर्भको मारदे। इसको गर्भमक्कल कहते हैं। और प्रसूतिके अनन्तर वायु कुपित होकर योनिसे रुधिर, जाल आदि जो गिरतेहैं उनको रोककर ऊपर जाके हृदय, वस्ति, मस्तक और कूखमे शूल उत्पन्न करे इसको प्रसूतिमक्कल कहतेहैं। यह योनिके सकोच और घोर ऊर्ध्व श्वासको उत्पन्न करके नपुंसकभई स्त्रीको मारदेताहै।

२ मूढ (कुंठित गति) वायु गर्भको मूढ (टेढा) करदेताहै और योनि तथा पेटमे शूल उत्पन्नकरे और मूत्रोत्संग (धीरे धीरे पीडासहित मूत निकलना) करे, इसको मूढगर्भ कहते हैं। इस मूढगर्भकी आठप्रकारकी गति होती है। विगुण वायुसे गर्भ विपरीत (टेढा) होकर अनेक प्रकार करके योनिके द्वारमे आयकर अडजाताहै. १ कोई गर्भ मस्तकसे योनिके द्वारको वंद करदेता है, २ कोई पेटसे योनिके मार्गको रोक देय, ३ कोई शरीरके विपरीतपनसे योनिके मार्गको रोकदेय, ४ कोई एक हाथसे योनिके मार्गको रोकदेय, ५ कोई दोनो हाथोंको बाहर निकालकर योनिके द्वारको रोकदे, ६ कोई गर्भ तिर्छा होकर योनिके मार्गको रोकदे, ७ कोई गर्भ मन्यानाडीके मुडनेसे नीचेको मुख होय वह योनिके द्वारको रोकदे ८ कोई गर्भ पार्श्वभग (पसवाडे भग) होनेसे योनिके द्वारको रोक देय इस प्रकारसे मूढगर्भकी आठ गति जाननी।

३ जो स्त्री गर्भिणी होनेसे पश्चात् अकालमे भोजन करे और रूक्षादि पदार्थ खावे उसके गर्भको वायु कुपित होकर सुखायदेहै उसकरके उस स्त्रीकी कूख वडी नहीं दीखती वह गर्भ वायुसे पीडित होकर उतनेका उतनाही रहे वढे नहीं इसको विष्टभगर्भ कहते हैं।

४ गर्भ रहकर वढे नही और कुछ कालसे पेटमेही जीर्ण होजाय उसको गूढगर्भ कहते हैं।

५ गर्भशय्यामे गर्भके वेष्टनके अर्थ जरायु (झिल्ली) रहती है, उसके दोषसे जो गर्भको विकार होता है उसको जरायुदोष कहते हैं।

६ अभिघात (चोट) विषमाशन (विषम भोजन) पीडनादिक इन कारणोसे जैसे पकाहुआ फल वृक्षसे चोट लगनेसे क्षणभरमे गिरजाता है, इसीप्रकार गर्भ अभिघातादि कारणोसे गिरता है, चौथे मासपर्यन्त गर्भ पतली अवस्थामे होनेसे जो स्रवे उसे स्राव कहते हैं और पांचवे छट्टे महीने पर्यंत शरीर वनने ऊपर जो गर्भ निकले उसे गर्भपात कहते हैं।

७ वातादिदोष गर्भिणी अथवा प्रसूता स्त्रीके सदुग्ध अथवा अदुग्ध स्तनोमे प्राप्तहो मांस रक्तको दुष्ट करके स्तनरोग उत्पन्न करे।

८ वादीसे होनेवाले स्तनरोगमे शूल, तोद आदि पीडा होती है।

९ पित्तसे ज्वर, दाह आदिक होते हैं।

१० कफसे थोडी पीडा और खुजली होय।

११ सनिपातज स्तनरोगमे तीनो दोषोंके लक्षण होते हैं।

५ क्षतजन्य ऐसे पाच हैं। स्त्रियोंके दूधसबंधी रोग बालरोगप्रकरणमें कहे हैं।

स्त्रीदोष।

स्त्रीदोषाश्च त्रयः स्मृताः॥ अदक्षपुरुषोत्पन्नः सपत्नीविहितस्तथा॥ १८१॥ दैवाज्जातस्तृतीयस्तु-

अर्थ–स्त्रियोको दुःख उत्पन्नकरनेवाले तीन दोष हैं जैसे—१ अदक्षपुरुषोत्पन्न २ सपत्नीविहित ३ दैविक इसप्रकार स्त्रियोंमे तीन दोष हैं।

प्रसूतिरोग।

तथाच सूतिकागदाः॥ ज्वरादयश्चिकित्स्यास्ते यथादोषं यथाबलम्॥ १८२॥

अर्थ–बालक होनेसे पश्चात् ज्वरादिरोग उत्पन्न होते हैं उनको प्रसूतके रोग कहते हैं उन रोगोका दोषानुसार बलाबल विचार चिकित्सा करनी।

बालरोग।

द्वाविंशतिर्बालरोगास्तेषु क्षीरभवास्त्रयः॥ वातात्पित्तात्कफाच्चैव दंतोद्भेदश्चतुर्थकः॥१८३॥ दंतघातो दंतशब्दोऽकालदंतोऽहिपूतनम्॥मुखपाको मुखस्रावो गुदपाकोपशीर्षके॥१८४॥ पार्श्वारुणस्तालुकंठो विच्छिन्नं पारिगर्भिकः॥ दौर्बल्यं गात्र-

---

१ अभिघात (चोट) आदिके लगनेसे स्तनमें सूजन उत्पन्न होती है। उसमें व्रण पडजावे तब वातादिकोके लक्षण होते हैं. उसको क्षतज स्तनरोग कहते है।

२ जो पुरुष स्त्रीके कामदेवकी शांति करनेमे समर्थ नहीं हो और मूर्ख होय, तथा व्यवहारको नें जाने ऐसा पति होनेसे जो सताप होता है उसकरके जो रोग होय, उसको अदक्षपुरुषोत्पन्न स्त्रीरोग कहते हैं।

३ जिस स्त्रीके सपत्नी (सौत) होवे उसको अपने पतिकी प्रीति दूसरी स्त्रीके ऊपर होनेके दुःखसे जो रोग होता है उसको सपत्नीविहित स्त्रीरोग कहते हैं।

४ अपने पतिका मरण होनेसे उसके साथ सती होनेकी इच्छा जो करे उसकी इच्छा निष्फल होनेसे शोकादिकन करके जो रोग होता है उसको दैविक स्त्रीरोग कहते हैं।

५ जिस स्त्रीके बालक प्रकट होचुका हो ऐसी स्त्रीके मिथ्या उपचार करनेसे दोषजनक अन्नपानके सेवन करनेसे कोपके करनेसे अथवा अजीर्णपर भोजनादिक करनेसे प्रसूतिरोग होता है, उसमे ज्वर, अतिसार, सूजन, शूल, अफरा और बलक्षय तथा कफवातजन्य रोगमे उत्पन्न होनेवाले तंद्रा अन्नद्वेष और मुखसे पानीका गिरना आदि विकार अशक्तता, मंदाग्नि ये होते हैं इन सब ज्वरादिकोको प्रसूतिरोग कहतेहैं इन सबमे एक रोग प्रधान होता है और बाकीके उपद्रव कहलातेहैं।

शोषश्च शय्यामूत्रं कुकूणकः ॥१८९॥ रोदनं चाजगल्ली स्यादिति द्वाविंशतिः स्मृताः ॥

अर्थ—बालकोंके जो रोग होतेहैं उनको बालरोग कहते हैं। वे रोग २२ बाईस है तिनमें स्त्रीके स्तनसंबंधी दूध दुष्ट होनेसे उत्पन्न होनेवाले १ वातजन्य २पित्तजन्य और ३ कफजन्य ऐसे तीन प्रकारके हैं।

४ दंतोद्भेद ५ दतघात ६ दंतशब्द ७ अकालदंत ८ अहिपूतनरोग ९ मुखपाक १० मुखस्राव ११ गुदपाक १२ उपशीर्षक १३ पार्श्वारुण १४ तालुकण्ठ १५ विच्छिन्न

१ जो बालक वातदूषित दूधको पीता है उसके वातके रोग होते हैं उसका शब्द क्षीण हो जाय, शरीर कृश होय और मलमूत्र तथा अधोवायु नहीं उतरे।

२ जो बालक पित्तदूषित दूधको पीवे उसके पसीना आवे, मल पतला होजाय, कामलारोग होय, तथा पित्तके औरभी रोग होंय (प्यासका लगना, सर्वांगमे दाह आदि अनेक रोग होंय,)।

३ जो बालक कफदूषित दूधको पीवे उसके मुखसे लार बहुत गिरे, तथा कफके रोग होंय (निद्रा आवे, अंग भारी होय, सूजन होय, वमन होय, खुजली चले)।

४ बालकोंके प्रथम दाँत उत्पन्न होते समय ज्वर, अतिसार, खाँसी, मस्तकमें पीडा, वमन, अशक्तता इत्यादि उपद्रव होते हैं, उस रोगको दंतोद्भेद कहते हैं।

५ सातवे वा आठवे वर्षमे बालकके दाँत गिरते हैं उस समय.जो ज्वरादि उपद्रव होते हैं उस रोगको दंतघात कहते हैं।

६ निद्रामें जो बालक दाँतसे दाँत घिसके बजाता है उसको दतशब्द कहते हैं।

७ जिस बालकके दाँत जिस कालमें गिरते हैं उसके प्रथमही गिरे उसको अकालदत कहते हैं।

८ बालकके मलमूत्र करनेके अनंतर गुदाके न धोनेसे अथवा पसीना आनेसे तथा धोनेके अनंतर रुधिर कफसे खुजली उत्पन्न होय तदनंतर खुजानेसे शीघ्र फोडा उत्पन्न होय और उसमे स्राव होय. पीछे ये सब मिलकर इस भयंकर व्याधिको प्रगट करे. इसको अहिपूतन कहते हैं यह रोग ग्रथांतरमें क्षुद्ररोगोंमें कहागया है परन्तु यह रोग बालकोंके होता है अतएव इसको बालरोगोंमें कहा है। यह रोग माताके दुष्ट दूधके पीनेसे बालकके होता है।

९ बालकका मुख पकजावे उसको मुखपाक कहते हैं।

१० बालकके मुखमेंसे लार बहे उसको मुखस्राव कहते हैं।

११ बालककी गुदा पके उसको गुदपाक कहते हैं।

१२ बालकके कपालमें व्रण होवे, उससे ज्वर आदि होता है उसको उपशीर्षक कहते हैं।

१३ बालकके भीतर त्रिदोषसे महाभय विसर्परोग होताहै, वह दो प्रकारका १ शीर्षज २ बस्तिज, जो शखभागसे लेकर हृदयतक बडे वेगसे दुःख देता है उसको शीर्षज कहते हैं. उसमे मुख और तालुए बाह्यप्रदेशमें लालकमलके सदृश लाल होते हैं और हृदयसे गुदातक वेगसे दुःख देता है इसको बस्तिज कहते हैं उसमे बस्ति और गुदा लाल कमलके समान लाल होय इसीको पार्श्वारुण कहते हैं।

१६ पारिगर्भिक १७ दौर्बल्य १८ गात्रशोष १९ शय्यामूत्र २० कुकूणक २१ रोदन २२ अजगल्ली ऐसे सब बाईस रोग है ।

बालग्रह ।

तथा बालग्रहाः ख्याता द्वादशैव मुनीश्वरैः ॥ १८६ ॥ स्कंदग्रहो विशाखः स्यात्स्वग्रहश्च पितृग्रहः ॥ नैगमेयग्रहस्तद्वच्छकुनिः शीतपूतना ॥ १८७ ॥ मुखमंडनिका तद्वत्पूतना चांधपूतना ॥ रेवती चैव संख्याता तथा स्याच्छुष्करेवती ॥

अर्थ—बालग्रह १२ बारह प्रकारके हैं जैसे १ स्कंदग्रह २ विशाखग्रह ३ स्वग्रह

---

१४ बालकके तालुएमें जो मांस होता है, उससे कफ कुपित होनेसे तालु काँटेके समान खरदरा होवे उसको तालुकंटक कहते हैं ।

१५ बालकके तालुएमें घाव पडनेसे उसको स्तनपान करनेमें कष्ट होवे, पतला मल निकले प्यास बहुत लगे, नेत्र और कण्ठ इनमें विकार होवे, मन्यानाडी धरे नहीं दूधकी रद्द करदे, उसको विच्छिन्नरोग कहते हैं ।

---

१ बालकके गर्भिणी माताका दूध पीनेसे खाँसी, मंदाग्नि, वमन, तंद्रा, अरुचि, कृशता और भ्रम ये होय और उसके पेटकी वृद्धि होय, इस रोगको पारिगर्भिक अथवा परिभव ऐसे कहते हैं, इस रोगमें अग्निदीपनकर्ता औषधि बालकको देना चाहिये ।

२ जिस दोष करके देह दुर्बल (बलरहित) होवे उसको दौर्बल्य कहते हैं ।

३ जिस दोषसे बालकके अंग सूख जाते हैं उसको गात्रशोष कहते हैं ।

४ बालक वातादि दोषोंकरके शय्यामेंही मूतदे उसे ज्ञाननहीं रहे उसको शय्यामूत्र कहते हैं ।

५ कुकूणक यह रोग बालकोंके दूधके दोषसे होता है । इस रोगके होनेसे बालकके नेत्र खुजावे और पानी बहे । नेत्रोंमे कीचड आनेसे वह ललाट नेत्र और नाकको रगडे धूपके सामने न देखा जाय और उसके नेत्र खुले नहीं । इसको लौकिकमें कोथस्राव कहते हैं, यह रोग बालकोंकेही होता है ।

६ बालक थोडा वा बहुत रोनेलगे तब युक्तिकरके रोगके अनुसारसे बडा अथवा छोटारोग जानना इसको रोदन कहते हैं ।

७ बालकके कफवातसे चिकनी, त्वचाके वर्णवाली, गाँठसीबँधी, पीडारहित, तथा मूँगके सदृश जो पिडिका होय उसको अजगल्लिका कहते हैं ।

८ स्कंदादिक बारह ग्रहोंसे ग्रहीत बालकके ये सामान्य लक्षण होते हैं । जैसे कभी क्षणभरमें बालक विह्वल होजाय, कभी क्षणभरमें डरे, रोवे, नख और दाँतोंसे अपने शरीर और माताको खसोटे, उपरको देखे, दाँतोंको चबावे, किलकारी मारे, जँभाईलेय, (भौंह) को तिर्छी धरे, दाँतोंसे होठोंको खाय और वारंवार मुखसे झाग डाले । वह अत्यंत क्षीणहोय, रात्रिमें सोवे नहीं, देहमें सूजन होय, मल पतला होय और स्वर बैठ जाय । उसके देहमेंसे रुधिर मासकी वास आवे, जितना पहिले खाताहोय उतना नहीं खाय, ये सामान्यग्रहव्याप्त बालकके लक्षण हैं ।

४ पितृग्रह ५ नैगमेय ६ शकुनि ७ शीतपूतना ८ मुखमंडनिका ९ पूतना १० अन्धपूतना ११ रेवती १२ शुष्करेवती ऐसे बारह बालग्रह जानने।

अनुक्तरोगोंका संग्रह।

तथा चरणभेदास्तु वातरक्तादिकाश्च ये॥ १८८॥ द्विचत्वारिंशदुक्तास्ते रोगेष्वेव मुनीश्वरैः॥ द्विषष्टिर्दोषभेदाः स्युः सन्निपातादिकाश्च ये॥ तेऽपि रोगेषु गणिताः पृथक्प्रोक्ता न ते क्वचित्॥ १८९॥

अर्थ—वातरक्त, पाद, सुप्तिपाद, स्तंभ, पाक, तथा फूटन इत्यादि पैरोंके रोग किसी आचार्यने बियालीस प्रकारके कहे हैं। उसी प्रकार सन्निपातादिक जो बासठ प्रकारके

---

९ बालकके एक नेत्रसे पानी गिरे और अंगमें स्राव (कहिये पसीना) बहे एक ओरका अंग फडके तथा थरथर काँपे, वह बालक आधी दृष्टिसे देखे, मुख टेढा होजाय, रुधिरकीसी दुर्गंध आवे वह बालक दाँतोंको चबावे, अंग शिथिल होजाय, स्तनको नहीं पीवे और थोडा रोवे, ये स्कन्दग्रह लगे बालकके लक्षण हैं।

१० विशाख ग्रहकरके पीडित बालकके ज्वर, ऊर्ध्वदृष्टिआदिक लक्षण होते हैं।

११ बालक बेसुधि होय, मुखसे झाग डाले, जब होस हो तब रोवे, उसके देहमें राधसे मिले रुधिरकीसी दुर्गंधि आवे इन लक्षणों करके स्वग्रहगृहीत बालक जानना। इस स्वग्रहको स्कन्दापस्मारभी कहते हैं।

---

१ पितृग्रहसे पीडित बालकके ज्वर, पसीना, दाह आदि उपद्रव होते हैं।

२ वमन, कफ, कंठ मुखका सूखना, मूर्छा, दुर्गंधि, ऊपरको देखे, दाँतोंको चबावे, इन लक्षणोंसे नैगमेय ग्रहकी बाधा जाननी।

३ शकुनि ग्रहसे पीडित बालकके अंग शिथिल होय, भयसे चकित होय, उसके अंगमे पक्षीके अंगके समान बास आवे, घावहो उसमेंसे लस बहे, सब अंगोंमे फोडा उत्पन्न होय और वह पके तथा दाह होय।

४ शीतपूतना ग्रहकी पीडासे बालकके मुखकी कांति क्षीण होजाय, उसके नेत्ररोग होय, देहमे दुर्गंधि आवे, वमन होय और दस्त होय।

५ मुखमंडनिका ग्रहकी पीडासे बालकके मुखकी कांति सुन्दर होय और देहकी कांति सुन्दर होय शिरासे बँधा देह होजाय, उसके देहमें मूत्रकीसी दुर्गंधि आवे वह बालक बहुत भक्षण करे।

६ पूतना ग्रहकी पीडासे बालकको दस्त, ज्वर, प्यास होय, टेढी दृष्टिसे, देखे, रोवे, सोवे नहीं, व्याकुल होय शिथिल होजाय ये लक्षण होते हैं।

७ अन्धपूतना ग्रहकी पीडासे बालकके वमन होय, खाँसी, ज्वर, प्यास, चर्बीकीसी दुर्गन्ध, बहुत रोना, दूध पीवे नही, अतिसार ये लक्षण होते हैं।

८ रेवती ग्रहसे पीडित बालकके अंगमे घाव और फोडे होय उनमेंसे रुधिर बहे, उनमेंसे कीचकीसी बास आवे, दस्त होय, ज्वर होय, अंगमे दाह होय।

९ शुष्करेवती ग्रहसे पीडित बालकके ज्वर, शूल, अजीर्ण, मस्तकमे पीडा, मुख और हृदय इनका शोप ये लक्षण होते हैं।

वातादिदोषोंके भेद कहे हैं वे ऋषियोने कहीं भी पृथक् नहीं कहे किन्तु उनकी गणना अनुक्रमसे वादरोगोंमें तथा वातव्याधिमेही की है।

पंचकर्मोंके मिथ्यादि योगसे होनेवाले रोग।

हीनमिथ्यातियोगानां भेदैः पंचदशोदिताः॥
पंचकर्मभवा रोगा रोगेष्वेव प्रकीर्तिताः॥ १९०॥

अर्थ–१ वमन २ विरेचन ३ निरूहणबस्ती ४ अनुवासनबस्ती और ५ नस्य ये पांचकर्म उत्तरखण्डमें कहे हैं। इन पांचकर्मोंमे जिसका हीनयोग मिथ्यायोग किं वा अतियोग होवे तो वे कर्म इन तीन कारणोसे तीन प्रकारके रोग उत्पन्न करते हैं ऐसे पांचोके मिलानेसे १५ पंद्रह होते हैं उनका अन्तर्भाव उक्त रोगोमेंही जानना।

स्नेहादिकोंसे होनेवाले रोग।

स्नेहस्वेदौ तथा धूमो गंडूषोऽजनतर्पणे॥
अष्टादशैतज्जाः पीडास्ताश्च रोगेषु लक्षिताः॥ १९१॥

अर्थ–१ स्नेहपान २ स्वेद विधि ३ धूमपान ४ गंडूष ५ अंजन ६ तर्पण इन छःमेंसे प्रत्येकके हीनयोग मिथ्यायोग और अतियोग इन तीन भेद करके अठारह भेद होते हैं और उनसे जो होनेवाले रोग हैं वे भी सब उक्त रोगोंमें संगृहीत किये गये हैं।

---

१ औषधादिको करके रद्द करानेके प्रयोगको वमन कहते हैं।
२ औषधादिको करके दस्त करानेके प्रयोगको विरेचन कहते हैं।
३ स्नेहादि औषधसे गुदामे पिचकारी मारनेके प्रयोगको निरूहणवस्ति कहते हैं।
४ अनुवासनवस्तिभी निरूहण वस्तिके सदशही होती है।
५ नाकमें औषध डालनेके प्रयोगको नस्य कहते हैं।
६ कहे हुए प्रमाणसे कम प्रमाणका उपयोग करनेको हीनयोग कहते हैं।
७ प्रमाणसे रहित उपयोग करनेको मिथ्यायोग कहते हैं।
८ अधिक प्रमाणसे उपयोग करनेको अतियोग कहते हैं।
९ स्नेहपान तैल घृत आदि स्निग्ध पदार्थ पीनेके प्रयोगको स्नेहपान कहते हैं।
१० अगको पसीना लानेके प्रयोगको स्वेदविधि कहते हैं।
११ गुडगुडी हुक्का आदिमे औषध डालके पीनेके प्रयोगको धूमपान कहते हैं।
१२ कषाय और रसादिकोंसे कुरला करनेके प्रयोगको गडूषविधि कहते हैं।
१३ नेत्रमे औषध डारनेके प्रयोगको अजनविधि कहते हैं।
१४ औषधादि करके धातुओंकी वृद्धि करनेके विषयक जो प्रयोग करते हैं उसको तर्पण कहते हैं, अथवा नेत्रकी तृप्ति करनेके प्रयोगको तर्पण कहते हैं।

शीतादिकोंसे होनेवाले रोग।

शीतोपद्रव एकःस्यादेकश्चोष्णोपतापकः ॥
शल्योपद्रवएकश्च क्षाराच्चैकःस्मृतस्तथा ॥ १९२ ॥

अर्थ—अत्यंत सरदीके योगकरके मनुष्यको ठंडकका उपद्रव होवे वह १ अत्यंत गरमीसे मनुष्यके उष्णताका उपद्रव होवे वह २ शल्य कहिये नख केश, काँटा, खोवरा, हाड, सींग इत्यादिक पदार्थ एक साथ पेटमें जानेसे जो रोग होवे उसको शल्य कहते हैं वह और ३ तीक्ष्णक्षारादिकसे पेटमे अथवा बाह्यस्पर्शकरके जो उपद्रव होवे वह इस प्रकार ४ प्रकारके उपद्रव वैद्यको जानने चाहिये।

विषरोग।

स्थावरं जंगमं चैव कृत्रिमं च त्रिधा विषम् ॥ तेषां च काल-
कूटाद्यैर्नवधा स्थावरं विषम् ॥ १९३ ॥ जंगमं बहुधा प्रोक्तं
तत्र लूता भुजंगमाः॥ वृश्चिकामूषकाः कीटाः प्रत्येकं ते चतु-
र्विधाः ॥ १९४ ॥ दंष्ट्राविषनखाविषवालशृंगास्थिभिस्तथा ॥
मूत्रात्पुरीषाच्छुक्राच्च दृष्टेर्निःश्वासतस्तथा ॥ १९५ ॥ ला-
लायाःस्पर्शतस्तद्वत्तथा शंकाविषं मतम् ॥ कृत्रिमं द्विविधं
प्रोक्तं गरदूषीविभेदतः ॥ १९६ ॥

अर्थ—स्थावर जंगम और कृत्रिम ऐसे तीन प्रकारके विष हैं उनमे स्थावर विष कालकूट बच्छनागादि विषोका भेदकरके नौ प्रकारके है। जंगम विष बहुत प्रकारके है जैसे—लूता, सर्प, बिच्छू, मूँसा कीडा, इनके वात, पित्त. कफ और सन्निपात भेदसे एक एकके चार २ भेद है। जिन ठिकानोपर विष है उनका ठिकाना जातिभेदसे पृथक् २ हे जैसे—डाढ, नख, केश, सींग, हाड, मूत्र, मल, शुक्र, धातु, दृष्टि, श्वास, लार, स्पर्श इत्यादि। मनमें विषकी शंका आकर उसे वायु कुपित हो संपूर्ण देहको सुजाय देवे तथा ज्वरादिक उपद्रव होवें उसको शंकाविष कहते हैं। यह और दूषीविष (पदार्थके संयोगसे प्रगट) इस भेदकरके कृत्रिम विष दो प्रकारके हैं। दूषीविष कहिये विष कुछ काल करके शरीरमें जीर्ण होकर छिपकर रहे, तथा विषका अल्पवीर्य हो इसीसे प्राणनाश नहीं करे परंतु ज्वरादिक उपद्रव करे। तथा देश, काल, अन्न और दिवानिद्रा इन करके दूषित होनेसे रसादि सप्त धातुओंको दूषित करते हैं। इसीसे इसको दूषीविष कहते हैं इस प्रकार कृत्रिम विष दोप्रकारके जानने।

विषके भेद ।

सप्तधातुविषं ज्ञेयं तथा सप्तोपधातुजम् ॥
तथैवोपविषेभ्यश्च जातं सप्तविधं ततः ॥ १९७ ॥

अर्थ—सुवर्णादिक सप्तधातुओंकी शुद्धिके विना की हुई भस्म भक्षण करनेसे तथा हरिताला- दिक सात उपधातुओंकी अशुद्ध भस्म, आक आदि और अशुद्ध उपविष इनके भक्षण करनेसे ये विषके समान पीडा करते है अतएव इनको विषसंज्ञा है ।

अन्यविषके भेद ।

दुष्टनीरविषं चैकं तथैकं दिग्धजं विषम् ॥

अर्थ-जिस पानीमें कीचड, काई, पत्ते, तिनका, लूतादिक जतुके मल, मूत्र तथा मछली और मेंढक मरगयेहो तो इन कारणोसे पानी खराव होजावे उस पानीको दुष्ट नीर कहते है । उसमें स्नान करे अथवा पीवे तो उससे विषके समान पीडा उत्पन्न होवे । शस्त्रादिकमे विषका लेपकर प्रहार करनेसे उससे घाव होजावे और वह जल्दी अच्छा नहीं हो एवं विषके समान ज्वरादिक उपद्रव हो उसको विषदग्ध शस्त्रज जानना ।

उपद्रव ।

कपिकच्छुभवा कंडूर्दुष्टनीरभवा तथा ॥ १९८ ॥
तथा सूरणकंडूश्च शोथो भल्लातजस्तथा ॥

अर्थ—कौंछ (किंवाछ) की फलीके रुवाँ लगनेसे दुष्ट जल और जमीकद (सूरण) इन तीनका देहमे स्पर्श होनेसे अंगमें अत्यंत खुजली चलती है तथा देहमें दाह होता है । एवं भिलावेके तेलका स्पर्श होनेसे अंगमें सूजन होय और खुजली चले इस प्रकार चार चार प्रकारके उपद्रव जानना ।

आगंतुकभेद ।

मदश्चतुर्विधश्चान्यः पूगभंगाक्षकोद्रवैः ॥ १९९ ॥
चतुर्विधोऽन्यो द्रव्याणां फलत्वङ्मूलपत्रजः ॥

अर्थ—सुपारी, भाग. वेहेडेके फलके भीतरकी मींगी कोदो धान्य ये चार पदार्थ भक्षण करनेसे इनसे चार प्रकारके मद उत्पन्न होते हैं सो मदात्यय रोगमे कहा है उसे जानना । और औषधी, वनस्पति इनके फल, छाल, मूल और पत्ते इन चारोंके भक्षण करनेसे चार प्रकारके मद उत्पन्न होते हैं ।

इति प्रसिद्धा गणिता ये किलोपद्रवा भुवि ॥
असंख्याश्चापरे धातुमूलजीवादिसंभवाः ॥ २०० ॥

इति श्रीदामोदरतनूजेन शार्ङ्गधरेण निर्मितायां संहितायां
प्रथमखण्डे रोगगणनानाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अर्थ-ऐसे प्रसिद्ध रोगरूप उपद्रव इनकी संख्या निश्चय करके शार्ङ्गधराचार्यने कही है इसके सिवाय दूसरे स्वर्णादि धातु, हरतालादिक उपधातु, अनेक प्रकारकी वनस्पति, औषधि और जीवादिकसे उपद्रव होते हैं वे उपद्रव असंख्य (बेशुमार) हैं उनकी संख्या नहीं होती। वह अनुमान करके जाननी।

श्रीमन्माथुरकुलकमलमार्त्तण्डपाठकज्ञातीयश्रीकृष्णलालपुत्रेण दत्तरामेण रचितायां
शार्ङ्गधरे माथुरीभाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः परिपूर्णतामगात् ॥ ७ ॥

इति शार्ङ्गधरसंहितास्थप्रथमखण्डं संपूर्णम्।



॥ श्रीः ॥

शार्ङ्गधरसंहिता.

भाषाटीकासमेता.

द्वितीयखण्ड २.

पाँच काढे।

अथातः स्वरसः कल्कः क्वाथश्च हिमफांटकौ ॥
ज्ञेयाः कषायाः पंचैते लघवः स्युर्यथोत्तरम् ॥ १ ॥

अर्थ—१ स्वरस[1] २ कल्क ३ क्वाथ ४ हिम ५ फांट इन पांचोको कषाय कहते हैं यह एककी अपेक्षा दूसरा हलका है। जैसे स्वरसकी अपेक्षा कल्क हलका है, कल्ककी अपेक्षा क्वाथ हलका है, क्वाथकी अपेक्षा हिम और हिमकी अपेक्षा फाट हलका है। रोगगणनाके पश्चात् कषायादिकोंका कथन ठीक है अतएव (अथातः) ऐसा श्लोकमे पद कहा है।

स्वरस।

आहतात्तत्क्षणात्कृष्टाद्द्रव्यात्क्षुण्णात्समुद्भवः ॥
वस्त्रनिष्पीडितो यः स रसः स्वरस उच्यते ॥ २ ॥

अर्थ—कीडा, अग्नि, पवन, जल इत्यादिक करके जो बिगडी न हो ऐसी वनस्पतिको लाके उसको उसी समय कूट कपडेमें डालके निचोड लेवै। उस निचोडे हुए रसको स्वरस अथवा अंगरस कहते हैं।

स्वरसकी दूसरी विधि।

कुडवं चूर्णितं द्रव्यं क्षिप्तं चेद्द्विगुणे जले ॥
अहोरात्रं स्थितं तस्माद्भवेद्वा रस उत्तमः ॥ ३ ॥

अर्थ—एक कुडव[2] सूखी औषधका चूर्ण करे। फिर उस औषधसे दूना जल किसी वडे आदि पात्रमें भरके उस औषधको भिगो देवे। इस प्रकार एक दिन और एक रात्र भीगने दे दूसरे दिन औषधोंको मसलकर उस पानीको कपडेसे छान लेवे इसकोभी स्वरस कहते हैं।

---

१ वनस्पति आदिके अवयवके रसको अंगरस अथवा स्वरस कहते हैं।

२ तोलेके विषयमें मागध परिभाषाके मतानुसार व्यावहारिक १६ तोले होते हैं।

स्वरसकी तीसरी विधि।

आदाय शुष्कद्रव्यं वा स्वरसानामसंभवे ॥ जलेऽष्टगुणिते साध्यं पादशेषं च गृह्यते ॥४॥ स्वरसस्य गुरुत्वाच्च पलमर्धं प्रयोजयेत् ॥ निःशोषितंचाग्निसिद्धं पलमात्रं रसं पिबेत्॥५॥

अर्थ–यदि गीली वनस्पति न मिले तो सूखी वनस्पतिको लाकर उसमें आठगुना पानी डालदे काढाकरे। जब जलते २ चौथाहिस्सा जल रहे तब उतारके पानी छान ले यह स्वरसका तीसरा प्रकार है। स्वरस भारी है अतएव दो तोले सेवन करे और जिस औषधिको रात्रिमे भिगोयके प्रातःकाल काढा किया हो वह ४ तोलेके प्रमाण सेवन करे। औषध भक्षणमें कलिंगपरिभाषाका मान लेना चाहिये।

स्वरसमें औषधडालनेका प्रमाण।

मधुश्वेतागुडक्षाराञ्जीरकं लवणं तथा ॥
घृतं तैलं च चूर्णादीन्कोलमात्रं रसे क्षिपेत् ॥ ६ ॥

अर्थ–सहत, खाँड, गुड, जवाखार, जीरा, सेंधानिमक, घृत, तेल तथा चूर्णादि ये स्वरस डालने हो तो कोलै डाले।

अमृतादिस्वरस प्रमेहपर।

अमृताया रसः क्षौद्रयुक्तः सर्वप्रमेहजित् ॥
हारिद्रचूर्णयुक्तो वा रसो धात्र्याः समाक्षिकः ॥ ७ ॥

अर्थ–गिलोयका स्वरस सहत मिलायके पीवे तो सर्व प्रमेह दूरहोवें. अथवा आमलेके स्वरसमें हल्दीका चूर्ण और सहत मिलायके पीवे तो सर्व प्रमेह नष्ट होवे।

वासकादिस्वरस रक्तपित्तादिकोंपर।

वासकस्वरसः पेयो मधुना रक्तपित्तजित् ॥ ज्वरकासक्षयहरः कामलाश्लेष्मपित्तहा ॥ ८ ॥ त्रिफलायारसःक्षौद्रयुक्तोदार्वीरसोऽथवा ॥ निंबस्य वा गुडूच्यावापीतोजयतिकामलाम् ॥९॥

अर्थ–अडूसेके स्वरसेमें सहत मिलायके पीवे तो ज्वर खाँसी और क्षयरोगका दूर करे एव त्रिफला, दारुहलदी नीमकी छाल और गिलोय इनमेंसे किसी एकके स्वरसमें सहत मिलाय पीवे तो कामलारोग दूर होवे।

---

१ दो तोले भक्षणमे कलिंगपरिभाषाका मान है। उस मानसे तोलेके व्यवहारिक माशे आठ होते हैं। यह मान रोगीका बलाबल देखिके देना चाहिये यह तात्पर्य है।

२ अडूसेका स्वरस अर्धपल और सहत दो टंकप्रमाण मिलायके सेवन करे तो रक्तपित्तका नाश होवे।

तुलसी और द्रोणपुष्पी इनका स्वरस विषमज्वरपर।

पीतो मरिचचूर्णेनतुलसीपत्रजो रसः ॥
द्रोणपुष्पीरसोप्येवं निहंति विषमज्वरान् ॥ १० ॥

अर्थ–तुलसीके पत्तोका स्वरस अथवा द्रोणपुष्पी (गोमा रूँखडी) के पत्तोंका स्वरस। इन दोनोमेंसे किसी एकको ले उसमें काली मिरचका चूरा डालके पीवे तो विषमज्वर दूर होवे।

जम्ब्वादिस्वरस रक्तातिसारपर।

जंब्वाम्रामलकीनांचपल्लवोत्थोरसोजयेत् ॥
मध्वाज्यक्षीरसंयुक्तोरक्तातीसारमुल्बणम् ॥ ११ ॥

अर्थ–जामुन, आम, आमले इनके पत्तोका स्वरस निकाल सहत घी और दूध मिलायके पीवे तो घोर रक्तातिसारको दूरकरे।

स्थूलबम्बुल्यादिस्वरस सब अतिसारोंपर।

स्थूलबम्बूलिकापत्ररसः पानाद्व्यपोहति ॥
सर्वातिसाराञ्छ्योनाककुटजत्वग्रसोऽथवा ॥ १२ ॥

अर्थ–काँटेरहित बडे बबूलके पत्तोका स्वरस पीनेसे सर्व प्रकारके अतिसार रोग दूर होवे अथवा टेंटूकी छालका स्वरस अथवा कूडाके छालका स्वरस इनमेंसे किसी एकको पीवे तो सर्वप्रकारके अतिसार रोग दूर हों।

अदरकका स्वरस वृषणवात और श्वासपर।

आर्द्रकस्वरसः क्षौद्रयुक्तोवृषणवातनुत् ॥
श्वासकासारुचीर्हंतिप्रातिश्यायंव्यपोहति॥ १३ ॥

अर्थ–अदरखके रसमें सहत मिलायके पीवे तो अडकोशोकी वादीको दूरकरै तथा श्वास खाँसी, अरुचि और सरेकमाको दूरकरे।

बिजोरेका स्वरस पार्श्वादिशूलोंपर।

बीजपूररसः पानान्मधुक्षारयुतोजयेत् ॥
पार्श्वहृद्बस्तिशूलानिकोष्ठवायुंचदारुणम् ॥ १४ ॥

अर्थ–बिजोरेके फलको अथवा जडका स्वरस. सहत और जवाखार मिलायके पीवे, तो कुक्षिशूल, हृदयशूल, बस्तिशूल तथा दारुण ऐसा कोठेका वायु इन सबको दूर करे।

---

१ द्रोणपुष्पी एक जातकी रूँखडी है इसका वृक्ष हाथ डेढहाथसे अधिक ऊँचा नहीं होता और इसकी डंडीमे फूलके गुच्छ २ से होते हैं। मध्यदेश (दिल्ली, आगरा, मथुराके प्रान्तोंमे) इसको गूमा कहते हैं।

शतावरका स्वरस पित्तशूलपर तथा
घीगुवारका स्वरस तिल्लीपर।

शतावर्याश्चमधुनापित्तशूलहरोरसः॥
निशाचूर्णयुतः कन्यारसः प्लीहापचीहरः॥ १५॥

अर्थ–शतावरीके स्वरसमें सहत मिलायके पीवे तो पित्तशूल दूर होय तथा घीगुवारका रस हल्दी मिलायके पीवे तो प्लीहा (तिल्ली) का रोग और गण्डमालाका भेद जो अपची है उसको दूर करे।

अलंबुषारस गंडमालापर।

अलंबुषायाः स्वरसः पीतो द्विपलमात्रया॥
अपचीगण्डमालानांकामलायाश्च नाशनः॥ १६॥

अर्थ–गोरखमुडीका स्वरस दोपल पीवे तो अपची रोग गंडमाला और कामला रोग दूर होवे।

शशमुंडरस सूर्यावर्त्तादिकोंपर।

रसोमुंडयाः सकोष्णोवामरिचैरवधूलितः॥
जयेत्सप्तदिनाभ्यासात्सूर्यावर्तार्धभेदकौ॥ १७॥

अर्थ–गोरखमुडीके स्वरसको कुछ थोडा गरम कर काली मिरचका चूर्ण मिलाय पीवे तो सूर्यावर्त्त और अर्धावभेद (आधाशीशी) इनको दूरकरे।

ब्राह्म्यादिका रस उन्मादरोगपर।

ब्राह्मीकूष्मांडषड्ग्रंथाशंखिनीस्वरसाःपृथक्॥
मधुकुष्ठयुतःपीतःसर्वोन्मादापहारकः॥ १८॥

अर्थ–ब्राह्मी, पेठा, वच और शंखाहुली इनके स्वरस पृथक् २ निकालके किसीएक को सहत और कूठका चूर्ण मिलायके पीवे तो संपूर्ण उन्मादके रोग दूर होवे।

---

१ पेटमे बाँई तरफ रोग होता है उसको कोई कोई पीहा और कोई प्लीह तिल्ली कहते हैं।

२ भक्षण विषयमे कालिंगपरिभाषाके मानानुसार दोपलके व्यहवारिक छः तोले और आठ मासे होते हैं।

३ सूर्यावर्त्त कहिये जैसे २ सूर्य चढे तैसे २ मस्तकमे दर्द बढे और जैसे २ अस्त होंय तैसे २ पीडा शांति होवे उसको सूर्यावर्त्तरोग कहते हैं।

४ ब्राह्मी रूखडी गंगा यमुनाके किनारे बहुत होती है इसकी दो जाति है एक ब्राह्मी और दूसरी मंडूकपर्णी। यह प्रसर जातिकी रूखडी है।

५ शंखाहुलीको शंखपुष्पीभी कहते हैं। इनमें सफेद रंगके परम सुदर पुष्प होते हैं। यह प्रसर जातिकी रूखडी है।

कूष्मांडकरस मदरोगपर ।

कूष्मांडकस्यस्वरसोगुडेनसहयोजितः ॥
दुष्टकोद्रवसंजातंमदंपानाद्व्यपोहति ॥ १९ ॥

अर्थ-पेठके रसमें गुड मिलायके सेवन करे तो दुष्ट कोदो धान्यसे उत्पन्न मदको दूर करे ।

गांगेरुकीस्वरस व्रणरोगपर ।

खड्गादिच्छिन्नगात्रस्यतत्कालपूरितोव्रणः ॥
गांगेरुकीमूलरसैर्जायतेगतवेदनः ॥ २० ॥

अर्थ-तल्वार आदि शस्त्रका घाव देहमें होनेसे उसी समय उस घावमे गांगेरुकीके जडके स्वरसको भर देवे तो मनुष्य पीडारहित होवे ।

पुटपाक कहनेका कारण ।

पुटपाकस्यकल्कस्यस्वरसोगृह्यतेयतः ॥
अतस्तुपुटपाकानांयुक्तिरत्रोच्यतेमया ॥ २१ ॥

अर्थ-पुटपाक और कल्क इन दोनोकाही स्वरस लिया जाता है अतएव पुटपाककी युक्ति कहते हैं ।

पुटपाकस्यमात्रेयंलेपस्यांगारवर्णता ॥ लेपंचद्व्यंगुलंस्थूलंकुर्याद्वांगुष्ठमात्रकम् ॥ २२ ॥ काश्मरीवटजंब्वाम्रपत्रैर्वेष्टनमुत्तमम् ॥ पलमात्रंरसोग्राह्यःकर्षमात्रंमधुक्षिपेत् ॥ २३ ॥ कल्कचूर्णद्रवाद्यास्तुदेयाःस्वरसवद्बुधैः ॥

अर्थ-गीली वनस्पतिको कूट पीस गोला बनावे उसके कँभारी वड अथवा जामुनके पत्तोसे लपेट उसपर दो अगुल मोठा अथवा अंगुष्टप्रमाण मिट्टीका लेपकरे । फिर उस गोलेके नीचे उपले चुनके उसके बीचमे उस गोलेको रखके आँच जलावे । जब गोलेकी मिट्टी लाल होजावे तब उसको निकाल मिट्टी और पत्ते ऊपरके दूरकरे उसका रस निचोड लेवे यदि वह वनस्पति कठोर होवे तो उसके पानीमें अथवा जो द्रव द्रव्य कहे है उनमे पीसके इसी प्रकार गोलेआदिकी कृतिकरके रस काढलेना चाहिये इसके लेनेकी मात्रा एक पलकी जाननी ॥ यदि उस रसमे सहत डालना

---

१ गांगेरुकीको भाषामे गगेर कहते हैं यह क्षुपजातिकी औषधि है गुण दोष वलाचक्रमे लिखे हैं ।

होवे तो अर्द्ध पल डाले कल्क चूर्ण दूध आदिशब्दसे जो द्रवद्रव्योंका मान जैसा स्वरसमें डालना लिखाहै उसी प्रकार इस जगह डालना चाहिये।

कुटजपुटपाक सर्वातिसारोंपर।

तत्कालाकृष्टकुटजत्वचं तंडुलवारिणा ॥ २४ ॥ पिष्टां चतुःपलमितां जंबूपल्लववेष्टिताम् ॥ सूत्रेण बद्धांगोधूमपिष्टेनपरिवेष्टिताम् ॥ २५ ॥ लिप्तांचघनपंकेन गोमयैर्वह्निनादहेत् ॥ अंगारवर्णांचमृदंदृष्ट्वावह्नेःसमुद्धरेत् ॥ २६ ॥ ततोरसंगृहीत्वा च शीतं क्षौद्रयुतंपिबेत्॥जयेत्सर्वानतीसारान्दुस्तरान्सुचिरोत्थितान् ॥ २७॥

अर्थ—तत्कालकी लाई कुडेकी छाल ४ पल ले। उसको उसी समय चावलोंके धोवनके जलमें पीसके गोला बनावे। फिर उसको जामुनके पत्तोंसे लपेट सूतसे बाँधदेवे। उसके ऊपर गेहूंके चूनको सानके लपेट देवे और उसके ऊपर गाढी २ मिट्टीका लेप करे। फिर उसको आरने उपलोंमे रखके फूँकदेवे। जब गोलेकी मिट्टी आगके वेगसे लाल होजावे तब निकाल ले। उसकी मिट्टी और पत्ते आदि दूरकर किसी स्वच्छ कपडे आदिमे दबायके रस निचोडलेवे। जब यह रस शीतल हो जावे; तब सहत मिलायके पीवे तो बहुत कालका दुर्घट अतिसार रोग दूर होवे।

चावलोंके धोनेकी विधि।

कंडितंतंडुलपलंजलेऽष्टगुणितेक्षिपेत् ॥
भावयित्वाजलंग्राह्यंदेयंसर्वत्रकर्मसु ॥ २८ ॥

अर्थ—एकपल बीने और फटकेहुए चावलोंमें आठगुना अर्थात् ८ पल जल मिलाय हाथोंसे मसलके चावलोंको धोवे फिर यह चावलोका धुलाहुआ पानी सब कार्यमें लेनाचाहिये।

अरलुपुटपाक।

अरलुत्वक्कृतश्चैवपुटपाकोऽग्निदीपनः ॥
मधुमोचरसाभ्यांचयुक्तःसर्वातिसारजित् ॥ २९ ॥

अर्थ—टेंटूकी गीली छालको लायके उसी समय कूटके गोला बनावे। फिर पूर्वोक्त विधि जो पुटपाककी कहीहै उसके अनुसार पुटपाक सिद्ध करे। फिर रस निकाल उसमें सहत और मोचरसका चूर्ण डालके पीवे तो सर्व प्रकारके अतिसार रोग दूर हो।

न्यग्रोधादि पुटपाक ।

न्यग्रोधादेश्चकल्केनपूरयेद्गौरतित्तिरेः ॥ निरंत्रमुदरं सम्यक्पुटपाकेनतत्पचेत् ॥ ३० ॥ तत्कल्कःस्वरसः क्षौद्रयुक्तःसर्वातिसारनुत् ॥

अर्थ–१ वड २ गूलर ३ पापरी ४ जलवेत ५ पीपर इनकी छालका चूर्ण करके पानीसे पीस कल्क करके उसको सफेद तीतरके पेटमें भरके पूर्वोक्त पुटपाककी विधिसे उसका पुटपाक करलेवे फिर अग्निसे निकाल, पत्ते मिट्टीआदिको दूर कर, उस तीतर पक्षीके पेटसे कल्कको निकालके रस निचोड उसमें सहत मिलायके पीवे तो सब अतिसार नष्ट होवें ।

दाडिमादिपुटपाक ।

पुटपाकेनविपचेत्सुपक्वंदाडिमीफलम् ॥ ३१ ॥ तद्रसोमधुसंयुक्तःसर्वातीसारनाशनः ॥

अर्थ–पकेहुए अनारको पुटपाककी विधिसे अग्नि देवे । फिर रक्तवर्ण होनेपर अग्निसे निकाल पत्ते मिट्टी आदिको दूर कर उस अनारको निकाल दावकर रस निकाल लेवे । उसमें सहत मिलायके पीवे तो सपूर्ण अतिसार रोग दूर होवें ।

बीजपूरादिपुटपाक ।

बीजपूराम्रजंबूनांपल्लवानिजटाःपृथक् ॥ ३२ ॥ विपचेत्पुटपाकेन क्षौद्रयुक्तश्चतद्रसः ॥ छर्दिंनिवारयेद्घोरांसर्वदोषसमुद्भवाम् ॥३३॥

अर्थ–बिजौरा, आम, और जामुन इनके गीले पत्ते और जड लायके उसी समय कूट पीस गोला बनाय पूर्वोक्त रीतिसे अग्नि देवे । फिर उस गोलेको बाहर निकाल दावके रस निकाल लेवे । उस रसमें सहत मिलायके पीवे तो सर्व दोषजन्य दुर्घट ओकारीका रोग दूरहो ।

पिष्टानांवृषपत्राणांपुटपाकरसोहिमः ॥ मधुयुक्तोजयेद्रक्तपित्तकासज्वरक्षयान् ॥ ३४ ॥

अर्थ–अडूसाके गीले पत्तोंको उसी समय कूट गोला बनावे । फिर पूर्वोक्त विधिसे

---

१ पापरी यह एक जातिका बडा भारी वृक्ष होता है । इसके छोटे २ पत्ते होते हैं उनको दादपर घिसनेसे दादको दूर करे हैं ।

२ जलवेतस जलमें होनेवाले वेतको कहते हैं ।

३ उस तीतरके पेटकी ऑतडी आदि निकाल कर साफ कर ले फिर कल्कको भरे ।

अग्नि देकर उसमेंसे रस निकाल लेवे। उसमे सहत मिलायके पीवे तो रक्तपित्त, श्वास, ज्वर और क्षयरोग दूर होवे।

कंटकारीपुटपाक।

पचेत्क्षुद्रांसपंचांगांपुटपाकेनतद्रसः॥
पिप्पलीचूर्णसंयुक्तःकासश्वासकफापहः॥ ३५॥

अर्थ—छोटी कटेरीके सपूर्ण वृक्षको फलसहित लाकर उसी समय कूटके गोला वनावे। फिर पुटपाककी विधिसे पकाय रस निकाल उस रसमे पीपलका चूर्ण मिलाय पीवे तो श्वास खाँसी और कफ ये दूर हों।

विभीतकपुटपाक।

विभीतकफलंकिंचिद्घृतेनाभ्यज्यलेपयेत्॥गोधूमपिष्टेनांगारै-र्विपचेत्पुटपाकवत्॥ ३६॥ ततःपक्वंसमुद्धृत्यत्वचंतस्यमु-खेक्षिपेत्॥ कासश्वासप्रतिश्यायस्वरभंगाञ्जयेत्ततः॥ ३७॥

अर्थ—बहेडेके फलमें घी चुपडके उसपर गेहूके चूनका लेपकर पुटपाककी विधिसे अगारों-पर भूने फिर उसके टुकडे करके मुखमे रक्खे तो श्वास, कास, खाँसी, सरेकमा और स्वर-भंग इन सब रोगोंको शीघ्र दूर करे।

शुंठीपुटपाकआमातिसारपर।

चूर्णंकिंचिद्घृताभ्यक्तंशुंठ्याएरंडजैर्दलैः॥ वेष्टितंपुटपाकेन विपचेन्मंदवह्निना॥ ३८॥ ततउद्धृत्यतच्चूर्णंग्राह्यंप्रातःसि-तान्वितम्॥ तेनयांतिशमंपीडाआमातीसारसंभवाः॥ ३९॥

अर्थ—सोंठके चूर्णमे थोडा घी मिलाय गोला करे फिर उसको अंडीके पत्तोंसे लपेट उस गोलेको सूतसे लपेट ऊपर मिट्टीका लेप करे। फिर उसको पुटपाककी विधिसे पक्व करे। पीछे उस गोलेको आगसे निकाल उस सोंठके चूर्णको खाँडके साथ नित्य प्रातःकाल खाय तो आमातिसारसे उत्पन्न हुई जो पीडा सो सब दूर होवे।

दूसरा शुंठीपुटपाक आमवातपर।

शुंठीकल्कंविनिक्षिप्यरसैरेरंडमूलजैः॥विपचेत्पुटपाकेनतद्रसः क्षौद्रसंयुतः॥४०॥ आमवातसमुद्भूतांपीडांजयतिदुस्तराम्॥

---

१ मनुष्यके दम चढनेको अर्थात् दमेके रोगको श्वास रोग कहते हैं।

२ गीली अथवा सूखी खासीको कास कहते हैं।

३ अंडके कहनेसे सूरती अंड लेना उसके अभावमें दूसरा लेना।

अर्थ-अडकी जडके रसमे सोठके चूर्णको सानके गोला बनावे उसको पुटपाककी विधिसे पकायके रस निकाल लेवे । उसमें सहत मिलायके पीवे तो आमवायुसे होनेवाली घोर पीडा दूर होवे ।

सूरणपुटपाक बवासीरपर ।

सौरणंकंदमादायपुटपाकेनपाचयेत् ॥ ४१ ॥
सतैललवणस्तस्यरसश्चार्शोविकारनुत् ॥

अर्थ-सूरन (जमीकंद) को कूटके गोला बनावे फिर पुटकी विधिसे पक्व करके रस निचोड लेवे । उसमें तिलका तेल और सैंधीनामक डालके पीवे तो बवासीरका विकार दूर होवे ।

मृगशृंगपुटपाक हृदयशूलपर ।

शरावसंपुटेदग्धंशृंगंहारिणजंपिबेत् ॥
गव्येनसर्पिषापिष्टंहृच्छलंनश्यतिध्रुवम् ॥ ४२ ॥

इति शार्ङ्गधरे द्वितीयखण्डे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अर्थ-मिट्टीके शरावेमें हरणके सींगके टुकडे रखके उसको दूसरे शरावेसे ढककर उपलोंमे रखके फूंक देव । फिर इस भस्मको गौके घीमें मिलायके चाटे तो हृदयका शूल दूर होवे ।

इति श्रीमाथुरकृष्णलालपाठकतनयदत्तरामप्रणीतशार्ङ्गधरसंहितार्थबोधिनीमाथुरभाषाटीकायां द्वितीयखण्डे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः २.

काढेकरनेकी विधि ।

पानीयंषोडशगुणंक्षुण्णेद्रव्यपलेक्षिपेत् ॥ मृत्पात्रेक्काथयेद्ग्राह्यमष्टमांशावशेषितम् ॥ १ ॥ तज्जलंपाययेद्धीमान्कोष्णंमृद्वग्निसाधितम् ॥ शृतःक्काथःकषायश्चनिर्यूहःसनिगद्यते॥ ॥ २ ॥ आहाररसपाकेचसंजातेद्विपलोन्मितम्॥वृद्धवैद्योपदेशेनपिबेत्क्काथंसुपाचितम् ॥ ३ ॥

अर्थ-एकपल औषधको जो कूट कर १६ पल पानीमे डालके हलकी अग्निसे औटावे । जब दो पल पानी शेष रहे तब उतारके छानले इसको कुछ २ गरम २

पीवे तथा रोगीको भले प्रकार अन्नपचन होनेके पश्चात् वृद्ध वैद्यको विचार करके काढा देना चाहिये। १ शृत २ क्वाथ ३ कषाय और ४ निर्यूह ये काढेके पर्याय वाचक नाम हैं।

काढेमें खाँड और सहत डालनेका प्रमाण।

क्वाथे क्षिपेत्सितामंशैश्चतुर्थाष्टमषोडशैः ॥
वातपित्तकफातंके विपरीतं मधुस्मृतम् ॥ ४ ॥

अर्थ—काढेमें खाँड डालनी होवे तो वातरोगमें काढेकी चौथाई, पित्तरोग होवे तो आठवाँ हिस्सा और कफरोग होवे तो काढेका सोलहवा भाग डाले। तथा सहत—पित्तरोग होय तो काढेका सोलहवाँ हिस्सा, वातरोग होय तो आठवाँ हिस्सा और कफरोग होवे तो चतुर्थांश सहत डाले।

काढेमें जीरा आदिकरडे और दूध आदि पतले पदार्थ मिलानेका प्रमाण।

जीरकंगुग्गुलुंक्षारंलवणं च शिलाजतु ॥
हिंगुत्रिकटुकंचैवक्वाथेशाणोन्मितंक्षिपेत् ॥ ५ ॥
क्षीरंघृतंगुडंतैलंमूत्रंचान्यद्रवंतथा ॥
कल्कंचूर्णादिकंक्वाथेनिक्षिपेत्कर्षसंमितम् ॥ ६ ॥

अर्थ—जीरा, गूगल, जवाखार, सैंधानमक, शिलाजीत, हींग, त्रिकुटा ये पदार्थ काढेमें डालने हो तो शाणप्रमाण डाले। और दूध, घी, गुड, तेल, मूत्र तथा अन्य दूसरे पतले पदार्थ कल्क चूर्णादिक एक एक कर्ष (२ तोले) डाले।

काढेके पात्रको ढकनेका निषेध।

अपिधानमुखेपात्रेजलंदुर्जरतांव्रजेत् ॥
तस्मादावरणंत्यक्त्वाक्वाथादीनांविनिश्चयः ॥ ७ ॥

अर्थ—काढा होते समय उस पात्रको ढके नहीं क्योंकि काढेके पात्रको ढकनेसे काढा भारी होजाता है। इस कारण काढा करते समय उसके मुखपर ढकना न देय यह नियम सर्वत्र है।

गुडूच्यादिकाढा सर्वज्वरपर।

गडूचीधान्यकारिष्टरक्तचंदनपद्मकैः ॥ गुडूच्यादिगणक्वाथःसर्वज्वरहरः स्मृतः ॥ ८ ॥ दीपनोदाहहृल्लासतृष्णाछर्द्यरुचीर्जयेत् ॥

अर्थ—१ गिलोय २ धनिया ३ नीमकी छाल ४ पद्माख और ५ रक्तचन्दन इन पांच औष-

धोंका काढा करके पीवे तो जठराग्निको दीपन करके सर्व ज्वरोंको दूर करे । इसी प्रकार दाह, वमन और अरुचि इन सब रोगोको दूर करे इसे गुडूच्यादि क्वाथ कहते है ।

नागरादि वा शुण्ठ्यादिकाढा सर्वज्वरपर ।

नागरंदेवकाष्ठंचधान्याकंबृहतीद्वयम् ॥ ९ ॥
दद्यात्पाचनकंपूर्वंज्वरितानांज्वरापहम् ॥

अर्थ-१ सोंठ २ देवदारु ३ धनिया ४ कटेरी और ५ बडी कटेरी (भटकटैया) इन पांच औषधोको छदाम २ भर ले काढाकर प्रथम ज्वरके पचानेको यह पाचन काढा देवे तो ज्वर दूर हो ।

क्षुद्रादिक्काथ ।

क्षुद्राकिराततिक्तंचशुंठीछिन्नानपौष्करम् ॥ १० ॥
कषायएषांशमयेत्पीतश्चाष्टविधंज्वरम् ॥

अर्थ-१ कटेरी २ चिरायता ३ कुटकी ४ सोंठ ५ गिलोय और ६ अडकी जड इन छः औषधोंका काढाकरके पीवे तो आठ प्रकारके ज्वर दूर हो ।

गुडूच्यादिक्काथ ।

गुडूचीपिप्पलीमूलनागरैःपाचनंस्मृतम् ॥ ११ ॥
दद्याद्वातज्वरेपूर्णलिंगेसप्तमवासरे ॥

अर्थ-१ गिलोय २ पीपरामूल और ३ सोंठ इन तीन औषधोका काढा वातज्वर पूर्णलिंग होनेपर सातवें दिनके पश्चात् पाचन देवे तो वातज्वर नष्ट होवे ।

शालपर्ण्यादिकाढावातज्वरपर ।

शालिपर्णीबलारास्नागुडूचीसारिवातथा ॥ १२ ॥
आसांक्काथंपिबेत्कोष्णंतीव्रवातज्वरच्छिदम् ॥

अर्थ-१ शालपर्णी २ खरेटी ३ रास्ना ४ गिलोय और ५ सारिवन इन पांच औषधोंका काढा थोडा गरम २ पीवे तो तीव्र वातज्वर दूर होय ।

काश्मर्यादिक्काथ वातज्वरपर ।

काश्मरीसारिवारास्नात्रायमाणामृताभवः ॥ १३ ॥
कषायःसगुडःपीतोवातज्वरविनाशनः ॥

अर्थ-१ कंभारी २ सरवन ३ रास्ना ४ त्रायमाण और ५ गिलोय इन पाच औषधोंका काढा कूर गुड मिलायके पीवे तो वातज्वर दूर हो ।

कट्फलादिपाचन पित्तज्वरपर।

कट्फलेंद्रयवांबष्टातिक्तामुस्तैः शृतंजलम् ॥ १४ ॥
पाचनंदशमेह्निस्यात्तीव्रेपित्तज्वरेनृणाम् ॥

अर्थ—१ कायफर २ इन्द्रजौ ३ पाढ ४ कुटकी और ५ नागरमोथा इन पाच औषधोका काढा तीव्र पित्तज्वरके दशदिन जानेपर यह पाचन देवे तो पित्तज्वर दूर होवे।

पर्पटादिकाढा पित्तज्वरपर।

पर्पटोवासकस्तिक्ताकिरातोधन्वयासकः ॥ १५ ॥ प्रि-
यंगुश्चकृतः क्राथएषांशर्करयायुतः ॥ पिपासादाहपित्ता-
स्रयुक्तं पित्तज्वरं जयेत् ॥ १६ ॥

अर्थ—१ पित्तपापडा २ अडूसा ३ कुटकी ४ चिरायता ५ धमासा और ६ फूलप्रियगु इनका काढा करके खाँड मिलायके पीवे तो प्यास दाह और रक्तपित्त इन करके युक्त पित्तज्वर दूर होवे।

द्राक्षादिकाढा पित्तज्वरपर।

द्राक्षाहरीतकीमुस्तंकटुकाकृतमालकः ॥ पर्पटश्चकृतः
क्राथएषांपित्तज्वरापहः ॥ १७ ॥ तृण्मूर्च्छादाहपित्ता-
सृक्छमनोभेदनः स्मृतः ॥

अर्थ—१ दाख, २ छोटीहरड, ३ नागरमोथा, ४ कुटकी, ५ किरवारेका गूदा और ६ पित्त-पापडा इन छः औषधोंका काढा पित्तज्वरको दूर करे तथा तृषा मूर्छा दाह रक्तपित्त इनको शांत करे एवं भेदक (बँधेहुए मलको तोरनेवाला) है।

बीजपूरादिपाचनकफज्वरपर।

बीजपूराशिवापथ्यानागरग्रंथिकैः शृतम् ॥ १८ ॥
सक्षारंपाचनंश्लेष्मज्वरेद्वादशवासरे ॥

अर्थ—१ बिजोरेकी जड २ छोटी हरड ३ सोंठ और ४ पीपरामूल इन चार औषधोका काढा करके उसमे जवाखार मिलाय बारह दिनके पश्चात् कफज्वरपर पाचन देवे तो कफज्वर दूर होय।

भूनिंबादिक्राथकफज्वरपर।

भूनिंबनिंबपिप्पल्यःशठीशुंठीशतावरी ॥ १९ ॥
गुडूचीबृहतीचेतिक्राथोहन्यात्कफज्वरम् ॥

अर्थ-१ चिरायता २ नीमकी छाल ३ पीपर ४ कचूर ५ सोंठ ६ सतावर ७ गिलोय और ८ कटेरी इन आठ औषधोंका काढा करके पीवे तो कफज्वरको दूर करे ।

पटोलादिकाढा कफज्वरपर ।

पटोलत्रिफलातिक्ताशठीवासामृताभवः ॥ २० ॥
क्काथोमधुयुतः पीतोहन्यात्कफकृतंज्वरम् ॥

अर्थ-१ पटोलपत्र २ हरड ३ बहेडा ४ आमला ५ कुटकी ६ कचूर ७ अडूसा और ८ गिलोय इन आठ औषधोंका काढा सहत मिलायके पीवे तो कफज्वरको नष्ट करे ।

पर्पटादिकाढावातपित्तज्वरपर ।

पर्पटाब्जामृताविश्वकिरातैः साधितंजलम् ॥ २१ ॥
पंचभद्रमिदंज्ञेयंवातपित्तज्वरापहम् ॥

अर्थ-१ पित्तपापडा २ नागरमोथा ३ गिलोय ४ सोंठ और ५ चिरायता इन पांच औषधोंका काढा करके पीवे तो वातपित्तज्वर दूर होवे ।

लघुक्षुद्रादिकाढावातकफज्वरपर ।

क्षुद्राशुंठीगुडूचीनांकषायः पौष्करस्य च ॥ २२ ॥
कफवाताधिकेपेयोज्वरेवापित्रिदोषजे ॥
कासश्वासारुचिकरेपार्श्वशूलविधायिनि ॥ २३ ॥

अर्थ-१ कटेरी २ सोंठ ३ गिलोय और ४ अडकी जड इन चार औषधोंका काढा पीनेसे जिस ज्वरमें कफवायु प्रबल हो उसको हरे और खाँसीको दूरकरे एवं श्वास, खाँसी, अरुचि, पीठका शूल इन उपद्रवकरके युक्त ऐसा त्रिदोषज ज्वर दूर होवे ।

आरग्वधादिकाढावातकफज्वरपर ।

आरग्वधकणामूलमुस्ततिक्ताभयाकृतः ॥
क्काथःशमयतिक्षिप्रंज्वरंवातकफोद्भवम् ॥ २४ ॥
आमशूलप्रशमनोभेदीदीपनपाचनः ॥

अर्थ-१ अमलतासका गूदा २ पीपरामूल ३ नागरमोथा ४ कुटकी और ५ जंगीहरड इन पाच औषधोंका काढा करके पीवे तो वातकफज्वर और आमका शूल तत्काल नष्टहोय तथा मल उत्तम होकर दीपन पाचन करे ।

अमृताष्टक पित्तश्लेष्मज्वरपर ।

अमृतारिष्टकटुकामुस्तेंद्रयवनागरैः ॥ २५ ॥ पटोलचन्दना-

भ्यांचपिप्पलीचूर्णयुक्छृतम् ॥ अमृताष्टकमेतच्चपित्तश्लेष्मज्व-
रापहम् ॥ २६ ॥ छर्द्यरोचकहृल्लासदाहतृष्णानिवारणम् ॥

अर्थ—१ गिलोय २ नीमकी छाल ३ कुटकी ४ नागरमोथा ५ इन्द्रजौ ६ सोंठ ७ पटोलपत्र और ८ लालचंदन इन आठ औषधोंका काढा करके पीपलका चूर्णडालके पीवे तो पित्तकफज्वर दूर होवे तथा वमन, अरुचि, हृल्लास, दाह और प्यासको नष्ट करे।

पटोलादिकाढा पित्तकफज्वरपर।

पटोलंचंदनंमूर्वातिक्तापाठामृतागणः ॥ २७ ॥
पित्तश्लेष्मज्वरच्छर्दिदाहकंडूविषापहः ॥

अर्थ—१ पटोलपत्र २ रक्तचंदन ३ मूर्वा ४ कुटकी ५ पाढ और ६ गिलोय इन छः औषधोंका काढा करके पीवे तो पित्तकफज्वर वमन दाह खुजली और विषबाधा इनको दूर करे।

कंटकार्यादिपाचन सर्वज्वरपर।

कंटकारीद्वयंशुंठीधान्यकंसुरदारुच ॥ २८ ॥
एभिःशृतंपाचनंस्यात्सर्वज्वरविनाशनम् ॥

अर्थ—१ कटेरी २ छोटी कटेरी ३ सोंठ ४ धनिया और ५ देवदारु इन पांच औषधोंका काढा करके पीवे तो सर्व प्रकारके ज्वर दूर हों इसको पाचन कहते हैं।

दशमूलादिकाढावातकफज्वरादिपर।

शालिपर्णीपृष्ठपर्णीबृहतीद्वयगोक्षुरैः ॥ २९ ॥ बिल्वाग्निमंथ-
स्योनाककाश्मरीपाटलायुतैः ॥ दशमूलमितिख्यातंक्वथितंत-
ज्जलंपिबेत् ॥ ३० ॥ पिप्पलीचूर्णसंयुक्तंवातश्लेष्मज्वरापहम् ॥
सन्निपातज्वरहरंसूतिकादोषनाशनम् ॥ ३१ ॥ शोषशैत्यभ्रमस्वे
दकासश्वासविकारनुत् ॥ हृत्कंपग्रहपार्श्वार्तितन्द्रामस्तक
शूलहृत् ॥ ३२ ॥

अर्थ—१ शालपर्णी २ पिठवन ३ छोटी कटेरी ४ बडी कटेरी ५ गोखरू ६ बेलगिरी ७ अरनी ८ टेटू ९ कभारी और १० पाढल इन दश मूलका काढा पिप्पलीका चूर्ण डालके पीवे

तो वातकफज्वर संनिपातज्वर प्रसूतिका रोग शोषे सरदीका लगना भ्रम पसीने खाँसी और श्वास इन रोगोंको दूर करे ।

अभयादिकाढात्रिदोषज्वरपर ।

अभयामुस्तधान्याकरक्तचन्दनपद्मकैः ॥ वासकेंद्रयवोशीरगुडूचीकृतमालकैः ॥ ३३ ॥ पाठानागरतिक्ताभिःपिप्पलीचूर्णयुक्छृतम् ॥ पिबेत्त्रिदोषज्वरजित्पिपासादाहकासनुत् ॥३४॥ प्रलापश्वासतन्द्राघ्नन्दीपनंपाचनंपरम् ॥ विण्मूत्रानिलविष्टंभवमिशोषारुचिच्छिदम् ॥ ३५ ॥

अर्थ–१ जंगीहरड २ नागरमोथा ३ धनिया ४ लालचंदन ५ पद्माख ६ अडूसा ७ इन्द्रजौ ८ खस ९ गिलोय १० अमलतासका गूदा ११ पाढ १२ सोंठ और १३ कुटकी इनका काढा करके उसमें पीपलका चूर्ण डालके पीवे तो त्रिदोषज्वर प्यास, दाह, खाँसी, प्रलाप, श्वास, तन्द्रा इनको दूरकरे । दीपन और पाचन है । एवं मल, मूत्र, अधोवायु इनके रुकनेको वमन, शोप और अरुचि इनको दूर करे ।

अष्टादशांगकाढासन्निपातादिकोंपर ।

किरातकटुकीमुस्ताधान्येंद्रयवनागरैः ॥ दशमूलमहादारुगजपिप्पलिकायुतैः ॥ ३६ ॥ कृतःकषायःपार्श्वार्तिसन्निपातज्वरंजयेत् ॥ कासश्वासवमीहिक्कातन्द्राहृद्ग्रहनाशनः ॥ ३७ ॥

अर्थ– १ चिरायता २ कुटकी ३ नागरमोथा ४ धनिया ५ इन्द्रजौ ६ सोंठ १० दशमूल मिलायकर १६ हुए १७ देवदारु और १८ गजपीपल इन अठारह औषधोंका काढाकरके पीवे तो पार्श्वशूल और सन्निपातज्वर ये दूर हो। उसी प्रकार श्वास, खाँसी, वमन, हिचकी, तन्द्रा और हृदयपीडा इनको दूर करे ।

यवान्यादिकाढाश्वासादिकोंपर।

**यवानीपिप्पलीवासातथावत्सकवल्कलः ॥
एषांक्वाथंपिबेत्कासेश्वासेचकफजेज्वरे ॥ ३८ ॥**

अर्थ–१ अजमायन, २ पीपल, ३ अडूसेके पत्ते और ४ कूडेकी छाल इन चार औषधोंका काढाकरके पीवे तो खाँसी, श्वास और कफज्वर इनका नाश करे ।

---

१ शोप, शैत्य, इस ठिकाने 'शाखाशैत्य' ऐसा पाठ है तहा हाथ पैरमें सरदी होना ऐसा अर्थ जानना चाहिये ।

कट्फलादिकाढा कासआदिपर।

कट्फलांबुदभार्ङ्गीभिर्धान्यरोहिषपर्पटैः ॥
वचाहरीतकीशृंगीदेवदारुमहौषधैः ॥ ३९ ॥
क्वाथःकासंज्वरंहंतिश्वासश्लेष्मगलग्रहान् ॥

अर्थ—१ कायफल, २ नागरमोथा, ३ भारंगी, ४ धनिया, ५ रोहिषतृण, ६ पित्तपापडा, ७ वच, ८ हरड, ९ काकडसिंगी, १० देवदारु और ११ सोंठ इन ग्यारह औषधोंको काढा पीनेसे खाँसी, ज्वर, श्वास, कफ और कंठका रुकना इन सबको दूरकरे।

गुडूच्यादिकाढा तथा पर्पटादिकाढा।

क्वाथोजीर्णज्वरंहंतिगुडूच्याःपिप्पलीयुतः ॥ ४० ॥
तथापर्पटजःक्वाथःपित्तज्वरहरःपरम् ॥
किंपुनर्यदियुज्येतचंदनोदीच्यनागरैः ॥

अर्थ--गिलोयका काढा सिद्ध होनेपर पीपलका चूर्ण डालके पीवे तो बहुतदिनका ज्वर जाय। इसीप्रकार केवल पित्तपापडेका काढा करके उसमें पीपलका चूर्ण मिलायके पीवे तो पित्तज्वर नष्ट होय। यदि लालचंदन, नेत्रवाला, सोंठ इनको मिलायके पित्तपापडेका काढा करके सेवन करे तो पित्तज्वर चलाजाय इसमें क्या कहना है।

निदिग्धिकामृताशुंठीकषायंपाययेद्भिषक् ॥ ४१ ॥
पिप्पलीचूर्णसंयुक्तंश्वासकासार्दितापहम् ॥
पीनसारुचिवैस्वर्यशूलजीर्णज्वरच्छिदम् ॥ ४२ ॥

अर्थ—१ कटेरी २ गिलोय ३ सोंठ इन औषधोंका काढा पीपलका चूर्ण मिलायके सेवन करे तो श्वास, खाँसी, अर्दितवायु, सरेकमां, अरुचि, स्वरभंग, शूल, और जीर्ण ज्वर इनको दूर करे।

देवदार्वादिकाढा प्रसूतिदोषपर।

देवदारुवचाकुष्ठंपिप्पलीविश्वभेषजम् ॥ कट्फलंमुस्तभूनिंब तिक्तधान्याहरीतकी ॥४३॥ गजकृष्णाचदुःस्पर्शागोक्षुरंधन्व-यासकम् ॥ बृहत्यातिविषाच्छिन्नाकर्कटीकृष्णजीरकम् ॥४४॥

---

१ रोहिष तृणके प्रतिनिधिमें चिरायता डालनेकी संप्रदाय है।

२ यहां दुःस्पर्शा और धन्वयासक दोनो शब्दोंका अर्थ धमासाही होता है अत एव परिभाषान्त कहे प्रमाण धमासा दूना लेना अथवा दु.स्पर्शा शब्द करके कौंचके बीज लेने चाहिये।

क्वाथमष्टावशेषंतुप्रसूतांपाययेत्स्त्रियम् ॥ शूलकासज्वरश्वास मूर्च्छाकंपाशिरोर्तिजित् ॥ ४५ ॥

अर्थ—१ देवदारु, २ वच, ३ कूठ, ४ पीपल, ५ सोंठ, ६ कायफर, ७ नागरमोथा, ८ चिरायता, ९ कुटकी, १० धनिया, ११ जगीहरड, १२ गजपीपल, १३ लाल धमासा, १४ गोखरू, १५ धमासा, १६ कटेरी, १७ अतीस, १८ गिलोय, १९ काकडासिंगी और २० कालाजीरा इन वीस औषधोका अष्टावशेष काढा करके पीवे तो प्रसूतरोग, शूल, खाँसी, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा कपवायु और मस्तकपीडा इन सबको दूर करे ।

क्षुद्रादिकाढा सर्वशीतज्वरोंपर ।

क्षुद्राधान्यकशुंठीभिर्गुडूचीमुस्तपद्मकैः ॥ रक्तचंदनभूनिंबपटोलवृषपौष्करैः ॥४६॥ कटुकेंद्रयवारिष्टभार्ङ्गीपपर्टकैःसमैः ॥ क्वाथंप्रातर्निषेवेतसर्वशीतज्वरच्छिदम् ॥४७॥

अर्थ—१ कटेरी २ धनिया ३ सोंठ ४ गिलोय ५ नागरमोथा ६ पद्माख ७ लालचंदन ८ चिरायता ९ पटोलपत्र १० अडूसा ११ अडकी जड १२ कुटकी १३ इंद्रजौ १४ नीमकी छाल १५ भारंग और १६ पित्तपापडा इन सोलह औपधोका काढा प्रातः-कालमे पीवे तो सर्वशीतज्वर दूर हो ।

मुस्तादिकाढा विषमज्वरपर ।

मुस्ताक्षुद्रामृताशुंठीधात्रीक्वाथःसमाक्षिकः ॥ पिप्पलीचूर्णसंयुक्तोविषमज्वरनाशनः ॥ ४८ ॥

अर्थ--१ नागरमोथा २ कटेरी ३ गिलोय ४ सोंठ और ५ आमले इन पांच औषधोंका काढा सहत और पीपलका चूर्ण डालके पीवे तो विषमज्वर दूर होय ।

पटोलादिकाढा एकाहिकज्वरपर ।

पटोलत्रिफलानिंबद्राक्षाशम्याकविश्वकः ॥ क्वाथःसितामधुयुतोजयेदेकाहिकंज्वरम् ॥ ४९ ॥

अर्थ--१ पटोलपत्र, २ त्रिफला, ३ नीमकी छाल, ४ मुनकादाख, ५ अमलतासका गूदा और ६ अडूसा इन छः औषधोका काढा सहत और खाड डालके पीवे तो नित्य आनेवाला ज्वर दूर होवे ।

पटोलेंद्रयवादारुत्रिफलामुस्तगोस्तनैः ॥ मधुकामृतवासानां

क्वाथंक्षौद्रयुतंपिवेत् ॥ ५० ॥ संततेसततेचैवद्वितीयकतृतीयके ॥ एकाहिकेवाविषमेदाहपूर्वेनवज्वरे ॥ ५१ ॥

अर्थ–१ पटोलपत्र, २ इन्द्रजौ, ३ देवदारु, ४ त्रिफला, ५ नागरमोथा, ६ मुनक्का दाख, ७ मुलहटी, ८ गिलोय और ९ अडूसा इन नव औषधोंका काढा कर सहत मिलायके पीवे तो संततज्वर, सततज्वर, द्वितीयकज्वर, तृतीयकज्वर, एकाहिकज्वर, विषमज्वर, दाहपूर्वकज्वर और नवज्वर इतने रोगोंको दूर करे।

गुडूच्यादिकाढा तृतीयज्वरपर।

गुडूचीधान्यमुस्ताभिश्चंदनोशीरनागरैः ॥ कृतंक्वाथंपिवेत्क्षौद्रसितायुक्तंज्वरातुरः ॥ ५२ ॥ तृतीयज्वरनाशाय तृष्णादाहनिवारणम् ॥

अर्थ–१ गिलोय, २ धनिया, ३ नागरमोथा, ४ लालचन्दन, ५ नेत्रवाला और ६ सोंठ इन छः औषधोंका काढा सहत और खाँड डालके पीवे तो तिजारीका आना दूर होवे।

देवदार्वादिकाढा चातुर्थिकज्वर पर।

देवदारुशिवावासाशालिपर्णीमहौषधैः ॥ ५३ ॥ धात्रीयुतंशृतंशीतंदद्यान्मधुसितायुतम् ॥ चातुर्थिकज्वरश्वासेकासे मंदानलेतथा ॥ ५४ ॥

अर्थ–१ देवदारु, २ जगीहरड, ३ अडूसा, ४ सालपर्णी, ५ सोंठ और ६ आमले इन छः औषधोंका काढा करके शीतल होनेपर सहत और खाड मिलायके पीवे तो चौथिया ज्वर, श्वास और खांसी दूरहों तथा अग्नि प्रदीप्त होती है।

गुडूच्यादिकाढा ज्वरातिसारपर।

गुडूचीधान्यकोशीरशुंठीवालकपर्पटैः ॥ बिल्वप्रतिविषापाठारक्तचंदनवत्सकैः ॥ ५५ ॥ किरातमुस्तेंद्रयवैः क्वथितांशिशिरंपिवेत् ॥ सक्षौद्रंरक्तपित्तघ्नंज्वरातीसारनाशनम् ॥ ५६ ॥

अर्थ–१ गिलोय २ धनिया ३ खस ४ सोंठ ५ नेत्रवाला ६ पित्तपापडा ७ वेलगिरी ८ अतीस ९ पाढ १० लालचन्दन ११ कुटकी छाल १२ चिरायता १३ नागरमोथा और १४ इन्द्रजौ इन चौदह औषधोंका काढा शीतलकर सहत मिलायके पीवे तो रक्तपित्त और ज्वरातिसार दूर होवे।

नागरादिकाढा ज्वरातिसारपर।

नागरंकुटजोमुस्तममृतातिविषातथा ॥
एभिःकृतंपिबेत्क्राथंज्वरातीसारनाशनम् ॥ ५७ ॥

अर्थ—१ सोंठ २ कुडाकी छाल ३ नागरमोथा ४ गिलोय और ५ अतीस इन पाच औपधोंका काढा पीवे तो ज्वरातिसार शात होवे ।

धान्यपंचक आमशूलपर।

धान्यवालकबिल्वाब्दनागरैःसाधितंजलम् ॥
आमशूलहरंग्राहिदीपनंपाचनंपरम् ॥ ५८ ॥

अर्थ—१ धनिया २ नेत्रबाला ३ बेलगिरी ४ नागरमोथा और ५ सोठ इन पाच औषधोका काढा पीनेसे आमशूल दूर करके मलका अवष्टंभ दूरकरै और दीपन पाचन करे ।

धान्यकादिकाढा दीपनपाचनपर।

धान्यनागरजःक्काथोदीपनःपाचनस्तथा ॥
एरंडमूलयुक्तश्चजयेदामानिलव्यथाम् ॥ ५९ ॥

अर्थ—१ धनिया २ सोंठ इन दोनों औषधोंका काढा पीनेसे दीपन पाचन करे और यदि इसमें अडकी जड डाल लेवे तो आमवायुको दूर करता है ।

वत्सकादिकाढा आमातिसार और रक्तातिसारपर।

वत्सकातिविषाबिल्वमुस्तवालकमाशृतम् ॥
अतिसारंजयेत्सामंचिरजंरक्तशूलजित् ॥ ६० ॥

अर्थ—१ कूडाकी छाल २ अतीस ३ बेलगिरी ४ नागरमोथा और ५ नेत्रवाला इन पांच औषधोंका काढा बहुत दिनके आमातिसारको और शूलसहित रक्तातिसारको दूर करे ।

कुटजाष्टककाढाअतिसारादिकोंपर।

कुटजातिविषापाठाधातकीलोध्रमुस्तकैः ॥ ह्रीबेरदाडिमयुतैः
कृतःक्काथः समाक्षिकः ॥ ६१ ॥ पेयोमोचरसेनैवकुटजाष्टक-
संज्ञकः ॥ अतिसाराञ्जयेद्दाहरक्तशूलामदुस्तरान् ॥ ६२ ॥

अर्थ—१ कूडेकी छाल २ अतीस ३ पाढ ४ धायके फूल ५ लोध ६ नागरमोथा ७ नेत्रवाला और ८ अनारकी छाल इन आठ औषधोंका काढा सहत और मोचरस मिलायके पीवे तो जिस अतिसारमें दाह रक्तशूल और आम होय ऐसे घोर अतिसारको नष्ट करे ।

ह्रीबेरादिकाढा अतिसारादिरोगोंपर।

ह्रीबेरधातकीलोध्रपाठालज्जालुवत्सकैः ॥ धान्यकातिविषा-
मुस्तगुडूचीबिल्वनागरैः ॥ ६३ ॥ कृतःकषायःशमयेदतिसा
रंचिरोत्थितम् ॥ अरोचकामशूलास्रज्वरघ्नःपाचनःस्मृतः॥६४॥

अर्थ-१ नेत्रवाला २ धायके फूल ३ लोध ४ पाढ ५ लजालू ६ कूडाकी छाल ७ धनिया ८ अतीस ९ नागरमोथा १० गिलोय ११ वेलगिरी और १२ सोंठ इन बारह औषधोंका काढा पीवे तो बहुत दिनका अतिसार अरुचि आमशूल रुधिरविकार और ज्वर इनको दूर करे इसको पाचन कहा है।

धातक्यादिकाढा बालकोंके सबअतिसारोंपर।

धातकीबिल्वलोध्राणिवातकंगजपिप्पली ॥ एभिःकृतं
शृतंशीतंशिशुभ्यःक्षौद्रसंयुतम् ॥ ६५ ॥ प्रदद्यादवले-
हंवासर्वातीसारशांतये ॥

अर्थ-१ धायके फूल २ वेलगिरी ३ लोध ४ नेत्रवाला और ५ गजपीपल इन पाँच औषधोंके काढेको शीतलकर सहत मिलायके बालकको चटावे तो बालकका अतिसाररोग दूर होवे।

शालपर्ण्यादिकाढा संग्रहणीपर।

शालिपर्णीबलाबिल्वधान्यशुंठीकृतंशृतम् ॥ ६६ ॥
आध्मानशूलसहितांवातजांग्रहणींजयेत् ॥

अर्थ-१ शालपर्णी २ खरेटी ३ वेलगिरी ४ धनिया और ५ सोंठ इन पांच औष-धोंका काढा करके पीवे तो पेटका फूलना और शूल इन करके युक्त वातज संग्रहणीको दूर करे।

चतुर्भद्रादिकाढा आमसंग्रहणीपर।

गुडूच्यतिविषाशुंठीमुस्तैःक्वाथःकृतोजयेत् ॥ ६७ ॥
आमानुषक्तांग्रहणींग्राहीपाचनदीपनः ॥

अर्थ-१ गिलोय २ अतीस ३ सोंठ और ४ नागरमोथा इन चार औषधोंका काढा पीवे तो आमयुक्तग्रहणी दूर होवे तथा ग्राही कहिये मलको अवष्टंभ करनेवाला होकर दीपन पाचन करता है।

इन्द्रयवादिकाढा सब अतिसारोंपर।

यवधान्यपटोलानांक्वाथःसक्षौद्रशर्करः ॥ ६८ ॥

योज्यःसर्वातिसारेषुबिल्वाम्रास्थिभवस्तथा ॥

अर्थ—१ इन्द्रजौ २ धनिया और ३ पटोलपत्र इन तीन औषधोंके काढेमे मिश्री और सहत मिलायके पीवे तो संपूर्ण अतिसार दूर होवे। उसी प्रकार बेलगिरिका अथवा आमकी गुठलीका अथवा आमकी गुठली और बेलगिरीका काढा करके सहत और मिश्री मिलायके पीवे तो रक्त-पित्त और दुर्घट श्वास और खाँसी दूर हो।

त्रिफलादिकाढा कृमिरोगपर।

त्रिफलादेवदारुश्चमुस्तामूषककर्णिका ॥ ६९ ॥ शिग्रुरेतैःकृतःक्काथःपिप्पलीचूर्णसंयुतः ॥ विडंगचूर्णयुक्तश्चकृमिघ्नःकृमिरोगहा ७० ॥

अर्थ—१ हरड २ बहेडा ३ आमला ४ देवदारु ५ नागरमोथा ६ मूसाकर्णी और ७ सहिं-जनेकी छाल इन सात औषधोंका काढा पीपलका चूर्ण वा वायविडंगका चूर्ण मिलायके पीवे तो कृमिज्वर और विवर्णतादि जंतुविकार दूर होय।

फलत्रिकादिकाढा कामला पांडुरोगपर।

फलत्रिकामृतातिक्तानिंबकैरातवासकैः ॥
जयेन्मधुयुतःक्काथःकामलांपांडुतांतथा ॥ ७१ ॥

अर्थ—१ हरड २ बहेडा ३ आमला ४ गिलोय ५ कुटकी ६ नीमकी छाल ७ चिरायता और ८ अडूसेके पत्ते इन आठ औषधोंका काढा कर उसमे सहत मिलायके पीवे तो कामला और पांडुरोगको दूर करे।

पुनर्नवादिकाढा पांडुकासादिरोगोंपर।

पुनर्नवाभयानिंबदार्वीतिक्तापटोलकैः ॥ गुडूचीनागरयुतैःक्काथोगोमूत्रसंयुतः ॥ ७२ ॥ पांडुकासोदरश्वासशूलसर्वांगशोथहा ॥

अर्थ—१ सोठकी जड, २ हरड, ३ नीमकी छाल, ४ दारुहलदी, ५ कुटकी, ६ पटोलपत्र, गिलोय और ८ सोठ इनका काढा गोमूत्र मिलायके पीवे तो पांडुरोग, खाँसी, उदररोग, स, शूल और सर्वांगकी सूजनको नष्ट करे।

वासादिकाढा।

वासाद्राक्षाभयाक्काथःपीतःसक्षौद्रशर्करः ॥ ७३ ॥
निहन्तिरक्तपित्तार्तिश्वासकासान्सुदारुणान् ॥

---

१ किसी २ आचार्यने कडुपटोल फल कहे हैं परंतु "पटोलपत्रं पित्तघ्नं नाडी तस्य कफापहा" इस प्रमाणसे इस जगह परवलके पत्तेही लेने चाहिये।

अर्थ-१ अडूसा २ दाख ३ हरड इनके काढेमे सहत और मिश्री मिलायके पीवे तो रक्तपित्तकी पीडा श्वास और दारुण खाँसी इन सबको दूरकरे।

बांसेका काढा रक्तपित्तक्षयादिपर।

रक्तपित्तक्षयंकासंश्लेष्मपित्तज्वरंतथा ॥ ७४ ॥
केवलोवासकक्काथःपीतःक्षौद्रेणनाशयेत् ॥

अर्थ-केवल अडूसेके काढेमें सहत मिलायके पीवे तो रक्तपित्त क्षय खाँसी और श्लेष्मपित्तज्वरको दूरकरे।

वासादिकाढा ज्वरखाँसीपर।

वासाक्षुद्रामृताक्काथःक्षौद्रेणज्वरकासहा ॥ ७५ ॥

अर्थ-१ अडूसा २ कटेरी और ३ गिलोय इनके काढेमें सहत मिलायके पीवे तो ज्वर खाँसी दूर होवे।

क्षुद्रादिकाढा खाँसीपर।

कासघ्नःपिप्पलीचूर्णयुक्तःक्षुद्राशृतस्तथा ॥

अर्थ-कटेरीके काढेमें पीपलका चूर्ण मिलायके पीवे तो खाँसी दूर होवे।

क्षुद्रादिकाढा श्वासखाँसीपर।

क्षुद्राकुलित्थवासाभिर्नागरेणचसाधितः ॥ ७६ ॥
क्काथःपौष्करचूर्णाढ्यःश्वासकासौनिवारयेत् ॥

अर्थ-१ कटेरी २ कुलथी ३ अडूसा और ४ सोंठ इनके काढेमे पुहकरमूलका चूर्ण मिलायके पीवे तो श्वास खाँसीको दूरकरे।

रेणुकादिकाढा हिक्कापर।

रेणुकापिप्पलीक्काथोहिंगुकल्केनसंयुतः ॥ ७७ ॥
पानादेवहिपंचापिहिक्कानाशयतिक्षणात् ॥

अर्थ-१ रेणुका और २ पीपल इनके काढेमें हींगका कल्क मिलायके पीवे तो पांच प्रकारकी हिचकियोंको तत्काल दूरकरे।

हिंग्वादिकाढा गृध्रसीरोगपर।

हिंगुपुष्करचूर्णाढ्यंदशमूलशृतंजयेत् ॥ ७८ ॥
गृध्रसींकेवलःक्काथःशेफालीपत्रजस्तथा ॥

अर्थ-१ दशमूलके काढेमें भुनी हींग और पुहकरमूलका चूर्ण मिलायके पीवे तो गृध्रसीनाम

घातका रोग दूर होवे अथवा केवल निर्गुंडीके पत्तोंके काढेमें भुनी हींग और पुहकरमूलका चूर्ण मिलायके पीवे तो भी गृध्रसी वायु दूरहोवे ।

बिल्वादि वा गुडूच्यादि क्वाथ ।

बिल्वत्वचोगुडूच्यावाक्वाथःक्षौद्रेणसंयुतः ॥ ७९ ॥
जयेत्रिदोषजांछर्दिंपर्पटःपित्तजांतथा ॥

अर्थ—बेलकी छाल अथवा गिलोयके काढेमें सहत डालके पीवे तो संनिपातकी छर्दि (वमनरोग) को दूरकरे अथवा पित्तपापडेका काढा सहत मिलायके पीनेसे पित्तजन्य छर्दिको दूरकरे।

रास्नादि-पंचकक्वाथ सर्वांगवातपर ।

रास्नामृतामहादारुनागरैरंडजंशृतम् ॥ ८० ॥
सप्तधातुगतेवातेसामेसर्वांगजेपिबेत् ॥

अर्थ—१रास्ना २ गिलोय ३ देवदारु ४ सोठ और ५ अण्डकी जड इनका काढा सप्तधातुगत वायु, आमवात और सर्वांगगतवातके रोगमें पीना चाहिये ।

रास्नासप्तक ।

रास्नागोक्षुरकैरंडदेवदारुपुनर्नवाः ॥ ८१ ॥
गुडूच्यारग्वधौचैवक्वाथएषांविपाचयेत् ॥
शुण्ठीचूर्णेनसंयुक्तः पिबेज्जंघाकटिग्रहे ॥ ८२ ॥
पार्श्वपृष्ठोरुपीडायामामवातेसुदुस्तरे ॥

अर्थ—१ रास्ना २ गोखरू ३ अण्ड ४ देवदारु ५ पुनर्नवा ६ गिलोय और ७ अमलतासका गूदा इनके काढेमें सोंठका चूर्ण मिलायके जघा और कमरके रहजानेमें एवं पसवाडे, पीठ, ऊरु और आमवात इन रोगोंमें यह काढा पीना चाहिये तो उक्त रोग दूर हों ।

महारास्नादिकाढा संपूर्णवायुपर ।

रास्नाद्विगुणभागास्यादेकभागास्तथापरे ॥ ८३ ॥ धन्वयासबलैरंडदेवदारुशठीवचा ॥ वासकोनागरंपथ्याचव्यामुस्तापुनर्नवा ॥ ८४ ॥ गुडूचीवृद्धदारुश्चशतपुष्पाचगोक्षुरः ॥ अश्वगंधाप्रतिविषाकृतमालःशतावरी ॥ ८५ ॥ कृष्णासहचरश्चैवधान्यकंबृहतीद्वयम् ॥ एभिःकृतंपिबेत्क्वाथंशुंठीचूर्णेनसंयुतम् ॥ ८६ ॥

कृष्णचूर्णेनवायोगराजगुग्गुलुनाथवा॥अजमोदादिनावापितैलेनैरंडजेनवा ॥८७॥ सर्वांगकंपेकुब्जत्वेपक्षाघातेपबाहुके॥ गृध्रस्यामामवातेचश्लीपदेचापतानके ॥८८॥ अंडवृद्धौतथाध्मानेजंघाजानुगदार्दिते ॥शुक्रामयेमेढ्ररोगेवंध्यायोन्याशयेषु च ॥८९॥ महारास्नादिराख्यातोब्रह्मणागर्भकारणम् ॥

अर्थ—१रास्ना दोतोले और २ धमासा ३ खिरेटी ४ अंडकी जड ५ देवदारु ६कचूर ७ वच ८ अडूसेका पंचांग ९ सोठ १० हरडकी छाल ११ चव्य १२ नागरमोथा १३ सोंठकी जड १४ गिलोय १५ विधायरा १६ सौंफ १७ गोखरू १८ असगंध १९ अतीस २० अमलतासका गूदा २१ शतावर२२ पीपल छोटी २३ पियावासा २४ धनिया और २५—२६ दोनों छोटीवडी कटेरी एक २ तोले। इन छब्बीस औषधोंके काढेमे सोठका चूर्णमिलायके अथवा पीपलके चूर्णको मिलायके अथवा योगराजगूगलके साथ अथवा अजमोदादिचूर्णके साथ अथवा अडीके तेलके साथ इस काढेको पीवे तो सर्वांगकंप, कुवडापना, पक्षावात, अपबाहुक, गृध्रसी, आमवात, श्लीपद, अपतानवायु, अंडवृद्धि, अफरा, जंघा जानुकी पीडा, शुक्रके दोष, लिंगके रोग, वंध्याके योनि और गर्भाशयके रोग इन सबको दूर करे। ब्रह्मदेवने गर्भस्थापनके कारण यह महारास्नादि काथ कहा है।

एरंडसप्तक स्तनादिगतवायुपर।

एरंडोबीजपूरश्चगोक्षुरोबृहतीद्वयम् ॥९०॥ अश्मभेदस्तथाबिल्वएतन्मूलैःकृतःशृतः ॥ एरंडतैलहिंग्वाढ्यःसयवक्षारसैंधवः ॥९१॥ स्तनस्कंधकटीमेढ्रहृदयोत्थव्यथांजयेत् ॥

अर्थ—१ अंडकी जड २ बिजोरेकी जड ३ गोखरू ४ छोटी कटेरी ५ वडी कटेरी ६ पाषाणभेद और ७ बेलगिरि इन सात औषधोंकी जडके काढेमें अडीका तेल और भुनी हींग तथा जवाखार और सैंधानमक इनका चूर्ण मिलायकर पीवे तो स्तन, कन्धा, कमर, लिंग और छाती इन ठिकानोपर होनेवाली वातसंबंधी पीडाको दूरकरे।

नागरादिकाढा वातशूलपर।

नागरैरंडयोःक्राथःक्राथइंद्रयवस्यवा ॥९२॥ हिंगुसौवर्चलोपेतोवातशूलनिवारणः ॥

अर्थ—१ सोंठ २ अंडकी जड इन दोनों औषधोंका काढा करके उसमें भुनी हींग और कालानमक मिलायके पीवे तो अथवा इन्द्रजौके काढेमें कालानमक और हींग मिलायके पीवे तो वातसंबंधी पीडा दूर होवे।

त्रिफलादिकाढा पित्तशूलपर ।

त्रिफलारग्वधक्काथःशर्कराक्षौद्रसंयुतः ॥ ९३ ॥
रक्तपित्तहरोदाहपित्तशूलनिवारणः ॥

अर्थ—१ हरड २ वहेडा ३ आमला और ४ अमलतास इन चार औषधोंके काढेमें खॉड और सहत मिलायके पीवे तो रक्तपित्त दाह और पित्तशूल ये दूर हों ।

एरंडमूलकादिकाढा कफशूलपर ।

एरंडमूलंद्विपलंजलेऽष्टगुणितेपचेत् ॥ ९४ ॥
तत्काथोयावशूकाढ्यःपार्श्वहृत्कफशूलहा ॥

अर्थ—१ अंडकी जड दोपैल ले उसमें आठपल पानी मिलायके काढा करे जब अष्टावशेष काढा होजावे तब उतार छान उसमें जवाखार मिलायके पीवे तो पसवाडे और हृदयमें होनेवाला कफके शूलका नाश होवे ।

दशमूलादिकाढा हृद्रोगादिकोंपर ।

दशमूलकृतःक्काथः सयवक्षारसैंधवः ॥ ९५ ॥
हृद्रोगगुल्मशूलार्तिकासश्वासांश्चनाशयेत् ॥

अर्थ—दशमूलका काढा कर उसमें जवाखार और सैंधानमक मिलायके पीवे तो हृदयरोग, गोला, शूल, श्वास और खाँसी इनका नाश करे ।

हरीतक्यादिकाढा मूत्रकृच्छ्रपर ।

हरीतकीदुरालभाकृतमालाकगोक्षुरैः॥९६॥पाषाणभेदसहितैः
क्काथोमाक्षिकसंयुतः ॥विबंधेमूत्रकृच्छ्रेचसदाहेसरुजेहितः ॥९७॥

अर्थ— १ छोटीहरड २ धमासा ३ अमलतासका गूदा ४ गोखरू और ५ पाषाणभेद इन पांच औषधोंका काढा कर उसमें सहत मिलायके पीवे तो दाह मूत्रका रुकना तथा वायुका अवरोध इन उपद्रवयुक्त मूत्रकृच्छ्र दूर होवे ।

वीरतर्वादिकाढा मूत्राघातादिकोंपर ।

वीरतरुर्वृक्षवंदाकाशःसहचरत्रयम् ॥ कुशद्वयनलोगुंद्राबकपु-
ष्पोऽग्निमंथकः ॥ ९८ ॥ मूर्वापाषाणभेदश्चस्योनाकोगोक्षुर-
स्तथा ॥ अपामार्गश्चकमलंब्राह्मीचेतिगणोवरः ॥ ९९ ॥वी-

१ मागधपरिभाषाके मानसे दो पलके व्यावहारिक आठ तोले होते हैं ।

रतवर्यादिरित्युक्तः शर्कराश्मरिकृच्छ्रहा ॥ मूत्राघातंवायुरोगा-न्नाशयेन्निखिलानपि ॥ १०० ॥

अर्थ—१ कोहवृक्षकी छाल २ बाँदा ३ कांस ४ सफेद ५ पीला और ६ काला ऐसा पियाँ-बाँसा ७ कुशा ८ डाभ ९ देवनल १० गुंद्रा (पटेरे) ११ वकपुष्प (शिवलिंगी) १२ अरनीकी जड १३ मूर्वा १४ पाषाणभेद १५ टेंटूकी जड १६ गोखरू १७ ओंगा (चिरचिटा) १८ कनल और १९ ब्राह्मीके पत्ते इन उन्नीस औषधोंका काढा करके पीवे तो यह वीरतर्वादिकाथ शर्करा पथरी मूत्रकृच्छ्र मूत्राघात और सर्व प्रकारके बादीके रोगोंको दूर करे।

एलादिकाढा पथरीशर्करादिकपर।

एलामधुकगोकंटरेणुकैरंडवासकः ॥ कृष्णाश्मभेदसहितःक्वाथ एषांसुसाधितः ॥ १०१ ॥ शिलाजतुयुतःपेयःशर्कराश्मरिकृच्छ्रहा ॥

अर्थ—१ इलायची छोटीके बीज २ मुलहटी ३ गोखरू ४ रेणुकाँबीज ५ अडकी जड ६ अडूसा ७ पीपर और ८ पाषाणभेद इन आठ औषधोंका काढा करके उसमे शिलाजीत मिलायके पीवे तो शर्करा पथरी और मूत्रकृच्छ्र इनको दूर करे।

समूलगोक्षुरक्काथःसितामाक्षिकसंयुतः ॥ १०२ ॥ नाशयेन्मूत्रकृच्छ्राणितथाचोष्णसमीरणम् ॥

अर्थ—जडसहित गोखरूके वृक्षका काढा कर उसमें खाँड और सहत मिलायके पीवे तो मूत्र-कृच्छ्र और उष्णवात (गरमीका रोग) दूर होताहै।

त्रिफलादिकाढा प्रमेहपर।

वरदार्व्यब्ददारूणांक्वाथःक्षौद्रेणमेहहा ॥ १०३ ॥ वत्सकात्रिफलादार्वीमुस्तकोबीजकस्तथा ॥

अर्थ—१ हरड २ बहेडा ३ आमला ४ दारुहलदी ५ नागरमोथा और ६ देवदारु इनका काढा सहत मिलायके पीवे तो प्रमेह दूर हो। १ कुडाकी छाल २ हरड ३ बहेडा ४ आमला ५ दारुहलदी ६ नागरमोथा ७ बीजक इन सात औषधोंका काढा सहत मिलायके पीवे तो प्रमेहको दूर करे।

---

१ गुन्द्राको हिन्दीमे पटेरे और मरैठीमे गोंदणी गवत कहते हैं। २ ब्राह्मी रूखडी गंगायमुनानदीके खादरमें बहुत होती है। इसका पृथ्वीमे फैला हुआ छत्ता होता है। पत्ते गोल कुछ सुकडे हुए होते हैं। इसके दो भेद हैं एक ब्राह्मी दूसरी मंडूकपर्णी। ३ रेणुकाबीज प्रसिद्ध है. इसके काले २ दाने होते हैं।

दूसरा फलत्रिकादिकाढा प्रमेहपर ।

फलत्रिकाब्ददार्वीणांविशालायाःशृतंपिबेत् ॥ १०४ ॥
निशाकल्कयुतंसर्वप्रमेहविनिवृत्तये ॥

अर्थ-१ हरड २ बहेडा ३ आँवला ४ दारुहल्दी ५ नागरमोथा और ६ इन्द्रायनकी जड इन छः औषधोंके काढेमें हल्दी मिलायके पीवे तो सर्व प्रकारके प्रमेह दूर होवें ।

दार्व्यादिकाढा प्रदररोगपर ।

दार्वीरसांजनंमुस्तंभल्लातःश्रीफलंवृषः ॥ कैरातश्चपिबेदेषांक्वाथं शीतंसमाक्षिकम् ॥ जयेत्सशूलंप्रदरंपीतश्वेतासितारुणम् ॥१०५॥

अर्थ-१ दारुहल्दी २ रसोत ३ नागरमोथा ४ भिलावा ५ बेलगिरी ६ अडूसा और ७ चिरायता इन सात औषधोंके काढेको शीतल करके उसमे सहत मिलायके पीवे तो शूलसहित पीला सफेद काला और लाल ऐसे रंगवाला स्त्रियोंका प्रदररोग दूर हो ।

न्यग्रोधादिकाढा व्रणादिरोगोंपर ।

न्यग्रोधप्लक्षकोशाम्रवेतसोबदरीतुणिः ॥ मधुयष्टिप्रियालुश्चलोध्र- द्वयमुदुंबरः ॥१०६॥ पिप्पलयश्चमधूकश्चतथापारिसपिप्पलः ॥ सल्लकीतिंदुकीजंबूद्वयमाम्रतरुः शिवा ॥ १०७ ॥ कदंबककु- भौचैवभल्लातकफलानिच ॥ न्यग्रोधादिगणक्वाथंयथालाभंच कारयेत् ॥ १०८ ॥ अयंक्वाथोमहाग्राहीव्रण्योभग्नंचसाधयेत्॥ योनिदोषहरोदाहमेदोमेहविषापहः ॥ १०९ ॥

अर्थ-१ बडकी छाल २ पाखरकी छाल ३ अंबाडेकी छाल ४ वेतकी छाल ५ बेरकी छाल ६ तुनी (तूत वृक्षकी छाल) ७ मुलहठी ८ चिरोंजी ९ लाल लोध १० सफेद लोध ११ गूलरकी छाल १२ पीपलकी छाल १३ महुआकी छाल १४ पारिसपीपलकी छाल १५ सालई वृक्षकी छाल १६ तेंदू १७ छोटी जामुन १८ बडी जामुनकी छाल १९ आम २० छोटी हरड २१ कदबकी छाल २२ कोहकी छाल और २३ भिलाए इन तेईस औषधोंका काढा करके पीवे तो मलका अवष्टंभ होकर व्रणरोग, अस्थिभग, योनिदोष, दाह, मेदोरोग और विषदोष ये नष्ट होवें ।

बिल्वादिकाढा मेदोरोगपर ।

बिल्वोग्निमंथः स्योनाकः काश्मरी पाटला तथा ॥

काथएषांजयेन्मेदोदोषंक्षौद्रेणसंयुतः ॥ ११० ॥

अर्थ—१ वेलागिरी २ अरनी ३ टेंटू ४ कंभारी ५ पाढल इस वृहत्पंचमूलका काढा करके उसमें सहत मिलायके पीवे तो सब शरीरमे मेद बढकर जो पीडा होती है वह दूर होवे।

दूसरा त्रिफलादिकाढा।

क्षौद्रेणत्रिफलाक्वाथःपीतोमेदोहरःस्मृतः ॥
शीतीभूतंतथोष्णांबुमेदोहृत्क्षौद्रसंयुतम् ॥ १११ ॥

अर्थ—त्रिफलाका काढा करके उसमे सहत मिलायके पीवे तो मेदरोग नष्ट होवे उसी प्रकार औटेहुए जलको शीतकर उसमें सहत मिलायके पीवे तो मेदरोग दूर होवे।

चव्यादिकाढा उदररोगपर।

चव्यचित्रकविश्वानांसाधितोदेवदारुणा ॥
काथस्त्रिवृच्चूर्णयुतोगोमूत्रेणोदराञ्जयेत् ॥ ११२ ॥

अर्थ—१ चव्य २ चीतेकी छाल ३ सोंठ और ४ देवदारु इन चार औषधोंका काढा कर उसमें निशोथका चूर्ण और गोमूत्र मिलायके पीवे तो संपूर्ण उदररोग दूर होवें।

पुनर्नवादिकाढा शोथोदरपर।

पुनर्नवामृतादारुपथ्यानागरसाधितः ॥
गोमूत्रगुग्गुलुयुतः क्वाथःशोथोदरापहः ॥ ११३ ॥

अर्थ—१ सॉंठीकी जड २ गिलोय ३ देवदारु ४ जगीहरड और ५ सोंठ इन पाच औषधोंका काढा करके उसमे गूगल और गोमूत्र मिलायकर पीनेसे सूजनवाला उदररोग नष्ट होवे।

पथ्यादिकाढा यकृत्प्लीहादिकोंपर।

पथ्यारोहीतकक्वाथंयवक्षारकणायुतम् ॥
प्रातःपिबेद्यकृत्प्लीहगुल्मोदरनिवृत्तये ॥ ११४ ॥

अर्थ—१ जगीहरड २ रक्तरोहिडा इनदोनो औषधोंका काढा कर उसमें पीपलका चूर्ण और जवाखार मिलायके प्रातःकाल पीवे तो यकृत् रोग और प्लीहाका रोग तथा गुल्मोदर इनको दूर करे।

---

१ रक्तरोहिडा प्रसिद्ध वृक्ष है। २ यकृत् और प्लीहा ये दोनो मांसकेपिंड हैं। (जिनको इनके विशेष लक्षण जानने होवें प्रथम खंडमे शारीरकमें देखलेवे) सूजन आयकर जिसमे रुधिर नष्ट होजावे तथा राध वगैरह होय उस रोगको क्रमसे प्लीहोदर और यकृद्दाल्युदर कहते हैं।

पुनर्नवादिकाढा सूजनपर ।

पुनर्नवादारुनिशानिशाशुंठीहरीतकी ॥ गुडूचीचित्रको भार्ङ्गीदेवदारुचतैःशृतः ॥ ११५ ॥ पाणिपादोदरमुख-प्राप्तशोफंनिवारयेत् ॥

अर्थ–१ सोंठकी जड २ दारुहल्दी ३ हल्दी ४ सोंठ ५ जंगीहरड ६ गिलोय ७ चीतेकी छाल ८ भारंगी ९ देवदारु इन नौ औषधोंका काढा करके पीवे तो सपूर्ण अंगकी सूजन दूर होवे ।

त्रिफलादिकाढा वृषणशोथपर ।

फलत्रिकोद्भवंक्काथंगोमूत्रेणैवपाययेत् ॥ ११६ ॥ वातश्लेष्मकृतंहंतिशोथंवृषणसंभवम् ॥

अर्थ–१ हरड २ बहेडा ३ आँवला इन तीन औषधोंका काढा करके उसमें गोमूत्र मिलायके पीवे तो वातकफजन्य जो अंडकोषोकी सूजन है वह दूर होवे ।

रास्नादिकाढा अंत्रवृद्धिपर ।

रास्नाऽमृताबलायष्टीगोकंटैरंडजःशृतः ॥ ११७ ॥ एरंडतैलसंयुक्तोवाद्धिमन्त्रोद्भवांजयेत् ॥

अर्थ–१ रास्ना २ गिलोय ३ खरेंटी ४ मुलहटी ५ गोखरू६ अंडकी जड इन छःऔषधोंका काढा करके उसमें अंडीका तेल मिलायके पीवे तो अंत्रवृद्धि (अर्थात् अन्तर्गत वायुकि जिससे अण्डकोश वडे होते हैं) रोग दूरहोवे ।

कांचनारादिकाढा गंडमालापर ।

कांचनारत्वचःक्काथःशुण्ठीचूर्णेननाशयेत् ॥ ११८ ॥ गण्डमालांतथा क्काथःक्षौद्रेणवरुणत्वचः ॥

अर्थ–कचनार वृक्षकी छालका काढा कर उसमे सोंठका चूर्ण मिलायके पीवे अथवा उसी प्रकार वरना वृक्षकी छालका काढा कर उसमें सहत मिलायके पीवे तो गंडमाला दूर होवे ।

शाखोटकादिकाढा गंडमालापर ।

शाखोटवल्कलक्काथंगोमूत्रेणयुतंपिबेत् ॥ ११९ ॥ श्लीपदानांविनाशायमेदोदोषनिवृत्तये ॥

अर्थ–सहोडाकी छालका काढा करके उसमें गोमूत्र मिलायके पीवै तो श्लीपदरोग (कि जो विशेष करके पैरोंमें होताहै जिसको पीलपाव कहतेहैं वह) और मेदोरोग ये दूर हों।

पुनर्नवादिकाढा अंतर्विद्रधिपर।

पुनर्नवावरुणयोःक्वाथोंतर्विद्रधींजयेत् ॥ १२० ॥
तथाशिग्रुमयः क्वाथो हिंगुकल्केनसंयुतः ॥

अर्थ–१ पुनर्नवा २ वरना इन दोनों औषधोंका काढा पीनेसे अतर्विद्रधिको दूर करे। अथवा सहँजनेकी छालका काढा करके उसमें भुनी हींग डालके पीवै तो भी अंतविंद्रधि रोग दूर होय।

वरुणादिकाढा मध्यविद्रधिपर।

वरुणादिगणक्वाथमपक्वेमध्याविद्रधौ ॥ १२१ ॥
ऊपकादिरजोयुक्तंपिबेच्छमनहेतवे ॥

अर्थ–वरुणादिक औषधोंका गण जो आगे कहेंगे उसका काढा करके तथा ऊपकादि औषधोंका चूर्ण जो आगे कहेंगे उसका चूर्ण करके उस काढेमें मिलायके पीवै तो पक्क नहीं हुआ जो विद्रधिरोग सो दूर होवे।

वरुणादिकाढा।

वरुणोवकपुष्पश्चविल्वापामार्गचित्रकाः ॥ १२२॥ अग्निमंथद्व-यंशिग्रुद्वयंचबृहतीद्वयम् ॥ सैरेयकत्रयंमूर्वामेषशृंगीकिरातकः ॥ १२३ ॥ अजशृंगीचाबिंबीचकरंजश्चशतावरी ॥ वरुणादि-गणक्वाथःकफमेदोहरःस्मृतः ॥ १२४ ॥ हंतिगुल्मंशिरःशूलं तथाभ्यंतरविद्रधीन् ॥

अर्थ–१ वरनाकी छाल २ शिवलिंगी ३ कोमल बेलफल ४ ओगा ५ चित्रक ६ छोटी अरनी ७ बडी अरनी ८ कडुआ सहँजना ९ मीठा सहँजना १० छोटीकटेरी ११ बडी कटेरी १२ पीले फूलका पियावांसा १३ सफेद फूलका पियावासा १४ काले फूलका पियावांसा १५ मूर्वा १६ काकडासिंगी १७ चिरायता १८ मेंढासिंगी १९ कडुई कंदूरीकी जड अथवा पत्ते २० कंजा और २१ शतावर इन इक्कीस औषधोंका काढा करके पीवे तो कफमेदरोग, मस्तकशूल और गोलाका रोग ये दूर हों अतर्विद्रधि नामका

---

१ इस जगह वकपुष्प करके कमल लेना अथवा फूलप्रियगु लेना चाहिये।

२ मेषशृंगी प्रसिद्ध है इनकी बेल होती है उसको लौकिकमे मेढासिगी कहते हैं।

रोग होताहै वह दूर हो, मूलके श्लोकमें (तथा विद्रधिपीनसान्) ऐसाभी पाठ है उस पक्षमें पीनसरोगकोभी दूरकरे ऐसा अर्थ जानना ।

ऊषकादिगण ।

ऊषकस्तुत्थकंहिंगुकाशीसद्वयसैंधवम् ॥ १२५ ॥
सशिलाजतुकृच्छ्राश्मगुल्ममेदःकफापहम् ॥

अर्थ—१ खारीमिट्टी २ मोचरस शुद्धकिया हुआ ३ भुनी हींग ४ सफेद हीराकसीस ५ पीला हीराकसीस (इसको शुद्धकरके लेना चाहिये) ६ सैंधानमक और ७ शिलाजीत इन सात औषधोका चूर्ण सेवन करे तो मूत्रकृच्छ्र, पथरी, गोला और मेदरोगको दूरकरे ।

खादिरादिकाढा भगंदररोगपर ।

खदिरत्रिफलाक्वाथोमहिषीघृतसंयुतः ॥ १२६ ॥
विडंगचूर्णयुक्तश्चभगंदरविनाशनः ॥

अर्थ—१ खैरसार २ हरड ३ बहेडा ४ आमला इन चार औषधोंका काढा कर उसमें भैंसका घी और वायविडंगका चूर्ण मिलाय पीवे तो भगंदर रोग दूर होवे ।

पटोलादिकाढा उपदंशपर ।

पटोलत्रिफलानिंबकिरातखदिरासनैः १२७ ॥
क्वाथःपीतोजयेत्सर्वानुपदंशान्सगुग्गुलः ॥

अर्थ—१ पटोलपत्र २ हरड ३ बहेडा ४ आमला ५ नीमकी छाल ६ चिरायता ७ खैरसार और ८ विजैसार इन आठ औषधोका काढा करके उसमे गूगल मिलायके पीवे तो सपूर्ण उपदंश (गरमीके रोग) दूर हों ।

अमृतादिकाढा वातरक्तपर ।

अमृतैरंडवासानांक्वाथएरंडतैलयुक् ॥ १२८ ॥
पीतःसर्वांगसंचारिवातरक्तंजयेद्ध्रुवम् ॥

अर्थ—१ गिलोय २ अडकी जड और ३ अडूसा इन तीन औषधोंका काढा कर उसमे अडीका तेल मिलायके पीवे तो सपूर्ण अंगमे विचरनेवाला वातरक्त रोग दूर होवे ।

दूसरा पटोलादिकाढा ।

पटोलंत्रिफलातिक्तागुडूचीचशतावरी ॥ १२९ ॥

---

१ असन शब्दके दो अर्थ हैं एक विजैसार दूसरा वनकुलथी परतु इस जगह विजयसारही लेना चाहिये ।

एषक्काथोजयेत्पीतोवातास्रंदाहसंयुतम् ॥

अर्थ—१ पटोलपत्र २ हरड ३ बहेडा ४ आमला ५ कुटकी ६ गिलोय और ७ सतावर इन सात औषधोंका काढा करके पीवे तो दाहयुक्त जो वातरक्त सो दूर हो।

अवल्गुजादिकाढा श्वेतकुष्ठपर।

क्वाथोऽवल्गुजचूर्णाढ्योधात्रीखदिरसारयोः ॥ १३० ॥
जयेत्सशीलितोनित्यंश्वित्रंपथ्याशिनांनृणाम् ॥

अर्थ—आमला और खैरसार इन दोनों औषधोंका काढा करके उसमें बावचीका चूर्ण मिलायके पीवे तो पथ्यसे रहनेवाले मनुष्यका सफेद कुष्ट दूर हो।

लघुमंजिष्ठादिकाढा वातरक्तकुष्ठादिकोंपर।

मंजिष्ठात्रिफलातिक्तावचादारुनिशामृता ॥ १३१ ॥
निंबश्चैषांकृतःक्काथोवातरक्तविनाशनः ॥
पामाकपालिकाकुष्ठरक्तमंडलजिन्मतः ॥ १३२ ॥

अर्थ—१ मंजीठ २ हरड ३ बहेडा ४ आमला ५ कुटकी ६ वच ७ दारुहल्दी ८ गिलोय और ९ नीमकी छाल इन नौ औषधोंका काढा करके पीवे तो वातरक्त खाज और कापालिककुष्ट तथा रुधिरके विकार (देहमे काले चकत्तोका होना) इतने रोग दूर होवें।

बृहन्मंजिष्ठादिकाढाकुष्ठादिकोंपर।

मंजिष्ठामुस्तकुटजगुडूचीकुष्ठनागरैः ॥ भार्ङ्गीक्षुद्रावचानिंबनिशाद्वयफलत्रिकैः ॥ १३३ ॥ पटोलकटुकीमूर्वाविडंगासनचित्रकैः ॥ शतावरीत्रायमाणाकृष्णेंद्रयववासकैः ॥ १३४ ॥ भृंगराजमहादारुपाठाखदिरचंदनैः॥ त्रिवृद्वरुणकैरातबाकुचीकृतमालकैः ॥ १३५ ॥ शाखोटकमहानिंबकरंजातिविषाजलैः ॥ इंद्रवारुणिकानंतासारिवापर्पटैः समैः ॥१३६॥ एभिः कृतंपिबेत्क्काथंकणागुग्गुलसंयुतम् ॥ अष्टादशसुकुष्ठेषुवातरक्तार्दितेतथा ॥ १३७ ॥ उपदंशेश्लीपदेचप्रसुतौपक्षवातके ॥ मेदोदोषेनेत्ररोगेमंजिष्टादिप्रशस्यते ॥ १३८ ॥

अर्थ–१ मंजीठ २ नागरमोथा ३ कूडाकी छाल ४ गिलोय ५ कूठ ६ सोंठ ७ भारंगी ८ कटेरीका पचाग ९ वच १० नीमकी छाल ११ हल्दी १२ दारुहल्दी १३ हरड १४ बहेडा १५ आँवला १६ पटोलपत्र १७ कुटकी १८ मूर्वा १९ वायविडंग २० विजैसार २१ चीतेकी छाल २२ शतावर २३ त्रायमाण २४ पीपल २५ इन्द्रजौ २६ अडूसेके पत्ते २७ भाँगरा २८ देवदारु २९ पाठ ३० खैरसार ३१ लालचंदन ३२ निसोथ ३३ वरनाकी छाल ३४ चिरायता ३५ बावची ३६ अमलतासका गूदा ३७ सहोंडाकी छाल ३८ क्कायन ३९ कंजा ४० अतीस ४१ नेत्रवाला ४२ इन्द्रायनकी जड ४३ धमासा ४४ सारवा और ४५ पित्तपापडा इन पैंतालीस औषधोंको कूट पीस जवकूट करके १ तोलेका काढाकर उसमें पीपलका चूर्ण और गूगल मिलायके पीवे तो अठारह प्रकारके कोढरोग वातरक्त उपदश अर्थात् गरमीका रोग श्लीपदरोग अंगशून्य होना पक्षाघात वायु मेदरोग और नेत्ररोग ये सब दूर हों।

यदि इसम कचनारकी छाल ववूलकी छाल सालसाकी लकडी और सरफोंका ये मिलायकर काढा करें अथवा इसका भभकेमें अर्क निकाल लेवे तो यह खूनकी सब बीमारियोंको दूर करे यदि इसमें सहत अथवा उन्नावका शरबत मिलाय लिया जावे तो परमोत्तम है यह हमारा अनुभव कियाहुआ है।

पथ्यादिकाढा शिरोरोगादिकोंपर।

पथ्याक्षधात्रीभूनिंबनिशानिंबामृतायुतैः ॥ कृतःक्वाथः षडंगोयंसगुडःशीर्षशूलहा ॥ १३९ ॥ भ्रूशंखकर्णशूलौचतथार्धशिरसोरुजम् ॥ सूर्यावर्तंशंखकंचदंतघातंचतद्रुजम् ॥ १४० ॥ नक्तांध्यंपटलंशुक्रंचक्षुःपीडांव्यपोहति ॥

अर्थ–१ हरड २ बहेडा ३ आँवला ४ चिरायता ५ हल्दी ६ नीमकी छाल और ७ गिलोय इन सात औषधोंका काढा करके उसमें गूगल मिलायके पीवे तो मस्तकशूल, भौंहँ, शख (कनपटी) और कानसंबंधी शूल, आधाशीशी, सूर्यावर्त्त (सूर्योदयसे दो पहरपर्यंत जो शूल मस्तकमे वढता है वह हैं,) शंखका-शूल, दाँतोंके हिलनेसे जो पीडा होती है वह, साधारण दंतशूल, रतौंध नेत्रोंके पटलगत रोग होते हैं वे सब नेत्रका फूला तथा नेत्रोंका दूखना इन सब उपद्रवसहित रोगोको यह पथ्यादि काढा दूर करता है।

वासादिकाढा नेत्ररोगपर।

वासाविश्वामृतादार्वीरक्तचंदनचित्रकैः ॥ १४१ ॥ भूनिंबनिंब-

१ कूटकी जड लेना ऐसाभी किसी २ आचार्यका मत है।

कटुकापटोलत्रिफलाब्दैः ॥ यवकालिंगकुटजैःक्वाथःसर्वाक्षिरोगहा ॥१४२॥ वैस्वर्यपीनसंश्वासंनाशयेदुरसःक्षतम् ॥

अर्थ—१ अडूसा २ सोंठ ३ गिलोय ४ दारुहल्दी ५ लालचंदन ६ चीतेकी छाल ७ चिरायता ८ नीमकी छाल ९ कुटकी १० पटोलपत्र ११ हरड १२ बहेडा १३ आमला १४ नागरमोथा १५ जौ १६ इन्द्रजौ और १७ कुडाकी छाल इन सत्रह औषधोंका काढा करके पीवे तो संपूर्ण नेत्रके रोग, स्वरभंग, पीनसरोग, श्वास और उरःक्षत ये संपूर्ण रोग दूर होवें।

दूसराअमृतादिकाढा।

अमृतात्रिफलाक्वाथःपिप्पलीचूर्णसंयुतः ॥ १४३ ॥
सक्षौद्रःशीलितोनित्यंसर्वनेत्रव्यथांजयेत् ॥

अर्थ—१ गिलोय २ हरड ३ बहेडा ४ आमला इन चार औषधोंका काढा करके उसमें पीपलका चूर्ण और सहत मिलायके पीवे तो संपूर्ण नेत्रके रोग दूर होते हैं।

व्रणादिकप्रक्षालनकरनेका काढा।

अश्वत्थोदुंबरप्लक्षवटवेतसजंशृतम् ॥ १४४ ॥
व्रणशोथोपदंशानांनाशनंक्षालनात्स्मृतम् ॥

अर्थ—१ पीपल २ गूलर ३ पाखर ४ वड और ५ वेत[1] इन पाँच औषधोंके छालके काढेसे व्रण, सूजन, गर्मीका रोग (जो लिंगमे होता है) तीनवार धोनेसे नष्ट होता है।

प्रमथ्यादिकषायभेद।

प्रमथ्याप्रोच्यतेद्रव्यपलात्कल्कीकृताच्छृतात् ॥ १४५ ॥
तोयेऽष्टगुणितेतस्याःपानमाहुःपलद्वयम् ॥

अर्थ—एकपल औषध लेकर उसको कूटपीस कर कल्क करे। यदि औषध सूखी हुई हो तो उसको भिगोकर कल्क करे। उसमें आठगुना जल डालके औटावे। जब दो पल जल शेष रहे तब उतारले इसको प्रमथ्या कहते हैं। इसके सेवन करनेका प्रमाण दो पल है।

मुस्तादिप्रमथ्यारक्तातिसारपर।

मुस्तकेंद्रयवैःसिद्धाप्रमथ्याद्विपलोन्मिता ॥ १४६ ॥
सुशीतामधुसंयुक्तारक्तातिसारनाशिनी ॥

अर्थ—१ नागरमोथा और २ इन्द्रजौ इन दोनों औषधोंको १ पल ले कूट पीसके कल्क-

---

१ यदि वेत न मिले तो जलवेतस लेनी चाहिये।

करै । उसमें आठगुना जल मिलायके २ पल शेष रहने पर्यंत औटावे । फिर उतार शीतल करके उसमें सहत मिलायके पीवे तो रक्तातिसार दूर होवे ।

यवागूका विधान ।

साध्यंचतुष्पलंद्रव्यंचतुःषष्टिपलेजले ॥ १४७ ॥
तत्क्वाथेनार्धशिष्टेनयवागूंसाधयेद्घनाम् ॥

अर्थ–चारपल औषध लेकर कुछ थोडीसी कूटके उसमे ६४ चौसठ पल पानी मिलायके औटावे । जब आधा जल शेष रहे तब उतार ले । फिर उसको छानके उसमें दूसरे द्रव्य चावलै आदि जो कहे हैं वे मिलायके फिर औटावे और जब गाढी होजावे तब उतार ले । इसे यवागू कहते हैं ।

आम्रादियवागू संग्रहणीपर ।

आम्राम्रातकजंबूत्वक्कषायेविपचेद्बुधः ॥ १४८ ॥
यवागूंशालिभिर्युक्तांतांभुक्त्वाग्रहणींजयेत् ॥

अर्थ–१ आम २ अंबाडा ३ जामुन इन तीन वृक्षोंकी चार पल छालको जव कूट कर चौसठगुने पानीमें डालके औटावे । जब आधा पानी रह जावे तब उतारके इस जलको छानले । फिर उसमें चार पल चावल डालके फिर औटावे । जब औटाते २ गाढा होजावे तब उतार ले इसे आम्रादि यवागू कहते हैं इस यवागूके भोजन करनेसे संग्रहणी रोग दूर होवे ।

कल्कद्रव्यपलंशुंठीपिप्पलीचार्धकार्षिकी ॥ १४९ ॥
वारिप्रस्थेनविपचेत्सद्रवोयूषउच्यते ॥

अर्थ–कल्ककी औषध सामान्यता करके १ पल लेय । तथा जिस प्रयोगमे सोठ और पीपल हो उस जगह वह तीक्ष्ण होनेके कारण आधा २ कर्ष लेवे अथवा दोनो मिलाकर अर्ध कर्ष लेवे फिर उनका कल्क करके उसमें जल एकप्रस्थ (सेरभर) डालके मिलाय लेवे । उसको चूल्हेपर रखके पेवके समान गाढी करे उसको यूष ऐसे कहते हैं ।

सप्तमुष्टिकयूषसंनिपातादिकोंपर ।

कुलित्थयवकोलैश्चमुद्गैर्मूलकशुण्ठिकैः ॥ १५० ॥

---

१ मागध परिभाषाके मानसे पलके व्यावहारिक चार तोले जानने ।

२ औषधोंका काढा करे जब आधा रहे तब उसको छानके उसमे चावल डालके यवागू करे । तथा दूसरे प्रकारकी यवागू जो कहेंगे उसमें चावल और दूसरे धान्य जो कहेंगे इनमे पानी छःगुना डालके यवागू बनावे इतनाही भेद है ।

शुण्ठीधान्यकयुक्तैश्चयूषःश्लेष्मानिलापहः ॥
सप्तमुष्टिकइत्येषसन्निपातज्वरंजयेत् ॥ १५१ ॥
आमवातहरःकण्ठहृद्वक्त्राणांविशोधनः ॥

अर्थ-१ कुलथी २ जो ३ वेर ४ मूँग ५ छोटी मूली ६ सोंठ और ७ धनियां इन सात औषधोंको एक २ पल लेकर सोलह गुने गाढा होने पर्यंत औटावे। इसको सप्तमुष्टिक यूष कहते हैं। यह यूष पीनेसे कफ वायु संनिपात ज्वर और आमवात इनको दूर करे तथा कंठ हृदय मुख इनको शुद्ध करे।

पानादिककल्पना।

क्षुण्णंद्रव्यंपलंसाध्यंचतुःषष्टिपलेऽम्बुनि ॥ १५२ ॥
अर्धशिष्टंचतद्देयंपानेभक्तादिसंनिधौ ॥

अर्थ-एकपल औषध ले जवकूट कर उसको ६४ चौसठ पल जलमे डालके औटावे। जब औटते २ आधा पानी रहजावे तब उतारके कपडेसे छान ले। इसको जब २ प्यास लगे तब और भोजनके समय थोडा २ पीवे। वह प्रकार आगे लिखा जाताहै।

उशीरादिपानक पिपासाज्वरपर।

उशीरपर्पटोदीच्यमुस्तनागरचंदनैः ॥ १५३ ॥
जलंशृतंहिमंपेयंपिपासाज्वरनाशनम् ॥

अर्थ-१ खस २ पित्तपापडा ३ नेत्रवाला ४ नागरमोथा ५ सोंठ और रक्तचदन इन छः औषधोंको मिलाय चार तोले लेवे। जवकूट करके उसको २५६ तोले जलमें डालके आधा पानी रहते पर्यंत औटावे फिर उसको उतारके छान लेवे। शीतल होनेपर जिस ज्वरमें प्यास अत्यंत लगती हो उसमें थोडा २ क्रमसे पीनेको देवे तो प्यास और ज्वर ये दूर हो।

गरमजलकी विधि ज्वरादिकोंपर।

अष्टमेनांशशेषेणचतुर्थेनार्धकेनवा ॥ १५४ ॥
अथवाक्वथनेनैवासिद्धमुष्णोदकंवदेत् ॥

अर्थ-पानीको औटायके आठवाँ हिस्सा चौथा हिस्सा अथवा अर्धावशेष रक्खे अथवा उत्तम रीतिसे खूब औटावे। इसको उष्णोदक (गरमजल) कहते हैं।

रात्रिमें गरमजलपीनेकी विधि।

श्लेष्मामवातमेदोघ्नंबस्तिशोधनदीपनम् ॥ १५५ ॥

कासश्वासज्वरहरंपीतमुष्णोदकंनिशि ॥

अर्थ-रात्रिमें गरमजल पीनेसे कफ आमवात मेदरोग खाँसी श्वास और ज्वर नष्ट होवे तथा पेट शुद्ध होकर अग्नि प्रदीप्त होय ।

दूधके पाककी विधि आमशूलपर ।

क्षीरमष्टगुणंद्रव्यात्क्षीरान्नीरंचतुर्गुणम् ॥ १५६ ॥
क्षीरावशेषन्तत्पीतंशूलमामोद्भवंजयेत् ॥

अर्थ-औषधोंका आठगुणा गौका दूध लेवे और दूधसे चौगुणा पानी ले सबको एकत्र करके दूध शेष रहनेपर्यंत औटावे फिर उस दूधको पीवे तो आमशूल दूरहोवे ।

पंचमूलीक्षीरपाक सर्वजीर्णज्वरोंपर ।

सर्वज्वराणांजीर्णानांक्षीरंभैषज्यमुत्तमम् ॥ १५७ ॥
श्वासात्कासाच्छिरःशूलात्पार्श्वशूलात्सपीनसात् ॥
मुच्यतेज्वरितःपीत्वापंचमूलीशृतंपयः ॥ १५८ ॥

अर्थ-१ शालपर्णी २ पृष्ठपर्णी ३ छोटी कटेरी ४ बडी कटेरी और ५ गोखरू इन पांच औषधोंकी जडको जौकुट कर आठगुने दूधमें और दूधसे चौगुने पानीमें डालके औटावे। जब औटते २ केवल दूधमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे। इसके पीनेसे श्वास, खाँसी, मस्तकशूल, पसवाडेका शूल, पीनस और जीर्णज्वर ये दूर हों । यह दूध संपूर्ण जीर्णज्वरोंकी उत्तम औषधि है ।

त्रिकंटकादिक्षीरपाक ।

त्रिकंटकबलाव्याघ्रीकुष्ठनागरसाधितम् ॥
वर्चोमूत्रविबंधघ्नंकफज्वरहरंपयः ॥ १५९ ॥

अर्थ-१ गोखरू २ खरेंटी ३ कटेरीकी जडका वक्कल ४ कुष्ठ और ५ सोंठ इन पांच औषधोंको आठगुने दूध और दूधसे चौगुने पानीमें औटावे । जब दूधमात्र बाकी

---

१ "कफवातज्वरे देयं जलमुष्णं पिपासवे । पित्तमद्यविशेषोत्थे तिक्तकैः शृतशीतलम् ॥ १ ॥" अर्थ-तिक्त कहिये १ नागरमोथा २ पित्तपापडा ३ नेत्रवाला ४ चंदन ५ खस और ६ सोंठ इन छः औषधोंको कूटके औटते हुए पानीमें डालके उतारले फिर शीतल करके इसे पित्त और मद्यसे प्रगट ज्वर प्यास कफज्वर वातज्वर और कफवातज्वर इनमें देवे ऐसाही ग्रंथान्तरमें पाठ है ।

२ औषध इस जगह अनुक्त हैं इस वास्ते १ सोंठ २ भूयआँवला और ३ अंडके बीज इन औषधोंका आठगुना जल लेना चाहिये ।

रहे तब उतार ले। इस दूधको पीनेसे मल और मूत्र ये उत्तम रीतिसे उतरें तथा कफज्वर दूर होवे।

अन्नस्वरूप यवागू।

अथान्नप्रक्रियात्रैवप्रोच्यतेनातिविस्तरात् ॥ यवागूःषड्गुणजले सिद्धास्यात्कृशराघना ॥ १६० ॥ तंदुलैर्माषमुद्गैश्चतिलैर्वासाधिताहिता ॥ यवागूर्ग्राहिणीबल्यातर्पिणीवातनाशिनी ॥ १६१ ॥

अर्थ—अन्नप्रक्रिया कहिये अन्नस्वरूप यवागू, विलेपी और पेया इनके तैयारकरनेकी विधि संक्षेप करके कहताहूं। चावल अथवा मूग किंवा उडद न होय तो तिल इनमेंसे जिस द्रव्यकी यवागू बनानी हो उसको लेकर उसमें उससे छःगुना पानी डालके जबतक गाढी न होवे तबतक औटावे उसको अन्नयवागू कहते हैं। उस यवागूके दो नाम है एक कृसरा और दूसरी घना। वह मलादिकोंका स्तंभन करनेवाली बल देनेवाली शरीरको पुष्ट करनेवाली तथा वायुका नाश करनेवाली जाननी।

विलेपीके लक्षण और गुण।

विलेपीचघनासिक्थासिद्धानीरेचतुर्गुणे ॥
बृंहणीतर्पणीहृद्याधामधुरापित्तनाशिनी ॥ १६२ ॥

अर्थ—द्रव्यसे चौगुना पानी डालके औटावे। जब लहापसीके समान गाढी और लिपटनेवाली होजावे उसको विलेपी कहते हैं। यह धातुकी वृद्धि करनेवाली शरीरपुष्टिकर्त्ता, हृदयको हितकारी मधुर और पित्तका नाश करनेवाली है।

पेयालक्षण।

द्रवाधिकास्वल्पसिक्थाचतुर्दशगुणेजले ॥ सिद्धापेयाबुधैर्ज्ञेयायूषःकिंचिद्घनःस्मृतः ॥ १६३ ॥ पेयालघुतराज्ञेयाग्राहिणी धातुपुष्टिदा॥यूषोबल्यस्ततःकंठ्योलघूपायःकफापहः ॥ १६४ ॥

अर्थ—द्रव्यसे चौदहगुने पानीमें डालके पतली पेजके समान और कुछ लहसदार होनेपर्यंत औटानेसे उसको पेया कहते हैं। पेयाकी अपेक्षा कुछ गाढीको यूष कहते हैं। वह पेया बहुत हलकी होकर मलादिकोंका स्तंभन करनेवाली और धातु पुष्ट करनेवाली है। और यूष बलको देनेवाली, कठको हितकारी, हलकी तथा कफको दूर करनेवाली जानना।

भातकरनेका प्रकार।

जलेचतुर्दशगुणेतन्दुलानांचतुःपलम् ॥

विपचेत्स्रावयेन्मंडंसभक्तोमधुरोलघुः ॥ १६५ ॥

अर्थ–चारपल बीने फटके बारीक चावलोंको चौदहगुने जलमें डालके औटावे जब सीजजावें तब माड निकाल ले यह चावलोंका भात मधुर तथा हलका होता है ।

शुद्धमंड ।

नीरेचतुर्दशगुणेसिद्धोमंडस्त्वसिक्थकः ॥
शुंठीसैंधवसंयुक्तःपाचनोदीपनःपरः ॥ १६६ ॥

अर्थ–शुद्ध चावलोंको चौदहगुने पानीमें डालके औटावे । जब चावल सीजजावें तब माड निकाल लेवे । इस मांडको शुद्धमंड कहते हैं । इसमें सोंठ और सेंधानमक मिलायके पीवे तो अन्नका पचन और अग्निका दीपन होवे ।

अष्टगुणमण्ड ।

धान्यत्रिकटुसिंधूत्थमुद्गतंदुलयोजितः ॥ भृष्टश्चहिंगुतैलाभ्यां समंडोऽष्टगुणःस्मृतः ॥ १६७ ॥ दीपनःप्राणदोबस्तिशोधनो रक्तवर्धनः ॥ ज्वरजित्सर्वदोषघ्नोमंडोऽष्टगुणउच्यते ॥१६८॥

अर्थ–१ धनियाँ २ सोंठ ३ मिरच ४ पीपल ५ सेंधानमक ६ मूँग ७ चावल ८ हींग और ९ तेल इन नौ औषधोंमेंसे प्रथम तेलमें हींग मिलायके उसमें मूँग एकपल तथा चावल दो पल लेकर दोनोंको भूने । फिर दूसरी औषध रहीहुई वह थोडी २ खारी और चरपरी न होवे इसप्रकार मूँग चावलोंमें मिलायके चौदहगुने पानीमें डालके औटावे । जब सीजजावे तब उतारके कपडेसे छान लेवे । इसको पीनेसे अग्नि प्रदीप्त होकर प्राणोंमें तेज आताहै तथा बस्तिका शोधन होकर रुधिरकी वृद्धि होतीहैं ज्वर और वातादि तीन दोष ये दूर होवें । इसको अष्टगुण मंड कहते हैं ।

वाट्यमंडकफपित्तादिरोगोंपर ।

सुकंडितैस्तथाभृष्टैर्वाट्यमंडोयवैर्भवेत् ॥
कफपित्तहरःकंठयोरक्तपित्तप्रसादनः ॥ १६९ ॥

अर्थ–उत्तम जवोंको उत्तम रीतिसे कूट फटककर भूने फिर बीन फटककर उनमें चौदह गुना पानी चढायके सिजावे फिर उस पानीको छानके सेवनकरे इसको वाटयमंड कहते हैं यह मंड पीवे तो कफ पित्तका प्रकोप दूर होवे कंठको हितकारक होय है तथा रक्तपित्तका प्रकोप दूर होय । है

---

१ क्षुधानाशक २ मूत्रबस्तिशोधक ३ बलवर्द्धक ४ रक्तवर्द्धक ५ ज्वरनाशक ६ कफनाशक ७ पित्तनाशक तथा ८ वायुनाशक ऐसे इसमें आठ गुण जानने ।

लाजामंड कफपित्तज्वरादिकोंपर ।

लाजैर्वातंडुलैर्भृष्टैर्लाजमंडःप्रकीर्तितः ॥
श्लेष्मपित्तहरोग्राहीपिपासाज्वरजिन्मतः ॥ १७० ॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेणविरचितायांसंहितायांचिकित्सास्थाने क्काथादिकल्पनानामद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अर्थ—धानकी भुनी खील अथवा चावलोंको भूनके उसमें चौदहगुना पानी डालके औटावे । फिर उसको पसायके मांड निकाल लेवे इसे लाजमंड कहते हैं । यह मंड पीवे तो कफपित्तका प्रकोप दूर होकर संग्रहणी और अतिसार इनका स्तंभन होय, तथा जिस ज्वरमें प्यास अधिक लगे सो दूर होय ।

इति श्रीमाथुरदत्तरामनिर्मितमाथुरीभाषाटीकायांचिकित्सास्थाने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

क्षुण्णेद्रव्यपलेसम्यग्जलमुष्णंविनिक्षिपेत्॥मृत्पात्रेकुडवोन्मानंततस्तुस्रावयेत्पटात् ॥ १ ॥ सस्याच्चूर्णद्रवःफांटस्तन्मानंद्विपलोन्मितम्॥मधुश्वेतागुडादींश्चक्काथवत्तत्रनिक्षिपेत्॥२॥

अर्थ—एकपल औषधोंको लेकर अच्छी रीतिसे कूट एक कुडव[1] प्रमाण जलको किसी पात्रमें भरके जब अच्छीतरह गरम होजावे तब पूर्वोक्त कूटी हुई औषधोंको डालके खूब औटावे । फिर उस पानीको कपडेसे छान लेवे । इसको फांट तथा चूर्णद्रव कहते हैं । इस फाटके पीनेका प्रमाण दो पल है । तथा उस फांटमें सहत, मिश्री, खाँड, गुड आदिशब्दसे अन्य पदार्थ डालना होय तो जिसप्रकार काढेमें सहत मिश्री आदिका डालना लिखाहै उसी प्रमाण इस जगह फांटमें डालना चाहिये ।

मधूकादिफांट वातपित्तज्वरपर ।

मधूकपुष्पंमधुकंचंदनंसपरूषकम् ॥ मृणालंकमलंलोध्रंगंभारींनागकेशरम् ॥ ३ ॥ त्रिफलांसारिवांद्राक्षांलाजान्कोष्णे जलेक्षिपेत् ॥ सितामधुयुतःपेयःफांटोनाशौह्निसोथवा ॥ ४ ॥

---

१ कुडवके व्यावहारिक तोले १६ सोलह होतेहैं ।

वातपित्तज्वरंदाहंतृष्णामूर्च्छारतिभ्रमान् ॥
रक्तपित्तंमदंहन्यान्नात्रकार्याविचारणा ॥ ५ ॥

अर्थ-१ महुआके फूल २ मुलहटी ३ लालचंदन ४ फालसे ५ कमलकी डंडी ६ कमल ७ लोध ८ कंभारी ९ नागकेशर १० त्रिफला ११ सारिवा १२ मुनक्कादाख और १३ धानकी खील । इन तेरह औषधोंको कूटकर इसमेंसे १ पल लेवे । फिर चार पल पानीको चूल्हेपर चढायके खूब गरम करे । जब जल खदबदाने लगे तब उक्त कूटीहुई १ पल औषधोंको इसमें गेरदेवे । जब खूब औटजावे तब उस पानीको उतारके छान लेवे । इसको मधुकादि फांट कहते हैं । यह फाट खाँड और सहत मिलायके पीवे तो वातपित्तज्वर, दाह, प्यास, मूर्च्छा, अरति, भ्रम, रक्तपित्त और मदरोग ये दूर होवें इसमें संदेह नहीं है । तथा ये तेरह औषध रात्रिमें पानीमें भिगोदेवे । प्रातः काल उस पानीको छानके सेवन करे इसको हिमविधि कहते हैं । इस हिमके पीनेसे यहभी फांटके समान गुण करता है ।

आम्रादिफांट पिपासादिकोंपर ।

आम्रजंबूकिसलयैर्वटशुंगप्ररोहकैः ॥
उशीरेणकृतःफांटःसक्षौद्रोज्वरनाशनः ॥ ६ ॥
पिपासाच्छर्द्यतीसारान्मूर्च्छांजयतिदुस्तराम् ॥

अर्थ-१ आम और २ जामुन इनके कोमल पत्ते और बडकी कलीके भीतरके पत्ते, तथा उसके कोमल २ पत्ते और नेत्रवाला इन औषधोंका पूर्वरीतिसे फाट करके पीवे तो ज्वर, प्यास, वमन, आतिसार तथा कष्टसाध्य मूर्च्छाके रोग दूर हो ।

मधुकादिफांट पित्ततृष्णादिकोंपर ।

मधूकपुष्पगंभारीचंदनोशीरधान्यकैः ॥ ७ ॥
द्राक्षयाचकृतःफांटःशीतःशर्करयायुतः ॥
तृष्णापित्तहरःप्रोक्तोदाहमूर्च्छाभ्रमाञ्जयेत् ॥ ८ ॥

अर्थ-१ महुआके फूल २ कंभारी ३ लालचदन ४ नेत्रवाला ५ धनियाँ और ६ दाख इन छः औषधोंका फांटकरके पीवे तो प्यास पित्त दाह मूर्च्छा और भ्रम ये दूर हों ।

मंथकल्पना ।

मंथोऽपिफांटभेदःस्यात्तेनचात्रैवकथ्यते ॥

अर्थ-मंथभी फाटका ही भेद है इसीसे उसकोभी इसी जगह कहते हैं ।

---

२ फालसे मेवामें प्रसिद्ध हैं ।

मन्थकी विधि।

जलेचतुष्पलेशीतेक्षुण्णंद्रव्यपलंपिबेत् ॥ ९ ॥
मृत्पात्रेमन्थयेत्सम्यक्तस्माच्चद्विपलंपिबेत् ॥

अर्थ—पल औषधको अच्छी रीतिसे कूटे। फिर चार पल शीतल पानीको मटकेमें भरके उसमें उस कूटी हुई औषधको डालके रईसे मथन करे। जब अत्यन्त झाग उठें तब उसको छानले इसे मन्थ कहते हैं। इस मन्थके पीनेकी मात्रा दो पलकी है।

खर्जूरादिमन्थ सर्वमद्यविकारोंपर।

खर्जूरदाडिमद्राक्षातित्तिडीकाम्लिकामलैः ॥ १० ॥
सपरूषैःकृतोमन्थःसर्वमद्यविकारनुत् ॥

अर्थ—१ खर्जूर २ अनारदाने ३ दाख ४ ततडीक ५ इमली ६ आमले और ७ फालसे इन सात औषधोंको कूटके एकपल लेवे। फिर चार पल शीतल जलको मटकेमें भरके उस कूटी हुई औषधको डालके रईसे खूब मथे। फिर उस पानीको नितारके छान लेय। इसको पीवे तो संपूर्ण मद्यविकार, सुपारीका मद, कोदोंधान्यका मद तथा आसवोंका मद ये सब मद दूर होयँ।

मसूरादिमंथ वमनरोगपर।

क्षौद्रयुक्तामसूराणांसक्तवोदाडिमांभसा ॥ ११ ॥
मथितावारयंत्याशुछर्दिंदोषत्रयोद्भवाम् ॥

अर्थ—सावत मसूरको भुनायके चून कराय ले। फिर पकेहुये अनार दानेका पानी करके उसमें उस मसूरके चूनको मिलायके पीवे तो वातपित्तसे उत्पन्न हुई जो वमन वह दूर हो।

यवोंका मन्थ तृष्णादिकोंपर।

द्रावितैःशीतनीरेणसघृतैर्यवसक्तुभिः ॥ १२ ॥
मथितावारयंत्याशुच्छर्दिंदोषत्रयोद्भवाम् ॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेणविरचितायांसंहितायांचि-
कित्सास्थानेफांटादिकल्पनाध्यायस्तृतीयः ॥ ३ ॥

अर्थ--सावत जवोंको भुनायके चून पिसवाय ले उसको शीतल जलमें इस प्रकार मिलावे जिसमे न बहुत पतला होवे न बहुत गाढा होवे। फिर मथके उसमें घी मिलायके पीवे तो प्यास दाह और रक्तपित्त ये दूर हों।

इति श्रीमाथुरदत्तरामनिर्मितशार्ङ्गधरमाथुरीभाषाटीकाया
चिकित्सास्थाने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः ४.



हिमकल्पना ।

क्षुण्णंद्रव्यपलंसम्यक्षड्भिर्नीरपलैःप्लुतम् ॥
निःशोषितंहिमःसस्यात्तथाशीतकषायकः ॥ १ ॥
तन्मानंफांटवज्ज्ञेयंसर्वत्रैषविनिश्चयः ॥

अर्थ–एक पल औषधको जवकूट कूटके फिर छः पल जलको किसी मटकेमें भरके उसमें उस कूटी हुई औषधको मिलायके रात्रिमें भिगो देवे । प्रातःकाल उस पानीको छानके पीवे । इसको हिम अथवा शीत काढा इस प्रकार कहते हैं । इसके पीनेका मान फाटके समान दो पल जानना ।

आम्रादिहिम रक्तपित्तपर ।

आम्रंजंबूचककुभंचूर्णीकृत्यजलेक्षिपेत् ॥ २ ॥
हिमंतस्यपिबेत्प्रातःसक्षौद्रंरक्तपित्तजित् ॥

अर्थ–१ आमकी छाल २ जामुनकी छाल और ३ कोहकी छाल इन तीन छालोंको एक पल प्रमाण लेकर चूर्ण करे । फिर छःपल पानी किसी मिट्टीके पात्रमें भरके पूर्वोक्त कूटीहुई छालोंके चूर्णको उसमें भिगोदेवे रात्रिभर भीगने दे प्रातःकाल उस पानीको छान सहत मिलायके पीवे तो रक्तपित्त दूर होवे ।

मरीचादिहिम तृष्णादिकोंपर ।

मरीचंमधुयष्टिंचकाकोदुंबरपल्लवैः ॥
नीलोत्पलंहिमस्तज्जस्तृष्णाच्छर्दिनिवारणः ॥ ३ ॥

अर्थ–१ काली मिरच २ मुलहटी ३ कठूमरके पत्ते और ४ नीला कमल इन चार औषधोंको एक पल ले सबको जौकूट करे । फिर छः पल पानीको एक पात्रमे भरके उसमें पूर्वोक्त औषधोंको भिगोय देवे । प्रातःकाल उस पानीको छानके पीवे तो प्यास और वमन इनको दूर करे ।

नीलोत्पलादिहिम वातपित्तज्वरपर ।

नीलोत्पलंबलाद्राक्षामधूकंमधुकंतथा ॥४॥ उशीरंपद्मकंचै-
वकाश्मरीचपरूषकम् ॥ एतच्छीतकषायश्चवातपित्तज्वरांज-
येत् ॥ ५ ॥ सप्रलापभ्रमच्छर्दिमोहतृष्णानिवारणः ॥

अर्थ–१ नीलाकमल २ खरेंटीकी छाल ३ दाख ४ महुआ ५ मुलहटी ६ नेत्रबाक

७ पखाख ८ कंभारी और ९ फालसे इन नौ औषधोंको पूर्व विधिसे हिम बनायके पीवे तो वात-पित्तज्वर, प्रलाप, भ्रम, वमन, मूर्च्छा और प्यास ये रोग दूर होवें।

अमृतादिहिम जीर्णज्वरपर।

अमृतायाहिमःपेयोजीर्णज्वरहरःस्मृतः ॥ ६ ॥

अर्थ–पूर्वोक्त विधिसे गिलोयका हिम करके पीवे तो जीर्णज्वर दूर होवे।

वासाहिम रक्तपित्तज्वरपर।

वासायाश्चाहिमःकासरक्तपित्तज्वराञ्जयेत् ॥

अर्थ–अडूसेका हिम करके पीवे तो खाँसी और रक्तपित्तज्वर ये दूर हों।

धान्यादिहिम अन्तर्दाहपर।

प्रातःसशर्करःपेयोहिमोधान्याकसंभवः ॥ ७ ॥
अन्तर्दाहंतथातृष्णांजयेत्स्रोतोविशोधनः ॥

अर्थ–रात्रिको पानीमें धनियेको भिगोय देवे प्रातःकाल उस पानीको खाँड मिलायके पीवे तो शरीरके भीतरका दाह और प्यास ये दूर हों तथा मूत्रादि मार्गोंका शोधन होय।

धान्यादिहिम रक्तपित्तादिकोंपर।

धान्याकधात्रीवासानांद्राक्षापर्पटयोर्हिमः ॥ ८ ॥
रक्तपित्तज्वरंदाहंतृष्णांशोथंचनाशयेत् ॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेणविरचितायां संहितायां चिकित्सास्थाने हिमकल्पनाध्यायश्चतुर्थः ॥ ४ ॥

अर्थ–१ धनियाँ २ आवले ३ अडूसा ४ दाख और ५ पित्तपापडा इन पाचोंका हिम करके पीवे तो रक्तपित्तज्वर, दाह, प्यास और शोथ इनको दूर करे।

इति श्रीशार्ङ्गधरे चिकित्सास्थाने माथुरीभाषाटीकायांचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः ५.

कल्ककी कल्पना।

द्रव्यमार्द्रंशिलापिष्टंशुष्कंवासजलंभवेत् ॥ प्रक्षेपावापकल्का-स्तेतन्मानंकर्षसंमितम् ॥ १ ॥ कल्केमधुघृतंतैलंदेयन्द्वि-गुणमात्रया ॥ सितागुडौसमौदद्याद्द्रवादेयाश्चतुर्गुणाः ॥ २ ॥

अर्थ—गीली औषधको चटनीकी समान वारीक पीसे । यदि सूखी औषध होय तो उसमें पानी डालके पीसनी चाहिये इसको कल्क कहते हैं । इसके सेवन करनेकी मात्रा १ कर्ष अर्थात् एक तोले कही है, तथा उसके दो नाम हैं एक प्रक्षेप और दूसरा आवाप । यदि कल्कमें सहत घी और तेल डालने हों तो कल्कसे दुगुने डाले खाँड गुड ये पदार्थ डालने हों तो कल्कके समान डाले। दूध पानी आदिशब्दसे पतले पदार्थ डालने हों तो कल्कके चौगुने डालने चाहिये।

वर्धमानपिप्पली पांडुरोगादिकोंपर ।

त्रिवृद्ध्यापंचवृद्ध्यावासप्तवृद्ध्याथवाकणाः ॥ पिबेत्पिञ्चादश दिनंतास्तथैवापकर्षयेत् ॥ ३ ॥ एवंविंशद्दिनैःसिद्धं पिप्पली-वर्द्धमानकम् ॥ अनेनपांडुवातास्रकासश्वासरुचिज्वराः ॥४॥ उदरार्शःक्षयश्लेष्मवातानश्यंत्युरोग्रहाः ॥

अर्थ—आज तीन, कल्ह छः, परसों नौ, इस प्रकार वृद्धि करके अथवा पाचसे वा सातसे वृद्धि करके पीपर वारीक कल्क करे । उस कल्कमें कल्कसे चौगुना दूध अथवा पानी मिलाय दश दिनपर्यंत पीवे । फिर जिस क्रमसे वढाई हो उसी क्रमसे दश दिनमें घटाय लावे । इस प्रकार वीस दिन पीपल पीवे तो पाडुरोग, वातरक्त, खाँसी, श्वास, अरुचि, ज्वर, उदररोग, ववासीर, क्षय, कफ, वायु और उरोग्रह ये रोग दूर होवें । इस औषधको वर्धमानपीपल कहते हैं । मथुराआदिके प्रान्तोंमें उस पीपलको विषमज्वरमें दूधमें औटाकर देते हैं ।

निंबकल्क व्रणादिकोंपर ।

लेपान्निंबदलैःकल्कोव्रणशोधनरोपणः ॥ ५ ॥ भक्षणाच्छर्दिकुष्ठानिपित्तश्लेष्मक्रमीञ्जयेत् ॥

अर्थ—नीमके पत्तोको पानीसे वारीक पीस कल्क करे । उस कल्कका लेप व्रण (घाव) पर करनेसे तथा इसकी टिकिया बाँधनेसे उस व्रणका शोधन होकर घाव भर जाता है तथा इस कल्कको खानेसे वमन, कुष्ठ और पित्त कफकी बीमारी सम्बधी कृमिरोग दूर हों ।

---

१ दूध अथवा पानीमे पीपल पीसके कल्ककरे फिर उसमे दूध अथवा पानी डालनेका हो वह दो तीन दिन चार २ तोले मिलावे फिर कल्कसे चौगुणा मिलावे परंतु वैद्यकी संप्रदाय दूध मिलानेकी है । इस मथुरा आगरेके वैद्य पीपलोंको क्रमसे वढाय आधा दूध और आधा पानी डालके औटाते हैं, जब जल-मात्र जरजावे तब उस दूधमही उन पीपलोंको पीसके देते हैं, कोई पीपलोंको निकालके फेंक देते हैं परंतु फेंक-नेसे कुछ गुण नही होता । यह विधि प्रायः विषमज्वर और मंदाग्निपर करते हैं ।

महानिम्बकल्क गृध्रसीपर।

महानिंबजटाकल्कोगृध्रसीनाशनःस्मृतः ॥६॥

अर्थ-बकायनकी जडको पानीसे पीस कल्क करके पीवे तो गृध्रसी वायु जो बादीके रोगोंमें कही है वह दूर होवे।

रसोनकल्क वायु और विमषज्वरपर।

शुद्धकल्कोरसोनस्यातिलतैलेनमिश्रितः ॥
वातरोगाञ्जयेत्तीव्रान्विषमज्वरनाशनः ॥ ७ ॥

अर्थ-लहसनका कल्करके उसमें तिलका तैल मिलायके पीवे तो दारुण वायुका रोग और विषमज्वर दूर होवे।

दूसरा रसोनकल्क वातरोगपर।

पक्कंदरसोनस्यगुलिकानिस्तुषीकृता ॥ पाटयित्वाचमध्यस्थं दूरीकुर्यात्तदंकुरम् ॥ ८ ॥ तदुग्रगंधनाशायरात्रौतक्रेविनिक्षिपेत् ॥ अपनीयचतन्मध्याच्छिलायांपेषयेत्ततः ॥ ९ ॥ तन्मध्येपंचमांशेनचूर्णमेषांविनिक्षिपेत् ॥ सौवर्चलंयवानीचभार्जितंहिंगुसैंधवम् ॥ १० ॥ कटुत्रिकंजीरकंचसमभागानिचूर्णयेत् ॥ एकीकृत्यततःसर्वंकल्कंकर्षप्रमाणतः ॥ ११ ॥ खादेदग्निबलापेक्षीऋतुदोषाद्यपेक्षया ॥ अनुपानंततःकुर्यादेरंडश्शृतमन्वहम् ॥ १२ ॥ सर्वांगैकाङ्गजंवातमर्दितंचापतंत्रकम् ॥ अपस्मारमथोन्मादमूरुस्तंभंचगृध्रसीम् ॥ १३ ॥ उरःपृष्ठकटीपार्श्वकुक्षिपीडांकृमीञ्जयेत् ॥ अजीर्णमातपंरोषमतिनीरंपयोगुडम् ॥ १४ ॥ रसोनमश्नन्पुरुषस्त्यजेदेतन्निरंतरम् ॥ मद्यंमांसंतथाम्लंचरसंसेवेतनित्यशः ॥ १५ ॥

अर्थ-उत्तम इकपोती लहसनकी गांठोंको लाकर उनके ऊपरका छिलका उतारके दूर करे। फिर उस लहसनकी बाम दूर करनेको रात्रिमें छाछमें भिगोकर रख छोडे। प्रातःकाल उनको निकाल शिल और लोढेसे बारीक पीसकर कल्क करे। फिर १ सञ्चर नोंन २ अजमोद ३ भुनीहुई हींग ४ सेंधानमक ५ सोंठ ६ कालीमिरच ७ पीपल और ८ जीरा इन आठ औषधोंके चूर्णको उस लहसनके कल्कका पाचवाँ हिस्सा लेकर मिलावे। सबको एकत्र कर अंडीके जडका काढा करके उस कल्कमें १ तोले मिलायके पीवे तथा

अपनी शक्तिको विचारके और ऋतु कौन है उसका विचार करके जैसा आपको हित होवे उसी प्रकार सेवन करे, तो सर्वांगवात, एकांगवात, मुखका टेढा होना ऐसी अर्दित वायु, धनुर्वात, मृगी, उन्माद, ऊरुस्तंभ, वायु, गृध्रसी वायु, उर, पीठ, कमर तथा पसवाडा इन सबका शूल और कृमिरोग इनको दूर करे । लहसनका खानेवाला अजीर्णकारी पदार्थ, धूपमें रहना, क्रोध करना, अत्यत, जल पीना, दूध गुड इन सब पदार्थोंको सर्वथा त्याग देवे । तथा मद्यपान, मासभक्षण, खटाईवाले पदार्थ इनको सदैव सेवन करा करे ये पथ्य हैं ।

पिप्पल्यादिकल्क ऊरुस्तंभादिकोंपर ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलंभल्लातकफलानिच ॥
एतत्कल्कश्चसक्षौद्रऊरुस्तंभनिवारणः ॥ १६ ॥

अर्थ—१ पीपर २ पीपरामूल ३ भिलायेके फल इन तीन औषधोंको पानीमें पीस कल्क करके उसमें सहत मिलायके सेवन करनेसे ऊरुस्तभ वायु दूर हो ।

विष्णुकान्ताकल्क परिणामशूलपर ।

विष्णुक्रांताजटाकल्कःसिताक्षौद्रघृतैर्युतः ॥
परिणामभवंशूलंनाशयेत्सप्तभिर्दिनैः ॥ १७ ॥

अर्थ—विष्णुक्रांता (कोयल) की जडका कल्क करके उसमे खाँड और सहत तथा घी मिलायके सेवन करे तो परिणाम शूल दूर होवे । यह सात दिन रहता है ।

दूसरा शुंठीकल्क ।

शुंठीतिलगुडैःकल्कंदुग्धेनसहयोजयेत् ॥
परिणामभवंशूलमामवातंचनाशयेत् ॥ १८ ॥

अर्थ—१ सोंठ २ तिल समान ले दोनोंकी बराबर गुड लेवे इन तीन औषधोंका कल्क करके गौके चौगुने दूधमें मिलायके सेवन करे तो परिणामशूल तथा आमवात ये दूर होवें । अन्नके पचनेके समय जो शूल होताहै उसको परिणामशूल कहते हैं ।

अपामार्गकल्क रक्तार्शपर ।

अपामार्गस्यबीजानांकल्कस्तंडुलवारिणा ॥
पीतोरक्तार्शसांनाशंकुरुतेनात्रसंशयः ॥ १९ ॥

अर्थ—ओंगा (चिरचिरा) के बीजोंको कल्ककरके चावलोंके धोवनके[१] पानीसे पीवे तो खूनी बबासीर दूर होय ।

१ चावलधोवनमें पीवे अथवा कल्कका चौगुना चावलोंका धोवन लेवे ।

बदरीमूलकल्क रक्तातिसारपर।

बदरीमूलकल्केनतिलकल्कश्चयोजितः ॥
मधुक्षीरयुतःकुर्याद्रक्तातीसारनाशनम् ॥ २० ॥

अर्थ—झरबेरीकी जड और तिल इनके कल्क पृथक् पृथक् तैयार करके दोनोंको मिलाय उसमें सहत मिलाय गौके दूधमें अथवा बकरीके दूधमें मिलायके पीवे तो रक्तातिसार दूर होवे।

लाक्षाकल्क रक्तक्षयादिकोंपर।

कूष्मांडकरसोपेतांलाक्षांकर्षद्वयंपिबेत् ॥
रक्तक्षयमुरोघातंक्षयरोगंचनाशयेत् ॥ २१ ॥

अर्थ—बेरकी अथवा पीपरकी लाख दो तोलेका बारीक चूर्णकर चौगुना पेठेका रस मिलायके पीवे तो रक्तक्षय तथा जिस रोगसे छाती दूखे वह और क्षयरोग दूर होय।

तंदुलीयकल्क रक्तप्रदरपर।

तंदुलीयजटाकल्कःसक्षौद्रःसरसांजनः ॥
तंदुलोदकसंपीतोरक्तप्रदरनाशनः ॥ २२ ॥

अर्थ—चौलाईकी जडको पीस कल्ककरके उसमें सहत और रसोत मिलाय चावलोंके धोवनसे पीवे तो स्त्रियोका रक्तप्रदर नष्ट होवे (इस रोगमें स्त्रीकी योनिसे लाल २ पानी गिरा करता है)।

अंकोलकल्क अतिसारपर।

अंकोलमूलकल्कश्चसक्षौद्रस्तंदुलांबुना ॥
अतिसारहरःप्रोक्तस्तथाविषहरः स्मृतः ॥ २३ ॥

अर्थ—अंकोल वृक्षकी जडको कूट पीस कल्क करे उसमें सहत मिलायके चावलोंके धोवनके जलसे पीवे तो अतिसार दूर होय। तथा सिंगिया विषादिका विष और सर्पादिकोंका विष ये भी दूर हों।

कर्कोटिकाकल्क विषोंपर।

वंध्याकर्कोटिकामूलंपाटलायाजटातथा ॥
घृतेनबिल्वमूलंवाद्विविधंनाशयेद्विषम् ॥ २४ ॥

अर्थ—१ बाँझककोडाकी जड २ पाढपाटलाकी जड ३ बेलकीजड इन तीन जडोंमेंसे जो मिले उस जडको कूट पीस कल्ककरके घीमें मिलायके पीवे तो वच्छनागादिक विष तथा सर्पादिकोंका विष दूर होवे।

---

१ कल्ककी अपेक्षा धोवन चौगुना लेवे, इस प्रकारका पानी दूध इत्यादिक सर्वत्र चौगुनेलेने।

अभयादिकल्क दीपनपाचनपर ।

अभयासैंधवकणाशुंठीकल्कस्त्रिदोषहा ॥
पथ्यासैंधवशुंठीभिः कल्कोदीपनपाचनः ॥ २५ ॥

अर्थ--१ जंगीहरड २ सेंधानमक ३ पीपल और ४ सोंठ इन चार औषधोंके चूर्णको पानीमें पीसके कल्ककरे । इस कल्कके पीनेसे वात, पित्त, कफ इनका प्रकोप दूर होय । उसीप्रकार १ छोटीहरड २ सेंधानमक और ३ सोंठ इन तीन औषधोंका कल्ककरके पीवे तो अन्नका पचन होय तथा अग्नि प्रदीप्त होवे ।

त्रिवृतादिकल्क कृमिरोगपर ।

त्रिवृत्पलाशबीजानिपारसीययवानिका ॥
कंपिल्लकंविडंगंचगुडश्चसमभागकः ॥ २६ ॥
तक्रेणकल्कमेतेषांपिबेत्कृमिगणापहम् ॥

अर्थ--१ निसोथ २ पलास (ढाक) के वीज ३ किरनी अजमायन ४ कवीला[1] और ५ वायविडंग इन पांच औषधोंका चूर्णकर उसके समान गुड मिलायके सबको मिलायके कल्ककरे । इसको छाछमे मिलायके पीवे तो कृमिरोग दूर होय । ग्रथान्तरमें इस प्रकार है कि किरमानी अजमायनको प्रातःकाल शीतल जलसे पीवे तो कृमिविकार दूर होय ।

नवनीतकल्क रक्तातिसारपर ।

नवनीततिलैःकल्कोजेतारक्तार्शसांस्मृतः ॥ २७ ॥
नवनीतसितानागकेशरैश्चापितद्विधः ॥

अर्थ--तिलोंको पीस उसका मक्खनमें कल्ककरके[2] सेवन करे । अथवा नागकेशरको पीस मक्खन और मिश्रीमें कल्क करके पीवे तो खूनी ववासीरके कारण जो रुधिर निकला करे वह बंद होजावे ।

मसूरकल्क संग्रहणीपर ।

पीतोमसूरयूषेणकल्कःशुंठीशलाटुजः ॥
जयेत्संग्रहणींतद्वत्तक्रेणबृहतीभवः ॥ २८ ॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेणविरचितायां संहितायां चिकित्सास्थाने कल्ककल्पनाध्यायः पंचमः ॥ ५ ॥

---

१ कवीला लालवर्णका मिट्टीकासा चूर्ण होता है ।

२ कल्क एकभाग लेके दुगुनी लोनीमें मिलायके सेवन करे ।

अर्थ—१ सोंठ और २ छोटा कच्चा बेलका फल इन दोनों औषधोंका कल्क करे फिर मसूरका यूष जो प्रथम कह आए हैं उस प्रकार बनाय उसमें इस कल्कको मिलायके पीवे। इसी प्रकार कटेरीके फलका कल्क करके छाछ मिलायके पीवे तो संग्रहणीका रोग दूर होवे।

इति श्रीशार्ङ्गधरे चिकित्सास्थाने माथुरीभाषाटीकायां
पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः ६.

चूर्णकी कल्पना।

अत्यंतशुष्कंयद्द्रव्यंसुपिष्टंवस्त्रगालितम्॥तत्स्याच्चूर्णंरजःक्षोदस्तन्मात्राकर्षसंमिता ॥ १ ॥ चूर्णेगुडःसमोदेयःशर्कराद्विगुणाभवेत् ॥ चूर्णेषुभर्जितंहिंगुदेयंनोत्क्लेदकृद्भवेत् ॥ २ ॥ लिहेच्चूर्णं द्रवैः सर्वैर्घृताद्यैर्द्विगुणोन्मितैः॥ पिबेच्चतुर्गुणैरेवंचूर्णमालोडितंद्रवैः ॥ ३ ॥ चूर्णावलेहगुटिकाकल्कानामनुपानकम् ॥ पित्तवातकफातंकेत्रिद्व्येकपलमाहरेत् ॥ ४ ॥ यथा तैलंजलेक्षिप्तंक्षणेनैवप्रसर्पति॥ अनुपानबलादंगेतथासर्पतिभेषजम् ॥ ५ ॥ द्रवेणयावतासम्यक्चूर्णंसर्वंप्लुतंभवेत् ॥ भावनायाःप्रमाणंतुचूर्णेप्रोक्तंभिषग्वरैः ॥ ६ ॥

अर्थ—अत्यन्त सूखी औषधको कूट पीस कपडछान करे उसको चूर्ण कहते हैं। उस चूर्णके दो नाम हैं एक रज, दूसरा क्षोद, इस चूर्णके भक्षणकी मात्रा एक कर्ष अर्थात् तोलेभरकी है। यदि चूर्णमें गुड मिलाना होय तो चूर्णकी बराबर डालना चाहिये। यदि हींग डालनी होय तो घीमें भूनके हींग डाले तो विकलता नहीं करे। घी और सहत आदि चिकने पदार्थके साथ चूर्ण लेना होय तो वे पदार्थ चूर्णसे दुगुणे लेवे। तथा दूध गोमूत्र पानी और अन्य पतली वस्तु चूर्णमें डालनी होय तो चूर्णसे चौगुनी लेकर उसमें चूर्ण मिलायके पीवे। चूर्ण, अवलेह, गुटिका और कल्क इनके जो अनुपान कहे हैं वे यदि पित्तरोग होय तो तीन पल लेवे।वातरोग होय तो दो पलके अनुमान लेवे।

और कफके रोगमें एकपल लेवे तो औषधि उत्तमताके साथ देहमें फैल जाती है। इस विषयमें दृष्टांत देते हैं कि जैसे जलमें तेलकी बूँद डालनेसे फैल जाती है उसी प्रकार अनुपानके बलसे देहमे औषध फैलजाती है। तथा चूर्णमें नींबूके रसके अथवा दूसरी वनस्पतिके रसका पुट देना होवे तो चूर्ण रसमें बूडजाय तवतक पुट देवे। इस प्रकार सब चूर्णोके बनानेकी विधि जाननी।

आमलक्यादिचूर्ण सर्वज्वरोंपर।

आमलंचित्रकःपथ्यापिप्पलीसैंधवंतथा ॥ चूर्णितोऽयं गणोज्ञेयःसर्वज्वरविनाशनः ॥ ७ ॥ भेदीरुचिकरः श्लेष्माजेतादीपनपाचनः ॥

अर्थ—१ आमले २ चीतेकी छाल ३ जर्गी हरड ४ पीपल और ५ सैंधानमक ये पाच वस्तु समान भाग लेकर चूर्ण करके सेवन करे तो सपूर्ण ज्वर दूर हों। यह दस्तावर है, रुचि प्रगट-कर्त्ता है, तथा कफको दूर करे, अग्नि प्रदीप्त हो और अन्नका पचन होवे।

पिप्पलीचूर्ण ज्वरपर।

मधुनापिप्पलीचूर्णलिहेत्कासज्वरापहम् ॥ ८ ॥ हिक्काश्वासहरंकंठ्यंप्लीहघ्नंबालकोचितम् ॥

अर्थ—एक मासे पीपलके चूर्णको सहतमें मिलायके चाटे तो खाँसी, ज्वर, हिचकी प्यास ये दूर हों। यह चूर्ण कठको हितकारी है, प्लीह रोगको दूर करे तथा बालकोंको उपयोगी पडता है।

त्रिफलादिचूर्ण ज्वरपर।

एकाहरीतकीयोज्याद्वौचयोज्यौबिभीतकौ ॥ ९ ॥ चत्वार्यामलकान्येवत्रिफलैषाप्रकीर्तिता ॥ त्रिफलामेहशोथघ्नीनाशयेद्विषमज्वरान् ॥ १० ॥ दीपनीश्लेष्मपित्तघ्नीकुष्ठहंत्रीरसायनी ॥ सर्पिर्मधुभ्यांसंयुक्तासैवनेत्रामयाञ्जयेत् ॥ ११ ॥

अर्थ—हरड एक बहेडा दो आमले चार इन तीन औषधोंका चूर्ण करे। इसे त्रिफला कहते हैं। इस त्रिफला चूर्णके सेवन करनेसे प्रमेह, सूजन, विषमज्वर, कफ, पित्त और कुष्ठ

---

१ तात्पर्य यह है कि उत्तम मोटी हरड दो कर्षकी होती है, बहेडा एक कर्षका होता है और आमला अर्धकर्षका तोलमें होता है इसीसे एक हरड दो बहेडे चार आमले लेनेसे समभाग होजाता है। यह मत बहुवैद्यसंमत है। कोई एकभाग हरड दोभाग बहेडा और चारभाग आँवले लेते हैं।

ये दूर हों अग्नि प्रदीप्त हो। यह त्रिफला रसायन[1] है। घी और सहत ये दोनों विषम[2] भाग ले एकत्रकर उसमें इस त्रिफलेके चूर्णको मिलाय सेवन करे तो संपूर्ण नेत्रके विकार दूर हों।

त्र्यूषणचूर्ण कफादिकोंपर।

पिप्पलीमरिचंशुंठीत्रिभिस्त्र्यूषणमुच्यते ॥
दीपनंश्लेष्ममेदोघ्नंकुष्ठपीनसनाशनम् ॥ १२ ॥
जयेदरोचकंसामंमेहगुल्मगलामयान् ॥

अर्थ–१ पीपल २ काली मिरच और ३ सोंठ इन तीन औषधोंको त्र्यूषण ऐसा कहते हैं इसका चूर्ण करके सेवन करे तो अग्नि प्रदीप्त हो कफ, मेद, कुष्ठ, पीनस, अरुचि, आमदोष प्रमेह, गोला, और कठरोग ये दूर हों।

पंचकोलचूर्ण अरुच्यादिकोंपर।

पिप्पलीचव्यविश्वाह्वपिप्पलीमूलचित्रकैः ॥ १३ ॥
पंचकोलमितिख्यातंरुच्यंपाचनदीपनम् ॥
आनाहप्लीहगुल्मघ्नंशूलश्लेष्मोदरापहम् ॥ १४ ॥

अर्थ–१ पीपल २ चव्य ३ सोंठ ४ पीपरामूल और ५ चीतेकी छाल इन पाच औषधोंको पंचकोल कहते हैं। इस पचकोलका चूर्ण करके सेवन करे तो यह पाचन और दीपन है। इससे अफरा, प्लीह, गोलेका रोग, शूल और कफोदर ये दूर होयँ।

त्रिगंध तथा चतुर्जातचूर्ण।

त्रिगंधमेलात्वक्पत्रैश्चतुर्जातंसकेशरम् ॥
त्रिगंधंसचतुर्जातंरूक्षोष्णंलघुपित्तकृत् ॥ १५ ॥
वर्ण्यंरुचिकरंतीक्ष्णंपित्तश्लेष्मामयाञ्जयेत् ॥

अर्थ–छोटी इलायची दालचीनी और पत्रज इन तीन औषधोंको त्रिगध कहते हैं इसमें चौथी केशर मिलावे तो इसीको चतुर्जात कहते हैं। तहा त्रिगध और चतुर्जात इनका चूर्ण वीर्य करके रूक्ष, गरम, पाककालमें हलका, पित्तको बढानेवाला, कान्तिका दाता, रुचिकारी, तीक्ष्ण और पित्तकफ सबधी रोगोंको दूर करनेवाला है।

---

१ जो देहको वृद्धावस्था और रोगोंका नाश करे उसको रसायन कहते हैं।

२ घी और सहत समान लेनेसे विष होजाता है वह देहमें अनेक विकार करता है। अतएव विषमभाग करके लेना चाहिये।

कृष्णादिचूर्ण बालकोंके ज्वरातिसारपर ।

कृष्णारुणामुस्तकशृंगिकाणांतुल्येनचूर्णेनसमाक्षिकेण ॥ १६ ॥
ज्वरातिसारःप्रशमंप्रयातिसश्वासकासःसवमिःशिशूनाम् ॥

अर्थ-१पीपल २ अतीस ३ नागरमोथा और ४ काकडासिंगी इन चार औषधोंके चूर्णको सहतमें मिलायके बालकको चटावे तो श्वास, खाँसी, वमन इन उपद्रवोंकरके युक्त ज्वरातिसार नष्ट होय ।

जीवनीयगण तथा उसके गुण ।

काकोलीक्षीरकाकोलीजीवकर्षभकौतथा ॥ १७ ॥
मेदाचान्यामहामेदाजीवन्तीमधुकन्तथा ॥
मुद्गपर्णीमाषपर्णीजीवनीयोगणस्त्वयम् ॥ १८ ॥
जीवनीयोगणःस्वादुर्गर्भसंधानकृद्गुरुः ॥
स्तन्यकृद्बृंहणोवृष्यःस्निग्धःशीतस्तृषापहः ॥ १९ ॥
रक्तपित्तंक्षयंशोषंज्वरदाहानिलाञ्जयेत् ॥

अर्थ-१ काकोली २ क्षीरकाकोली ३ जीवक ४ ऋषभक ५ मेदा ६ महामेदा ७ जीवन्ती ८ मुलहटी ९ मुद्गपर्णी १० माषपर्णी इन दश औषधेंके समुदायको जीवनीयगण कहते हैं । यह जीवनीयगण मधुर, गर्भस्थापक, भारी, स्तनोंमे दूध उत्पन्न करने वाला, शरीको पुष्ट करनेवाला, स्त्रीगमनमें हर्ष देनेवाला स्निग्ध तथा शीतल होकर प्यास, रक्तपित्त. क्षय, शोष, ज्वर, दाह और वायु इनका नाशकरे ।

अष्टवर्ग तथा उनके गुण ।

द्वेमेदेद्वेचकाकोल्यौजीवकर्षभकौतथा ॥ २० ॥ ऋद्धि वृद्धीचतैःसर्वैरष्टवर्गउदाहृतः ॥ अष्टवर्गोबुधैःप्रोक्तोजीवनीयसमोगुणैः ॥ २१ ॥

अर्थ-१ मेदा २ महामेदा ३ काकोली ४ क्षीरकाकोली ५ जीवक ६ ऋषभक ७ ऋद्धि और ८ वृद्धि ये आठ औषधें समीप नहीं मिलतीं किन्तु कश्मीर काबुल आदि देशोंमें और हिमालयपर्वतपर तलाश करनेसे मिलती हैं अतएव इनके अभावमें औषध कहते हैं-मेदा और महामेदा इन दोनोंके अभावमें मुलहटी लेनी, काकोली और क्षीरकाकोली इन दोनोंके अभावमें असगंध लेनी, जीवक और ऋषभकके अभावमें विदारीकंद लेना और ऋद्धि तथा वृद्धि इन दोनोंके अभावमें वाराहीकन्द वैद्यको लेना चाहिये । इस अष्टवर्गकेभी गुण जीवनीयगणके समान जानने ।

लवणपंचकचूर्ण तथा गुण।

सिंधुसौवर्चलंचैवविडंसामुद्रिकंगडम् ॥ एकद्वित्रिचतुःपंचलवणानिक्रमाद्विदुः ॥ २२ ॥ तेषुमुख्यंसैंधवंस्यादनुक्तेतच्च योजयेत् ॥ सैंधवाद्यंरोमकांतंज्ञेयंलवणपंचकम् ॥ २३ ॥ मधुरंसृष्टविण्मूत्रंस्निग्धंसूक्ष्मंमलापहम् ॥ वीर्योष्णंदीपनंतीक्ष्णंकफपित्तविवर्धनम् ॥ २४ ॥

अर्थ—१ सैंधानमक २ सचरनमक ३ विडनमक ४ सामुद्रनमक और ५ साम्हरनमक इन पांचोमे पहिला एक लवण, पहिला और दूसरा इनको द्विलवण, पहला दूसरा और तीसरा इनको त्रिलवण, पहला दूसरा तीसरा और चतुर्थ इनको चतुर्लवण एवं पहला दूसरा तीसरा चतुर्थ और पँचवा इनको पंचलवण कहते हैं। तथा इन पँचोंमे सैंधानमक उत्तम है। अतएव जिस जगह लवण डाले ऐसा विना नामके कहाहो वहापर सैंधानमक डालना चाहिये। यह लवणपंचक मधुर है। इससे मूत्र और मल अच्छी रीतिसे उतरते हैं। ये (पचलवण) स्निग्ध और सूक्ष्म होकर बलहीन करते हैं। उष्ण वीर्यवाले होनेसे अग्नि प्रदीप्त करते हैं तथा तीक्ष्ण हैं अतएव कफ पित्तको वढाते है।

क्षार गुल्मादिकोंपर।

स्वर्जिकायावशूकश्चक्षारयुग्ममुदाहृतम् ॥
ज्ञेयौवह्निसमौक्षारौस्वर्जिकायावशूकजौ ॥ २५ ॥
क्षाराश्चाऽन्येपिगुल्मार्शोग्रहणीरुक्छिदःसराः ॥
पाचनाःकृमिपुंस्त्वघ्नाःशर्कराश्मरिनाशनाः ॥ २६ ॥

अर्थ—१ सज्जीखार २ जवाखार ये दोनों खार अग्निके समान पाचक हैं इस प्रकार जानना। तथा आरू, इमली, ओगा, थूहर, केला, अमलतास, मोखा इत्यादिक जो अन्य, औषधोंके खार हैं वे गोला, बवासीर और संग्रहणी इनको दूर करतेहै। दस्तकारक होकर अग्निको दीप्त करते हैं तथा कृमिविकार पुंस्त्व और शर्करापथरीको नष्ट करते हैं।

सुदर्शनचूर्ण सब ज्वरोंपर।

त्रिफलारजनीयुग्मंकंटकारीयुगंसटी ॥ त्रिकटुग्रंथिकंमूर्वागुडूचीधन्वयासकः ॥२७॥ कटुकापर्पटोमुस्तंत्रायमाणाच बाल-

१ प्रसारणीका कल्क करके नमकके साथ अग्निके संयोग करके जो होवे वह कृत्रिम विडनमक कहलाता है। २ दक्षिण समुद्रके समीप उत्पन्न होनेवालेको सामुद्रनमक कहते हैं।

कम् ॥ निंबःपुष्करमूलंचमधुयष्टीचवत्सकम् ॥ २८ ॥ यवानींद्रयवोभार्गीशिग्रुबीजंसुराष्ट्रजा ॥ वचात्वक्पद्मकोशीरचंदनातिविषाबलाः ॥ २९ ॥ शालिपर्णीपृष्टपर्णीविडंगंतगरं तथा ॥ चित्रकोदेवकाष्टंचचव्यंपत्रंपटोलजम् ॥ ३० ॥ जीवकर्षभकौचैवलवंगंवंशरोचना ॥ पुंडरीकंचकाकोलीपत्रकंजातिपत्रकम् ॥ ३१ ॥ तालीसपत्रंचतथासमभागानि चूर्णयेत् ॥ सर्वचूर्णस्यचार्धांशंकिरातंप्रक्षिपेत्सुधीः ॥ ३२ ॥ एतत्सुदर्शनंनामचूर्णंदोषत्रयापहम् ॥ ज्वरांश्चनिखिलान्हन्यान्नात्रकार्याविचारणा॥३३॥पृथग्द्वंद्वागंतुजांश्चधातुस्थान्विषमज्वरान् ॥ सन्निपातोद्भवांश्चापिमानसानापिनाशयेत् ॥ ३४ ॥ शीतज्वरैकाहिकादीन्मोहंतंद्रांभ्रमंतृषाम् ॥ श्वासंकासंचपांडुंचहृद्रोगंहंतिकामलाम् ॥ ३५ ॥ त्रिकपृष्ठकटीजानुपार्श्वशूलनिवारणम् ॥ शीतांबुनापिबेद्धीमान्सर्वज्वरनिवृत्तये ॥३६॥ सुदर्शनंयथाचक्रंदानवानांविनाशनम् ॥ तद्वज्ज्वराणांसर्वेषामिदंचूर्णंविनाशनम् ॥ ३७ ॥

अर्थ—१ हरड २ वहेडा ३ आँवला ४ हल्दी ५ दारुहल्दी ६ छोटी कटेरी ७ वडी कटेरी ८ कचूर ९ सोंठ १० मिरच ११ पीपल १२ पीपरामूल १३ मूर्वा १४ गिलोय १५ धमासा १६ कुटकी १७ पित्तपापडा १८ नागरमोथा १९ त्रायमाण २० नेत्रवाला २१ नीमकी छाल २२ पुहकरमूल २३ मुलहटी २४ कुडाकी छाल २५ अजमायन २६ इन्द्रजौ २७ भारगी २८ सहजनेके वीज २९ फिटकरी ३० वच ३१ दालचीनी ३२ पत्राख ३३ चदन ३४ अतीस ३५ खरेंटी ३६ शालपर्णी ३७ पृष्टपर्णी ३८ वायविडग ३९ तगर ४० चीतेकी छाल ४१ देवदारु ४२ चव्य ४३ पटोलपत्र ४४ जीवक[1] ४५ ऋषभक ४६ लौंग ४७ वंशलोचन ४८ सफेद कमल ४९ काकोली[2] ५० पत्रज ५१ जावित्री तथा ५२ तालीसपत्र इन बावन औषधोको समान भाग ले और सब औषधोंका आधा चिरायता मिलावे सबको कूटके दरदरा चूर्ण करे,इसको सुदर्शन कहतेहैं। इस चूर्णको शीतल जलसे सेवन करे तो वात पित्त कफ द्वंद्व संनि-

१ जीवक ऋषभक ये दोनों नहीं मिलते अतएव इनके प्रतिनिधिमे विदारीकद लेवे।

२ काकोलीके अभावमे मुलहटी डालनी चाहिये।

पात इनसे होनेवाले ज्वर विषमज्वर आगंतुक ज्वर धातुजन्यज्वर मानसज्वर इत्यादि सपूर्णज्वर शीतज्वर एकाहिक आदि ज्वर मोह तंद्रा भ्रम तृषा श्वास खाँसी पांडुरोग हृदयरोग कामला त्रिक पीठ कमल जानु पसवाडा इनका शूल ये सब दूर होवें । जैसे सुदर्शनचक्र दैत्योंका नाश करता है उसी प्रकार यह सुदर्शन चूर्ण सब ज्वरोंका नाश करता है ।

त्रिफलापिप्पलीचूर्ण श्वासखाँसीपर ।

कासश्वासज्वरहरात्रिफलापिप्पलीयुता ॥
चूर्णितामधुनालीढाभेदिनीचाग्निबोधिनी ॥ ३८ ॥

अर्थ--१ हरड २ बहेडा ३ आँवला और ४ पीपर इन चार औषधोंका चूर्ण कर सहतमें मिलायके चाटे तो मलका भेद हो (दस्त साफ हो) कर अग्नि प्रदीप्त होवे और श्वास खाँसी तथा ज्वर ये दूर हों ।

कट्फलादिचूर्ण ज्वरादिकोंपर ।

कट्फलंमुस्तकंतिक्ताशुंठीशृंगीचपौष्करम् ॥ चूर्णमेषांचमधुनाशृंगवेररसेनवा ॥ ३९ ॥ लिहेज्ज्वरहरंकंव्यंकासश्वासारुचीर्जयेत् ॥ वायुंछर्दितथाशूलंक्षयंचैवव्यपोहति ॥४०॥

अर्थ--१ कायफर २ नागरमोथा ३ कुटकी ४ सोंठ ५ काकडासिंगी और ६ पुहकरमूल इन छः औषधोंका चूर्ण करके सहत अथवा अदरखके रससे सेवन करे तो ज्वर दूर होवे, तथा खाँसी, श्वास, अरुचि, वादी, वमन, शूल और क्षयका रोग दूर होवे ।

दूसरा कट्फलादिचूर्ण कफशूलादिकोंपर ।

कट्फलंपौष्करंशृंगीमुस्तात्रिकटुकंशठी ॥ समस्तान्येकशो वापिसूक्ष्मचूर्णानिकारयेत् ॥४१॥ आर्द्रकस्वरसक्षौद्रैर्लिह्यात्कफविनाशम् ॥ शूलानिलारुचिच्छर्दिकासश्वासक्षयापहम् ४२

अर्थ--१ कायफर २ पुहकरमूल ३ काकडासिंगी ४ नागरमोथा ५ सोंठ ६ मिरच ७ पीपल और ८ कचूर इन आठ औषधोंको पृथक् २ कूटके अथवा सबको एकही जगह कूट चूर्ण करे । फिर अदरखके रससे अथवा सहतके साथ मिलाकर दे तो कफ, शूल वादी, अरुचि, ओकारी, खाँसी, श्वास और क्षयरोग ये दूर होवे ।

तथा कट्फलादिचूर्ण कफादिकोंपर ।

कट्फलंपौष्करंकृष्णाशृंगीचमधुनासह ॥
कासश्वासज्वरहरःश्रेष्ठोलेहःकफांतकृत् ॥४३॥

अर्थ—१कायफर २ पुहकरमूल ३ पीपल ४ काकडासिंगी इन चार ओषधोंका चूर्ण कर सहतसे चाटे तो श्वास, खाँसी और कफज्वर इनको नष्ट करे ।

शृंग्यादिचूर्ण बालकोंके कासज्वरपर ।

शृंगीप्रतिविषाकृष्णाचूर्णितामधुनालिहेत् ॥
शिशोःकासज्वरच्छर्दिशांत्यैवाकेवलाविषा ॥ ४४ ॥

अर्थ—१ काकडासिंगी २ अतीस और ३ पीपर इन तीन औषधोंका चूर्ण कर सहत मिलाय बालकोको चटावे । अथवा एक अतीसकाही चूर्ण करके सहत मिलायके चटावे तो बालककी खाँसी, ज्वर और वमन ये दूर होवे ।

यवक्षारादिचूर्ण बालकोंके पांचोंखाँसीपर ।

यवक्षारविषाशृंगीमागधीपौष्करोद्भवम् ॥
चूर्णक्षौद्रयुतंलीढंपंचकासाञ्जयेच्छिशोः ॥ ४५ ॥

अर्थ—१ जवाखार २ अतीस ३ काकडासिंगी ४ पीपल ५ पुहकरमूल इन पाच औष-धोंका चूर्ण बालकोंको सहतमें चटावे तो पाचप्रकारकी खाँसीका रोग दूर हो ।

शुंठ्यादिचूर्ण आमातिसारपर ।

शुंठीप्रतिविषाहिंगुमुस्ताकुटजचित्रकैः ॥
चूर्णमुष्णांबुनापीतमामातीसारनाशनम् ॥ ४६ ॥

अर्थ—१ सोंठ २ अतीस ३ हींग ४ नागरमोथा ५ इन्द्रजौ और ६ चीतेकी छाल इन छः औषधोंके चूर्णको चौगुने गरमजलसे पीवे तो आमातिसार दूरहो ।

दूसरा हरीतक्यादिचूर्ण ।

हरीतकीप्रतिविषासिंधुसौवर्चलंवचा ॥ हिंगुचेतिकृतंचूर्णंपिबे-दुष्णेनवारिणा॥४७॥आमातिसारशमनंग्राहिचाग्निप्रबोधनम्॥

अर्थ—१ जंगीहरड २ अतीस ३ सैंधानमक ४ संचरनमक ५ वच और ६ भुनीहुई हींग इन छः औषधोंका चूर्ण करके गरमजलके साथ पीवे तो आमातिसार दूर होवे, तथा मलका अवष्टंभ होकर अग्नि प्रदीप्त होतीहै ।

लघुगंगाधरचूर्ण सर्व अतिसारोंपर ।

मुस्तामिंद्रयवंबिल्वंलोध्रंमोचरसंतथा ॥ ४८ ॥ धातकींचूर्ण-येत्तक्रगुडाभ्यांपाययेत्सुधीः ॥ सर्वातिसारशमनंनिरुणद्धि

१ इस योगको कोई २ वैद्य हरडके विनाभी बनाते हैं ।
२ (तक्रशुंठीभ्यां) ऐसाभी पाठान्तर है ।

प्रवाहिकाम् ॥ ४९ ॥ लघुगंगाधरंनामचूर्णंसंग्राहकंपरम् ॥

अर्थ--१ नागरमोथा २ इन्द्रजौ ३ बेलगिरी ४ लोध पठानी ५ मोचरस और ६ धायके फूल इन छः औषधोंका चूर्णकर छाछमे गुड मिलाय उसके साथ इस चूर्णको पीवे तो संपूर्ण अतिसार तथा प्रवाहिका रोग दूर होवें । इस चूर्णको लघुगंगाधर चूर्ण कहते हैं । यह चूर्ण मलका अवष्टंभ करनेवालाहै ।

वृद्धगंगाधरचूर्ण सर्वअतिसारोंपर।

मुस्तारलूकशुंठीभिर्धातकीलोध्रवालकैः ॥ ५० ॥ बिल्वमोचरसाभ्यांचपाठेंद्रयववत्सकैः ॥ आम्रबीजंप्रतिविषालज्जालुरितिचूर्णितम् ॥ ५१ ॥ क्षौद्रतंडुलपानीयैःपीतैर्यातिप्रवाहिका ॥ सर्वातिसारग्रहणीप्रशमंयातिवेगतः ॥ ५२ ॥ वृद्धगंगाधरंचूर्णंसरिद्वेगविबंधकम् ॥

अर्थ—१ नागरमोथा २ टेंटू ३ सोंठ ४ धायके फूल ५ लोध ६ नेत्रवाला ७ बेलगिरी ८ मोचरस ९ पाढ १० इन्द्रजौ ११ कुडाकी छाल १२ आमकी गुँठली १३ अतीस और १४ लजालु इन चौदह औषधोंका चूर्ण करके चावलोंके धोवनके जलमें सहत मिलाय इसके साथ पीवे तो प्रवाहिका रोग, संपूर्ण अतिसार और संग्रहणी ये शीघ्र दूरहो। इस चूर्णको वृद्धगंगाधर चूर्ण कहते हैं। यह चूर्ण अतिसारके नदी समान वेगकोभी दूर करता है।

अजमोदादिचूर्ण अतिसारपर।

अजमोदामोचरसंसशृंगवेरंसधातकीकुसुमम् ॥
मथितेनयुतंपीतंगंगामपिवाहिनींरुंध्यात् ॥ ५३ ॥

अर्थ—१ अजमोदा २ मोचरस ३ अदरख और ४ धायके फूल इन चार औषधोंका चूर्ण करके विनापानीके जमाये हुए गौके दहीमें मिलायके पीवे तो गंगाके समान भी दस्तोंके वेगको यह बंद करता है।

मरिच्यादिचूर्ण संग्रहणीपर।

तक्रेणयःपिबेन्नित्यंचूर्णंमरिचसंभवम् ॥ ५४ ॥
चित्रसौवर्चलोपेतं ग्रहणीतस्यनश्यति ॥
उदरप्लीहमंदाग्निगुल्मार्शोनाशनंभवेत् ॥ ५५ ॥

अर्थ—१ कालीमिरच २ चीतेकी छाल ३ सचरनमक इन तीन औषधोंका चूर्ण छाछमें

मिलायके नित्य पीवे तो संग्रहणी, उदर, प्लीह, मंदाग्नि, गोला और बवासीर इनको दूर करे ।

कपित्थाष्टकचूर्ण संग्रहणीआदिपर ।

अष्टौभागाःकपित्थस्यषड्भागाशर्करामता ॥ दाडिमंतिंतिडी-
कंचश्रीफलंधातकीतथा ॥ ५६ ॥ अजमोदाचपिप्पल्यःप्रत्येकं
स्युस्त्रिभागिकाः ॥ मरिचंजीरकंधान्यंग्रंथिकंवालकं तथा ॥ ५७॥
सौवर्चलंयवानीचचातुर्जातंसचित्रकम् ॥ नागरंचैकभागाः
स्युःप्रत्येकंसूक्ष्मचूर्णितम् ॥ ५८ ॥ कपित्थाष्टकसंज्ञंस्या
च्चूर्णमेतद्गलामयान् ॥ अतिसारंक्षयंगुल्मंग्रहणींचव्यपोहति॥५९॥

अर्थ-कैथका गूदा ८ तोले मिश्री ६ तोले और १ अनारदाना २ इमली ३ बेलगिरी ४ धायके फूल ५ अजमोद और ६ पीपली इन छः औषधोंको तीन २ तोले लेवे १ कालीमिरच २ जीरा ३ धनिया ४ पीपरामूल ५ नेत्रवाला ६ सचरनोन ७ अजमायन ८ दालचीनी ९ इलायचीके बीज १० तमालपत्र ११ नागकेशर १२ चीतेकी छाल और १३ सोंठ इन तेरह औषधोंको एक एक तोले लेवे । सबका बारीक चूर्ण करे । इस चूर्णको कपित्थाष्टक चूर्ण कहते हैं इसके सेवनकरनेसे कंठके रोग अतिसार क्षय गोला और संग्रहणी ये दूर होंय ।

पिप्पल्यादिचूर्ण संग्रहणीपर ।

पिप्पलीबृहतीव्याघ्रीयवक्षारकलिंगकाः ॥ चित्रकंसारिवा
पाठासठीलवणपंचकम् ॥ ६० ॥ तच्चूर्णंपाययेद्दध्नासुरयो-
ष्णांबुनापिवा ॥ मारुतग्रहणीदोषशमनंपरमंहितम् ॥ ६१ ॥

अर्थ-१ पीपल २ कटेरी ३ बडी कटेरी ४ जवाखार ५ इन्द्रजौ ६ चीतेकी छाल ७ सारिवन ८ पाढ ९ कपूरकचरी और १४ पांचोंनमक इन चौदह औषधोंका चूर्ण कर दही मद्य अथवा गरम जलके साथ पीवे तो वातकी संग्रहणी नष्ट होय ।

दाडिमाष्टकचूर्ण संग्रहण्यादिकोंपर ।

दाडिमीद्विपलाग्राह्याखंडाचाष्टपलानिवा ॥ त्रिगंधस्यपलंचैकं
त्रिकटुस्यात्पलत्रयम् ॥ ६२ ॥ एतदेकीकृतंसर्वंचूर्णंस्याद्दा-
डिमाष्टकम् ॥ रुचिकृद्दीपनंकंठ्यंग्राहिकासज्वरापहम् ॥ ६३॥

अर्थ- अनारदाना २ पल, मिश्री ८ पल, दालचीनी इलायची और तमालपत्र ये तीनो मिलायके १ पल लेवे, तथा सोंठ कालीमिरच और पीपल ये तीनो औषध एक एक पल ले सबको कूट पीस चूर्ण करे । इसको दाडिमाष्टक चूर्ण कहते हैं इस चूर्णके

सेवन करनेसे मुखमें रुचि आवे, अग्नि प्रदीप्त होवे, कंठको हितकारी और मलका अवष्टंभकर्ता होकर खाँसी और ज्वरको दूर करे।

वृद्धदाडिमाष्टक अतिसारादिकोंपर।

दाडिमस्यपलान्यष्टौशर्करायाः पलाष्टकम्॥ पिप्पलीपिप्पली-मूलंयवानीमरिचंतथा ॥ ६४ ॥ धान्यकंजीरकंशुंठीप्रत्येकं पलसंमितम् ॥ कर्षमात्रातुगाक्षीरीत्वक्पत्रैलाश्वकेसरम् ॥ ६५ ॥ प्रत्येकंकोलमात्राः स्युस्तच्चूर्णंदाडिमाष्टकम् ॥ अतिसारंक्षयंगुल्मंग्रहणींचगलग्रहम् ॥ ६६ ॥ मंदाग्निंपीनसं कासंचूर्णमेतद्व्यपोहति ॥

अर्थ—अनारदाना और मिश्री प्रत्येक आठ २ पल लेवे १ पीपल २ पीपरामूल ३ अजमोदा ४ कालीमिरच ५ धनिया ६ जीरा ७ सोंठ पत्येक एक एक पल लेवे। वशलोचन १ तोले[१] ले और १ दालचीनी २ तमालपत्र ३ इलायची ४ नागकेशर ये चार औषध आठ २ मासे लेवे। इन सब औषधोंको कूट पीस चूर्ण करे। इसको वृद्धदाडिमाष्टक कहते हैं। इस चूर्णके सेवन करनेसे अतिसार, क्षय, गुल्म, सग्रहणी, कंठरोग, मदाग्नि, पीनस और खाँसी ये रोग दूर हों।

तालीसादिचूर्ण अरुचिआदिरोगोंपर।

तालीसंमरिचंशुंठीपिप्पलीवंशरोचना ॥ ६७ ॥ एकद्वित्रि-चतुःपंचकर्षैर्भागान्प्रकल्पयेत् ॥ एलात्वचोस्तुकर्षार्धंप्रत्येकं भागमावहेत् ॥ ६८ ॥ सूतवंगंमृतंताम्रंसमभागानिकारयेत्॥ द्वात्रिंशत्कर्षतुलिताप्रदेयाशर्करावुधैः ॥ ६९ ॥ तालीसाद्य-मिदंचूर्णंरोचनंपाचनंस्मृतम् ॥ कासश्वासज्वरहरंछर्द्यतीसार-नाशनम् ॥ ७० ॥ शोषाध्मानहरंप्लीहग्रहणीपांडुरोगजित् ॥

अर्थ—१ तालीसपत्र एक तोले, २ सोंठ तीन तोले ३ पीपल चार तोले ४ वंशलोचन पाच तोले ५ इलायचीके दाने और ६ दालचीनी छः छः मासे ७ वगभस्म और ८ ताम्रभस्म ये दोनों आठ ८ तोले और मिश्री ३२ तोले ले। सबका चूर्णकर मिश्री मिलाय सेवन करे तो यह तालीसचूर्ण रोचक, पाचक हो, खाँसी, श्वास, ज्वर, वमन, अतिसार, शोष, अफरा, प्लीह, संग्र-हणी और पांडुरोग इनको नष्टकरता है।

---

१ मागध परिभाषाके मान अनुसार एककर्षका व्यावहारिक १ तोला होता है। पलके चार तोले होते हैं।

लवंगादिचूर्ण हृद्रोगादिपर ।

लवंगंशुद्धकर्पूरमेलात्वङ्नागकेशरम् ॥७१॥ जातीफलमुशीरं चनागरंकृष्णजीरकम् ॥कृष्णागुरुस्तुगाक्षीरीमांसीनीलोत्पलं कणा ॥७२॥चंदनंतगरंवालंकंकोलंचेतिचूर्णयेत् ॥ समभागानिसर्वाणिसर्वेभ्योर्धासिताभवेत् ॥७३॥ लवंगाद्यमिदंचूर्णं राजार्हंवह्निदीपनम्॥रोचनंतर्पणंवृष्यंत्रिदोषघ्नंबलप्रदम्॥७४॥ हृद्रोगंकण्ठरोगंचकासंहिक्कांचपीनसम् ॥ यक्ष्माणंतमकंश्वासमतीसारमुरःक्षतम् ॥ ७५ ॥ प्रमेहारुचिगुल्मादीन्ग्रहणीमपिनाशयेत् ॥

अर्थ-१ लौंग २ भीमसेनीकपूर ३ इलायची ४ दालचीनी ५ नागकेशर ६ जायफल ७ खस ८ सोंठ ९ कालाजीरा १० कालीअगर ११ वंशलोचन १२ जटामांसी १३ नीलाकमल १४ पीपल १५ सफेद चदन १६ तगर १७ नेत्रवाला और १८ ककोल इन अठारह औषधोंको समान भाग लेकर चूर्ण करे चूर्णसे आधी मिश्री मिलावे इस चूर्णको लवगादि चूर्ण कहते हैं यह चूर्ण राजाओंको देनेके योग्य है । इस चूर्णसे अग्निप्रदीप्त होय और यह रुचिकारी है शरीर पुष्ट होवे, स्त्रीभोगनेकी शक्ति हो, वात पित्त कफ इनके प्रकोपको दूर करे, बलकरे, हृदयरोग, कठरोग, खाँसी, हिचकी, पीनस, क्षय, तमकश्वास, अतिसार, अरुचि, प्रमेह, गोला और संग्रहणी इन सब रोगोंको दूर करता है ।

जातीफलादिचूर्ण संग्रहणीआदिपर ।

जातीफललवंगैलापत्रत्वङ्नागकेशरम् ॥७६॥ कर्पूरचंदनतिलत्वक्क्षीरीतगरामलैः ॥ तालीसपिप्पलीपथ्यास्थूलजीरकचित्रकैः॥७७॥शुंठीविडंगमरिचान्समभागान्विचूर्णयेत्॥यावन्त्येतानिसर्वाणिकुर्याद्भंगांचतावतीम् ॥ ७८ ॥ सर्वचूर्णसमादेयाशर्कराचभिषग्वरैः ॥ कर्षमात्रंततःखादेन्मधुनाप्लावितं सुधीः ॥ ७९ ॥ अस्यप्रभावाद्ग्रहणीकासश्वासारुचिक्षयाः ॥ वातश्लेष्मप्रतिश्यायाःप्रशमंयांतिवेगतः ॥ ८० ॥

अर्थ-१ जायफल २ लौंग ३ इलायची ४ तमालपत्रक ५ दालचीनी ६ नागकेशर ७ कपूर ८ सफेदचंदन ९ कालेतिल १० वंशलोचन ११ तगर १२ आँवले

१ कपूरके तीन भेद हैं ईशावास हिम और पोताश्रित परंतु राजनिघंटुमे वरास, चीनिया और पत्रकपूर भेद माने हैं । शुद्ध कपूरको भीमसेनी कपूरको वरास कहते हैं ।

१३ तालीसपत्र १४ पीपल १५ हरड१६कालाजीरा १७ चीतेकी छाल १८ सोंठ १९ वायविडंग और २० काली मिरच ये वीस औषध समान भाग लेवे तथा इन सब औषधोंके समान भाग शुद्ध भाँग मिलाकर सबका चूर्ण कर चूर्णकी बराबर सफेद मिश्री मिलावे सबको एकत्रकर१ तोले नित्य सहतके साथ सेवन करे तो संग्रहणी, खाँसी, श्वास, अरुचि, क्षय, वातकफके विकार और पीनस ये रोग शीघ्र दूर होवे।

महाखांडवचूर्ण अरुचिआदिपर[१]।

मरिचंनागपुष्पाणितालीसंलवणानिच ॥ प्रत्येकमेकभागाःस्युः पिप्पलीमूलचित्रकैः ॥८१॥ त्वक्कणातिंतिडीकंचजीरकंचाद्विभागकम् ॥ धान्याम्लवेतसौविश्वभद्रैलाबदराणि च॥८२॥ अजमोदाजलधरःप्रत्येकंस्युस्त्रिभागिकाः ॥ सर्वौषधचतुर्थांशंदाडिमस्यफलंभवेत् ॥ ८३ ॥ द्रव्येभ्योनिखिलेभ्यश्वसितादेयार्धमात्रया ॥ महाखांडवसंज्ञंस्याच्चूर्णमेतत्सुरोचनम् ॥ ८४ ॥ अग्निदीतिकरंहृद्यंकासातीसारनाशनम् ॥ हृद्रोगकंठजठरमुखरोगप्रणाशनम् ॥ ८५ ॥ विषूचिकांतथाध्मानमर्शोगुल्मकृमीनापि ॥ छर्दिंपंचविधांश्वासंचूर्णमेतद्व्यपोहति ॥ ८६ ॥

अर्थ–१ काली मिरच २ नागकेशर ३ तालीसपत्र ४ सैंधानमक ५ सचरनमक ६ विडनमक ७ समुद्रनमक और ८ रेहकानमक ये आठ औषध एक एक तोले लेवे। तथा १ पीपरामूल २ चित्रक ३ दालचीनी ४ पीपल ५ इमलीकी छाल ६ जीरा ये औषध दो दो तोले लेवे। १ धनिया २ अमलवेत ३ सोंठ ४ बडी इलायचीके दाने ५ छोटे बेर ६ अजमोद और ७ नागरमोथा ये सातों औषध तीन २ तोले लेवे और सब औषधोंका चतुर्थ भाग अनारदाना ले फिर सब औषधोंका चूर्ण कर इस चूर्णसे आधी सफेद मिश्री मिलावे, सबको एकत्र करे इसको महाखाडवचूर्ण कहते हैं इस चूर्णके सेवन करनेसे रुचि हो, अग्नि यथा प्रदीप्त हो, यह हृदयको हितकारी, खाँसी, अतिसार, हृद्रोग, कंठरोग, उदररोग, मुखरोग, विषूचिका (हैजा) अफरा, बवासीर, गोला, कृमिरोग, पांच प्रकारका छर्दिरोग तथा श्वास ये दूर होवें।

नारायणचूर्ण उदररोगपर।

चित्रकस्त्रिफलाव्योषंजीरकंहपुषावचा ॥ यवानीपिप्पलीमूलंश-

---

१ अमलवेत सर्वत्र प्रसिद्ध है। यदि कहीं न मिले तो उसके अभावमें चूका अथवा चनाकी खटाई डालनी चाहिये।

तपुष्पाजगंधिका ॥ ८७ ॥ अजमोदाशठीधान्यंविडंगंस्थूलजीरकम् ॥ हेमाह्वापौष्करंमूलंक्षारौलवणपंचकम् ॥ ८८ ॥ कुष्ठंचेतिसमांशानिविशालास्याद्दिभागिका ॥ त्रिवृत्त्रिभागाविज्ञेयादंत्याभागत्रयंभवेत् ॥८९॥ चतुर्भागाशातलास्यात्सर्वाण्येकत्रचूर्णयेत्॥पाचनंस्नेहनाद्यैश्चस्निग्धकोष्ठस्यरोगिणः॥९०॥ दद्याच्चूर्णंविरेकायसर्वरोगप्रणाशनम् ॥ हृद्रोगेपांडुरोगेचकासेश्वासेभगंदरे ॥ ९१ ॥ मंदेऽग्नौचज्वरे कुष्ठेग्रहण्यांचगलग्रहे ॥ दद्याद्युक्तानुपानेनतथाध्मानेसुरादिभिः ॥ ९२ ॥ गुल्मेवदरनीरेणविड्भेदेदधिमस्तुना ॥ उष्णांबुभिरजीर्णेचवृक्षाम्लैःपरिकर्तिषु ॥ ९३ ॥ उष्ट्रीदुग्धेनोदरेषुतथातक्रेणवागवाम् ॥ प्रसन्नयावातरोगेदाडिमांभोभिरर्शसि ॥ ९४ ॥ द्विविधेचविषेदद्याद्घृतेनविषनाशनम् ॥ चूर्णंनारायणंनामदुष्टरोगगणापहम्॥९५॥

अर्थ—१ चीतेकी छाल २ हरड ३ वहेडा ४ आँवला ५ सोंठ ६ मिरच ७ पीपल ८ जीरा ९ हाऊबेर १० वच ११ अजमायन १२ पीपरामूल १३ सौंफ १४ वर्वरी (वनतुलसी) १५ अजमोदा १६ कचूर १७ धनिया १८ वायविडग १९ मगरेला (कलौंजी) २० पुहकरमूल २१ सज्जीखार २२ जवाखार २३ सैंधानमक २४ सचरनमक २५ विडनमक २६ समुद्रनमक २७ काचिया नमक और २८ कूट इन अट्ठाईस औषधोको एक एक तोले लेवे। इन्द्रायणकी जड २ तोले निसोथ ३ तोले और दंतीकी जड ३ तोले एवं पीली थूहर ४ तोले। इन सब औषधोंको कूट पीस चूर्ण करें फिर पाचन[1] करके और स्नेहनादि करके जिस मनुष्यका चिकना कोठा होगया हो उस मनुष्यको दस्त होनेके वास्ते यह चूर्ण देवे तो संपूर्ण रोग दूर होवें, हृदयरोग, पाडुरोग, खाँसी, श्वास, भगंदर, मंदाग्नि, ज्वर, कोढ, संग्रहणी इन रोगोंमें मद्य आदि अनुपानके साथ देवे। पेटके फूलनेपर दारूके साथ देवे। गोलेके रोगमें बेरके काढेके साथ देवे। मल बद्धवालेको दहीके जलसे देवे। अजीर्णरोगीको गरम जलके साथ देवे। गुदामे कतरनीकीसी पीडा होती होवे तो तंतडीके काढेके साथ देवे। उदररोग (जलंधर) मे ऊँटनीके दूधके साथ अथवा गौके तक्रके साथ देवे। बादीके रोगोंमें

---

१ मनुष्यको आरग्वधादि पंचकके काढेसे पाचन देकर तथा उत्तर खंडमें जो घृतपानकी विधि कही है उसी प्रकार घी पीनेको देकर कोठेको चिकना करे पीछे चूर्णको देवे।

प्रसन्ना मद्यके साथ देवे। ववासीरमें अनारदानेके जलके साथ देवे तो सर्व रोग नष्ट हो। स्थावर और जंगम विषोंमें घृतके साथ देवे तो दोनो प्रकारके विष दूर हो इसको नारायणचूर्ण कहते है, इससे संपूर्ण दुष्ट रोग दूर होते हैं।

हपुषादिचूर्ण अजीर्णउदरादिकोंपर।

हपुषात्रिफलाचैवत्रायमाणाचपिप्पली॥हेमक्षीरीत्रिवृच्चैवशातलाकटुकावचा॥९६॥ नीलिनीसैंधवंकृष्णलवणंचेतिचूर्णयत्॥ उष्णोदकेनमूत्रेणदाडिमत्रिफलारसैः॥ ९७ ॥ तथामांसरसेनापियथायोग्यंपिबेन्नरः॥ अजीर्णप्लीहगुल्मेषुशोफार्शोविषमाग्निषु॥ ९८॥ हलीमकामलापांडुकुष्ठाध्मानोदरेष्वपि॥

अर्थ--१ हाऊबेर २ हरड ३ बहेडा ४ आँवला ५ त्रायमाण[1] ६ पीपल ७ चोक ८ निसोथ ९ पीली थूहर १० कुटकी ११ वच १२ नीली[2] १३ सैंधानमक १४ कालानमक प्रत्येक समान भाग लेवे सबका चूर्ण कर गरम जलके साथ वा गोमूत्रके साथ वा अनारदानेके रससे अथवा त्रिफलाके कोढके साथ अथवा वनके हारिणादिकोंके मांसरससे योग्यता विचारके देवे तो अजीर्ण, प्लीहा, गोला, सूजन, बवासीर, मदाग्नि, हलीमक, कामला, पांडुरोग, कुष्ट, अफरा और उदररोग इन सबको दूरकरे।

पंचसमचूर्ण[3] शूलआदिपर।

शुंठीहरीतकीकृष्णात्रिवृत्सौवर्चलंतथा॥ ९९ ॥ समभागानि सर्वाणिसूक्ष्मचूर्णानिकारयेत्॥ ज्ञेयंपंचसमंचूर्णमेतच्छूलहरं परम्॥ १०० ॥ आध्मानजठरार्शोघ्नमामवातहरंस्मृतम्॥

अर्थ--१ सोंठ २ हरड ३ पीपल ४ निसोथ और ५ संचरनमक, ये पाचो औषधि समभाग लेकर बारीक चूर्ण करे। इसको पंचसम चूर्ण कहते हैं। यह चूर्ण सेवन करनेसे शूलरोग, पेटका फूलना, मंदाग्नि, बवासीर, आमवायु ये रोग दूर हों।

पिप्पल्यादिचूर्ण अफराआदिपर।

कर्षमात्राभवेत्कृष्णात्रिवृतास्यात्पलोन्मिता॥१०१॥खंडात्पलंच विज्ञेयंचूर्णमेकत्रकारयेत्॥ कर्षोन्मितंलिहेदेतत्क्षौद्रेणाध्माननाशनम्॥ १०२॥ गाढविट्कोदरकफान्पित्तंशूलंचनाशयेत्॥

---

१ त्रायमाण इसी नामसे प्रसिद्ध है। इसके पत्ते जामुनकेसे होते हैं।

२ नीलीके छोटे २ होते हैं, यह नीलवृक्षके नामसे प्रसिद्ध है इसमेंसे नीला रंग उत्पन्नहोता है।

३ यह पचसमचूर्ण प्राय. शूलरोगपर बहुत चलता है और गुणभी शीघ्र दिखलाता है।

अर्थ-पीपल १ तोला, निसोथ ४ तोले, मिश्री ४ तोले इनका एकत्र चूर्ण कर सहतसे सेवन करे तो पेटका अफरा दूर होय। तथा मलबद्धता, उदररोग, कफ, पित्त और शूलको नाशकरे।

लवणत्रितयादिचूर्ण यकृत्प्लीहादिकोंपर।

लवणत्रितयंक्षारौशतपुष्पाद्वयंवचा ॥१०३॥ अजमोदाजगंधाचहपुषाजीरकद्वयम् ॥ मरिचंपिप्पलीमूलंपिप्पलीगजपिप्पली ॥ १०४ ॥ हिंगुश्चहिंगुपत्रीचशठीपाठोपकुंचिका ॥ शुण्ठीचित्रकचव्यानिविडंगंचाम्लवेतसम् ॥ १०५ ॥ दाडिमं तिंतिडीकंचत्रिवृद्दंतीशतावरी ॥ इन्द्रवारुणिकाभार्ङ्गीदेवदारुयवानिका ॥१०६॥ कुस्तुंबुरुस्तुंबुरूणिपौष्करंबदराणिच ॥ शिवाचेतिसमांशानिचूर्णमेकत्रकारयेत ॥ १०७ ॥ भावयेदार्द्रकरसैर्बीजपूररसैस्तथा ॥ तत्पिबेत्सर्पिषाजीर्णमद्येनोष्णोदकेनवा ॥ १०८ ॥ कोलांभसावातक्रेणदुग्धेनोष्ट्रेणमस्तुना ॥ यकृत्प्लीहकटीशूलगुदकुक्षिहृदामयान् ॥ १०९ ॥ अर्शोविष्टंभमन्दाग्निगुल्माष्ठीलोदराणिच ॥ हिक्काध्मानश्वासकासाञ्जयेदेतान्नसंशयः ॥ ११० ॥ एतैरेवौषधैः सम्यग्घृतंवासाधयेद्भिषक् ॥

अर्थ-१ सैंधानमक २ संचनमक ३ बिडनोन ४ सज्जीखार ५ जवाखार ६ सौंफ ७ नगरल (कलोंजी) ८ वच ९ अजमोद १० बर्बरी (वनतुलसी) ११ हाउबेर १२ सफेदजीरा १३ कालाजीरा १४ कालीमिरच १५ पीपलामूल १६ पीपर १७ गजपीपर १८ हींग भुनी १९ हिंगुपत्री २० कचूर २१ पाढ २२ छोटी इलायची २३ सोंठ २४ चव्य २५ चीतेकी छाल २६ वायविडंग २७ अमलवेत[1] २८ अनारदाना २९ तन्तडीक ३० निशोथ ३१ दन्ती ३२ सतावर ३३ इन्द्रायणका[2] गूदा ३४ भारगी ३५ देवदारु ३६ अजवायन ३७ धनिया ३८ चिरफल ३९ पुहकरमूल ४० बेर और ४१ छोटीहरड ये

---

१ अमलवेत सर्वत्र प्रसिद्ध है यदि कहीं न मिलता होवे तो अमलवेतके अभावमें चूका डाले अथवा कनाखार डाले।

२ इन्द्रायणको हमारे इस मथुराप्रान्तके मनुष्य फरफेंदू कहते हैं। इसकी वेल होती है और पीले रंगका बडा वेलकी बराबर फल लगता है, यह अत्यंत कडुआ होताहै, यदि इसका फल न मिले तो इस की जड लेना चाहिये।

इकतालीस औषध समान भाग लेकर चूर्ण करे । फिर उस चूर्णको अदरखके रसकी एक तथा विजौरेके रसकी एक पुट देकर सुखाय लेवे । इस चूर्णको घी, पुराना मद्य, गरम जल अथवा बेरका काढा, गौकी छाछ, ऊँटनीका दूध, दहीका पानी इनमेंसे जो अनुपान रोगीको हितकारी होय वह उसके साथ देवे तो कलेजका रोग, प्लीहा (फीहा), कमरका दर्द, गुदाका रोग, कूखका शूल, हृदयरोग, बवासीर, मलका अवरोध, मदाग्नि, गोला, अष्ठीला, उदर, हिचकी, अफरा, श्वास और खासी ये रोग दूर होवे । अथवा इस चूर्णमें कहीहुई औषधोंका काढा करके उसमें घी मिलायके साधन करे । जब घी सिद्ध होजावे तब उतारले । इस घृतके सेवन करनेसे ऊपर कहे हुए सपूर्ण रोग दूर होंय ।

तुंबर्वादिकचूर्ण शूलादिकोंपर ।

तुंबरूणित्रिलवणंयवानीपुष्कराह्वयम् ॥१११॥ यवक्षाराभ-याहिंगुविडंगानिसमानिच ॥ त्रिवृत्त्रिभागाविज्ञेयासूक्ष्मचूर्णा-निकारयेत् ॥११२॥ पिबेदुष्णेनतोयेनयवक्काथेनवापिबेत् ॥ जयेत्सर्वाणिशूलानिगुल्माध्मानोदराणिच ॥ ११३ ॥

अर्थ—१ धनिया अथवा चिरफल २ सैंधानमक ३ सचरनमक ४ बिडनमक ५ अजमोद ६ पुहकरमूल ७ जवाखार ८ हरड ९ भुनीहुई हींग और १० वायविडग इन दश औषधोको समान भाग लेवे । तथा निसोथ तीन भाग ले सब औषधोंका बारीक चूर्णकर गरम जलसे अथवा जवोंके काढेसे सेवन करे तो सर्व प्रकारके शूल, गोला, अफरा और उदररोग दूर होवें ॥

चित्रकादिचूर्ण गुल्मादिकोंपर ।

चित्रकोनागरंहिंगुपिप्पलीपिप्पलीजटा ॥ चव्याजमोदाम-रिचं प्रत्येकंकर्षसंमितम् ॥ ११४ ॥ स्वर्जिकाचयवक्षारः सिंधुसौवर्चलंबिडम् ॥ सामुद्रकंरोमकंचकोलमात्राणिकार-येत् ॥ ११५ ॥ एकीकृत्वाखिलंचूर्णंभावयेन्मातुलुंगजैः ॥ रसैर्दाडिमजैर्वापिशोषयेदातपेनच ॥ ११६ ॥ एतच्चूर्णं जयेद्गुल्मंग्रहणीमामजांरुजम् ॥ अग्निंचकुरुतेदीप्तंरुचिकृत्क-फनाशनम् ॥ ११७ ॥

अर्थ—१ चीतेकी छाल २ सोंठ ३ भुनीहुई हींग ४ पीपर ५ पीपरामूल ६ चव्य ७ अजमोद ८ कालीमिरच इन आठ औषधोंको तोले २ भर लेवे । तथा १ सज्जीखार २ जवाखार ३ सैंधानमक ४ संचरनमक ५ बिडनोन ६ समुद्रनमक और ७ रेहका-

नमक इन सात खारोंको आठमासे लेवे। फिर सब औषधोंका चूर्णकर बिजोरेके रसकी एक भावना देवे। अथवा अनारदानेके रसका एक पुट देवे। फिर धूपमें धरके सुखाय लेवे। इस चूर्णके सेवन करनेसे गोला, संग्रहणी, आम ये दूर हों तथा अग्नि प्रदीप्त हो, रुचि करे तथा कफ दूर होय।

वडवानलचूर्ण मंदाग्निआदिरोगोंपर।

सैंधवंपिप्पलीमूलंपिप्पलीचव्यचित्रकम्॥
शुण्ठीहरीतकीचेतिक्रमवृद्ध्याविचूर्णयेत्॥ ११८॥
वडवानलनामैतच्चूर्णस्यादग्निदीपनम्॥

अर्थ–१ सैंधानमक एकभाग २ पीपरामूल दोभाग ३ पीपर तीन भाग ४ चव्य चारभाग ५ चीतेकी छाल पांच भाग ६ सोंठ छः भाग ७ जंगी हरड सातभाग इस क्रमसे ये औषध लेकर चूर्ण करे। इस चूर्णको वडवानलचूर्ण कहते हैं इसका सेवन करनेसे अग्नि दीप्त होय।

अजमोदादिचूर्ण आमवातपर।

अजमोदाविडंगानिसैंधवन्देवदारुच ॥११९॥ चित्रकःपिप्पलीमूलं शतपुष्पाचपिप्पली ॥ मरिचंचेतिकर्षांशंप्रत्येककारयेद्बुधः॥ १२०॥ कर्षास्तुपंचपथ्यायादशस्युर्वृद्धदारुकात्॥ नागराच्चदशैवस्युःसर्वाण्येकत्रकारयेत्॥१२१॥ पिबेत्कोष्णजलेनैवचूर्णंश्वयथुनाशनम्॥ आमवातरुजंहंतिसंधिपीडांच गृध्रसीम्॥ १२२॥ कटिपृष्ठगुदस्थांचजंघयोश्चरुजंजयेत्॥ तूणीप्रतूणीविश्वाचीकफवातामयाञ्जयेत्॥ समेनवा गुडेनास्यवटकान्कारयेत्सुधीः॥ १२३॥

अर्थ–१ अजमोदा २ वायविडंग ३ सैंधानमक ४ देवदारु ५ चित्रक ६ पीपलामूल ७ साफ ८ पीपर और ९ कालीमिरच इन नौ औषधोंको तोले २ लेवे। तथा जंगीहरड ५ तोले ले विधायरा १० तोले और सोंठ दश तोले सब औषधोंको कूटपीस और छानके चूर्णकरे इसको गरमजलके साथ लेय तो सूजन, आमवात संधियोंका दूखना गृध्रसी वायु (जो कमरसे लेकर पैरपर्यंत पीडा होती है वह), कमर, पीठ, गुदा, जंघा और पोडरिओंके पीडा, तूणी वायु, प्रतूणी वायु तथा विश्वची वायु तथा कफवायुके विकार ये संपूर्ण रोग दूर होवें। अथवा इस चूर्णके समान भाग गुड मिलायके गोली बनायके खाय तो चूर्ण खानेसे जो रोग नष्टहोते हैं वेही इस गोलीके सेवनेसे नष्ट होंय।

शुंठ्यादिचूर्ण श्वासादिकपर।

शुंठीसौवर्चलंहिंगुदाडिमंचाम्लवेतसम् ॥
चूर्णमुष्णाम्बुनापेयंश्वासहृद्रोगशांतये ॥ १२४ ॥

अर्थ-१ सोंठ २ संचरनमक ३ भुनीहुई हींग ४ अनारदाना और ५ अमलवेत इनका चूर्ण गरम जलके साथ लेव तो श्वास और हृदयरोग नष्ट होवें।

हिंग्वादिचूर्ण शूलादिकोंपर।

हिंगूग्रगंधाविडविश्वकृष्णाकुष्ठाभयाचित्रकयावशूकम् ॥
पिबेत्ससौवर्चलपुष्कराह्वंहिमांभसाशूलहृदामयघ्नम् ॥ १२५ ॥

अर्थ-१ हींग २ वच ३ विडनोन ४ सोठ ५ पीपल ६ कूठ ७ हरड ८ चीतेकी छाल ९ जवाखार १० संचरनमक और ११ पुहकरमूल इन ग्यारह औषधोंका चूर्णकर शीतल जलके साथ पीवे तो शूल और हृदयरोग शांत होवे।

हिंग्वादिचूर्ण शूलादिकोंपर।

हिंगुपाठाभयाधान्यंदाडिमंचित्रकंशठी ॥ अजमोदात्रिकटुकं हपुषाचाम्लवेतसम् ॥ १२६ ॥ अजगंधातिंतिडीकंजीरकंपौष्करंवचा ॥ चव्यंक्षारद्वयंपंचलवणानीतिचूर्णयेत् ॥ १२७ ॥ प्राग्भोजनस्यमध्येवाचूर्णमेतत्प्रयोजयेत् ॥ पिबेद्वाजीर्णमद्येनतक्रेणोष्णोदकेनवा ॥ १२८ ॥ गुल्मेवातकफोद्भूतेविड्ग्रहेष्ठीलिकासुच ॥ हृद्बस्तिपार्श्वशूलेषु शूलेचगदयोनिजे ॥ ॥ १२९ ॥ मूत्रकृच्छ्रेतथानाहपांडुरोगेरुचौतथा ॥ हिक्कायांयकृतिप्लीह्निश्वासेकासेगलग्रहे ॥ १३० ॥ ग्रहण्यर्शोविकारेपुचूर्णमेतत्प्रशस्यते ॥ भावितंमातुलुंगस्यबहुशः स्वरसेनवा ॥ १३१ ॥ कुर्याच्चगुटिकाः पथ्यावातश्लेष्मामयापहाः ॥

अर्थ-१ भुनीहींग २ पाढ ३ जंगीहरड ४ धनियां ५ अनारदाना ६ चीतेकी छाल ७ कचूर ८ अजमोदा ९ सोठ १० मिरच ११ पीपल १२ हाऊबेर १३. अमलवेत १४ वनतुलसी १५ ततडीक अथवा इमली १६ जीरा १७ पुहकरमूल १८ वच १९ चव्य २० सज्जीखार २१ जवाखार २२ सैंधानोन २३ संचरनोन २४ विडनोन २५ वांगड खार

और २६ समुद्रका नोन । इन छब्बीस औषधोको कूट पीसके चूर्ण करे इसको भोजनके आदिमें अथवा भोजनके मध्यमे खाय अथवा बहुत दिनके पुराने मद्यके साथ सेवन करे अथवा गौकी छाछ एव गरम जलके साथ सेवन करे तो वात कफसे उत्पन्न होनेवाला गोलेका रोग, हृद्रोग, अष्ठीला इस नामसे पेटमे होनेवाला वादीका रोग, हृदय, कूख इनका शूल, तथा गुदाका शूल, योनिशूल, मूत्रकृच्छ्र, मलबद्धता, पांडुरोग, अरुचि, हिचकी, यकृत्रोग, तिल्लीका रोग, श्वास, खांसी, कठरोग, सग्रहणी, ववासीर ये सपूर्ण रोग दूर हो । इस चूर्णमे बिजोरेके रसके सातपुट देकर गोली बनाके सेवन करे तो वात कफसे होनेवाले रोग दूर होवें।

यवानीखांडवचूर्ण अरुचिआदिपर ।

यवानीदाडिमंशुंठीतिंतिडीकाम्लवेतसौ ॥ १३२ ॥ बदराम्लं च कुर्वीतचतुःशाणमितानिच॥ सार्द्धद्विशाणंमरिचंपिप्पलीदशशाणिका ॥ १३३ ॥ त्वक्सौवर्चलधान्याकंजीरकंद्विद्विशाणिकम् ॥ चतुःषष्टिमितैःशाणैःशर्करामत्रयोजयेत् ॥ १३४ ॥ चूर्णितंसर्वमेकत्रयवानीखांडवाभिधम् ॥ चूर्णंजयेत्पांडुरोगंहृद्रोगंग्रहणीज्वरम् ॥ १३५ ॥ छर्दिशोषातिसारांश्चप्लीहानाहविबंधताम् ॥ अरुचिशूलमंदाग्नीअर्शोजिह्वागलामयान् ॥ १३६॥

अर्थ—१ अजमोद २ अनारदाना ३ सोठ ४ ततडीक अथवा इमली ५ अमलवेत और ६ बेर खट्टे । ये छः औषध चार २ शाण लेवे । काली मिरच ढाई शाण, पीपर दश शाण, दालचीनी सचरनमक धनियां जीरा ये प्रत्येक दो दो शाण और मिश्री चौंसठ शाण ले । फिर सब औषधोंको कूटकर चूर्ण करे । इस चूर्णको यवानीखांडव चूर्ण कहते हैं । इस चूर्णके सेवन करनेसे पांडुरोग, हृद्रोग, संग्रहणी, ज्वर, वमन, शोष, अतिसार, तिल्ली, मलबद्धता, अरुचि, शूल, मंदाग्नि, ववासीर, जीभके रोग, कंठके रोग ये सब दूर होते हैं ।

तालीसादिचूर्ण अरुचिआदिरोगोंपर ।

तालीसंमरिचंशुंठीपिप्पलीवंशरोचना ॥ एकद्वित्रिचतुःपञ्चकर्षैर्भागान्प्रकल्पयेत् ॥ १३७॥ एलात्वचोस्तुकर्षार्धंप्रत्येकंभागमावहेत् ॥ द्वात्रिंशत्कर्षतुलिताप्रदेयाशर्कराबुधैः ॥ १३८ ॥ तालीसाद्यमिदंचूर्णंरोचनंपाचनंस्मृतम् ॥ कासश्वासज्वरहरं

छर्द्यतीसारनाशनम् ॥ १३९ ॥ शोपाध्मोनहरंप्लीहग्रहणीपांडु-
रोगजित् ॥ पक्त्वावाशर्करांचूर्णंक्षिपेत्स्याद्गुटिकाततः ॥१४०॥

अर्थ—तालीसपत्र १ तोले कालीमिरच २ तोले सोंठ ३ तोले पीपर ४ तोले वंशलोचन ५ तोले छोटी इलायची और दालचीनी दोनों छः छः मासे मिश्री ३२ तोले ले फिर सबको कूट पीस चूर्ण करके सेवन करे तो रुचि होय, अन्न पचे तथा खाँसी, श्वास, ज्वर, वमन, अतिसार, शोष, अफरा, तिल्ली, संग्रहणी और पाडुरोग ये दूर हो। अथवा मिश्रीकी चासनी करके उसमें इस चूर्णको डाल गोली बनाय लेवे तो यह भी चूर्णके समान गुण करती है।

सितोपलादिकचूर्ण खांसीक्षयपित्तादिकोंपर।

सितोपलाषोडशस्यादष्टौस्याद्वंशरोचना ॥ पिप्पलीस्याच्चतुः
कर्षास्यादेलाचद्विकर्षिकी ॥ १४१॥ एकःकर्षस्त्वचः कार्यश्चूर्ण-
येत्सर्वमेकतः ॥ सितोपलादिकंचूर्णमधुसर्पिर्युतंलिहेत् ॥१४२॥
श्वासकासक्षयहरंहस्तपादांगदाहजित् ॥ मंदाग्निंशून्यजिह्वत्वंपा-
र्श्वशूलमरोचकम् ॥१४३॥ ज्वरमूर्ध्वगतंरक्तंपित्तमाशुव्यपोहति ॥

अर्थ—मिश्री १६ तोले, वंशलोचन ८ तोले, पीपर ४ तोले, छोटी इलायचीके बीज २ तोले, दालचीनी १ तोला इन सब औषधोंको कूट पीस चूर्ण करे इसको सितोपलादिचूर्ण कहते हैं और इस चूर्णको सहत और घीके साथ मिलायके खाय तो श्वास, खाँसी, क्षय,[२] हाथ पैरोंका. तथा अंगोंका दाह, मंदाग्नि, जीभकी शून्यता, पसलीका शूल, अरुचि, ज्वर, ऊर्ध्वगत रक्तपित्त (नाकमुखसे रुधिर आना) ये सब तत्काल दूर होवे।

लवणभास्करचूर्ण संग्रहणीगुल्मादिकोंपर।

सामुद्रलवणंकार्यमष्टकर्षमितंबुधैः॥१४४ ॥पंचसौवर्चलंग्राह्यं
विडंसैंधवधान्यके ॥ पिप्पलीपिप्पलीमूलंकृष्णजीरकपत्रकम्
॥१४५॥नागकेसरतालीसमम्लवेतसकंतथा ॥ द्विकर्षमात्रा-
ण्येतानिप्रत्येकंकारयेद्बुधः ॥ १४६ ॥ मरिचंजीरकंविश्वमेकै-
कंकर्षमात्रकम् ॥ दाडिमंस्याच्चतुःकर्षंत्वगेलाचार्धकर्षिकी ॥

१ शोफाध्मानहर, कहीं ऐसा पाठ है तहां शोफ कहिये सूजन ऐसा अर्थ जानना।

२ 'मधुसर्पिर्युत लिहेत्' क्वचित् ऐसा पाठ है तहां सहत और घी दोनो विषम भाग ले इसमें चूर्णको मिलायके सेवन करे ऐसा अर्थ जानना।

॥ १४७ ॥ बीजपूररसेनैवभावितंसप्तवारकम् ॥ एतच्चूर्णीकृतं सर्वंलवणंभास्कराभिधम् ॥ शाणप्रमाणंदेयंतुमस्तुतक्रसुरासवैः ॥१४८॥ वातश्लेष्मभवंगुल्मंप्लीहानमुदरंक्षयम् ॥ अर्शांसि ग्रहणींकुष्ठंविबंधंचभगंदरम् ॥१४९॥ शोफंशूलंश्वासकासमामदोषंचहृद्रुजम्॥मंदाग्निंनाशयेदेतद्दीपनंपाचनंपरम् ॥१५०॥ सर्वलोकहितार्थायभास्करेणोदितंपुरा ॥

अर्थ–सामुद्रनमक ८ तोले, सचरनोन ५ तोले, १ विडनोन २ सैंधानमक ३ धनिया ४ पीपल ५ पीपरामूल ६ कालाजीरा ७ पत्रज ८ नागकेशर ९ तालीसपत्र और १० अमलवेत ये दश औषधी प्रत्येक दो दो तोले लेय; कालीमिरच जीरा और सोठ ये तीन औषधि एक २ तोले लेय, तथा अनारदाना ४ तोले, दालचीनी और इलायची छः छः मासे । इन सब औषधोको कूट पीस चूर्णकरे । इसके दहीके जलसे या दहीकी मलाईसे छाछ और मद्य (दारू) इनमेंसे रोगानुसार अनुपानके साथ ४ मासे देवे तो वातकफसे उत्पन्न होनेवाला गोला, फीहा, उदर, क्षय, बवासीर, संग्रहणी, कोढ, मलबद्धता (बद्धकोष्ठ), भगंदर, सूजन, शूल, श्वास, खाँसी, आमवात, हृद्रोग और मंदाग्नि ये सब रोग दूर हों । अग्नि प्रदीप्त हो तथा अन्नका परिपाक होवे । यह चूर्ण लोकोंके हितके वास्ते सूर्यने कहा है इसीसे इसका नाम लवणभास्कर चूर्ण विख्यात है ।

एलादिचूर्ण वमनपर ।

एलाप्रियंगुमुस्तानिकोलमज्जाचपिप्पली ॥ १५१ ॥ श्रीचंदनं तथालाजालवंगंनागकेसरम् ॥ एतच्चूर्णीकृतंसर्वंसिताक्षौद्रयुतं लिहेत् ॥ १५२ ॥ वातपित्तकफोद्भूतांछर्दिंहंत्यतिवेगतः ॥

अर्थ–१ छोटी इलायचीके बीज २ फूलप्रियगु ३ नागरमोथा ४ बेरकी गुठली ५ पीपर ६ सफेदचदन ७ खील ८ लौंग ९ नागकेशर इन नौ औषधोंको कूट पीस चूर्ण करके सहत और मिश्रीके साथ खाय तो वात पित्त और कफसे उत्पन्नहुआ वमन (रद) ये सब रोग तत्काल दूरहों ।

पंचनिंबचूर्ण कुष्ठादिकोंपर ।

मूलंपत्रंफलंपुष्पंत्वचंनिंबात्समाहरेत् ॥ १५३ ॥ सूक्ष्मचूर्णमिदंकुर्यात्पलैःपंचदशोन्मितैः ॥ लोहभस्महरीतक्याचक्रमर्दकचित्रकौ ॥१५४॥ भल्लातकविडंगानिशर्करामलकंनिशा ॥

पिप्पलीमरिचंशुंठीबाकुचीकृतमालकः ॥ १५५ ॥ गोक्षुरश्चप-लोन्मानमेकैकंकारयेद्बुधः ॥ सर्वमेकीकृतंचूर्णंभृंगराजेनभावये-त् ॥१५६॥ अष्टभागावशिष्टेनखदिरासनवारिणा ॥ भावयि-त्वाचसंशुष्कंकर्षमात्रंततःक्षिपेत् ॥ १५७ ॥ खदिरासनतोयेन सर्पिषापयसाथवा ॥ मासेनसर्वकुष्ठानिविनिहंतिरसायनम् ॥ ॥ १५८ ॥ पंचनिंबमिदंचूर्णंसर्वरोगप्रणाशनम् ॥

अर्थ-१ जड २ पत्ते ३ फल ४ फूल और ५ छाल ये पाच अग नीमके १५ पल लेय उनका चूर्ण करे उसमें १ लोहकी भस्म २ जंगीहरड ३ पॅवाडके वीज ४ चीतेकी छाल ५ मिलावे ६ वायविडंग ७ मिश्री ८ आमल ९ हल्दी १० पीपर ११ कालीमिरच १२ सोंठ १३ वावची १४ अमलतासका गूदा और १५ गोखरू ये पंद्रह औषध प्रत्येक एक एक पल लेकर इन सबका चूर्ण करे। फिर पूर्वोक्त नीमका चूर्ण और पंद्रह,औषधोका चूर्ण मिलाय एकत्र करके भाँगरेके रसकी भावना देकर सुखाय ले। पश्चात् खैरकी छालका काढा करके उसका एक पुट दे। फिर विजैसारकी छालका काढा करके एक पुट देकर सुखाय लेवे। १ तोले इस चूर्णको खेरकी छालके काढेसे पीवे। अथवा विजैसारके काढेसे वा घीं या गौके दूधसे पीवे तो एक महिनेमें सपूर्ण कोढ दूर होवें। इस चूर्णको पचनिंबचूर्ण कहते हैं, यह चूर्ग रसायन है।

शतावरीचूर्ण वाजीकरणपर।

शतावरीगोक्षुरश्चबीजंचकपिकच्छुजम् ॥ १५९ ॥ गांगेरुकी चातिबलाबीजमिक्षुरकोद्भवम् ॥ चूर्णितंसर्वमेकत्रगोदुग्धेनापि-बेन्निशि ॥ १६० ॥ नतृप्तियातिनारीभिर्नरश्चूर्णप्रभावतः ॥

अर्थ-१ शतावर २ गोखरू ३ कौंचके बीज ४ गगेरनकी छाल ५ कँगहीकी छाल ६ तालमखाना इन छःऔषधोंका चूर्ण कर रात्रिमे गौके दूधके साथ सेवन करे तो वहुत स्त्रीभोगनेसे भी इच्छाकी तृप्ति नहीं हो ऐसा इस चूर्णका प्रभाव है।

अश्वगंधादिचूर्ण पुष्टार्थपर।

अश्वगंधादशपलातन्मात्रोवृद्धदारकः ॥ १६१ ॥ चूर्णीकृत्यो-भयंविद्वान्घृतभांडेनिधापयेत् ॥ कर्षैकंपयसापीत्वानारीभि-र्नैवतृप्यति ॥१६२॥ अगत्वाप्रमदांभूयोवलीपलितवर्जितः ॥

अर्थ-असगंध १० पल, विधायरा ११ पल, इन दोनोंका चूर्णकर घीके वासनमें

भरके रात्रिको रख देवे फिर इसमेंसे २ तोले चूर्णको गौके दूधसे सेवन करे तो बहुतसी स्त्रियोसे भोग करनेपरभी तृप्त नहीं हो और यदि स्त्रीसेवनको त्यागके इस चूर्णको सेवन करे तो अंगमे गुजलटोंका पडना और बालोंका सफेद होना ये रोग दूर हों और बुड्ढेसे जवान हो।

मूसलीचूर्ण धातुवृद्धिपर।

मुसलीकंदचूर्णंतुगुडूचीसत्वसंयुतम् ॥ १६३ ॥ सक्षीरीगोक्षुराभ्यांचशाल्मलीशर्करामलैः ॥ आलोडयघृतदुग्धेनपाययेत्कामवर्धनम् ॥ १६४ ॥

अर्थ—१ सफेद मूसली २ गिलोयका सत्व ३ कौंछके बीज ४ गोखरू ५ सेमरका मूसला ६ मिश्री और ७ आँवले इन सात औषधोंका चूर्ण करके गौके दूधमें घी मिलाय इस चूर्णको पीवे तो धातुकी वृद्धि होकर काम बढे।

नवायसचूर्ण पांडुरोगादिकोंपर।

चित्रकंत्रिफलामुस्तंविडंगंत्र्यूषणानिच ॥ समभागानिसर्वाणि नवभागोहतायसः ॥ १६५ ॥ एतदेकीकृतंचूर्णंमधुसर्पिर्युतं लिहेत ॥ गोमूत्रमथवातक्रमनुपानेप्रशस्यते ॥ १६६ ॥ पांडुरोगंजयत्युग्रंत्रिदोषंचभगंदरम् ॥ शोथकुष्ठोदरार्शांसिमंदाग्निमरुचिंकृमीन् ॥ १६७ ॥

अर्थ—१ चीतेकी छाल २ हरड ३ बहेडा ४ आवला ५ नागरमोथा ६ वायविडंग ७ सोठ ८ कालीमिरच और ९ पीपल ये नौ औषध समानभाग ले चूर्णकरके उस चूर्णके समान लोहभस्म मिलावे। फिर इस चूर्णको सहत और घीके साथ अथवा गोमूत्रसे अथवा गौकी छाछसे सेवन करे तो बडाभारी घोर पाडुरंग, त्रिदोष, भगंदर, सूजन, कोढ, उदररोग, बवासीर, मंदाग्नि, अरुचि, और कृमिरोग इन सबको नष्ट करे।

अकारकरभादिचूर्ण स्तंभनपर।

अकारकरभःशुंठीकंकोलंकुंभकंकणा ॥ जातीफलंलवंगंचचंदनंचेतिकार्षिकान् ॥ १६८ ॥ चूर्णानिमानतःकुर्यादहिफेनंपलोन्मितम् ॥ सर्वमेकीकृतंसूक्ष्मंमाषैकंमधुनालिहेत् ॥ १६९ ॥ शुक्रस्तंभकरंचूर्णंपुंसामानंदकारकम् ॥ नारीणांप्रीतिजननंसेवेतानिशिकामुकः ॥ १७० ॥

अर्थ–१ अकरकरा २ सोंठ ३ कंकोल ४ केशर ५ पीपल ६ जायफल ७ लौंग और ८ सफेदचंदन ये आठ औषध एक एक तोले लेवे तथा अफीम चार तोले लेवे इन सबका एकत्र चूर्ण करके १ मासेके अनुमान इस चूर्णको सहतसे रात्रिके समय सेवन करे तो धातुका स्तंभन होकर पुरुषको आनंद होय तथा स्त्रियोंमें प्रीति उत्पन्न होवे।

मंजन।

वकुलत्वग्भवंचूर्णंघर्षयेद्दंतपंक्तिषु ॥
वज्रादपिदृढीभूतादंताःस्युश्चपलाध्रुवम् ॥ १७१ ॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेणविरचितायांसंहितायांचि-
कित्सास्थाने चूर्णकल्पनाध्यायःषष्ठः ॥ ६ ॥

अर्थ–मौलसिरीकी छालके चूर्णको दाँतोंमें घिसाकरे तो हिलते हुएभी दांत वज्रके समान दृढ होवें इसमें संदेह नहीं।

इति श्रीमाथुरीभाषाटीकायां द्वितीयखंडे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः ७.

वटिकाश्चाथकथ्यंतेतन्नामगुटिकावटी ॥ मोदकोवटिकापिंडी गुडोवर्तिस्तथोच्यते ॥ १ ॥ लेहवत्साध्यतेवह्नौगुडोवाशर्करावथा ॥ गुग्गुलंवाक्षिपेत्तत्रचूर्णंतन्निर्मितावटी ॥ २ ॥ प्रकुर्याद्वह्निसिद्धेनक्वचिद्गुग्गुलुनावटी ॥ द्रवेणमधुनावापिगुटिकां कारयेद्बुधः ॥ ३ ॥ सिताचतुर्गुणादेया वटीषुद्विगुणोगुडः ॥ चूर्णाच्चूर्णसमःकार्योगुग्गुलुर्मधुतत्समम् ॥ ४ ॥ द्रवंचद्विगुणंदेयं मोदकेषुभिषग्वरैः ॥ कर्षप्रमाणातन्मात्राबलंदृष्ट्वाप्रयुज्यताम् ॥ ५ ॥

अर्थ–१ गुटिका २ वटी ३ मोदक ४ वटिका ५ पिंडी ६ गुड और ७ वर्त्ती ये सात वटिका अर्थात् गोलीके पर्याय शब्द हैं। इनका बनाना इस प्रकार है कि गुड, खांड अथवा गूगलका पाक करके उसमें चूर्ण मिलायकर गोली बनानी चाहिये। यदि पाक करे विना गोली बनानी होव तो गूगलको शोध पीस उसमें चूर्ण मिलायके घीसे गोली बनाय लेवे। अथवा जल दूध सहत आदि पतली वस्तुओंमें चूर्ण डालके खरलकर गोली बनाय लेवे। यदि खांड मिश्री आदि डालके गोली बनानी होवे तो चूर्णसे चौगुनी मिश्री मिलायके गोली बनावे। यदि गुड

मिलायके गोली करनी होवे तो चूर्णसे दूना गुड मिलायके गोली बनावे। कभी गूगल और सहत दोनों डालके गोली बनानी हो तो गूगल और सहत ये दोनों चूर्णके समान भाग लेकर गोली बनावे । और पानी दूध इत्यादि द्रव पदार्थसे गोली बनानी होवे तो चूर्णसे दूना डालके गोली बनानी चाहिये। चूर्णके सेवनकी मात्राका प्रमाण १ तोला है अथवा रोगीकी प्रकृतिके अनुसार वैद्यको मात्रा देनी चाहिये।

बाहुशालगुड बवासीरपर।

इंद्रवारुणिकामुस्तंशुंठींदंतीहरीतकी ॥ त्रिवृत्सटीविडंगानिगोक्षुरश्चित्रकस्तथा ॥ ६ ॥ तेजोह्वाचद्विकर्षाणिपृथग्द्रव्याणिकारयेत् ॥ सूरणस्यपलान्यष्टौवृद्धदारुचतुष्पलम् ॥ ७ ॥ चतुःपलंस्याद्भल्लातःक्वाथयेत्सर्वमेकतः ॥ जलद्रोणेचतुर्थांशंगृह्णीयात्क्वाथमुत्तमम् ॥ ८ ॥ क्वाथ्यद्रव्यात्रिगुणितंगुडंक्षिप्त्वा पुनःपचेत् ॥ सम्यक्पक्वंचविज्ञायचूर्णमेतत्प्रदापयेत् ॥ ९ ॥ चित्रकस्त्रिवृतादंतीतेजोह्वापलिकाःपृथक् ॥ पृथक्त्रिपलिकाः कार्य्योव्योषैलामरिचत्वचः ॥ १० ॥ निक्षिपेन्मधुशीतेचतस्मिन्प्रस्थप्रमाणतः ॥ एवंसिद्धोभवेच्छ्रीमान्बाहुशालगुडःशुभः ॥ ११ ॥ जयेदर्शांसिसर्वाणिगुल्मंवातोदरं तथा ॥ आमवातंप्रतिश्यायंग्रहणीक्षयपीनसान् ॥ १२ ॥ हलीमकंपांडुरोगंप्रमेहंचरसायनम् ॥

अर्थ–१ इन्द्रायनकी जड २ नागरमोथा ३ सोठ ४ दंती ५ जंगीहरड ६ निसोथ ७ कचूर ८ वायविडग ९ गोखरू १० चीतेकी छाल ११ तेजवल ये ग्यारह औषध प्रत्येक दो दो तोले लेवे. जमीकन्द (सूरन) आठ पल, विधायरा १६ तोले, भिलाए ४ पल ले । इन सब औषधोंको एकत्र कूट पीस उसमें दो द्रोण जल डालके अग्निपर चढाय मंदी २ आँचसे चतुर्थांश जल शेष रहे पर्यंत काढा करे । और सब औषधोंसे तिगुना गुड डालके फिर औटायके पाककरे । फिर इस पाकमें आगे कहा हुआ औषधोंका चूर्ण डाले । जैसे–चीतेकी छाल, निशोथ, दन्ती, तेजबल ये चार औषध एक २ पल ले सोठ, मिरच, पीपल, आवले, दालचीनी ये पांच औषध तीन पल ले । सबका चूर्ण कर उस पाकमें मिलावे । इसको बाहुशाल गुड कहते हैं। इस गुडके खानेसे संपूर्ण बवासीर, गुल्म, वातोदर, वादीसे अंगोका जकडना, आमवात, सरेकमा, संग्रहणी, क्षय, पीनस, हलीमक, पांडुरोग और प्रमेह दूर होवे। यह बाहुशालगुड रसायन है।

मरिचादिगुटिका खाँसीपर।

मरिचंकर्षमात्रंस्यात्पिप्पलीकर्षसंमिता॥ १३ ॥ अर्धकर्षोयवक्षारःकर्षयुग्मंचदाडिमम्॥ एतच्चूर्णीकृतंयुंज्यादष्टकर्षगुडेन हि ॥ १४ ॥ शाणप्रमाणांगुटिकांकृत्वावक्त्रेविधारयेत् ॥ अस्याःप्रभावात्सर्वेपिकासायांत्येवसंक्षयम् ॥ १५ ॥

अर्थ—कालीमिरच और पीपल २ तोले, जवाखार आधा तोला अनारकी छाल २ तोले इन चार औषधोंका चूर्णकर ८ आठ तोले गुड मिलायके ४ मासेकी गोली बनावे फिर इस गोलीको मुखमें रक्खे तो संपूर्ण जातिकी खाँसी दूर होवे इसमें संशय नहीं।

व्याघ्रीआदिगुटिका ऊर्ध्ववातपर।

व्याघ्रीजीरकधात्रीणांचूर्णमधुयुतंलिहेत् ॥
ऊर्ध्ववातमहाश्वासतमकैर्मुच्यतेक्षणात् ॥ १६ ॥

अर्थ—१ कटेरी २ जीरा और ३ आँवला इन तीन औषधोंका चूर्णकरके सहत मिलायके चाटे तो ऊर्ध्ववायु, महाश्वास और तमकश्वास ये सब रोग तत्काल दूर हों।

गुडादिगुटिका श्वासखाँसीपर।

गुडशुंठीशिवामुस्तैर्गुटिकांधारयेन्मुखे ॥
श्वासकासेषुसर्वेषुकेवलंवाविभीतकम् ॥ १७ ॥

अर्थ—१ सोंठ २ जंगी हरड और ३ नागरमोथा इन तीन औषधोंको कूट पीस इसमें दूना गुड मिलायके गोली बनावे। फिर एक गोलीको मुखमें रक्खे तो संपूर्ण खाँसी और श्वास ये दूर हों। अथवा साबत बहेडेकी छालका मुखमें रखनेसे श्वास और खाँसी दूर होवे।

आमलक्यादिगुटिका मुखशोषादिपर।

आमलंकमलंकुष्ठंलाजाश्ववटरोहकम्॥ एतच्चूर्णस्यमधुनागुटिकांधारयेन्मुखे ॥ १८॥ तृष्णांप्रवृद्धांहंत्येषामुखशोषंचदारुणम् ॥

अर्थ—१ आमला २ कमल ३ कूठ ४ खील और ५ बडकी कोंपल इन पांच औषधोंको सहतमें मिलायके गोली बनावे। इसको मुखमें रक्खे तो अत्यंत प्यासका लगना और मुखके घोर शोषको यह दूरकरे।

संजीवनीगुटिका सन्निपातादिकोंपर।

विडंगंनागरंकृष्णापथ्यामलबिभीतकौ ॥१९॥ वचागुडूचीभल्ला-

तंसविषंचात्रयोजयेत् ॥ एतानिसमभागानिगोमूत्रेणैवपेषयेत् ॥ ॥ २० ॥ गुंजाभागुटिकाकार्यादद्यादार्द्रकजैरसैः ॥ एकामजीर्णगुल्मेषुद्वेविषूच्यांचदापयेत् ॥ २१ ॥ तिस्रश्चसर्पदष्टेतुचतस्रःसंनिपातके ॥ वटीसंजीवनीनाम्नासंजीवयतिमानवम् ॥ २२ ॥

अर्थ–१ वायविडंग २ सोठ ३ पीपल ४ जंगीहरड ५ आँवला ६ वहेडा ७ वच ८ गिलोय ९ भिलाए १० बच्छनाग (शुद्ध किया हुआ) इन दश औषधोंको समानभाग लेकर गौके सूत्रमें पीसके एक २ रत्तीकी गोली बनावे । फिर इसको अदरखके रससे अजीर्ण रोगमे तथा गोलाके रोगमें १ गोली सेवनकरे, विषूचिका (हैजा) मे दो गोली, सर्पके विषपर तीन गोली, सन्निपातमें चार गोली सेवनकरे । यह गोली मनुष्योंको सजीवनकरनेवाली है इसीसे इसको संजीवनी गुटिका कहते हैं ।

व्योषादिगुटिका पीनसपर ।

व्योषाम्लवेतसंचव्यंतालीसंचित्रकस्तथा ॥ जीरकंतिंतिडीकंचप्रत्येकंकर्षभागिकम् ॥ २३ ॥ त्रिसुगंधंत्रिशाणंस्याद्गुडःस्यात्कर्षविंशतिः ॥ व्योषादिगुटिकासामपीनसश्वासकासजित् ॥ २४ ॥ रुचिस्वरकराख्याताप्रतिश्यायप्रणाशिनी ॥

अर्थ–१ सोंठ २ कालीमिरच ३ पीपल ४ अमलवेत ५ चव्य ६ तालीसपत्र ७ चित्रक ८ जीरा ९ इमलीकी छाल इन नौ औषधोको एक २ तोले लेवे । तथा दालचीनी २ इलायचीदाने ३ पत्रज ये तीन औषध तीन २ शाण लेवे । फिर सब औषधोंको कूट पीस चूर्ण कर इसमें २० तोले गुड मिलायके गोली बनाय लेवे यह व्योषादि गुटिका आमपीनसका रोग, श्वास, खाँसी इन सब रोगोको दूर करे तथा मुखमें रुचि प्रगट करे इससे स्वर (आवाज) शुद्ध हो तथा सरेकमा दूर होय ।

गुडवटिकाचतुष्टय आमादिकोंपर ।

आमेषुसगुडांशुंठीमजीर्णेगुडपिप्पलीम् ॥ २५ ॥
कृच्छ्रेजीरगुडंदद्यादर्शःसुचगुडाभयाम् ॥

अर्थ–सोठके चूर्णमें गुडमिलायके गोली बनाकर भक्षणकरे तो आँव दूर होवे । गुड और पीपल एकत्रकरके गोली बनावे इसके सेवनसे अजीर्ण दूरहो । गुड और जीरेको एकत्र कूट पीस गोली बनावे तो मूत्रकृच्छ्र दूर हो । एवं छोटी हरडके चूर्णमें गुड मिलायके गोली बनावे । इसको सेवन करे तो बवासीरका रोग दूर होवे ।

वृद्धदारकमोदक ववासीरपर।

वृद्धदारकभल्लातशुंठीचूर्णेनयोजितः ॥ २६ ॥
मोदकःसगडोहन्यात्पड्विधार्शःकृतांरुजम् ॥

अर्थ—१ विधायरा २ भिलाये और ३ सोंठ इन तीन औषधोंके समान भागका चूर्ण-र चूर्णसे दूना गुड मिलायके गोली वनावे। इसके खानेसे छः प्रकारका ववासीररोग नष्ट होय।

सूरणवटक ववासीरपर।

शुष्कसूरणचूर्णस्यभागान्द्वात्रिंशदाहरेत् ॥ २७ ॥
भागान्पोडशचित्रस्यशुंठ्याभागचतुष्टयम् ॥
द्वौभागौमरिचस्यापिसर्वाण्येकत्रकारयेत् ॥ २८ ॥
गुडेनपिंडिकांकुर्यादर्शसांनाशिनींपराम् ॥

अर्थ—१ जमीकंदको सुखायके चूर्ण कर ३२ तोले ले। चीतेकी छाल १६ तोले, सोंठ ४तोले और काली मिरच २ तोले ले। सबको कूट पीस चूर्ण करे। चूर्णके समान गुड मिलायके गोली वनावे इस गोलीको नित्य खानेसे छः प्रकारकी ववासीर नष्ट होवे। यह सूरणवटक कहाता है।

वृहत्सूरणवटक ववासीरपर।

सूरणोवृद्धदारुश्चभागैःपोडशभिःपृथक् ॥ २९ ॥ मुसलीचित्र-कौज्ञेयावष्टभागमितौपृथक् ॥ शिवाविभीतकौधात्रीविडंगंना-गरंकणा ॥ ३० ॥ भल्लातःपिप्पलीमूलंतालीसंचपृथक्पृथक् ॥ चतुर्भागप्रमाणानित्वगेलामरिचंतथा ॥ ३१ ॥द्विभागमात्राणि पृथक्ततस्त्वेकत्रचूर्णयेत् ॥ द्विगुणेनगुडेनाथवटकान्धारयेद्बुधः ॥ ३२ ॥ प्रवलाग्निकराह्येपातथार्शोनाशनाःपरम् ॥ ग्रहणीं वातकफजांश्वासंकासंक्षयामयम् ॥ ३३ ॥ प्लीहानंश्लीपदंशोफं हिक्कांमेहंभगंदरम् ॥ निहन्युः पलितंवृष्यास्तथामेध्यारसा-यनाः ॥ ३४ ॥

अर्थ--जमीकंद १६ तोले, विधायरा १६ तोले, मसूरी ८ तोले, चीतेकी छाल ८ तोले लेवे। १ हरड २ वहेडा ३ आमला ४ वायविडंग ५ सोंठ ६ पीपल ७ भिलाएँ ८ पीपरा मूल और ९ तालीसपत्र ये नौ औषध चार २ तोले लेय। एव १ दालचीनी २ इलायची

३ काली मिरच ये तीन औषध दो दो तोले लेय । इन सब औषधोंको कूट पीस चूर्ण कर इसमें सब चूर्णसे दूना गुड मिलायके गोली बनावे इसको सेवन करे तो अग्नि प्रदीप्त होय और बवासीरका रोग, वात कफसे उत्पन्न हुई संग्रहणी, श्वास, खाँसी, क्षय, पेटमें होनेवाला प्लीहाका रोग, श्लीपदरोग, सूजन, हिचकी, प्रमेह, भगंदर और जिससे सफेद बाल होवे ऐसा पलित रोग ये सब दूर होवें । यह गोली स्त्रीगमनकी इच्छा करती है तथा बुद्धि देती है एवं शरीरकी वृद्धावस्थाको दूर करती है ।

मंडूरवटक कामलादिकोंपर ।

त्रिफलंत्र्यूषणंचव्यंपिप्पलीमूलचित्रकौ ॥ दारुमाक्षिकधातुस्त्वग्दार्वीमुस्तंविडंगकम् ॥ ३५ ॥ प्रत्येकंकर्षमात्राणिसर्वेद्विगुणितंतथा ॥ मंडूरंचर्णयेत्सर्वंगोमूत्रेऽष्टगुणेक्षिपेत् ॥ ३६ ॥ पक्त्वाचवटकान्कृत्वादद्यात्तक्रानुपानतः ॥ कामलापांडुमेहार्शःशोथकुष्ठकफामयान् ॥ ३७ ॥ ऊरुस्तंभमजीर्णंचप्लीहानंनाशयंतिच॥

अर्थ—१ हरड २ बहेडा ३ आमला ४ सोंठ ५ मिरच ६ पीपल ७ चव्य ८ पीपरामूल ९ चीतेकी छाल १० देवदारु ११ सुवर्णमाक्षिककी भस्म १२ दालचीनी १३ दारुहल्दी १४ नागरमोथा और १५ वायविडंग इन पद्रह औषधोंको तोले २ भर लेकर चूर्ण करे इस चूर्णसे दूनी मंडूर मिलावे और सबसे आठगुना गोमूत्र लेकर उसमे उस चूर्ण और मडूरको डालके औटाकर गाढा करे जब गोली बंधनेयोग्य होय तब गोली बनाय लेवे इस गोलीको छाछके साथ सेवन करे तो नेत्रोमे जो कमलवायुरोग (पीलियाका भेद) होता है सो दूर होवे । तथा पाडुरोग, प्रमेह, बवासीर, सूजन, कोढ, कफके विकार जिस करके जाँघोका स्तभन होय वह वायु, अजीर्ण और प्लीहा इन सबको दूर करे ।

पिप्पलीमोदक धातुज्वरादिकोंपर ।

क्षौद्राद्द्विगुणितंसर्पिर्घृताद्द्विगुणापिप्पली ॥ ३८ ॥ सिताद्विगुणितातस्याःक्षीरंदेयंचतुर्गुणम् ॥ चातुर्जातंक्षौद्रतुल्यंपक्त्वाकुर्याच्चमोदकान् ॥ ३९ ॥ धातुस्थांश्चज्वरान्सर्वाञ्छ्वासंकासंचपांडुताम् ॥ धातुक्षयंवह्निमांद्यंपिप्पलीमोदकोजयेत् ॥ ४० ॥

अर्थ—सहतसे दूना घी और घीसे दूनी पीपल, पीपलकी दूनी मिश्री, मिश्रीका चौगुना दूध ले तथा १ दालचीनी २ तमालपत्र ३ इलायचीके बीज और ४ नागकेशर इन चारोका चूर्ण सहतके समान लेना चाहिये । फिर सबका पाक करके लड्डू बनावे । एक लड्डू नित्य सेवन करे तो धातुगतज्वर, श्वास, खाँसी, पाडुरोग, धातुक्षय, मदाग्नि इन सब विकारोको नष्ट करता है ।

चन्द्रप्रभागुटिका प्रमेहादिकोंपर।

चन्द्रप्रभावचामुस्तंभूनिंबामृतदारुकम् ॥ हरिद्रादिविषादार्वी पिप्पलीमूलचित्रकौ ॥४१॥ धान्याकंत्रिफलंचव्यंविडंगंगजपिप्पली ॥ व्योपंमाक्षिकधातुश्चद्वौक्षारौलवणत्रयम् ॥ ४२ ॥ एतानिशाणमात्राणिप्रत्येकंकारयेद्बुधः ॥ त्रिवृद्दंतीपत्रकंचत्वगेलावंशरोचना ॥ ४३ ॥ प्रत्येकंकर्षमात्रंचकुर्यादेतानिबुद्धिमान् ॥ द्विकर्षहतलोहंस्याच्चतुःकर्षासिताभवेत् ॥ ४४॥ शिलाजत्वष्टकर्षंस्यादष्टौकर्षास्तुगुग्गुलोः ॥ एभिरेकत्रसंक्षुण्णैः कर्तव्यागुटिकाशुभा ॥४५॥ चन्द्रप्रभेतिविख्यातासर्वरोगप्रणाशिनी ॥ प्रमेहान्विंशतिंकृच्छ्रंमूत्राघातंतथाश्मरीम् ॥४६॥ विबंधानाहशूलानिमेहनग्रंथिमर्बुदम् ॥ अंडवृद्धिंतथापांडुंकामलांचहलीमकम् ॥४७॥ अंत्रवृद्धिंकटिशूलंकासंश्वासंविचर्चिकाम् ॥ कुष्ठान्यर्शांसिकंडूंचप्लीहोदरभगंदरे ॥४८॥ दन्तरोगंनेत्ररोगंस्त्रीणामार्तवजांरुजम् ॥ पुंसांशुक्रगतान्दोपान्मन्दाग्निमरुचिंतथा ॥ ४९ ॥ वायुंपित्तंकफंहन्याद्बल्यावृष्यारसायनी ॥ चन्द्रप्रभायांकर्षस्तुचतुःशाणोविधीयते ॥ ५० ॥

अर्थ—१ कचूर २ वच ३ नागरमोथा ४ चिरायता ५ गिलोय ६ देवदारु ७ हल्दी ८ अतीस ९ दारुहल्दी १० पीपरामूल ११ चीतेकी छाल १२ धनिया १३ हरड १४ बहेडा १५ आमला १६ चव्य १७ वायविडंग १८ गजपीपल १९ सोंठ २० कालीमिरच २१ पीपल २२ सुवर्णमाक्षिककी भस्म २३ सज्जीखार २४ जवाखार २५ सैंधानमक २६ संचरनमक २७ और विडनमक ये सत्ताईस औषध एक एक शाण प्रमाण लेवे। तथा १ निसोथ २ दती ३ तमालपत्र ४ दालचीनी ५ इलायचीके दाने और ६ वंशलोचन ये छः औषध सोलह २ मासे लेकर इन सबका चूर्ण करे। फिर लोहभस्म दो तोले, मिश्री चार तोले, शिलाजीत ८ तोले लेवे इन सब औषधोंको एक जगह कूट पीस एकजीव करके एक कर्ष अर्थात् चार शाणकी गोली बनावे। इस रसायनके विषयमें कर्षशब्द चार शाणका बोधक है। इस योगको 'चन्द्रप्रभा' इस प्रकार कहते हैं। यह संपूर्ण रोगोंको दूर करनेमें विख्यात है। इससे २० प्रकारके प्रमेहके रोग, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात,

पथरी, मलबद्धता, पेटका फूलना, शूल, प्रमेहपिडिका, जिसकरके अंडकोश बढजावें वह रोग, पांडुरोग, कामला, हलीमक, अन्त्रवृद्धि, कमरकी पीडा, श्वास, खाँसी, विचर्चिका, कोढ, बवासीर, खुजली, प्लीहोदर, भगदर, दाँतके रोग, नेत्रके रोग, स्त्रियोंके रजोधर्मसंबंधी रोग पुरुषोंके वीर्यके विकार, मंदाग्नि, अरुचि, वात, पित्त और कफ इनका प्रकोप ये संपूर्ण रोग दूर होवें तथा यह चन्द्रप्रभावटी बल देनेवाली, स्त्रीगमनकी इच्छा करनेवाली तथा रसायन है ।

कांकायनगुटिका गुल्मादिरोगोंपर ।

यवानीजीरकंधान्यंमरीचंगिरिकर्णिका ॥ अजमोदोपकुंचीच चतुःशाणापृथक्पृथक् ॥ ५१ ॥ हिंगुषट्शाणिकंकार्यंक्षारौ लवणपञ्चकम् ॥ त्रिवृच्चाष्टमितैःशाणैःप्रत्येकंकल्पयेत्सुधीः ५२ दन्तीशटीपौष्करंचविडंगंदाडिमंशिवा ॥ चित्रोम्लवेतसःशुंठी शाणैःषोडशभिःपृथक् ॥ ५३ ॥ बीजपूररसेनैपांगुटिकाःका- रयेद्बुधः ॥ घृतेनपयसामद्यैरम्लैरुष्णोदकेनवा ॥५४॥ पिबे- त्कांकायनप्रोक्तांगुटिकांगुल्मनाशिनीम् ॥ मद्येनवातिकंगु- ल्मंगोक्षीरेणचपैत्तिकम् ॥५५॥ मूत्रेणकफगुल्मंचदशमूलैस्त्रि- दोषजम् ॥ उष्ट्रीदुग्धेननारीणांरक्तगुल्मंनिवारयेत् ॥ ५६ ॥ हृद्रोगंग्रहणींशूलंक्रुमीनर्शांसिनाशयेत् ॥

अर्थ—१ अजमायन २ जीरा ३ धनिया ४ कालीमिरच ५ विष्णुक्रांता (कोयल), ६ अज- मोदा और ७ कलौंजी ये सात औषध चार २ शाण लेवे । भुनी हींग छः शाण लेवे । १ जवा- खार २ सज्जीखार ३ सैंधानमक ४ सचरनमक ५ बिडनोन ६ समुद्रका नमक ७ बागडका नमक ८ निसोथ ये आठ औषधि आठ २ शाण लेवे । तथा १ दन्ती २ कचूर ३ पुहकरमूल ४ वायविडंग ५ अनारकी छाल ६ जंगीहरड ७ चीतेकी छाल ८ अमलवेत ९ सोंठ ये औषध कूटी हुई सोलह २ शाण लेवे । फिर सब औषधोंको कूटपीस चूर्ण करे इस चूर्णको बिजोरेके रसमें खरलकर गोली बनाय लेवे । इसको (कांकायनगुटिका) कहते हैं । यह गुटिका घी, गौका दूध, खट्टा, मद्य अथवा गरम पानी इनमेंसे किसीएकके साथ अनुपान माफिक गोला दूर होनेके वास्ते देवे । यह गोली मद्यके साथ लेनेसे वायुगोला दूर होय । गौके दूधसे सेवन करे तो पित्त- का गोला नष्ट होवे । गोमूत्रके साथ सेवन करनेसे कफगुल्म दूर होवे । दशमूलके काढेके साथ सेवन करे तो त्रिदोष अर्थात् सन्निपातका गोला दूर होवे । ऊँटनीके दूधके साथ खानेसे स्त्रियोंका

रक्तगुल्म दूर होवे । तथा यथायोग्य अनुपानके साथ सेवन करनेसे यह हृदयरोग, संग्रहणी, शूल, कृमिरोग और बवासीर इन सब रोगोको नष्ट करे ।

योगराजगूगल वातादिरोगोंपर ।

नागरंपिप्पलीचव्यंपिप्पलीमूलचित्रकौ ॥ ५७ ॥ भृष्टंहिंग्वजमोदंचसर्षपाजीरकद्वयम् ॥ रेणुकेंद्रयवापाठाविडंगंगजपिप्पली ॥ ५८ ॥ कटुकातिविषाभार्ङ्गीवचामूर्वेतिभागतः ॥ प्रत्येकंशाणिकानिस्युर्द्रव्याणीमानिविंशतिः ॥ ५९ ॥ द्रव्येभ्यः सकलेभ्यश्चत्रिफलाद्विगुणाभवेत् ॥ एभिश्चूर्णीकृतैःसर्वैःसमो देयस्तुगुग्गुलुः॥६०॥ वंगंरौप्यंचनागंचलोहसारंतथाभ्रकम् ॥ मंडूरंरससिंदूरंप्रत्येकंपलसंमितम् ॥ ६१ ॥ गुडपाकसमंकृत्वाइमंदद्याद्यथोचितम् ॥एकपिंडंततःकृत्वाधारयेद्घृतभाजने ॥ ६२ ॥ गुटिकाःशाणमात्रास्तुकृत्वाग्राह्यायथोचिताः ॥ गुग्गुलुर्योगराजोयंत्रिदोषघ्नोरसायनम् ॥६३॥ मैथुनाहारपानानांत्यागोनैवात्रविद्यते ॥ सर्वान्वातामयान्कुष्ठानर्शांसिग्रहणीगदम् ॥ ६४ ॥ प्रमेहंवातरक्तंच नाभिशूलंभगंदरम् ॥ उदावर्तंक्षयंगुल्ममपस्मारमुरोग्रहम् ॥ ६५ ॥ मन्दाग्निश्वासकासांश्चनाशयेदरुचिंतथा ॥ रेतोदोषहरःपुंसांरजोदोषहरः स्त्रियाम् ॥ ६६ ॥ पुंसामपत्यजनकोवंध्यानांगर्भदस्तथा ॥ रास्नादिक्काथसंयुक्तोविविधंहंतिमारुतम् ॥६७॥ काकोल्यादिशृतात्पित्तंकफमारग्वधादिना ॥दार्वीशृतेनमेहांश्चगोमूत्रेणेवपांडुताम् ॥ ६८ ॥ मेदोवृद्धिंचमधुनाकुष्ठंनिंबशृतेन वा ॥ छिन्नाक्काथेनवातास्रंशोथंशूलंकणाशृतात् ॥ ६९ ॥ पाटलाक्काथसहितोविषंमूषकजंजयेत् ॥ त्रिफलाक्काथसहितोनेत्रार्तिंहंतिदारुणाम् ॥ ७० ॥ पुनर्नवादेःक्काथेनहन्यात्सर्वोदराण्यपि ॥

अर्थ–१ सोठ २ पीपल ३ चव्य ४ पीपरामूल ५ चीतेकी छाल ६ भुनीहुई हींग ७ अजमोद

८ सरसों ९ जीरा १० कालाजीरा ११ रेणुका १२ इन्द्रजौ १३ पाढ १४ वायविडंग १५ गजपीपल १६ कुटकी १७ अतीस १८ भारंगी १९ वच और २० मूर्वा ये वीस औषध एक एक शाण लेवे। इन औषधोंके दुगुना त्रिफला लेवे। फिर इन सब औषधोंको कूटकर चूर्ण करके इस चूर्णके समानभाग शुद्ध गूगल लेकर खरलमें डालके खूब बारीक पीसके गुडके पाकसमान पतला करके उसमें पूर्वोक्त चूर्णको मिलाय देवे। पश्चात् वंग, रूपरस, नागेश्वर, लोह सार, अभ्रक, मण्डूर और रससिंदूर इन सातोंकी भस्म चार २ तोले लेकर उस गूगलमें मिलाय देवे। सबका एक गोला बनावे फिर इसमेंसे चार २ मासेकी गोलियाँ बनावे। इनको घीके चिकने बासनमें भरके धर रक्खे इसको योगराजगूगल कहते हैं। यह गूगल सेवन करनेसे त्रिदोषको दूर करे तथा रसायन है। इसके ऊपर मैथुन करना खाना पीना इनका निषेध नहीं है। विना पथ्यकेभी गुण करता है। इससे सपूर्ण वादीके रोग, कोढ, ववासीर, संग्रहणी, प्रमेह, वातरक्त, नाभिका शूल, भगंदर, उदावर्त्त, क्षयरोग, गोलेका रोग, मृगीरोग, उरोग्रह, मदाग्नि, खाँसी, श्वास और अरुचि ये सब रोग नष्ट होते हैं। यह योगराजगूगल पुरुषोंके धातुविकारको दूर करताहै और स्त्रियोंके रजोदर्शनसबंधी रोगोको दूर करता है। पुरुषोंके धातुकी वृद्धि करके पुत्र देता है बॉझ स्त्रियोंको गर्भ देता है। रास्नादि काढेके साथ सेवन करनेसे अनेक प्रकारके वायु दूर होंय। काकोल्यादि काढेसे सेवन करे तो पित्तरोग दूर होवे। आरग्वधादि काढेके साथ सेवन करे तो कफविकार दूर हो। दारुहल्दीके काढेसे सेवन करे तो प्रमेहको दूर करे। गोमूत्रसे सेवन करे तो पांडुरोगको नष्ट करे। जो प्राणी मेदाके वढनेसे अधिक मुटा हो गया हो वह सहतके साथ इसे सेवन करे। कुष्टरोगमें नीमकी छालके काढेसे सेवन करे। वातरक्तरोगमें गिलोयके काढेसे खाय। शूल और सूजन इनमें पीपलके काढेसे सेवन करे। मूसेके विषयपर पाडलके काढेसे सेवन करे नेत्ररोगमे त्रिफलाके काढेसे साधन करे। और पुनर्नवादि काढेके साथ संपूर्ण उदरके रोगोंपर सेवन करना चाहिये। इस प्रकार इस योगराजगूगलके अनुपान हैं बाकी अपनी बुद्धिसे वैद्य कल्पना करे।

कैशोरगूल वातरक्तादिकोंपर।

त्रिफलायास्त्रयःप्रस्थाः प्रस्थैकाचामृताभवेत् ॥ ७१ ॥ संकुट्यलोहपात्रेषुसार्धद्रोणांबुनापचेत् ॥ जलमर्धशृतंज्ञात्वागृह्णीयाद्वस्त्रगालितम् ॥ ७२ ॥ क्वाथेक्षिपेत्ततःशुद्धंचगुग्गुलुंप्रस्थसंमितम् ॥ पुनः पचेदयःपात्रेदर्व्यासंघट्टयेन्मुहुः ॥७३॥ सान्द्रीभूतंचतंज्ञात्वागुडपाकसमाकृतिम् ॥ चूर्णीकृत्यततस्तत्रद्रव्याणीमानिनिक्षिपेत्॥७४॥त्रिफलार्द्धपलाज्ञेयागुडूचीपलिकाम-

ता ॥ षडसंत्र्यूषणंप्रोक्तंविडंगानांपलार्धकम् ॥ ७५ ॥ दन्ती कर्षमिताकार्यात्रिवृत्कर्षमितास्मृता ॥ ततःपिंडीकृतंसर्वंघृत-पात्रेविनिक्षिपेत् ॥७६॥ गुटिकाशाणिकाकार्यायुंज्याद्दोषाद्य-पेक्षया ॥अनुपानेभिषग्दद्यात्कोष्णनीरंपयोथवा॥७७॥मंजि-ष्ठादिशृतंवापियुक्तियुक्तमतःपरम् ॥ जयेत्सर्वाणिकुष्ठानिवात रक्तंत्रिदोषजम् ॥७८॥ सर्वव्रणांश्चगुल्मांश्चप्रमेहपिडिकास्त-था ॥ प्रमेहोदरमंदाग्निकासश्वयथुपांडुजान्॥७९॥हन्तिसर्वा-मयान्नित्यमुपयुक्तोरसायनम् ॥ कैशोरकाभिधानोयंगुग्गुलुः कांतिकारकः ॥ ८० ॥ वासादिनानेत्रगदान्गुल्मादीन्वरुणा-द्िना ॥ क्वाथेनखदिरस्यापि व्रणकुष्ठानिनाशयेत् ॥ ८१ ॥ अम्लंतीक्ष्णमजीर्णंचव्यवायंश्रममातपम् ॥ मद्यंरोषंत्यजेत्स-म्यग्गुणार्थीपुरसेवकः ॥ ८२ ॥

अर्थ-१ हरड २ बहेडा ३ आँवला ४ गिलोय ये चारो औषध एक २ प्रस्थ लेवे । इनको कुछ कूटकर लोहेकी कढाईमें डेढ द्रोण पानी डालके उसमें इन औषधोंको डालके आधा पानी रहनेपर्यंत औटावे फिर इसको दूसरे पात्रमें कपडेमें छानके इसमें शुद्ध किया हुआ गूगल १ प्रस्थ प्रमाण ले-कर बारीक कूटके मिलायदेवे फिर इस गूगलयुक्त काढेको अग्निपर लोहेकी कढाईमें चढायके लो-हेकी कलछीसे बारबार चलता जावे इसप्रकार गुडके पाकसमान होनेपर्यंत गाढा करे। फिर इसमें आगे लिखी हुई औषधोंका चूर्ण करके डाले। उन औषधोंको कहते हैं-१ हरड २ बहेडा ३ आमला ४गिलोय ये चार औषध आधे २पल लेय. १ सोंठ२कालीमिरच और ३ पीपल ये तीन औषध दो दो अक्ष लेवे, वायविडंग अध पल लेय, दंती एककर्ष, निसोथ एक कर्ष, इन सब औष धोंका चूर्ण कर उस गूगलके पाकमें मिलायके कूट डाले। जब एक जीव होजावें तब एक एक शाणकी गोली बनाय लेवे। इनको घीके चिकने बासनमें रखदेवे। इसको कैशोरगूगल कहते हैं इस गूगलको गरम जलके साथ अथवा दूधके साथ अथवा मंजिष्ठादि काढेके सेवन करे। यह गोली रोगीकी शक्तिका तथा रोगका तारतम्य देखके अनुपानके साथ देवे तो संपूर्ण कुष्ठ तथा त्रिदोषसे उत्पन्न हुए वातरक्त तथा संपूर्ण व्रणगोला, प्रमेह, उदर, मंदाग्नि, खाँसी, श्वास और पांडुरोग ये दूर होवें। यह कैशोरगूगल कांतिको देता है वासकादि काढेके साथ सेवन करनेसे नेत्रके रोग दूरहों तथा वरुणादि काढेके साथ सेवन करनेसे गुल्मादिक रोग दूर हों। खदिरादि काढेकेसाथ सेवन करनेसे व्रण और कुष्टरोग दूर होवें।

अब गूगलसेवनकर्त्ता प्राणीको इसका पथ्य कहते हैं । जैसे कि खटाई, तीक्ष्ण पदार्थ, अजीर्ण, स्त्रीसे मैथुन करना, परिश्रम करना, धूपमे रहना, मद्य पीना तथा क्रोध करना ये सब वस्तु गूगलसेवनकर्त्ता जिस प्राणीको गुणकी इच्छा हो उसको त्याज्य हैं । जो अपथ्यको त्याग पथ्यके साथ गूगल सेवन करता है उसकोही गुण होता हे अन्यथा गुणके बदले अवगुण होता हे । इति कैशोरगुग्गुलुः ॥

त्रिफलागूगल भगंदररोगादिकोंपर ।

त्रिफलंत्रिफलाचूर्णंकृष्णाचूर्णंपलोन्मितम् ॥ गुग्गुलुःपंचपलिकःक्षोदयेत्सर्वमेकतः ॥ ८३ ॥ ततस्तुगुटिकांकृत्वाप्रयुंज्याद्वह्न्यपेक्षया ॥ भगंदरंगुल्मशोथावर्शांसिचविनाशयेत् ॥ ८४ ॥

अर्थ–१ हरड २ बहेडा ३ आवला और ४ पीपल ये चार औषध एक २ पल लेकर चूर्ण करे फिर शुद्ध किया हुआ गूगल ५ पल ले इन सबको बारीक कूट पीसके गोली बनावे । रोगीके जठराग्निका बलाबल विचारके इसे देवे तो भगदररोग, गोलेका रोग, सूजन और बवासीर इन सब रोगोंको नष्ट करे ।

गोक्षुरादिगूगल प्रमेहादिरोगोंपर ।

अष्टाविंशतिसंख्यानिपलन्यानीयगोक्षुरात् ॥ विपचेत्षड्गुणेनीरेक्वाथोग्राह्योऽर्धशेषितः ॥ ८५ ॥ ततःपुनःपचेत्तत्रपुरं सप्तपलंक्षिपेत् ॥ गुडपाकसमाकारंज्ञात्वातत्रविनिक्षिपेत् ॥ ८६ ॥ त्रिकटुत्रिफलामुस्तंचूर्णितंपलसप्तकम् ॥ ततःपिंडीकृतंचास्य गुटिकामुपयोजयेत् ॥ ८७ ॥ हन्यात्प्रमेहंकृच्छ्रंचप्रदरंमूत्रघातकम् ॥ वातास्रंवातरोगांश्चशुक्रदोषंतथाश्मरीम् ॥ ८८ ॥

अर्थ–अट्ठाईसपल (११२ तोले) गोखरू लेकर जवकूट करके छः गुने पानीमें चढायके जबतक आधा न जले तबतक औटावे । जब आधा जल रहे तब शुद्धकिया गूगल ७ पल प्रमाण लेकर उत्तम रीतिसे कूट पीसके उस काढेमें मिलाय देवे । फिर उस काढेका गुडके समान पाक करे । जब गाढा होजावे तब आगे लिखीहुई औषधोंको मिलावे । जैसे १ सोठ २ कालीमिरच ३ पीपल ४ हरड ५ बहेडा ६ आँवला ७ नागरमोथा ये सात औषध एक २ पल प्रमाण लेवे । सबका चूर्ण करके उस पाककी चासनीमें मिलायके एक गोला बनाय ले । फिर इसकी गोली बनाय ले । इसके सेवन करनेसे प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, स्त्रियोंका प्रदररोग, मूत्राघात, वातरक्त, बादीके रोग, धातुके विकार अर्थात् वीर्यसंबंधीरोग और पथरी इन सब रोगोको दरकरे ।

चंद्रकलागुटिका प्रमेहपर।

एलासकर्पूरसितासधात्रीजातीफलंगोक्षुरशाल्मलीत्वक्॥सूतं-द्रवंगायसभस्मसर्वमेतत्समानंपरिभावयेच्च ॥ ८९ ॥ गुडूचि-काशाल्मलिकाकषायैर्निष्कार्धमात्रामधुनाततश्च॥ बद्धागुटी चंद्रकलेतिनाम्नामेहेषुसर्वेषुचयोजनीया ॥ ९० ॥

अर्थ–१ इलायचीके दाने २ कपूरशुद्ध ३ मिश्री आंवले ४ जायफल ५ गोखरू ६ काटेदार सेमरकी छाल ७ रससिंदूर ८ वंगभस्म और ९ लोहभस्म ये नौ औषध समान भाग लेकर इनको गिलोय और सेमरके काढेकी भावना देकर दो दो मासेकी गोली वनावे। इनको सहतमें मिलायके खावे तो सर्व प्रकारके प्रमेह नष्ट होवें।

त्रिफलादिमोदक कुष्ठादिकोंपर।

त्रिफलात्रिपलाकार्याभल्लातानांचतुःपलम्॥ बाकुचीपंचपलि-काविडंगानांचतुःपलम्॥ ९१ ॥ हतलोहंत्रिवृच्चैवगुग्गुलुश्च शिलाजतु ॥ एकैकंपलमात्रंस्यात्पलार्धंपौष्करंभवेत्॥ ९२॥ चित्रकस्यपलार्धंस्यात्त्रिशाणंमरिचंभवेत्॥नागरंपिप्पलीमुस्ता त्वगेलापत्रकुंकुमम्॥ ९३ ॥ शाणोन्मितंस्यादेकैकंचूर्णयेत्स-र्वमेकतः ॥ ततस्तत्प्रक्षिपेच्चूर्णंपक्वखंडेचतत्समे ॥९४॥ मो-दकान्पलिकान्कृत्वाप्रयुंजीतयथोचितम्॥ हन्युःसर्वाणिकुष्ठा-नित्रिदोषप्रभवामयान्॥९५॥ भगंदरप्लीहगुल्मान्जिह्वाताल्वग-लामयान्॥ शिरोक्षिभ्रूगतान्रोगान्मन्यापृष्ठगतानपि ॥ ९६ ॥ प्राग्भोजनस्यदेयंस्यादधःकायस्थितेगदे ॥ भेषजं भक्तमध्ये चरोगेजठरसंस्थिते॥९७॥भोजनस्योपरिग्राह्यमूर्ध्वजत्रुगदेषुच॥

अर्थ–१ हरड २ बहेडा ३ आमला ये तीन औषध आठपल लेय। भिलाये चारपल, बावची पाचपल, वायविडंग चारपल प्रमाण और १ लोहभस्म २ निसोथ ३ गूगल ४ शिलाजीत ये चार औषध एक २ पल प्रमाण लेनी चाहिये। गांटदार पुहकरमूल आधापल, चीतेकी छाल आधापल, कालीमिरच दो शाण, एव १ सोंठ २ पीपल ३ नागरमोथा ४ दालचीनी ५ इला-यची ६ तमालपत्र और ७ नागकेशर ये सात औषधि एक २ शाण लेवे। सबको कूट पीस चूर्ण करे इस चूर्णके समान मिश्री लेके पाककरे। उसमें इस चूर्णको डालके सबको एकजीव

करके एक एक पलके मोदक बनावे । इस मोदकके सेवन करनेसे सर्व प्रकारके कुष्ठरोग दूर हों, त्रिदोषसे उत्पन्न भगंदर रोग, नेत्रोंके रोग, प्लीहरोग, गोलेका रोग, जीभ तालु गला शिर नेत्र भौंह इनके रोग, गरदन पीठ इनके रोग इत्यादिक सब दूर होवे । कमरसे लेकर नीचे पैरोंतक रोग होवे तो प्रातःकाल औषध सेवन करे । यदि पेटके रोग होवें तो भोजनके समय ग्रास (गस्सा) के साथ सेवन करे । छातीसे लेकर माथे पर्यंतके रोगोंमे भोजन करनेके पश्चात् इस त्रिफलादि मोदकको सेवन करना चाहिये ।

कांचनारगूगल गंडमालादिकोंपर ।

कांचनारत्वचोग्राह्यंपलानांदशकंबुधैः ॥ ९८ ॥ त्रिफलाषट्पलाकार्यात्रिकटुस्यात्पलत्रयम् ॥ पलैकंवरुणंकुर्यादेलात्वक्पत्रकंतथा ॥ ९९ ॥ एकैकंकर्षमात्रंस्यात्सर्वाण्येकत्रचूर्णयेत् ॥ यावच्चूर्णमिदंसर्वंतावन्मात्रस्तुगुग्गुलुः ॥ १०० ॥ संकुट्यसर्वमेकत्रपिंडंकृत्वाचधारयेत् ॥ गुटिकाःशाणिकाःकार्याःप्रातर्ग्राह्या यथोचिताः ॥ १०१ ॥ गंडमालांजयत्युग्रामपचीमर्बुदानि च ॥ ग्रंथीन्व्रणांश्चगुल्मांश्चकुष्ठानिचभगंदरम् ॥ १०२ ॥ प्रदेयश्चानुपानार्थंक्राथोमुंडानिकाभवः ॥ क्राथःखदिरसारस्य पथ्याक्राथोष्णकंजलम् ॥ १०३ ॥

अर्थ—कचनार वृक्षकी छाल १० पल लेवे तथा १ हरड २ बहेडा ३ आवला ये तीन औषध दो दो पल प्रमाण अर्थात् सब छः पल ले । और १ सोंठ २ मिरच ३ पीपल ये तीनों औषध एक २ पल प्रमाण लेनी । तथा बरना एकपल १ इलायची २ दालचीनी ३ तमालपत्र ये तीन औषध एक २ कर्ष लेनी चाहिये । फिर सब औषधोंको कूट पीस चूर्ण करे । इस चूर्णके समान-भाग शुद्ध किएहुए गूगलको कूट पीसके उस चूर्णमें मिलाय देवे । फिर कूटके एक गोला करके एक २ शाणकी गोलियाँ बनावे । प्रातःकाल मुंडी[1] अथवा खैरसार अथवा हरडके काढेसे या गरम जलके साथ एक एक गोली सेवन करे तो घोर दुर्धर गंडमालाका रोग तथा गंडमालाका भेद, अपची रोग, अर्बुद, गाँठ, व्रण, गोला, कोढ, भगंदर ये सब रोग दूर होवें ।

माषादिमोदक धातुपुष्टिपर ।

निस्तुषंमाषचूर्णंस्यात्तथागोधूमसंभवम् ॥ निस्तुषंयवचूर्णंच

---

[1] इसको गोरखमुंडी कहते हैं ।

शालितंदुलजंतथा ॥ १०४ ॥ सूक्ष्मंचपिप्पलीचूर्णंपलिकान्युपकल्पयेत् ॥ एतदेकीकृतंसर्वंभर्जयेद्गोघृतेनच ॥ १०५ ॥ अर्धमात्रेणसर्वेभ्यस्ततःखंडंसमंक्षिपेत् ॥ जलंचद्विगुणंदत्त्वापाचयेच्चशनैःशनैः ॥ १०६ ॥ ततःपक्वंसमुद्धृत्यवृत्तान्कुर्वीतमोदकान् ॥ भुक्त्वासायंपलैकंचापिबेत्क्षीरंचतुर्गुणम् ॥ १०७ ॥ वर्जनीयौविशेषेणक्षाराम्लौद्वौरसावपि ॥ कृत्वैवंरमयेन्नारीर्बह्वीर्नक्षीयतेनरः ॥ १०८ ॥

इति श्रीदामोदरसूनु शार्ङ्गधरेणविरचितायांसंहितायांचिकित्सास्थाने वटककल्पनानाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अर्थ—उडदकी दालका चून, गेहूँका चून, तुषरहित जौका चून, चावलोंका चून और पीपलका चूर्ण ये सब ओषधि एक एक पल लेवे । सबको एकत्र करके इन सबका आधा शुद्ध गौका घी कडाहीमें डालके उन सबको मन्द २ अग्निसे भूने । फिर सबकी बराबर खाँडकी चासनी दूनाजल डालके करे । उसमें पूर्वोक्त भुने हुए चूनको मिलायके एक एक पल अर्थात् चार २ या पांच ५ तोलेके लड्डू बनाय लेवे । इसको रात्रिके समय खायकर ऊपरसे पावभर दूध पीवे तथा खटाई और खारी पदार्थ न खाय इस प्रकार करनेसे मनुष्य बहुत स्त्रियोंसे भोग करनेपरभी क्षीणबल नहीं होता ।

इति शार्ङ्गधरभाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथाष्टमोऽध्यायः ८.

अवलेहोंकी योजना ।

क्वाथादीनांपुनःपाकाद्घनत्वंसारसक्रिया ॥ सोवलेहश्चलेहःस्यात्तन्मात्रास्यात्पलोन्मिता ॥ १ ॥ सिताचतुर्गुणाकार्याचूर्णाच्चद्विगुणोगुडः ॥ द्रवंचतुर्गुणंदद्यादितिसर्वत्रनिश्चयः ॥ २ ॥ सुपक्वेतंतुमत्त्वंस्यादवलेहोप्सुमज्जति ॥ खरत्वंपीडितमुद्रागंधवर्णरसोद्भवः ॥ ३ ॥ दुग्धमिक्षुरसंयूषंपंचमूलकषायजम् ॥ वासाक्वाथंयथायोग्यमनुपानंप्रशस्यते ॥ ४ ॥

अर्थ—औषधोके कषाय और फाट आदिकोंको पुनः औटायके गाढा करनेसे जो रसकर्म होता है उसको अवलेह और लेह कहते हैं । उस अवलेहकी मात्रा १ पल अर्थात् ४ चार तोले भरकी है उसमें खॉड डालनी होवे तो जितना चूर्ण होवे उससे चौगुनी डालनी और गुड डालना होवे तो जितना चूर्ण होवे उससे दुगुना डालना दूध, मूत्र, पानी आदिक पतले पदार्थ डालने हो तो जितना चूर्ण हो उससे चौगुने डालना । ऐसा सर्व अवलेह प्रकरणमे निश्चय है सो जानना । वह अवलेह अच्छा पकाया नहीं इसकी परीक्षा कहते है । उस अवलेहका अच्छी रीतिसे पाक होजानेसे ताँत छूटते हैं और पानीमें वह अवलेह डालनेसे डूब जाता है और अंगुलियो करके दवानेसे करडा और चिकना होता है, तथा उसमें दूसरेही किसी एक प्रकारका अपूर्व गध, वर्ण और स्वाद उत्पन्न होते हैं इन लक्षणोंसे अवलेह परिपक्व हुआ ऐसा जानना । दूध, ईखका रस, पंचमूलके काढेका यूप और अडूसेका काढा इस अवलेहके अनुपान हैं तिनमेंसे रोगकी योग्यता विचारके जो अनुपान देनेका होवे सो देना चाहिये ।

कंटकारीअवलेह हिचकीश्वासकासोंके ऊपर ।

कंटकारीतुलांनीरद्रोणेपक्त्वाकषायकम् ॥ पादशेषंगृहीत्वाच तस्मिश्चूर्णानिदापयेत् ॥ ५॥ पृथक्पलानिचैतानिगुडूचीचव्यचित्रकाः ॥ मुस्तंकर्कटशृंगीचत्र्यूषणंधन्वयासकः ॥ ६ ॥ भार्ङ्गीरास्नाशटीचैवशर्करापलविंशतिः ॥ प्रत्येकंचपलान्यष्टौ प्रदद्याद्घृततैलयोः ॥७॥ पक्त्वालेहत्वमानीयशीतेमधुपलाष्टकम् ॥ चतुःपलंतुगाक्षीर्याः पिप्पलीनांचतुःपलम् ॥ ८ ॥ क्षिप्त्वानिदध्यात्सुदृढेमृन्मयेभाजनेशुभे ॥ लेहोऽयंहंतिहिक्कार्तिश्वासकासानशेषतः ॥ ९ ॥

अर्थ—भटकटैया ४०० तोले प्रमाण लेके थोडी २ कूटकर उसमे एक द्रोण (१०२४ तोले) पानी डालके चौथाई पानी शेष रहे तबतक कषाय करके फिर उस काढेको छानना । और उसमें इन औषधोका चूर्ण मिलाना गिलोय, चव्य, चीता, नागरमोथा, काकडासिंगी, सोंठ, मिरच, पीपल, जवासा, भारंगी, रास्ना, कचूर, ये वारह औषध चार २ तोले लेके इनका चूर्ण कर उस काढेमें डाले खाड ८० तोले घृत और तेल ३२ तोले डालना । ये सब औषध डालके औटायके अवलेह करके ठढा करना फिर उसमे बत्तीस तोले सहत और सोलह २ तोले वंशलोचन, तथा पीपलियोका चूर्ण उस अवलेहमें मिलायके दृढ मिट्टीके पात्रमें डालके अच्छी रीतिसे रखना

यह अवलेह नित्य सेवन करनेसे हिचकीकी पीडा, श्वास और कास इन सब रोगोंको नष्ट कर देता है।

क्षयादिकोंपर च्यवनप्राशावलेह।

पाटलारणिकाश्मर्यबिल्वारलुकगोक्षुराः ॥ पर्ण्यौबृहत्यौपिप्पल्यःशृंगीद्राक्षामृताभयाः ॥ १० ॥ बलाभूम्यामलीवासाऋद्धिर्जीवंतिकाशटी ॥ जीवकर्षभकौमुस्तंपौष्करंकाकनासिका ॥ ११ ॥ क्षुद्रपर्णीमाषपर्णीविदारीचपुनर्नवा ॥ काकोल्यौकमलंमेदेसूक्ष्मैलागरचंदनम् ॥ १२ ॥ एकैकंपलसंमानंस्थूलचूर्णितमौषधम् ॥ एकीकृत्यबृहत्पात्रेपंचामलशतानिच ॥ १३ ॥ पचेद्द्रोणजलेक्षिप्त्वाग्राह्यमष्टांशशेषितम् ॥ ततस्तुतान्यामलानिनिष्कुलीकृत्यवाससा ॥१४॥ दृढहस्तेनसंमर्द्य क्षिप्त्वातत्रततोघृतम् ॥ पलसप्तमितंतानिकिंचिद्भृष्ट्वाल्पवह्निना ॥ १५ ॥ ततस्तत्र क्षिपेत्क्वाथंखंडंचार्धतुलोन्मितम् ॥ लेहवत्साधयित्वाचचूर्णानीमानिदापयेत् ॥ १६ ॥ पिप्पलीद्विपलाज्ञेयातुगाक्षीरीचतुःपला ॥ प्रत्येकंचत्रिशाणाःस्युस्त्वगेलापत्रकेसराः ॥ १७ ॥ ततस्त्वेकीकृतेतास्मिन्क्षिपेत्क्षौद्रंचषट्पलम् ॥ इत्येवच्यवनप्रोक्तंच्यवनप्राशसंज्ञकम् ॥ १८ ॥ लेहंवह्निबलंदृष्ट्वाखादेत्क्षीणोरसायनम् ॥ बालवृद्धक्षतक्षीणा नारीक्षीणाश्चशोषिणः ॥ ॥ १९ ॥ हृद्रोगिणःस्वरक्षीणायेनरास्तेपुयुज्यते ॥ कासंश्वासंपिपासांचवातास्रमुरसोग्रहम् ॥ २० ॥ वातंपित्तंशुक्रदोषंमूत्रदोषंचनाशयेत् ॥ मेधांस्मृतिंस्त्रीषुहर्षकान्तिवर्णप्रसन्नताम् ॥ २१ ॥ अस्यप्रयोगादाप्नोतिनरोऽजीर्णविवर्जितः ॥

अर्थ–सिरस, अरनी, काश्मर्य, वेलवृक्षकी जड, स्योनापाढा, गोखरू, शालिपर्णी, पृष्ठिपर्णी, दोनो कटेली, तीनों पीपल, काकडासिंगी, दाख, गिलोय, हरड, खरेटी, भूमिआंवला, अरुसा ऋद्धि, जीवंतिका, कचूर, जीवक, ऋषभक, नागरमोथा, पोहकरमूल, कौआठोडी, मूगपर्णी, माषपर्णी, विदारीकंद, सोंठी काकोली, कमल, मेदा, महामेदा, छोटी इलायची अगर, चंदन ये सब औषध चार २ तोले लेकर थोडा २ कूट इकट्ठा करे। फिर वडे २

आँवले ५०० लेकर बडे मटकेमे डाल तिसमे १०२४ सौ तोले पानी डालके पकावे । जब उसका आठवाँ हिस्सा शेष रहे तब उन औषधोंमेंसे ५०० सौ आँवलोंको निकाल लेवे । पीछे, उन आवलेको छीलकर कलई किये हुए पात्रके ऊपर वस्त्रको दृढ बांधिके उसके ऊपर धरके करडे हाथसे अत्यत मर्दन करे । तिस पीछे नीचे उतरेहुए आवलोंको मगजमें २८ तोलेभर घृत डालके मंद अग्निके ऊपर थोडासा भूनकर पीछे तिसमें पूर्व कियाहुआ क्वाथ और अर्धतुला परिमाण खाँड डालना । जबतक वह कठिन होवे तबतक उसे पकाना । ऐसे इसको लेहकी रीतिसे सिद्ध करे । पीछे ये औषध डाले, पीपल ८ तोलाभार वंशलोचन १६ तोलाभार और दालचीनी इलायची और तेजपात ये औषध २ शाण परिमाण । तब अवले हको इकट्ठा करके उसमे २४ तोले सहत मिलावे । यह च्यवनऋषिका कहा हुआ च्यवनप्राश संज्ञक अवलेह है क्षीण हुए पुरुषको रसायनरूप लेहको अग्निका बलाबल देखके खाना चाहिये । यह च्यवनप्राशावलेह बालक, वृद्ध, क्षतक्षीण, नपुंसक, शोष रोगी, हृद्रोगी, स्वरक्षीण इन पुरुषोंमे युक्त है । और यह, श्वास, कास, पिपासा, वातरक्त, उरोग्रह, वात, पित्त, वीर्यके दोष, मूत्रके दोष, इतने रोगोंका नाश करता है इस अवलेहके प्रयोगसे पुरुष बुद्धि, स्मरणशक्ति. स्त्रीके साथ संग करनेकी इच्छा, शरीरकी कांति और वर्ण, अंत.करणका संतोषको प्राप्त होता है और अजीर्ण करके रहित होता है ।

कूष्मांडकावलेह रक्तपित्तादिकोंपर ।

निष्कुलीकृतकूष्मांडखंडान्पलशतंपचेत् ॥ २२ ॥ निक्षिाय द्वितुलंनीरमर्धशिष्टंचगृह्यते ॥ तानिकूष्मांडखंडानिपीडयेद्दृढ वाससा ॥ २३ ॥ आतपेशोषयेत्किंच्छूलाग्रैर्बहुशोव्यधेत् क्षिस्वाताम्रकटाहेचदद्यादष्टपलंघृतम् ॥ २४ ॥ तेनाकिंचिद्भ र्जयित्वापूर्वोक्तंचजलंक्षिपेत् ॥खंडंपलशतंदत्वासर्वमेकत्रपाच- येत् ॥ २५ ॥ सुपक्वेपिप्पलीशुंठीजीराणांद्विपलंपृथक् ॥पृथ क्पलार्धंधान्याकंपत्रैलामरिचंत्वचम् ॥२६॥चूर्णीकृत्याक्षिपेत्त त्रघृतार्धंक्षौद्रमावपेत् ॥ खादेदग्निबलंदृष्ट्वारक्तपित्तीक्षयज्वरी ॥ २७ ॥ शोषतृष्णातमश्छर्दिकासश्वासक्षतातुरः ॥ कूष्मांड कावलेहोऽयंबालवृद्धेषुयुज्यते ॥ २८ ॥ उरःसंधानकृद्वृष्यो बृंहणोबलकृन्मतः ॥

अर्थ—उत्तम पकेहुये पेठेके ऊपरका छिलका कतरके तथा भीतरके बीजोको निकालके

छोटे २ टुकडे कर १०० पल लेवे। उनमें दो तुला जल डालके औटावे जब आधा अर्थात् एक तुला जल रहे तब उतारले। उस जलको छानके एक जगह रख देवे। फिर उन पेठेके टुकडोंको कपडेमें बांधके निचोड लेवे। पश्चात् उनको कुछ गरम बाफ देकर सूएसे अत्यंत छेदे। तांबेके पात्रमें ८ पल घी डाल उन टुकडोंको धीमी आँचपर भूने। पश्चात् पूर्वोक्त पेठेके निचुडेहुए पानीमें इस भुने पेठेको डाले तथा १०० पल मिश्री मिलायके पाक करे। जब पाक सिद्ध होनेपर आवे तब आगे लिखी औषधें डाले। जैसे—१ पीपल २ सोंठ ३ जीरा ये तीन औषध दो दो पल, तथा १ धनिया २ पत्रज ३ इलायचीके दाने ४ काली मिरच ५ दालचीनी ये पाच औषध आधे २ पल लेवे। फिर सबका चूर्ण करके पाकमें मिलाय देवे और सहत ४ पल मिलावे। इसको कूष्मांडावलेह कहते हैं। यह अवलेह रोगीको अपना बलाबल विचारके सेवन करना चाहिये इससे रक्तपित्त, क्षय, ज्वर, शोष, तृषा, नेत्रोंके आगे अंधेरीका आना, वमन, खाँसी, श्वास और उरःक्षत ये रोग दूर होवें। यह अवलेह बालक और वृद्धोंके उपयोगी है। छातीमें अन्नका रस आता है उसको साधक होता है। स्त्रीप्रसंगकी इच्छा प्रगट करे धातुवृद्धि करे तथा बल बढावे।

कूष्मांडखंडलेह बवासीरपर।

युक्त्याकूष्मांडखंडंचसूरणंविपचेत्सुधीः ॥ २९ ॥
अर्शसांमूढवातानांमंदाग्नीनांचयुज्यते ॥

अर्थ—पेठेके बारीक २ टुकडे तथा सूरण (जमीकंद) का सीरा इन दोनोंको मिलायके घीमें भून दुगुनी मिश्री मिलायके पाक करे अर्थात् अवलेह बनावे। इससे बवासीर, मूढवादी (अधोवायुका नीचे न उतरना) ये दूर हों तथा जठराग्नि प्रदीप्त हो।

अगस्त्यहरीतकी क्षयादिकोंपर।

हरीतकीशतंभद्रंयवानामाढकंतथा ॥ ३० ॥ पलानिदशमूलस्यविंशतिश्चनियोजयेत् ॥ चित्रकःपिप्पलीमूलमपामार्गः शटीतथा ॥३१॥ कपिकच्छूःशंखपुष्पीभार्ङ्गीचगजपिप्पली॥ बलापुष्करमूलंचपृथग्द्विपलमात्रया ॥ ३२ ॥ पचेत्पंचाढके नीरेयवैःस्विन्नैःशृतंनयेत् ॥ तच्चाभयाशतंदद्यात्क्वाथेतस्मिन्विचक्षणः ॥ ३३ ॥ सर्पिस्तैलाष्टपलकंक्षिपेद्गुडतुलांतथा ॥ पक्त्वालेहत्वमानीयसिद्धशीतेपृथक्पृथक् ॥ ३४ ॥ क्षौद्रंच पिप्पलीचूर्णंदद्यात्कुडवमात्रया ॥ हरीतकीद्वयंखादेत्तेनलेहे-

ननित्यशः ॥ ३५ ॥ क्षयंकासंज्वरंश्वासंहिकाशोंऽरुचिपीन-सान् ॥ ग्रहणींनाशयत्येपवलीपलितनाशनः ॥ ३६ ॥ वलव-र्णकरःपुंसामवलेहोरसायनम् ॥ विहितोऽगस्त्यमुनिनासर्वरो-गप्रणाशनः ॥ ३७ ॥

अर्थ–१ आढक जव ले उनको यवकूट करके चौगुना जल मिलायके औटावे। जव चौथाई जल रहे तव उतार छानके धर रक्खे और उन औटेहुए जवोंको फेंक देवे। फिर दश-मूलकी औषध वीसपल लेय, १ चित्रक २ पीपरामूल ३ ओगा ४ कचूर ५ कौंचके बीज ६ शखपुष्पी ७ भारंगी ८ गजपीपल ९ खरेटीकी जड और १० गाठदार पुहकरमूल ये दश औषध दो दो पल लेय। इस प्रकार वीसों औषधोंको एकत्र करके जवकूटकर लेवे। इनमे ५ आढक जल मिलायके औटावे। जव जल चतुर्थांश शेप रहे तव उतारके छान लेवे। इसको पूर्वोक्त जौके काढेमे मिलाय देवे पीछे इसमे वडी २ हरड १०० नग डाले। घी और तिलोंका तेल आठ २ पल लेवे, गुड १ तुलाभर ले, सवको काढेमें मिलाय पाक करे। जव गाढा होय तव उतार ले। फिर शीतल होनेपर पीपळका चूर्ण और सहत ये दोनो कुडव २ अर्थात पाव पाव भर लेकर उस पाकमें मिलाय देवे इस प्रकार अगत्स्यऋपिके कहेहुए अवलेहको अग-स्त्यहरीतकी कहतेहैं। इसमेंसे दो हरड अवलेहके साथ खाय तो क्षय, खांसी, ज्वर, श्वास, हिचकी, मूलव्याधि (ववासीर) अरुचि, पीनसरोग जो नाकमे होताहै वह तथा सग्रहणी ये रोग दूर होंय। तथा देहमें गुजलट पडे वे दूर हों सफेद बाल काले होय वल और कांति आवे यह अवलेह रसायन है इससे सपूर्ण रोग दूर होंय।

कुटजावलेह अर्शादिकपर।

कुटजत्वक्तुलांद्रोणेजलस्यविपचेत्सुधीः ॥ कषायंपादशेषंच गृह्णीयाद्वस्त्रगालितम् ॥ ३८॥ त्रिंशत्पलंगुडस्यात्रदत्त्वाचवि-पचेत्पुनः ॥ सांद्रत्वमागतंज्ञात्वाचूर्णानीमानिदापयेत् ॥३९॥ रसांजनंमोचरसंत्रिकटुत्रिफलांतथा ॥ लज्जालुंचित्रकंपाठांबि-ल्वमिंद्रयवंवचाम् ॥ ४० ॥भल्लातकंप्रतिविषांविडंगानिचवा-लकम् ॥ प्रत्येकंपलसंमानंघृतस्यकुडवंतथा ॥ ४१ ॥ सिद्ध-शीतेततोदद्यान्मधुनःकुडवंतथा ॥ जयेदेषोवलेहस्तुसर्वाण्य-र्शांसिवेगतः ॥ ४२ ॥दुर्नामप्रभवान्रोगानतीसारमरोचकम्॥ ग्रहणींपांडुरोगंचरक्तपित्तंचकामलाम् ॥ ४३ ॥ अम्लपित्तंत-

थाशोपंकार्श्यंचैवप्रवाहिकाम् ॥ अनुपाने प्रयोक्तव्यमाजंतक्रंप-योदधि ॥ ४४ ॥ घृतंजलंवाजीर्णेचपथ्यभोजीभवेन्नरः ॥

अर्थ—कूडाकी छाल एक तुला (४०० तोले) लेवे उसको जवकूटकर एक द्रोण जलमें डालके काढा करे। जब जल चतुर्थांश शेष रहे तब उतारके कपडेसे छान लेवे। इसमें गुड ३० पल डालके फिर औटावे। जब गाढा होनेपर आवे तब आगे लिखी औषध मिलावे। जैसे—१ रसोत २ मोचरस ३ सोंठ ४ मिरच ५ पीपल ६ हरड ७ बहेडा ८ आँवला ९ लजालू १० चीतेकी छाल ११ पाढ १२ कच्चा बेलफल १३ इन्द्रजौ १४ वच १५ मिलाए १६ अतीस १७ वाय-विडंग १८ नेत्रवाला। ये अठारह औषध एक २ पल लेवे। सबका चूर्ण करके पाकमें मिलावे। घी एक कुडव डाले। जब पाक शीतल होजावे तब सहत एक कुडव मिलावे पश्चात् इस अवले-हको बकरीके दूध छाँछ दही अथवा घी मिलायके लेवे तथा औषध पचनेपर उत्तम भोजन करे तो सम्पूर्ण बवासीरके तथा बवासीरके कारणसे होनेवाले दूसरे भगन्दरादि रोग, अतिसार, अरुचि, संग्रहणी, पांडुरोग, रक्तपित्त, नेत्रोंमे कामला रोग होता है वह, अम्लपित्त, सूजन, कृशता और प्रवाहिका रोग, अतिसारका भेद ये सब रोग दूर होवें।

दूसरा कुटजावलेह अतिसारआदिरोगोंपर।

कुटजत्वक्तुलामार्द्रांद्रोणनीरेविपाचयेत् ॥ ४५ ॥ पादशेषं शृतंनीत्वाचूर्णान्येतानिदापयेत् ॥ लज्जालुर्धातकीबिल्वंपाठा मोचरसस्तथा ॥ ४६ ॥ मुस्तंप्रतिविषाचैवप्रत्येकंस्यात्पलं पलम् ॥ ततस्तुविपचेद्भूयोयावद्दर्वीप्रलेपनम् ॥ ४७ ॥ जलेन च्छागदुग्धेनपीतोमंडेनवाजयेत् ॥ सर्वातिसारान्घोरांस्तुना-नावर्णान्सवेदनान् ॥ असृग्दरंसमस्तंचसर्वार्शांसिप्रवाहिकाम् ॥ ४८ ॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेणविरचितायां संहितायां चिकि-त्सास्थाने अवलेहकल्पनानामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अर्थ—कूडाकी गीली छाल १ तुला प्रमाण लेय उसको जवकूटकरके एक द्रोण जल मिलाय काढा करे। जब चतुर्थांश शेष रहे तब उतारके उसके जलको कपडेमे छान लेवे। इसमें डाल-नेकी औषध इस प्रकार हैं-१लजालु २ धायके फूल ३ कोमल बेलगिरी ४ पाठ ५ मोचरस ६ नागरमोथा ७ अतीस ये सात औषध एक २ पल प्रमाण लेय सबका चूर्ण करके उस काढेमे मिलाय देवे। फिर उस काढेको लोहेकी कढाईमें चढायके पाककरे अवलेह कलछीमें लिपटने

लगे इतना गाढा करे फिर यह अवलेह जल अथवा वकरीके दूधसे किंवा मंडके साथ सेवन करे तो वेदनायुक्त तथा नीलपीतादिक अनेक प्रकारके रंगका घोर अतिसार रोग संपूर्ण दूर होवे । स्त्रियोंके सर्व प्रकारके असृग्दरादि रोग संपूर्ण मूळव्याधि (बवासीर) और प्रवाहिका रोग जो अतिसारका भेद है ये सब दूर होवें ।

इति श्रीशार्ङ्गधरेभाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः ९.

घृततैलआदिस्नेहोंका साधनप्रकार ।

कल्काच्चतुर्गुणीकृत्यघृतंवातैलमेववा ॥ चतुर्गुणेद्रवेसाध्यंतस्य मात्रापलोन्मिता ॥ १ ॥ निक्षिप्यक्राथयेत्तोयंक्राथ्यद्रव्याच्चतुर्गुणम् ॥ पादशिष्टंगृहीत्वाचस्नेहंतेनैवसाधयेत् ॥ २ ॥ चतुर्गुणंमृदुद्रव्येकठिनेऽष्टगुणंजलम् ॥ तथाचमध्यमेद्रव्येदद्यादष्टगुणंपयः ॥ ३ ॥ अत्यंतकठिनेद्रव्येनीरंषोडशिकंमतम् ॥ कर्षादितःपलंयावत्क्षिपेत्षोडशिकंजलम् ॥ ४ ॥ तदूर्ध्वंकुडवंयावत्क्षिपेदष्टगुणंपयः ॥ प्रस्थादितः क्षिपेन्नीरंखारींयावच्चतुर्गुणम् ॥५॥ अंबुक्राथरसैर्यत्रपृथक्स्नेहस्यसाधनम् ॥ कल्कस्यांशंतत्रदद्याच्चतुर्थंषष्ठमष्टमम् ॥ ६ ॥ दुग्धेदधिरसेतक्रेकल्कोदेयोऽष्टमांशकः ॥ कल्कस्यसम्यक्पाकार्थंतोयमत्रचतुर्गुणम् ॥ ७ ॥ द्रव्याणियत्रस्नेहेषुपंचादीनिभवंतिहि॥ तत्रस्नेहसमान्याहुर्यथापूर्वंचतुर्गुणम् ॥ ८ ॥ द्रव्येणकेवलेनैव स्नेहपाकोभवेद्यदि ॥ तत्राम्बुपिष्टःकल्कःस्याज्जलंचात्रचतुर्गुणम् ॥ ९ ॥ क्राथेनकेवलेनैवपाकोयत्रेरितःक्वचित् ॥ क्राथ्यद्रव्यस्यकल्कोपितत्रस्नेहेप्रयुज्यते ॥ १० ॥ कल्कहीनस्तुयःस्नेहःससाध्यःकेवलद्रवे ॥ पुष्पकल्कस्तुयःस्नेहस्तत्रतोयंचतुर्गुणम्॥ ११॥ स्नेहस्नेहाष्टमां-

१ चावलोंमें चौदहगुना जल डालके औटावे । जब चावल गल जावे तब उसके मांडको निकाल लेवे इसको मंड कहते हैं ।

शश्वपुष्पकल्कःप्रयुज्यते ॥ वर्तिवत्स्नेहकल्कःस्याद्यदांगुल्या विमर्दितः॥१२॥ शब्दहीनोग्निनिक्षिप्तःस्नेहःसिद्धोभवेत्तदा ॥ यदाफेनोद्भवस्तैलफेनशांतिश्चसर्पिषि ॥ १३॥ गंधवर्णरसोत्पत्तिःस्नेहसिद्धिस्तदाभवेत्॥स्नेहपाकस्त्रिधाप्रोक्तोमृदुर्मध्यःखरस्तथा॥१४॥ईषत्सरसकल्कस्तुस्नेहपाकोमृदुर्भवेत् ॥मध्यपाकस्यसिद्धिश्चकल्केनीरसकोमले ॥ १५ ॥ ईषत्कठिनकल्कश्चस्नेहपाकोभवेत्खरः ॥ तदूर्ध्वंदग्धपाकःस्याद्दाहकृन्निष्प्रयोजनः ॥१६ आमपाकश्चनिर्वीर्योवह्निमांद्यकरोगुरुः ॥नस्यार्थेस्यान्मृदुःपाकोमध्यमःसर्वकर्मसु ॥ १७ ॥ अभ्यंगार्थंखरःप्रोक्तो युंज्यादेवंयथोचितम् ॥ घृततैलगुडादींश्चसाधयेन्नैकवासरे ॥ १८ ॥ प्रकुर्वंत्युषिताह्येतेविशेषाद्गुणसंचयम् ॥

अर्थ—कल्ककी औषधोंसे चौगुना घृत अथवा तेल लेवे, तथा उस घृत तेलका चौगुना दूध गौ आदिका मूत्र इत्यादिक द्रवपदार्थ ले सबको एकत्रकर अग्निके संयोगसे उस द्रव्यपदार्थको जलायके घृत तथा तेल शेष रक्खे । उसी प्रकार सिद्ध हुए घृत और तेलकी भक्षण करनेकी मात्रा वातादि रोगोंपर १ पलकी जानना । काढेकी औषधोंमे चौगुना पानी डालके औटावे जब चतुर्थांश शेष रहे तब उतार लेय। उसमें घृत अथवा तेल डालके औटावे । जब घृत तथा तेल मात्र बाकी रहे तब सिद्ध हुआ जानना यदि नरम गुडूच्यादि औषध हों तो उनमें चौगुना पानी डाले । अमलतास आदि कठिन औषधोंमें तथा दशमूलादि जो मध्यम औषध हैं उनमें काढेके वास्ते आठगुना जल मिलावे । पद्माखादि जो अत्यंत कठोर औषधि हैं उनमें जल सोलहगुना डालना चाहिये । कर्षसे लेकर पलपर्यंत मान कही हुई औषधोंका यदि काढा करना होय तो जल सोलहगुना डाले पलसे लेकर कुडवमान पर्यंत औषधोका काढा करना होय तो पानी आठगुना मिलावे । प्रस्थसे लेकर खारीमान पर्यंत औषधोंका काढा करना होय तो चौगुना जल डाले । केवल जलमें स्नेह सिद्ध करना होय तो स्नेहका चतुर्थांश कल्क डाले । काढेमें स्नेह सिद्ध करना होय तो उसमे स्नेहका षष्ठांश कल्क मिलावे । मासके रसमें स्नेह सिद्ध करना होय तो उसमे स्नेहका अष्टमांश कल्क डाले । दूध, दही अथवा धतूरे आदिके रसमें स्नेह सिद्ध करना होय तो उसमें स्नेहका अष्टमांश कल्क मिलावे । कल्कका उत्तम पाक होनेकेवास्ते स्नेहका चौगुना जल डाले । स्नेहमें दूध गोमूत्र इत्यादि पांच द्रव पदार्थोंसे अधिक द्रवपदार्थ डालने होंय तो दूध और गोमूत्रादिकस्नेहके समानभाग

लेवे। यदि द्रवपदार्थ पांचसे न्यून होवें तो स्नेहके चौगुने ले। जिस ठिकाने केवल एकही द्रव्यसे स्नेहपाक साधन लिखा होय वहाँकल्कको पानीमे पीसके उसका चौगुना पानी डाले। यदि काढेमे स्नेह सिद्ध करना होय तो कल्क द्रव्यको पानीमें पीस कल्क कर स्नेहमे डाल उसमें स्नेहका चौगुना जल डाले। अथवा किसी प्रयोगमे काढेमे स्नेह सिद्ध करना होय तो काढेकी औषधोका कल्क करके स्नेहमे मिलाय उसमे पानी चौगुना डाले औटावे जव द्रवपदार्थ जल जावे और स्नेहका चौगुना जल डाले। फूलोका कल्क स्नेहका अष्टमांश डालना। अव इसके उपरांत उत्तम सिद्धहुए स्नेहके लक्षणोको लिखते हैं। जो स्नेह उँगलीके पोरुओंके लगानेसे औरमिडनेसे वत्तीसा होजावे तथा उस कल्कको अग्निपर गेरनेसे चटचटाहट शब्द न करे, तेलके पाकमे झाग आनेसे तथा घृतके पाकमें झाग आकर शांत होजानेसे, तथा उस पाकके सुगंध करके गंधादिवर्ण करके, मधुरादि रसोकरके युक्त होनेसे स्नेह सिद्ध होगया इस प्रकार वैद्य जाने।

स्नेहका पाक तीन प्रकारका है। जैसे—नम्र मध्यम और कठिन उनके लक्षण कहतेहैं कि, जिस स्नेहमे कल्ककी कुछ २ आर्द्रता बनीरहै अर्थात् वह कल्क समग्र न जले उसको नम्रपाक हुआ जानना।

जिस स्नेहमे कल्ककी मृदुता होनेसे जलका अंश सर्वथा न रहे उस पाकको मध्यम पाक जानना। और जिस स्नेहका पाक किंचित् अर्थात् कल्क सर्वथा जल करभी कुछ तेल जलगयाहो वह स्नेह दाहकारी और निष्प्रयोजक है अर्थात् कुछ कामका नहीं है।

कच्चापाक रहनेसे उसमे पराक्रम नहीं रहता, अग्निको मंद करता है तथा भारी होतीहै स्नेहका पाक नरम होनेसे वह स्नेह नाकमें नस्य देनेके विषयमें योग्य होताहै। मध्यमपाक व्ह स्नेह सर्व कर्ममे वर्तना चाहिये कठिन पाक होनेसे उस स्नेहको देहमें मालिश करनेमें लेवे।

घृत तेल गुडादि ये वनाने होय तो एक दिनमेंही सिद्ध न करे। इनके संपूर्ण द्रव्योंको एकत्र कर एकरात्रि भिगो देवे दूसरे दिन सिद्ध करै इस प्रकार स्नेहके मौवनकी क्रिया जाननी। इसमेभी प्रथमघृत और पश्चात् तेल वनाना इस अध्यायमें कहा जावेगा।

---

१ वैद्यको उचित है कि जव तेल घृत आदि कोईसी वस्तु वनानीहोयतो इस स्नेह साधनके अनुसार कल्क काढा दूध गोमूत्रादिक डाले तो ठीक वनेगा अन्यथा विगड जावेगा।

घृतका साधनप्रकार तिनमें प्रथम क्षीरघृत प्लीहादिकोंपर ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः ॥१९॥ ससैंधवैश्च-पलिकैर्घृतप्रस्थंविपाचयेत् ॥ क्षीरंचतुर्गुणंदत्त्वातत्सिद्धंप्लीह-नाशनम् ॥ २० ॥ विषमज्वरमंदाग्निहरंरुचिकरंपरम् ॥

अर्थ–१ पीपल २ पीपरामूल ३ चव्य ४ चित्रक ५ सोंठ ६ सैंधानमक ये छः औषध एक २ पल ले कल्क करके एक प्रस्थ गौके घीमे मिलावे। और घीसे चौगुना जल मिलाय फिर गौका दूध उसमें मिलावे। कल्कका पाक उत्तम होनेके वास्ते घृतसे चौगुना पानी डालके पाक करे। जब घृतमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे। इसके सेवन करनेसे पेटमे बाई तरफ जो प्लीहा (तिल्ली) का रोग होताहै वह और विषमज्वर मंदाग्नि ये रोग दूर होवें मुखमें उत्तम रुचि आवे।

चांगेरीघृत अतिसारसंग्रहणीपर ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलंचित्रकोहस्तिपिप्पली ॥२१॥ श्वदंष्ट्रानागरंधान्यंपाठाबिल्वंयवानिका॥द्रव्यैश्चपलिकैरेतैश्चतुःषष्टिपलंघृतम्॥ २२ ॥ घृताच्चतुर्गुणंदद्याच्चांगेरीस्वरसंबुधः ॥ तथा चतुर्गुणंदत्त्वादधिसर्पिर्विपाचयेत् ॥२३॥ शनैःशनैर्विपक्वंच चांगेरीघृतमुत्तमम् ॥ तद्धृतंकफवातघ्नंग्रहण्यर्शोविकारजित् ॥ २४ ॥ हंत्यानाहंगुदभ्रंशंमूत्रकृच्छ्रंप्रवाहिकाम् ॥

अर्थ–१ पीपल २ पीपरामूल ३ चित्रक ४ गजपीपर ५ गोखरू ६ सोंठ ७ धनिया ८ पाठ ९ बेलगिरी १० अजमोद ये दश औषध एक २ पल लेवे। कल्क करके चौंसठ पल घी लेवे। उसमें इस कल्कको मिलाय तथा घृतसे चौगुना चूकेका रस और दहीकी छाछ डालके मंदाग्निसे परिपक्व करे। जब घृतमात्र शेष रहे तब उतार छानके धर रक्खे। इसको चांगेरीघृत कहते हैं। इसका सेवन करनेसे कफवायु, संग्रहणी, मूल व्याधि (बवासीर) मलबद्धता, कांचका निकलना, मूत्रकृच्छ्र और प्रवाहिका ये संपूर्ण रोग दूर होते हैं।

मसूरादिघृत अतिसारआदिपर।

मसूराणांपलशतंनीरद्रोणेविपाचयेत् ॥ २५ ॥ पादशेषंशृतं नीत्वादत्त्वाबिल्वपलाष्टकम् ॥ घृतप्रस्थंपचेत्तेनसर्वातीसार-नाशनम् ॥ २६ ॥ ग्रहणींभिन्नविट्कांश्चनाशयेच्चप्रवाहिकाम् ॥

अर्थ–मसूर सौ पलमें एकद्रोण जल डालके औटावे जब चौथाई जल रहे तब उतारके जलको छान लेवे । इसमें आठपल बेलगिरीका बारीक चूर्ण करके डाले तथा घी एक प्रस्थ मिलाय पाक करे । जब घृतमात्रशेष रहे तब उतारके घीको छानके किसी उत्तम पात्रमें भरके रख देवे इस घृतके सेवन करनेसे सपूर्ण अतिसार, संग्रहणी, मलके चिथडे और टुकडे २ गिरें और प्रवाहिका ये संपूर्ण रोग दूर होंय ।

कामदेवघृत रक्तपित्तादिकोंपर ।

अश्वगंधातुलैकास्यात्तदर्धोगोक्षुरःस्मृतः ॥ २७ ॥ बलामृता शालिपर्णीविदारीचशतावरी॥ पुनर्नवाश्वत्थशुंठीकाश्मर्यास्तु फलान्यपि ॥ २८ ॥ पद्मबीजंमाषबीजंदद्यादशःपलंपृथक् ॥ चतुर्द्रोणांभसापक्त्वापादशेषंशृतंनयेत् ॥ २९ ॥ जीवनीयगणःकुष्ठंपद्मकंरक्तचंदनम् ॥ पत्रकंपिप्पलीद्राक्षाकपिकच्छुफलंतथा ॥ ३० ॥ नीलोत्पलंनागपुष्पंसारिवेद्वेबलेतथा॥पृथक्कर्षसमाभागाःशर्करायाःपलद्वयम् ॥३१॥ रसश्चपौंड्रकेक्षूणामाढकैकंसमाहरेत् ॥ घृतस्यचाढकंदत्त्वापाचयेन्मृदुनाग्निना ॥ ३२ ॥ घृतमेतन्निहंत्याशुरक्तपित्तमुरःक्षतम् ॥ हलीमकंपांडुरोगंवर्णभेदंस्वरक्षयम् ॥३३॥ वातरक्तंमूत्रकृच्छ्रंपार्श्वशूलंचकामलाम् ॥ शुक्रक्षयमुरोदाहंकार्श्यमोजःक्षयंतथा ॥ ३४ ॥ स्त्रीणांचैवाप्रजातानांगर्भदंशुक्रदंनृणाम् ॥ कामदेवघृतंनामहृद्यंबल्यंरसायनम् ॥ ३५ ॥

अर्थ–असगंध १ तुला, गोखरू दक्षिणी अर्द्धतुला और १ चीतेकी छाल २ गिलोय ३ शालपर्णी ४ विदारीकंद ५ शतावर ६ पुनर्नवा (साँठ) ७ पीपरामूल ८ सोंठ ९ कंभारीके फल १० कमलगट्टा और ११ उडद ये ग्यारह औषध दश २ पल लेकर एकत्र कूट इसमें चार द्रोण जल मिलाकर काढा करे । जब चतुर्थांश जल शेष रहे तब उतारके इसको छान लेवे । फिर १० जीवनीयगणकी औषधि ११ कूठ १२ पद्माख १३ लालचंदन १४ तमालपत्र १५ पीपल १६ दाख १७ कौंचके बीज १८ नीलाकमल १९ नागकेशर २० कालीसारिवा २१ सफेदसारिवा २२ बला २३ नागबला ये तेईस औषध एक २ कर्ष ले। कल्क करके पूर्वोक्त काढेमें मिलाय देवे । खाँड दोपल डाले । सफेद ईखका रस और घृत ये दोनों एक एक आढक लेके उस काढेमे मिलाय देवे । फिर

भट्टीपर चढाय मदाग्निसे घृतका पाक करे। जब सब पदार्थ जलके घृतमात्र रहे तब उतारके इसको छान लेवे। इसके सेवन करनेसे रक्तपित्त, उर.क्षत रोग, पांडुरोगका भेद, हलीमक रोग, स्वरभंग, वातरक्त, मूत्रकृच्छ्र, पीठका दर्द, नेत्रोंका पीला होना, धातुक्षय, उरः (छाती) का दाह, शरीरकी कृशता, शरीरके तेजका क्षय ये सपूर्ण रोग दूर होवें। यह घृत जिस स्त्रीके संतान न होतीहो उसके वास्ते देनेसे पुत्र देवे पुरुषोंके वीर्य प्रगट करे, हृदयको हितकारी बल देवे तथा यह रसायन है इसको कामदेवघृत ऐसा कहते हैं।

पानीयकल्पनाघृत अपस्मारादिकोंपर।

त्रिफलाद्वेनिशेकौंतीसारिवेद्वेप्रियंगुका ॥ शालिपर्णीपृष्ठपर्णी देवदार्व्येलवालुकम् ॥ नतंविशालादंतीचदाडिमंनागकेशरम् ॥ ३६ ॥ नीलोत्पलैलामंजिष्ठाविडंगंकुष्टपद्मकम् ॥ जाती-पुष्पंचंदनंचतालीसंबृहतीतथा ॥ एतैःकर्षसमैःकल्कैर्जलद्-त्वाचतुर्गुणम् ॥ ३७ ॥ घृतप्रस्थंपचेद्धीमानपस्मारेज्वरेक्षये ॥ उन्मादेवातरक्तेचकासेमंदानलेतथा॥३८॥प्रतिश्यायेकटीशूले तृतीयकचतुर्थके॥मूत्रकृच्छ्रेविसर्पेचकंड्वांपांड्वामयेतथा॥३९॥ विषद्वयेप्रमेहेषुसर्वथैवोपयुज्यते ॥ वंध्यानांपुत्रदंभूतयक्षरक्षो-हरंस्मृतम ॥ ४० ॥

अर्थ–१ हरड २ बहेडा ३ आँवला ४ हल्दी ५ दारुहल्दी ६ रेणुकाबीज ७ कालीसारिवा ८ सफेदसारिवा ९ फूलप्रियंगु १० शालपर्णी ११ पृष्ठपर्णी १२ देवदारु १३ एलवालुक १४ तगर १५ इन्द्रायणकी जड १६ अनारकी छाल १७ दंती १८ नागकेशर १९ नीले कमल २० इलायची २१ मजीठ २२ वायविडंग २३ कूठ २४ पद्माख २५ चमेलीके फूल २६ चंदन २७ तालीसपत्र और २८ कटेरी ये अट्ठाईस औषध एक एक कर्ष लेवे। कल्क कर इसमें कल्कका चौगुना जल मिलायदे। फिर १ प्रस्थ घी मिलायके मदाग्निसे पचन करावे। जब घृतमात्र शेष रहे तब उतारके छान ले और उत्तम पात्रमें भरके रख देवे। इसके सेवन करनेसे मृगी, ज्वर, क्षयरोग, उन्माद, वातरक्त, खाँसी, मदाग्नि, पीनस, कमरका शूल, तृतीयक ज्वर, चातुर्थिक ज्वर, मूत्रकृच्छ्र, विसर्परोग जो पैरोंमें होता है, खुजली, पांडु-रोग, सर्पादिकोंके विषविकार, बच्छ नागादि स्थावर विषोंके विकार, तथा प्रमेह ये सब रोग दूर होंय। यह घृत वंध्या स्त्रियोंको पुत्र देता है। इस घृतके सेवन करनेसे भूतबाधाभी दूर होती है।

अमृताघृत वातरक्तपर।

अमृताक्काथकल्काभ्यांसक्षीरंविपचेद्घृतम् ॥
वातरक्तंजयत्याशुकुष्ठंजयतिदुस्तरम् ॥ ४१ ॥

अर्थ-गिलोयको जवकूटकर उसमें चौगुना पानी डालके औटावे । जब चौथाई रहे तब उतारके छान लेवे फिर इस काढेमे इस काढेका चतुर्थांश घी मिलावे और घीका चतुर्थांश गिलोयका कल्क डाले। दूध घृतसे चौगुना डाले । फिर अग्निपर चढायके सिद्ध करे । जब घृतमात्र शेष रहे तव उतारके छान लेवे। इसके सेवन करनेसे वातरक्त और कुष्ट ये रोग बहुत जल्दी दूर होवें।

महातिक्तकघृत वातरक्तकुष्ठादिकोंपर।

सप्तच्छदःप्रतिविषाशम्याकःकटुरोहिणी ॥ पाठामुस्तमुशीरं चत्रिफलापर्पटस्तथा ॥४२॥पटोलनिंबमंजिष्ठाःपिप्पलीपद्म-कंशटी ॥ चंदनंधन्वयासश्चविशालाद्वेनिशेतथा ॥४३॥ गुडू-चीसारिवेद्वेचमूर्वावासाशतावरी ॥त्रायंतींद्रयवायष्टीभूनिंबश्चा-क्षभागिकाः ॥ ४४ ॥ घृतंचतुर्गुणंदद्याद्घृतादामलकीरसः ॥ द्विगुणःसर्पिषश्चात्रजलमष्टगुणंभवेत् ॥ ४५ ॥ तत्सिद्धंपाययेत्सर्पिर्वातरक्तेषुसर्वथा ॥ कुष्ठानिरक्तपित्तंचरक्तार्शांसिचपांडु-ताम् ॥ ४६ ॥ हृद्रोगगुल्मवीसर्पप्रदरान्गंडमालिकाम्॥क्षुद्र-रोगाञ्ज्वरांश्चैवमहातिक्तमिदंजयेत् ॥ ४७ ॥

अर्थ-१ सतोना २ अतीस ३ अमलतासका गुदा ४ कुटकी ५ पाढ ६ नागरमोथा ७ खस ८ हरड ९ बेहडा १० आँवला ११ पित्तपापडा १२ पटोलपत्र १३ नीमकी छाल १४ मजीठ १५ पीपल १६ पद्माख १७ कचूर १८ सफेद चन्दन १९ धमासा २० इन्द्रायणकी जड २१ हल्दी २२ दारुहल्दी २३ गिलोय २४ काली सारिवा २५ सफेद सारिवा २६ मूर्वा २७ अडूसा २८ सतावर २९ त्रायमाण ३० इन्द्रजौ ३१ मुलहटी और ३२ चिरायता ये बत्तीस औषध एक एक कर्ष लेवे । कल्क कर कल्कका चौगुना घी लेकर उसमें कल्कको मिलाय दे और घीसे दुगुना आँवलोंका रस एवं आठगुना जल डालके मंदाग्निपर परिपक्व करे । जब घृतमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेय और उत्तम पात्रमें भरके रख देवे । इसके सेवन करनेसे वातरक्त अवश्य दूर होवे तथा कुष्ट, रक्तपित्त, रक्तमूळव्याधि अर्थात् खूनी बवासीर, पाण्डुरोग, हृदयरोग, गोळा, विसर्परोग, प्रदररोग, गंडमाला, क्षुद्ररोग और ज्वर ये रोग दूर हों।

सूर्यपाकसिद्ध कासीसाद्यघृत कुष्ठदद्रुपामा इत्यादिकोंपर।

कासीसंद्वेनिशेमुस्तंहरतालंमनःशिलाम् ॥ कंपिल्लकंगंधकंचवि-डंगंगुग्गुलुंतथा ॥ ४८ ॥ सिक्थकंमरिचंकुष्ठंतुत्थकंगौरसर्षपा-न् ॥ रसांजनंचसिंदूरंश्रीवासंरक्तचंदनम् ॥ ४९ ॥ अरिमेदंनिं-बपत्रंकरंजंसारिवांवचाम् ॥ मंजिष्ठांमधुकंमांसींशिरीषंलोध्रप-द्मकम् ॥ ५० ॥ हरीतकींप्रपुन्नाटंचूर्णयेत्कार्षिकान्पृथक् ॥ ततश्चूर्णमालोड्यत्रिंशत्पलमितेघृते ॥५१॥ स्थापयेत्ताम्रपा-त्रेचघर्मेसप्तदिनानिच ॥ अस्याभ्यंगेनकुष्ठानिदद्रुपामाविचर्चि-काः ॥५२॥ शूकदोषाविसर्पाश्चविस्फोटावातरक्तजाः ॥ शि-रःस्फोटोपदंशाश्चनाडीदुष्टव्रणानिच ॥ ५३ ॥ शोथोभगंदरश्चै-वलूताःशाम्यंतिदेहिनाम्॥शोधनंरोपणंचैवसुवर्णकरणंघृतम् ५४॥

अर्थ—१ हीराकसीस २ हल्दी ३ दारुहल्दी ४ नागरमोथा ५ हरताल ६ मनसिल ७ कपीला ८ गंधक ९ वायविडंग १० गूगल ११ मोम १२ काली मिरच १३ कूठ १४ सफेद सरसो १५ रसाजन १६ सिंदूर १७ गधाविरोजा १८ लाल चदन १९ खैरकी छाल २० नीमके पत्ते २१ कजाके बीज २२ सारिवा २३ वच २४ मजीठ २५ मुलहटी २६ जटामासी २७ सिरसकी छाल २८ लोध २९ पद्माख ३० जंगी हरड और ३१ पमारके बीज ये एकतीस औषध एक एक कर्ष लेवे। सबका चूर्ण कर तीस पल घी तांबेके पात्रमें डाल चूर्ण मिलाय सात दिन धूपमे धरा रहने देवे। फिर इस घीको देहमें लगावे तो सर्व कुष्ठ, दाह, खाज, जिससे पैर फट जाते हैं ऐसी विचर्चिका, लिंगेन्द्रियका शूकसंज्ञक रोग, विसर्परोग, वातरक्तसे जो विस्फोटक रोग होता है वह, मस्तकके फोडे, उपदंश (गरमीका रोग), नाडी व्रण (नासूरका घाव), दुष्टव्रण, सूजन, भगंदर और लूता ये सम्पूर्ण रोग दूर होवें। यह घृत व्रणादिकोंका शोधन करके व्रणको भरलाता है तथा त्वचाकी कांति जैसी प्रथम थी उसी प्रकारकी करता है।

जात्यादिघृत व्रणपर।

जातीनिंबपटोलाश्चद्वेनिशेकटुकीतथा ॥ मंजिष्ठामधुकंसिक्थं करंजोशीरसारिवाः ॥ ५५ ॥ तुत्थंचविपचेत्सम्यक्कल्कैरेभि-र्घृतंबुधः ॥ अस्यलेपात्प्ररोहंतिसूक्ष्मनाडीव्रणाअपि ॥ ५६ ॥ मर्माश्रिताःक्लेदिनश्चगंभीराःसरुजाव्रणाः ॥

अर्थ–१ चमेलीके पत्ते २ नीमके पत्ते ३ पटोलपत्र ४ हल्दी ५ दारुहल्दी ६ कुटकी ७ मजीठ ८ मुलहटी ९ मोम १० कजा ११ खस १२ सारिवा और १३ धौलाधोया ये तेरह औषध एक एक कर्ष प्रमाण लेनी । इनका कल्क करके उस कल्कका चौगुना घी ले उसमें कल्कको मिलाय धूपमें एक दिन धरा रहने दे फिर अग्निपर धरके घृतको सिद्ध करे । इस घृतका नाडीव्रण कहिये नासूरके घावमें लेप करे तथा मर्मस्थलमे होय और राव आदि करके गीले गभीर और पीडायुक्त ऐसे व्रणोंमें इसका लेप करे तो व्रण भरके अच्छा होय ।

बिंदुघृत उदरादिकोंपर ।

चित्रकःशंखिनीपथ्याकंपिल्लस्त्रिवृतायुगम् ॥५७॥ वृद्धदारश्चशम्याकोदंतीदंतीफलंतथा ॥ कोशातकीदेवदालीनीलिनी गिरिकर्णिका॥५८॥ सातलापिप्पलीमूलंविडंगंकटुकीतथा ॥ हेमक्षीरीचविपचेत्कल्कैरेतैःपिचून्मितैः ॥ ५९ ॥ घृतप्रस्थं स्नुहीक्षीरेषट्पलेतुपलद्वये ॥ अर्कक्षीरस्यमतिमांस्तत्सिद्धंगुल्मकुष्ठनुत् ॥ ६० ॥ हंतिशूलमुदावर्तंशोथाध्मानंभगंदरम् ॥ शमयत्युदराण्यष्टौनिपीतंबिंदुसंख्यया ॥ ६१ ॥ गोदुग्धेनोष्ट्रदुग्धेनकौलत्थेनशृतेनवा ॥ उष्णोदकेनवापीत्वाबिंदुवेगैर्विरिच्यते ॥ ६२ ॥ एतद्बिंदुघृतंनामनाभिलेपाद्विरेचयेत् ॥

अर्थ–१ चीतेकी छाल २ शंखपुष्पी (शंखाहूली) ३ हरड ४ कपीला ५ सफेद निसोथ ६ कालीनिसोथ ७ विधायरा ८ अमलतासका गूदा ९ दंतीकी जड १० जमालगोटा ११ कडुई तोरई १२ बंदाल १३ नील १४ विष्णुक्रांता (कोयल) १५ पीले रंगकी थूहर १६ पीपरामूल १७ वायविडंग १८ कुटकी १९ चूक ये उन्नीस औषध एक एक कर्ष प्रमाण लेवे । सबका कल्क कर एक प्रस्थ घीमें उसको मिलाय थूहरका दूध छः पल और आकका दूध दो पल मिलावे । कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते उस घीका चौगुना जल डालके मंदाग्निसे घृत शेष रक्खे । इस प्रकार जब घृत सिद्ध होजावे तब इसको छानके किसी उत्तम पात्रमें भरके धररक्खे । इसका बिंदुघृत कहतेहैं इसके सेवन करनेसे गोला, कोढ, शूल, उदावर्त, सूजन, अफरा, भगंदर, आठ प्रकारके उदररोग ये संपूर्ण रोग दूर होवें । इनका अनुपान गौका अथवा ऊँटनीका दूध, कुलथीका काढा अथवा गरम जल इतने अनुपानोंमेंसे जैसा रोगका तारतम्य देखे उसी प्रकार देवे । इस घृतके जितने बिंदु (बूँद) डालके पीवे उतनेही दस्त होते हैं । इस घृतका नाभिपर लेप करनेसे भी दस्त होते हैं ।

त्रिफलाघृत नेत्ररोगपर।

त्रिफलायारसप्रस्थंप्रस्थंवासारसोद्भवम् ॥ ६३ ॥ भृंगराजरस-प्रस्थंप्रस्थमाजंपयःस्मृतम् ॥ दत्वातत्रघृतप्रस्थंकल्कैःकर्ष-मितैःपृथक् ॥ ६४ ॥ त्रिफलापिप्पलीद्राक्षाचंदनंसैंधवंबला ॥ काकोलीक्षीरकाकोलीमेदामरिचनागरम् ॥ ६५ ॥ शर्करापुंड-रीकंचकमलंचपुनर्नवा ॥ निशायुग्मंचमधुकंसर्वैरेभिर्विपाचये-त् ॥ ६६ ॥ नक्तांध्यंनकुलांध्यंचकंडूंपिल्लंतथैवच ॥ नेत्रस्रावं चपटलंतिमिरंचाजकंजयेत् ॥ ६७ ॥ अन्येऽपिप्रशमंयांतिनेत्र-रोगाःसुदारुणाः ॥ त्रैफलंघृतमेतद्धिपानेनस्यादिसूचितम् ॥ ६८ ॥

अर्थ–१हरड २ वहेडा ३ आँवला इन तीनोंका स्वरस पृथक् २ एक एक प्रस्थ लेवे। यदि स्वरस न मिल सके तो इनको आठगुने जलमें डालके चतुर्थांश शेष काढा लेवे। इसकी स्वरस संज्ञा है। यह एक २ प्रस्थ लेवे। अरूसेका स्वरस १ प्रस्थ भागरेका स्वरस १ प्रस्थ वकरीका दूध १ प्रस्थ ये संपूर्ण रस और दूधको एकत्र करके इसमें घी एक प्रस्थ डाले फिर कल्क करके डालनेकी जो औषधि हैं उनको कहता हूं। जैसे–१ हरड २ वहेडा ३ आँवला ४ पीपल ५ दाख ६ सफेद चन्दन ७ सैंधानिमक ८ गंगेरन ९ काकोली और क्षीरकाकोली (इन दोनों-के अभावमें असगन्ध लेवे) १० मेदाके अभावमें मुलहटी ११ काली मिरच १२ सोंठ १३ खांड १४ सफेद कमल १५ कमल १६ पुनर्नवा (साँठ) १७ हलदी १८ दारुहलदी और १९ मुलहटी ये उन्नीस औषध प्रत्येक कर्ष २ लेवे। कल्क करके इसको १ प्रस्थ घीमें मिलाय मन्दाग्निपर घीको सिद्ध करे। जब तैयार हो जावे तब उतारके छान लेवे इसको त्रिफलाघृत कहते हैं। इस घृतके सेवन करनेसे रतोंध, तथा नोलाकेसे नेत्र चमके उसको नकुलान्ध्य कहते हैं, नेत्रोंकी खुजली, पिल्लरोग, नेत्रोंके जलका गिरना, नेत्रोंके पटलमें तिमिररोग होता है वह, मोति-याबिन्दु नेत्ररोगका भेद, अजक रोग ये संपूर्ण दूर होवें। इसके सिवाय और जो छोटे वडे नेत्रोंके रोग वे भी दूर हों। यह घृत नाकमें डालनेके भी उपयोगी है।

मतांतरसे लिखते हैं कि, त्रिफलाका रस १ प्रस्थ और भागरेका रस १ प्रस्थ अडूसेका रस १ प्रस्थ सतावरका रस १ प्रस्थ वकरीका दूध १ प्रस्थ गिलोयका रस १ प्रस्थ आवलोंका रस १ प्रस्थ इन सब रसोंको एकत्रकर घी १ प्रस्थ डालके पक्व करे। यह वंगसेन ग्रन्थमें लिखा है। यहभी पूर्वोक्त नेत्र रोगोंपर देवे।

गौर्याद्यघृत व्रणादिकोंपर ।

हरिद्रेस्थिरेमूर्वासारिवाचंदनद्वयैः ॥ मधुपर्णीचमधुकंपद्मके-सरपद्मकैः ॥ ६९ ॥ उत्पलोशीरमेदाभिस्त्रिफलापंचवल्कलैः॥ कल्कैःकर्षमितैरेतैर्घृतप्रस्थंविपाचयेत् ॥ ७० ॥ विसर्पलूता-विस्फोटविषकीटव्रणापहम् ॥ गौर्याद्यमितिविख्यातंसर्पिर्विष-हरंपरम् ॥ ७१ ॥

अर्थ—१ हल्दी २ दारुहल्दी ३ शालपर्णी ४ मूर्वा ५ सारिवा ६ सफेदचन्दन ७ लालचदन ८ मापपर्णी ९ मुलहटी १० कमलके भीतरकी केशर ११ पद्माख १२ कमल १३ खस १४ मेदाके अभावमें मुलहटी १५ हरड १६ वहेडा १७ ऑमला १८ वडकी छाल १९ गूलरकी छाल २० पीपरकी छाल २१ पापरीकी छाल और २२ वेत ये बाईस औषध प्रत्येक एक २ कर्ष लेवे सबका कल्क करके इसका चौगुना इसमें जल मिलावे । फिर इसमें १ प्रस्थ घी डालके घी शेष रहने पर्यंत पचन करे । जब सिद्ध होजावे तब उतारके घीको छान लेय । इस घृतके सेवन करनेसे विसर्परोग, लूता, विस्फोटक, विषदोष, क्षुद्र कुष्ठ, व्रण ये रोग दूर होवें । इस घृतके सेवनसे प्राय. विषबाधा दूर होती है ।

मयूरघृत शिरोरोगादिकोंपर ।

बलामधुकरास्नाभिर्दशमूलफलत्रिकैः ॥ पृथग्द्विपलिकैरेभि-र्द्रोणनीरेणपाचयेत् ॥ ७२ ॥ मयूरंपक्षपित्तांत्रयकृत्पादास्य-वर्जितम् ॥ पादशेषंश्रृतंनीत्वाक्षीरंदत्त्वाचतत्समम् ॥ ७३ ॥ घृतप्रस्थंपचेत्सम्यग्जीवनीयैःपिचून्मितैः ॥ तत्सिद्धंशिरसः पीडांमन्याग्रीवाग्रहंतथा ॥ ७४ ॥ अर्दितंकर्णनासाक्षिजिह्वा-गलरुजोजयेत् ॥ पानेनस्येतथाभ्यंगेकर्णपूरेषुयुज्यते ॥७५॥ हेमन्तकालशिशिरवसंतेषुचशस्यते ॥

अर्थ—१ गगेरनकी छाल २ मुलहटी ३ रास्ना १० मूलोकी जड ३ त्रिफला इस प्रकार सब मिलायके १६ औषध दो दो पल लेकर जवकूट करके एक द्रोण जलमे डाल देवे । फिर एक मोरको मारके उसके पख दूर करके कलेजेमे पित्त होता है वह आँतडे और दहनी तरफ जो यकृत् (कलेजा) पैर और मुख ये सब दूर करके उस मोरका शुद्ध मास लेवे । तथा दूध काढेके समान

ले घी १ प्रस्थ ले एवं जीवनीयगणकी औषधियोका कल्क करके उसमें डाल देय। फिर घृतमात्र शेप रहे इस प्रकार मंदाग्निपर पचन कर उतारके छान लेवे। पीनेमे, नाकमें डालनेके विपयमे, देहमे लगाने और कानमे डालनेमे इनमे रोगका तारतम्य देखकर इसकी योजना करे इसका सेवन हेमत कालमे शिशिर कालमें तथा वसन्त कालमे करे तो मस्तककी पीडा दूर होय। गर्दन और गला इनका स्तभ तथा मुख टेढा होजावे ऐसी आर्दित वायु, कर्णशूल, नाक, नेत्र, जीभ और गला इनकी पीडाको दूर करे। इसे 'मयूरघृत' कहते हैं।

फलघृत वंध्यारोगपर।

त्रिफलामधुकंकुष्ठंद्वेनिशेकटुरोहिणी ॥ ७६ ॥ विडंगंपिप्पली मुस्ताविशालाकट्फलंवचा ॥ द्वेमेदेद्वेचकाकोल्यौसारिवेद्वेप्रियंगुका॥७७॥ शतपुष्पाहिंगुरास्नाचंदनंरक्तचंदनम्॥जातीपुष्पं तुगाक्षीरीकमलंशर्करातथा ॥७८॥ अजमोदाचदन्तीचकल्कैरेतैश्चकार्षिकैः॥जीवद्वत्सैकवर्णायाघृतप्रस्थंचगोःक्षिपेत्॥७९॥ चतुर्गुणेनपयसापचेदारण्यगोमयैः ॥ सुतिथौपुष्यनक्षत्रेमृद्भांडेताम्रजेतथा ॥८०॥ ततःपिबेच्छुभदिनेनारीवापुरुषोऽथवा ॥ एतत्सर्पिर्नरःपीत्वास्त्रीषुनित्यंवृषायते ॥ ८१ ॥ पुत्रानुत्पादयेद्धीमान्वंध्यापिलभतेसुतम् ॥ अनायुषंयाजनयेद्याचसूता पुनःस्थिता ॥ ८२ ॥ पुत्रंप्राप्नोतिसानारीबुद्धिमंतंशतायुषम् ॥ एतत्फलघृतंनामभारद्वाजेनभाषितम् ॥ ८३ ॥ अनुक्तंलक्ष्मणामूलंक्षिपेत्तत्रचिकित्सकः ॥

अर्थ—१ हरड २ बहेडा ३ आँवला ४ मुलहटी ५ कूठ ६ हल्दी ७ दारुहल्दी ८ कुटकी ९ वायविडग १० पीपल ११ नागरमोथा १२ इन्द्रायणकी जड १३ कायफल १४ वच १५ मेदा और महामेदा (इन दोनोके अभावमे मुलहटी) १६ कालोली और क्षीरकाकोली इन दोनोके अभावमें (असगध) १७ सफेद सारीवा १८ काली सारीवा १९ फूलप्रियंगु २० सौंफ २१ भुनीहीग २२ रास्ना २३ सफेदचन्दन २४ लालचन्दन २५ जावित्री २६ वशलोचन २७ कमल २८ खाँड २९ अजमोदा ३० दन्ती ये तीस औपध एक एक कर्ष प्रमाण लेवे। सबका कल्ककर जिसके बछडा होवे तथा एकवर्णवाली गौका घी एक प्रस्थ लेवे, उसमें उस कल्कको मिलावे और कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते घीसे चौगुना गौका

दूध डाले । फिर सबको एक ताँबेके पात्रमे भरके अथवा मिट्टीके बासनमें भरके जिसदिन पुष्यनक्षत्र होवे अथवा शुभदिन होय उस दिन आरने उपलोकी मद २ अग्नि देवे जब घृत शेष रहे तब उतारके छान लेवे इसको फलघृत कहते हैं यह घृत भारद्वाज ऋषिने कहा है इसको उत्तम दिनमे पुरुषोंको अथवा स्त्रियोंको देवे पुरुषोंको देनसे उनका काम बढकर स्त्रीकेसाथ नित्य रमणकरे उसके पुत्र बुद्धिमान् होवे बाँझ स्त्री इसका सेवनकरे तो पुत्र प्रगटकरे जिस स्त्रीके बालक होकर मरजावे ऐसी स्त्रीके इसके सेवन करनेसे जो बालक होवे वह सौ वर्ष जीवे तथा बुद्धिमान् होय इस घृतमें जो लक्ष्मणामूल कहा नहीं है परंतु ये गर्भदाता है इसवास्ते इसकोभी डाले (कई सफेद कटेलीको लक्ष्मणा कहते है) ।

पंचतिक्तघृत विषमज्वरादिकोंपर ।

वृषनिंबामृताव्याघ्रीपटोलानांशृतेनच ॥ ८४ ॥
कल्केनपक्वं सर्पिस्तुनिहन्याद्विषमज्वरान् ॥
पांडुंकुष्ठंविसर्पंचकृमीनर्शांसि नाशयेत् ॥ ८५ ॥

अर्थ—१ अडूसा २ नीमके पत्ते ३ गिलोय ४ कटेरी और ५ पटोलपत्र इन पाच औषधोंका क्वाथकर उसके चौगुना घी लेवे उसमे उसीके कल्कको मिलावे फिर भट्टीपर चढायके मन्दमन्द अग्निसे घृत सिद्ध करे । फिर इसको छानके धरलेवे इसके सेवन करनेसे विषमज्वर, पाडुरोग, कोढ, विसर्प, कृमिरोग और बवासीर ये सब रोग दूर होवें ।

लघुफलघृत योनिरोगपर ।

सहाचरेद्वेत्रिफलांगुडूचींसपुनर्नवाम् ॥ शुकनासांहरिद्रेद्वेरास्नां मेदांशतावरीम् ॥ ८६ ॥ कल्कीकृत्यघृतप्रस्थंपचेत्क्षीरेचतुर्गुणे ॥ तत्सिद्धंपाययेन्नारींयोनिशूलनिपीडिताम् ॥८७॥ पीडिताचलितायाचानिःसृताविवृताचया ॥ पित्तयोनिश्चविभ्रांता षंढयोनिश्चयास्मृता ॥ ८८ ॥ प्रपद्यंतेहिताःस्थानंगर्भंगृह्णंति चासकृत् ॥ एतत्फलघृतंनामयोनिदोषहरंपरम् ॥ ८९ ॥

अर्थ—१ पियावाँसा २ कालेफूलका पियावाँसा ३ हरड ४ बहेडा ५ आमला ६ गिलोय ७ पुनर्नवा ८ टेंटू ९ हलदी १० दारुहलदी ११ रास्ना १२ मेदाके अभावमें मुलहटी तथा १३ सतावर इन तेरह औषधोंका कल्ककर एकप्रस्थ प्रमाण घी लेवे । उसमें पूर्वोक्त कल्क मिलावे । गौका दूध घीसे चौगुना लेय तथा कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते घीसे चौगुना जल मिलावे । फिर

चूल्हेपर चढाय मन्द २ अग्नि देवे जब सब वस्तु जलके केवल घृतमात्र शेष रहे तब उतारके छानलेवे। इसको जिस स्त्रीके योनिशूल है उसको देवे। मैथुनादिक करके जिसकी योनि पीडित है, जिस स्त्रीकी योनि चलकर पुष्पस्थान भ्रष्टहुई, तथा योनिका मुख बडा होगयाहो उसको देवे। पित्तयोनि विभ्रांतयोनि तथा षंढयोनि (जो गर्भधारण न करे) ऐसी स्त्रीको यह घृत देनेसे संपूर्ण योनिके रोग दूर होकर योनि टिकानेपर आवे और गर्भ धारण करे। इस घृतको लघुफलघृत कहते हैं। यह घृत योनिके दोष हरणकरनेमें श्रेष्ठ है।

अथ तैलसाधनप्रकारो लिख्यते लाक्षादितैल।

लाक्षाढकंक्वाथयित्वाजलस्यचतुराढकैः॥ चतुर्थांशंशृतंनीत्वा तैलप्रस्थंविनिक्षिपेत्॥ १० ॥ मस्त्वाढकंचगोदध्नस्तत्रैवावि-नियोजयेत्॥ शतपुष्पामश्वगंधांहरिद्रांदेवदारुच॥ ११ ॥ कटुकींरेणुकांमूर्वांकुष्ठंचमधुयष्टिकाम्॥ चंदनंमुस्तकंरास्नां पृथक्कर्षप्रमाणतः॥ १२ ॥ चूर्णयेत्तत्रनिक्षिप्यसाधयेन्मृदुव-ह्निना॥ अस्याभ्यंगात्प्रशाम्यंतिसर्वेऽपिविषमज्वराः॥ १३॥ कासश्वासप्रतिश्यायत्रिकपृष्ठग्रहास्तथा॥ वातंपित्तमपस्मा-रमुन्मादंयक्षराक्षसान्॥ १४ ॥ कंडूंशूलंचदौर्गंध्यंगात्राणां स्फुरणंजयेत्॥पुष्टगर्भाभवेदस्यगर्भिण्यभ्यंगतोभृशम्॥१५॥

अर्थ–बेरकी अथवा कूडाकी लाख १ आढक लेके उसमें जल चार आढक डालके औटावे। जब सेरभर जल रहे तब उतारके छान लेवे। इसमें तिलीका तेल १ प्रस्थ डाले तथा दहीका तोड एक आढक मिलावे। फिर चूर्णकरके डालनेकी औषध इस प्रकार डाले–१ सौंफ २ असगंध ३ हल्दी ४ देवदारु ५ कुटकी ६ रेणुकाबीज ७ मूर्वा ८ कूठ ९ मुलहटी १० सफेद-चंदन ११ नागरमोथा और १२ रास्ना ये बारह औषध एक एक कर्ष लेवे। सबका चूर्णकरके उस तेलमें डालके मंदाग्निसे पचन करावे जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके तेलको छान लेवे। इसको देहमें मालिस करनेसे संपूर्ण विषमज्वर, खाँसी, श्वास, पीनस, कमरका तथा पीठका शूल, वादीका कोप, पित्तका कोप, मृगी, उन्मादरोग, क्षयरोग, राक्षसादिककी पीडा, खुजली, देहमें दुर्गंधका आना, शूल, अंगस्फुरण ये संपूर्ण रोग दूर होंय। गर्भवती स्त्री भी इसे मर्दन करसकती है इससे गर्भ पुष्ट होता है।

अंगारतैल सर्वज्वरपर ।

मूर्वालाक्षाहरिद्रेद्वेमंजिष्ठासेंद्रवारुणी ॥ बृहतीसैंधवंकुष्ठंरास्ना मांसीशतावरी॥९६॥आरनालाढकेतत्रतैलप्रस्थंविपाचयेत् ॥ तैलमंगारकंनामसर्वज्वरविमोक्षणम् ॥ ९७ ॥

अर्थ—१ मूर्वा २ लाख ३ हल्दी ४ दारुहल्दी ५ मजीठ ६ इन्द्रायणकी जड ७ कटेरी ८ सैंधानमक ९ कूठ १० राला ११ जटामासी और १२ शतावर ये बारह औषधि समान भाग अर्थात् एक एक कर्ष प्रमाण लेवे सबका चूर्ण करे चार सेर काँजी तथा एक प्रस्थ तिलका तेल इनमे पूर्वोक्त चूर्णको मिलायके औटावे जब तेलमात्र शेष रहे तब उतार ले इस तेलको अगारतैल कहते हैं इसको मालिश करनेसे सर्वज्वर दूर होवे ।

नारायणतैल सर्ववातपर ।

अश्वगंधाबलाबिल्वंपाटलाबृहतीद्वयम् ॥ श्वदंष्ट्रातिबलेनिंबं स्योनाकंचपुनर्नवाम् ॥ ९८ ॥ प्रसारिणीमग्निमंथंकुर्याद्दश-पलंपृथक् ॥ चतुर्द्रोणेजलेपक्त्वापादशेषंशृतंनयेत् ॥ ९९ ॥ तैलाढकेनसंयोज्यशतावर्यारसाढकम् ॥ क्षिपेत्तत्रचगोक्षीरं तैलात्तस्माच्चतुर्गुणम् ॥१००॥ शनैर्विपाचयेदेभिःकल्कैर्द्विप-लिकैःपृथक् ॥ कुष्ठैलाचंदनंमूर्वावचामांसीससैंधवैः ॥१०१॥ अश्वगंधाबलारास्नाशतपुष्पेंद्रदारुभिः ॥ पर्णीचतुष्टयेनैवत-गरेणैवसाधयेत् ॥ १०२ ॥ तत्तैलंनावनेऽभ्यंगेपानेबस्तौच-याजयेत् ॥ पक्षाघातंहनुस्तंभंमन्यास्तंभंकटिग्रहम् ॥१०३॥ खल्लत्वंबधिरत्वंचगतिभंगंगलग्रहम् ॥ गात्रशोषेंद्रियध्वंसाव-सृक्छुक्रज्वरक्षयान् ॥ १०४ ॥ अंडवृद्धिंकुरंडंचदंतरोगांशिरो-ग्रहम् ॥ पार्श्वशूलंचपांगुल्यंबुद्धिहानिंचगृध्रसीम् ॥ १०५ ॥ अन्यांश्चविषमान्वाताञ्जयेत्सर्वांगसंश्रयान् ॥ अस्यप्रभावा-द्वंध्यापिनारीपुत्रंप्रसूयते ॥१०६॥ मर्त्योगजोवातुरगस्तैला-भ्यंगात्सुखीभवेत् ॥ यथानारायणोदेवोदुष्टदैत्यविनाशनः ॥ १०७ ॥ तथैववातरोगाणांनाशनंतैलमुत्तमम् ॥

अर्थ—१ असगंध २ गंगेरनकी छाल ३ बेलगिरी ४ पाठ ५ कटेरी ६ बडी कटेरी

७ गोखरू ८ प्रतिविला ९ नीमकी छाल १० टेंटू ११ पुनर्नवा १२ प्रसारणी और १३ अरनी ये तेरह औषध दश २ पल लेवे। इनको जवकूटकरके चार द्रोण जलमें डालके काढा करे। जब चतुर्थांश रहे तब उतारके काढेको छान लेवे। इसमें तिलीका तेल १ आढक डाले। शतावरीका रस १ आढक तथा गौका दूध ४ आढक ले उस तेलमे मिलायदेवे। आगे कल्ककरके डालनेकी औषध लिखते हैं जैसे—१ कूठ २ इलायची ३ सफेद चंदन ४ मूर्वा ५ वच ६ जटामासी ७ सेंधानिमक ८ असगंध ९ गंगेरनकी छाल १० रास्ना ११ सौंफ १२ देवदारु १३ सालपर्णी १४ पृष्टपर्णी १५ माषपर्णी १६ मुद्गपर्णी और १७ तगर ये सब सतरह औषध दो दो पल लेवे। सबका कल्क करके उस तेलमें मिलाय देवे। फिर इस तेलको चूल्हेपर चढाय मंद मंद अग्निपर रखके परिपाक करे। जब तेलमात्र आयरहे तब उतारके छान लेवे। इस तेलको नारायणतेल कहते हैं। इस तेलको नाकमें डालना, देहमें लगाना, पीना तथा बस्तिकर्म विषयमें योजना करे। इस तेलसे पक्षाघात कहिये अर्धांगवायु, हनुस्तंभ, मन्यास्तंभ, कटिग्रहवायु, खल्ली[1], बहरापन, पैरोंकी वायु, गलग्रह, कमरकी वायु, हाथ पैर आदि गात्रोंका शोषणकर्ता वायु, चक्षुरादिइन्द्रियोंका नाशकर्ता वायु, रुधिरविकार, धातुक्षयरोग, अंत्रवृद्धि, कुरंड (जिससे अंडकोश बढजावे), दंतरोग, मस्तकका वायु, पार्श्वशूल जिससे पँगुरापना होय वह वायु, बुद्धिभ्रंश और कमरसे लेकर पैर पर्यन्त गृध्रसी इन नामकी वायु होती हैं वह ये संपूर्ण वादीके विकार दूर हों। तथा इसके सिवाय दूसरे विषमवायु छोटे बडे सर्वांगमें अथवा अर्द्धांगमे जो हो वेभी दूर होंय। इस तेलके प्रभावसे वंध्या स्त्रियोंके पुत्र होय। यह तेल अंगमें लगानेसे मनुष्योंको सुख होता है, हाथीके तथा घोडोंके अंगमें लगानेसे उनकेभी वादीके रोग दूर होते हैं। इसमें दृष्टांत है कि जैसे नारायण दैत्योंका नाश करते हैं उसी प्रकार यह नारायणतेल संपूर्ण वातरोगोंका नाश करता है।

वारुण्यादितैल कंपवायुपर।

वारुण्याह्यौत्तरंमूलंकुट्टितंतुपलत्रयम् ॥ १०८ ॥ पलद्वादशकेतैलंक्षणंवह्नौविपाचितम् ॥ निष्कत्रयंभक्तयुतंसेवेतास्माद्विनश्यति ॥ १०९ ॥ हस्तकंपःशिरःकंपःकंपोमन्याशिराभवः ॥

अर्थ—इन्द्रायणकी उत्तर दिशाके तरफ होनेवाली जड ३ पल ले जवकूटकरके कल्ककरले फिर बारह पल तिलोंके तेलमें इस कल्कको मिलाय औटावे। जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे यह तेल (बलाबलविचारके) तोले तोले भातके साथ खाय तो हस्तकंप शिरःकंप गरदनका हिलना इत्यादिक वातरोग दूर हों।

---

१ जिस वातमे पैर पिंडरी जाँघ और पहुंचा मुरजावे उसको खल्लीवात कहते हैं।

बलातैल वातादिकोंपर ।

बलामूलकषायेणदशमूलश्रृतेनच ॥ ११० ॥ कुलत्थयवकोलानांकाथेनपयसातथा ॥ अष्टाष्टभागयुक्तेनभागमेकंचतैलकम् ॥ १११ ॥ गणेनजीवनीयेनशतावर्य्यैंद्रवारुणा ॥ मंजिष्ठा कुष्ठशैलेयतगरागरुसैंधवैः ॥ ११२ ॥ वचापुनर्नवामांसीसारिवाद्वयपत्रकैः॥शतपुष्पाश्वगंधाभ्यामेलयाचविपाचयेत्॥११३॥ गर्भार्थिनीनांनारीणांपुंसांचक्षीणरेतसाम्॥व्यायामक्षीणगात्राणां सूतिकानांचयुज्यते ॥ ११४ ॥ राजयोग्यमिदंतैलंसुखिनांच विशेषतः ॥ बलातैलमितिख्यातंसर्ववातामयापहम् ॥११५॥

अर्थ—खरेंटीकी जड ८ प्रस्थ ले उसमें जल बत्तीस प्रस्थ डाले । फिर चूल्हेपर चढाके चौथाई शेष रहे इस प्रकार काढा करे । इसको छानके धर देवे । तथा दश मूलकी दश औषधोंको मिलायके आठ प्रस्थ लेय उनमें ३२ प्रस्थ जल डालके काढा करे जब चौथाई रहे तब उतारके छान लेवे तथा १ कुलथी २ जौ और ३ बेरके भीतरका बीज ये तीन औषध पृथक् २ आठ २ प्रस्थ लेके बत्तीस २ प्रस्थ जल डालके चतुर्थावशेष काढा करे और पृथक् २ छानके धर लेवे फिर इन पाचों काढोंको मिलाय इसमें गौका दूध आठ प्रस्थ डाले और तिलीका तेल एक प्रस्थ मिलावे । फिर चूर्ण करके डालनेकी औषध इस प्रकार ले । जैसे ७ जीवनीयगणकी औषध सात, ८ सतावर ९ देवदारु १० मजीठ ११ कूठ १२ पत्थरका फूल १३ तगर १४ अगर १५ सैंधानमक १६ वच १७ पुनर्नवा १८ जटामासी १९ सफेद सारिवा २० काली सारिवा २१ पत्रज २२ सौंफ २३ असगध और २४ इलायची ये चौबीस औषध तेलके चतुर्थांश लेकर कल्क करके उस तेलमें डाल देवे । फिर अग्निपर चढायके तेल शेष रहनेपर्यंत औटावे । फिर इसको छान लेवे इसको बलातेल कहते हैं । यह तेल जिस स्त्रीके गर्भकी इच्छा है उसके देहमें लगावे । तथा जिस पुरुषकी धातु क्षीण है उसके तथा बहुत दूर जाने आनेके परिश्रम करके क्षीण है देह जिसका उसके तथा प्रसूता स्त्रियोंके लगावे । यह तेल विशेष करके राजाओं और सुखी मनुष्य सेठसाहूकारोंके योग्य है । इससे सपूर्ण बादीके विकार दूर होते हैं ।

प्रसारिणीतैल वातकफजन्यविकार तथा बादीपर ।

प्रसारिणीपलशतंजलद्रोणेनपाचयेत् ॥ पादशिष्टःश्रृतोग्राह्यस्तैलंदधिचतत्समम् ॥ ११६ ॥ कांजिकंचसमंतैलात्क्षीरंतै-

लाच्चतुर्गुणम् ॥ तैलात्तथाष्टमांशेनसर्वकल्कांश्चयोजयेत्॥११७॥ मधुकंपिप्पलीमूलंचित्रकःसैंधवंवचा ॥ प्रसारिणीदेवदारुरा-स्नाचगजपिप्पली ॥ ११८ ॥ भल्लातःशतपुष्पाचमांसीचैभि-र्विपाचयेत् ॥ एतत्तैलंवरंपक्वंवातश्लेष्मामयाञ्जयेत् ॥११९॥ कौब्जखंजत्वपंगुत्वगृध्रसीमर्दितंतथा ॥ हनुपृष्ठशिरोग्रीवाक-टिस्तंभंचनाशयेत् ॥ १२० ॥ अन्यांश्चविषमान्वातान्सर्वा-नाशुव्यपोहति ॥

अर्थ—प्रसारिणी औषध १०० पल ले उसमें १ द्रोण जल डालके काढा करे । जब चौथाई जल रहे तब उतारके छान लेय । इसमें तेल दही और काँजी ये काढेके समान पृथक् २ लेके मिलावे । फिर तेलसे चौगुना गौका दूध डाले तथा कल्क करके डालनेकी औषधि इस प्रकार लेनी जैसे १ मुलहटी २ पीपरामूल ३ चीतेकी छाल ४ सैंधानमक ५ वच ६ प्रसारणी ७ देवदारु ८ रास्ना ९ गजपीपल १० भिलाए ११ सौंफ और १२ जटामासी ये बारह औषध तेलके अष्टमांश ले । कल्क करके तेलमें मिलाय देवे । फिर अग्निपर चढायके तेलमात्र शेष रक्खे इसको छानके धर ले इसको देहमे मालिश करे तो वात कफके विकार, जिससे मनुष्य कुबडा होता है वह वायु, खंजवायु, जिससे मनुष्य पागुला होय सो पंगवायु, गृध्रसी वायु, हनु (ठोडी) पृष्ट (पीठ), शिर, गरदन और कमर इनका जकडना ये सब वायु दूर होवें । इसके सिवाय दूसरे विषम वायु जो छोटे बडे है वे इस तेलके लगानेसे दूर होवे ।

माषादितैल ग्रीवास्तंभादिकोंपर।

माषायवातसीक्षुद्रामर्कटीचकुरंटकः॥१२१॥ गोकंटष्टुंटुकश्चै-षांकुर्यात्सप्तपलंपृथक् ॥ चतुर्गुणांबुनापक्त्वापादशेषंशृतंन-येत् ॥ १२२ ॥ कार्पासास्थीनिबदरंशणबीजंकुलत्थकम् ॥ पृथक्चतुर्दशपलंचतुर्द्रोणजलेपचेत् ॥ चतुर्थांशावशिष्टंचगृ-ह्णीयात्क्वाथमुत्तमम् ॥१२३ ॥ प्रस्थैकंछागमांसस्यचतुःषष्टि-पलेजले ॥ निक्षिप्यपाचयेद्धीमान्पादशेषंरसंनयेत् ॥१२४ ॥ तैलप्रस्थेततःक्वाथान्सर्वानेतान्विनिक्षिपेत् ॥ कल्कैरेभिश्चवि-पचेदमृताकुष्टनागरैः ॥ १२५ ॥ रास्नापुनर्नवैरंडैःपिप्पल्या शतपुष्पया ॥ बलाप्रसारिणीभ्यांचमांस्याकटुकयातथा॥१२६॥

पृथगर्धपलैरेतैःसाधयेन्मृदुवह्निना ॥ हन्यात्तैलमिदं शीघ्रं ग्रीवास्तंभापबाहुकौ ॥१२७॥ अर्धांगशोषमाक्षेपमूरुस्तंभाप-तानकौ ॥ शाखाकंपंशिरःकंपंविश्वाचीमर्दितंतथा ॥ १२८ ॥ माषादिकमिदंतैलंसर्ववातविकारनुत् ॥

अर्थ—१उडद २ जव ३ अलसीके बीज ४ कटेरी ५ कौंचके बीज ६ पियावासा ७ गोखरू और ८ टेंटू ये आठ औषध सात २ पल लेवे । सबको जवकूटकर सब औषधोंमें चौगुना जल डालके औटावे । जब चौथाई शेष रहे तब उतारके छान लेवे । १ कपासके बिनौले २ बेरकी गुँठली ३ सनके बीज ४ कुलथी ये चार औषध चौदह २ पल लेवे । इनमें चौगुना जल मिलायके चौथाई जल रहने पर्यंत काढा करे । फिर छानके इसको धर लेवे । पश्चात् बकरेका मास १ प्रस्थ ले उसमे चौसठ पल जल डालके औटावे । जब चौथाई रहे तब उतारके छान लेय । फिर तिल्लीका तेल १ प्रस्थ ले और पूर्वोक्त सपूर्ण काढेको एकत्र करके उसमें तेलको मिलाय देवे । इसमें कल्क करके डालनेकी औषध इस प्रकार लेनी—१ गिलोय २ कूठ ३ सोंठ ४ रास्ना ५ पुनर्नवा ६ अडसी जड ७ पीपल ८ सोफ ९ खरेटीकी छाल १० प्रसारणी ११ जटामासी १२ कुटकी ये बारह औषध आधे २ पल लेय सबका कल्क करके तेलमें मिलाय देवे फिर इसको चूल्हेपर चढाय मदाग्निसे पचन करे । जब तेल मात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे । इसको माषादि तेल कहते हैं । यह तेल देहमे लगानेसे ग्रीवास्तभ वायु, अपबाहुकवायु, अर्धांग वायु, आक्षेपक वायु, ऊरुस्तंभ वायु, अपतानक वायु, हस्तपादादि शाखाओंको कंपाने-वाला वायु, मस्तक कपानेवाला वायु, विश्वाची वायु, अर्दित वायु, ये सपूर्ण दूर होवें ।

शतावरी तैल शूलादि वाय्वादिकोंपर ।

शतावरीबलायुग्मंपर्ण्यौगंधर्वहस्तकः ॥ १२९ ॥ अश्वगंधाश्व-दंष्ट्राचबिल्वःकाशःकुरंटकः ॥ एषांसार्धपलान्भागान्कल्पयेच्च विपाचयेत् ॥ १३० ॥ चतुर्गुणेननीरेणपादशेषंशृतंनयेत् ॥ नियोज्यतैलप्रस्थेचक्षीरप्रस्थंविनिक्षिपेत् ॥१३१॥ शतावरी-रसप्रस्थंजलप्रस्थंचयोजयेत् ॥ शतावरीदेवदारुमांसीतगरचं-दनम् ॥ १३२ ॥ शतपुष्पाबलाकुष्ठमेलाशैलेयमुत्पलम् ॥ ऋद्धिर्मेदाचमधुकंकाकोलीजीवकस्तथा ॥ १३३ ॥ एषांकर्ष-समैःकल्कैस्तैलंगोमयवह्निना ॥ पचेत्तेनैवतैलेनस्त्रीषुनित्यं

वृषायते ॥ १३४ ॥ नारीचलभतेपुत्रंयोनिशूलंचनश्यति ॥ अंगशूलंशिरःशूलंकामलांपांडुतांगरम् ॥ १३५ ॥ गृध्रसींप्लीहशोषांश्चमेहान्दंडापतानकम् ॥ सदाहंवातरक्तंचवातपित्तगदार्दितम् ॥ १३६ ॥ असृग्दरंतथाध्मानंरक्तपित्तंचनश्यति ॥ शतावरीतैलमिदंकृष्णात्रेयेणभाषितम् ॥ १३७ ॥ नारायणायस्वाहा ॥ उत्तराभिमुखोभूत्वाखनेत्खदिरशंकुना ॥ सर्वव्याधिविनाशनीयेस्वाहाइतिउत्पाटनमंत्रः ॥ कुमारजीवनीयेस्वाहा ॥ इति पाचनमंत्रः ॥

अर्थ–१ शतावर २ खरेटीकी जड ३ गंगेरन ४ शालपर्णी ५ पृष्टपर्णी ६ अडकी जड ७ असगंध ८ गोखरू ९ वेलकी जड १० कांसकी जड ११ पियावासा ये ग्यारह औषध डेढ २ पल लेवे उनमें चौगुनाजल डालके औटावे जब चौथाई जल रहे तब उतारके छान लेवे। इसमें तिलका तेल १ प्रस्थ, गौका दूध १ प्रस्थ, शतावरका रस १ प्रस्थ और जल १ प्रस्थ सबको मिलायके एकत्र करे। इसमें कल्क करके डालनेकी औषधि लिखता हूं–१ शतावर २ देवदारु ३ जटामासी ४ तगर ५ सफेद चदन ६ सोफ ७ खरेटीकी जड ८ कूट ९ इलायची १० पत्थरका फूल ११ कमल १२ ऋद्धिके अभावमें वाराहीकंद १३ मेदाके अभावमें मुलहटी १४ मुलहटी १५ काकोलीके अभावमे असगंध १६ जीवकके अभावमें विदारीकंद ये सोलह औषधि एक २ कर्ष ले सबका कल्क करके उस तेलमे डालके गौके आरने उपलोकी मदाग्निसे तेलको सिद्ध करे। जब तेल मात्र रहे तब उतारके छान लेवे इसको शतावरी तेल कहते हैं यह तेल कृष्णात्रेय ऋषिने कहा है। इसको मालिस करनेसे पुरुष स्त्रियोको नित्य अत्यंत प्रीतिके साथ भोगे तथा स्त्रियोंके देहमे लगानेसे पुत्रकी प्राप्ति होय, योनिशूल, अंगशूल, मस्तकशूल, कामला, पांडुरोग, विषबाधा, गृध्रसीरोग, तिल्ली, शोष, प्रमेह, दडापतानक, वायु, दाहयुक्त वातरक्त तथा वातपित्तज्वर करके स्त्रियोंको प्रदर होता है सो, पेटका फूलना और रक्तपित्त ये सपूर्ण रोग दूर हों। अब वनमेंसे शतावर लानेका प्रकार कहते हैं कि,–(नारायणाय स्वाहा) इस प्रकार कहके और नमस्कार कर उत्तरकी तरफ मुख करके खैरकी कीलके समान लकडीसे शतावरको खोद। तथा (सर्वव्याधिनाशिनीये स्वाहा) इस प्रकार कहके और नमस्कार करके उसको उखाडे तथा (कुमारीजीवनीये स्वाहा) ऐसे कहके और नमस्कार करके इसका पाककरे। इतिशतावरी तैलम्।

कासीसादितैल बवासीरपर।

कासीसंलांगलीकुष्ठंशुंठीकृष्णाचसैंधवम्॥१३८॥मनःशिला

क्ष्मारश्वविडंगंचित्रकोवृषः ॥ दंतीकोशातकीबीजहेमाह्वाहरि-
तालकाः ॥१३९॥ कल्कैःकर्षमितैरेतैस्तैलप्रस्थंविपाचयेत् ॥
सुधार्कपयसीदद्यात्पृथग्द्विपलसंमिते ॥ १४० ॥ चतुर्गुणंग-
वांमूत्रंदत्त्वासम्यक्प्रसाधयेत् ॥ कथितंखरनादेनतैलमर्शोवि-
नाशनम् ॥१४१॥ क्षारवत्पातयत्येतदर्शांस्यभ्यंगतोभृशम् ॥
वलीर्नदूषयत्येतत्क्षारकर्मकरंस्मृतम् ॥ १४२ ॥

अर्थ–१ हीराकसीस २ कल्यारी ३ कूठ ४ सोंठ ५ पीपल ६ सैंधानमक ७ मनासिल ८ सफेद कनेर ९ वायविडिंग १० चीतेकी छाल ११ अडूसा १२ दंती १३ कडुईतोरईके बीज १४ चौक और १५ हरताल ये १५ औषध एकएक कर्षभर ले सबका कल्क करके तिलके १ प्रस्थ तेलमें मिलाय देवे । थूहरका दूध तथा आकका दूध ये दोनो दो दो पल ले सबको तेलमें मिलाय देवे और तेलसे चौगुना गौका मूत्र ले इसको भी तेलमे मिलाय अग्निपर चढायके पाक करे । जब तेल मात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे यह तेल खरनादऋषिने कहाहै यह बवासीरके मस्सोंपर क्षार लगानेके समान लगावे । इसके लेपसे गुदाके भीतरके मस्से बिना उपद्रवके जडसे उखडके गिर जावें और यह क्षारके समान गुदाकी वलीनको नहीं बिगाडता ।

पिंडतेल वातरक्तपर ।

मंजिष्ठासारिवासर्जयष्टीसिक्थैःपलोन्मितैः ॥
पिंडाख्यंसाधयेत्तैलमैरंडंवातरक्तनुत् ॥ १४३ ॥

अर्थ–१ मजीठ २ सारिवा ३ रार ४ मुलहटी ५ मोम इन औषधोंको एक २ पल ले कल्क करे चौगुना अंडीका तेल लेकर पूर्वोक्त कल्कको मिलायदे और पाक होनेके वास्ते कल्कसे चौगुना जल डाले । फिर अग्निपर रखके तेल सिद्ध करे तथा इसमे मोम डाले । जब तेल मात्र रहे तब उतारके छानलेवे । यह मल्हम जिस मनुष्यके वातरक्त रोग होय उसके लगाना चाहिये तो वातरक्त रोग दूर होवे ।

अर्कतैल खुजली और फोडाआदिपर ।

अर्कपत्ररसेपक्वंहरिद्राकल्कसंयुतम् ॥
...त्सार्षपंतैलंपामाकच्छूविचर्चिकाम् ॥ १४४ ॥

...चौगुना सरसोंका तेललेवे । उसमें कल्कको

मिलाय तथा तेलसे चौगुना आकके पत्तोंका रस डालके तेलको परिपककरे जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके छानलेवे इसको देहमें लगानेसे खुजली कच्छू दाद पैर फूटकर दरा पडजावे वो और विचर्चिका रोग दूर होय।

मरिचादितैल कुष्ठादिकोंपर।

मरिचंहरितालंचत्रिवृतंरक्तचंदनम् ॥ १४५ ॥ मुस्तंमनःशिलामांसीद्वेनिशेदेवदारुच ॥ विशालाकरवीरंचकुष्ठमर्कपयस्तथा ॥ १४६ ॥ तथैवगोमयरसंकुर्यात्कर्षमितान्पृथक् ॥ विषंचार्धपलंदेयंप्रस्थंचकटुतैलकम् ॥ १४७ ॥ गोमूत्रंद्विगुणंदद्याज्जलंचद्विगुणंभवेत्॥मरिचाद्यमिदंतैलंसिध्मकुष्ठहरंपरम् ॥१४८॥ जयेत्कुष्ठानिसर्वाणिपुंडरीकंविचर्चिकाम् ॥ पामांसिध्मानिरक्तंचकंडूंकच्छूंप्रणाशयेत् ॥ १४९ ॥

अर्थ—१ कालीमिरच २ हरताल ३ निशोथ ४ लालचन्दन ५ नागरमोथा ६ मनसिल ७ जटामांसी ८ हल्दी ९ दारुहल्दी १० देवदारु ११ इन्द्रायनकी जड १२ कनेरकी जड १३ कूठ १४ आकका दूध १५ गौके गोवरका रस ये पंद्रह औषध एक एक कर्ष लेवे, तथा शुद्धकिया हुआ वच्छनागविष आधापल लेवे सबको एकत्रपीस कल्ककरके सरसोंके १ प्रस्थ तेलमें मिलायदे। तथा तेलसे दुगुना गोमूत्र और पानी डालके औटावे। जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे। इसकी देहमें मालिस करनेसे सिध्म कुष्ठ आदि संपूर्ण कुष्ठ दूर हों पुडरीक नामक कुष्ट, विचर्चिका, खुजली, चित्रकुठ, कडू, रक्तकुष्ट और फोडा ये संपूर्ण रोग दूर होवें।

त्रिफलातैल व्रणपर।

त्रिफलारिष्टभूनिंबद्वेनिशेरक्तचंदनम् ॥
एतैःसिद्धमरूंषीणांतैलमभ्यंजनेहितम् ॥ १५० ॥

अर्थ—१ हरड २ बहेडा ३ आँवला ४ नीमके छाल ५ चिरायता ६ हल्दी ७ दारुहल्दी और लाल चंदन इन आठ औषधोंका कल्क करके तथा कल्कसे चौगुना तिलका तेल लेवे इसमें कल्कको डाले। कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते कल्कसे चौगुना जल डालके औटावे। जब केवल तेलमात्र रहे तब उतारके छान लेय जिस मनुष्यके अंगपर बहुत व्रण (फोडे) हों तथा मुंडमें फोडा होवे उसके लगावे तो सर्व व्रण दूर हों।

निंबबीजतैल पलित रोगपर।

भावयेन्निंबबीजानिभृंगराजरसेनहि ॥ तथासनस्यतोयेनतत्तैलं

हन्तिनस्यतः॥१५१॥अकालपलितंसद्यःपुंसांदुग्धान्नभोजिनाम् ॥

अर्थ-नीमके बीजोमे भाँगरेके रसकी पुट दे तथा विजेसारकी छालका रस निकालके पुट देवे फिर उनका यत्रद्वारा तेल निकाल लेवे । इस तेलकी नस्य लेय और पथ्यमें गौका दूध और भात देवे तो जिस मनुष्यके अकालमे सफेद वाल होगएहो वे तत्काल काले भौंराके समान होजावे ।

मधुयष्टीतैल वालआनेपर ।

यष्टीमधुकक्षीराभ्यांनवधात्रीफलैःशृतम् ॥ १५२ ॥
तैलंनस्यकृतंकुर्यात्केशाञ्छ्मश्रूणिसर्वशः ॥

अर्थ—मुलहटी और नवीन गीले ऑवले इन दोनोका कल्क करे तथा कल्कसे चौगुना तिलोंका तेल लेवे । कल्कको मिलायके तेलसे चौगुना गौका दूध तथा कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते तैलसे चौगुना जल डाले । सवको एकत्र कर अग्निपर चढायके पाक करे । जव तेल मात्र रहे तव उतारके तेलको छान ले । इसकी नस्य देनेसे इस प्राणीके मस्तकके तथा मूँछ डाढोंके वाल जो उडगए हैं वह जम जावें ।

करंजादितैल इन्द्रलुप्तपर ।

करंजश्चित्रकोजातीकरवीरश्चपाचितम् ॥ १५३ ॥
तैलसेसिद्धंतहन्यादभ्यंगादिन्द्रलुप्तकम् ॥

अर्थ—१ करजेकी छाल २ चीतेकी छाल ३ चमेलीके पत्ते ४ कनेरकी जड ये चार औपध ले कल्क करे तथा कल्कका चागुना तिल्लीका तेल ले उसमें कल्कको मिलावे और कल्कका उत्तम पाक होनेकेवास्ते तेलसे चौगुना जल डालके औटावे । जव तेल मात्र शेपरहे तव छानके धर रक्खे यह तेल जिस मनुष्यके मस्तकके अथवा डाढी मूँछके वाल जाते रहे (उस रोगको इन्द्रलुप्त कहते हैं उसपर लगानेसे तत्काल बाल जम जावे ।

नीलिकादितैल पलितदारुणआदि रोगोंपर ।

नीलिकाकेतकीकन्दंभृंगराजःकुरंटकः ॥ १५४ ॥ तथार्जुनस्य पुष्पाणिबीजकात्कुसुमान्यपि ॥ कृष्णास्तिलाश्चतगरंसमूलंकमलंतथा ॥ १५५ ॥ अयोरजःप्रियंगुश्चदाडिमत्वग्गुडूचिका ॥ त्रिफलापद्मपंकश्चकल्कैरेभिःपृथक्पृथक् ॥ १५६ ॥ कर्षमात्रंपचेत्तैलंत्रिफलाकाथसंयुतम् ॥ भृंगराजरसेनैवसिद्धंकेशास्थिरीकृतम् ॥ १५७ ॥ अकालपलितंहंतिदारुणंचोपजिह्विकम् ॥

अर्थ-१ नीलके पत्ते २ केतकीका कंद ३ मोगरा ४ पियावांसा ५ कोहवृक्षके फूल ६ विजैसारके फूल ७ काले तिल ८ तगर ९ कदसहित कमल १० लोहचूर्ण ११ फूलप्रियगु १२ अनारकी छाल १३ गिलोय १४ हरड १५ बहेडा १६ आवला और १७ कमलसंबंधी कीच ये सत्रह औषध एक एक प्रमाण लेवे। कल्क करके कल्कका चौगुना तिलका तेल लेवे। उसमें वह कल्क डालके तिलके चौगुना त्रिफलेका काढा तथा भांगरेका रस मिलायके औटावे जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे। इसको बालेमें लगावे तो जमकर दृढ होवें। जिस प्राणीके बाल कुसमयमे सफेद हो गये हों वह इस तेलको लगावे तो काले होजावें और मस्तकमें जो दारुण रोग होता है वह उपजिहु रोग ये दूर होवें। यह बालोंमें लगानेसे कल्पके समान चमत्कार दिखाता है।

भृंगराजतैल पलितादिरोगोंपर।

भृंगराजरसेनैवलोहकिट्टंफलत्रिकम् ॥ १५८ ॥ सारिवांचपचेत्कल्कैस्तैलंदारुणनाशनम् ॥ अकालपलितंकंडूमिंद्रलुप्तंचनाशयेत् ॥ १५९ ॥

अर्थ-१ लोहकी कीट अर्थात् मल २ हरड ३ बहेडा ४ आंवला और ५ सारिवा इन पांच औषधोंका कल्क करे। इस कल्कसे चौगुना तिलका तेल ले उसमें कल्कको मिलाय भांगरेका रस डालके पकावे। जब तेल मात्र शेष रहे तब उतारके छान लेय। इस तेलको मस्तकमें लगानेसे दारुण रोग दूर हो। तथा जिस मनुष्यके छोटी अवस्थामें सफेद बाल होगए हों वह इस तेलके लगानेसे काले हों, कंडूरोग दूर हो, मस्तकके डाढीके और मूँछोके बार जो झड गये हों वह ठौर चिकनी होगई हो उस जगहपर भी बाल जम जावे वही कल्प है।

अरिमेदादितैल मुखदंतादिरोगोंपर।

अरिमेदत्वचंक्षुण्णांपचेच्छतपलोन्मिताम् ॥ जलेद्रोणेततःक्काथंगृह्णीयात्पादशेषितम् ॥ १६० ॥ तैलस्यार्धाढकंदत्त्वाकल्कैःकर्षमितैःपचेत् ॥ अरिमेदलवंगाभ्यांगैरिकागरुपद्मकैः ॥ १६१ ॥ मंजिष्ठालोध्रमधुकैर्लाक्षान्यग्रोधमुस्तकैः ॥ त्वग्जातिफलकर्पूरकंकोलखदिरैस्तथा ॥ १६२ ॥ पतंगधातकीपुष्पसूक्ष्मैलानागकेशरैः ॥ कट्फलेनचसंसिद्धंतैलंमुखरुजंजयेत् ॥ १६३ ॥ प्रदुष्टमांसंपलितंशीर्णदंतंचसौषिरम् ॥ शीतादंदंतहर्षंचविद्रधिं

कृमिदंतकम्॥ १६४॥ दंतस्फुटनदौर्गंध्येजिह्वाताल्वोष्टजांरुजम्॥

अर्थ—१ काले खैरकी छाल १०० पलको जवकूट करके १ द्रोण जल डालके औटावे जब चतुर्थांश रहे तब उतारके छान लेय । इसमें तिलका तेल आधा आढक डाले । तथा इसमें चूर्ण करके डालनेकी औषधि इस प्रकार ले—१ काले खैरकी छाल २ लौंग ३ गेरू ४ अगर ५ पद्माख ६ मजीठ ७ लोध ८ मुलहटी ९ लाख १० नागरमोथा ११ बडकी छाल १२ दालचीनी १३ जायफल १४ कपूर १५ कंकोल १६ सफेद खैरकी छाल १७ पतंग १८ धायके फूल १९ इलायची २० नागकेशर और २१ कायफल ये इक्कीस औषध एक एक कर्ष लेवे । इनका कल्क करके उसको १ प्रस्थ तेलमे मिलायके औटावे । जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे । इसको मुखसबंधी पीडापर, दाँतोंका मांस दुष्ट होनेसे उसपर, दाँतोंके हिलनेपर तथा दाँतोंमें छिद्र पडके दूखते हो उसपर, दाँतोकी सूजन होनेसे लाल होजावें उस पर, श्यावदन्तरोग, दाँतोंसे शीतल रूखा खट्टा पदार्थ तथा घोर वायु न सही जावे ऐसा प्रहर्ष नामक दतरोग है वह तथा दन्तविद्रधिपर, दतसबधी रक्त कृमिरोग इनके दुष्ट होनेसे डाढोंमें काले छिद्र होकर उनसे राध आदि निकलना उसपर, कृमिदतके रोगपर दंतस्फुटन रोग, दाँतोंमें दुर्गंधका आना तथा जीभ तालु होठ इनके रोगपर भी लगावे तो ये संपूर्ण विकार दूर होवे ।

जात्यादितैल नाडीव्रणादिकोंपर ।

जातिनिंबपटोलानांनक्तमालस्यपल्लवाः॥ १६५॥ सिक्थंसमधुकंकुष्ठंद्वेनिशेकटुरोहिणी॥ मंजिष्ठापद्मकंलोध्रमभयानीलमुत्पलम् ॥ १६६ ॥ तुत्थकंसारिवाबीजंनक्तमालस्यदापयेत् ॥ एतानिसमभागानिपिष्ट्वातैलंविपाचयेत् ॥ १६७ ॥ नाडीव्रणे समुत्पन्नेस्फोटकेकच्छुरोगिषु ॥ सद्यःशस्त्रप्रहारेषुदग्धविद्धेषुचैवहि ॥ १६८ ॥ नखदंतक्षतेदेहेव्रणेदुष्टेप्रशस्यते ॥

अर्थ—चमेली नीम परवल और कंजा इनके कोमल २ पत्ते और मोम मुलहटी कूठ हल्दी दारुहल्दी कुटकी मजीठ पद्माख लोध हरड नीलेकमल सारिवा अमलतासके बीज ये सब एक २ तोले लेवे । सबका चूर्णकर १ प्रस्थ सिरसके तेलमे इनको पूर्वोक्त विधिसे पचावे । इस तेलकी मालिससे नाडीव्रण (नासूर), फोडा, जखम, शस्त्रप्रहारजन्य घाव, दग्ध व्रण, नखदन्तादिकसे हुआ व्रण इत्यादि सब नष्ट होवें ।

हिंग्वादितैल कर्णशूलपर ।

हिंगुतुंबरुशुंठीभिःकटुतैलंविपाचयेत् ॥ १६९ ॥

तस्यपूरणमात्रेणकर्णशूलंप्रणश्यति ॥

अर्थ—१ हींग २ धनिया ३ सोंठ इन तीन औषधोंका कल्क करके उस कल्कसे चौगुना सरसोंका तेल ले उसमें कल्कको मिलावे और कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते तेलसे चौगुना जल डाले। सबको मिलायके पाक करे। जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे। इसको कानमें डाले तो कर्णशूल दूर होय।

बिल्वादितैल बधिरपनपर।

बालबिल्वानिगोमूत्रेपिष्ट्वातैलंविपाचयेत् ॥ १७० ॥ साजक्षीरंचनीरंचबाधिर्यंहंतिपूरणात् ॥

अर्थ—कोमल २ बेलके फलोंको गोमूत्रमें पीस कल्क करे उस कल्कका चौगुना तिलोंका तेल ले उसमें बेलफलके कल्कको मिलावे। तथा तेलसे चौगुना बकरीका दूध एवं कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते तेलसे चौगुना जल डाले। फिर चूल्हेपर चढायके परिपाक करे। जब तेल मात्र रहे तब उतारके छान लेय। इसको कानमें डाले तो बहरापन दूर होवे।

क्षारतैल कर्णस्रावादिकोंपर।

बालमूलकशुंठीनांक्षारःक्षारयुतंतथा ॥ १७१ ॥ लवणानिच पंचैवहिंगुशिग्रुमहौषधम् ॥ देवदारुवचाकुष्ठंशतपुष्पारसांजनम् ॥ १७२ ॥ ग्रंथिकंभद्रमुस्तंचकल्कैःकर्षमितैःपृथक् ॥ तैलंप्रस्थंचविपचेत्कदलीबीजपूरयोः ॥ १७३ ॥ रसाभ्यांमधुसूक्तेनचातुर्गुण्यमितेनच ॥ पूयस्रावंकर्णनादंशूलंबाधिरतांकृमीन्॥ १७४ ॥ अन्यांश्चकर्णजान्रोगान्मुखरोगांश्चनाशयेत् ॥

अर्थ—१ कोमल मूलियोंका खार २ सज्जीखार ३ जवाखार ४ सैंधानमक ५ सोंचर निमक ६ समुद्रका निमक ७ बिडनोन ८ बागडकाखार ९ हींग १० सहजनेकी छाल ११ सोंठ १२ देवदारु १३ सौंफ १४ वच १५ रसोत १६ पीपरामूल १७ नागरमोथा ये सत्रह औषध एक एक कर्ष लेकर सबका कल्क करे। उस कल्कका चौगुना तिलका तेल ले इसमें कल्कको मिलावे। और तेलसे चौगुना केलाके कंदका रस तथा बिजोरेका रस एवं मधुसूक्त[1] ये इन तेलमें मिलाय चूल्हेपर चढायके पाक करे। जब तेल मात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे। इसको कानमें डालनेसे कानसे राधका बहना दूर होय तथा कर्णनाद कर्णशूल और

१ कागदी नींबूका रस १ प्रस्थ तथा एक कुडव सहत उसमें डाले एवं पीपलका चूर्ण एक पल डाल किसी मिट्टीके पात्रमें भरके उसका मुख बंद कर मिट्टीसे लेप देवे। फिर एक महीने पर्यंत धानकी राशिमें धरा रहने दे इसको मधुसूक्त कहते हैं।

बधिरता (बहरापन) दूर होय । इसके शिवाय और जो अनेक प्रकारके कर्णरोग उत्पन्न होत हैं वे तथा मुखके रोग इससे दूर होते हैं ।

पाठादितैल पीनसरोगपर ।

पाठाद्वेचनिशेमूर्वापिप्पलीजातिपल्लवैः ॥ १७५ ॥
दंत्याचतैलंसंसिद्धंनस्यंस्याद्दुष्टपीनसे ॥

अर्थ–१ पाठकी जड २ हल्दी ३ दारुहल्दी ४ मूर्वा ५ पीपल ६ चमलीके पत्ते ७ दंतीकी जड ये सात औषध समान भाग ले कल्क करे । उस कल्कका चौगुना तिलोंका तेल लेके कल्क मिलाय देवे । तथा कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते तेलसे चौगुना जल मिलावे फिर चूल्हेपर चढायके मंदाग्निसे पचावे । जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे । इसकी नस्य देय तो घोर दुर्धर पीनसका रोग दूर होवे ।

व्याघ्रीतैल पूय और पीनसरोगपर ।

व्याघ्रीदंतीवचाशिग्रुतुलसीव्योषसैंधवैः ॥ १७६ ॥
कल्कैश्चपाचितंतैलंपूतिनासागदापहम् ॥

अर्थ–१ कटेरी २ दंतीकी जड ३ वच ४ सहजनेकी छाल ५ तुलसीके पत्ते ६ सोंठ ७ काली मिरच ८ पीपर और ९ सैंधानमक इन नौ औषधोंको समान भाग ले कल्क करे । कल्कसे चौगुना तिल्लीका तेल लेवे उसमें कल्कको मिलाय देवे । तथा कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते तेलसे चौगुना जल मिलावे । फिर इसको मंदाग्निपर पचन करे जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे । जिस मनुष्यके नाकमें पीनस रोग होनेसे राध बहती होय उसको इसकी नस्य देवे तो पीनसका रोग दूर होय ।

कुष्ठतैल छींकआनेपर ।

कुष्टंबिल्वकणाशुंठीद्राक्षाकल्ककषायवत् ॥ १७७ ॥
साधितंतैलमाज्यंवानस्यात्क्षवथुनाशनम् ॥

अर्थ–१ कूठ २ कोमळ बेलफल ३ पीपर ४ सोंठ ५ दाख ये पाच औषध समान भाग ले कल्क करके उस कल्कका चौगुना तिलोंका तेल अथवा घी ले उसमें कल्कको मिलादे कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते तैलसे चौगुना जल मिलावे फिर इसको मधुरी अग्निसे सिद्धकरे जब तेलमात्र रहे तब उतारके छान लेवे इस तेलको जिस प्राणीको अत्यंत छींक आतीहोंय उसकी नाकमें डाले तो बहुत छींकोंका आना बंद होये ।

गृहधूमादितैल नासार्शपर ।

गृहधूमकणादारुक्षारनक्ताह्वसैंधवैः ॥ १७८ ॥
सिद्धंशिखरिबीजैश्चतैलंनासार्शसांहितम् ॥

अर्थ—१ चूल्हेके ऊपरका धूआँ २ पीपल ३ देवदारु ४ जवाखार ५ कंजेकी छाल ६ सैंधानमक और ७ ओगाके बीज ये सात औषध समानभाग ले कल्क करे। कल्कका चौगुना तिलका तेल लेके उसमें कल्कको मिलाय देवे तथा कल्कका उत्तम पाक होनेके वास्ते तेलसे चौगुना जल डाले। फिर मधुरी अग्निसे सिद्धकरे। जब केवल तेलमात्र रहे तब उतारके छान लेवे। इसको जिस मनुष्यकी नाकमें मांसका मस्सा होय उसको नस्य देवे तो मस्सा टूटके गिरजावे। इस नाकके मस्सेको नासार्श अर्थात् नाककी बवासीर कहते हैं।

वज्रीतैल सर्वकुष्ठोंपर।

वज्रीक्षीररविक्षीरंद्रवंधत्तूरचित्रकम् ॥१७९॥ महिषीविड्भवंद्रावंसर्वांशंतिलतैलकम् ॥ पचेत्तैलावशेषंचगोमूत्रेऽथचतुर्गुणे ॥ ॥१८०॥ तैलावशेषंपक्त्वाचतत्तैलंप्रस्थमात्रकम् ॥गंधकाग्निशिलातालंविडंगातिविषाविषम्॥१८१॥ तिक्तकोशातकीकुष्ठं वचामांसीकटुत्रयम् ॥पीतदारुचयष्टयाह्वंसर्जिकाक्षारजीरकम् ॥१८२॥ देवदारुचकर्षांशंचूर्णंतैलेविनिक्षिपेत्॥ वज्रतैलमिति ख्यातमभ्यंगात्सर्वकुष्ठनुत् ॥ १८३ ॥

अर्थ—थूहरका दूध, आकका दूध, धत्तुरेका रस, चीतेका रस, भैंसके गोबरका रस ये संपूर्ण रस समानभाग, तथा तिलोंका तेल सब रसोंके समान ले। इसमें पूर्वोक्त रसोंको मिलायके मंदाग्निपर पचन करे। जब तेलमात्र रहे तब तेलसे चौगुना गोमूत्र डालके औटावे। जब तेलमात्र रहे तब उतारके छानलेय। फिर इसमें इतनी औषध मिलावे सो लिखते हैं—१ गंधक २ चीतेकी छाल ३ मनशिल ४ हरताल ५ वायविडंग ६ अतीस ७ शुद्धकियाहुआ सिंगिया विष ८ कडुई तोरई ९ कूट १० वच ११ जटामासी १२ सोंठ १३ कालीमिरच १४ पीपल १५ दारुहल्दी १६ मुलहटी १७ सज्जीखार १८ जीरा १९ देवदार ये उन्नीस औषध एक एक कर्ष ले सबका बारीक चूर्ण करके उस तेलमें मिलायके तेलकी मालिश करे तो संपूर्ण कुष्ठ दूर होवे।

करवीरादितैल लोमशातनपर।

करवीरंशिफांदंतींत्रिवृत्कोशातकीफलम् ॥
रंभाक्षारोदकेतैलंप्रशस्तंलोमशातनम् ॥ १८४ ॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेणविरचितायांसंहितायांचिकित्सास्थाने तैलकल्पनानाम नवमोऽध्यायः ॥९॥

अर्थ–१ कनेरकी जड २ दंतीकी जड ३ निसोथ ४ कडुई तोरई इन चारऔषधोंका कल्क-करके उसमे चौगुना तिलोका तेल मिलायदे फिर केलाके कदकी राख करके उसका क्षार निकाल लेवे । उस क्षारको तेलसे चौगुना जल डालके औटावे । जब तेलमात्र रहे तब उतारके छानलेय । इस तेलको जिस जगहके बाल दूरकरने हो उस जगह लगावे तो बाल उखडकर गिरजावे ।

इति श्रीशार्ङ्गधरे श्रीमाथुरीभाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः १०.



द्रवेषुचिरकालस्थंद्रव्यंयत्संधितंभवेत् ॥ आसवारिष्टभेदैस्त-त्प्रोच्यतेभेषजोचितम् ॥ १ ॥ यदपक्वौषधांबुभ्यांसिद्धंमद्यं स आसवः ॥ अरिष्टःक्वाथसिद्धःस्यात्तयोर्मानंपलोन्मितम् ॥२॥ अनुक्तमानारिष्टेषुद्रवद्रोणेतुलागुडम् ॥ क्षौद्रंक्षिपेद्गुडादर्धंप्रक्षेपंदशमांशकम् ॥ ३ ॥ ज्ञेयःशीतरसःसीधुरपक्वमधुरद्रवैः ॥ सिद्धःपक्वरसः सीधुः संपक्वमधुरद्रवैः ॥४॥ परिपक्वान्नसंधान-समुत्पन्नांसुरांजगुः ॥ सुरामंडः प्रसन्नास्यात्ततःकादंबरीघना ॥ ॥ ५ ॥ तदधोजगलोज्ञेयोमेदकोजगलाद्घनः ॥ पुक्कसोहृत-सारः स्यात्सुराबीजंचकिण्वकम् ॥ ६ ॥ यत्तालखर्जूररसैः सं-धितासाहिवारुणी ॥ कंदमूलफलादीनिसस्नेहलवणानिच ॥७॥ यत्रद्रवेऽभिषूयंतेतत्सूक्तमभिधीयते ॥ विनष्टमम्लतांयातंमद्यं वामधुरद्रवः ॥ ८ ॥ विनष्टः संधितोयस्तुतच्चुक्रमभिधीयते ॥ गुडांबुनासतैलेनकंदमूलफलैस्तथा ॥ ९ ॥ संधितंचाम्लतांया-तंगुडसूक्तंतदुच्यते ॥ एवमेवेक्षुसूक्तंस्यान्मृद्वीकासंभवंतथा ॥ ॥ १० ॥ तुषांबुसंधितंज्ञेयमामैर्विदलितैर्यवैः ॥ यवैस्तुनिस्तु-षैः पक्वैःसौवीरंसंधितंभवेत् ॥ ११ ॥ कुल्माषधान्यमंडादिसंधि-तंकांजिकंविदुः ॥ शंडाकीसंधिताज्ञेयामूलकैःसर्षपादिभिः ॥ १२ ॥

अर्थ-जल आदि द्रव (पतले) पदार्थोंमें औषधको भिगो देवे। फिर उसके मुखको बंद कर मुद्रा देकर १ महिने वा १५ दिनतक उसी रीतिसे धरा रहने देवे तो यह उत्कृष्ट औषध हो वह आसव अरिष्ट इत्यादि भेदोंसे प्रसिद्ध है ये सब भेद इस प्रकार जानने । १ जल और औषध इनका विना पाक करेही पूर्वोक्त रीतिसे सिद्ध करे उसको आसव कहते हैं। २ काढा करके उसमें औषधोंको डालके पूर्वोक्त रीतिसे सिद्ध किया जावे उसको अरिष्ट कहते हैं । इनकी मात्रा १ पलप्रमाण है। जिस अरिष्ट प्रयोगमें जलादिकोंका मान (तोले) नहीं कहा उसमें जलादिक द्रव पदार्थ एक द्रोण डालने चाहियें और उसमे गुड १ तुला (१०० पल) डाले। तथा सहत अर्ध तुला (५० पल) डाले। एव यदि औषधोंका चूर्ण डालना होय तो गुडके दशमांश डालके अरिष्टको सिद्ध करे। ३ अपक्व ईखके रस आदि मधुर पदार्थोंसे सिद्ध किये हुये मद्यको शीतरस सीधु कहते हैं। ईख आदि मधुर द्रव पदार्थोंको पकायके जो मद्य बनाते है उसको पक्वरस सीधु कहते हे। ५ तंडुल (चावल) आदि धान्यको उबालके अग्निसयोग करके यंत्रद्वारा जो मद्य बनाते है उसको शास्त्रमें सुरा (दारू) कहते हैं। ६ उस सुराके घन (सघट्ट) भागको कादवरी कहते हैं। ७ और उस सुराके नीचे भागमें जो द्रव (पतला) पदार्थ है उसको जगल कहते हैं। ८ उस जगलमें जो घन (गाढा) भाग है उसको मेदक कहते हैं । ९ मेदकका सार (सत्व) निकले हुए भागको पुक्कस कहते हैं। १० सुराबीजको किण्वक कहते हैं। ११ ताड अथवा खजूरके रससे अग्निसयोगसे यंत्रद्वारा जो रस खींचते हैं उसको मद्य और वारुणी कहते हैं। लौकिकमें इसको ताडी और खिजूरी दारू कहते हैं । १२ कदमूल फलादिकको उबालके तेलादिक स्नेह करके मिश्रित कर जल अथवा सिरका आदिमें डालते हैं उसको शुक्त कहते हैं। और लौकिकमें इसको आचारसधान कहते है। १३ जो मद्य विना खटाईके आए अथवा विना खट्टे हुए मधुर द्रव पदार्थोंको पात्रमें भरके उनका मुख बंद कर उसपर मुद्रा देकर १ महीने अथवा पंद्रह दिन धरा रहनेसे सिद्ध हुए मद्यको चुक्र ऐसे कहते हैं। १४ गुड जल तेल कंद मूल और फल इन सबको किसी पात्रमें भरके उसके मुखको बद कर मुद्रा देकर महिने या पक्ष मात्र धरा रहने देवे। जब खट्टा होजाय तब अपने कार्यमें लावे उसे गुडशुक्त कहते हैं। इसी प्रकार ईख और दाखका शुक्त बनाना चाहिये। १५ कच्चे जवोंको भूनके किसी पात्रमें भरके उसमें पानी डालके उस पात्रके मुखपर मुद्रा देकर कुछ दिन धरा रहने दे उसको तुषांबु कहते हैं। १६ जवोंके तुष दूर करके उनको अग्निपर पकावे । फिर उनमे पानी डालके उस पात्रका मुख बंद कर मुद्रा कर कुछ दिन धरा रहने देवे। उसको सौवीर कहते है। १७ कुलथी अथवा चावलोंमें पानी डालके सिजाय उसका मड (मॉड) काढ उसमें सोंठ राई जीरा हींग सेंधानमक हल्दी इत्यादिक पदार्थ डालके मुख मूँदके मुद्रा कर तीन दिन या चार दिन धरा रहने दे उसको कॉजी कहते हैं। १८ मूलीको कतरके उसमें पानी डालके हल्दी हींग

राई सैंधानमक जीरा सोंठ इत्यादिकोंका चूर्ण डाल पात्रका मुख वंदकर ३-४दिन धरा रहनेदे उसको शडाकी कहते हैं । इस प्रकार आसव और आरिष्टादिकोंकी कल्पना जाननी ।

उशीरासव रक्तपित्तादिकोंपर ।

उशीरंवालकंपद्मंकाश्मरींनीलमुत्पलम् ॥ प्रियंगुंपद्मकंलोध्रंमंजिष्ठांधन्वयासकम् ॥ १३ ॥ पाठांकिराततिक्तंचन्यग्रोधोदुंबरंशटीम् ॥ पर्पटंपुंडरीकंचपटोलंकांचनारकम् ॥ १४ ॥ जंवूशाल्मलिनिर्यासंप्रत्येकंपलसंमितान् ॥ भागान्सुचूर्णितान्कृत्वाद्राक्षायाःपलविंशतिम् ॥ १५ ॥ धातकींषोडशपलां जलद्रोणद्वयेक्षिपेत् ॥ शर्करायास्तुलांदत्त्वाक्षौद्रस्यैकतुलां तथा ॥ १६ ॥ मासंचस्थापयेद्भांडेमांसीमरिचधूपिते ॥उशीरासवइत्येषरक्तपित्तनिवारणः ॥ १७ ॥ पांडुकुष्टप्रमेहार्शःकृमिशोथहरस्तथा ॥

अर्थ-१ खस २ नेत्रवाला ३ लाल कमल ४ कंभारी ५ नीले कमल ६ फूलप्रियंगु ७ पद्माख ८ लोध ९ मजीठ १० धमासा ११ पाठ १२ चिरायता १३ कुटकी १४ वडकी छाल १५ गूलरकी छाल १६ कचूर १७ पित्तपापडा १८ सफेद कमल १९ पटोलपत्र २० कचनारकी छाल २१ जामुनकी छाल २२ सेमरका गोंद ये वाईस औषध एक एक पल दाख वीस पल और धायके फूल १६ पल इन सबको कूट चूर्ण कर दो द्रोण जलमें भिगो देवे और खाँड १ तुला डाले । एवं सहत १ तुला डालके प्रथम उस पात्रमें जटामासी और काली मिरचकी धूनी देकर सब वस्तु भरके मुखको खॉम दे उसको एक महीने पर्यंत रहने देवे पश्चात् मुद्राको खोलके उस रसको छानके निकास लेवे । इसको उशीरासव कहते हैं । इसको पीवे तो रक्तपित्त, पांडुरोग, कुष्ठ, प्रमेह, ववासीर, कृमिरोग और सूजन इन सव रोगोंको दूर करे ।

कुमार्यासव क्षयादिकोंपर ।

सुपक्करससंशुद्धंकुमार्याःपत्रमाहरेत् ॥ १८ ॥ यत्नेनरसमादायपात्रेपाषाणमृन्मये॥द्रोणेगुडतुलांदत्त्वाघृतभांडेनिधापयेत्॥१९॥ माक्षिकंपक्वलोहंचतस्मिन्नर्धतुलांक्षिपेत् ॥ कटुत्रिकंलवंगंचचा-

तुजातकमेवच॥२०॥ चित्रकंपिप्पलीमूलंविडंगंगजपिप्पली॥ चव्यकंहपुषाधान्यंक्रमुकंकटुरोहिणी ॥२१॥ मुस्ताफलंत्रिकं रास्नादेवदारुनिशाद्वयम्॥ मूर्वामधुरसादंतीमूलंपुष्करसंभवम् ॥२२बलाचातिबलाचैवकपिकच्छुस्त्रिकंटकम्॥ शतपुष्पाहिं- गुपत्रीचाक्लकमुटिंगणम्॥२३॥ पुनर्नवाद्वयंलोध्रंधातुमाक्षि- कमेवच ॥ एषांचार्धपलंदत्त्वाधातक्यास्तुपलाष्टकम् ॥२४॥ पलंचार्धपलंचैवपलद्वयमुदाहृतम्॥वपुर्वयःप्रमाणेनबलवर्णा- ग्निदीपनम् ॥ २५ ॥ बृंहणंरोचनंवृष्यंपक्तिशूलनिवारणम् ॥ अष्टावुदरजान्रोगान्क्षयमुग्रंचनाशयेत् ॥ २६ ॥ विंशतिमेह- जान्रोगानुदावर्तमपस्मृतिम् ॥ मूत्रकृच्छ्रमपस्मारंशुक्रदोषं तथाश्मरीम् ॥ २७ ॥ कृमिजंरक्तपित्तंचनाशयेत्तुनसंशयः ॥

अर्थ—पुराने घीगुवारके पट्ठेका रस १ द्रोण, पुराना गुड १०० पल, सहत और लोहचूर ये दोनों औषध आधे तोले, १ सोंठ २ कालीमिरच ३ पीपल ४ लौंग ५ दालचीनी ६ पत्रज ७ इलायचीके दाने ८ नागकेशर ९ चित्रक १० पीपरामूल ११ वायविडंग १२ गजपीपल १३ चव्य १४ ह्रीबेर (हाऊबेर) १५ धनिया १६ सुपारी १७ कुटकी १८ नागरमोथा १९ हरड २० बहेडा २१ आँवला २२ देवदारु २३ हल्दी २४ दारुहल्दी २५ मूर्वा २६ प्रसारणी २७ दन्ती २८ पुहकरमूल २९ खरेंटी ३० नागबला ३१ कौंचके बीज ३२ गोखरू ३३ सोंफ ३४ हिंगुपत्री ३५ अकरकरा ३६ उटंगनके बीज ३७ सफेद सोंठ (विपखपरा) ३८ सोंठ ३९ सुवर्णमाक्षिककी भस्म ये उनतालीस औषध दो दो तोले लेवे। माक्षिक भस्मके सिवाय सबका चूर्ण करे। फिर ऊपर कहीहुई औषध तथा धायके फूल ८ पल इनको एकत्र करके घीके चिकने बरतनमें भरके (१ महीनेपर्यंत या पन्द्रह दिन) धरीरहने दे तो यह कुमार्यासव बनके तैयार होवे। इसको बलाबल विचारके १ पल अथवा आधापल रोगीको देवे तो बल वर्ण और अग्निको बढावे, शरीर पुष्ट होवे, पक्ति (पारिणाम) शूल सर्व प्रकारके उदररोग, क्षय, प्रमेह, उदावर्त, अपस्मार, मूत्रकृच्छ्र, शुक्रदोष, पथरी, कृमिरोग और रक्तपित्त ये सब दूर होवें।

पिप्पल्यासव क्षयादिरोगोंपर।

पिप्पलीमरिचंचव्यंहरिद्राचित्रकोघनः ॥ २८ ॥ विडंगंक्रमु-

कोलोध्रःपाठाधान्येलवालुकम् ॥ उशीरंचन्दनंकुष्ठंलवंगंतगरं तथा ॥ २९ ॥ मांसीत्वगेलापत्रंचप्रियंगुर्नागकेशरम् ॥ एषा-मर्धपलान्भागान्सूक्ष्मचूर्णीकृतान्शुभान् ॥ ३० ॥ जलद्रो-णद्वयेक्षिप्त्वादद्याद्गुडतुलात्रयम् ॥ पलानिदशधातक्याद्राक्षा षष्टिपलाभवेत् ॥ ३१ ॥ एतान्येकत्रसंयोज्यमृद्भांडेचविनि-क्षिपेत् ॥ ज्ञात्वागतरसंसर्वंपाययेदग्न्यपेक्षया ॥३२॥ क्षयंगु-ल्मोदरेकार्श्यंग्रहणींपांडुतांतथा ॥ अर्शांसिनाशयेच्छीघ्रंपि-प्पल्याद्यासवस्त्वयम् ॥ ३३ ॥

अर्थ—१ पीपल २ काली मिरच ३ चव्य ४ हल्दी ५चीतकी छाल ६ नागरमोथा ७ वायविडंग ८ सुपारी ९ लोध १० पाढ ११ आँवले १२ एलवालुक १३ खस १४ सफेद चन्दन १५ कूट १६ लौंग १७ तगर १८ जटमासी १९ दालचीनी २० इलायचीके दाने २१ पत्रज २२ फूलप्रियंगु और नागकेशर ये तेईस औषध आधे २ पल लेवे । सबका बारीक चूर्ण करके दो द्रोण जलमें डालदेवे। और गुड तीन तुला डाले । तथा धायके फूल दश पल और दाख साठ पल इन दोनोंको बारीक कूटके उसी जलमें डाल देवे । फिर उस पात्रके मुखको बंद करके एक महीने धरा रहने दे जब जाने कि इन औषधोंका उत्तम रस तैयार होगया है तब उस मुद्राको खोलके रसको निकास लेवे। इसको पिप्पल्यासव कहते हैं । इस आसवको जठराग्निका बलाबल विचारके पीवे तो क्षय, गोला, उदर, शरीरकी कृशता, संग्रणी, पाडुरोग और बवासीर ये सब रोग तत्काल दूर हों ।

लोहासवपांडुरोगादिकोंपर ।

लोहचूर्णंत्रिकटुकंत्रिफलांचयवानिकाम् ॥ विडंगंमुस्तकंचित्रं चतुःसंख्यापलंपृथक् ॥३४॥ धातकीकुसुमानांतुप्रक्षिपेत्पल-विंशतिम् ॥ चूर्णीकृत्यततःक्षौद्रंचतुःषष्टिपलंक्षिपेत् ॥ ३५ ॥ दद्याद्गुडतुलांतत्रजलद्रोणद्वयंतथा ॥ घृतभांडेविनिक्षिप्यानि-दध्यान्मासमात्रकम् ॥३६॥ लोहासवममुंमर्त्यः पिबेदग्निक-रंपरम् ॥ पांडुश्वयथुगुल्मानिजठराण्यर्शसांरुजम् ॥ ३७ ॥ कुष्ठंप्लीहामयंकंडूंकासंश्वासंभगंदरम् ॥ अरोचकंचग्रहणींहृद्रो-गंचविनाशयेत् ॥ ३८ ॥

अर्थ—१ लोहभस्म २ सोंठ ३ कालीमिरच ४ पीपल ५ हरड ६ बहेडा ७ आँवला ८ अजमोदा ९ वायविडंग १० नागरमोथा और ११ चीतेकी छाल ये ग्यारह औषध चार २ पल लेवे तथा धायके फूल बीस पल ले सबका चूर्ण करे। ६४ पल सहत तथा एक तुला (१०० पल) गुड इन सबको एकत्र करके पूर्वोक्त औषधोके चूर्णको उसमें मिलायके दो द्रोण जलमें डालके किसी घीके चिकने पात्रमें भरके मुख बंद कर मुद्रा देकर १ महीनेपर्यंत रक्खारहनेदे। पश्चात् मुद्रा खोलके निकास लेवे इसको लोहासव कहते हैं। इस आसवका सेवनकरनेसे गुल्म (गोलेकारोग) बवासीर, कोढ तथा पेटमें बाँई तरफ फीहारोग होता है वह, खुजली, खाँसी, श्वास, भगंदर, अरुचि, संग्रहणी, हृदयरोग ये सब दूर होवें।

मृद्वीकासव ग्रहण्यादिरोगोंपर।

मृद्वीकायाःपलशतंचतुर्द्रोणेंभसःपचेत् ॥ द्रोणशेषेसुशीतेचपूतेतस्मिन्प्रदापयेत् ॥ ३९ ॥ तुलेद्वेक्षौद्रखंडाभ्यांधातक्याःप्रस्थमेवच ॥ कंकोलकंलवंगंचफलंजात्यास्तथैवच ॥ ४० ॥ पलांशकंचमरिचंत्वगेलापत्रकेसराः ॥ पिप्पलीचित्रकंचव्यंपिप्पलीमूलरेणुके ॥ ४१ ॥ घृतभांडेविनिक्षिप्यचंदनागरुधूपिते ॥ कर्पूरवासितोह्येषग्रहण्यांदीपनः परः ॥ ४२ ॥ अर्शसां नाशनेश्रेष्ठउदावर्तस्यगुल्मनुत् ॥ जठरेकृमिकुष्ठानिव्रणानि विविधानिच ॥ अक्षिरोगशिरोरोगगलरोगांश्च नाशयेत् ॥ ४३ ॥

अर्थ—१०० पल मुनक्कादाख ले चार द्रोण जलमें औटावे जब १ द्रोण जल रहे तब उतार लेवे। जब शीतल होजावे तब छान लेय। फिर आगे लिखीहुई औषध इसमे डाले। सहत और खांड प्रत्येक सौ सौ पल धायके फूल १ प्रस्थ १ कंकोल २ लौंग ३ जायफल ४ कालीमिरच ५ दालचीनी ६ इलायचीके बीज ७ पत्रज ८ नागकेशर ९ पीपल १० चीतेकी छाल ११ चव्य १२ पीपरामूल १३ रेणुका ये तेरह औषध एक २ पल लेवे। सबका चूर्ण करके चंदनकी धूनी दियेहुए घीके चिकने बासनम सबको भरदेवे। मुखपर मुद्रा देकर (पन्द्रहदिन) धरा रहनेदे तो यह द्राक्षासव बनके तैयार हो। इसको शुद्धकपूर करके वासित करनेसे संग्रहणीवालेकी अग्नि प्रदीप्त हो। उसी प्रकार बवासीर, उदावर्त्त, गोला, उदर, कृमिरोग, कोढ, व्रण, नेत्ररोग, शिरोरोग और गलेके रोग दूर होवें।

लोध्रासव प्रमेहादिकोंपर।

लोध्रंशटीपुष्करमूलमेलामूर्वाविडंगंत्रिफलायवानी ॥ चव्यं प्रियंगुंक्रमुकंविशालांकिराततिक्तंकटुरोहिणींच ॥४४॥ भार्ङ्गीं नतंचित्रकपिप्पलीनांमूलंचकुष्ठातिविषांचपाठाम् ॥ कलिंगकं केसरमिंद्रसाह्वानंतासिपत्रंमरिचप्लवंच ॥४५॥ द्रोणेऽभसःकर्ष-समांश्चपक्त्वापूतेचतुर्भागजलावशेषे॥रसार्धभागंमधुनःप्रदाय पक्षंनिधेयोघृतभाजनस्थः ॥ ४६ ॥ लोध्रासवोऽयंकफपित्त मेहान्क्षिप्रंनिहन्याद्द्विपलप्रयोगात् ॥ पांड्वामयार्शांस्यरुचिंग्र-हण्यादोषंवलासंविविधंचकुष्ठम् ॥ ४७ ॥

अर्थ—१लोध २ कचूर ३ पुहकरमूल ४ इलायची ५ मूर्वा ६ वायविडंग ७ त्रिफला ८ अज-मायन ९ चव्य १० फूलप्रियंगु ११ सुपारी १२ इन्द्रायन १३ चिरायता १४ कुटकी १५ भा-रंगी १६ तगर १७ चीतेकी छाल १८ पीपरामूल १९ कूट २० अतीस २१ पाढ २२ इन्द्रजव २३ नागकेशर २४ कोहकी छाल २५ धमासा २६ ईख २७ कालीमिरच २८ क्षुद्रमोथा ये अठ्ठाईस औषधि प्रत्येक एक एक तोले लेवे। सबका चूर्ण करके एक द्रोण जलमें डालके पकाके फिर चतुर्थांश रहनेपर छानके शीतल होनेपर काढेका आधाभाग सहत मिलावे। पश्चात् घीके चिकने वासनमें भरके मुखपर मुद्रा देकर १५ दिनपर्यन्त धरा रहने देवे तो यह लोध्रासव तैयार होवे। इसको देहका वलावल विचारके ढोपलपर्यन्त देवे तो कफ पित्तके विकार, प्रमेह, पांडुरोग, ववासीर, अरुचि, संग्रहणी, अनेक प्रकारके कफ और सर्व प्रकारके कुष्टरोग दूर होवें।

कुटजारिष्ट सर्वज्वरोंपर।

तुलांकुटजमूलस्यमृद्वीकार्धतुलांतथा ॥ ४८ ॥ मधुकंपुष्प काश्मर्यौभागान्दशपलोन्मितान् ॥चतुर्द्रोणेऽभसःपक्त्वाक्का-थेद्रोणावशेषिते ॥४९॥ धातक्याविंशतिपलंगुडस्यचतुलां क्षिपेत् ॥ मासमात्रंस्थितोभांडेकुटजारिष्टसंज्ञितः ॥ ५० ॥ ज्वरान्प्रशमयेत्सर्वान्कुर्यात्तीक्ष्णंधनञ्जयम् ॥

अर्थ—कूडाकी जड १ तुला, दाख आधे तुला, महुआके फूल और कमारीकी जड दश दश पल लेवे। इस प्रमाणसे सब औषधोंको ले जवकूटकरके ४ द्रोण जलमें डालके औटावे। जब १ द्रोण जल रहे तब उतारके कपडेसे छान लेय। उस जलमें धायके फूलोंका चूर्ण २०

पल डाले तथा गुड एक तुला डालके सबको मिलाय चिकने पात्रमे भरके मुखको बंद कर मुद्रा देकर एक महीने पर्यंत धरा रहनेदे। फिर मुद्राको दूर कर इसको निकास लेवे। इसे "कुटजारिष्ट" कहते हैं। यह अरिष्ट पीनेसे सर्व प्रकारके ज्वर दूर होवें और अग्नि प्रदीप्त होवे।

विडंगारिष्ट विद्रधिआदिपर।

विडंगग्रंथिकंरास्नाकुटजत्वक्फलानिच ॥५१॥ पाठैलवालुकं धात्रीभागान्पंचपलान्पृथक्॥अष्टद्रोणेऽभसःपक्त्वाकुर्याद्द्रोणावशेषितम् ॥५२॥ पूतेशीतेक्षिपेत्तत्रक्षौद्रंपलशतत्रयम्॥ धातकींविंशतिपलांत्रिजातंद्विपलंतथा ॥ ५३ ॥ प्रियंगुकांचनारोणांसलोध्राणांपलंपलम् ॥ व्योषस्यचपलान्यष्टौचूर्णीकृत्य प्रदापयेत ॥५४॥ घृतभांडेविनिक्षिप्यमासमेकंविधारयेत् ॥ ततःपिबेद्यथार्हंतुजयेद्विद्रधिमूर्च्छितम् ॥५५॥ ऊरुस्तंभाश्मरीमेहान्प्रत्यष्ठीलाभगंदरान् ॥ गंडमालांहनुस्तंभांविडंगारिष्टसंज्ञितः ॥ ५६ ॥

अर्थ—१ वायविडंग २ पीपरामूल ३ रास्ना ४ कूडाकी छाल ५ इन्द्रजौ ६ पाढ ७ एलवालुक और ८ आमले ये आठ औषधी पॉच २ पल लेवे जवकूटकरके इसमें आठ द्रोण जल डालके औटावे। जब एक द्रोण जल रहे तब उतारके छान लेवे। जब शीतल होजावे तब ३०० तीनसो पल सहत बीस पल धायके फूल १ दालचीनी २ छोटी इलायचीके दाने ३ पत्रज ये तीन औषध एक एक पल लेवे तथा १ सोठ २ काली मिरच ३ पीपल इन तीन औषधोंको मिलायके आठ पल लेवे। इस प्रमाणसे सब औषधोको लेकर चूर्ण करके उस काढेमें मिलाय उसको घीके चिकने बरतनमें भरके मुख बंद कर मुद्रा देकर १ महीने पर्यन्त धरा रहने दे फिर मुद्राको दूर कर निकाल लेवे। इसको विडगारिष्ट कहते हैं। इस अरिष्टके पीनेसे विद्रधिरोग, ऊरुस्तंभ रोग, पथरीका रोग, प्रमेह, प्रत्यष्ठीला, वादीका रोग, गंडमाला तथा हनुस्तंभ (वादीका रोग) इन सबको यह दूर करता है।

देवदार्वरिष्ट प्रमेहादिकोंपर।

तुलार्धदेवदारुःस्याद्वासाचपलविंशतिः ॥ मंजिष्ठेंद्रयवादंतीतगरंरजनीद्वयम् ॥ ५७ ॥ रास्नाकृमिघ्नमुस्तंचशिरीषंखदिरार्जु-

नौ ॥ भागान्दशपलान्दद्याद्यवान्यावत्सकस्यच ॥५८॥ चंदनस्यगुडूच्याश्चरोहिण्याश्चित्रकस्यच ॥ भागानष्टपलानेतान्नष्टद्रोणेंभसः पचेत् ॥५९॥ द्रोणशेषेकषायेचपूतेशीतेप्रदापयेत् ॥ धातक्याःषोडशपलंमाक्षिकस्यतुलात्रयम् ॥ ६० ॥ व्योषस्यद्विपलंदद्यात्रिजातस्यचतुष्पलम् ॥ चतुष्पलंप्रियंगुश्च द्विपलंनागकेशरम् ॥ ६१ ॥ सर्वाण्येतानिसंचूर्ण्यघृतभांडेनिधापयेत् ॥ मासादूर्ध्वंपिबेदेनंप्रमेहंहंतिदुर्जयम् ॥ ६२ ॥ वातरोगान्ग्रहण्यर्शोमूत्रकृच्छ्राणिनाशयेत् ॥ देवदार्वादिकोऽरिष्टो दद्रुकुष्ठविनाशनः ॥ ६३ ॥

अर्थ—देवदारु ५० पल, जडूसा २० पल और १ मजीठ २ इन्द्रजौ ३ दंती ४ तगर ५ हल्दी ६ दारुहल्दी ७ रास्ना ८ वायविडंग ९ नागरमोथा १० शिरस ११ खैरकी छाल १२ कोहकी छाल ये बारह औषध दश दश पल लेवे। १ अजमोद २ कूडेकी छाल ३ सफेद चंदन ४ गिलोय ५ कुटकी ६ चीतेकी छाल ये छः औषध आठ आठ पल लेवे। फिर सब औषधोंको कूट करके उसमे आठ द्रोण जल डालके औटावे। जब १ द्रोण मात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे। जब शीतल हो जावे तब आगे लिखी औषधोको डाले। धायके फूल १६ पल, सहत तीन तुला और सोंठ मिर्च पीपल ये तीनों औषध मिलाय दो पल लेय। दालचीनी, इलायचीके दाने पत्रज ये तीन औषध चार पल लेवे। फूलप्रियंगु और नागकेशर दो दो पल लेवे। सब औषधोका चूर्ण करके उस काढेमे डाल देवे। फिर सहतको मिलायके एकत्र कर घीके चिकने वासनमें भर मुख बंद कर मुद्रा देके रख दे जब एक महीना हो जावे तब मुद्राको दूर कर रस निकाल ले। इसको "देवदार्वरिष्ट" कहते हैं। इसको पीवे तो घोर प्रमेहका रोग दूर हो तथा यह बादीका रोग, संग्रहणी, बवासीर, मूत्रकृच्छ्र, दाह और कोढके रोगको नष्ट करे।

खदिरारिष्ट कुष्ठादिकोंपर।

खदिरस्यतुलार्धंतुदेवदारुचतत्समम् ॥ बाकुचीद्वादशपलादार्वीस्यात्पलविंशतिः॥६४॥त्रिफलाविंशतिपलाह्यष्टद्रोणेऽभसः पचेत् ॥ कषायेद्रोणशेषेचपूतशीतेविनिक्षिपेत् ॥ ६५ ॥ तुलाद्वयंमाक्षिकस्यपलैकाशर्करामता॥धातक्याविंशतिपलंकंकोलं

नागकेशरम् ॥ ६६ ॥ जातीफलंलवंगैलात्वक्पत्राणिपृथ-
क्पृथक् ॥ पलोन्मितानिकृष्णायादद्यात्पलचतुष्टयम् ॥६७॥
घृतभांडेविनिक्षिप्यमासादूर्ध्वंपिबेत्ततः ॥ महाकुष्ठानिहृद्रोगं
पांडुरोगार्बुदंतथा ॥ ६८ ॥ गुल्मंग्रंथिंकृमीन्श्वासंकासंप्लीहो-
दरंतथा ॥ एषवैखदिरारिष्टःसर्वकुष्ठनिवारणः ॥ ६९ ॥

अर्थ–खैरकी छाल ५० पल देवदारु ५० पल बावची १२ पल दारुहल्दी २० पल हरड बहेडा और आमला ये तीनो मिलायके २० पल इस प्रकार सपूर्ण औषध लेकर कूट करके उसको आठ द्रोण जलमें डालके काढा करे । जब एक द्रोणमात्र जल शेष रहे तब उतारके छान लेय । जब शीतल हो जावे तब इसमें २०० पल सहत डाले, खांड १०० पल ले, धायके फूल २० पल, १कंकोल २नागकेशर ३जायफल ४ लौंग ५ इलायची ६ दालचीनी ७ पत्रज ये सात औषधि एक एक पल और पीपल ४ पल इस प्रकार सबको एकत्र करके चूर्ण कर उसको पूर्वोक्त काढेमे मिलाय दे फिर सबको घीके चिकने पात्रमें भर मुखपर मुद्रा दे १ महीने पर्यंत धरा रहने दे फिर बाद १ महीनेके निकालके पीवे तो इस खदिरारिष्टसे महाकुष्ठ, हृदयरोग, पाडुरोग, अर्बुदरोग, गोलेका रोग, ग्रंथि (गाँठ), कृमिरोग, श्वास, खाँसी, पेटमें बाँईतरफ होनेवाला फियाका रोग ये सब रोग दूर हों ।

बब्बूलारिष्ट क्षयादिकोंपर ।

तुलाद्वयंचबब्बूल्याश्चतुर्द्रोणेजलेपचेत् ॥द्रोणशेषेरसेशीतेगुड-
स्यत्रितुलांक्षिपेत्॥७०॥ धातकींषोडशपलांकृष्णांचद्विपलां-
तथा ॥ जातीफलानिकंकोलमेलात्वक्पत्रकेशरम् ॥ ७१ ॥
लवंगंमरिचंचैवपलिकान्युपकल्पयेत् ॥ मासंभांडेस्थितस्त्वे-
षंबब्बूलारिष्टकोजयेत् ॥ ७२ ॥ क्षयंकुष्ठमतीसारंप्रमेहंश्वास-
कासनुत् ॥

अर्थ–बबूर (कीकर) की छाल दो तुला (२० फळ) लेवे । उसका जवकूट करके ४ द्रोण पानी डालके काढा करे । जब १ द्रोण शेष रहे तब उतारके छान लेवे जब शीतल होजावे तब गुड ३०० तीनसौ पल मिलावे । धायके फूल सोलह पल डाले । पीपल २ पल, १ जायफल २ कंकोल ३ इलायची दाने ४ दालचीनी ५ पत्रज ६ नागकेशर ७ लौंग ८ काली मिरच ये आठ औषध एक एक पल प्रमाण लेवे । सबका चूर्ण कर उस काढेमें डालके सबको घीके चिकने बासनमें भरके मुखपर मुद्रा दे १ महीने पर्यन्त धरा रहने दे । फिर मुद्राको दूर कर रसको

छानके निकाल लेवे । इसको बब्बूलारिष्ट कहते हैं । इसको पीवे तो क्षय, कुष्ट, अतिसार, प्रमेह, खॉसी, श्वास इन सब रोगोको दूर करे ।

द्राक्षारिष्ट उरःक्षतादिकोंपर ।

द्राक्षातलार्धंद्विद्रोणेजलस्यविपचेत्सुधीः ॥ ७३ ॥ पादशेषे कषायेचपूतेशीतेविनिक्षिपेत्॥गुडस्यद्वितुलांतत्रत्वगेलापत्रके- शरम् ॥ ७४ ॥ प्रियंगुमरिचंकृष्णांविडंगंचेतिचूर्णयेत् ॥ पृथ- क्पलोन्मितैर्भागैस्ततोभांडेनिधापयेत् ॥ ७५ ॥ स्थापयित्वा ततोमासंततोजातरसंपिबेत्॥ उरःक्षतंक्षयंहंतिकासश्वासगला- मयान् ॥ ७६ ॥ द्राक्षारिष्टाह्वयःप्रोक्तोबलकृन्मलशोधनः ॥

अर्थ–मुनक्कादाख ५० पल लेवे । उसमे दो द्रोण पानी डालके औटावे । जब चौथाई जल रहे तब उतारके कपडेसे छान लेवे । जब शीतल होजावे तब गुड दो तुला डाले । और १ दाल- चीनी २ इलायची दाने ३ पत्रज ४ नागकेशर ५ फूलप्रियगु ६ काली मिरच ७ पीपल ८ वायविडग ये आठ औषधि एक एक पल ले सब चूर्ण कर उस काढेमें मिला देवे । फिर सबको एक चिकने पात्रमे भरके मुख बंद कर मुद्रा देवे और उसको १ महीने (अथवा एक पखवारे) धरा रहने दे सिद्ध होनेके पश्चात् मुद्राको दूर करके रसको छानके निकास ले इसको द्राक्षारिष्ट कहते हैं । इस अरिष्ट पीनेसे उरःक्षतरोग, क्षहरोग, खॉसी, श्वास, कठका रोग ये सपूर्ण दूर होवें । यह बल वढाता और मलको साफ करता है ।

रोहितारिष्ट अर्शादिरोगोंपर ।

रोहीतकतुलामेकांचतुर्द्रोणेजलेपचेत् ॥ ७७ ॥ पादशेषेरसे शीतेपूतेपलशतद्वयम् ॥ दद्याद्गुडस्यधातक्याःपलषोडशिका मता ॥ ७८ ॥ पंचकोलत्रिजातंचत्रिफलांचविनिक्षिपेत् ॥ चूर्णयित्वापलांशेनततोभांडेनिधापयेत् ॥ ७९ ॥ मासादूर्ध्वं चपिबतांगुदजायांतिसंक्षयम् ॥ ग्रहणीपांडुहृद्रोगप्लीहगुल्मो- दराणिच ॥ कुष्ठशोफारुचिहरोरोहितारिष्टसंज्ञकः ॥ ८० ॥

अर्थ–लालरोहिडा १ तुला ले जवकूट करके चार द्रोण जलमें डालके काढा करे । जब एक द्रोण जल शेष रहे तब उतारके छान लेवे । जब शीतल हो जावे तब इसमें

गुड २०० पल मिलावे। धायके फूल १६ पल, १ पीपल २ पीपरामूल ३ चव्य ४ चीतेकी छाल ५ सोंठ ६ दालचीनी ७ इलायचीके बीज ८ पत्रज ९ हरड १० बहेडा ११ आँवला ये ग्यारह औषध एक एक पल ले सबका चूर्ण करके पूर्वोक्त काढेमें डालके उसको किसी चिकने पात्रमें भर मुखपर मुद्रा देकर एक महीने पर्यन्त धरा रहने दे पश्चात् मुद्राको दूरकरे। इसको रोहितारिष्ट कहतेहैं। इसके पीनेसे बवासीर, संग्रहणी, पांडुरोग, हृदयरोग, प्लीहा, गोलेका रोग, उदररोग, कुष्ठ, सूजन और अरुचिरोग ये सब रोग दूर होय।

दशमूलारिष्ट क्षयप्रमेहादिकोंपर।

पर्ण्यौबृहत्यौगोक्षंटोबिल्वोग्निमंथकोरलुः ॥ पाटलाकाश्मरी चेतिदशमूलमिहोच्यते ॥ ८१ ॥ दशमूलानिकुर्वीतभागैःपंच पलैःपृथक् ॥ पंचविंशतपलंकुर्याच्चित्रकंपौष्करंतथा ॥ ८२ ॥ कुर्याद्विंशत्पलंलोध्रंगुडूचीतत्समाभवेत् ॥ पलैःषोडशभिर्धा- त्रीरविसंख्यैर्दुरालभा ॥ ८३ ॥ खदिरोबीजसारश्चपथ्याचेति पृथक्पलैः ॥ अष्टभिर्गुणितंकुष्टंमंजिष्ठादेवदारुच ॥ ८४ ॥ विडंगंमधुकंभार्ङ्गीकपित्थोऽक्षःपुनर्नवा ॥ चव्यंमांसीप्रियंगुश्च सारिवाकृष्णजीरकः ॥ ८५ ॥ त्रिवृतारेणुकारास्नापिप्पलीक्र- मुकःशटी ॥ हरिद्राशतपुष्पाचपद्मकंनागकेशरम् ॥ ८६ ॥ मुस्तमिंद्रयवाःशृंगीजीवकर्षभकौतथा ॥ मेदाचान्यामहामे- दाकाकोल्यौऋद्धिवृद्धिके ॥८७॥ कुर्यात्पृथग्द्विपलिकान्पचे- दष्टगुणेजले॥ चतुर्थांशंशृतंनीत्वामृद्भांडेसन्निधापयेत् ॥८८॥ चतुःषष्टिपलांद्राक्षांपचेन्नीरेचतुर्गुणे ॥ त्रिपादशेषंशीतंचपूर्व- क्काथेशृतंक्षिपेत् ॥ ८९ ॥ द्वात्रिंशत्पलिकंक्षौद्रंदद्याद्गुडचतुः- शतम् ॥ त्रिंशत्पलानिधातक्याःकंकोलंजलचंदनम् ॥ ९० ॥ जातीफलंलवंगंचत्वगेलापत्रकेशरम् ॥ पिप्पलीचेतिसंचूर्ण्य भागैर्द्विपलिकैःपृथक् ॥ ९१ ॥ शाणमात्रांचकस्तूरींसर्वमेक- त्रनिःक्षिपेत् ॥ भूमौनिखातयेद्भांडंततोजातरसंपिबेत् ॥ ९२ ॥ कनकस्यफलंक्षिप्त्वारसंनिर्मलतांनयेत् ॥ ग्रहणीमरुचिंश्वासं कासंगुल्मंभगंदरम् ॥ ९३ ॥ वातव्याधिंक्षयंछर्दिंपांडुरोगं

चक्रामलाम् ॥ कुष्ठान्यर्शांसिमेहांश्चमंदाग्निमुदराणिच ॥ ॥ ९४ ॥ शर्करामश्मरींमूत्रकृच्छ्रंधातुक्षयंजयेत् ॥ कृशानां पुष्टिजननोवंध्यानांगर्भदःपरः ॥ अरिष्टोदशमूलाख्यस्तेजः शुक्रबलप्रदः ॥ ९५ ॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेणविरचितायांसंहितायां चिकित्सास्थाने आसवारिष्टकल्पनंनाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अर्थ-दशमूल प्रत्येक आधे २ पल, चीतेकी छाल २५ पल, पुहकरमूल २५ पल, लोध २० पल, गिलोय २० पल, आंवले १६ पल, धमासा १२ पल, खैरकी छाल ८ पल, विजैसार ८ पल और हरड ८ पल । १ कूठ २ मजीठ ३ देवदारु ४ वायविडंग ५ मुलहटी ६ भारंगी ७ कैथ ८ बहेडा ९ पुनर्नवा १० चव्य ११ जटामासी १२ प्रियंगुफूल १३ सारिवा १४ कालाजीरा १५ निसोथ १६ रेणुकबीज १७ रास्ना १८ पीपल १९ सुपारी २० कचूर २१ हल्दी २२ सोंफ २३ पद्माख २४ नागकेशर २५ नागरमोथा २६ इन्द्रजौ २७ काकडासिंगी और २८ जीवक ऋषभक (इन दोनोंके अभावमें विदारीकंद लेवे) २९ मेदा और महामेदा (इन दोनोंके अभावमें मुलहटी लेय) ३० काकोली और क्षीरकाकोली (इन दोनोंके अभावमें असगन्ध लेय) तथा ३१ ऋद्धि और वृद्धि (इनके अभावमें वाराहीकंद लेवे) ये इकत्तीस औषध दो दो पल लेवे । फिर सबको जवकूट करके सब औषधोंका आठगुना जल मिलायके काढा करे । जब चौथाई रहे तब उतारके छान ले और इसको किसी घीके चिकने पात्रमें भर देवे । फिर दाख ६४ पल ले उनमे चौगुना पानी डालके औटावे जब तीन हिस्सा पानी शेष रहे तब उतारके छान लेय । इसकोभी पहले काढेमें मिलाय देवे। पश्चात् ३२ पल सहत और ४०० चारसौ पल गुड एवं ३० तीस पल धायके फूल डालने चाहिये । १ कंकोल २ नेत्रवाला ३ सफेदचंदन ४ जायफल ५ लौंग ६ दालचीनी ७ इलायची दाने ८ पत्रज ९ नागकेशर और १० पीपल ये दश औषधी दो दो पल लेकर चूर्णकरके पूर्वोक्त काढेमें मिलावे । एवं १ शाण कस्तूरीका चूर्ण करके पूर्वोक्त काढेमें मिलायदे फिर उस पात्रका मुख बंदकर मुद्रादे । इसको १ एक महीने अथवा पन्द्रह दिन पर्यंत पृथ्वीमें गडा रहने देवे । जब इन औषधोंका उत्तम रस होजावे तब उसको बाहर निकालके मुद्रा दूर करे । फिर इसमें निर्मलीके बीजोंका चूर्णकर थोडासा डाल देवे तो रस निर्मल होजावे । इसको दशमूलारिष्ट कहतेहैं । इस अरिष्टके पीनेसे संग्रहणी, अरुचि, श्वास, खाँसी, गोला, भगंदर, बादीका रोग, क्षयरोग, वमन, पाडुरोग, नेत्रोंका [illegible]रोग, कुष्ट, बवासीर, प्रमेह, मंदाग्नि, उदररोग, शर्करा (पथरीका भेद)

मूत्रकृच्छ्र और धातुक्षय ये संपूर्ण रोग दूर होवें। यह अरिष्ट दुर्बल मनुष्यको पुष्ट करे और वंध्यास्त्रीको पुत्र देवे, तेज धातु (वीर्य) और बल देता है।

इति श्रीशार्ङ्गधरे माथुरीभाषायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथैकादशोऽध्यायः ११.

स्वर्णादिधातु और उनका शोधन।

स्वर्णंतारंताम्रमारंनागवंगौचतीक्ष्णकम् ॥ धावतःसप्तविज्ञेया-स्ततस्ताञ्छोधयेद्बुधः ॥ १ ॥ स्वर्णताराऽरताम्राणांपत्राण्यग्नौ प्रतापयेत् ॥ निषिंचेत्तप्ततप्तानितैलेतक्रेचकांजिके ॥२॥ गोमूत्रेचकुलत्थानांकषायेचात्रिधात्रिधा ॥एवंस्वर्णादिलोहानांविशुद्धिःसंप्रजायते ॥ ३ ॥ नागवंगौप्रतप्तौचगालितौतौनिषेचयेत् ॥ त्रिधात्रिधाविशुद्धिःस्याद्रविदुग्धेनचत्रिधा ॥ ४ ॥

अर्थ–१ सुवर्ण २ रूपा (चाँदी) ३ ताँवा ४ जस्त[1] अथवा पीतल ५ शीसा ६ राँगा और पालाद आदि लोह इन सातोंको धातु[2] कहते हैं। ये सातों धातु पर्वतसे उत्पन्न होती हैं इस वास्ते इनमें थोडा बहुत मेल रहता है इस वास्ते इनका बुद्धिमान वैद्य शोधन इस प्रकार करे। सुवर्ण (सोना) रूपा जस्त ताम्र (ताँवा) इनके बारिक कटकवेधी पत्र कर अग्निमें वारवार तपाय २ के तेल छाछ काँजी[3] गोमूत्र और कुलथीका काढा इन प्रत्येकमें तीन २ वार बुझावे। इस प्रकार सुवर्णादि सात धातु-

---

१ जस्तके स्थानमें कोई पीतल लेता है परंतु पीतल मिश्रित धातु है इसवास्ते हमको वह मत मनव्य नहीं है।

२ वृद्धत्व (सफेद बालोंका होना) कुब्जत्व और बलहीनता इत्यादि रोगोंका निवारण कर ये देहको धारण करती हैं इसीसे सुवर्णादि धातु कहते है।

३ काँजी बनानेकी क्रिया- मिट्टीकी मथानीको सरसोंके तेलसे पोत कर उसमें निर्मल पानी भरे तथा १ राई २ जीरा ३ सैंधानिमक ४ हींग ५ सोंठ और ६ हल्दी इन छः औषधोंका चूर्णकर चावलोंका भात युक्त माँड तथा कुलथीका काढा थोडे बाँसके पत्ते ये सब पात्रमें डाल दे तथा पानीके अनुमान माफिक दश पांच उडदके बडे बनाकर डालकर उसका मुख बंद करके तीन दिन धरा रहने दे जब खट्टी वास आने लगे तब जाने कि काँजी बनगई यह काँजी बनानेकी विधि है।

ओंकी शुद्धि होती है । शीशा और राँगा ये दोनो धातु नम्र है इसवास्ते इनकी विशेष. शुद्धि कहते हैं शीशे और राँगेको अग्निमें तपावे । जब गल जावे तब तैलादिकोंमे तीन २ वार उडेल (गेर) देवे । तथा आकके दूधमे गलाय २ के बुझावे तो इनकी शुद्धि होवे । विशेष शुद्धि देखना होय तो हमारे निर्माण कियेहुए रसराजसुन्दर ग्रंथके प्रथम भागमें देखो ।

सुवर्णभस्मकी प्रथम विधि ।

स्वर्णाच्चद्विगुणंसूतमम्लेनसहमर्दयेत् ॥ तद्गोलकेसमंगंधंनिद्ध्यादधरोत्तरम् ॥ ५॥ गोलकंचततोरुंध्याच्छरावदृढसंपुटे ॥ त्रिंशद्वनोपलैर्दद्यात्पुटान्येवंचतुर्दश ॥ ६ ॥ निरुत्थंजायतेभस्मगंधोदेयःपुनःपुनः ॥

अर्थ—सुवर्णका वारीक चूर्ण करके १ भाग तथा शुद्ध किया हुआ पारा २ भाग ले दोनोंको खरलमें डालके कागदी नींबूके रसमे खरल करे । जब संपूर्ण पारा सुवर्णके बुरादेपर चढ जावे और उसका गोलासा बँध जावे तव गोलाके समान भाग शुद्ध की हुई ऑवलासारगंधकने वारीक चूर्ण करे । फिर मिट्टीके दो शरावे ले प्रथम शरावेमे आधी गधककी बिछायके उसपर उस सुवर्ण और पारेके गोलेको रखदेवे, फिर वाकी गंधक जो बची है उसको उस गोलेके ऊपर बुरकके दूसरे शरावेसे बंद कर देवे और इसके ऊपर सात कपड मिट्टी करे फिर ३० आरने उपलेनको आधे नीचे रक्खे, और आधे ऊपर रक्खे, वीचमे संपुट रक्खे फूक देवे । जव आग शीतल होजावे तव संपुटसे उसको निकालके फिर पारेमें घोटे और फिर इसी प्रकार आँचदेवे । इस प्रकार १४ चौदह आँच देवे तो सुवर्णकी निरुत्थ भस्म होवे । अर्थात् फिर घृत सुहागे आदि डालनेसे भी नही जीवे । यह सुवर्ण मारणकी प्रथम विधि कही ।

सुवर्णमारणकी दूसरी विधि ।

कांचनेगालितेनागंषोडशांशेननिक्षिपेत् ॥ ७ ॥ चूर्णयित्वातथाम्लेनघृष्ट्वाकृत्वाचगोलकम् ॥ गोलकेनसमंगंधंदत्वाचैवाधरोत्तरम् ॥ ८ ॥ शरावसंपुटेधृत्वापुटेत्रिंशद्वनोपलैः ॥ एवंसप्तपुटैर्हेमनिरुत्थंभस्मजायते ॥ ९ ॥

---

१ शीशा अथवा रँगेका रसकरके तैल काँजी आदिमें बुझाना चाहे तो प्रथम उस तेल काँजीके पात्रको चिली (छिद्रदार पात्र) से ढक देवे फिर उस छिद्रद्वारा शीशे आदिको गेरे अन्यथा वह रसरूप शीशा आदि उछलकर वैद्यके देहपर पडनेसे मारडालेगा ।

अर्थ—सुवर्णका अग्निके संयोगसे रस करके उसमे सोलहवाँ हिस्सा शीशा डालके ढाल देवे। फिर उसका रेतीसे चूर्ण करके नीबूके रसमे खरल कर गोला बनावे। उस गोलाके समानभाग शुद्ध गंधक लेकर चूर्ण करे। मिट्टीके दो सरावे लेकर एक सरावेमे आधा गंधक नीचे बिछावे और आधा ऊपर बिछाय बीचमे उस गोलेको रखके दूसरे सरावेसे मुख बंद करके कपरमिट्टी कर तीक्ष्ण आरने उपलोंकी आँचमें रखके फूंक देवे। इस प्रकार बारबार घोटे और बारंबार अग्निदेवे। ऐसे सात अग्नि देनेसे सुवर्णकी उत्तम भस्म होतीहै और यह मित्रपंचक मिलाकर जिवानेसेभी नहीं जीवे।

सुवर्णभस्मकी तीसरी विधि।

कांचनाररसैर्घृष्ट्वासमसूतकगंधयोः॥ कज्जलीहेमपत्राणिलेपयेत्सममात्रया ॥ १० ॥ कांचनारत्वचःकल्कंमूषायुग्मंप्रकल्पयेत् ॥धृत्वातत्संपुटेगोलंमृन्मूषासंपुटेचतत् ॥ ११ ॥ निधायसंधिरोधंचकृत्वासंशोष्यगोमयैः॥ वह्निंखरतरंकुर्यादेवंदद्यात्पुटत्रयम् ॥१२॥ निरुत्थंजायतेभस्मसर्वकार्येषुयोजयेत् ॥ कांचनारप्रकारेणलांगलीहन्तिकांचनम् ॥१३॥ ज्वालामुखी यथाहन्यात्तथाहंतिमनःशिला ॥

अर्थ—पारा और गंधक दोनो समान भाग लेवे। दोनोको खरलमे डाल कचनारके रससे खरल करके कजली करे। उस कजलीको समानभाग सुवर्णके पत्रोंपर लेप करे। फिर कचनारकी छालको पीस कल्क करके उसकी दो मूस बनावे। उस एक मूसमें सोनेके पत्र रखके उसपर दूसरी मूसको रख दोनोंकी संधि मिलाय एक गोला बनावे। उस गोलेको मिट्टीके सरावेमे रख दूसरेसे बंद करके कपडमिट्टी कर देवे। फिर धूपमे सुखाय तीव्र आरने उपलोंकी अग्नि देवे। इसप्रकार तीन अग्निके पुट देवेतो सुवर्णकी उत्तम भस्म होय फिर किसी प्रकार नहीं जीवे। यह भस्म संपूर्ण रोगोपर देनी चाहिये। इसी प्रकार कलयारीके रसमें पारे गंधकको खरल कर कजली करे औ सुवर्णके पत्रोंपर लेपकर कलयारीकी मूसमें रख सरावसंपुटमे धरके फूक देवे तो सुवर्णकी भस्म होय। इसी प्रकार ज्वालामुखीके रसमें घोट पत्रोंपर लेप कर मूसमें रख सरावसंपुटमे फूके तो भस्म होय। तथा मनशिलमें कजली कर लेप करे और मूसाद्वारा सरावसंपुटमे फूंक देय तो भी सुवर्णकी उत्तम भस्म होय।

सुवर्णभस्मकी अन्य विधि।

शिलासिंदूरयोश्चूर्णंसमयोरर्कदुग्धकैः ॥ १४ ॥ सप्तैवभावना

१ "कोकिलैः" ऐसाभी पाठांतर है तहाँ कोकिल कहिये कौले।

दद्याच्छोपयेच्चपुनःपुनः ॥ ततस्तुगालितेहेम्निकल्कोयंदीयते समः ॥१५॥ पुनर्धमेदतितरांयथाकल्कोविलीयते ॥ एवंवेलात्रयंदद्यात्कल्कंहेममृतिर्भवेत् ॥ १६ ॥

अर्थ—मनशिल और सिंदूर समान भाग लेकर वारीक चूर्ण करके आकके दूधमें खरल कर धूपमें सुखायले इस प्रकार सात पुट देवे । फिर सुवर्णको गलायके उस सुवर्णके समान ऊपर लिखा मनसिल और सिंदूरका चूर्ण डाले जब यह चूर्ण मिलकर नष्ट होजावे तबतक अग्निमें रख धौंकनीसे अत्यत धमावे । फिर समान भाग मनशिलादिकोका चूर्ण डाले और धमावे । इसप्रकार तीन वार करनेसे सुवर्णकी उत्तम भस्म होवे ।

सुवर्णभस्मका प्रकारांतर।

पारावतमलैर्लिंपेदथवाकुक्कुटोद्भवैः॥हेमपत्राणितेषांचप्रदद्यादधरोत्तरम् ॥ १७ ॥ गंधचूर्णसमंदत्वाशरावयुगसंपुटे ॥ प्रदद्यात्कुक्कुटपुटंपंचभिर्गोमयोपलैः ॥१८॥ एवंनवपुटान्दद्याद्दशमंचमहापुटम्॥त्रिंशद्वनोपलैर्देयंजायतेहेमभस्मकम् ॥१९॥ सुवर्णचभवेत्स्वादुतिक्तंस्निग्धंहिमंगुरु ॥ बुद्धिविद्यास्मृतिकरं विषहारिरसायनम् ॥ २० ॥

अर्थ—सुवर्णके पत्र करके उनपर कवूतर अथवा मुरगेकी वींटका लेप करके उन पत्रोंके समानभाग गधकका चूर्ण करके मिट्टीके सरावेमे आधी विछावे । उसपर सुवर्णके पत्र रखके फिर आधी गधक ऊपरसे डालदेवे फिर दूसरे सरावेसे वंदकरके कपडमिट्टी कर धूपमे सुखायले । फिर इसको गौके गोवरके वडे २ पाच उपले लेके अग्नि देवे । ऐसे नौपुट देकर दशवा तीस उपलोका महापुट देवे इसप्रकार महापुट देनेसे सुवणकी उत्तम भस्म होवे । अव इस भस्मके गुण कहतेहैं ।

यह मधुर (मीठी) तिक्त (कडवी) स्निध (चिकनी) शीतल और भारी है । यह भस्म वुद्धिकर्त्ता, विद्याकर्त्ता, स्मरणशक्ति बढानेवाली, तथा विपवाधाका नाशकरनेवाली और रसायन है।

रौप्य (चाँदी)की भस्म।

भागैकंतालकंमर्द्यंयामसम्लेनकेनचित् ।।तेनभागत्रयंतारपत्राणिपरिलेपयेत्॥२१॥धृत्वामूषापुटेरुद्ध्वापुटेत्रिंशद्वनोपलैः ॥

सम्उद्धृत्यपुनस्तालंदत्वारुद्ध्वापुटेपचेत् ॥ २२ ॥
एवंचतुर्दशपुटैस्तारंभस्मप्रजायते ॥

अर्थ—एकभाग हरताल लेकर कागदी नींबूके रसमें १ प्रहर खरल करे। फिर हरतालके तीन भाग रूपेके पत्र लेकर उनपर उस हरतालके कल्कका लेप करे। फिर उनको एकके ऊपर एक रखके मिट्टीके सरावसम्पुटमें रख कपडमिट्टी करके धूपमे सुखायले। फिर तीस आरनेउपलों-के बीचमे उस सरावसंपुटको रखके फूंक देवे। इसप्रकार चौदह अग्निपुट देवे तो रूपेकी उत्तम भस्म होवे।

रूपेके भस्मकरनेकी दूसरी विधि।

स्नुहीक्षीरेणसंपिष्टंमाक्षिकंतेनलेपयेत् ॥ २३ ॥
तालकस्यप्रकारेणतारपत्राणिबुद्धिमान् ॥
पुटेच्चतुर्दशपुटैस्तारंभस्मप्रजायते ॥ २४ ॥

अर्थ—सुवर्णमाक्षिक एक भाग लेकर चूर्ण करे। फिर उसको थूहरके दूधमे १ प्रहर खरल कर सुवर्णमाक्षिकसे तिगुने चांदीके पत्र ले उनपर पूर्वोक्त सुवर्णमाक्षिकके कल्कका लेपकरके मिट्टी-के सरावसंपुटमें रखके कपडमिट्टीकर धूपमें सुखायले। पश्चात् उसको आरने उपलोंके बीचमें रखके अग्नि देवे। इसप्रकार चौदह पुट देवे तो रूपेकी भस्म होय।

ताम्रभस्मकी विधि।

सूक्ष्माणिताम्रपत्राणिकृत्वासंस्वेदयेद्बुधः ॥ वासरत्रयमम्लेनत-तःखल्वेविनिक्षिपेत् ॥२५॥ पादांशंसूतकंदत्वायाममम्लेनम-र्दयेत्॥ततउद्धृत्यपत्राणिलेपयेद्द्विगुणेनच ॥२६॥ गंधकेनाम्ल-घृष्टेनतस्यकुर्याच्चगोलकम् ॥ ततःपिष्ट्वाचमीनाक्षींचांगेरींवापु-नर्नवाम् ॥ २७ ॥ तत्कल्केनबहिर्गोलंलेपयेदंगुलोन्मितम् ॥ धृत्वातद्गोलकंभांडेशरावेणचरोधयेत् ॥ २८ ॥ वालुकाभिः प्रपूर्याथविभूतिलवणांबुभिः ॥ दत्वाभांडमुखेमुद्रांततश्चुल्ल्यां विपाचयेत् ॥२९॥ क्रमवृद्ध्याग्निनासम्यग्यावद्यामचतुष्टयम् ॥ स्वांगशीतलमुद्धृत्यमर्दयेत्सूरणद्रवैः ॥ ३० ॥ दिनैकंगोलकं कुर्याददधंगंधेनलेपयेत् ॥ सघृतेनततो मूषापुटेगजपुटेप

चेत् ॥ ३१ ॥ स्वांगशीतंसमुद्धृत्यमृतंताम्रंशुभंभवेत् ॥ वांतिं-भ्रांतिंक्लमंमूर्च्छांनकरोतिकदाचन ॥ ३२ ॥

अर्थ–तावेके कंटकवेधी पत्रोंके वहुत वारीक नखके समान छोटे २ टुकडेकर उनको नींवूके रसमें डालके तीनवार थोडा २ स्वेदन करके पचावे । फिर उन पत्रोंको वाहर निकालके उन पत्रोंका चतुर्थांश पारा लेकर दोनोंको खरलमें डालके नींवूके रससे १ प्रहर घोटे । फिर उन तावेके पत्रोंको खरलसे निकालके उनकी दूनी गधक लेके उसको नींवूके रससे खरल करके उन तावेके पत्रोंपर लेप करके एक गोला वनावे । फिर मीनोंक्षी[1] (मछली) अथवा चूका अथवा पुनर्नवा (साँठ) इन तीनों वनस्पतियोंमेंसे जो मिले उसको पीसके उस ताम्रगोलके चारोंतरफ एक २ अगुल मोटा लेप करे । उस गोलको किसी पात्रमें धरके उसपर मिट्टीका शराव उलटा ढकके उसके ऊपर मुखपर्यंत वालू भर देवे । फिर राख और नमकको जलमे मिलायके उसकी उस पात्रके मुखपर मुद्रा देकर उस पात्रको चूल्हेपर चढाय क्रमसे मद, मध्य और तेज अग्नि चार-प्रहर देय । जव शीतल हो जावे तव वाहर निकालके सूरण (जमीकद) के रससे १ दिन खरल करे । फिर इसका गोला वनाय उसकी आधी गधकको घीमें पीसके उस गोलेके चारो तरफ लेप करे फिर मिट्टीके दो सराव लेय गोलेको एक सरावेमें रखके दूसरेसे वद करके कपडमिट्टीकरके आरने उपलेके गजपुटमें[2] रखके फूँक देवे । जव शीतल हो जावे उस सरावसंपुटको वाहर निकाल उसमेंसे ताम्रभस्मको वुद्धिमानोंसे निकाल लेवे । यह भस्म परमोत्तम गुण देनेवाली है इससे वमन, भ्रांति, अग्नि और मूर्च्छा कदापि नहीं होती है ।

जस्तकी भस्म ।

अर्कक्षीरेणसंपिष्टोगंधकस्तेनलेपयेत् ॥ समेनारस्यपत्राणिशु-द्धान्यम्लद्रवैर्मुहुः ॥ ३३ ॥ ततोमूषापुटेधृत्वापुटेद्गजपुटेनच ॥ एवंपुटद्वयेनैवभस्मारंभवतिध्रुवम् ॥ ३४ ॥ आरवत्कांस्यम-प्येवंभस्मतांयातिनिश्चितम् ॥ अर्कक्षीरंवटक्षीरंनिर्गुंडीक्षीरिका[3] तथा ॥ ३५ ॥ ताम्ररीतिध्वनिवधेसमगंधकयोगतः ॥

---

१ मीनाक्षीको मत्स्याक्षी कहते हैं अर्थात् कुटकी जाननी ऐसा किसीका मत है ।

२ सवा हाथ गहरा सवा हाथ चौडा और इतनेही लंवे गड्ढेमें आरने उपलोको भरके वीचमें औषधिके संपुटको रखके अग्नि देनेको गजपुट कहते हैं । परन्तु यह प्रमाण ठीक नहीं है रसराजसुदरके मध्यभागमें यन्त्राध्यायमे लिखा है सो देखो ।

३ अर्कक्षीरवटाज्यं स्यात्क्षीरं निर्गुडिका तथा । इति पाठांतरम् ।

अर्थ—जस्तेके अथवा पीतलके पत्र करके अग्निमें तपाय सातवार अथवा तीनवार नींबूके रसमें बुझाके शुद्ध करे। फिर उन पत्रोंके समान भाग गंधक लेकर आकके दूधमें खरल कर उन तांबेके पत्रोंपर लेप कर मिट्टीकी मूसेम रखके दूसरी मूसमें उसका मुख बंद कर देवे और कपड मिट्टी करके आरने उपलोंके गजपुटमें धरके फूंक देवे। इस प्रकार दो अग्निपुट देनेसे शीशाकी अथवा पीतलकी निश्चय भस्म होवे। इसी प्रकार काँसेकी भस्म होती है। ताँवा पीतल और काँसा इनके मारनेकी दूसरी विधि कहते हैं।

ताँवा पीतल और काँसा इनमेंसे जिसकी भस्म करनी होय उसकी बराबर गंधक लेकर आकके अथवा बडके अथवा गौके दूधमें खरल करे। अथवा निर्गुंडीके रसमे खरल करके उन पत्रोंपर पृथक् २ लेप करे। पृथक् आरने उपलोंके दो पुट देवे तो उक्तताम्र आदि धातुओंकी भस्म होय।

शीशेकी भस्म।

तांबूलीरससंपिष्टशिलालेपात्पुनःपुनः॥ ३६॥
द्वात्रिंशद्भिःपुटैर्नागोनिरुत्थोयातिभस्मताम्॥

अर्थ—नागरवेलके पानोका रस निकालके उसमे मनशिलको पीसे इस मनशिलके समानभाग शीशेके पत्रोंपर उस (मनशिल) का लेप करे मिट्टीके दो शरावे ले एकमें उन शीशेके पत्रोको रखके दूसरेसे उसको बंद करके कपडमिट्टीकर धूपमें सुखाय फिर गड्ढा खोदके आरने उपलोसे भरके गजपुटकी अग्नि देवे। इस प्रकार बत्तीस अग्नि देवे तो शीशकी भस्म होय फिर नहीं जीवे। इसको नागभस्म अथवा नागेश्वर कहते हैं।

शीशेमारणका दूसराप्रकार।

अश्वत्थचिंचात्वक्चूर्णंचतुर्थांशेननिक्षिपेत्॥ ३७॥ मृत्पात्रे द्राविते नागे लोहदर्व्याप्रचालयेत्॥ यामैकेनभवेद्भस्मतत्तुल्यां चमनःशिलाम्॥ ३८॥ कांजिकेनद्वयंपिष्ट्वापचेद्गजपुटेनच॥ स्वांगशीतंपुनःपिष्ट्वाशिलयाकांजिकेनच॥ ३९॥ पुनःपुटे-च्छरावाभ्यामेवंषष्टिपुटैर्मृतिः॥

अर्थ—मिट्टीके खिपडेको चूल्हेपर चढाय उसमें शीशाको डालके पिंघलावे (टघरावे) जब रसरूप होजावे तब पीपलकी छाल, इमलीकी छाल इन दोनोका चूर्ण शीशेके चौथाई लेवे उसको उस तरह हुए शीशेके रसपर थोडा २ बुरकता जावे और लोहेकी कलछीसे चलाता जावे इस प्रकार १ प्रहर करनेसे शीशेकी भस्म होय। उस भस्मके समान मनशिल लेकर दोनोंको काँजीमें

खरल करे । फिर मिट्टीके दो शरावे ले एकमें उस भस्मको रक्खे और दूसरेसे उसका मुख बंद कर कपडमिट्टी करके गड्ढा खोद उसमें आरने उपले भरे और बीचमें शरावसंपुटको रखके ऊपरसे फिर आरने उपले भरे । इस प्रकार गजपुटकी अग्नि देवे । जब शीतल होजावे तब बाहर निकाल लेवे । फिर इसमें समानभाग मनशिल मिलायके दोनोंको कॉजीमें खरल कर मिट्टीके सरावसपुटमें डालके कपडमिट्टी करके धूपमें सुखाय आरने उपलेंकी अग्नि देवे । इस प्रकार ६० साठपुट देनेसे शीशेकी उत्तम भस्म हो ।

राँगभस्मप्रकार ।

मृत्पात्रेद्राविते वंगे चिंचाश्वत्थत्वचोरजः ॥४०॥ क्षिप्त्वा तेन चतुर्थांशमयोदर्व्या प्रचालयेत् ॥ ततो द्वियाममात्रेण वंगभस्म प्रजायते ॥ ४१ ॥ अथ भस्मसमं तालं क्षिप्त्वाम्लेन प्रमर्दयेत् ॥ ततो गजपुटे पक्त्वा पुनरम्लेन मर्दयेत् ॥ ४२ ॥ तालेन दशमांशेन याममेकं ततः पुटेत् ॥ एवं दशपुटैः पक्वो वंगस्तु म्रियते ध्रुवम् ॥४३॥

अर्थ–मिट्टीके खिपडेको चूल्हेपर चढाय उसमें रॉगको डालके तपावे । जब रसरूप होजाय तब इमलीकी छाल और पीपलकी छाल इन दोनोंका चूर्ण रॅगमे चतुर्थांश लेकर उस गलेहुए रॅगपर थोडा २ डालता जावे और लोहेकी कड्छीसे चलाता जाय । इस प्रकार दो प्रहर करे तो रांगकी भस्म होय । फिर इस भस्मके समान हरताल लेकर दोनोंको नींबूके रसमें खरल करके मिट्टीके शरावेमें सपुट करके ऊपरसे कपडमिट्टी कर देवे । गड्ढा खोदकर आरने उपलोंके गजपुटमें रखके फूँख देवे । जब स्वागशीतल होजावे तब बाहर निकालके उस भस्मका दशवॉ हिस्सा हरताल ले नींबूके रसमें दोनोंको खरल कर शरावसंपुटमे रख कपडमिट्टी करके धूपमे सुखाय ले । फिर आरने उपलेके गजपुटमें रखके फूख देव । इस प्रकार इसमें दश अग्निपुट देवे तो रॉगकी निश्चय उत्तम भस्म होवे । इसको वंगभस्म कहते हैं । और इसी रॉगमें प्रथम गलायके पारा मिलावे फिर उसके पत्र करके भस्म करे तो वह वंगेश्वर कहाता है ।

लोहभस्मप्रकार ।

शुद्धं लोहभवं चूर्णं पातालगरुडीरसैः ॥ मर्दयित्वा पुटेद्वह्नौ दद्यादेवं पुटत्रयम् ॥ ४४ ॥ पुटत्रयं कुमार्याश्च कुठारच्छिन्नकारसैः ॥ पुटषट्कं ततो दद्यादेवं तीक्ष्णमृतिर्भवेत् ॥ ४५ ॥

अर्थ–पोलाद अथवा खेरी लोहका रेतीसे चूरा करके पातालगरुडी (छिलहिटा) के रसमें खरल कर शरावसंपुटमें भरके कपडमिट्टी कर आरने उपलोंके सपुटमें रखके

फूंक देवे। इसप्रकार तीन अग्निपुट देवे। तथा घीगुवारके रसकी तीन अग्निपुट देवे एव वन-तुलसीके रसकी (अथवा कसौंदी के) रसकी छः अग्निपुट देय । इसप्रकार बारह पुट देनेसे पोलाद आदि लोहोंकी उत्तम भस्म होय। इसमे जो बारह पुट कहे हैं उन्हें गजपुट जानना ।

लोहभस्मका दूसराप्रकार।

क्षिपेद्द्वादशकांशेनपारदंतीक्ष्णलोहतः ॥ मर्दयेत्कन्यकाद्रावैर्यामयुग्मंततः पुटेत् ॥४६॥ एवंसप्तपुटैर्मृत्युंलोहचूर्णमवाप्नुयात् ॥ रसैःकुठारच्छिन्नायाःपातालगरुडीरसैः ॥४७॥ स्तन्येनचार्कदुग्धेनतीक्ष्णस्यैवंमृतिर्भवेत् ॥

अर्थ—खेडीलोहको रेतीसे चूर्णकर उस चूर्णका बारहवाँ हिस्सा हींगलू लेकर घीगुवारके रसमें दोनोंको दोप्रहर खरल करे तब मिट्टीके सरावसंपुटमें भरके कपडमिट्टीकर आरनेउपलोंके बीचमें रखके फूंकदेवे। इसप्रकार सात पुट देय तो पोलाद और खेडी आदि लोहकी उत्तम भस्म होय। लोहभस्म करनेका दूसरा प्रकार और कहते हैं।

छिलहिंटाके रस अथवा स्त्रीके दूधमे तथा गौके दूधमें अथवा पियावासा अथवा आकके दूधमें सिंगरफ मिलाय पोलाद लोहेको घोटके पृथक् २ सात अग्नि देवे तो तीक्ष्ण लोहेकी उत्तम भस्म होय।

लोहभस्मका तीसराप्रकार।

सूतकाद्द्विगुणंगंधंदत्वाकुर्याच्चकज्जलीम् ॥४८॥ द्वयोःसमंलोहचूर्णंमर्दयेत्कन्यकाद्रवैः ॥ यामयुग्मंततःपिंडंकृत्वाताम्रस्य पात्रके ॥४९॥ घर्मेधृत्वारुबूकस्यपत्रैराच्छादयेद्बुधः ॥ यामार्धेनोष्णताभूयाद्धान्यराशौन्यसेत्ततः ॥५०॥ तस्योपरिशरावंतुत्रिदिनांतेसमुद्धरेत् ॥ पिष्ट्वाचगालयेद्वस्त्रादेवंवारितरंभवेत् ॥५१॥ एवंसर्वाणिलोहानिस्वर्णादीन्यपिगालयेत् ॥ शिलागंधार्कदुग्धाक्ताःस्वर्णाद्यासर्वधातवः ॥५२॥ म्रियंतेद्वादशपुटैःसत्यंगुरुवचोयथा ॥

अर्थ—पारा एकभाग और गंधक दो भाग लेके दोनोकी कजली करे। फिर उस कजलीके समानभाग पोलादका चूरा लेवे। सबको घीगुवारके रसमें दोप्रहर पर्यन्त खरलकरके गोला बनावे।

उसको तांबेके पात्रमें रखके उसके ऊपर अडके पत्ते दो अथवा तीन ढकके चारघडीपर्यंत धूपमें रखदेवे जब वह गोला गरम होजावे तब मिट्टीके शरावेसे उस तांबेके पात्रका मुख बंद करके धानकी राशि (अन्नकी खत्ती) मे तीनदिन पर्यन्त गाडदेवे। फिर चौथे दिन बाहर निकालके उस लोहकी भस्मको कपडछान करके इसको पानीमें डाले। यदि पानीमें तरने लगे तो उस भस्मको उत्तम हुई जाननी। इसप्रकार सपूर्ण लोहोंकी भस्म कपडेसे छानके पानीमें डालके देखे। यदि पानीमें तरनेलगे तो उत्तम भस्म हुई जाननी। अब दूसरे प्रकारसे संपूर्ण धातुओंकी भस्म करनेकी विधि।

मनशिल और गधक इन दोनोको आकके दूधमें पीसके सुवर्णआदि संपूर्ण धातुओंपर लेप करके आरनेउपलोंकी बारह गजपुट अग्नि देवे तो संपूर्ण धातुओंकी भस्म होवे। इस विषयमें दृष्टांत है जैसे गुरुका वचन सत्य होताहै उसी प्रकार इस प्रयोग करके सपूर्ण धातुओंकी निश्चय भस्म होवे।

सात उपधातु।

माक्षिकंतुत्थकाभ्रौचनीलांजनशिलालकाः ॥ ९३ ॥
रसकश्चेतिविज्ञेयाएतेसप्तोपधातवः ॥

अर्थ—१ सुवर्णमाक्षिक (सोनामक्खी) २ लीलाथोथा ३ अभ्रक ४ सुरमा ५ मनशिल ६ हरताल और ७ खपरिया ये सात उपधातु जाननी।

सुवर्णमाक्षिकका शोधन और मारण।

माक्षिकस्यत्रयोभागाभागैकंसैंधवस्यच ॥ ९४ ॥ मातुलुंगद्रवैर्वाथजंबीरोत्थद्रवैःपचेत् ॥ चालयेल्लोहजेपात्रेयावत्पात्रंसुलोहितम् ॥ ९५ ॥ भवेत्ततस्तुसंशुद्धिंस्वर्णमाक्षिकमृच्छति ॥ कुलत्थस्यकषायेणघृष्टातैलेनवापुटेत् ॥ ९६ ॥ तक्रेणवाजमूत्रेणाम्रियतेस्वर्णमाक्षिकम् ॥

अर्थ—सुवर्णमाक्षिक तीन भाग और सैंधानमक एक भाग दोनोंका चूर्ण कर दोनोंको लोहेकी कडाहीमें डालके चूल्हेपर चढायके नीचे अग्नि जलावे फिर इसमें बिजोरेका रस अथवा जमीरीका रस डालके लोहकी कलछोंसे घोटे। जब कढाई लाल होजावे तब नीचे उतार लेय। जब शीतल होजावे तब सुवर्णमाक्षिककी भस्मको उसमेंसे निकाल लेवे। इस प्रकार शोधन करके उन सोनामक्खीको कुलथीके काढेमें, तिलके तेलमें, छाँछमें अथवा गोमूत्रमे खरलकर सरावसंपुटमें रखके कपडमिट्टीकर आरनेउपलोंकी अग्निमें फूंक देय तो सुवर्णमाक्षिककी भस्म होय।

रौप्यमाक्षिकका शोधन और मारण।

कर्कोटीमेषशृंगुत्थैर्द्रवैर्जंबीरजैर्दिनम् ॥ ५७ ॥
भावयेदातपेतीव्रेविमलाशुद्धयतिध्रुवम् ॥

अर्थ—रूपामाखीका चूर्ण कर ककोडा मेढासिंगी और जंभीरी इन तीनोंके रसमे एक २ दिन खरलकर धूपमें धरनेसे रौप्यमाक्षिक (रूपामाखी) शुद्ध होय। इसका मारण सुवर्णमाक्षिकके समान जानना।

लीलेथोथेका शोधन।

विष्टयामर्दयेत्तुत्थंमार्जारककपोतयोः ॥ ५८ ॥ दशांशंटंकणं दत्त्वापचेन्मृदुपुटेततः ॥ पुटंदध्नःपुटंक्षौद्रैर्देयंतत्थविशुद्धये ॥५९॥

अर्थ—बिल्ली और कबूतर (अथवा पिंडुकिया) इनकी विष्ठा लीलेथोथेके समान तथा लीलेथोथेका दशवाँ हिस्सा सुहागा लेकर सबको एकत्र करके खरल करे और मिट्टीके शरावसंपुटमें भर कपडमिट्टीकर आरने उपलोंकी हलकी अग्निदेवे। फिर बाहर निकाले दहीमे खरलकर इसी प्रकार अग्नि देवे। फिर सहतमें खरल करके अग्नि देय तो लीलेथोथेकी शुद्धि होवे।

अभ्रकका शोधन और मारण।

कृष्णाभ्रंकंधमेद्वह्नौततःक्षीरेविनिक्षिपेत् ॥ भिन्नपत्रंतुतत्कृत्वा तंदुलीयाम्लयोर्द्रवैः ॥ ६० ॥ भावयेदष्टयामंतदेवंशुद्धयति चाभ्रकम् ॥ कृत्वाधान्याभ्रकंतत्तुशोषयित्वाथमर्दयेत् ॥६१॥ अर्कक्षीरैर्दिनंखल्वेचक्राकारंचकारयेत् ॥ वेष्टयेदर्कपत्रैश्चसम्य-ग्गजपुटेपचेत् ॥ ६२॥ पुनर्मर्द्यंपुनःपाच्यंसप्तवारंप्रयत्नतः ॥ ततोवटजटाक्काथैस्तद्वद्देयंपुटत्रयम् ॥६३ ॥ म्रियतेनात्रसंदेहः सर्वरोगेषुयोजयेत्॥मृतंत्वभ्रंहरेन्मृत्युंजरापलितनाशनम् ॥६४॥ अनुपानैश्चसंयुक्तंतत्तद्रोगहरंपरम् ॥

अर्थ—काली अभ्रक अर्थात् वज्राभ्रकको कोलेमें डालके धोंकनीसे अथवा फूंकनीसे फूककर तपावे। जब लाल होजावे तब निकालके दूधमें बुझाय दे। फिर उसके पृथक् २ पत्र करके चौलाईका रस और नींबूका रस दोनोंको एकत्र करके उसमे उन पत्रोको आठ प्रहर पर्यंत भिगोय देवे तो अभ्रक शुद्ध होय।

फिर उस अभ्रकको उस रसमेंसे निकालके उसका धान्याभ्रक कर उसको आकके दूधमें एक प्रहर पर्यंत खरलकर गोल २ चक्रके आकार टिकिया बनावे । उनके चारोंतरफ आकके पत्ते लपेटके मिट्टीके सरावसपुटमें भर उस पर कपडमिट्टी करके धूपमें सुखाय लेवे । फिर उसको आरनेउपलोंके गजपुटमे रखके फूंक देवे । इस प्रकार आकके दूधमें १ एक दिन खरल करे और रात्रिमे पुट देवे ऐसे सात पुट देय । फिर बडकी जटाके काढेमे उस अभ्रकको एक २ दिन खरल करे और अग्नि देवे इस प्रकार तीन गजपुट देय । ऐसी अग्नि देय तो अभ्रककी उत्तम भस्म होय इसमे संशय नहीं है । इस अभ्रकसे सपूर्ण रोग दूर होवें तथा अकाल मृत्युका भी निवारण हो बुढापा दूर हो, सफेद बालोंके काले बालहों तथा इसको जैसे २ अनुपानके साथ जिस २ रोगमें देय तो यह वैसे २ गुणोंको करता है ।

दूसरी विधि ।

शुद्धंधान्याभ्रकंमुस्तंशुंठीषड्भागयोजितम् ॥ ६५ ॥ मर्दयेत्कांजिकेनैवदिनंचित्रकजैरसैः ॥ ततोगजपुटंदद्यात्तस्मादुद्धृत्यमर्दयेत् ॥ ६६ ॥ त्रिफलावारिणातद्वत्पुटेदेवंपुटैस्त्रिभिः ॥ बलगोमूत्रमुसलीतुलसीसूरणद्रवैः॥ ६७ ॥ मर्दितंपुटितंवह्नौ त्रिस्त्रिवेलंभ्रजेन्मृतिम् ॥

अर्थ—जिस प्रकार प्रथम विधिकी टिप्पणीमें धान्याभ्रक करनेकी विधि कह आयेहैं उस प्रकारसे शुद्ध कियाहुआ धान्याभ्रक लेवे उस धान्याभ्रकका छठा हिस्सा नागरमोथा और सोंठ इनका चूर्ण करके उसमें मिलावे । फिर उसको कांजीमें १ दिन खरल करे । पश्चात् एकदिन चीतेकी रसमें खरल करके मिट्टीके सरावसपुटमें रखके कपडमिट्टी कर आरनेउपलोके गजपुटमें रखके फूक देवे । जब शीतल होजावे तब उसको बाहर निकालके त्रिफलेके काढेने नित्य प्रति मर्दन करे इस प्रकार तीन दिन करे और तीनही गजपुटकी आच देवे । पश्चात् खरेंटीका रस अथवा खरेंटीका काढा, गोमूत्र, मुसलीका काढा, तुलसीके, पत्तोंका रस और जमीकन्द इन पाचोंके रसमें अभ्रकको पृथक् खरल करावे । एक एकके तीन २ गजपुट देवे । इस प्रकार गजपुटकी अग्नि देनेसे अभ्रककी परमोत्तम भस्म होय ।

---

१ धान्याभ्रककी यह विधि है कि, कतरीहुई अभ्रकको लेकर चतुर्थांश चावलोंके धानको मिलायके उनको कंबलमें पोटली बाँधके परातमें रक्खे । फिर उसपर जल डालताजाय और हाथोंसे उस पोटलीको मीडताजावे । इस प्रकार करनेसे उस कंबलमें जितना अभ्रक होगा वह वह वह सब उस परातके पानीमे आजावेगा । जब जाने कि सब अभ्रक परातमे आगया तब उस परातके पानीको नितारके पटकदेवे और उस अभ्रकके चूरेको लेकर धूपमें सुखायले । इसे धान्याभ्रक कहते हैं ।

सुरमा और गैरिकादिकोंका शोधन।

नीलांजनंचूर्णयित्वाजंबीरद्रवभावितम् ॥ ६८॥ दिनैकमातपे शुद्धंभवेत्कार्येषुयोजयेत् ॥ एवंगैरिककाशीसटंकणानिवराटिका ॥ ६९ ॥ तुवरीशंखकंकुष्ठंशुद्धिमायातिनिश्चितम् ॥

अर्थ—सुरमाका चूर्ण करके जमीरीके रसमें खरलकर एक दिन धूपमें राखे तो सुरमा शुद्ध होय। फिर इसको रोगादिकोंपर देना चाहिये। इसीप्रकार गेरू हीराकसीस सुहागा कौडी फिटकरी शख और मुरदासंग इन सबकी शुद्धि करनी चाहिये।

मनशिलका शोधन।

पचेत्त्र्यहमजामूत्रेदोलायंत्रेमनःशिलाम् ॥ ७० ॥
भावयेत्सप्तधापित्तैरजायाःशुद्धिमृच्छति ॥

अर्थ—मनशिलको दोलायंत्रमें डालके बकरीके मूत्रमें तीन दिन पचावे। फिर बाहर निकालके खरलमें डाल सात पुट बकरीके पित्तेकी देवे तो मनशिल शुद्ध होवे।

हरतालका शोधन।

तालकंकणशःकृत्वातच्चूर्णंकांजिकेक्षिपेत् ॥ ७१॥ दोलायंत्रेण यामैकंततःकूष्मांडजैर्द्रवैः॥ तिलतैलेपचेद्यामंयामंचत्रिफलाजलैः ॥ ७२ ॥ एवंयंत्रेचतुर्यामंपाच्यंशुद्ध्यतितालकम् ॥

अर्थ—हरतालके छोटे २ बारीक टुकडे कर उनको कपडेकी पोटलीमें बाँध दोलायंत्रद्वारा काजीमें एकप्रहर, पेठेके रसमें एकप्रहर, तिलके तेलमें १ प्रहर, तथा त्रिफलाके काढेमें १ प्रहर पचावे। इसप्रकार दोलायंत्रमें हरतालको चारप्रहर पक्व करनेसे शुद्ध होती है।

खपरियाका शोधन।

नृमूत्रेवाथगोमूत्रेसप्ताहंरसकंक्षिपेत् ॥ ७३ ॥
दोलायंत्रेणशुद्धिःस्यात्ततःकार्येषुयोजयेत् ॥

अर्थ—खपरियाको दोलायंत्रमें डालके मनुष्यके मूत्रमें सात दिन अथवा गोमूत्रमे सात दिन पचानेसे खपरिया शुद्ध हो तब इसको औषधमें मिलावे।

अभ्रकहरतालआदिसे सत्वनिकालनेकी विधि।

लाक्षामीनपयश्छागंकंकणंमृगशृंगकम् ॥७४॥ पिण्याकंसर्व-

१ काढे आदि पतली वस्तुको किसी गगरे आदिमें भरके जो औषध शोधनी होवे उसकी पोटली बांधके लटकाय देवे इस प्रकार स्वेदनविधि करनेको दोलायंत्र कहते हैं।

पाःशिग्रुगुंजोर्णागुडसैंधवाः ॥ यवास्तिक्ताघृतंक्षौद्रंयथालाभं विचूर्णयेत् ॥७५॥ एभिर्विमिश्रिताःसर्वेधातवोगाढवह्निना॥ मूषाध्माताःप्रजायंतेमुक्तसत्त्वानसंशयः ॥ ७६ ॥

अर्थ—१ लाख २ छोटी मछली ३ वकरीका दूध ४ सुहागा ५ हरिणका सींग ६ तिलोंकी-खल ७ सरसों ८ सहजनके वीज ९ घूंघची (चिरमिठी) १० मेंढाके वाल (ऊन) ११ गुड १२ सैंधानिमक १३ जौ १४ कुटकी १५ घी और १६ सहत ये सोलह वस्तु, हरताल आदि जिस वस्तुका सत्व निकालना होवे उस धातुका आठवाँ हिस्सा एक २ औषध लेकर सबका चूर्ण कर एकत्र गोलासे वनाय मूसमें रखके कोलोंकी आँचमें धोकनीसे खूब धमावे तो हरताल अथवा अभ्रक आदि उपधातुओंका सत्व निकले । इस प्रकार जिस वस्तुका सत्व निकालना हो निकाल लेवे । धातुओंका द्रवीकरण आदि विधि रसराजसुन्दर ग्रंथमें देखो ।

हीराका शोधन और मारण ।

कुलित्थकोद्रवक्काथेदोलायंत्रेविपाचयेत् ॥ व्याघ्रीकंदगतंव-ज्रंत्रिदिनंशुद्धिमृच्छति ॥ ७७ ॥ तप्तंतप्तंतुतद्वज्रंखरमूत्रेनिषे-चयेत् ॥ पुनस्ताप्यंपुनःसेच्यमेवंकुर्यात्त्रिसप्तधा ॥ ७८ ॥ मत्कुणैस्तालकंपिष्ट्वायावद्भवतिगोलकम् ॥ तद्गोलेनिहितंव-ज्रंतद्गोलंवह्निनाधमेत् ॥ ७९ ॥ सेचयेदश्वमूत्रेणतद्गोलेचाक्षि-पेत्पुनः ॥ रुद्ध्वाध्मातंपुनःसेच्यमेवंकुर्याच्चसप्तधा ॥ ८० ॥ एवंचम्रियतेवज्रंचूर्णंसर्वत्रयोजयेत् ॥

अर्थ—व्याघ्रीकंदको कूट पीस लुगदीकर उसमें हीराको रखके उसकी वस्त्रसे पोटली बनाय दोलायंत्रमें डालके कुथलीके काढेमे तीन दिन तथा कोदोंधान्यके काढेमें तीनदिन पचावे तो हीरा शुद्ध होय

फिर उस हीराको अग्निमें तपाय २ के गधेके मूत्रमे वुझावे इसप्रकार इक्कीसवार वुझावे । फिर खटमलोंमे मिलायके हरतालको पीस उसका गोला करके उस गोलेके वीचमे हीरेको रखके उसको मूसमें रखके कोलोकी तीव्र अग्निसे धमावे । जव अत्यन्त गरम होजावे तव उसको घोडेके मूत्रसे वुझाय देवे । फिर उस हीरेको निकाल ले

---

१ संपूर्ण औषधोंकी अपेक्षा सुहागा सत्व निकालनेवाली धातुका चतुर्थांश लेवे ऐसा किसी आचार्यका मत है ।

और पूर्वोक्त विधिसे हरतालको खटमलोंके रुधिरसे घोट गोला बनाय उसमें हीराको रखके उसीप्रकार कोलेमें धमावे। जब अत्यंत गरम होजाय तब घोडेके मूत्रमें बुझाय देवे इस प्रकार सातवार करे तो हीराकी उत्तम भस्म होय। फिर इस भस्मको संपूर्ण रोगोंमें देवे। (व्याघ्रीकंदको दक्षिणमें गुहेरीकंद कहते हैं और कोई कटेरीकी जड कोही व्याघ्रीकंद कहते हैं)।

हीरेकी भस्मकी दूसरी विधि।

हिंगुसैंधवसंयुक्तेकाथेकौलत्थजेक्षिपेत् ॥ ८१ ॥
तप्तंतप्तंपुनर्वज्रंभूयाच्चूर्णंत्रिसप्तधा ॥

अर्थ—हींग सैंधानमक और कुलथी इन तीनोंका काढाकर उसमें हीरेको तपाय २ के इकीसवार बुझावे तो हीरेकी भस्म होवे।

तीसरी विधि।

मडूकंकांस्यजेपात्रेनिगृह्यस्थापयेत्सुधीः ॥ ८२ ॥
सभीतोमूत्रयेत्तत्रतन्मूत्रेवज्रमावपेत्॥
तप्तंतप्तंचबहुधावज्रस्यैवंमृतिर्भवेत् ॥ ८३ ॥

अर्थ—मेंढकको काँसेके पात्रमें रक्खे जब वह डरकेमारे मूते तब उस मूत्रमें हीरेको तपाय २ के अनेकवार बुझावे तो हीरेकी भस्म होय।

वैक्रांतका शोधन और मारण।

वैक्रांतंवज्रवच्छोध्यंनीलंवालोहितंतथा॥ हयमूत्रेतुतत्सेच्यंतप्तंतप्तंत्रिसप्तधा॥ ८४ ॥ ततस्तुमेषशृंग्युत्थपंचांगेगोलकेक्षिपेत् ॥ पुटेन्मूषापुटेरुद्ध्वाकुर्यादेवंचसप्तधा ॥ ८५ ॥ वैक्रांतं भस्मतांयातिवज्रस्थानेनियोजयेत् ॥

अर्थ—वैक्रांत[1] (कासुला) मणि नीलमणि तथा पद्मराग (लाल) मणि इनका शोधन हीराके समान करे। फिर उस वैक्रांतमणिको तपाय २ के घोडेके मूत्रमें १४ चौदहवार बुझावे। पश्चात् मेंढासिंगीके पचांगको कूट पीस उसकी लुगदी करके उसमें इस वैक्रांतमणिको रखके सरावसंपुटमें धरके कपडमिट्टीकर आरनेउपलोंके गजपुटमें रखके फूंक देवे। इस प्रकार सात अग्नि देवे तो वैक्रांत मणिकी भस्म होय यह भस्म हीराकी भस्मके अभावमें देनी चाहिये।

---

१ उत्पन्न होते समय विकृतताको प्राप्तहोनेसे उसी हीराको वैक्रांत कहते हैं।

संपूर्ण रत्नोंका शोधन मारण ।

स्वेदयेद्दोलिकायंत्रेजयंत्याःस्वरसेनच ॥ ८६ ॥ मणिमुक्ताप्रवालानांयामैकंशोधनंभवेत् ॥ कुमार्यातंदुलीयेनस्तन्येनच निषेचयेत् ॥८७॥ प्रत्येकंसप्तवेलंचतप्ततप्तानिकृत्स्नशः ॥ मौक्तिकानिप्रवालानितथारत्नान्यशेषतः ॥ ८८ ॥ क्षणाद्विविध वर्णानिम्रियंतेनात्रसंशयः ॥ उक्तमाक्षिकवन्मुक्ताःप्रवालानिच मारयेत् ॥ ८९ ॥ वज्रवत्सर्वरत्नानिशोधयेन्मारयेत्तथा ॥

अर्थ—सूर्यकांतमणि मोती और मूंगा इनको दोलायत्रमें डालके अरना अथवा जाईके रसमें एक प्रहर पचावे तो ये शुद्ध होवें । फिर इनका मारण इसप्रकार करे । घीगुवारका रस चौलाईका रस तथा स्त्रीका दूध इन तीनोंमें उन मणि मोती और मूगा तथा और अन्य प्रकारके रत्नोको तपाय २ एक एकमें सात २ वार बुझावे तो क्षणमात्रमे सबकी भस्म होवे इस विषयमें संदेह नहींहै । तथा इनके मारणकी दूसरी विधि कहते हैं ।

सुवर्णमाक्षिकका जिस प्रकार मारण कहा है उसी प्रकार मोतियोका और मूंगका मारण करे । हीराके शोधन और मारणके सदृश संपूर्ण रत्नोंका शोधन मारण करना चाहिये ।

शिलाजीतका शोधन ।

शिलाजतुसमानीयग्रीष्मतप्ताशिलाच्युतम् ॥ ९० ॥ गोदुग्धैस्त्रिफलाक्वाथैर्भृंगद्रावैश्चमर्दयेत् ॥ आतपेदिनमेकैकंतच्छुष्कंशुद्धतांव्रजेत् ॥ ९१ ॥

अर्थ—ग्रीष्म ऋतुमें गरमी अधिक होती है इसीसे पर्वतमें जो बडी २ शिला होती हैं गरमीसे अत्यंत तपतीहैं तब उनसे रस गलकर जमजाताहै उसको शिलाजीत कहतेहैं उस शिलाजीतको लायके गौके दूधमें, त्रिफलेके काढेमें तथा भँगरेके रसमें पृथक् २ एक एक दिन खरलकर धूपमें धरके सुखाय लेवे तो शिलाजीत शुद्ध होवे ।

तथा दूसरा प्रकार ।

शुल्व्यांशिलाजतुशिलांसूक्ष्मखंडप्रकल्पिताम् ॥ निक्षिप्यात्युष्णपानीयेयामैकंस्थापयेत्सुधीः ॥ ९२ ॥ मर्दयित्वाततोनीरं गृह्णीयाद्वस्त्रगालितम् ॥स्थापयित्वाचमृत्पात्रेधारयेदातपेबुधः ॥९३॥ उपरिस्थंघनंचस्यात्तत्क्षिपेदन्यपात्रके ॥ धारयेदातपेधीमानुपरिस्थंघनंनयेत् ॥९४॥ एवंपुनःपुनर्नीत्वाद्विमासा-

भ्यांशिलाजतु ॥ भूयात्कार्यक्षमंवह्नौक्षितंलिंगोपमंभवेत् ॥
॥ ९५ ॥ निर्धूमंचततःशुद्धंसर्वकर्मसुयोजयेत् ॥ अधःस्थितं
चयच्छेषंतस्मिन्नीरंविनिक्षिपेत् ॥ ९६ ॥ विमर्द्यधारयेद्घर्मेपू-
र्ववच्चैवतन्नयेत् ॥

अर्थ—जिस पाषाणसे शिलाजीत उत्पन्न होता है उस पाषाणको उत्तम देखके लेवे उस पाषाणके बारीक २ टुकडे करके खलबलातेहुए गरम पानीमें एकप्रहर पर्यन्त भिगोवे । पश्चात् उन टुकडोको उसी पामीमे बारीक पीसके कपडेमें छान उस पानीको मिट्टीकी नाँदमें डालके धूपमें रख देवे । जब उस पानीपर मलाई आयजावे उसको उतारके दूसरे पात्रमें डालताजाय । इसप्रकार पृथक् २ पात्रमेसे वारवार सब मलाई उतारके दूसरे पात्रमे इकट्ठीकरे फिर उस दूसरे पात्रमेंभी गरम जल डालके उस शिलाजीतकी मलाईको मिलायके धूपमे धर देवे । जब उसमे मलाई पडे तब उतार २ के तीसरी नाँदमें डाले और उसमेंभी गरम जल डालके धूपमे धर देवे । जब उसमे मलाई आवे तब फिर पहली शुद्ध की हुई नाँदमें मलाईको इकट्ठीकरे । इस क्रमसे वरावर एकमेंसे निकाल कर दूसरेमे एकत्रकरे और पहिली नाँदमे जो नीचे गाद बैठ जावे उसको जलमे पीसके छान लेवे और इसी क्रमसे उसको धूपमे रखके मलाई उतार लियाकरे । इसप्रकार दोमहीने पर्यंत करे तो शिलाजितकी उत्तम शुद्धि होवे ।

इसकी परीक्षा इसप्रकार करे कि इसमेंसे थोडासा टुकडा तोडके अग्निमे डाले तो उसका पिंडीके समान धूमरहित आकार होताहै उसको शुद्ध शिलाजीत जानना । इसको सर्व कार्यमें देवे ।

मंडूरबनानेकी विधि ।

अक्षांगारैर्धमेत्किट्टंलोहजंतद्गवांजलैः ॥ ९७ ॥ सेचयेत्तप्ततप्तंतत्स-
प्तवारंपुनःपुनः ॥ चूर्णयित्वाततःक्वाथैर्द्विगुणैस्त्रिफलाभवैः ॥
॥ ९८ ॥ आलोड्यभर्जयेद्वह्नौमंडूरंजायतेवरम् ॥

अर्थ—बहेडेकी लकडियोंके कोलेकरके उसमे पुराने लोहकी कीटी डालके धोंके जब लालहोजावे तब उस कीटीको गोमूत्रमें बुझाय देवे । इसप्रकार सातवार तपाय २ के गोमूत्रमे बुझावे । फिर उस कीटीका बारीक चूर्ण करके उसका दूना त्रिफलेका काढा हाँडीमें भर उसमें उस कीटीके चूर्णको डालके अच्छी रीतिसे उस हाँडीके मुखको ढक मुखपर कपडमिट्टीकर देवे । पश्चात् उसको आरनेउपलोंकी गजपुटमे रखके फूक देय । जब शीतल होजावे तब उस हाँडीको बाहर निकाल उसमें उस कीटका जो शुद्ध मंडूर बनके तैयार होवे उसको निकाललेय तो परमोत्तम बने । इसे सब योगोंमें मिलावे ।

क्षारबनानेकी विधि ।

क्षारवृक्षस्यकाष्ठानिशुष्काण्यग्नौप्रदीपयेत् ॥ ९९ ॥ नीत्वातद्भस्ममृत्पात्रेक्षिप्त्वानीरेचतुर्गुणे ॥ विमर्द्यधारयेद्रात्रौप्रातरच्छं जलं नयेत् ॥१००॥ तन्नीरंक्काथयेद्वह्नौयावत्सर्वंविशुष्यति ॥ ततःपात्रात्समुल्लिख्यक्षारोग्राह्यःसितप्रभः ॥१०१॥ चूर्णाभःप्रतिसार्यःस्यात्पेयःस्यात्क्काथवत्स्थितः ॥इतिक्षारद्वयंधीमान्युक्तकार्येप्रयोजयेत् ॥ १०२ ॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेणविरचितायांसंहितायांचिकित्सास्थाने मध्यमखंडेधातुशोधनमारणंनामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अर्थ–जिन वृक्षोंसे खार निकलता है उन वृक्षोंकी लकडी पंचांग लाकर सुखायके जलाय लेवे । जब राख हो तब उस राखको मिट्टीके गगरेमें भर राखसे चौगुना जल डालके उस राखको उस पानीमे मिलायके रखदेवे । सुश्रुतमें ६ गुना जल डालना लिखा है इसप्रकार रात्रिभर धरी रहनेदे प्रातःकाल उस घडेमेंसे ऊपर ऊपरका नितराहुआ जल छोडके कढाईमे निकाल लेवे फिर उस कढाईको अग्निपर चढायके नीचे अग्नि जलायके उस पानीको जलाय देवे । इस प्रकार करनेसे पानी जल जावेगा उस कढाईमें चारोंतरफ सफेद २ खार चूर्णके समान लगाहुआ रह जावेगा उसको निकाल लेवे । इस क्षारको प्रतिसारी कहते हैं । इसको श्वासादि रोगोंपर देवे । तथा काढेके समान पतला जो क्षार रहता है उसको पेय कहते है । उस क्षारको गुल्मादिक रोगोंपर देवे । इस प्रकार पतला और चूर्णके समान ऐसे दो प्रकारका क्षार जानना ।

इति श्रीशार्ङ्गधरेमाथुरीभाषाटीकायामेकादशोऽध्याय.॥ ११ ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः १२.

पारदके नाम तथा सूर्यादिनवग्रहोंके नामकरके ताम्रादिनवधातुओंकी संज्ञा ।

पारदः[2]सर्वरोगाणांजेतापुष्टिकरःस्मृतः ॥ सुखेनसाधितःकुर्या-

---

१ आंगा इमली केला पलास थूहर चीता कटेरी मोखवृक्ष इत्यादि क्षारवृक्ष जानने ।

२ पारदः सर्वरोगाणां नेता इति पाठांतरम् ।

रससिद्धिंदेहलोहयोः ॥ १ ॥ रसेंद्रःपारदः सूतो हरजः सूतको रसः ॥ मुकुंदश्चेतिनामानिज्ञेयानिरसकर्मसु ॥ २ ॥ ताम्रतारनागाश्चहेमवंगौचतीक्ष्णकम् ॥ कांस्यकंकांतलोहंचधातवोनवयेस्मृताः ॥ ३ ॥ सूर्यादीनांग्रहाणांतेकथितानामभिः क्रमात् ॥

अर्थ-पारा संपूर्ण रोगोंका जीतनेवाला और देहको पुष्ट करनेवाला है वह चतुर मनुष्य करके बनाया हुआ देहकी और लोहकी तत्काल सिद्धि करता है अर्थात् खानेसे देहको अजर अमर करे और लोह (ताँवा राँगा आदि) मे डालनेसे सुवर्ण करता है । पारदके नाम १ रसेंद्र २ पारद ३ सूत ४ हरज ५ सूतक ६ रस और ७ मुकुंद ये सात नाम रस कर्ममे जहां २ आवे तहां पारदके जानने । १ ताम्र २ रूपा ३ जस्त ४ शीशा ५ सुवर्ण ६ राँगा ७ पोलाद ८ काँसा और ९ कातलोह ये नौ धातु क्रमसे सूर्यादि नवग्रहोंके नाम करके जानने । जैसे— जितने सूर्यके नाम हैं वे सब ताँबेके जानने, जितने चन्द्रमाके नाम वे सब रूपेके जानने, जितने मगलके नाम हैं वे सब जस्तके अथवा पीतलके जानने । इसी क्रमसे नवग्रहोंके नाम हैं वे नौ धातुओंके जानना ।

पारेका शोधन ।

राजीरसोनमूषायांरसंक्षिप्त्वाविबंधयेत् ॥४॥ वस्त्रेणदोलिकायंत्रेस्वेदयेत्कांजिकैस्त्र्यहम् ॥ दिनैकंमर्दयेत्सूतंकुमारीसंभवैर्द्रवैः ॥ ५ ॥ तयाचित्रकजैःक्वाथैर्मर्दयेदेकवासरम् ॥ काकमाचीरसैस्तद्वद्दिनमेकंचमर्दयेत् ॥ ६ ॥ त्रिफलायास्ततःक्वाथैरसोमर्द्यःप्रयत्नतः ॥ ततस्तेभ्यःपृथक्कुर्यात्सूतंप्रक्षाल्यकांजिकैः ॥ ७ ॥ ततःक्षिप्त्वारसंखल्वेरसादर्धंचसैंधवम् ॥ मर्दयेन्निंबुकरसैर्दिनमेकमनारतम् ॥ ८ ॥ ततोराजीरसोनश्चमुख्यश्चनवसादरः ॥ एतैरससमैस्तद्वत्सूतोमर्द्यस्तुषांबुना ॥ ९ ॥ ततःसंशोष्यचक्राभंकृत्वाक्षिप्त्वाचहिंगुना ॥ द्विस्थालीसंपुटे धृत्वापूरयेल्लवणेनच ॥ १० ॥ अधस्थाल्यांततोमुद्रांदद्याद्द-

१ सुदिने साधितेति पाठांतरम् । २ बुधैस्तस्येतिनामानीति पाठातरम् । ३ सूर्याचन्द्रमसौ भौमः शशिजो जीवभार्गवौ ॥ सूर्यसुतः सैंहिकेयः केतुश्चेति नवग्रहाः ।

ढतरांबुधः ॥ विशोष्याग्निंविधायाधोनिषिंचेदंबुचोपरि॥११॥ ततस्तुकुर्यात्तीव्राग्निंतदधःप्रहरत्रयम्॥एवंनिपातयेदूर्ध्वंरसोदोषविवर्जितः ॥ १२ ॥ अथार्धपिठरीमध्येलग्नोग्राह्योरसोत्तमः॥

अर्थ–राई और लहसन दोनोको एकत्र पीसके उसकी मूस बनावे । उसमें पारा डालके उसकी कपडेमें पोटली बाँध दोलायन्त्र करके काँजीमें तीन दिन पचावे । फिर उस पारेको निकाल खरलमें डालके घीगुवारके रसमें एक दिन खरल करे । फिर चीतेके और काँगुनीके रसमें और त्रिफलाके काढेमें एक एक दिन खरल करे । फिर काँजीमें इस पारेको धोयके उस औषधोंके रससे पृथक् करके फिर खरलमें डालके उस पारेका आधा सैंधानमक मिलायके दोनोंको नींबूके रसमें १ दिन खरल करे । फिर राई लहसन और नौसादर ये तीन औषध पारेके समान भाग लेके उसमें पारेको मिलाय धानके तुषोंके काढेमें सबको खरल करे । जब शुष्क होजावे तब उसकी गोल २ टिकियासी बनावे । उनके चारों तरफ हींगका लेप करके उन टिकियाओंको एक घडेमें रखके उसमे नमक डालके घडेके मुखपर दूसरा घडा उलटा जोडके कपडमिट्टीकर दृढ करके धूपमें सुखाय देवे । फिर इसको चूल्हेपर चढाय नीचे अग्नि जलावे और ऊपरके घडेपर गीले कपडेका पुचारा फेरता जावे कि जिससे ऊपरका घडा शीतल रहे और जमा हुआ पारा नीचे न गिरे अथवा उसपर शीतल जल भर देवे । फिर उस नीचेके घडेके नीचे ३ प्रहर तेज अग्नि देवे । जब शीतल होजावे तब घडोंको अलग २ करके हलके हाथसे उस ऊपरके लगे हुए पारेको निकाल लेवे । यह पारा परम शुद्ध और दोषरहित होता है ।

गंधकका शोधन ।

लोहपात्रेविनिक्षिप्यघृतमग्नौप्रतापयेत् ॥ १३ ॥ तप्तेघृतेतत्समानंक्षिपेद्गंधकजंरजः॥ विद्रुतंगंधकंज्ञात्वादुग्धमध्येविनिक्षिपेत् ॥ १४ ॥ एवंगंधकशुद्धिःस्यात्सर्वकार्येषुयोजयेत् ॥

अर्थ–लोहेके कडछुलेमे घी डालके मंदाग्निसे तपाय उस घीकी बराबर आमलासार गंधकका बारीक चूर्ण करके उस घीमे डाल देवे । फिर गंधक घीमे तपकर जब रसरूप होजावे तब एक दूधके पात्रपर बारीक कपडा बाँधके उसमें उस गंधकको उडेल देवे । जब शीतल होजावे तब उस गंधकको निकाल ले । यह शुद्ध गंधक सर्व कार्योंमें लावे ।

हिंगलूसे पारा काढनेकी विधि ।

निंबूरसैर्निंबपत्ररसैर्वायाममात्रकम् ॥ १५ ॥ पिष्ट्वादरदमूर्ध्वं

चपातयेत्सूतयुक्तिवत् ॥ ततःशुद्धरसंतस्मान्नीत्वाकार्येषुयोजयेत् ॥ १६ ॥

अर्थ—नींबूके रसमें अथवा नीमके पत्तोंके रसमें हींगलूको १ प्रहर खरल कर डमरूयंत्रमें भर नीचे अग्नि जलावे उसमेंसे पारा उडके ऊपरकी हाँडीमें जायके जमजावे उसे धोकर पारा निकालले यह शुद्ध जानना इसको सर्व कार्यमें लेय।

हींगलूका शोधन।

मेषीक्षीरेणदरदमम्लवर्गैश्चभावितम् ॥
सप्तवारंप्रयत्नेनशुद्धिमायातिनिश्चितम् ॥ १७ ॥

अर्थ—हींगलूको खरलमें डालके भेडके दूधकी सात पुट देवे तथा नींबूके रसकी सात पुट, ऐसे चौदह पुट देय तो हींगलू निश्चय शुद्ध होवे।

शुद्धहुए पारेके मुखकरनेकी विधि।

कालकूटोवत्सनाभःशृंगकश्चप्रदीपकः॥हालाहलोब्रह्मपुत्रोहारिद्रःसक्तुकस्तथा ॥ १८॥ सौराष्ट्रिकइतिप्रोक्ताविषभेदाअमीनव ॥ अर्कसेहुंडधत्तूरलांगलीकरवीरकम् ॥ १९॥ गुंजाहिफेनावित्येताःसप्तोपविषजातयः ॥ एतैर्विमर्दितःसूतश्छिन्नपक्षःप्रजायते ॥ २० ॥ मुखंचजायतेतस्यधातूंश्चग्रसतेक्षणात्॥

अर्थ—१कालकूट २ वत्सनाभ (बच्छनाग) ३ शृंगक (सिंगिया) ४ प्रदीपक ५ हालाहल ६ ब्रह्मपुत्र ७ हारिद्र ८ सक्तुक और ९ सौराष्ट्रिक ये नौ महाविष हैं। १ आक २ थूहर ३ धतूरा ३ कलयारी ५ कनेर ६ गुजा और ७ अफीम ये सात उपविष हैं ऐसे सब मिलके १६ हुए इनमेंसे एक एक विषमें पारेका सात २ दिन एकके पीछे दूसरेमें इस प्रकार पृथक् २ खरल करके धोयलेवे पारेके पक्ष (पर) कटजावें अर्थात् उडे नहीं तथा उसके मुख होकर सुवर्णादि धातुओंको तत्काल ग्रसे अर्थात् खाय जावे। इस वास्ते इन कालकूटादि महाविषोंके लक्षण ग्रथान्तरमें जो लिखेहैं उनको टीकाकार प्रसंगवश लिखते है।

१ कालकूट विष सफेद वर्णका होताहै तथा उसपर लाल २ विंदु बहुत होते कीचडके समान नम्र होताहै। यह विष देवता और दैत्योंके युद्धमें मालिनामक दैत्यके रुधिरसे उत्पन्न हुआ है। यह पीपलके वृक्षके समान एक वृक्ष होत है उसका गोंद है। इसकी उत्पत्ति अहिच्छत्र मलय कोंकण और शृंगवेर इन पर्वतोंपर अत्यत होती है।

२ वत्सनाभ विषके निर्गुंडीके पत्तोंके समान पत्र होते हैं और आकृति (स्वरूप) में वचनाग के समान होता है। इसके आसपास वृक्ष वेल घास ये वढते नहीं हैं। वह विष द्रोणाचलपर्वतपर अत्यंत उत्पन्न होता है।

३ शृंगकविष गौके सींगके समान होकर उसके दो भाग होते हैं। इस विषको गौके सींगसे बाँधे तो गौका दूध रुधिरके समान होत है। इसके पत्ते अदरखके पत्तेके समान होते हैं। यह नदीके किनारे जिस जगहपर कीचड होती है उस जगह बहुधा प्रगट होता है।

४ प्रदीपक विष चकचकाता हुआ अगारेके समान लाल रंगकी कांतिवाला होताहै और इसके पत्ते खजूरके समान होते हैं। इसके सूँघनेसे प्राणीके देहमें दाह प्रगट होकर तत्काल मरजावे। यह समुद्रके किनारे बहुत होता है।

५ हालाहल विष ताडके पत्तेके समान होताहै। इसके पत्ते नीले रंगके होते हैं और फल इसके गौके स्तनके समान लवे और सफेद होते हैं। तथा इसका कंदभी गौके थनके समान होता है। इसके आस पास वृक्षादिक नहीं होते। इसकी वास सूँघतेही मनुष्य तत्काल मर जाता है।

६ ब्रह्मपुत्र विष ब्रह्मपुत्रनामक नदके किनारे बहुत होता है। इसके पत्ते पलाशके समान होते हैं और फलभी पलाश (ढाक) के समान होते हैं। कंद इसका वडा तथा पराक्रम वडा होता है। यह विष रोगहरणमें और रसायन क्रियामें अत्युपयोगी है।

७ हारिद्र विष हल्दीके खेतोंमे उत्पन्न होता है। उसके पत्ते हल्दीके समान होतेहैं और गाँठ भी हल्दीके समान होती है। यह विष रसायन विषयमें समर्थ है।

८ सक्तुक विष जौके समान आकृतिमे होता है और भीतरसे सफेद होताहै। यह लोकपर्वतमे बहुत उत्पन्न होता है।

९ सौराष्ट्रिक विष सोरठ (गुजरात) देशमें उत्पन्न होता है। इसका कंद कछुआके मस्तक समान मोटा होता है। तथा कृष्णागरुके समान कालावर्ण होता है और इसके पत्ते पलासके समान होते हैं इसका पराक्रमभी वडा उत्कट है।

मुख और पक्षच्छेदनका दूसरा प्रकार।

अथवात्रिकटुक्षारौराजीलवणपंचकम् ॥२१॥ रसोनोनवसार-
श्वशिग्रुश्चैकत्रचूर्णितैः॥ समांशैःपारदादेतैर्जंबीरेणद्रवेणवा ॥
॥२२॥ निंबुतोयैःकांजिकैर्वासोष्णखल्वेविमर्दयेत् ॥ अहोरा-
त्रत्रयेणस्याद्रसेधातुचरंमुखम् ॥२३॥ अथवाबिंदुलीकीटैरसो
मर्द्यस्त्रिवासरम्॥लवणाम्लैर्मुखंतस्यजायतेधातुघस्मरम् ॥२४॥

अर्थ–१ सोंठ २ कालीमिरच ३ पीपल ४ जवाखार ५ सज्जीखार ६ सेंधानमक ७ संचरनमक ८ बिडखार ९ समुद्रनमक १० रेहका खार ११ लहसन १२ नौसादर और १३ सहजनेकी छाल ये तेरह औषध समान भाग लेकर चूर्ण करके पारेके समान भाग ले सबको तप्तखल्व (जो रसराजसुंदर ग्रंथके प्रथम खंडमें लिखा है ।) उसमें डालके जमीरी अथवा नींबूके रससे अथवा कार्जीमें तीन दिनरात्र खरल करे तो स्वर्णादिधातु भक्षण करनेवाला पारेके मुख होय । अथवा वीरवहूटी (जिसको इन्द्रवधूभी कहते हैं) इस नामका कीडा चातुर्मास्यमें होता है उसको लायके उसके साथ पारेको तीन दिन खरल करे । फिर नींबूका रस और सेंधानमक दोनोंको एकत्र करके पारा डाल तीनोंको खरल करे तो स्वर्णादि धातुओंको खानेवाला पारेके मुख होवे ।

कच्छपयंत्रकरके गंधकजारण ।

मृत्कुंडेनिक्षिपन्नीरंतन्मध्येचशरावकम् ॥ महत्कुंडपिधानाभं मध्येमेखलयायुतम् ॥ २५ ॥ लिस्वाचमेखलामध्यंचूर्णेनात्ररसंक्षिपेत् ॥ रसस्योपरिगंधस्यरजोदद्यात्समांशकम् ॥ २६ ॥ दत्त्वोपरिशरावंचभस्ममुद्रांप्रदापयेत् ॥ ततोपरिपुटंदद्याच्चतुर्भिर्गोमयोपलैः ॥ २७ ॥ एवंपुनःपुनर्गंधंषड्गुणंजारयेद्बुधः॥ गंधजीर्णंभवेत्सूतस्तीक्ष्णाग्निःसर्वकर्मकृत् ॥ २८ ॥

अर्थ–मिट्टीका एक पात्र कूँडेके समान ऊँचे मुखका लेकर उसमें जल भरके उसपर ढकनेकी ( ) कूँडी लेवे जो उस पात्रके मुखपर आय जावे । उसको लेकर पानीसे न लगे इस प्रकार अलग रक्खे । फिर उस कूँडीमें मिट्टीका गोल एक अंगुल ऊँचा गढेला करके उसमें चूना बिछायके पारा भर देवे । फिर पारेके समान भाग गंधकका चूर्ण उस पारेपर डाले । फिर मिट्टीकी दूसरी कूंडी उलटी ढकके उसके संधियेंको नमक मिलीहुई राखसे वदकर मुद्रा देदेवे । उसके ऊपर गौके गोवरके ४ उपले रखके अग्नि देवे । इस प्रकार उस पारेपर छः वार गंधक डाल २ के अग्नि देकर गंधकजारण करे तो यह पारा देदीप्यमान अग्निके समान होकर सर्व कार्यकर्त्ता होवे ।

पारामारणकी विधि ।

धूमसारंरसंतोरींगंधकंनवसादरम् ॥ यामैकंमर्दयेदम्लैर्भागंकृत्वासमंसमम् ॥ २९ ॥ काचकुप्यांविनिक्षिप्यतांचमृद्वस्त्रमुद्रिताम् ॥ विलिप्यपरितोवक्त्रंमुद्रांदत्त्वाचशोषयेत् ॥३०॥ अधः

सच्छिद्रपिठरीमध्येकूपींनिवेशयेत् ॥ पिठरीवालुकापूरैर्भृत्वा चाकुपिकागलम् ॥ ३१ ॥ निवेश्यचुल्यांतदधःकुर्याद्वह्निंशनैः शनैः ॥ तस्मादप्यधिकंकिंचित्पावकंज्वालयेत्क्रमात् ॥ ३२ ॥ एवंद्वादशभिर्यामैर्म्रियतेसूतकोत्तमः ॥ स्फोटयेत्स्वांगशीतं चऊर्ध्वगंगंधकंत्यजेत् ॥ ३३ ॥ अधःस्थंमृतसूतंचसर्वकर्मसुयोजयेत्

अर्थ—१ घरका धूआ २ पारा ३ फिटकरी ४ गंधक ५ नौसादर ये पाच औषध समान भाग लेकर नींबूके रसमें १ प्रहर खरलकर काचकी शीशीमें भरके उसपर कपडमिट्टी करके धूपमें सुखाय ले । फिर मुखपर डाट देकर बंद कर देवे । फिर एक मिट्टीका बडा पात्र लेके उसकी पेंदीमें छेद करके उसके बीचमें एक ठीकरी रखके उसके ऊपर काचकी शीशीको रखके ऊपरसे शीशीके गले पयत वालू भर देवे । शीशीको नलीको खाली रक्खे । इस यंत्रको वालुकायंत्र कहते हैं । फिर उस पात्रको चूल्हेपर रखके नीचे प्रथम हलकी फिर मध्म और अन्तमें तेज इस प्रकार बारह प्रहर पर्यन्त अग्नि देवे । जब शीतल होजावे तब शीशीको बाहर निकाल युक्तिसे फोडके उसके मुखपर जो गन्धक लगी हुई है उसको दूर करके नीचे पारेकी भस्म जो रहती है उसको निकालके कार्यमें लावे ।

पारदभस्म करनेका दूसरा प्रकार ।

अपामार्गस्यबीजानांमूषायुग्मंप्रकल्पयेत् ॥ ३४ ॥ तत्संपुटे न्यसेत्सूतंमलयूदुग्धमिश्रितम् ॥ द्रोणपुष्पीप्रसूनानिविडंगाम- रिमेदकः ॥ ३५ ॥ एतच्चूर्णमधोर्द्ध्वंचदत्वामुद्राप्रदीयताम् ॥ तंगोलंसंधयेत्सम्यङ्मृन्मूषासंपुटेसुधीः ॥ ३६ ॥ मुद्रांदत्वाशो- षयित्वाततोगजपुटेपचेत् ॥ एवमेकपुटेनैवजायतेभस्मसूतकम् ३७

अर्थ—ओंगा (चिरचिटा) के बीजोंको बारीक पीसके दो मूष बनावे । फिर द्रोणपुष्पी (गोमा) के फूल वायविडग और खैरकी छाल इन औषधोंका चूर्ण करके आधा चूर्ण एक मूषमें भरे उसके ऊपर पारा रखके उस पारेके ऊपर कठूमरका दूध भरके ऊपर आधे चूर्णको रख देवे । फिर दूसरी मूषको उस पहली मूषपर रखके सन्धिको लेप कर अच्छी तरह बद कर देवे । फिर गोला बनाय मिट्टीके सरावसंपुटमें रखके उसपर भी कपडमिट्टी करके आरनेउपलोंके गजपुटमें फूंक देवे तो एकही पुट करके पारदकी भस्म होवे ।

तीसराप्रकार।

काकोदुंबरिकादुग्धैरसंकिंचिद्विमर्दयेत् ॥ तद्दुग्धघृष्टहिंगोश्चमूपायुग्मंप्रकल्पयेत् ॥ ३८ ॥ क्षिप्त्वातत्संपुटेसूतंतत्रमुद्रांप्रदापयेत् ॥ धृत्वातंगोलकंप्राज्ञोमृन्मूपासंपुटेऽधिके ॥ ३९ ॥ पचेन्मृदुपुटेनैवसूतकोयातिभस्मताम् ॥

अर्थ—कठूमरके दूधमें पारेको थोडी देर खरलकरे। फिर कठूमरके दूधमें हींगको खरल करके दो मूप बनावे। एक मूषमें पारेको रखके दूसरी मूपसे उसका मुख बंद करके अच्छे प्रकार सधियोंको बंद कर देवे। फिर ऊपरसे पोतकर गोला बनायले, इस गोलेको मिट्टीके शरावसपुटमें रखके उसपर कपडमिट्टीकर आरने उपलोंकी हलकीसी अग्निमें रखके फूंक देवे तो पारेकी भस्म होय।

चौथाप्रकार।

नागवल्लीरसैर्घृष्टःकर्कोटीकंदगर्भितः ॥ ४० ॥
मृन्मूपासंपुटेपक्त्वासूतोयात्येवभस्मताम् ॥

अर्थ—नागरवेलके पानोंके रसमें पारेको खरलकर ककोडेके कंदमें पारेको रखके उसीकेही टुकडेसे बंदकरके सांधे मिलायके कपडमिट्टी करे फिर उसको धूपमें सुखाय मिट्टीके सरावसंपुटमें रख उसपर कपडमिट्टी करके आरने उपलोंमे रखके हलकी अग्नि देवे तो पारेकी अवश्य भस्म होय, इसको कार्यमें लावे।

ज्वरांकुशो रसः।

खंडितंमृगशृंगंचज्वालामुख्यारसैःसमम् ॥४१॥ रुद्ध्वाभांडेपचेच्चुल्यांयामयुग्मंततोनयेत् ॥ अष्टांशंत्रिकटुंदद्यान्निष्कमात्रंचभक्षयेत् ॥४२॥ नागवल्ल्यारसैःसार्धंवातपित्तज्वरापहम् ॥ अयंज्वरांकुशोनामरसःसर्वज्वरापहः ॥ ४३ ॥

अर्थ—हरिणके सींगके बारीक टुकडे करके पात्रमे रख उसमें ज्वालामुखीका रस डालके उसके मुखपर सराव ढकके कपडमिट्टीकरे। उसको चूल्हेपर रखके नीचे दो प्रहर पर्यन्त अग्नि देवे। जब शीतल होजावे तब उन टुकडोंकी भस्मको बाहर निकालके उस भस्मका आठवाँ भाग सोंठ मिरच और पीपल इनका चूर्ण करके उस भस्ममें मिलायदे। फिर इसमेंसे ४ मासेके अनुमान पानके रसमें मिलायके पीवे। इसको ज्वरांकुश कहतेहैं। यह सपूर्ण ज्वरोको दूरकरे।

ज्वरारिरस ।

पारदंरसकंतालंतुत्थंटंकणगंधकौ॥सर्वमेतत्समंशुद्धंकारवेल्लया रसैर्दिनम् ॥ ४४ ॥ मर्दयेल्लेपयेत्तेनताम्रपात्रोदरंभिषक् ॥ अंगुल्यर्धप्रमाणेनततोरुद्ध्वाचतन्मुखम् ॥४५॥ पचेत्तंवालुकायंत्रे क्षिप्त्वाधान्यानितन्मुखे॥यदास्फुटंतिधान्यानितदासिद्धंविनिर्दिशेत् ॥ ४६ ॥ ततोनयेत्स्वांगशीलंताम्रपात्रोदराद्भिषक् ॥ रसंज्वरारिनामानंविचूर्ण्यमरिचैःसमम् ॥ ४७ ॥ माषैकंपर्णखंडेनभक्षयेन्नाशयेज्ज्वरम् ॥ त्रिदिनैर्विषमंतीव्रमेकद्वित्रिचतुर्थकम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—१ पारा २ खपरिया ३ हरताल ४ लीलाथोथा ५ सुहागा और ६ गंधक इन छः औषधोंको शोधकर समान भाग लेवे । सबको खरलमें डाल करेलेके पत्तोंके रससे १ दिन खरलकरे । फिर ताँबेकी डिब्बीमें अर्द्ध अंगुल लेपकरके उसपर ढकना देकर उसे वालुकायंत्रमे डालके चूल्हेपर रखके नीचे अग्नि जलावे और उस पात्रके मुखपर धान रख देवे । जब वह भुनके खील होजावे तब जाने कि औषध सिद्ध होगई । फिर अग्निको बंद करे । जब शीतल होजावे तब व हर काढके उस डिब्बीसे औषधको निकाल लेवे । इसको ज्वरारिरस कहतेहैं । फिर इसके समान काली मिरच मिलाय बारीक पीसलेवे । इसमेसे १ मासे पानमे रखके खाय तो यह ज्वरारिरस ऐकाहिक[1], द्व्याहिक[2], त्र्याहिक[3] और चातुर्थिक[4] विषमज्वर दारुणभी दूर होवे ।

शीतज्वरारिरस ।

तालकंतुत्थकंताम्रंरसंगंधंमनःशिलाम्॥कर्षैकंषैप्रयोक्तव्यंमर्दयेत्त्रिफलांबुभिः॥४९॥ गोलंन्यसेत्संपुटकेपुटंदद्यात्प्रयत्नतः ॥ ततोनीत्वार्कदुग्धेनवज्रीदुग्धेनसप्तधा॥५०॥क्राथेनदंत्याश्चासायाभावयेत्सप्तधापुनः ॥ माषमात्रंरसंदिव्यंपंचाशन्मरिचैर्युतम् ॥५१॥ गुडगद्याणकंचैवतुलसीदलयुग्मकम् ॥ भक्षयेत्त्रिदिनंशक्त्याशीतारिर्दुर्लभःपरः ॥ ५२ ॥ पथ्यंदुग्धौदनंदेयं

---

१ दिनरात्रिमें एकवार आवे । २ दिनरात्रिमें दो वार आवे । ३ तीसरे दिन आवे जिसको तिजारी कहतेहैं । ४ जो चतुर्थदिन आवे उसको चौथैय्या कहते हैं ।

विषमंशीतपूर्वकम् ॥ दाहपूर्वंहरत्याशुतृतीयकचतुर्थकौ ॥ ५३ ॥
द्व्याहिकंसंततंचैववैवर्ण्यंचनियच्छति ॥

अर्थ–१ हरताल २ लीलाथोथा ३ ताम्रभस्म ४ पारा ५ गंधक ६ मैनसिल ये छः ओषधि एक एक कर्ष लेवे। सबको त्रिफलेके काढेमें खरलकर गोला बनाय मिट्टीके सरावसंपुटमें भरके कपडमिट्टीकरके धूपमें सुखायले। फिर इनको आरनेटपलोंके गजपुटमें रखके फूंक देवे। जब शीतल होजाय तब बाहर निकाल लेवे। फिर खरलमें डालके आकके दूधकी सात पुट देवे तथा थूहरके दूधकी सात पुट देवे। एवं दतीके काढेकी सात पुट और निसोथके काढेकी सातपुट देकर मासे मासेकी गोली बनावे। पचास मिरच, गुड छः मासे और तुलसीके पत्ते दो इन सबको एकत्रकरके उसमें एक एक गोली बलाबल विचारके तीन दिन सेवन करे और पथ्यमें दूध भात खानेको देय तो शीतपूर्वकविषमज्वर, दाहपूर्वक ज्वर, तृतीयक, चातुर्थिक और दिन रात्रमें दो बार आनेवाला द्व्याहिक ज्वर तथा देहमें एकसा रहनेवाला ज्वर और विलक्षण ज्वर ये सब दूर हों।

ज्वरघ्नी गुटिका।

भागैकःस्याद्रसाच्छुद्धादेलायाःपिप्पलीशिवा ॥ ५४ ॥ आकारकरभोगंधःकटुतैलेनशोधितः ॥ फलानिचेंद्रवारुण्याश्चतुर्भागमिताह्यमी ॥ ५५ ॥ एकत्रमर्दयेच्चूर्णमिंद्रवारुणिकारसे ॥ माषोन्मितांगुटींकृत्वादद्यात्सर्वज्वरेषुचः ॥ ५६ ॥ छिन्नारसानुपानेनज्वरघ्नीगुटिकामता ॥

अर्थ–शुद्ध किया हुआ पारा एक भाग और १ एलुआ २ पीपल ३ जंगीहरड ४ अकरकरा ५ सरसोंके तेलमें सुधी हुई गंधक और ६ इन्द्रायनके फल ये छः औषध चार २ भाग लेवे। सबका चूर्ण करके पारा समेत खरलमें डालके इन्द्रायनके फलके रसमें खरल करके एक एक मासेकी गोली बनावे। एक गोली गिलोयके रससे सेवन करे तो संपूर्ण ज्वर दूर होंय।

लोकनाथरस क्षयादिरोगोंपर।

शुद्धोबुभुक्षितःसूतोभागद्वयमितोभवेत् ॥ ५७ ॥ तथागंधस्य भागौद्वौकुर्यात्कज्जलिकांतयोः ॥ सूतात्चतुर्गुणेष्वेवकपर्देषुक्षि-

१ पारा और गंधक इनको प्रथम खरलकर पश्चात् उसमें चूर्ण मिलाय गोली बनायले।

निक्षिपेत् ॥ ५८ ॥ भागैकंटंकणंदत्त्वागोक्षीरेणविमर्दयेत् ॥
तथाशंखस्यखंडानांभागानष्टौप्रकल्पयेत् ॥ ५९ ॥ क्षिपेत्स-
र्वंपुटस्यांतश्चूर्णंलितशरावयोः ॥ गर्तेहस्तोन्मितेधृत्वापचेद्ग-
जपुटेनच ॥६०॥ स्वांगशीतंसमुद्धृत्यपिष्टातत्सर्वमेकतः ॥
षड्गुंजासंमितंचूर्णमेकोनत्रिंशदूषणैः॥६१॥ घृतेनवातजेदद्या
न्नवनीतेनपित्तजे॥क्षौद्रेणश्लेष्मजेदद्यादतीसारेक्षयेतथा ॥६२॥
अरुचौग्रहणीरोगेकार्श्येमंदानलेतथा॥ कासेश्वासेषुगुल्मेषुलो-
कनाथोरसोहितः ॥ ६३ ॥ तस्योपरिघृतान्नंचभुंजीतकवलत्र-
यम् ॥ मंचेक्षणैकमुत्तानःशयीतानुपधानके ॥६४॥ अनम्ल-
मन्नंसघृतंभुंजीतमधुरंदधि ॥ प्रायेणजांगलंमांसंप्रदेयंघृतपा-
चितम् ॥ ६५ ॥ सदुग्धभक्तंदद्याच्चजातेऽग्नौसाध्यभोजने ॥
सघृतान्मुद्गवटकान्व्यंजनेष्वेवचारयेत् ॥ ६६ ॥ तिलामलक-
कल्केनस्नापयेत्सर्पिषाथवा॥अभ्यंजयेत्सर्पिषाचस्नानंकोष्णो-
दकेनच ॥ ६७ ॥ क्वचित्तैलंनगृह्णीयान्नबिल्वंकारवेल्लकम् ॥
वार्ताकंशफरींचिंचांत्यजेद्व्यायाममैथुनम् ॥ ६८ ॥ मद्यंसं-
धानकंहिंगुशुंठींमाषान्मसूरकान् ॥ कूष्मांडंराजिकांकोपंकां-
जिकंचैववर्जयेत् ॥६९ ॥ त्यजेदयुक्तनिद्रांचकांस्यपात्रेचभो-
जनम् ॥ ककारादियुतंसर्वंत्यजेच्छाकफलादिकम् ॥ ७० ॥
पथ्योऽयंलोकनाथस्तुशुभनक्षत्रवासरे॥पूर्वातिथौशुक्लपक्षेजा-
तेचंद्रबलेतथा ॥ ७१ ॥ पूजयित्वालोकनाथंकुमारींभोजये-
त्ततः ॥ दानंदद्याद्द्विघटिकामध्येग्राह्योरसोत्तमः ॥७२॥ रसा-
त्संजायतेतापस्तदाशर्करयायुतम् ॥ सत्त्वंगुडूच्यागृह्णीयाद्वं
शरोचनयायुतम् ॥ ७३ ॥ खर्जूरंदाडिमंद्राक्षामिक्षुखंडानिचा-
रयेत् ॥ अरुचौनिस्तुषंधान्यंघृतभृष्टंसशर्करम् ॥ ७४ ॥
दद्यात्तथाज्वरेधान्यंगुडूचीक्वाथमाहरेत् ॥ उशीरवासकक्वाथं

दद्यात्समधुशर्करम् ॥ ७५ ॥ रक्तपित्तेकफेश्वासेकासेचस्वरसंक्षये ॥ अग्निभृष्टजयाचूर्णमधुनानिशिदीयते ॥७६॥निद्रानाशेऽतिसारेचग्रहण्यांमंदपावके ॥ सौवर्चलाभयाकृष्णाचूर्णमुष्णजलैःपिबेत् ॥ ७७ ॥ शूलेऽजीर्णेतथाकृष्णामधुयुक्ताज्वरे हिता ॥ प्लीहोदरेवातरक्तेछर्द्यांचैवगुदांकुरे ॥७८ ॥ नासिकादिषुरक्तेषुरसंदाडिमपुष्पजम् ॥ दूर्वायाःस्वरसंनस्येप्रदद्याच्छर्करायुतम् ॥ ७९ ॥ कोलमज्जाकणाबर्हिपक्षभस्मसशर्करम्॥ मधुनालेहयेच्छर्दिहिक्काकोपस्यशांतये ॥८०॥ विधिरेषप्रयोज्यस्तुसर्वस्मिन्पोटलीरसे॥ मृगांकेहेमगर्भेचमौक्तिकाख्येरसेषुच ॥८१॥इत्ययंलोकनाथाख्योरसःसर्वरुजोजयेत् ॥

अर्थ—शुद्ध और बुभुक्षित[1] ऐसा पारा दो भाग तथा शुद्ध की हुई गंधक दो भाग इन दोनोंकी एक जगह कजली करके पारेसे चौगुनी कौडीनमें उस कजलीको भरे । फिर सुहागा एक भाग लेकर गौके दूधमें खरल कर उससे कौडियोंके मुखको मूँद देवे पश्चात् शंखके टुकडे आठभाग लेकर मिट्टीके दो शरावे लेकर एकमें चूना पोतकर उसमें शखके टुकडे आधे धरे और उनके ऊपर इन कौडियोंको रक्खे । फिर बाकी रहेहुए आधे शखके टुकडोंको रख देवे । फिर इसके ऊपर दूसरा शरावा ढकके कपडमिट्टीकर एक हाथ गढ्ढा खोदके आरने उपलोंके गजपुटमें रखके अग्नि देवे । जब शीतल होजावे तब बाहर निकाल उस शरावमेंसे औषधोंको निकाल लेवे । फिर इसको खरल करके धर रक्खे । इसे लोकनाथरस कहते हैं। यह लोकनाथरस छः रत्ती उनतीस कली मिरचके चूर्णमें मिलायके जिसके बादीका रोग होय उसको घीके साथ देवे । पित्तरोग होय तो मक्खनके साथ देवे, कफरोग होय तो सहतसे देवे, और अतिसार, क्षय, अरुचि, संग्रहणी, कृशता, मदाग्नि, खाँसी, श्वास और गोलेका रोग ये सब दूर होनेमें यह लोकनाथ रस परम प्रशस्त है । इसकी मात्रा सेवन करके इसके ऊपर घी और भातके तीन ग्रास देने चाहिये । फिर शय्यापर विना बछैयाके एक क्षणमात्र सीधा लेटे और खट्टे पदार्थोंको त्यागके घृतके साथ भोजन करे । उत्तम मीठा दही भोजनमें सेवन करे । जगली जीवोंमें हरिणादिकोंका

१—गंधकादिकोंका जारण करके सुवर्णादि धातु ग्रसनेके विषयमें योग्य हुआ जो पारा उसको बुभुक्षित पारा कहते है ।

मास घीमें तलके खाय । सन्ध्याके समय भूख लगे तो दूधभात खाय तथा मूँगके बड़े घीमें तलके खाय । तिल और आमलेका काल्कर देहमें मालिश करे अथवा घीकी मालिश करके स्नान करे । स्नानके सिवाय अगमें लगाना होय तो घीकाही मालिश करे । स्नानका जल कुछ २ गरम होना चाहिये । बेलफल, करेले, बैंगन, छोटी मछली, इन्हें, श्रम, मैथुन, मद्य, संधान (सधाने), हींग, सोंठ, उडद, मसूर, पेठा, राई, कॉजी और कोप इनको लोकनाथ रसका सेवन करनेवाला त्याग देवे, दिनमें न सोवे । कॉसेके पात्रमें भोजन न करे । ककार जिनके आदिमें है ऐसे शाक (जैसे करेला ककडी आदि) को तथा फलोंको त्याग देय । इस प्रकार लोकनाथरसका पथ्य कहा है । उत्तम दिन उत्तम वार पूर्णा तिथि (पञ्चमी दशमी और पूर्णिमा) शुक्ल पक्ष तथा उत्तम चन्द्रमाका बल विचारके लोकनाथ रसका पूजन कर फिर कुमारी (कन्याओं) को भोजन कराय तथा यथाशक्ति सुवर्णादिका दान देकर इस रसका सेवन करे । इस रसके सेवन करनेसे दो घडी देहमें संताप होता है, उसके शांति करनेको मिश्री गिलोयका सत्व और वंशलोचन इन तीनोंको एकत्र करके सेवन करे तो संताप दूर होवे । खजूर (छुहारे) विलायती अनार दाख (अंगूर) और ईखके टुकडे ये पदार्थ थोडे २ खाय तो इसका संताप और अरुचि दूर हो । धनियेको कूट उसके तुषोंको दूर करके घीमें भूनके उसमें मिश्री मिलायके इसके साथ लोकनाथरसका भक्षण करे तो अरुचि दूर होय । धनिया और गिलोय इनका काढा करके उसमें इस लोकनाथरसको मिलायके पीवे तो ज्वर दूर होवे । नेत्रवाला और अडूसा इन दोनोंका काढा करके सहत और मिश्री मिलाय इसके साथ लोकनाथरस खाय तो रक्तपित्त कफ श्वास खाँसी स्वरभंग ये रोग दूर होवें । थोडी भाँगको भून चूर्ण कर उसमें इस रसको मिलाय इसको सहतमें मिलाय रात्रिके समय सेवन करे तो गई हुई निद्रा आवे, अतिसार और संग्रहणी ये रोग दूर हों तथा अग्नि प्रदीप्त होय । कालानमक जंगी हरड और पीपल इन औषधोंका चूर्ण करके इसमें लोकनाथरस मिलायके गरम पानीसे सेवन करे तो शूल और अजीर्ण रोग दूर हो । सहत और पीपलके साथ लोकनाथरस सेवन करे तो पेटमें बाँई तरफ प्लीहाका रोग होता है वह तथा वातरक्त वमन मूर्च्छादि और नाकके रास्ते रुधिरका गिरना ये संपूर्ण रोग दूर होंय । दूबके रसमें मिश्री मिलायके लोकनाथरस डाल नाकमें नस्य देवे तो नाकसे रुधिरका गिरना बंद होय । बेरकी गुठली पीपल और मोरपाँखकी भस्म इन तीन औषधोंको एकत्र करके उसमें मिश्री और सहत मिलाय लोकनाथरसको एकत्र कर सेवन करे तो ओकारी तथा हिचकी ये दूर होवें । इस प्रमाण संपूर्ण पोटलीरस है उनमें और मृगांक रस हेमगर्भ रस तथा मौक्तिकाख्य रसायन इनमेंभी वही

विधि करनी चाहिये । इस प्रकार लोकनाथरस कहा है यह लोकनाथरस संपूर्ण रोगोंको दूर करता है ।

लघुलोकनाथरस क्षयपर।

वराटभस्ममंडूरंचूर्णयित्वाघृतेपचेत् ॥ ८२ ॥ तत्समंमारिचं चूर्णनागवल्ल्याविभावितम्॥तच्चूर्णमधुनालेह्यमथवानवनीत-कैः ॥ ८३ ॥ माषमात्रंक्षयंहंतियामेयामेचभक्षितम् ॥ लोक-नाथरसेह्येपमंडलाद्राजयक्ष्मनुत् ॥ ८४ ॥

अर्थ—कौडियोंकी भस्म एक भाग, मंडूर एक भाग, कालीमिरच दो भाग ले, इन तीनों औषधोंको एकत्र करके घीमें खरलकरे । जब घी करडा होजावे तब नाग बेलके पानोंके रसमें खरल करके एक एक मासेकी गोली बनावे । इसको लघु लोकनाथरस कहते हैं । इस सहतके साथ अथवा मक्खनके साथ एक एक प्रहरके अंतरसे खाय तो सामान्य क्षयरोग दूर हो । इस प्रकार १ मंडल पर्यंत सेवन करे तो राजयक्ष्माकोभी दूर करता है ।

मृगांकपोटलीरस क्षयादिरोगोंपर।

भूर्जवत्तनुपत्राणिहेम्नःसूक्ष्माणिकारयेत् ॥तुल्यानितानिसूते-नखल्वेक्षिप्त्वाविमर्दयेत् ॥ ८५ ॥ कांचनाररसेनैवज्वालामु-ख्यारसेनवा॥ लांगल्यावारसैस्तावद्यावद्भवतिपिष्टिका॥८६॥ ततोहेम्नश्चतुर्थांशंटंकणंतत्रनिक्षिपेत् ॥ पिष्टमौक्तिकचूर्णंचहे-म्नद्विगुणमावपेत् ॥ ८७ ॥ तेषुसर्वसमंगंधंक्षिप्त्वाचैकत्रमर्दये-त् ॥ तेषांकृत्वाततोगोलंवासोभिःपरिवेष्टयेत् ॥८८॥ पश्चा-न्मृदावेष्टयित्वाशोषयित्वाचधारयेत् ॥ शरावसंपुटस्यांतेतत्र मुद्रांप्रदापयेत् ॥ ८९ ॥ लवणापूरितेभांडेधारयेत्तंचसंपुटम्॥ मुद्रांदत्वाशोषयित्वाबहुभिर्गोमयैःपुटेत् ॥ ९० ॥ ततःशीते समाहृत्यगंधसूतसमंक्षिपेत् ॥ घृष्ट्वाचपूर्ववत्खल्वेपुटेद्गजपुटेन च ॥ ९१ ॥ स्वांगशीतंततोनीत्वागुंजायुग्मंप्रकल्पयेत् ॥ अ-ष्टभिर्मरिचैर्युक्तःकृष्णात्रययुतोऽथवा ॥ ९२ ॥ विलोक्यदेयो

१ मंडल चालीस दिवसका होता है ।

दोषादीनेकैकारसरक्तिका ॥ सर्पिषामधुनावापिदद्यादोषाद्यपेक्षया ॥ ९३॥ लोकनाथसमंपथ्यंकुर्यात्स्वस्थमनाः शुचिः ॥ श्लेष्मागंग्रहणींकासंश्वासंक्षयमरोचकम् ॥९४॥मृगांकोऽयंरसो हन्यात्कृशत्वंबलहीनताम् ॥

अर्थ-सोनेके भोजपत्रके समान पतले पत्र करके उसके समानभाग शुद्ध पारा लेकर दोनोको एक जगह कचनारके रससे अथवा ज्वालामुखीके रससे जबतक मिलकर पिट्ठीके समान न होवें तबतक खरल करे। पश्चात् सोनेका चतुर्थांश सुहागा तथा सोनेसे दूना मोतियो का चूरा और सबकी बराबर गधक ले सबको एक जगह खरल करके एक गोला बनावे। उसके चारोतरफ कपडा लपेटकर ऊपरसे मिट्टी ल्हेस देवे। फिर इसको धूपमे सुखायले। और मिट्टीके दो सरावे ले एकमें इस गोलेको रखके दूसरा उसके मुखपर रखके उसपर कपडमिट्टी कर देवे। फिर एक हाँडी लेवे। उसको पिसे हुए नमकसे आधी भरके बीचमें इस सपुटको रखके उसको नमकसेही फिर भरके बंद कर देवे और उसके मुख कोपरियासे बद करके मुखपरभी कपड़मिट्टी कर देय। इसको गजपुटकी अग्निसे कुछ अधिक अग्नि आरने उपलोंकी देवे। जब स्वाग शीतल होजावे तब बाहर निकाल औषधको खरलमे डालके फिर पारेके समान गधक लेके कचनार अथवा ज्वालामुखीके रसमें खरल करे। पूर्वोक्त विधिसे गजपुटकी अग्नि देवे। जब शीतल होजावे तब निकाल लेय। इस रसको मृगाकपोटलीरस कहते है। यह पोटली रस दो रत्ती प्रमाण आठ मिरचोके साथ अथवा तीन पीपलोके साथ देवे। दोषोंका तारतम्य देखकर एक रत्ती देय। दोषोंकी अपेक्षानुसार घी और सहतसे देवे। इस रसका सेवन करनेवाला प्राणी अतःकरणको स्वस्थ करके पवित्र हो। लोकनाथ रसके समान पथ्य करे। इस प्रकार आचरण करनेसे इस रसायनसे कफके रोग, सग्रहणी, खाँसी, श्वास, क्षयरोग, अरुचि, शरीरकी कृशता और बलहानि ये सपूर्ण रोग दूर होवें।

हेमगर्भपोटलीरस कफक्षयादिकोंपर।

सूतात्पादप्रमाणेनहेम्नःपिष्टंप्रकल्पयेत् ॥ ९५ ॥ तयोःस्याद्द्विगुणोगंधोमर्दयेत्कांचनारिणा॥ कृत्वागोलंक्षिपेन्मूषासंपुटेमुद्रयेत्ततः ॥ ९६ ॥ पचेद्भूधरयंत्रेणवासरत्रितयंबुधः ॥ ततउद्धृत्यतत्सर्वंदद्याद्गंधंचतत्समम् ॥ ९७ ॥ मर्दयेच्चार्द्रकरसैश्चित्रकंस्वरसेनच ॥ स्थूलपीतवराटांश्चपूरयेत्तेनबुद्धितः ॥ ९८ ॥ए-

तस्मादौषधात्कुर्यादष्टमांशेनटंकणम् ॥ टंकणार्धंविषंदत्त्वापि- ष्ट्वासेहुंडदुग्धकैः ॥ ९९ ॥ मुद्रयेत्तेनकल्केनवराटानांमुखानि च ॥ भांडेचूर्णप्रलिप्तेऽथधृत्वामुद्रांप्रदापयेत् ॥१००॥ गर्तेह- स्तोन्मिते धृत्वापुटेद्गजपुटेनच ॥ स्वांगशीतंरसंज्ञात्वाप्रदद्या- ल्लोकनाथवत् ॥ १०१ ॥ पथ्यंमृगांकवज्ज्ञेयंत्रिदिनंलवणंत्य- जेत् ॥ यद्याच्छर्दिर्भवेत्तस्यदद्याच्छिन्नाशृतंतदा ॥ १०२ ॥ मधुयुक्तंतथाश्लेष्मकोपेदद्याद्गुडार्द्रकम् ॥ विरेकेभर्जितांभंगां प्रदद्याद्दधिसंयुता ॥ १०३ ॥ जयेत्कासंक्षयंश्वासंग्रहणीमरुचिं तथा ॥ अग्निंचकुरुतेदीप्तंकफवातंनियच्छति ॥ १०४ ॥ हेम- गर्भःपरोज्ञेयोरसः पोटलिकाभिधः ॥

अर्थ—शुद्धपारा १ भाग ले उसका चतुर्थांश खरल कियाहुआ सुवर्णका चूरा अथवा सोनेके वर्क लेवे। एवं पारे और सुवर्ण दोनोंसे दूनी शुद्ध करीहुई गंधक लेवे। तीनोंको कचना- रके रसमे खरल कर उसका गोला करके मिट्टीके सरावसपुटमे रखके कपडमिट्टी कर देवे। फिर एक हाथका गड्ढा खोद उसमें दूसरा गड्ढा छोटासा खोदके उसमें पूर्वोक्त शरावसपुटको रखके ऊपर मिट्टी बिछायके दाब देवे। फिर उसके चारोतरफ आरने उप- लोंके बारीक २ टुकडे डालके तीन दिन अग्नि देवे (इस क्रियाको भूधरयन्त्र कहते हैं) जब शीतल होजावे तब बाहर निकाल शरावेमेंसे रसको ले समानभाग गंधक मिलाय दोनोंको अद- रखके रसमें खरल करके फिर चीतेके रसमें खरल करे। पश्चात् बडी २ पीली कोडी लायके उनमें इस घुटीहुई दवाईको भरदेवे। फिर सब औषधोंका आठवाँ भाग सुहागा और सुहागेका आधा भाग विष ले दोनोंको थूहरके दूधमे खरल करके उन कौडियोंको मुखको बंद कर देवे। फिर एक हाँडीमें चूना लेपकर इन कोडियोंको रख देवे। उस हाँडीके मुखपर दूसरी हाँडी जोडके उ- सकी संधियोंको कपडमिट्टी करके हाथ भरके गड्ढेमे आरने उपले भरके गजपुटकी अग्नि देवे। जब शीतल होजावे तब निकाल लेय। इसको हेमगर्भपोटलीरस कहतेहैं हेमगर्भ पोटलीरस लोकनाथरसकी विधिसे सेवन करे और मृगांकरसायनके समान पथ्य करे इसमेभी विशेष पथ्य यह है कि तीन दिन नमकरहित भोजन करे। इस औषधके सेवनसे यदि उलटी आवे तो गि- लोयका काढा करके उसमें सहत डालके पीवे तो ओकारियोंका आना दूर होय। कफके प्रको- पमें गुड और अदरखको एकत्र करके सेवन करे तो कफ दूर होय। यदि इस रसके प्रभावसे दस्त होने लगे तो भाँगको थोडी भूनके दहीमें मिलायके खाय तो दस्तोंका होना दूर होय

इस हेमगर्भ पोटली रससे खाँसी क्षय श्वास संग्रहणी और अरुचि ये रोग दूर हो । अग्नि प्रदीप्त होय तथा कफवायुका प्रकोप दूर हो ।

दूसरीविधि ।

रसश्चभागाश्चत्वारस्तावंतःकनकस्यच ॥१०५॥ तयोश्चपिष्टिकांकृत्वागंधोद्वादशभागिकः ॥ कुर्य्यात्कज्जलिकांतेपांमुक्ताभागाश्चषोडश ॥१०६॥ चतुर्विंशच्चशंखस्यभागैकंटंकणस्यच ॥ एकत्रमर्दयेत्सर्वंपक्वनिंबूकजैरसैः ॥ १०७ ॥ कृत्वातेषांततोगोलंमूषासंपुटकेन्यसेत्॥मुद्रांदत्वाततोहस्तमात्रेगर्तेचगोमयैः ॥ १०८ ॥ पुटेद्गजपुटेनैवस्वांगशीतंसमुद्धरेत्॥ पिष्ट्वागुंजाचतुर्मानंदद्याद्व्याज्यसंयुतम् ॥ १०९ ॥ एकोनत्रिंशदुन्मानमरिचैःसहदीयताम्॥राजतेमृन्मयेपात्रेकाचजेवावलेहयेत् ॥११० ॥ लोकनाथसमंपथ्यंकुर्य्याच्चस्वस्थमानसः॥ कासेश्वासेक्षयेवातेकफे ग्रहणिकागदे ॥ १११ ॥ अतीसारेप्रयोक्तव्यापोटलीहेमगर्भिका ॥

अर्थ—पारा चार भाग तथा सुवर्णका वारीक चूर्ण चार भाग दोनोको एक जगह उत्तम पिट्टी होनेपर्यंत खरल करे । फिर वारह भाग गधक लेके खरल कर कजली करे पश्चात् सोलह भाग मोती, चौवीस भाग शख और एक भाग सुहागा लेके पूर्वोक्त कजलीमे मिलाय पकेहुए नीवूके रसमे खरल करके उसका गोला वनाय मिट्टीके शरावसंपुटमे रखके उसपर कपडमिट्टी कर देवे फिर १ हाथका गहरा और लवा चौडा गड्ढा खोद उसमें गौके गोवरके उपले भर वीचमें शरावसंपुटको रखके गजपुटकी अग्नि देवे । जव शीतल होजावे तव वाहर निकालके उसमेसे औषधको ले खरलकरके धर रक्खे । इसको हेमगर्भपोटली रस कहते हैं । यह हेमगर्भ चार रत्ती लेकर उनतीस काली मिरचके चूर्णके साथ रूपेके अथवा मिट्टीके अथवा काँचके प्यालेमें गौका घी डालके स्वस्थचित्त करके पीवे और इसके ऊपर लोकनाथ रसायनेके समान पथ्य करे तो खाँसी श्वास क्षयरोग कफ ग्रहणी और अतिसार ये सपूर्ण रोग दूर होवे ।

महाज्वरांकुश विषमज्वरपर ।

शुद्धसूतोविषंगंधःप्रत्येकंशाणसंमितः ॥११२॥ धूर्तबीजंत्रि-

शाणंस्यात्सर्वेभ्योद्विगुणाभवेत् ॥ हेमाह्वाकारयेदेषांसूक्ष्मचूर्णं प्रयत्नतः ॥११३॥ देयंजंबीरमज्जाभिश्चूर्णंगुंजाद्वयोन्मितम् ॥ आर्द्रकस्वरसैर्वापिज्वरंहंतित्रिदोपजम् ॥ ११४ ॥ एकाहिकं द्व्याहिकंवात्र्याहिकंवाचतुर्थकम् ॥ विषमंचज्वरंहन्याद्विख्यातोयंज्वरांकुशः ॥ ११५ ॥

अर्थ—शुद्ध पारा तीन मासे, शुद्ध किया हुआ विप तीन मासे, गंधक तीन मासे, धतूरेके बीज नौ मासे, और चोक सबसे दूना लेवे। सबको एकत्र कर बारीक चूर्ण करके जंभीरीके रसमें अथवा अदरखके रसमें दोरत्ती देवे तो त्रिदोषज्वर और नित्य आनेवाला दिनरात्रिमें दोवार आनेवाला एकतरा तिजारी और चातुर्थिक ज्वर ये सब ज्वर दूर हो। यह ज्वरांकुश विपमज्वर दूर करनेमें विख्यात है।

आनंदभैरवरस अतिसारादिकोंपर।

दरदंवत्सनाभंचमरिचंटंकणंकणा ॥ चूर्णयेत्समभागेनरसो ह्यानंदभैरवः ॥ ११६ ॥ गुंजैकंवाद्विगुंजंवाबलंज्ञात्वाप्रयोजयेत् ॥ मधुनालेहयेच्चानुकुटजस्यफलंत्वचम् ॥ ११७ ॥ चूर्णितंकर्षमात्रंतुत्रिदोषोत्थातिसारनुत् ॥ दध्यन्नंदापयेत्पथ्यंगोघृतंतक्रमेवच॥११८॥पिपासायांजलंशीतंविजयाचहितानिशि ॥

अर्थ—१ हींगलू २ शुद्ध किया हुआ वत्सनाभ विप ३ काली मिरच ४ सुहागा और ५ पीपल ये पांच औषध समान भाग लेके एकत्र चूर्ण करे। इसको आनदभैरवरस कहते हैं। यह आनंदभैरव रस इंद्रजौ और कूडाकी छाल ये दोनो एक २ कर्ष प्रमाण लेकर चूर्ण करे। इस चूर्णके साथ रोगोका बलाबल विचारके १ रत्ती प्रमाण अथवा दोरत्ती प्रमाण सहतसे देवे तो त्रिदोषसे प्रगट अतिसारका रोग दूर होवे। पथ्यमे गौका दही और भात, घी भात अथवा छाछ भात देवे। प्यास लगे तो शीतल जल पीवे। रात्रिमे थोडी भांग शुद्ध करके घोटके पीवे तो यह भांग अतिसार रोगपर अति हितकारी होती है।

लघुसूचकाभरणरस संनिपातपर।

विपंपलमितंसूतःशाणिकश्चूर्णयेद्वयम् ॥११९॥ तच्चूर्णंसंपुटेक्षिप्त्वाकाचलिप्तशरावयोः ॥ मुद्रांदत्त्वाचसंशोष्यततश्चुल्ल्यांनिवेशयेत्॥१२०॥वह्निंशनैःशनैःकुर्यात्प्रहरद्वयसंख्यया॥

ततउद्घाटयेन्मुद्रामुपरिस्थांशरावकात् ॥ १२१ ॥ संलग्नोयो भवेत्सूतस्तंगृह्णीयाच्छनैःशनैः ॥वायुस्पर्शोयथानस्यात्तथाकूप्यांनिवेशयेत् ॥ १२२ ॥ यावत्सूच्यामुखेलग्नःकूप्यानिर्यातिभेषजम् ॥ तावन्मात्रोरसोदेयोमूर्च्छितेसंनिपातिनि ॥१२३॥ क्षीरेणप्रस्थितेमूर्ध्नितत्रांगुल्याचघर्षयेत् ॥ रक्तभेषजसंपर्कान्मूर्च्छितोपिहिजीवति ॥ १२४ ॥ तथैवसर्पदष्टस्तुमृतावस्थोऽपिजीवति ॥ १२५ ॥ यदातापोभवेत्तस्यमधुरंतत्रदीयते ॥

अर्थ—वच्छनागविष १ पल, शुद्ध किया हुआ पारा २ मासे, दोनोंको एकत्र खरल करके चूर्ण करे। फिर काचसे लिपे (काचचढे) हुए दो मट्टीके सकोरे ले उनमे चूर्णको रख दोनोंको मिलाय मुखबंदकर ऊपर कपडमिट्टीकर देवे। फिर धूपमे सुखायके चूल्हेपर रखके दो प्रहरतक मद २ अग्नि देवे तव उसको नीचे उतारके मुद्रा दूर कर ऊपरके शरावेमें लगेहुए पारेको हलके हाथसे अचकेसी युक्तिसे निकाल शीशीमे भरके धररक्खे। पश्चात् उस शीशीमें सूई डालके जितना रस सूईके अग्र भागमें लगे इतना वाहर निकाले। जिस मनुष्यको सनिपातके होनेसे मूर्च्छा आयरही हो उस मनुष्यके मस्तकमें तालुएके स्थानमे उस्तरेसे बालोको मूँडके फिर उस जगहकी खालको छीलके उस घावमे इस औषधको लगाय उगलीसे यहांतक मलतारहे कि जबतक वह औषध रुधिरसे न मिले। जव रुधिरमे यह औषध अच्छे प्रकार मिल जावेगी उसी समय उस प्राणीकी मूर्च्छा जाती रहेगी और वह प्राणी होसमे आयजावेगा। उसी प्रकार जिस प्राणीको साँपके काटनेसे मूर्च्छा आगईहो और मरा चाहताहो वो भी इस क्रियाके करनेसे बचजावे। इस उपायके करनेसे देहमें दाह विशेष होता है उसके दूर करनेको गुलकंद दाख इत्यादिक मधुर पदार्थ भक्षणको देवे तो दाह शांत होय।

जलचूडामणिरस संनिपातपर।

सूतभस्मसमंगंधंगंधात्पादंमनःशिला ॥ माक्षिकंपिप्पलीव्योषंप्रत्येकंशिलयासमम् ॥ १२६ ॥ चूर्णयेद्भावयेत्पित्तैर्मत्स्यमायूरसंभवैः॥सप्तधाभावयेच्छुष्कंदेयंगुंजाद्वयंहितम्॥१२७॥ तालपर्णीरसश्चानुपंचकोलशृतोऽथवा ॥ जलचूडोरसोनामसन्निपातंनियच्छति॥१२८॥जलयोगश्चकर्त्तव्यस्तेनवीर्यंभवेद्रसे ॥

अर्थ—पारेकी भस्म १ भाग और गंधक १ भाग गंधकका चतुर्थांश मनशिल १ सुवर्ण-माक्षिककी भस्म २ पीपल ३ सोठ ४ कालीमिरच और ५ पीपल ये पांच औषध मनशि-लके समान ले चूर्णकरे। फिर खरलमें डालके मछलीके कलेजेमें पित्त होताहै उसके सातपुट देवे। फिर मोरके पित्तके सात पुट देकर सुखाय लेवे. इसको जलचूडामणिरस कहते है। यह जलचूडामणिरस दो रत्तीके अनुमान मूसलीके रसमे अथवा पंचकोलके काढेमे देवे। जब इसकी गरमी होय तब उस रोगीके मस्तकपर शीतल जलका तरडा देवे तो रसमें वीर्य बढे। इसप्रकार करनेसे संनिपात दूर होवे। कोई कहते हैं उस रोगीके पास शीतल जलकी परात रक्खे परतु यह बात ठीक नहीं है।

पंचवक्त्ररस सन्निपातपर।

शुद्धसूतंविषंगंधंमरिचंटंकणंकणा॥ १२९ ॥ मर्दयेद्धत्तजद्रावैर्दि-नमेकंतुशोषयेत्॥ पंचवक्त्रोरसोनामद्विगुंजःसन्निपातहा ॥१३०॥ अर्कमूलकषायंतुसत्र्यूषमनुपाययेत् ॥ शुक्तंदध्योदनंपथ्यंजल-योगंचकारयेत् ॥ १३१ ॥ रसेनानेनशाम्यंतिसक्षौद्रेणकफा-दयः ॥ मध्वार्द्रकरसंचानुपिबेदग्निविवृद्धये ॥ १३२ ॥ यथेष्टं घृतमांसाशीशक्तोभवतिपावकः ॥

अर्थ—१ शुद्ध किया हुआ पारा २ शुद्ध किया हुआ वच्छनाग विष ३ गंधक ४ काली-मिरच ५ सुहागा ६ पीपल इन छः औषधोंको धतूरेके रसमें एकदिन खरलकर दो दो रत्ती-की गोलियां बनावे और इनको धूपमे सुखायले। इसको पंचवक्त्ररस कहते हैं। इस रसको आककी जडका काढाकर उसमें सोंठ मिरच पीपलका चूर्ण मिलाय उसके साथ देवे और प-थ्यमे दहीभात देवे। तथा रोगीको जब गरमी होय तब शीतल जलका तरडा देवे तो संन्नि-पात दूर होय। इस रसको सहतके साथ सेवन करनेसे कफादिक रोग दूर हों, अदरखके रसमें सहत मिलायके सेवन करे तो जठराग्निकी वृद्धि होवे। घी और मांस यथेष्ट भोजन कर-नेसे पचजावे।

उन्मत्तरस सन्निपातपर।

रसगंधौसमानांशौधत्तूरफलजैरसैः॥ १३३ ॥ मर्दयेद्दिनमेकं चतत्तुल्यंत्रिकटुक्षिपेत्॥ उन्मत्ताख्योरसोनामनस्येस्यात्स-न्निपातजित्॥ १३४ ॥

अर्थ—शुद्ध किया पारा १ भाग गंधक १ भाग १ सोठ २ कालीमिरच ३ पीपल ये तीन औषधि पारा गंधक दोनोके समान लेवे। सबका चूर्ण कर धतूरेके फलके रसमे एकदिन खरल

करे। फिर सुखायके चूर्ण बनाय धूपमें सुखायले। इसको उन्मत्तरस कहते हैं। जिसको सन्निपात होय उसकी नाकमें इसकी नस्य देय तो रोगीका संनिपात दूर होय।

सन्निपातपर अंजन।

निस्त्वग्जेपालबीजंचदशनिष्कंविचूर्णयेत् ॥ मरिचंपिप्पलींसूतंप्रतिनिष्कंविमिश्रयेत् ॥१३५॥ भाव्योजंबीरजैर्द्रावैःसप्ताहंसंप्रयत्नतः॥ रसोऽयमंजनेदत्तःसन्निपातंविनाशयेत्॥१३६॥

अर्थ—छिलकेरहित जमालगोटेके बीज १० निष्क लेवे और कालीमिरच पीपल और पारा ये औषध निष्कप्रमाण लेवे। इन चारोंको जंभीरीके रसमें सात दिन खरलकर उसकी गोलिया बनावे। सनिपातवाले रोगीके नेत्रमें इस गोलीको जलमें घिसके लगावे तो सन्निपात दूर होय।

नाराचरस शूलादिरोगोंपर।

सूतटंकणकेतुल्येमरिचंसूततुल्यकम् ॥ गंधकंपिप्पलींशुंठींद्वौद्वौभागौविचूर्णयेत् ॥१३७॥ सर्वतुल्यंक्षिपेद्दंतीबीजंनिस्तुपितंभिषक् ॥ द्विगुंजंरेचनंसिद्धंनाराचोऽयंमहारसः ॥ १३८ ॥ आध्मानंशूलविष्टंभानुदावर्त्तंचनाशयेत् ॥

अर्थ—पारा सुहागा और कालीमिरच ये समभाग ले। गंधक पीपल और सोंठ ये तीन औषध पारेसे दूनी ले तथा शुद्ध कियाहुआ जमालगोटा सबकी बराबर लेय सबको एकत्र कर चूर्ण कर लेवे। इसको नाराचरस कहते हैं। यह रस दस्त होनेके वास्ते २ रत्ती देवे तो होवे और पेटका फूलना शूलरोग मलका अवरोध और वायुकी ऊर्ध्व गति ये सब रोग दूर होंय। इस नाराचरसको गरम जलके साथ वा तुलसीके रससे वा सहत तथा अदरखके रसके साथ देते हैं। और जब दस्त बंद करने होय तब शीतल जल पीवे तो दस्त बंद होजावे।

इच्छाभेदीरस शूलादिकोंपर।

दरदंटंकणंशुंठीपिप्पलीचेतिकार्पिकाः॥ १३९ ॥हेमाह्वापलमात्रास्याद्दंतीबीजंचतत्समम्॥विशोष्यैकत्रसर्वाणिगोदुग्धेनैवपाययेत् ॥ १४० ॥ त्रिगुंजंरेचनंदद्याद्विष्टंभाध्मानरोगिषु ॥

अर्थ—हींगलू सुहागा सोंठ और पीपल ये चार औषधि एक एक तोले लेवे और चोक तथा शुद्ध कियाहुआ जमालगोटा चार २ तोले लेय। सब औषधोंको कूट

पीस चूर्ण करे। इसको इच्छाभेदीरस कहते हैं। यह रस दस्त होनेके वास्ते गौके दूधमें तीन रत्ती देय तो दस्त होकर मलका अवरोध तथा पेटका फूलना इत्यादि रोग दूर होते हैं। यह प्राणीको इच्छाके माफिक दस्त कराता है इससे इसको इच्छाभेदीरस कहते हैं।

वसंतकुसुमाकररस प्रमेहादिकोंपर।

द्वौभागौहेमभूतेश्चगगनंचापितत्समम् ॥ १४१ ॥ लोहभस्मत्रयोभागाश्चत्वारोरसभस्मतः ॥ वंगभस्मत्रिभागंस्यात्सर्वमेकत्र मर्दयेत् ॥ १४२ ॥ प्रवालंमौक्तिकंचैवरससात्म्येनदापयेत् ॥ भावनागव्यदुग्धेनरसैर्धृङ्गाटरूपकैः ॥ १४३ ॥ हरिद्रावारिणा चैवमोचकंदरसेनच ॥ शतपत्ररसेनापिमालत्याःस्वरसेनच ॥ ॥ १४४ ॥ पश्चान्मृगमदश्चंद्रस्तुलसीरसभावितः ॥ कुसुमाकरइत्येषवसंतपदपूर्वकः ॥ १४५ ॥ गुंजाद्वयंददीतास्यमधुना सर्वमेहनुत् ॥ सिताचंदनसंयुक्तश्चाम्लपित्तादिरोगजित् ॥ १४६ ॥

अर्थ–सुवर्णकी भस्म २ भाग अभ्रककी भस्म २ भाग लोहभस्म ३ भाग पारेकी भस्म ४ भाग वंगभस्म ३ भाग मूँगा और मोतीकी भस्म ४ भाग इनको गौके दूधकी १ अडूसेके पत्तोंके रसकी १ हल्दीके रसकी १ केलेके कंदके रसकी १ गुलाबजलकी १ मालतीकी १ कस्तूरीकी १ भीमसेनी कपूरकी १ तुलसीके रसकी एक एक भावना देकर गोली बनाय सुखाय लेवे इसको वसंतकुसुमाकर रस कहते हैं। इसकी दो रत्ती मात्रा सर्व प्रमेहोपर देवे। मिश्री और सफेद चंदनके चूरेके साथ देनेसे सर्व पित्तके रोग दूर होते हैं (यह रस शार्ङ्गधरका नहीं है प्रक्षिप्त पाठ है)।

राजमृगांकरस क्षयरोगपर।

सूतभस्मत्रिभागंस्याद्भागैकंहेमभस्मकम् ॥ मृताभ्रस्यचभागैकंशिलागंधकतालकम् ॥ १४७ ॥ प्रतिभागद्वयंशुद्धमेकीकृत्यविचूर्णयेत् ॥ वराटान्पूरयेत्तेनच्छागीक्षीरेणटंकणम् ॥ १४८ ॥ पिष्ट्वातेनमुखंरुद्ध्वामृद्भांडेतन्निरोधयेत् ॥ शुष्कंगजपुटेपक्त्वा चूर्णयेत्स्वांगशीतलम् ॥ १४९ ॥ रसोराजमृगांकोऽयंचतुर्गुंजः क्षयापहः ॥ दशपिप्पलिकाक्षौद्रैरेकोनत्रिंशदूषणैः ॥ १५० ॥

---

१ मृतताम्रस्य इति पाठांतरम्।

अर्थ—पारेकी भस्म ३ भाग सुवर्णकी तथा अभ्रककी भस्म एक एक भाग १ मनशिल २ गंधक और २ हरताल ये तीनो शुद्ध की हुई दो दो भाग ले सबको एकत्र खरल कर चूर्ण कर लेवे । फिर बडी २ पीली कौडी ले उनमें इस चूर्णको भरके मुखको बकरीके दूधमें पिसे हुए सुहागेसे बंद कर देवे । फिर उन कौडियोंको हाँडीमे रखके उस हाँडीके मुखपर दूसरी छोटी हाँडी रखके उसकी संधियोंको कपडमिट्टीसे बंद करदेवे । धूपमे सुखायके आरने उपलोंके गजपुटमें धरके फूंक देय जब शीतल होजाय तब उस संपुटमें रस निकालके धर रक्खे । इसको राजमृगांक कहते हैं । यह राजमृगांक चार रत्ती, दश पीपले और उन्तीस काली मिरच इन दोनोंकि चूर्णमें मिलाय सहतमें चाटे तो क्षयरोग दूर होवे ।

स्वयमग्निरस क्षयादिकोंपर ।

शुद्धंसूतंद्विधागंधंकुर्य्यात्खल्वेनकज्जलीम् ॥ तयोःसमंतीक्ष्णचूर्णंमर्दयेत्कन्यकाद्रवैः ॥ १५१ ॥ द्वियामांतेकृतंगोलंताम्रपात्रे विनिक्षिपेत् ॥ आच्छाद्यैरंडपत्रेणयामार्धेऽत्युष्णताभवेत् ॥ ॥ १५२ ॥ धान्यराशौन्यसेत्पश्चादहोरात्रात्समुद्धरेत् ॥ संचूर्ण्यगालयेद्वस्त्रेसत्यंवारितरंभवेत् ॥ १५३ ॥ भावयेत्कन्यकाद्रावैःसप्तधाभृंगजैस्तथा ॥ काकमाचीकुरंटोत्थद्रवैर्मुंडयापुनर्नवैः ॥ १५४ ॥ सहदेव्यमृतानीलीनिर्गुंडीचित्रजैस्तथा ॥ सप्तधातुपृथग्द्रावैर्भाव्यंशोष्यंतथातपे ॥ १५५ ॥ सिद्धयोगो ह्ययंख्यातःसिद्धानांचमुखागतः ॥ अनुभूतोमयासत्यंसर्वरोगगणापहः ॥ १५६ ॥ स्वर्णादीन्मारयेदेवंचूर्णीकृत्यतुलोहवत् ॥ त्रिफलामधुसंयुक्तःसर्वरोगेषुयोजयेत् ॥ १५७ ॥ त्रिकटुत्रिफलैलाभिर्जातीफललवंगकैः ॥ नवभागोन्मितैरेतैःसमःपूर्वरसो भवेत् ॥ १५८ ॥ संचूर्ण्यालोडयेत्क्षौद्रैर्भक्ष्यंनिष्कद्वयंद्वयम् ॥ स्वयमग्निरसोनाम्नाक्षयकासनिकृंतनः ॥ १५९ ॥

अर्थ—शुद्ध पारा १ भाग तथा शुद्ध गंधक दो भाग लेकर दोनोकी कजली करके फिर इसमे समान भाग पोलाद लोहका चूर्ण मिलायके घीगुवारके रसमे दो प्रहर पर्यन्त खरल करे । फिर इसका गोला बनाय ताम्रके कटोरेमे उस गोलेको रखके उसके ऊपर अंड-

१ यदि यह चूर्ण एकवारमे न खाया जाय तो दो तीनवार मिलायके खाय ।

के पत्ते ढकके चार घडी पर्यंत धूपमें रखदेवे। जब गोला अत्यंत गरम होजावे तब उसको धानकी राशिमें गाड देवे। एक दिनरात्रिके पश्चात् उसको निकाल कर उसको कपडेमे छान लेय और पानीमें डाले तो यह भस्म निश्चय पानीमे तरने लगे। इस भस्मको खरलमें डालके आगे कही हुई औषधोंके रसकी भावना देवे। जैसे घीगुवार भाँगरा मकोय पियावांसा मुंडी पुनर्नवा सहदेई गिलोय नीली निर्गुण्डी और चित्रक इनके पृथक् २ सातपुट देवे (ऊपर कही हुई औषधोंके रसमें खरलकर धूपमें सुखाय ले यह एक पुट हुई इस प्रकार सात २ पुट देवै) तो यह रसायन सिद्ध होय। इसको स्वयमग्निरस कहते हैं। यह रस सर्वत्र प्रसिद्ध वडे २ पुरुषोंने कहा है इस वास्ते मैंने अनुभव करके कहा है। यह स्वयमग्निरस सपूर्ण रोग दूर करनेको त्रिफलेका चूर्ण और सहत इस अनुपानके साथ दो निष्कप्रमाण लेवे तो संपूर्ण रोग दूर होय १ सोंठ २ मिरच ३ पीपल ४ हरड ५ वहेडा ६ आँवला ७ इलायची ८ जायफल और ९ लौंग इन नौ औषधोंको समान भाग ले चूर्ण करे। इस चूर्णके समान यह स्वयमग्नि रस लेवे। दोनोंको एकत्र कर सहतमें मिलायके दो निष्कप्रमाण सेवन करेतो क्षय रोग और खाँसीका रोग ये नष्ट होय। रसायनकी रीतिसे स्वर्णादिक धातुका लोहके समान चूर्ण करके भस्म करे तो उनकीभी भस्म होय।

सूर्यावर्त्तरस श्वासपर।

सूताधोंगंधकोमद्योयामैकंकन्यकाद्रवैः॥ द्वयोस्तुल्यंताम्रपत्रंपूर्वकल्केनलेपयेत्॥१६०॥दिनैकंस्थालिकायंत्रेपक्त्वाचादायचूर्णयेत्॥सूर्यावर्तोरसोह्येषद्विगुंजःश्वासजिद्भवत्॥१६१॥

अर्थ–शुद्धपारा १ भाग और गंधक पारेसे आधी ले, दोनोंको एकत्रकरके घीगुवारके रससे एक प्रहर खरलकरके कल्क करावे। फिर दोनोंके समान तांवेके पत्र लेकर उनपर इस कल्कका लेपकरके उन पत्रोंको मिट्टीके पात्रमें रखके उस पात्रके मुखपर दूसरा पात्र ओंधा रखके उसकी सन्धियोंको कपडमिट्टीसे वंदकर देवे। फिर उसको धूपमें सुखायके चूल्हेपर रखके एक दिनकी अग्नि देवे। इसको स्थालिका यत्र कहते हैं। फिर शीतल होनेपर उन पत्रोंको वाहर निकाल खरलकरके वारीक चूर्णकर लेवे। इसको सूर्यावर्त्तरस कहते हैं यह दोरत्तीके अनुमान श्वासरोगवालेको देय तो उसकी श्वासको दूरकरे।

स्वच्छन्दभैरवरस वातरोगपर।

शुद्धंसूतंमृतंलोहंताप्यंगंधकतालकम्॥ पथ्याग्निमंथनिर्गुंडीत्र्यूषणंटंकणंविषम्॥१६२॥ तुल्यांशंमर्दयेत्खल्वेदिनंनिर्गुं-

डिकाद्रवैः ॥ मुंडीद्रावैर्दिनैकंतुद्विगुंजंवटकीकृतम् ॥ १६३ ॥ भक्षयेद्वातरोगार्तोनाम्नास्वच्छंदभैरवः ॥ रास्नामृतादेवदारु शुंठीवातारिजंशृतम् ॥ १६४ ॥ सगुग्गुलुंपिबेत्कोष्णमनुपानसुखावहम् ॥

अर्थ—१ शुद्धपारा २ लोहभस्म ३ स्वर्णमाक्षिककी भस्म ४ गधक ५ हरताल ६ जंगीहरड ७ अरनी ८ निर्गुण्डी ९ सोंठ १० कालीमिरच ११ पीपल १२ सुहागा १३ शुद्धवच्छनाग विष ये तेरह औषधि समान भाग लेकर निर्गुंडीके रसमें एकदिन खरल करके दो दो रत्तीकी गोलिया वनावे । इसको स्वच्छदभैरवरस कहते हैं यह रस और १ रास्ना २ गिलोय ३ देवदारु ४ सोंठ ५ अडकी जड इन पांच औषधोंका काढा करके उसमें गूगल मिलायके सेवन करे तो वादीका रोग दूर होय ।

हंसपोटलीरस संग्रहणीपर ।

दग्धान्कपर्दिकान्पिष्ट्वात्र्यूषणंटंकणंविषम् ॥ १६५ ॥ गंधकं शुद्धसूतंचतुल्यंजंबीरजैर्द्रवैः ॥ मर्दयेद्भक्षयेन्माषंमरिचाज्यं लिहेदनु ॥ १६६ ॥ निहंतिग्रहणीरोगंपथ्यंतक्रौदनंहितम् ॥

अर्थ—१ कौडीकी भस्म २ सोठ ३ कालीमिरच ४ पीपल ५ फूलाहुआ सुहागा ६ शुद्ध-वच्छनाग ७ गंधक और ८ शुद्ध किया हुआ पारा इन आठ औषधोंको कूट पीस जंभीरीके रसमे खरलकर एक एक मासेकी गोली वनावे इसको हसपोटलीरस कहते हैं । इसको काली मिर-चके चूर्णसे सहत मिलायके भक्षण करे इसपर छाछ और भातका खाना पथ्य है यह संग्रहणी रोगको दूर करता है ।

त्रिविक्रमरस पथरीरोगपर ।

मृतंताम्रमजाक्षीरेपाच्यंतुल्येगतद्रवम् ॥ १६७ ॥ तत्ताम्रं शुद्धसूतंचगंधकंचसमंसमम् ॥ निर्गुंडीस्वरसैर्मर्द्यंदिनंतद्गोलकं कृतम् ॥१६८॥ यामैकंवालुकायंत्रेपाच्यंयोज्यंद्विगुंजकम् ॥ बीजपूरस्यमूलंतुसजलंचानुपाययेत् ॥ १६९ ॥ रसस्त्रिविक्रमोनाम्नामासैकेवाश्मरीप्रणुत् ॥

अर्थ—ताम्रभस्मके समान वकरीका दूध ले उसमें तावेकी भस्मको मिलायके औटायके गाढी करे । यह ताम्रभस्म शुद्ध किया पारा और गंधक ये तीनों औषध समान भाग लेके निर्गुंडीके रससे एक दिन खरल कर उसकी गोली करके उसको

बालुकायत्रमें डालके एक प्रहर अग्नि देवे। जब शीतल होजावे तब बाहर निकालके उस सपुटसे औषधोंको निकाल लेवे। इसको त्रिविक्रम रस कहते हैं। यह रस दो रत्तीके अनुमान बिजोरेकी जडके रसमें अथवा काढा करके उसके साथ सेवन करे तो पथरीका रोग एक महीनेमें दूर होवे।

महातालेश्वररस कुष्ठादिकोंपर।

तालंताप्यंशिलांसूतंशुद्धंसैंधवटंकणे ॥ १७० ॥ समांशंचूर्णयेत्खल्वेसूताद्द्विगुणगंधकम् ॥ गंधतुल्यंमृततात्रंजंबीरैर्दिनपंचकम् ॥ १७१ ॥ मर्द्यंषड्भिःपुटैःपाच्यंभूधरेसंपुटोदरे ॥ पुटेपुटेद्रवैर्मर्द्यंसर्वमेतच्चषट्पलम् ॥ १७२ ॥ द्विपलंमारितंताम्रंलोहभस्मचतुःपलम् ॥ जंबीराम्लेनतत्सर्वंदिनंमर्द्यंपुटेलघु ॥ १७३ ॥ त्रिंशदंशंविषंचास्यक्षिप्त्वासर्वंविचूर्णयेत् ॥ माहिषाज्येनसंमिश्रंनिष्कार्धंभक्षयेत्सदा ॥ १७४ ॥ मध्वाज्यैर्बाकुचीचूर्णंकर्षमात्रंलिहेदनु ॥ सर्वकुष्ठान्निहंत्याशुमहातालेश्वरोरसः ॥ १७५ ॥

अर्थ—१ हरताल २ सुवर्ण माक्षिक ३ मनशिल ४ शुद्ध कियाहुआ पारा ५ सेधानमक और ६ सुहागा ये छः औषधि समान भाग तथा पारेसे दूनी गंधक लेवे। तथा गधकके समान ताम्रभस्म ले सबको खरलकर जंभीरीके रसमे ५ दिन पर्यंत घोटे। फिर इसका गोला बनाय उसको शरावसंपुटमें रखके कपडमिट्टी करके भूधर यत्रमें उस सरावसंपुटको धरके आरने उपलोकी अग्नि देवे। जब शीतल होजावे तब निकाल फिर जभीरीके रसमें पाच दिन खरल कर पूर्वरीतिसे भूधरयंत्रमे धरके अग्नि देवे। इस प्रकार छः वार भूधरयत्रमें डालके अग्नि देय तो भस्म होय। इस प्रकार की हुई भस्म छः पल, ताम्रभस्म दो पल और लोहभस्म चार पल इन तीनों भस्मोंको एकत्र खरल कर जँभीरीके रसमें एक दिन खरल करे। मिट्टीके शरावसपुटमें डालके कपडमिट्टीकर आरने उपलोकी हलकी अग्नि देवे। जब शीतल हो जावे तब बाहर निकालके इस भस्मका तीसवाँ हिस्सा शुद्ध किया वच्छनाग विप बारीक करके मिलावे। इसको महातालेश्वर रस कहते हैं। यह महातालेश्वर रस अर्द्धनिष्कप्रमाण लेके

---

१ भूधरयंत्रका स्वरूप प्रथम हेमगर्भपोटलीमें कह आए हैं।

२ एक बिलस्त लंबा चौडा गड्ढा खोद उसमें आरनेउपले भरके हलकी अग्नि देवे इसको कुक्कुटपुट कहते हैं।

भैंसके घीके साथ सेवन करे और उसी समय घी और सहत दोनों विषम भाग ले एकत्र करे उसमे बाकुचीका चूर्ण एक कर्ष मिलायके इसके साथ सेवन करे तो यह संपूर्ण कुष्ठोंको तत्काल दूर करे।

कुष्ठकुठाररस कुष्ठरोगपर।

सतभस्मसमोगंधोमृतायस्ताम्रगुग्गुलू॥त्रिफलाचमहानिंबाश्चि त्रकश्चशिलाजतु॥१७६॥ इत्येतच्चूर्णितंकुर्यात्प्रत्येकंशाणषो- डशम्॥ चतुःषष्टिकरंजस्यबीजचूर्णंप्रकल्पयेत्॥१७७॥ च- तुःषष्टिमृतंचाभ्रंमध्वाज्याभ्यांविलोडयेत्॥स्निग्धभांडेघृतंखा- देद्द्विनिष्कंसर्वकुष्ठनुत्॥१७८॥ रसःकुष्ठकुठारोऽयंगलत्कुष्ठ- निवारणः॥

अर्थ–१ पारेकी भस्म २ गंधक ३ लोहभस्म ४ ताम्रभस्म ५ गूगल ६ हरड ७ बहेडा ८ आँवला ९ बकायनकी छाल १० चीतेकी छाल और ११ शिलाजीत ये ग्यारह औषध प्रत्येक सोलह २ शाण लेवे तथा कंजाके बीज ६४ शाण लेय सबका बारीक चूर्ण करके अभ्रक भस्म ६४ शाण लेके उस चूर्णमे मिलाय देवे। इसको कुष्ठ- कुठाररस कहते हैं। यह रस दो निष्कप्रमाण सेवन करे तो संपूर्ण कुष्ठ और गलत्कुष्ठ ये दूर हो।

उदयादित्यरस कुष्ठपर।

शुद्धंसूतंद्विधागंधंमर्द्यंकन्याद्रवैर्दिनम्॥१७९॥ तद्गोलंपिठरी- मध्येताम्रपात्रेणरोधयेत्॥ सूतकाद्द्विगुणेनैवशुद्धेनाधोमुखेनच ॥१८०॥ पार्श्वेभस्मनिधायाथपात्रोर्ध्वंगोमयंजलम्॥ किंचि- त्प्रदातव्यमग्निंचुल्ल्यांयामद्वयंपचेत्॥ १८१॥ चंडाग्निनात- दुद्धृत्यस्वांगशीतंविचूर्णयेत्॥ काष्ठोदुंबरिकावह्निंत्रिफलारा- जवृक्षकम्॥ १८२॥विडंगबाकुचीबीजंक्वाथयेत्तेनभावयेत्॥ दिनैकमुदयादित्योरसोदेयोद्विगुंजकः॥ १८३॥ विचर्चिकां दद्रुकुष्ठंवातरक्तंचनाशयेत्॥ अनुपानंप्रकर्तव्यंबाकुचीफलचू र्णकम्॥१८४॥खदिरस्यकषायेणसक्षेनपरिपाचितम्॥ त्रि- शाणंतद्द्रवांक्षीरैःक्वाथैर्वात्रिफलैःपिवेत्॥ १८५॥ त्रिदिनांते

भवेत्स्फोटःसप्ताहाद्वाकिलासके ॥ नीलीगुंजाश्वकाशीसंधत्तूरं हंसपादिकम् ॥१८६॥ सूर्यभक्ताचचांगेरीपिष्ट्वामूलानिलेपयेत् ॥ स्फोटस्थानप्रशांत्यर्थंसप्तरात्रंपुनःपुनः ॥ १८७ ॥ श्वेतकुष्ठान्निहंत्याशुसाध्यासाध्यंनसंशयः ॥ अपरःश्वित्रलेपोऽपि कथ्यतेऽत्रभिषग्वरैः ॥१८८॥ गुंजाफलाग्निचूर्णंचप्रलेपःश्वेतकुष्ठनुत्॥शिलापामार्गभस्मानिलिप्तंश्वित्रंविनाशयेत्॥१८९॥

अर्थ—शुद्ध किया पारा ४ पळ और गंधक दो भाग लेके घीगुवारके रसमें दोनोंका खरल करके दोनोका गोला बनावे। उस गोलेको घडेमें रखके पारेका तिगुना शुद्ध किया हुआ ताँवा लेकर उसकी कटोरी बनायके उस पूर्वोक्त गोलेके ऊपर ढक देवे और उसकी संधियोंको उपलोंकी राखसे बंदकर देय। गौका गोवर और जल दोनोंको मिलाय उस कटोरीके चारों तरफ लेपकर देवे। उस घडेको चूल्हेपर चढायके प्रचंड अग्नि दो प्रहर देवे। जब स्वागशीतल हो जावे तब संपुटमेंसे औषधको निकालके खरलकर आगे लिखे औषधोंके रसकी पुट देवे। जैसे १ कठूमर २ चित्रक ३ हरड ४ वहेडा ५ आमला ६-अमलतासका गूदा ७ वायविडंग और ८ वावची इन आठ औषधोंका काढा करके उक्त रसमे डालके एक दिन खरल करे। फिर इसको गाढी कर गोली बनाय लेइसे उदयादित्यरस कहते हैं। यह रस रत्ती लेकर खैरकी छालके काढेमें वावचीका चूर्ण ३ शाण मिलायके उसके साथ लेवे। अथवा गौके दूधसे अथवा त्रिफलाके काढेसे सेवन करे विचार्चिका रोग दाद कुष्ट और वातरक्त ये रोग दूर होवे। इस उदयादित्यरसका तीन दिन सेवन करनेसे उस श्वित्रकुष्ठी मनुष्यके देहमें चौथे दिन वा सातवे दिन फोडे उत्पन्न होतेहैं उनके दूर होनेका औषध कहते हैं।

१ नीलपुष्पी २ घूँघची ३ हीराकसीस ४ धतूरा ५ हंसपदी ६ हुलहुल और ७ चूका इन सात औषधोंकी जड समान भाग लेके वारीक पीसलेवे। फिर इसका उन फोडोंपर सातदिन लेप करे तो फोडे अच्छे होकर सफेद कुष्ट साध्य अथवा असाध्य होय तोभी दूर होवे इसमें संशय नहीं है।

दूसरा प्रकार यह है कि घूँघची (चिरमिठी) और चित्रक इनका वारीक चूर्ण करके पानीमें मिलाय देहमें मालिश करे। उसी प्रकार मनशिल और ओंगाकी राख इन दोनोंको खरल करके देहमें मालिशकरे तो सफेद कुष्ट दूर हो।

सर्वेश्वररस कुष्ठादिकोंपर।

शुद्धंसूतंचतुर्गंधंपलंध्यामंविचूर्णयेत् ॥ मृतताम्राभ्रलोहानां द्र-

दस्यपलंपलम् ॥ १९० ॥ सुवर्णंरजतंचैवप्रत्येकंदशनिष्ककम् ॥ माषैकंमृतवज्रंचतालंशुद्धंपलद्वयम् ॥ १९१ ॥ जंबीरोन्मत्तवासाभिःस्नुह्यर्कविषमुष्टिभिः ॥ मर्द्यंहयारिजैर्द्रावैःप्रत्येकेनदिनंदिनम् ॥१९२॥ एवंसप्तदिनंमर्द्यंतद्गोलंवस्त्रवेष्टितम्॥ वालुकायंत्रगंस्वेदंत्रिदिनंलघुवह्निना ॥ १९३ ॥ आदायचूर्णयेच्छ्लक्ष्णंपलैकंयोजयेद्विषम्॥ द्विपलंपिप्पलीचूर्णंमिश्रंसर्वेश्वरोरसः ॥ १९४ ॥ द्विगुंजोलिह्यतेक्षौद्रैःसुप्तिमंडलकुष्ठनुत् ॥ बाकुचीदेवकाष्ठंचकर्षमात्रंसुचूर्णयेत् ॥ १९५ ॥ लिहेदेरंडतैलाक्तमनुपानंसुखावहम् ॥

अर्थ—शुद्धकियाहुआ पारा ४ पल गंधक १ पल दोनोको एकत्रकर एकप्रहर पर्यंत खरल करे फिर तामेकी भस्म अभ्रकभस्म लोहभस्म और हींगलू ये चार वस्तु चार २ पलले, सुवर्णभस्म और रूपेकी भस्म दोनों दश २ निष्क लेवे और हीरेकी भस्म १ मासे तथा हरतालका सत्व २ पल ये सब औषध उस पारेगन्धककी कजलीमें मिलाय नींबू धतूरा अडूसा वकायन और कनेर इनकी जडके रसमे तथा थूहर और आक इनके दूधमें पृथक् २ एक २ दिन खरलकरके गोला करे। उसके चारो तरफ कपडा लपेट वालुकायत्रमें रखके चूल्हेपर चढावे और उसके नीचे मंद २ अग्नि तीन दिन देवे । जब शीतल होजावे तब उस संपुटमेंसे रसको निकालके उसमें शुद्धकियाहुआ वच्छनाभविषका चूर्ण १ पल और पीपलका चूर्ण दो पल मिलाय देवे । इसे सर्वेश्वररस कहते हैं। यह रस दो रत्तीके अनुमान सहतके साथ सेवन करे और इसके ऊपर तत्काल बावची और देवदारु इनका चूर्ण एक कर्ष अंडीके तेलमें मिलायके सेवन करे तो सुप्तिकुष्ठ और मंडलकुष्ठ दूर हो ।

स्वर्णक्षीरीरस सुप्तिकुष्ठपर ।

हेमाह्वांपंचपलिकांक्षिप्त्वातक्रघटेपचेत् ॥ १९६ ॥ तक्रेजीर्णेसमाहृत्यपुनःक्षीरघटेपचेत् ॥ क्षीरेजीर्णेसमुद्धृत्यक्षालयित्वाविशेषतः ॥१९७॥तच्चूर्णंपंचपलिकंमरिचानांपलद्वयम्॥ पलैकंमूर्च्छितंसूतमेकीकृत्यतुभक्षयेत् ॥ १९८ ॥ निष्कैकंसुप्तिकुष्ठार्तःस्वर्णक्षीरीरसोह्वयम् ॥

अर्थ—चोक ५ पल लेकर एक घडामें छाछ भरके उसमें उस चोकको डालके औटावे जब छाछ सूख जाय तब चोकको निकाल लेय फिर उसको दूधके घडेमें डालके औटावे जब दूधभी सूख जाय तब उसको निकाल कर धोय लेवे । फिर उसका चूर्ण करके दो पल लेय और पारेकी भस्म १ पल प्रमाण लेके दोनोंको एकत्र पीस लेवे । इसे स्वर्णक्षीरी रस कहते है । यह रस १ निष्क नित्य सेवन करे तो सुप्तिकुष्ठ दूर होय । किसी किसी वैद्यकी यह संमति है कि चोक नाम उसोर रेवनको कहते हैं ।

प्रमेहबद्धरस प्रमेहरोगपर ।

सूतभस्ममृतंकांतंमुंडभस्मशिलाजतु ॥ १९९ ॥ शुद्धंताप्यंशिलाव्योषंत्रिफलांकोलबीजकम् ॥ कपित्थंरजनीचूर्णंभृंगराजेनभावयेत् ॥ २०० ॥ विंशद्वारंविशोष्याथमधुयुक्तंलिहेत्सदा ॥ निष्कमात्रंहरेन्मेहान्मेहबद्धरसोमहान् ॥ २०१ ॥ महानिंबस्यबीजानिपिष्ट्वाषट्संमितानिच ॥ पलंतंदुलतोयेनघृतनिष्कद्वयेनच ॥ ॥ २०२ ॥ एकीकृत्यपिबेच्चानुहंतिमेहंचिरंतनम् ॥

अर्थ—१ पारेकी भस्म २ कांतलोहकी भस्म ३ लोहभस्म ४ शुद्धकियाहुआ शिलाजीत ५ सुवर्णमाक्षिककी भस्म ६ मनशिल ७ सोंठ ८ मिरच ९ पीपल १० हरड ११ बहेडा १२ आँवला १३ अकोलके बीज १४ कैथका गूदा और १५ हल्दी ये पंद्रह औषध समान भाग ले । इनमें भस्मके सिवाय जो औषधी हैं उनका चूर्ण कर उसमें सब भस्मोको मिलायके फिर भाँगरेके रसकी २० पुट देवे । इसको मेहबद्ध रस कहते हैं यह रस १ निष्क प्रमाण सहतके साथ सेवन करे तो घोर प्रमेहका रोग नष्ट होय । यदि बकायनके छः बीजका चूर्ण करके चावलोंका धोवन एक पल लेके उसमें उस बकायनके चूर्णको मिलावे और दो निष्क घी मिलाय इस अनुपानके साथ इस मेहबद्धरसको भक्षण करे तो बहुत दिनका पुराना प्रमेहभी दूर होय ।

महावह्निरस सर्वउदररोगोंपर ।

चतुःसूतस्यगंधाष्टौरजनीत्रिफलाशिवा ॥ २०३ ॥ प्रत्येकंचद्विभागंस्यात्त्रिवृज्जैपालचित्रकाः ॥ प्रत्येकंचत्रिभागंस्यात्त्र्यूषणंदंतिजीरकम् ॥ २०४ ॥ प्रत्येकमष्टभागंस्यादेकीकृत्यविचूर्णयेत् ॥ जयंतीस्नुक्पयोभृंगवह्निवातारितैलकैः ॥ २०५ ॥

प्रत्येकेनक्रमाद्भाव्यंसप्तवारंपृथक्पृथक् ॥ महावह्निरसोनाम निष्कमुष्णजलैःपिबेत् ॥ २०६ ॥ विरेचनंभवेत्तेनतक्रभक्तंससैंधवम् ॥ दिनांतेदापयेत्पथ्यंवर्जयेच्छीतलंजलम् ॥ २०७ ॥ सर्वोदरहरःप्रोक्तोमूढवातहरःपरः ॥

अर्थ—पारा चार भाग, गंधक ८ भाग, १ हल्दी २ हरड ३ वहेडा ४ आँवला और ५ छोटी हरड ये पांच औषध दो दो भाग लेवे । १ निशोथ २ शुद्ध किया हुआ जमालगोटा और ३ चित्रक ये तीन औषध तीन २ भाग लेवे तथा १ सोंठ २ मिरच ३ पीपल ४ दंती और ५ जीरा ये पांच औषधी आठ २ भाग लेवे । सब औषधोंका चूर्ण करके अरणीका रस थूहरका दूध भांगरेका रस चित्रक और अडीका तेल इन प्रत्येककी पृथक् १ सात २ भावना देवे । फिर एक २ निष्ककी गोलियाँ बांध लेवे । इसमेंसे १ गोली गरम जलके साथ सेवन करे तो इससे दस्त हो । जब दस्त होचुके तब सायंकालको पथ्यमें छाछ और भात देना चाहिये और नमकोंमे सैंधानमक खाय जब २ जल पीवे तब २ गरम जल पीवे शीतल न पीवे इस रसायनसे दस्त होकर सपूर्ण उदरके विकार तथा मूढवात दूर होवे ।

विद्याधररस गुल्मादिरोगोंपर ।

गंधकंतालकंताप्यंमृतताम्रंमनःशिलाम् ॥ २०८ ॥ शुद्धंसूतंचतुल्यांशंमर्दयेद्भावयेद्दिनम् ॥ पिप्पल्यस्तुकषायेणवज्रीक्षीरेणभावयेत् ॥ २०९ ॥ निष्कार्धंभक्षयेत्क्षौद्रैर्गुल्मप्लीहादिकंजयेत् ॥ रसोविद्याधरोनामगोमूत्रंचपिबेदनु ॥ २१० ॥

अर्थ—१ गंधक २ हरताल ३ सुवर्णमाक्षिककी भस्म ४ ताम्रभस्म ५ मनशिल और शुद्ध कियाहुआ पारा ये छः औषध समान भाग लेकर खरलमें डालके पीपलके काढेसे १ दिन खरल करे । फिर २ दिन थूहरके दूधसे खरल करे । इसको विद्याधर रस कहते हैं । यह रस आधा निष्क लेकर सहतमें मिलायके सेवन करे तो गुल्म (गोलेका) रोग और प्लीहादिक रोग दूर होवे ।

त्रिनेत्ररस पक्ति (परिणाम) शूलादिकोंपर ।

टंकणंहारिणंशृंगंस्वर्णंशुल्वंमृतंरसम् ॥ दिनैकमार्द्रकद्रावैर्मर्द्यंरुद्ध्वापुटेपचेत् ॥ २११ ॥ त्रिनेत्राख्यरसस्यैकंमाषंसध्वाज्यकैर्लिहेत् ॥ सैंधवंजीरकंहिंगुमध्वाज्याभ्यांलिहेदनु ॥ २१२ ॥ पक्तिशूलहरःख्यातोमासमात्रान्नसंशयः ॥

अर्थ–१ सुहागा २ हरिणका सींग ३ सुवर्णभस्म ४ ताम्रभस्म और ५ पारेकी भस्म इन पांच औषधोंको अदरखके रसमे एकदिन खरलकर मिट्टीके सरावसंपुटमें रखके उसपर कपड-मिट्टीकरके गड्ढा खोद उसमे आरने उपलोंकी हलकी अग्नि देवे। जब शीतल होजावे तब बाहर निकालके उसमेसे औषधको निकाल ले। इसको त्रिनेत्र रस कहते हैं। यह रस एकमासेके अनुमान लेके सहत और घी दोनोंको मिलायके इसको भक्षण करे और इसके ऊपर तत्काल १ सैंधानमक २ जीरा ३ भुनी हींग इन तीन औषधोंका चूर्ण करके घी और सहतमे मिलायके खाय तो पक्ति (परिणाम) शूल एक महीनेमें दूर होय।

शूलगजकेसरीरस शूलादिकोंपर।

शुद्धसूतंद्विधागंधंयामैकंमर्दयेद्दृढम् ॥२१३॥ द्वयोस्तुल्यंशुद्धताम्रंसंपुटेतंनिरोधयेत् ॥ ऊर्ध्वाधोलवणंदत्त्वामृद्भांडेधारयेद्भिषक् ॥ २१४ ॥ ततोगजपुटेपक्त्वास्वांगशीतंसमुद्धरेत् ॥ संपुटंचूर्णयेत्सूक्ष्मंपर्णखंडेद्विगुंजकम् ॥ २१५ ॥ भक्षयेत्सर्वशूलार्तोहिंगुशुंठीसजीरकम् ॥ वचामरिचजंचूर्णंकर्षमुष्णजलैःपिबेत् ॥ २१६ ॥असाध्यंनाशयेच्छूलंरसोऽयंगजकेसरी॥

अर्थ–शुद्ध कियाहुआ पारा १ भाग, गंधक २ भाग दोनोको मिलायके १ प्रहर पर्यंत खरलकरके दोनोके समान शुद्ध किया ताँवा लेवे। उसकी कटोरी बनायके उसमे पारा गंधककी कजलीको रखके दूसरी कटोरीसे ढकके मिट्टीकी हाँडीको आधी नमकसे भर बीचमें इस तामेकी कटोरीको रख ऊपर फिर पिसे हुए नमकसे भरदेवे फिर उस हांडीके मुखपर दूसरी छोटी पारी ढकके उसकी संधियोको कपडामिट्टीकरके सुखाय लेवे। फिर गड्ढा खोदके उसमें आरने उपले भरके बीचमें संपुटको रखके ऊपर उपले भरके गजपुटकी अग्नि देवे। जब शीतल होजावे तब निकालके उस कटोरीको बारीक पीसके चूर्ण करे। इसको शूलगजकेसरी रस कहते हैं जिस मनुष्यको सर्व प्रकारका शूल हो उसको पानके बीडेमे दो रत्ती यह रखके खिलाय और इसके ऊपर तत्काल १ भुनी हींग २ सोंठ ३ जीरा ४ वच और ५ कालीमिरच इन पाच औषधोका चूर्ण एक कर्ष प्रमाण ले पानीमे मिलायके पिलावे तो असाध्यभी शूल दूर होय।

सूत[illegible]री मंदाग्निआदिरोगोंपर।

शुद्धसूतंविषंगंधमजमोदांफलत्रयम् ॥२१७॥ सर्जक्षारंयवक्षारंवह्निसैंधवजीरकौ ॥ सौवर्चलंविडंगानिसामुद्रंत्र्यूषणंसमम् ॥

॥ २१८ ॥ विषमुष्टिंसर्वतुल्यांजंबीराम्लेनमर्दयेत् ॥ मरिचा-भांवटींखादेत्सर्वाजीर्णप्रशांतये ॥ २१९ ॥

अर्थ-१ शुद्धकिया पारा २ शुद्धकिया वच्छनाग विष ३ गंधक ४ अजमोद ५ हरड ६ बहेडा ७ आंवला ८ सज्जीखार ९ जवाखार १० चित्रक ११ सैंधानमक १२ जीरा १३ काला-नमक १४ विडनमक १५ सामुद्रनमक १६ सोंठ १७ मिरच १८ पीपल ये अठारह औषध समान भाग ले। और वकायनके वीज सब औषधोंके बराबर ले सबका चूर्ण कर जभीरीके रसमें खरलकर मिरचके समान गोली बांधे। इसमेंसे एक २ गोली नित्य खाय तो सर्व प्रकारके अजीर्ण दूर होय।

अजीर्णकंटकरस अजीर्णपर।

शुद्धसूतंविषंगंधंसमंसर्वंविचूर्णयेत् ॥मरिचंसर्वतुल्यांशंकंटका-र्याःफलद्रवैः ॥२०० ॥ मर्दयेद्भावयेत्सर्वमेकाविंशतिवारकम् ॥ वटींगुंजात्रयंखादेत्सर्वाजीर्णप्रशांतये॥ २२१ ॥अजीर्णकंटक-श्चायंरसोहंतिविषूचिकाम् ॥

अर्थ-१ शुद्ध किया पारा २ शुद्ध वच्छनागविष और ३ गंधक ये तीन औषध समान भाग लेवे और तीनोंके समान काली मिरच लेवे। सबको खरलकरके कटोरीके फलोंके रसमें पृथक् २ इक्कीस भावना देके तीन २ रत्तीकी गोली बनावे। इसको अजीर्णकंटकरस कहते हैं। इस रसकी एक एक गोली सेवनकरनेसे सर्व प्रकारके अजीर्ण तथा विषूचिका (हैजा) दूर होवे।

मंथानुभैरवरस कफरोगपर।

मृतंसूतंमृतंताम्रंहिंगुपुष्करमूलकम् ॥ २२२ ॥ सैंधवंगंधकं तालंकटुकींचूर्णयेत्समम् ॥ पुनर्नवादेवदालीनिर्गुंडीतंडुलीय-कैः ॥ २२३ ॥ तिक्तकोशातकीद्रावैर्दिनैकंमर्दयेद्दृढम् ॥ माष-मात्रंलिहेत्क्षौद्रैरसंमंथानुभैरवम् ॥ २२४ ॥ कफरोगप्रशांत्य-र्थंनिंबक्काथंपिबेदनु ॥

अर्थ-१ पारेकी भस्म २ तामेकी भस्म ३ हींग ४ पुहकरमूल ५ सैंधानमक ६ गंधक ७ हरताल और ८ कुटकी ये आठ औषध समान भाग ले। भस्मके विना सब औषधोंका चूर्ण करके फिर पूर्वोक्त भस्म मिलायके पुनर्नवा (सांठ) के रससे एक दिन खरल करे। फिर बंदाल, निर्गुंडी, चौलाई और कडवी तोरई इन एक एकके रस

में एक एक दिन खरल कर गोली बनावे। इसको मंथानुभैरव रस कहते हैं यह रस १ मासा सहतमें मिलायके सेवन करे और उसके ऊपर तत्काल कडुए नीमकी छालका काढा पीवे तो कफरोग दूर होय।

वातनाशनरस वातविकारपर।

सूतहाटकवज्राणिताम्रंलोहंचमाक्षिकम् ॥ २२५ ॥ तालंनीलांजनंतुत्थमहिफेनंसमांशकम् ॥ पंचानांलवणानांचभागमेकंविमर्दयेत् ॥ २२६ ॥ वज्रीक्षीरैर्दिनैकंतुरुद्ध्वाधोभूधरेपचेत् ॥ माषैकमार्द्रकद्रावैर्लिह्येद्वातनाशनम् ॥ २२७ ॥ पिप्पलीमूलजक्वाथंसकृष्णमनुपाययेत् ॥ सर्वान्वातविकारांस्तुनिहंत्याक्षेपकादिकान् ॥ २२८ ॥

अर्थ—१ पारेकी भस्म २ सुवर्णभस्म ३ हीरेकी भस्म ४ ताँबेकी भस्म ५ लोहेकी भस्म ६ सुवर्णमाक्षिककी भस्म ७ हरतालकी भस्म ८ शुद्ध सुरमा ९ लीलाथोथा और १० अफीम ये दश औषध समान भाग ले। १ सैंधानमक २ संचरनमक ३ विड़नोन ४ खारीनोन और ५ समुद्रनमक ये पांच क्षार मिलाकर एक भाग लेवे अर्थात् दश औषध दश तोले होय तो पांचों क्षार मिलायके १ तोले लेय। सबको एकत्र करके थूहरके दूधसे १ दिन खरल कर मिट्टीके शरावसंपुटमें भरके कपडमिट्टी कर भूधरयंत्रमें रखके अग्नि देवे। जब स्वांग शीतल होजावे तब बाहर निकालके उसमेंसे औषधको निकाल लेवे। इसको वातनाशन रस कहते हैं। यह रस एक मासेके अनुमान अदरखके रससे सेवन करे और इसके ऊपर तत्काल पीपलामूलका काढा कर उसमें पीपलका चूर्ण डालके पीवे तो संपूर्ण आक्षेपकादिक बादी दूर होय।

कनकसुंदररस।

कनकस्याष्टशाणाःस्युःसूतोद्वादशभिर्मतः ॥ गंधोऽपिद्वादशप्रोक्तस्ताम्रंशाणद्वयोन्मितम् ॥ २२९ ॥ अभ्रकस्यचतुःशाणंमाक्षिकंचद्विशाणिकम् ॥ वंगोद्विशाणःसौवीरंत्रिशाणंलोहमष्टकम् ॥ २३० ॥ विषंत्रिशाणिकंकुर्याल्लांगलीपलसंमिता ॥ मर्दयेद्दिनमेकंचरसैरम्लफलोद्भवैः ॥ २३१ ॥ दद्यान्मृदुपुटंवह्नौततःसूक्ष्मंविचूर्णयेत् ॥ माषमात्रोरसोदेयःसन्निपातेसुदारुणे ॥ २३२ ॥ आर्द्रकस्वरसेनैवरसोनस्यरसेनवा ॥ किलासं

सर्वंकुष्ठानिविसर्पंचभगंदरम् ॥ २३३ ॥ ज्वरंगरमजीर्णंचज-
येद्रोगहरोरसः ॥

अर्थ–धतूरेके बीज आठ शाण, पारा बारह शाण, गंधक बारह शाण, तामेकी भस्म दो शाण, अभ्रकभस्म चार शाण, स्वर्णमाक्षिकभस्म दो शाण, वगभस्म दो शाण, शुद्ध सुरमा तीन शाण, लोहभस्म आठ शाण, शुद्ध बच्छनाग विष तीन शाण और कलयारी विषकी जड एक पल । इन सबको बारीक पीसके नीबूके रससे एक दिन पर्यन्त खरल कर मिट्टीके शराव-संपुटमें रखके उसपर कपडमिट्टी करके आरने उपलोंके हलकी अग्नि देवे । जब शीतल होजावे तब बाहर निकालके बारीक पीसके धर रक्खे । इसको कनकसुदर रस कहते है । इसको एक मासे लेके अदरखके रससे खाय अथवा लहसुनके रसमें मिलायके खाय तो घोर दुर्घट सन्निपात दूर होय किलासकुष्ठ और अन्य प्रकारके सर्व कुष्ठ विसर्प भगंदर ज्वर विषदोष और अजीर्ण ये रोग दूर होंय ।

सन्निपातभैरवरस ।

रसोगंधस्त्रित्रिकर्षौकुर्यात्कज्जलिकांद्वयोः ॥ २३४ ॥ तारा-
भ्रताम्रवंगाहिसाराश्चैकैककार्षिकाः ॥ शिग्रुज्वालामुखीशुंठी-
बिल्वेभ्यस्तंदुलीयकात् ॥ २३५ ॥ प्रत्येकंस्वरसैःकुर्याद्यामै-
कैकंविमर्दयेत्॥कृत्वागोलंवृतंवस्त्रेलवणापूरितेन्यसेत्॥२३६॥
काचभांडेततःस्थाल्यांकाचकूपींनिवेशयेत् ॥ वालुकाभिः
प्रपूर्याथवह्नियामद्वयंभवेत् ॥ २३७ ॥ ततउद्धृत्यतंगोलंचूर्ण-
यित्वाविमिश्रयेत् ॥ प्रवालचूर्णकर्षेणशाणमात्राविषेणच ॥
॥२३८॥कृष्णसर्पस्यगरलैर्दिवसंभावयेत्तथा॥तगरंमुसलीमां-
सीहेमाह्वावेतसःकणा ॥ २३९ ॥नीलिनीपत्रकंचैलाचित्रकश्च
कुठेरकः ॥ शतपुष्पादेवदालीधत्तूरागस्त्यमुंडिकाः ॥२४०॥
मधूकजातिमदनारसैरेषांविमर्दयेत् ॥ प्रत्येकमेकवेलंचततः
संशोष्यधारयेत् ॥ २४१ ॥ बीजपूरार्द्रकद्रावैर्मरिचैःषोडशो-
न्मितैः ॥ रसोद्विगुंजाप्रमितःसन्निपातस्यदीयते ॥ २४२ ॥
प्रसिद्धोऽयंरसोनाम्नासन्निपातस्यभैरवः ॥

अर्थ–शुद्धपारा ३ कर्ष और गंधक तीन कर्ष दोनोको खरल करके कजली करे । फिर रूपेकी भस्म, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, वंगभस्म, नागभस्म और लोहभस्म ये छ

भस्म एक एक कर्ष लेवे । सबको पूर्वोक्त पारे गंधककी कजलीमें मिलाय देवे । फिर सहजने-की छालके रसमें १ प्रहर खरल करे । पश्चात् ज्वालामुखीके रसमें सोंठके काढेमें बेलफलके रसमें और चौलाईके रसमे पृथक् २ एक २ प्रहर खरल करके गोला बनाय ले । उस गोलेके आस पास कपडा लपेटके उस गोलेको काँचके प्यालेमें रखके उसके ऊपर दूसरा प्याला औंधा ढकके कपडमिट्टीकर देवे । फिर एक हाँडी ले उसमें पिसाहुआ नमक आधा भरके बीचमे उस सपुटको रख ऊपरसे फिर पिसाहुआ नमक उस हाँडीके मुखपर्यंत भर देवे । फिर उस हाँडीको चूल्हेपर चढाय नीचे दो प्रहरपर्यंत अग्नि जलावे । फिर शीतल होनेपर उस संपुटमेंसे औषधको काढ लेवे। तब उस गोलेका चूर्ण करके उसमें मूँगेका चूरा एक कर्ष तथा शुद्ध वच्छनाग चूर्ण १ शाण मिलाय काले सर्पका विष डालके एकदिनपर्यन्त खरल करे । फिर इस रसको काँचकी आतसी शीशीमें भरके उस शीशीपर कपडमिट्टी करके उस शीशीके मुखपर ईटकी डाट देकर कपडमिट्टी करदे । इसको धूपमें सुखायके वालुकायंत्रमें रखके चूल्हेपर चढाय दो प्रहरपर्यन्त अग्नि देवे । जब शीतल हो जावे तब शीशीसे औष-धको बाहर निकाल खरल करके आगेलिखी हुई औषधोंकी पुट देवे । जैसे १ तगर २ मुसली ३ जटामांसी ४ चोक ५ बेत ६ पीपल ७ नीलपुष्पी ८ पत्रज ९ इलायची १० चित्रक ११ वनतुलसी १२ सौंफ १३ बंदाल १४ धतूरा १५ अगस्तिया १६ मूर्वा १७ महुआ १८ चमेली और १९ मैनफल इन उन्नीस औषधोंके स्वरसमे घोटे । अर्थात एक औषधका रस निकालके घोटे जब वह सूख जावे तब दूसरी औषधका रस डालके खरल करे इसप्रकार पृथक् २ घोटे । जिस औषधमेंसे रस निकलता होवे उसका काढा करके उस काढेमें खरल करे । जब सूखजाय तब गोली बाँधलेवे। इस रसको सन्निपातभैरव-रस कहते हैं इस रसको दो रत्ती प्रमाण बिजोरेके रस और अदरखके रसमें मिलाय तथा उसमें सोलह कालीमिरचका चूर्ण डालके सन्निपातवाले मनुष्यको देवे तो इससे सन्निपात दूर होय । यह सन्निपातभैरवरस प्रसिद्ध है ।

ग्रहणीकपाटरस संग्रहणीपर ।

तारमौक्तिकहेमानिसारश्चैकैकभागिकाः ॥२४३॥ द्विभागोगं-धकःसूतस्त्रिभागोमर्दयेदिमान् ॥ कपित्थस्वरसैर्गाढंमृगशृंगे ततःक्षिपेत् ॥ २४४ ॥ पुटेन्मध्यपुटेनैवततउद्धृत्यमर्दयेत ॥ बलारसैःसप्तवेलमपामार्गरसैस्त्रिधा ॥२४५॥ लोध्रंप्रतिविषा मुस्तंधातकींद्रयवाःस्मृताः ॥ प्रत्येकमेषांस्वरसैर्भावनास्या-त्रिधात्रिधा ॥२४६॥ माषमात्रोरसोदेयोमधुनामरिचैस्तथा॥

हन्यात्सर्वानतीसारान्ग्रहणींसर्वजामपि ॥ २४७ ॥ कपाटो ग्रहणीरोगेरसोऽयंवह्निदीपनः ॥

अर्थ–१ रूपेकी भस्म २ मोती ३ सुवर्णभस्म और ४ लोहभस्म ये चार औषध एक २ भाग लेवे । गंधक दो भाग और शुद्ध पारा तीन भाग सबको खरल करके कैथके रसमें घोटके हरिणके सींगमें खूब दाब २ के भरे । फिर उस सींगपर कपडमिट्टी करके आरनेउपलोंकी मध्यमाग्नि देवे । जब शीतल होजावे तब बाहर निकालके खरलमें डालके खरेटीके रसकी ७ पुट देवे । फिर ओंगा लोध अतीस नागरमोथा धायके फूल इन्द्रजी और गिलोय इनके पृथक् २ स्वरसको निकालके एक २ की न्यारी न्यारी तीन २ भावना देवे । जिस औषधका स्वरस न निकले उसका काढा करके इस रसको घोटे । जब सूखनेपर आवे तब एक मासेकी गोलियाँ बनावे । इसको ग्रहणीकपाटरस कहते हैं । इस रसकी एक गोली काली मिरचके चूर्णके साथ सहतमे मिलायके सेवन करे तो संपूर्ण अतिसार तथा सपूर्ण संग्रहणीके रोग दूर होवे और अग्नि प्रदीप्त होती है ।

ग्रहणीवज्रकपाटरस संग्रहणीपर ।

मृतसूताभ्रकेगंधंयवक्षारंसटंकणम् ॥ २४८ ॥ अग्निमंथंवचांकुर्यात्सूततुल्यानिमान्सुधीः ॥ ततोजयंतीजंबीरभृंगद्रावैर्विमर्दयेत् ॥ २४९ ॥ त्रिवासरंततोगोलंकृत्वासंशोष्यधारयेत् ॥ लोहपात्रेशरावंचदत्त्वोपरिविमुद्रयेत् ॥ २५० ॥ अधोवह्निंशनैःकुर्याद्यामार्धंततउद्धरेत् ॥ रसतुल्यांप्रतिविषांदद्यान्मोचरसंतथा ॥२५१॥ कपित्थविजयाद्रावैर्भावयेत्सप्तधाभिषक ॥ धातकींद्रयवामुस्तालोध्रंबिल्वंगुडूचिका ॥ २५२ ॥ एतद्रसैर्भावयित्वावेलैकैकंचशोषयेत् ॥ रसंवज्रकपाटाख्यंशाणैकंमधुनालिहेत् ॥ २५३ ॥ वह्निशुंठीबिडंबिल्वंलवणंचूर्णयेत्समम् ॥ पिबदुष्णांबुनाचानुसर्वजांग्रहणींजयेत् ॥ २५४ ॥

अर्थ–१ पारेकी भस्म २ अभ्रकभस्म ३ गधक ४ जवाखार ५ सुहागा ६ अरनीकी जड और ७ वच ये सात औषध समान भाग लेवे । सबको पीसके अरनीके रसमें एक दिन खरल करे । फिर जंभीरीके रसमें एक दिन तथा भाँगरेके रसमें एक दिन इस प्रकार इन तीनोंके रसमें तीन दिन खरल करके गोला बनावे । इसको सुखायके

लोहेकी कढाहीमें रख उसके ऊपर मिट्टीका सरावा ढकके उसकी संधियोंको मिट्टीकी मुद्रा देके बंदकर देवे। फिर उस काढाहीको चूल्हेपर चढायके नीचे मन्दमन्द अग्नि चार घडीपर्यंत देवे। जब शीतल हो जावे तब गोलेको बाहर निकाल लेय फिर इसके समान भाग अतीसका चूर्ण और मोचरसका चूर्ण मिलायके खरलमें डाल कैथके रसकी सात पुट देवे तथा भाँगके रसकी सात पुट देवे। पश्चात् धायके फूल इन्द्रजौ नागरमोथा लोध बेलफल और गिलोय इन औषधोंको पृथक् २ रसमें पृथक् २ घोटे। जब जाने कि कुछ थोडी गोली है तब एक २ शाणकी गोली बनावे इसको ग्रहणीवज्रकपाट रस कहते हैं जिसके संग्रहणीका विकार हो उसको मद्यके साथ यहगोली देवे और इसके ऊपर तत्काल चित्रक सोंठ विडनमक बेलगिरी सैंधानमक इन पांच औषधोंका चूर्ण करके गरम जलके साथ पीवे तो सर्व प्रकारकी संग्रहणी दूर होवे।

मदनकामदेवरस वाजीकरणपर।

तारंवज्रंसुवर्णंचताम्रंसूतकगंधकम् ॥ लोहंक्रमविवृद्धानिकुर्याद्‌दैतानिमात्रया ॥ २५५ ॥ विमर्द्यकन्यकाद्रावैर्न्यसेत्काचमये घटे ॥ विमुच्यापिठरीमध्येधारयेत्सैंधवावृते ॥ २५६ ॥ पिठरींमुद्रयेत्सम्यक्ततश्चुल्ल्यांनिवेशयेत्॥वह्निंशनैःशनैःकुर्याद्दिनैकन्ततउद्धरेत्॥२५७॥ स्वांगशीतंचसंचूर्ण्यभावयेदर्कदुग्धकैः ॥ अश्वगंधाचकाकोलीवानरीमुसलीक्षुरा ॥ २५८ ॥ त्रित्रिवेलंरसैरेषांशतावर्याश्चभावयेत् ॥ पद्मकन्दकसेरूणांरसैः काशस्यभावयेत् ॥२५९॥ कस्तूरीव्योषकर्पूरकंकोलैलालवंगकम् ॥ पूर्वचूर्णादष्टमांशमेतच्चूर्णंविमिश्रयेत्॥२६०॥ सर्वैः समांशर्करांचदत्त्वाशाणोन्मितंपिबेत् ॥ गोदुग्धद्विपलेनैवमधुराहारसेवकः॥२६१॥अस्यप्रभावात्सौंदर्यंसलभेन्नात्रसंशयः॥ तरुणीरमयेद्बह्वीःशुक्रहानिर्नजायते ॥ २६२ ॥

अर्थ—रूपेकी भस्म १ भाग, हीरेकी भस्म २ भाग, सुवर्णकी भस्म ३ भाग, ताम्रभस्म ४ भाग, शुद्धपारा ५ भाग, गंधक ६ भाग, और लोहभस्म ७ भाग इस प्रकार संपूर्ण औषध लेवे। सबको खरलमें डालके घीगुवारके रससे खरल करके कांचकी आतसीशीशीमें भर उसपर कपडमिट्टीकरे और मुखपर मुद्रा करके सूखनेपर उस शीशीको हांडीमें रखके शीशीके गलेपर्यंत पिसाहुआ नमकभरके

गला खुला रहनेदे । फिर उस हांडीको पारियासे ढकके उसकी संधियोंको कपडमिट्टीसे बंदकर देवे । फिर धूपमे सुखाय चूल्हेपर रखके नीचे मंद २ एकदिनतक अग्नि देवे । जब शीतल हो जावे तब शीशीसे औषध निकालके खरलमे डाल आकके दूधकी तीन पुट देय । पश्चात् १ असगध २ काकोलीके अभावमें असगंध ३ कौंचके बीज ४ मूसली ५ तालमखाने ६ शतावर ७ कमलगट्टा ८ कसेरू और ९ कसोदी इन नौ औषधोके पृथक् २ रस निकालके एक एककी तीन २ भावना देवे तो यह रस सिद्ध हुआ ऐसा जानना । १ कस्तूरी २ सोंठ ३ कालीमिरच ४ पीपल ५ कपूर ६ ककोल ७ इलायची और ८ लौंग इन आठ औषधोका चूर्ण करके इस रसका आठवाँ भाग लेके मिलावे । फिर इसमेसे १ शाण रस लेके उसकी बराबरकी मिश्री मिलाय दोपल (८ तोले) गौके दूधसे पीवे तो देह अत्यंत सुंदर होय, बलवान् तथा तेजस्वी होय एवं अनेक तरुण स्त्रियोंसे सभोग करनेसेभी वीर्यका क्षय नहींहो । इस रसपर खटाई आदिका पथ्य करे और मिष्ट पदार्थ भोजन करे । इसे मदनकामदेवरस कहते हैं ।

कन्दर्पसुंन्दररस वाजीकरणपर ।

सूतोवज्रमहिर्मुक्तातारंहेमसिताभ्रकम् ॥ रसैःकर्षांशकानेतान्मर्दयेदिरिमेदजैः ॥२६३॥ प्रवालचूर्णंगंधश्चाद्विद्विकर्षंविमिश्रयेत् ॥ ततोऽश्वगंधास्वरसैर्विमर्द्यमृगशृंगके ॥२६४॥ क्षिप्त्वा मृदुपुटेपक्त्वाभावयेद्धातकीरसैः ॥ काकोलीमधुकंमांसीबलात्रयाविसंगुदम् ॥ २६५ ॥ द्राक्षापिप्पलिवंदाकंवरीपर्णीचतुष्टयम् ॥ परूषकंकसेरुश्चमधूकंवानरीतथा ॥ २६६ ॥ भावयित्वारसैरेषांशोषयित्वाविचूर्णयेत् ॥ एलात्वक्पत्रकंवंशीलवंगागरुकेशरम् ॥ २६७ ॥ मुस्तंमृगमदःकृष्णाजलंचंद्रश्चमिश्रयेत् ॥ एतच्चूर्णैःशाणमितैरसंकंदर्पसुंदरम् ॥२६८॥ खादेच्छाणमितंरात्रौसिताधात्रीविदारिका ॥ एतेषांकर्षचूर्णेनसर्पिःकर्षसुसंयुतम् ॥ २६९ ॥ तस्यानुद्विपलंक्षीरंपिबेत्सुस्थितमानसः ॥ रमणीरमयेद्बह्वीःशुक्रहानिर्नजायते ॥ २७० ॥

---

१ आकके दूधकी तीन पुट देना जो कहा है सो घी गुवाराका पुट देकर पश्चात् देना फिर उस औषधको शीशीमे भरके सिद्ध करे । जब सिद्ध होजावे तब पश्चात् पुट देनेसे कदाचित् वमन होजावे । इस वास्ते टीकाकारने पहले पुट देना कहा है ।

२ असगध दोवार आई इस वास्ते इसकी पुट दूनी देवे ।

अर्थ—१ पारेकी भस्म २ हीरेकी भस्म ३ नागभस्म ४ मोतीभस्म ५ रूपेकी भस्म ६ सुवर्ण भस्म और ७ सफेद अभ्रककी भस्म ये सात औषध एक एक कर्ष लेवे। सबको खरलमें डालके खरकी छालके रसमें खरलकर मूँगाका चूर्ण और गंधक ये दो दो कर्ष लेकर उस औषधमें मिलायके असगंधके रससे खरलकरे। फिर उसको हरणके सींगमें भरके उसपर कपडमिट्टीकर ६ उपलोंकी मंदाग्नि देवे। जब शीतल होजावे तब बाहर निकाल खरलमें डालके आगे लिखी औषधोंकी पुट देवे। जैसे—१ धायके फूल २ कंकोलके अभावमें असगंध ३ मुलहटी ४ जटामांसी ५ खरेंटीकी छाल ६ कँगही ७ गंगेरण ८ मसीडा (कमलका कंद) ९ इंगुदी (हिंगोट) १० दाख ११ पीपल १२ बाँदा १३ सतावर १४ मापपर्णी १५ मुद्गपर्णी १६ पृष्ठपर्णी १७ शालपर्णी १८ फालसे १९ कसेरू २० महुआ २१ कौंचके बीज इन इक्कीस औषधोंका पृथक् २ रस निकालके इस रसमें न्यारी २ भावना देके सुखाय ले। इस रसको कंदर्पसुंदररस कहते हैं। पश्चात् १ इलायची २ दालचीनी ३ तमालपत्र ४ वंशलोचन ५ लौंग ६ अगर ७ केशर ८ नागरमोथा ९ कस्तूरी १० पीपल ११ नेत्रवाला और १२ भीमसेनी कपूर इन वारह औषधोंके एक शाण चूर्कमें इस कंदर्पसुंदररसको एक शाण मिलायके एकत्रकरे। इसको एक कर्ष घीमें मिलायके आँवला और विदारीकंद इनका चूर्ण तथा मिश्री ये एक २ कर्ष लेके उस घीमें मिलायके रात्रिमें पीवे। और उसी समय प्रसन्न चित्तसे दो पल गौका औटाहुआ दूध पीवे तो अनेक स्त्री भोगने परभी धातुक्षीण नहीं हो। अर्थात् अपार वीर्यवान् हो।

लोहरसायन क्षयादिरोगोंपर।

शुद्धंरसंद्विभागैकंद्विभागंशुद्धगंधकम् ॥ क्षिपेत्कज्जलिकांकुर्यात्तत्रतीक्ष्णभवंरजः ॥ २७१ ॥ क्षिप्त्वाकज्जलिकातुल्यंप्रहरैकं विमर्दयेत् ॥ तत्रकन्याद्रवैःखल्वेत्रिदिनंपरिमर्दयेत् ॥ २७२॥ ततःसंजायतेतस्यसोष्णोधूमोद्गमोमहान् ॥ अत्यंतंपिंडितंकृत्वाताम्रपात्रेनिधायच ॥ २७३॥ मध्येधान्यैकशूकस्यत्रिदिनंधारयेद्बुधः ॥ उद्धृत्यतस्मात्खल्वेचक्षिप्त्वाघर्मेनिधायच ॥ ॥२७४॥ रसैःकुठारच्छिन्नायास्त्रिवेलंपरिभावयेत् ॥ संशोष्य घर्मैंक्वाथैश्चभावयेत्रिकटोस्त्रिधा ॥२७५॥ वासामृताचित्रकाणांरसैर्भाव्यंक्रमात्त्रिधा॥ लोहपात्रेततःक्षिप्त्वाभावयेत्रिफलाजलैः ॥ २७६ ॥ निर्गुंडीदाडिमत्वाग्भिर्विसभृंगकुरंटकैः ॥ प-

लाशकदलीद्रावैर्बीजकस्यशृतेनवा ॥२७७॥ नीलिकालंबुषाद्रावैर्बब्बूलफलिकारसैः॥ त्रिस्त्रिवेलंयथालाभंभावयेदेभिरौषधैः ॥ २७८॥ ततःप्रातर्लिहेत्क्षौद्रघृताभ्यांकोलमात्रकम् ॥ पलमात्रंवराक्काथंपिबेदस्यानुपानकम् ॥२७९॥ मासत्रयंशीलितंस्याद्वलीपलितनाशनम् ॥ मंदाग्निश्वासकासौचपांडुता कफमारुतौ ॥२८०॥ पिप्पलीमधुसंयुक्तंहन्यादेतन्नसंशयः॥ वातास्रंमूत्रदोषांश्चग्रहणींतोयजांरुजम् ॥ २८१ ॥ अंडवृद्धिं जयेदेतच्छिन्नासत्त्वमधुप्लुतम् ॥ बलवर्णकरंवृष्यमायुष्यंपरमंस्मृतम् ॥२८२॥ कूष्मांडंतिलतैलंचमाषान्नंराजिकातथा ॥ मद्यमम्लरसंचैवत्यजेल्लोहस्यसेवकः ॥ २८३ ॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायां चिकित्सास्थाने मध्यमखंडे रसकल्पना नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अर्थ–शुद्धपारा १ भाग तथा शुद्ध गंधक २ भाग दोनोको खरलमें डालके कजली करे फिर इसके समान पोलाद लोहका चूर्ण लेकर उस कजलीमें मिलाय एक प्रहरपर्यंत खरल करके घीगुवारके रसमे तीन दिनपर्यंत खरल करे। पश्चात् उस औषधमेंसे गरम २ अत्यंत धूआँ निकलने लगे तब उसका गोला करके तांबेके वासनमे रखके उसको धानकी राशिमें गाड देवे। तीन दिनके बाद चौथे दिन निकालके उस गोलेका चूर्ण कर धूपमे रखके वनतुलसीके रसकी ३ पुट देय। फिर सोंठ कालीमिरच और पीपल इनका पृथक् २ काढा करके एक २ की तीन २ पुट देवे। पश्चात् अडूसा गिलोय और चित्रक इन तीनोंका पृथक् २ रस निकाल क्रमसे तीन २ पुट देय। पीछे इस रसायनको लोहकी कडाहीमें डालके आगे लिखी हुई औषधोकी पुट देवे। जैसे १ हरड २ बहेडा ३ आँवला ४ निर्गुंडी ५ अनारकी छाल ६ भसीडा (कमलकंद) ७ भाँगरा ८ पियावासा ९ पलाश १० केलाका कद ११ विजेसार १२ नीलपुष्पी १३ मुंडी और १४ बबूलकी छाल इन चौदह औषधोंका पृथक् २ रस निकाल क्रमसे एक एकके रसकी तीन २ पुट देवे पश्चात् इस रसायनको, कोल प्रमाण सहत और घी एकत्र मिलाय उसमें डालके सेवन करे और इसके ऊपर तत्काल त्रिफलाका काढा १ पल पीवे इसप्रकार इस रसायनको तीन महीने सेवन करे तो देहमें अत्यत पुरुषार्थ हो सफेद बाल काले होवे सहत और पीपलके साथ लेवे तो मदाग्नि श्वास

खाँसी पांडुरोग कफवायु ये दूर होवे। गिलोयसत्वके साथ मिलायके लेवे तो वात रक्त मूत्रदोष जलसे उत्पन्न हुई संग्रहणी अडवृद्धि ये रोग दूर होवें। यह रसायन बल कर्त्ता कांतिकर्त्ता स्त्रीगमनविषयमें इच्छा देय है तथा आयुष्यकी वृद्धिकरे इस रसायनके सेवन करनेवालेको पेठा तिल्लीका तेल उडद राई सहत खट्टे पदार्थ ये संपूर्ण वस्तु खाना मना है।

इति श्रीशार्ङ्गधरे माथुरीभाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

क्षेपकश्लोकाः

जैपालंरहितंत्वगंकुररसज्ञाभिर्मलेमाहिषेनिक्षितंत्र्यहमुष्णतोयविमलंखल्वेसवासोर्दितम्॥ लिप्तंनूतनखर्परेषुविगतस्नेहंरजःसंनिभंनिंबूकांबुविभावितंचवहुशःशुद्धंगुणाढ्यंभवेत्॥ १॥

अर्थ—जमालगोटेके बीज लेकर उनके ऊपरकी छाल निकाल अंकुरके भीतरकी जिह्वाको दूरकर कपडेमें पोटली बाँधके तीन दिन भैंसके गोवरमें रक्खे। चौथे दिन निकालके उस जमालगोटेको गरम जलसे धोयडाले। फिर उसको दूसरे उत्तम कपडेमें बाँधके कपडेसहित खरल करे। जब बारीकचूर्ण होजावे तब निकालके नए खिपडेपर उसको पोत देवे तो वह चिकनाईरहित होकर धूलके समान होजावेगा। फिर इसको नींबूके रसकी दो पुट देवे तो यह शुद्ध जमालगोटा विशेष गुण करनेवाला होता है।

बच्छनाग वा सिंगीमुहराविषकी शुद्धि।

विषंतुखंडशःकृत्वावस्त्रखंडेनबंधयेत्॥गोमूत्रमध्येनिक्षिप्यस्थापयेदातपेत्र्यहम्॥ २॥ गोमूत्रंचप्रदातव्यंनूतनंप्रत्यहंबुधैः॥ त्र्यहेऽतीतेसमुद्धृत्यशोषयेन्मृदुपेपयेत्॥ ३॥ शुध्यत्येवंविषंतच्चयोग्यंभवतिचार्तिजित्॥

अर्थ—बच्छनाग विषके टुकडे करके उसकी कपडेमे पोटली बाँधके एक घडेमें डूब जावे इस माफिक गोमूत्र भरके उसको तीन दिन धूपमें रखके धूपदेवे और नित्य पुराणे गोमूत्रको निकाल लिया करे: उसमें नवीन गोमूत्र भरदिया करे। फिर चौथे दिन उस बच्छनागको बाहर निकालके धूपमे सुखाय लेव। फिर बारीक चूर्ण करे तो उत्तम शुद्ध रोगदूरकर्त्ता होय बच्छनाग और सिगिया विषमें केवल नामभेद है।

---

१ सवस्त्र खरल करनेका यह प्रयोजन है, कि वह कपडा उन जमालगोटोंकी चिकनाई को सोख लेवे।

विषशोधनका दूसरा प्रकार ।

खंडीकृत्यविषंवस्त्रपरिबद्धंतुदोलया ॥ ४ ॥ अजापयसिसंस्विन्नंयामतःशुद्धिमाप्नुयात् ॥ अजादुग्धैर्भावितस्तुगव्यक्षीरेण शोधयेत् ॥ ५ ॥

अर्थ-बच्छनाग विषके टुकडे करके कपडेकी पोटलीमें बाँधके दोलायंत्र करके बकरीके दूधमें एकप्रहर पर्यंत औटावे यदि बकरीका दूध न मिले तो गौके दूधमे औटावे तो शुद्ध होवे परतु यह औरभी याद रहे कि १ तोले बच्छनागको सेरभर दूधमे औटावे और मदाग्निसे पचन करावे ।

इति शार्ङ्गधरसंहितास्थद्वितीयखण्डं संपूर्णम् ।



श्रीः ।

शार्ङ्गधरसंहिता.

भाषाटीकासमेता ।

(तृतीयखण्ड ३.)

प्रथमोऽध्यायः १.

प्रथम स्नेहपानविधि ।

स्नेहश्चतुर्विधः प्रोक्तोघृतंतैलंवसातथा ॥
मज्जाचतंपिबेन्मर्त्यःकिंचिदभ्युदितेरवौ ॥ १ ॥

अर्थ–स्नेह चार प्रकारका है । जैसे [1]घी तेल वसा (चरवी) मज्जा (हड्डीके भीतरका तेल) ये चार स्नेह यत्किंचित्सूर्योदय होनेपर पीने चाहिये ।

स्थावरोजंगमश्चैवद्वियोनिःस्नेहउच्यते ॥
तिलतैलंस्थावरेषुजंगमेषुघृतंवरम् ॥ २ ॥

अर्थ–फिर स्नेह दो प्रकारका है एक स्थावर (जो वृक्षादिकसे उत्पन्न हो) और दूसरा जंगम (जो पशुमनुष्यादिकसे प्रगट होवे) स्थावर पदार्थोंके स्नेह अनेक हैं तिनमें तिलोका तेल श्रेष्ठ है और जंगम पदार्थोंमें घृत आदि शब्दसे वसादिक स्नेह अनेक हैं उन्होंमें घी श्रेष्ठ है । इसप्रकार स्नेहके दो भेद जानने ।

स्नेहके भेद ।

द्वाभ्यांत्रिभिश्चतुर्भिस्तैर्यमकस्त्रिवृतोमहान् ॥

अर्थ–घी और तेल दोनोंको एकत्र करनेसे उसकी यमक संज्ञा है । घी तेल और वसा (मांसका तेल) ये तीन एकत्र होनेसे उसको त्रिवृत कहतेहै । और घी तेल मांस स्नेह तथा वसा ये चार स्नेह एकत्र होनेसे उसको महान् कहते हैं । इसप्रकार स्नेहके ये तीन भेद जानने चाहिये ।

---

१ मासकी अपेक्षा अष्टगुण घी है इस वास्ते प्रथम घृत कहा है । तथा घृतमें यह गुण अधिक है कि जिसके साथ रसका संयोग करो उसके गुणोंको करे और अपने गुणोको भी नहीं त्यागे इस वास्ते प्रथम घृतको धरा है ।

स्नेहपीनेका काल।

पिबेत्त्र्यहंचतुरहंपंचाहंषडहंतथा ॥ ३ ॥

अर्थ-घी तीन दिन, तेल चार दिन, मांसस्नेह पांच दिन और हड्डीका तेल छः दिन पीवे। इसप्रमाण क्रमसे घृतादि स्नेह पीनेका क्रम जानना।

स्नेहका सात्म्य कितने दिनमें होना।

सप्तरात्रात्परंस्नेहःसात्मीभवतिसेवितः ॥

अर्थ-सातादिनके पश्चात् घृतादिक स्नेह पीनेसे आहारके समान सात्म्य होताहै फिर उससे गुण और अवगुण कुछ नहीं होता।

स्नेहकी स्थलविशेषमें योजना।

दोषकालाग्निवयसांबलंदृष्ट्वाप्रयोजयेत् ॥ ४ ॥
हीनांचमध्यमांज्येष्ठांमात्रांस्नेहस्यबुद्धिमान् ॥

अर्थ-वातादिक दोष काल अग्नि अवस्था इनका बलाबल विचारके घृतादिक स्नेह पीनेकी मात्रा हीन (दो कर्ष) मध्यम (तीन कर्ष) और ज्येष्ठ (एक पल) इनका तारतम्य देखके योजना करनी चाहिये।

स्नेहकी मात्राका प्रमाण त्यागके स्नेहपीनेके दोष।

अमात्रयातथाकालेमिथ्याहारविहारतः ॥ ५ ॥
स्नेहःकरोतिशोफार्शस्तंद्रानिद्राविसंज्ञताः ॥

अर्थ-घृतादिक स्नेह पीनेके कहेहुए परिमाणको त्यागकर न्यूनाधिक पीनेसे अथवा पीनेका काल त्यागके पहले या पीछे पीवे अथवा घृतादिक स्नेह पीकर मिथ्याहार[1] और मिथ्याविहार[2] करनेसे सूजन बवासीर तंद्रा निद्रा और सज्ञानाश होते हैं। इसवास्ते यथार्थ समयमें ठीक २ स्नेहमात्राका सेवन करे।

दीप्ताग्निमध्यमाग्नि और अल्पाग्निमें स्नेहकी मात्रा देनेका प्रमाण।

देयादीप्ताग्नयेमात्रास्नेहस्यपलसंमिता ॥ ६ ॥
मध्यमायात्रिकर्षास्याज्जघन्यायाद्विकार्षिकी ॥

---

१ अकालमें थोडा अथवा बहुत भोजन करना तथा अपनी प्रकृतिको जो पदार्थ अच्छा न लगे उसको भक्षण करना तथा देशविरुद्ध अथवा कालविरुद्ध पदार्थ तथा संयोगाविरुद्ध पदार्थोंका भक्षण करना मिथ्याहार कहाता है।

२ जिस कर्मको करनेकी सामार्थ्य न होनेपरभी बलात्कार करना उसको मिथ्याविहार जानना।

अर्थ–जिस मनुष्यकी दीप्ताग्नि है उसको घृतादिक स्नेहकी एक पल मात्रा देवे। मध्यमाग्नि है उस मनुष्यको तीन कर्ष प्रमाण देवे और जिसकी मंदाग्नि है उस मनुष्यको दो कर्ष प्रमाण स्नेहकी मात्रा देनी चाहिये।

स्नेहकी मात्राओंका भेद।

अथवास्नेहमात्राःस्युस्तिस्रोन्याःसर्वसंमताः॥ ७॥
अहोरात्रेणमहतीजीर्यत्यर्हितुमध्यमा॥
जीर्यत्यल्पादिनार्धेनसाविज्ञेयासुखावहा॥ ८॥

अर्थ–सपूर्ण वैद्योंको मान्य ऐसे घृतादिक स्नेह पीनेकी मात्रा तीन हैं उनको कहते हैं जो मात्रा आठ प्रहरमें पचे उसको महती अर्थात् बडी मात्रा कहते हैं। इसे वह एक पलकी होती है। जो मात्रा एक दिनमे पचे उसको मध्यम कहते है, यह तीन कर्षकी जाननी। और जो मात्रा दो प्रहरमें पचे उसको अल्प अर्थात् छोटी मात्रा कहते हैं। यह दो कर्षकी मात्रा सुखकी देनेवाली है।

अल्पादिमात्राओंके गुण।

अल्पास्याद्दीपनीवृष्यावातदोषसुपूजिता॥
मध्यमास्नेहनीज्ञेयावृंहणीभ्रमहारिणी॥ ९॥
ज्येष्ठाकुष्ठविषोन्मादग्रहापस्मारनाशिनी॥

अर्थ–घृतादिक स्नेह पीनेमें जो कर्षप्रमाणकी अल्प मात्रा है यह जठराग्निको प्रदीप्त करके स्त्रीसंगमे इच्छा प्रगट करती है तथा वातादिक दोषोंके अल्प प्रकोपका नाश करे। तीन कर्षकी जो मध्यन मात्रा है वह देहको पुष्ट करके धातुकी वृद्धि करे तथा भ्रमको दूर करे। और पल प्रमाणको जो ज्येष्ठ मात्रा है वह कुष्टरोग विषदोष उन्माद भूतादिक ग्रह तथा अपस्मार इन रोगोंको दूर करे।

दोषोंमें अनुपानविशेष।

केवलंपैत्तिकेसर्पिर्वातिकेलवणान्वितम्॥ १०॥
पेयंवहुकफेवापिव्योषक्षारसमन्वितम्॥

अर्थ–पित्तमें केवल घी पीनेको देवे। वादीका कोप होनेसे घीमें सैधानमक मिलायके देवे। कफका कोप होय तो व्योष (सोंठ मिरच पीपल) और जवाखार इनका चूर्ण कर घीमें मिलायकेपिलावे।

घीपिलानेयोग्य प्राणी।

रूक्षक्षतविषार्तानांवातपित्तविकारिणाम्॥ ११॥

हीनमेधास्मृतीनांचसर्पिःपानंप्रशस्यते ॥

अर्थ—रूक्ष उरःक्षतरोगी तथा विषदोष इन करके पीडित है शरीर जिनका ऐसे मनुष्योंको तथा जिन मनुष्योंको वात पित्तका विकार है उनको एव हीन है धारणारूप और स्मरणरूप बुद्धि जिनकी इतने मनुष्योंको घृतपान उत्तम कहा है ।

तैल पिलानेयोग्य रोगी ।

क्रिमिकोष्ठानिलाविष्टाःप्रवृद्धकफमेदसः ॥ १२ ॥
पिबेयुस्तैलसात्म्यायेतैलंदीप्ताग्नयस्तुये ॥

अर्थ—जिनके उदरमें क्रिमिविकार है, वादी करके व्याप्त है शरीर जिनका, अत्यन्त बढा हुआ है कफ और मेद जिन्होंके, ऐसे मनुष्योंको तेल पिलावे । एव जिनकी प्रकृतिको तेल रुचे अर्थात् झिलता हो उनको और प्रदीप्ताग्निवाले मनुष्योंको तेल पिलाना चाहिये ।

वसा (मांसस्नेह) पिलानेयोग्य रोगी ।

व्यायामकर्षिताःशुष्करेतोरक्तमहारुजः ॥ १३ ॥
महाग्निमारुतप्राणावसायोग्यानराःस्मृताः ॥

अर्थ—मल्लादि युद्ध (दंडकसरत कुस्ती आदि) तथा धनुष आदिका खींचना इन करके पीडित है शरीर जिन्होका, क्षीण है वीर्य तथा रक्त जिनका, देहमें घोर है पीडा जिनके, तथा अग्नि और वायु तथा बल हो अधिक जिनके ऐसे मनुष्योंको वसा (मांसका स्नेह) पीने योग्य जानने चाहिये ।

मज्जापिलानेयोग्य रोगी ।

क्रूराशयाःक्लेशसहावातार्तादीप्तवह्नयः ॥ १४ ॥
मज्जानंचपिबेयुस्तेसर्पिर्वासर्वतोहितम् ॥

अर्थ—करडा है कोठे जिनका, दुःख सहन करता, तथा जो वादीसे पीडित हैं, एव प्रदीप्त है अग्नि जिनकी, ऐसे मनुष्योंको मज्जा (हड्डीका तेल) अथवा घी पिलानेसे देहको सुख देता है ।

स्नेहपीनेमें कालनियम ।

शीतकालेदिवास्नेहमुष्णकालेपिबेन्निशि ॥ १५ ॥

---

१ जिस मनुष्यकी अग्नि प्रदीप्त है वायु शरीरमें जैसा वर्तना चाहिये ऐसा वर्तता हो अग्निके साथ हो अन्नका पचन करता है इसीसे अग्नि और वायु ये शक्तिके देनेवाले हैं यदि ये अनुकूल होवे तो मांसका स्नेह पचे अन्यथा नहीं पचे ।

२ आम अग्नि पक्व मूत्र इनके आशय यकृत् और प्लीहा छः स्थान तथा हृदय उदुक और फुप्फुस इन नौ स्थानोंको कोष्ठ कहते हैं ।

वातपित्ताधिकेरात्रौवातश्लेष्माधिकेदिवा ॥

अर्थ—शीतकालमें घृतादिक स्नेह दिनमे पीवे, गरमीकी ऋतुमे वात पित्त प्रबल होनेसे रात्रिके समय पीवे, तथा कफ और बादी जिनके प्रबल हो वे घृतादिस्नेह दिनमेंही पीवे। इसप्रकार स्नेहपानका क्रम जानना।

स्थलविशेषमें स्नेहोंकी योजना।

नस्याभ्यंजनगंडूषमूर्धकर्णाक्षितर्पणे ॥ १६ ॥
तैलंघृतंवायुंजीतदृष्ट्वादोषबलाबलम् ॥

अर्थ—नस्य (नाकमें डालना) अभ्यजन (देहमें मालिश करना) गंडूप (कुरले करना) तथा मस्तक कर्ण और नेत्रोंमे तर्पणमे वातादि दोपोंका बलाबल विचारके वैद्य तेल अथवा घीकी योजना करे।

स्नेहोंके पृथक् २ अनुपान।

घृतेकोष्णंजलंपेयंतैलेयूपःप्रशस्यते ॥ १७ ॥
वसामज्ञोःपिबेन्मंडमनुपानंसुखावहम् ॥

अर्थ—घी पीकर उसपर गरम जल पीवे एव तेल पीकर उसके ऊपर यूप[1] पीवे। मासस्नेह तथा हड्डीका तेल पीकर उसके ऊपर मंड[2] पीवे तो सुखकारी होय। इसप्रकार स्नेहोके अनुपान जानने।

भातके साथ स्नेहपिलानेयोग्य।

स्नेहद्विषःशिशून्वृद्धान्सुकुमारान्कृशानपि ॥ १८ ॥
तृष्णातुरानुष्णकालेसहभक्तेनपाययेत् ॥

अर्थ—घृतादिक स्नेहोंसे द्वेप है जिनको, तथा बालक वृद्ध और सुकुमार (नाजुक) मनुष्य तथा तृषाकरके पीडित ऐसे मनुष्योको गरमीकी ऋतुमे भातके साथ घृतादिक स्नेह पिलावे।

स्नेहके विना यवागूसे सद्यः स्नेहन होनेवाले।

सर्पिष्मतीबहुतिलायवागूःस्वल्पतंडुला ॥ १९ ॥
सुखोष्णासेव्यमानातुसद्यःस्नेहनकारिणी ॥

अर्थ—तिलोंको कूटकर उनमें थोडेसे चावल मिलाय घी और पानी डालके चूल्हे पर चढायके औटावे। जब चावल सीजजावे और लहपसीके समान पतली होजावे उसको

---

१ यूपका बनाना मध्यखडमें लिख आए हैं सो देख लेना।

२ भातके माडको मंड कहते हैं। इसकी विधि द्वितीय खंडमे काढोके प्रकरणमे लिखी है।

यवागू कहते हैं। इस यवागूको सुहाती २ गरम २ पीनेसे सद्यः स्नेहन करनेवाली जाननी ।

धारोष्णदूधसे तत्काल धातु उत्पन्नहोवे ।

शर्कराचूर्णसंसृष्टेदोहनस्थेघृतेतुगाम् ॥ २० ॥
दुग्ध्वाक्षीरंपिबेदुष्णंसद्यःस्नेहनमुच्यते ॥

अर्थ-मिश्रीको पीसके घीमें मिलावे । फिर इस घीका थोडा गरम कर दूध निकालनेके बरतनमे डाले । फिर उस बरतनमें गौका दूध निकाले और उसी समय गरमागरम पीवे तो सद्यः स्नेहन होवे ।

मिथ्या आचारसे न पचे स्नेहका यत्न ।

मिथ्याचाराद्बहुत्वाद्वायस्यस्नेहोनजीर्यति ॥ २१ ॥
विष्टभ्यवापिजीर्यंतवारिणोष्णेनवामयेत् ॥

अर्थ-घृतादिक स्नेह पीकर उसपर व्यायामादिक परिश्रम होनेसे तथा कफकारी पदार्थ भोजनमे आनेसे वह स्नेह नहीं पचता है अथवा अत्यत पीनेसे नही पचता अथवा मलका अवरोध करके पचे । ऐसे मनुष्योको गरमजल पिलायके उलटी करावे तो स्नेहाजीर्णका दोष दूर होवे ।

स्नेहजन्य अजीर्णका यत्न ।

स्नेहस्याजीर्णशंकायांपिबेदुष्णोदकंनरः ॥ २२ ॥
तेनोद्गारोभवेच्छुद्धोभक्तंप्रतिरुचिस्तथा ॥

अर्थ-घृतादि स्नेह पीकर अजीर्ण होनेकी शका होनेसे उसपर गरम जल पीवे तो शुद्ध उत्तम डकार आकर अन्नपर इच्छा जाननेसे अजीर्ण दूर हुआ ऐसा जाने ।

स्नेहअजीर्णका द्वितीय यत्न ।

स्नेहेनपैत्तिकस्याग्निर्यदातीक्ष्णतरीकृतः ॥ २३ ॥
तदास्योदीरयेत्तृष्णांविषमांतस्यपाययेत् ॥
शीतंजलंवामयेच्चपिपासातेनशाम्यति ॥ २४ ॥

अर्थ-जिस मनुष्यकी पित्तकी प्रकृति होती है उस मनुष्यकी अग्नि घृतादिक स्नेह पीनेसे अत्यंत तीक्ष्ण होकर तृषाको अत्यंत बढाती है । ऐसी अवस्थामें शीतल जल पिलाना और वमन कराना चाहिये जिससे तृषा शांत होवे ।

स्नेहपानके अयोग्य मनुष्य ।

अजीर्णीनर्जयेत्स्नेहक्षुदरीतरुणज्वरी ॥

दुर्बलोरोचकीस्थूलोमूर्च्छार्तोमदपीडितः ॥ २५ ॥
दत्तबस्तिर्विरिक्तश्चवांतितृष्णाश्रमान्वितः ॥
अकालप्रसवानारीदुर्दिनेचविवर्जयेत् ॥ २६ ॥

अर्थ—अजीर्णका विकार और उदररोगहै जिसके, तथा तरुणज्वर दुर्बल अरुचि रोगी, स्थूल मनुष्य मूर्च्छा और मद इन करके पीडित, बस्तिकर्म कियाहुआ, तथा जिसको दस्त होते हो, या विरेचन लिया हो, वमन तथा प्यास इन करके युक्त, एवं प्रसूत होनेके कालको छोडकर अन्य कालमें प्रसूता स्त्री इतने रोगियोंको दुर्दिनमें कोईसा घृतादि स्नेहपान नहीं करना चाहिये।

स्नेहपान योग्य मनुष्य।

स्वेद्यसंशोध्यमद्यस्त्रीव्यायामासक्तचिंतकाः॥ वृद्धाबालाःकृशा रूक्षाःक्षीणास्राःक्षीणरेतसः ॥ २७॥ वातार्तितिमिरार्तायेतेषां स्नेहनमुत्तमम् ॥

अर्थ—औपवाधिक करके जिनका पसीना निकला है ऐसे शोधन किय हुए मनुष्य, मद्य पीनवाले, स्त्रीमें आसक्त, परिश्रम कर चुके हों, चिन्ता करके व्याप्त, वृद्ध, बालक, कृश, रूक्ष, क्षीण हैं रुधिर और धातु (वीर्य) जिन्होंके, वादीसे पीडित और तिमिर रोगसे व्याप्त ऐसे प्रकारके मनुष्य घृतादिक स्नेह पीनेके योग्य हैं ऐसा जानना।

सम्यक्स्नेहपानके लक्षण।

वातानुलोम्यंदीप्तोग्निर्वर्चःस्निग्धमसंहतम् ॥ २८ ॥ मृदुस्नि- ग्धांगताग्लानिःस्नेहोऽवेंगोऽथलाघवम् ॥ विमलेंद्रियतासम्य- क्स्निग्धेरूक्षेविपर्ययः ॥ २९ ॥

अर्थ—घृतादिक स्नेह पीनेसे अंगकी रूक्षता दूर होकर मनुष्य उत्तम स्निग्ध होता है उसके लक्षण—वायुका अनुलोमन होवे, अग्नि प्रदीप्त हो, मल स्निग्ध तथा साफ होय, शरीर नम्र सचिक्कण और ग्लानिरहित होता है। घृतादि स्नेहोंके सेवन न करनेसे उनको उपद्रव नही होते, शरीर हलका होवे तथा इन्द्री निर्मल होवे इसप्रकार उत्तम स्नेहपान गुण करता है। एवं रूक्ष मनुष्य ऊपर कहे हुए लक्षणोंसे विपरीत लक्षणवाला होता है अर्थात् शरीरमें स्नेह करके स्नेह न होनेसे जो रूक्ष होता है उसके विपरीत लक्षण होते हैं।

अत्यन्तस्नेहपानके उपद्रव।

भक्तद्वेषोमुखस्रावोगुदेदाहःप्रवाहिका ॥
तंद्रातिसारःपांडुत्वंभृशंस्निग्धस्यलक्षणम् ॥ ३० ॥

अर्थ-जो मनुष्य घृतादिक स्नेह बहुत पीता है। उसके लक्षण-भोजनमें अप्रीति मुखसे लारका गिरना, गुदामें दाह होना, प्रवाहिका, नेत्रोंमें तन्द्रा, अतिसार और देह पीला पड जावे ये लक्षण बहुत स्नेहपान करनेके जानने।

रूक्षको स्निग्ध और स्निग्धको रूक्ष करना।

रूक्षस्यस्नेहनंस्नेहैरतिस्निग्धस्यरूक्षणम् ॥
श्यामाकचणकाद्यैश्चतक्रपिण्याकसक्तुभिः ॥ ३१ ॥

अर्थ-रूक्षमनुष्यको स्निग्ध पदार्थ जैसे तत्काल मक्खन निकाली हुई छाछ, तिलका कल्क, चूर्ण करके स्निग्ध करे। एवं स्निग्ध मनुष्यको रूक्षपदार्थ जैसे सामखिया और चने आदिसे रूक्ष करना चाहिये।

स्नेहादिकसेवनके गुण।

दीप्ताग्निःशुद्धकोष्ठश्चपुष्टधातुर्जितेंद्रियः ॥
निर्जरोबलवर्णाढ्यःस्नेहसेवीभवेन्नरः ॥ ३२ ॥

अर्थ-घृतादिक स्नेहोंके सेवन करनेसे मनुष्यकी अग्नि प्रदीप्त होती है, कोठा शुद्ध होता है, शरीरकी रसादिक धातु पुष्ट होती हैं। वह मनुष्य जितेन्द्री होवे वृद्धावस्थारहित तथा बल कांति इनकरके युक्त होता है। ये गुण स्नेह सेवन करनेसे होते हैं।

स्नेहपानमें वर्ज्य पदार्थ।

स्नेहेव्यायामसंशीतवेगाघातप्रजागरान् ॥
दिवास्वप्नमभिष्यंदिरूक्षान्नंचविवर्जयेत् ॥ ३३ ॥

अर्थ-स्नेह पीनेवाले मनुष्यको परिश्रम करना, अत्यंत शीतल पदार्थ, मलमूत्रादि वेगोंका धारण, जागना, दिनमें सोना, कफकारी पदार्थ तथा रूक्षान्न इतनी वस्तु वर्जित हैं।

इति श्रीशार्ङ्गधरप्रणीतायां संहितायां चिकित्सास्थाने उत्तरखण्डस्य प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः २.

स्नेहपानानन्तर पसीनेकाढनेकी विधि तहांउसके भेदकहते हैं ।

स्वेदश्चतुर्विधःप्रोक्तस्तापोष्मौस्वेदसंज्ञितौ ॥
उपनाहोद्रवःस्वेदःसर्वेवातार्तिहारिणः ॥ १ ॥

अर्थ—पसीने निकालनेकी विधि चार प्रकारकी है। जैसे—१ ताप २ ऊष्म ३ उपनाह और ४ द्रवै ये चारों वादीकी पीडा दूर करनेवाले है ।

स्वेदौतापोष्मजौप्रायःश्लेष्मघ्नौसमुदीरितौ ॥
उपनाहस्तुवातघ्नःपित्तसंगेद्रवोहितः ॥ २ ॥

अर्थ—ताप और ऊष्म इन नामोंवाले जो स्वेद निकालनेके प्रकारहैं वे दोनो कफके नाशक है। उपनाह नामक जो स्वेद काढनेका प्रकार है वह वादीका नाश करता है और द्रवसंज्ञक स्वेद निकालनेका जो प्रकार है वह पित्त और वादीको नष्ट करता है ।

वादीकीतारतम्यताकेसाथन्यूनाधिकस्वेदकी योजना ।

महाबलेमहाव्याधौशीतेस्वेदोमहान्स्मृतः ॥
दुर्बलेदुर्बलःस्वेदोमध्येमध्यतमोमतः ॥ ३ ॥

अर्थ—जिस प्राणीके देहमें घोर वादीका रोग है उसके देहसे शीतकालमें बहुत पसीने निकालने चाहिये। थोडा रोग होय तो देहसे थोडे पसीने निकाले एवं देहमें मध्यम रोग होय तो वैद्य उस रोगीके देहसे मध्यम पसीने निकाले। इसमेंभी देश काल आदिका विचार वैद्यको करना मुख्य है ।

रोगविशेषकरके स्वेदविशेषकी योजना ।

वलासेरूक्षणःस्वेदोरूक्षस्निग्धःकफानिले ॥
कफमेदोवृतेवातेकोष्णगेहंरवेःकरान् ॥ ४ ॥
नियुद्धंमार्गगमनंगुरुप्रावरणंध्रुवम् ॥
चिंताव्यायामभारांश्चसेवेतामयमुक्तये ॥ ५ ॥

---

१ वालुकादिकोंकी पोटलीसे शरीरको तपायकर पसीने निकालनेको ताप कहते हैं ।
२ काढेआदिका वफारा देकर पसीने निकालनेको ऊष्म कहते हैं ।
३ रोगके स्थानपर औषधादिकोंकी पिंडी बाँधके पसीने निकालनेको उपनाह कहते हैं ।
४ पतले द्रव्यके योग करके पसीने काढे उसको द्रव कहते हैं ।

अर्थ–कफका रोग होनेसे रूक्षपदार्थ जैसे वालुकादिक इनसे अंगका पसीना निकाले। कफवायुके रोगमें स्निग्ध तथा रूक्ष इन दोनों पदार्थोंकरके पसीने निकाले । एवं कफमेदोयुक्त वादीका रोग होय तो जिस घरमे गरमी होय उस जगह बैठकर अगको सहन होय ऐसी थोडी २ गरमीको सहन करे, तथा सूर्यकी किरण (धूप) खाय, कुस्ती लडे कुछ थोडा मार्ग चले, कम्बल सौड रजाई इत्यादि ओढे, चिंता करे, प्रात.काल बैठा न रहे, परिश्रम करे तथा किसी एक अंगपर बोझा धारण करे । इतने उपाय पसीने निकालनेको करे तो कफ और मेदोयुक्त वादीका रोग दूर होय ।

जिनके प्रथम पसीने काढना ।

येषांनस्यंविधातव्यंबस्तिश्चापिहिदेहिनाम् ॥
शोधनीयाश्चयेकेचित्पूर्वंस्वेद्याश्चतेमताः ॥ ६ ॥

अर्थ–जो मनुष्य नस्यकर्मके योग्य हैं तथा वस्तिकर्मके योग्य है तथा दस्तदेने योग्य हैं इतने मनुष्योंके अंगसे प्रथम पसीने काढकर फिर नस्यादि यत्न करने चाहिये ।

भगंदरादिरोगमें स्वेदनकी आज्ञा ।

स्वेद्याःपूर्वंत्रयोऽपीहभगंदर्यर्शसस्तथा ॥
अश्मर्याश्चातुरोजंतुःशमयेच्छस्त्रकर्मणा ॥ ७ ॥

अर्थ–जिस मनुष्यके भगदर रोग हो तथा ववासीरवाला और पथरीरोग करके पीडित ऐसे तीन प्रकारके मनुष्योंके अगका प्रथम पसीना निकालके फिर शस्त्रकर्म करके इन रोगोंको शमन करे । अर्थात् इन रोगोंमें स्वेदन करनेसे वह नम्र होकर शस्त्र कर्मके योग्य हो जाता है ।

पश्चात् पसीने निकालनेयोग्य प्राणी ।

पश्चात्स्वेद्यागतेशल्येमूढगर्भेगदेतथा ॥
कालेप्रजाताकालेवापश्चात्स्वेद्यानितंबिनी ॥ ८ ॥

अर्थ–जिस स्त्रीके उदरमें गर्भका शूल होवे उसका पतन होनेके पश्चात्, मूढगर्भका पतन होनेके पश्चात्, तथा नौमहिनेके पश्चात्, अथवा नौ महिनके पूर्व प्रसूत होनेसे उस स्त्रीके देहसे पसीने निकाले ।

---

१ घृतादिक स्निग्ध और वालुकादिक रूक्ष इन दोनोंकी एकत्र पोटली बनायके देहको सेके । ये संपूर्ण उपाय तापसंज्ञक पसीनेके जानने ।

२ नाकमें औषध डालनेके प्रयोगको नस्य कर्म कहते है ।

३ गुदामें पिचकारी मारनेके कर्मको वस्ति कहते हैं ।

पसीने निकालनेमें देश और काल।

सर्वान्स्वेदान्निवातेचजीर्णाहारेचकारयेत् ॥

अर्थ–ये चारों प्रकारके पसीने मनुष्योंके आहार पचनेके पश्चात् जिस स्थानमें वायुका लेशमात्र न आता होवे। उस जगह करने चाहिये।

पसीने काढनेपर किस मार्गसे दोष दूर होते हैं।

स्वेदाद्धातुस्थितादोषाः स्नेहस्निग्धस्यदेहिनः ॥ ९ ॥
द्रवत्वंप्राप्यकोष्ठांतर्गतायांतिविरेकताम् ॥

अर्थ–औषधादिकों करके मनुष्यके अंगसे पसीने निकालनेसे तथा किसी बडे बरतनमें तेल[1] भरके उसमें मनुष्य बैठनेसे उसके रसादिकधातुओंमे रहनेवाले वातादिक दोष कोष्ठमे जायकर पतले हो गुदाके द्वारा गिरते हैं।

पसीने निकालनेके पश्चात् दस्त होनेसे उसकी चिकित्सा।

स्विद्यमानशरीरस्यहृदयंशीतलैःस्पृशेत् ॥ १० ॥
स्नेहाभ्यक्तशरीरस्यशीतैराच्छाद्यचक्षुषी ॥

अर्थ–मनुष्यके पसीने निकालनेसे उस रोगीके दोष पेटमे पतले होकर गुदाके द्वारा निकाले जावें तब उसकी छातीमें चंदनका लेप करे तो प्रकृति स्वस्थ होय। तथा जो मनुष्य तेलमें बैठा हो उसके दोष पतले होकर गुदाके द्वारा निकाले जावे तब नेत्रोंपर कमलके पत्ते अथवा केलाके पत्ते शीतल करनेको रक्खे तो ग्लानि दूर होकर प्रकृति स्वस्थ होवे।

स्वेदके अयोग्य मनुष्य।

अजीर्णीदुर्बलोमेहीक्षतक्षीणःपिपासितः ॥ ११ ॥ अतिसारी रक्तपित्तीपांडुरोगीतथोदरी ॥ मदार्तोगर्भिणीचैवनहिस्वेद्याविजानता ॥ १२ ॥ एतानपिमृदुस्वेदैःस्वेदसाध्यानुपाचरेत् ॥

अर्थ–अजीर्ण दुर्बलता प्रमेह उरःक्षत अत्यंत तृषा अतिसार रक्तपित्त पांडुरोग उदर और मद इनमेंसे कोईसा विकार जिस मनुष्यके होवे वह तथा गर्भिणी स्त्री ये रोगी पसीने काढनेके योग्य नहीं हैं अर्थात् इनके देहसे पसीने न निकाले। यदि ये रोगी पसीने निकालनेसे ही अच्छे होते दीखे तो हलके उपाय करके थोडे पसीने निकाले।

अल्पपसीने निकालनेयोग्यरोगीके अंग।

मृदुस्वेदंप्रयुंजीततथाहृन्मुष्कदृष्टिषु ॥ १३ ॥

---

१ नाभीके नीचे चार अंगुल तेल आवे इतना तेल उस पात्रमें भरके बैठे।

अर्थ–हृदय अंडकोश और नेत्र इनका पसीना होय तो थोडा निकाले ।

अत्यंतपसीनेनिकालनेके उपद्रव ।

अतिस्वेदात्संधिपीडादाहस्तृष्णाक्लमोभ्रमः ॥
पित्तासृक्पिटिकाकोपस्तत्रशीतैरुपाचरेत् ॥ १४ ॥

अर्थ–देहसे अत्यत पसीने निकालनेसे सर्व संधियोंमें पीडा हो, तृषा, ग्लानि, भ्रम और रक्तपित्त ये इपद्रव हों । तथा देहपर फुन्सी प्रगट होवे । इनके नष्ट करनेको शीतल उपाय करे तो स्वेदके उपद्रव दूर होवें ।

चारप्रकारके पसीनोंमें तापसंज्ञकपसीनेके लक्षण

तेषुतापाभिधःस्वेदोवालुकावस्त्रपाणिभिः ॥
कपालकंदुकांगारैर्यथायोग्यंप्रजायते ॥ १५ ॥

अर्थ–चार प्रकारके पसीने हैं उनमें ताप इस नाम करके पसीना है वह १ वालु २ वस्त्र ३ हाथ ४ खिपडा ५ कपडेकी गेंद और ६ अंगार इन करके वालुकादिक जैसी २ शक्ति है उसी २ प्रकारका उत्पन्न होता है ।

उष्मसंज्ञकपसीनेके लक्षण ।

ऊष्मस्वेदःप्रयोक्तव्योलोहपिंडेष्टिकादिभिः ॥ प्रतप्तैरम्लसिक्तैश्चकायेरल्लकवेष्टिते ॥ १६ ॥ अथवा वातनिर्णाशिद्रव्याध्यायरसादिभिः ॥ उष्णैर्घटंपूरयित्वापार्श्वेछिद्रंनिधायच ॥ १७ ॥ विमुद्यास्यंत्रिखंडांचधातुजांकाष्ठवंशजाम् ॥ षडंगुलास्यांगोपुच्छांनलींयुंज्याद्विहास्तिकाम् ॥ १८ ॥ सुखोपविष्टंस्वभ्यक्तं गुरुप्रावरणावृतम् ॥ हस्तिशुंडिकयानाड्यास्वेदयेद्वातरोगिणम् ॥ १९ ॥ पुरुषायाममात्रांवाभूमिमुत्कीर्यखादिरैः ॥ काष्ठैर्दग्ध्वातथाभ्युक्ष्यक्षीरधान्याम्लवारिभिः ॥ २० ॥ वातघ्नपत्रैराच्छाद्यशयानंस्वेदयेन्नरम् ॥ एवंमाषादिभिःस्विन्नैःशयानःस्वेदमाचरेत् ॥ २१ ॥

---

१ ये छ. प्रकार कहे हैं । इनकी क्रिया इस प्रकार है कि खैरके अथवा कणखर लकडीके धुआँरहित तथा दहकते हुए अगारे करके उनपर वालूको तपावे फिर उस वालूको अंडके पत्तोपर रखके उसकी पुडिया बाँधके मनुष्यकी देहको सेके तो अगोसे पसीने निकले । यह पसीने निकालनेका एक प्रकार है ।

अर्थ—ऊष्मा इस नाम कर जो पसीना है उसकी क्रिया लोहेका गोला अथवा ईंटको तपाय उसपर थोडा खट्टी पदार्थका छिडकाव करके रोगीको कबल उढायके उस गोलासे अथवा ईंटसे उस रोगीके अगोंको सेके तो पसीने निकले। यह एक प्रकार है। अथवा दशमूलादिक वातनाशक औषधोंके काढेसे अथवा उन औषधोंके रसको गरम कर मिट्टीकी गागरमें भरके उस गागरके मुखपर मुद्रा देकर मुखको बंद कर देवे। फिर उस गागरके कूखमें छिद्र कर धातुकी अथवा लकडीकी अथवा बाँसकी दो हाथकी नली बनावे उस नलीमें तीन संधि करे उनका मुख छः अंगुल लंबा और ऊँचा अथवा गौकी पूंछके समान करे। इस नलीका आकार हाथीकी सूंडके सदृश होनेसे इसको हस्तिशुंडिकानाडी कहते हैं। फिर इस नलीको गागरकी कूखमे उस छिद्रमें जडके फसाकर संधियोंको बंद कर देवे। फिर वादीसे पीडित जो मनुष्य उसको स्वस्थ बैठाके देहमें घी अथवा तेलकी मालिश करके सोड रजाई अथवा कंबल ओढा उस कपडेके भीतर उस नलीका मुख करके देहसे पसीने निकाले। अथवा मनुष्यके साढेतीन हाथ अथवा चार हाथ लंबी जमीन खोद उसमें खैरकी लकडी भरके जलावे। कोला होजावें तब तत्काल उनको निकालके उस जमीनमें दूध धान्योदक छाछ अथवा काँजी इनसे छिडक कर तथा उस जमीनमें वादीहरण करता औषधोंके पत्ते बिछाय उसपर रोगीके सुलायको रोगीके देहके पसीने निकाले। इसी प्रकार उडदोंको ले उनको थोडेसे उबाल जब अधकच्चे होजावें तब उनको तपी हुई पृथ्वीमें फैलायके उनके ऊपर अंडके पत्ते आदि वातहारक औषधोंके पत्ते डालके उसपर रोगीको सुलायके ऊपरसे कबल उढायके अगके पसीने निकाले। इस प्रकार ऊष्म संज्ञक पसीनेके लक्षण जानने।

उपनाहसंज्ञकस्वेदके लक्षण।

अथोपनाहस्वेदंचकुर्याद्वातहरौषधीः ॥ प्रदिह्यदेहंवातार्तंक्षीरमांसरसान्वितैः॥२२॥अम्लपिष्टैःसलवणैःसुखोष्णैःस्नेहसंयुतः ॥

१ छाछ काँजी इत्यादिक खट्टे पदार्थ।

२ उस गागरके मुखपर डाट देके उसको दहकते हुए कोलोपर धरे तो उस नलीके रास्ते वाफ उत्तम प्रकारसे बाहर निकले।

३ ताम्र लोह इत्यादि धातुओंकी नली बनावे।

४ अंडके पत्ते आकके पत्ते निर्गुंडी इत्यादिकोंके पत्तोको वातहर जानने। अथवा अगारोपर अपने हाथ गरम २ करके रोगीके अंगोको सेके तथा कपडेकी गेंद करके अंगारोंपर गरम कर उस गेंदसे रोगीके अगोंको सेके। अथवा केवल कपडेकोही अंगारोंसे गरम करके उस कपडेसे अगोंको सेके। अंगारोंको खिपडेमे भर उस खिपडेसे युक्तिके साथ रोगीके अंगमे सेक लगे इस प्रकार रक्खे। इतने उपायोसे पसीना निकलता है।

अर्थ—उपनाह नामक स्वेदकी क्रिया कहते हैं । दशमूलादि वायुहारक औषधोंको कूटकर चूर्ण कर उसमें दूध और हरिणादिकोंके मांसका स्नेह वे दोनो मिलायके कुछ गरम करके वायुपीडित जो अंग, उस अंगको सहन होय ऐसा गाढा लेप करके वस्त्रादिक पट्टोंसे बाँध अंगका पसीना निकाले । अथवा वातहर औषधोंको कूटकर चूर्ण करे उसको छाछमें अथवा काँजीमें पीसके उसमे थोडा सैंधानमक और तिलका तेल मिलाय कुछ गरम करके वादीसे पीडित अंगपर सहता २ गाढा लेप करके वस्त्रादिकसे बाँधकर अंगका पसीना निकाले । इसको उपनाहसंज्ञक क्रिया कहते हैं ।

दूसराप्रकार महाशाल्वणप्रयोग ।

उपग्राम्यानूपमांसैर्जीवनीयगणेनच ॥ २३ ॥
दधिसौवीरकक्षारैर्वीरतर्वादिनातथा ॥
कुलित्थमाषगोधूमैरतसीतिलसर्षपैः ॥ २४ ॥
शतपुष्पादेवदारुशेफालीस्थूलजीरकैः ॥
एरंडमूलबीजैश्चरास्नामूलकशिग्रुभिः ॥ २५ ॥
मिशिकृष्णाकुठेरैश्चलवणैरम्लसंयुतैः ॥
प्रसारिण्यश्वगंधाभ्यांबलाभिर्दशमूलकैः ॥२६॥
गुडूचीवानरीबीजैर्यथालाभंसमाहृतैः ॥
क्षुण्णैःस्विन्नैश्चवस्त्रेणबद्धैःसंस्वेदयेन्नरम् ॥ २७ ॥
महाशाल्वणसंज्ञोऽयंयोगःसर्वानिलार्तिजित् ॥

अर्थ—ग्राम्यमांस[1] आनूपमांस[2] जीवनीयगणकी[3] औषधि गौका दही सौवीर[4] सज्जीखार जवाखार रेहका खार वीरतर्वादिगणकी[5] औषधि कुलथी उडद गेहूँ अलसी तिल सरसों सौंफ देवदारु निर्गुंडी कलौंजी अंडकी जड अंडके बीज रास्ना मूली सहजना हालो पीपल वनतुलसी पाचो नमक अनारदाना प्रसारिणी असगंध गंगेरनकी छाल दश-मूलकी सब औषधि गिलोय और कौंचके बीज इन संपूर्ण औषधियोंमेंसे जो मिले उन

१ मुरगा बकरा भेड इत्यादिकोंके मांसको ग्राम्यमांस कहते हैं ।

२ जलमुरगावी बतक चकवा और मछली आदि जलचरोंके मांसको आनूपमांस कहते हैं ।

३ जीवनीयगणकी औषधें दूसरे खंडमें लिखी हैं ।

४ कच्चे अथवा पके जवोंको कूट तुस निकाल पानी डालके तीन दिन धरा रहने दे उसको सौवीर कहते हैं । इसी प्रकार गेहूँकाभी जानना ।

५ येभी वीरतर्वादि कोष्टमें देखो ।

सबको लायके कूट डाले । फिर कुछ गरम करके कपडेकी पोटली बाधके उस पोटलीसे रोगीके अगोंको सेके तो संपूर्ण वादीकी पीडा दूर होय । इस प्रयोगको महाशाल्वण प्रयोग कहते है इसप्रकार उपनाहसंज्ञक स्वेदके लक्षण जानने।

द्रवसंज्ञकस्वेदके लक्षण ।

द्रवस्वेदस्तुवातघ्नद्रव्यक्वाथेनपूरिते ॥ २८ ॥ कटाहेकोष्ठकेवा-पिसूपविष्टोऽवगाहयेत्॥सौवर्णेराजतेवापिताम्रआयसदारुजे॥२९ कोष्ठकंतत्रकुर्वीतोच्छ्रायेषट्त्रिंशदंगुलम्॥ आयामेनतदेवस्या-च्चतुरस्रंकस्तृणिंतथा ॥ नाभेःषडंगुलंयावन्मग्नःक्वाथस्यधारया॥ ॥ ३० ॥ कोष्ठकेस्कंधयोःसिक्तातिष्ठेत्स्निग्धतनुर्नरः ॥ एवंतै-लेनदुग्धेनसर्पिषास्वेदयेन्नरम् ॥ ३१ ॥ एकांतरद्व्यंतरेवास्नेहा युक्तोऽवगाहने॥ शिरामुखैरोमकूपैर्धमनीभिश्चतर्पयेत् ॥३२॥ शरीरेबलमाधत्तेयुक्तःस्नेहावगाहने॥ जलसिक्तस्यवर्धंतेयथामू-लेऽङ्कुरास्तरोः ॥३३॥ तथाधातुविवृद्धिर्हिस्नेहसिक्तस्यजाय-ते ॥ नातःपरतरःकश्चिदुपायोवातनाशनः॥ ३४ ॥

अर्थ—द्रव इस नाम करके जो स्वेद है उसकी क्रिया अर्थात् काढनेकी विधि कहते है । दशमूलादि वातहारक औषधोंका काढा करके रोगीके देहमें घी अथवा तेलकी मालिश करे । उसको कढाहीमे अथवा तांबेके बडे पात्रमे बैठायके पूर्वोक्त काढेकी गरमागरम सुहाते २ की धार उस मनुष्यके कंधोपर डाले । यह धार टूंडी (नाभि) पर छ. अगुलपर्यंत चढे तहांतक डालता रहे। इसी प्रकार तेलकी दूधकी अथवा घीकी धार डाले और उसको घर्मयुक्त करे । इसप्रकार एकदिनका बीच देकर अथवा दो दिन बीचमे देकर करे तो शिराओंके मुखद्वारा रोमोंके छिद्रोंमें होकर तथा नाडीके मार्गोमें होकर ये स्नेहादि पदार्थ शरीरके अभ्यतर प्रविष्ट होकर शरीरमे बल उत्पन्न करते हैं इस विषयमे दृष्टात है कि जैसे वृक्षकी जडमें वारवार जलसेचन करनेसे वृक्ष बढता है उसी प्रकार तेलादिकोंमें बैठनेसे मनुष्यके रसादि सात धातु बढती हैं और वादीका नाश होता है। इस उपायकी अपेक्षा वायुनाशक दूसरा उपाय नही है ।

पसीनेनिकालनेकी अवधि ।

शीतशूलव्युपरमेस्तंभगौरवनिग्रहे ॥
दीप्तेऽग्नौमार्दवेजातेस्वेदनाद्विरतिर्मता ॥ ३५ ॥

अर्थ—अगसे सरदी और शूल (दर्द) इनकी शाति होनेपर अंगका स्तंभ तथा भारीपन ये

दूर होनेसे तथा अग्नि प्रदीप्त होनेसे अंगोंमे नम्रता आनेपर रोगीकी देहसे पसीने निकालना बंद करे।

स्वेदनिकालनेके पश्चात् उपचार।

सम्यक्स्विन्नंविमर्दितंस्नानमुष्णांबुभिःशनैः॥
भोजयेच्चानभिष्यंदिव्यायामंचनकारयेत्॥ २६॥
इति शार्ङ्गधरसंहितायां द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

अर्थ—जिस मनुष्यके अंगसे पसीने निकाले हैं उसको और जिसके देहमे तेलकी मालिश की है उसको धीरे २ गरम जलसे स्नान करावे। कफकारी पदार्थ खानेको न देवे तथा परिश्रम न करे। इसप्रकार द्रवसंज्ञक स्वेदके लक्षण जानने।

इति श्रीमाथुरदत्तरामविरचितभाषामाथुरीटीकायामुत्तरखंडस्य द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

अथ तृतीयोऽध्यायः ३.

वमनविरेचनकाल।

शरत्कालेवसंतेचप्रावृट्कालेचदेहिनाम्॥
वमनंरेचनंचैवकारयेत्कुशलोभिषक्॥ १॥

अर्थ—शरद्[१] कालमे वसंत[२] कालमें और प्रावृट्[३]कालमें कुशल वैद्य मनुष्यको वमनकी औषध देकर रद्द करावे और दस्तकारी औषधि (जुल्लाव) देवे तो प्रकृति ठीक रहे कुशल वैद्यको कहनेसे यह प्रयोजन है कि वमन और विरेचन मूढ वैद्यसे न करावे। क्योंकि मूढ वैद्यद्वारा वमन विरेचन करानेसे प्राणबाधाका भय रहता है।

वमनकरानेयोग्य रोगी।

बलवंतंकफव्याप्तंहृल्लासार्तिनिपीडितम्॥ तथावमनसात्म्यंच धीरचित्तंचवामयेत्॥ २॥ विषदोषस्तन्यरोगमंदेऽग्नौश्लीपदे-ऽर्बुदे॥ हृद्रोगकुष्ठवीसर्पमेहाजीर्णभ्रमेषुच॥३॥ विदारिका-पचीकासश्वासपीनसवृद्धिषु॥ अपस्मारज्वरोन्मादेतथारक्ता-तिसारिषु॥ ४॥ नासाताल्वोष्ठपाकेषुकर्णस्रावेद्विजिह्वके॥

१ तुला वृश्चिक सक्रांतिसे शरत्काल होता है।

२ कुंभ मीनकी सक्रांतिका वसंतकाल होता है।

३ वर्षाकालके प्रारंभको प्रावृट्काल कहते हैं। सो मिथुन कर्कसक्रांतिका जानना।

गलशुंडचामतीसारेपित्तश्लेष्मगदेतथा ॥ ५ ॥
मेदोगदेऽरुचौचैववमनंकारयेद्भिषक् ॥

अर्थ—बलवान् मनुष्य जो कफसे व्याकुल है, जिसके मुखसे लार वहती हो, जिसको वमन करना सहजाता हो धीर चित्तवाला, विषदोष, स्तन्यरोग, मंदाग्नि, श्लीपद, अर्बुद, हृद्रोग, कुष्ट, विसर्प, प्रमेह, अजीर्ण, भ्रम, विदारिका, गडमालाका भेद, अपचीरोग, खाँसी, श्वास, पीनस, अंडवृद्धि, अपस्मार, ज्वर, उन्माद, रक्तातिसार, नासापाक, तालुपाक, ओष्टपाक, कर्णस्राव, द्विजिह्वक, गलशुंडो, अतिसार, पित्त श्लेष्मके रोग, मेदोरोग और अरुचि इनमेंसे रोग जिसके होय, उस रोगीको वैद्य वमन करावे।

वमनमें अयोग्य प्राणी।

नवामनीयस्तिमिरीनगुल्मीनोदरीकृशः ॥ ६ ॥ नातिवृद्धोगर्भिणीचनचस्थूलःक्षतातुरः॥मदार्तोबालकोरूक्षःक्षुधितश्चानिरूहितः ॥ ७ ॥ उदावर्त्यूर्ध्वरक्तीचदुश्छर्दिःकेवलानिली ॥ पांडुरोगीकृमिव्यातःपठनात्स्वरघातकः ॥ ८ ॥ एतेऽप्यजीर्णव्यथितावाम्यायेविषपीडिताः ॥ कफव्याप्ताश्चतेवाम्यामधुकक्काथपानतः ॥ ९ ॥

अर्थ—तिमिर गोला और उदर इन रोगवाले मनुष्य तथा अतिकृश, अतिवृद्ध, गर्भिणी स्त्री, बडे स्थूल पुरुष, उरःक्षतकरके तथा मद करके पीडित, बालक, रूक्ष, क्षुधित (भूखा), निरूहित (गुदाद्वारा पिचकारी दीनी जिसके), जिसके उदावर्त रोग हो ऊर्ध्वरक्ती जिसको वमन नहीं होती हो जिसके केवल वादीका रोग होय पांडुरोगी, कृमिरोगी, तथा वेदशास्त्रके अत्यंत उच्चस्वर पढनेसे जिसका कंठ बैठगयाहो इतने रोगियोंको वमन नहीं कराना चाहिये, यदि ये रोगी अजीर्ण करके अथवा कफ करके व्यास होवें तो इनको मुलहटीकी अथवा महुआकी छालका काढा पिलायके वमन करावे।

वमनके अयोग्य प्राणी।

सुकुमारंकृशंबालंवृद्धंभीरुंनवामयेत् ॥

---

१ ये संपूर्ण रोग प्रथमखंडकी सातवी अध्यायमें कहे हैं उनसे जानलेना।

२ रक्तपित्तके कोपकरके जिनके ऊर्ध्व (मुख नासिका आदि होकर) रुधिर गिरे उसको ऊर्ध्व रक्तपित्ती जानना।

अर्थ–सुकुमार (नाजुक) मनुष्य कृश बालक वृद्ध डरपोक इन पांच मनुष्योंको वमन कर्ता नही देनी चाहिये ।

वमनमे विहितपदार्थोंको कहते हैं ।

पीत्वायवागूमाकंठंक्षीरतक्रदधीनि च ॥ १० ॥ असात्म्यैः श्लेष्मलैर्भोज्यैर्दोषानुत्क्लिश्यदेहिनः ॥ स्निग्धस्विन्नायवमनं दत्तंसम्यक्प्रवर्तते ॥ ११ ॥

अर्थ–जिस मनुष्यको वमन करना होवे उसको प्रथम पेट भरके यवागू दूध छाछ अथवा दही पीनेको देवे । जो पदार्थ अपनी प्रकृतिको न भावते हों वे पदार्थ तथा कफकारी पदार्थ खानेको देकर मनुष्योंके दोषोंको उत्क्लेशित करे तो उस मनुष्यको भले प्रकार वमन होवे । जिस मनुष्यने घृतपान और स्वेदकर्म किया है उस मनुष्यको एक दिन बीचमें देकर वमन करना उत्तम है अर्थात् इस प्रकार करनेसे उत्तम रद्दी होती है ।

वमनमें सहायकपदार्थ ।

वमनेषुचसर्वेषुसैंधवंमधुवाहितम् ॥ बीभत्संवमनंदद्याद्विपरीतंविरेचनम् ॥ १२ ॥

अर्थ–जितने वमनकारक प्रयोग उन सबमें सैंधानमक अथवा सहत इनको मिलावे तो हितकारी है । वमन देवे तो बीभत्स (अरोचक वस्तु) देवे और विरेचनमें रोचक पदार्थ (औषध) देवे ।

वमनप्रयोगमें काढकरनेका प्रमाण ।

क्वाथ्यद्रव्यस्यकुडवंश्रपयित्वाजलाढके ॥ अर्धभागावशिष्टंचवमनेष्ववचारयेत् ॥ १३ ॥

अर्थ–काढेकी औषधी १ कुँडव ले कुछ कूटके उसमें एक आँढक जल डालके औटावे जब आधा जल रह जावे तब उतार छनके वमन वास्ते पीनेको देवे ।

---

१ कृश बालक और वृद्ध इनको वमन न करावे एसा प्रथमही लिख आए हैं परंतु निश्चयार्थ फिरभी लिखा है ऐसे जानना चाहिये ।

२ चावलोंको कूटके उसमे छः गुना जल मिलायके औटावे जब एक जीव होजावे तब उतार लेवे । इसको यवागू कहते हैं ।

३ वमन करानेवाली औषधोंमे घी मिलायके वमन देनेको बीभत्स वमन कहते हैं ।

४ चार पलोका कुडव जानना उस कुडवके व्यावहारिक तोले १६ होते हैं ।

५ चार प्रस्थका एक आढक जानना उस आढकके तोले २५६ होते हैं ।

वमनमें काढा पीनेका प्रमाण।

क्काथपानेनवप्रस्थाज्येष्ठामात्राप्रकीर्तिता ॥
मध्यमापण्मिताप्रोक्तात्रिप्रस्थाचकनीयसी ॥ १४ ॥ तार

अर्थ—जिस मनुष्यको वमन करना है उसको नौप्रस्थ[1] काढा पीना वडी मात्रा जाननी। छः प्रस्थ काढा पीना मध्यम मात्रा है और तीन प्रस्थ काढेकी मात्रा लघुमात्रा जाननी चाहिये।

वमनमें कल्कादिकोंका प्रमाण।

कल्कचूर्णावलेहानांत्रिपलंश्रेष्ठमात्रया ॥
मध्यमंद्विपलंविद्यात्कनीयस्तुपलंभवेत् ॥ १५ ॥

अर्थ—कल्क[2] चूर्ण और अवलेह ये तीन २ पल लेना वडी मात्रा कहलाती है। दो पलकी मध्यम मात्रा जाननी तथा एक पलकी छोटी मात्रा जाननी चाहिये।

वमनमें उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ वेगोंका प्रमाण।

वमनेचापिवेगाःस्युरष्टौपित्तांतमुत्तमाः ॥
षड्वेगामध्यवेगाश्चचत्वारस्त्ववरामताः ॥ १६ ॥

अर्थ—इस प्राणीको वमनकारक औषधि देनेसे सातवेग पर्यंत सपूर्ण दोष निकाल कर आठवें वेगमें पित्त निकले तो उत्तम वेग जानने। उसी प्रकार पाच वेग पर्यंत दोष निकलके छठे वेगमें पित्त पडनेसे वे मध्यम वेग जानने। एवं तीन वेग पर्यन्त दोष निकलके चतुर्थ वेगमे पित्त निकले तो उस प्राणीको वमनके हीनवेग हुए ऐसे जानना।

वमनके विषयमें प्रस्थका प्रमाण।

वमनेचविरेकेचतथाशोणितमोक्षणे ॥
सार्धत्रयोदशपलंप्रस्थमाहुर्मनीषिणः ॥ १७ ॥

अर्थ—वमन होनेके विषयमे तथा दस्त होनेमें जो औषध प्रस्थप्रमाण लेनीकही है वहापर १३॥ साढेतेरह पलका प्रस्थ लेना चाहिये और फस्त खोलनेमेभी १३॥ पलका प्रस्थ लेना ऐसी शास्त्राज्ञा है।

वमनमें औषधविशेषकरके कफादिकका जय।

कफंकटुकतीक्ष्णेनपित्तंस्वादुहिमैर्जयेत् ॥

---

१ वमन विषयमे जो काढा लेना कहा है तहा १३॥ पलका एक प्रस्थ जानना इस हिसावसे नौ प्रस्थका काढा लेवे।

२ सूखी औषधमे जल डालके चटणीके समान पीसे उसको कल्क कहते हैं।

सस्वादुलवणाम्लोष्णैःसंसृष्टंवायुनाकफम् ॥ १८ ॥

अर्थ—कटु और तीक्ष्ण[1] औषधोंसे कफको जीत मधुर[2] और शीतल औषधोंसे पित्त तथा मधुर अम्ल और उष्ण औषधोंसे वातमिश्रित कफको जीते।

कफादिकोंको वमनद्वारा निकालनेवाली औषध।

कृष्णाराठफलैःसिंधुकफेकोष्णजलैःपिबेत् ॥ पटोलवासानिंब-श्चपित्तेशीतजलंपिबेत् ॥ १९ ॥ सश्लेष्मवातपीडायांसक्षीरंम-दनंपिबेत् ॥ अजीर्णेकोष्णपानीयंसिंधुंपीत्वावमेत्सुधीः ॥२०॥

अर्थ—कफ दोषमें पीपल मैनफल और सैंधानमक इनका चूर्ण करके गरम जलके साथ पिलावे तो वमनके साथ कफ निकले। तथा पित्तदोषमें पटोलपत्र अडूसा और कटुनिंबके पत्तोका चूर्ण करके शीतल जलमे मिलायके पीवे तो वमनमे पित्त निकले। तथा कफवायुकी पीडा होय तो मैनफलके चूर्णको दूधमें डालके पीवे तो वमन करनेसे कफवायुकी पीडा दूर होवे। तथा अजीर्णमें गरम जलमें सैंधानमक डालके पीवे तो वमन होनेसे इस प्राणीका अजीर्ण दूर होवे।

वमन करनेमें बाह्योपचार।

वमनंपाययित्वाचजानुमात्रासनेस्थितम् ॥
कंठमेरंडनालेनस्पृशंतंवामयेद्भिषक् ॥ २१ ॥
ललाटंवमतःपुंसःपार्श्वौद्वौचप्रबोधयेत् ॥

अर्थ—मनुष्यको वमनकारक औषधि देकर घोंटू २ ऊँचे आसनपर बैठावे। और अंडकी नालको लेकर उसको मुखमे डालके हलके हाथसे जैसे कफको स्पर्श करे इस प्रकार कंठको सिरावे इस प्रकार भीतर बाहरसे कंठको सिराय २ के वैद्य मनुष्यको रद्द करावे तथा उस रद्द करनेवालेके मस्तकको तथा उसकी दोनो कूख (पसलियोको) धीरे २ हाथसे सिराना चाहिये।

उत्तम वमन न होनेसे उपद्रव।

प्रसेकोहृद्ग्रहःकोठः[3]कंडूर्दुश्छर्दितात्भवेत् ॥ २२ ॥

---

१ सोंठ मिरच पीपल राई आदि तीक्ष्ण औषध कहलाती हैं।

२ अनार मुनक्का दाख मिश्री आदि मधुर औषधि जाननी।

३ मोहारकी मक्खीके काटनेसे जैसा चकत्ता देहमें हो जाते हैं उसी प्रकारके चकते उठ क्षणमात्रमें नष्ट होजावें और उनमें खुजली होकर लालवर्ण हो जावे उसे कोठ कहते हैं।

अर्थ—वमनका उत्तमयोग न होनेसे मुखसे लार गिरे हृदयमें पीडा होवे देहमें कोढ और खुजली होय।

अत्यंतवमनहोनेके उपद्रव।

अतिवांतेभवेत्तृष्णाहिक्कोद्गारौविसंज्ञता॥
जिह्वानिःसर्पणंचाक्ष्णोर्व्यावृत्तिर्हनुसंहतिः॥ २३॥
रक्तच्छर्दिःष्ठीवनंचकंठपीडाच जायते॥

अर्थ—मनुष्यको अत्यंत वमन होनेसे अत्यत तृषा लगे, हिचकी डकार आना, संज्ञाका नाश जीभ मुखसे बाहर निकलपडे, नेत्र फटेसे होकर चचल होवें, भ्रम, ठोडीका जकडना, अथवा, पीडाका होना, मुखसे रुधिरका गिरना, वारवार थूकना, तथा कंठमें पीडा ये उपद्रव अत्यंत वमन होनेसे होतेहैं।

अत्यंतवमनहोनेकी चिकित्सा।

वमनस्यातियोगेनमृदुकुर्याद्विरेचनम्॥ २४॥

अर्थ—यदि मनुष्यको अत्यत रद होती होवे तो उसको हलकासा जुलाव करावे।

रद्दकरते करते जीभ भीतर चलीगईहो उसकी चिकित्सा।

वमनांतःप्रविष्टायांजिह्वायांकवलग्रहः॥
स्निग्धाम्ललवणैर्हृद्यैर्घृतक्षीररसैर्हितः॥ २५॥
फलान्यम्लानिखादेयुस्तस्यचान्येऽग्रतोनराः॥

अर्थ—अत्यत उलटी करते २ यदि मनुष्यकी जीभ भीतर धसगईहो तो मनको प्रसन्नता कारक खट्टे तीक्ष्ण मीठे नमकीन पदार्थ भातके साथ भोजनको देवे मुहमें धारणकरै तथा घी और दूध ये भातके साथ देवे तथा उस रोगीके सामने दूसरा मनुष्य निंबू अथवा नारगीको चूस २ कर खाय तो मनुष्यकी जीभ ठिकानेपर आनकर प्रकृति स्वच्छ होय।

रद्द करते २ जीभ बाहर निकलपडी होय उसका उपाय।

निःसृतांतुतिलद्राक्षाकल्कलिप्तांप्रवेशयेत्॥ २६॥

अर्थ—मनुष्यकी जीभ रद करते २ यदि बाहर निकल आई हो तो उसको तिल और दाख इनका कल्क करके उसकी जीभपर वैद्य लेप करके जीभको भीतर प्रविष्ट करे।

वमनसे नेत्रोंमें विकारहोनेका उपचार।

व्यावृत्ताक्षिणघृताभ्यक्तेपीडयेच्चशनैःशनैः॥

अर्थ–जिस मनुष्यके उलटी करते २ नेत्र फटेसे होगएहों उसके नेत्रोमे हलके हाथसे घी लगायके ठिकानेपर करे ।

उलटीकरते २ ठोडीरहगईहो उसका उपचार ।

हनुमोक्षेस्मृतःस्वेदोनस्यंचश्लेष्मवातहृत् ॥ २७ ॥

अर्थ–मनुष्यकी उलटी करते २ ठोडी रहजावे उसके अगोका पसीना निकाले तथा कफ-वायुनाशक औषधी नाकमे डाले तो ठोडीका स्तभ दूर होवे ।

उलटीकरते २ रुधिरगिरनेलगे उसका उपाय ।

रक्तपित्तविधानेनरक्तच्छर्दिमुपाचरेत् ॥

अर्थ–मनुष्यको अत्यत रद्द होनेसे अतमे रुधिर गिरने लगे तो जो रक्तपित्त रोगपर उपाय कहेहैं उन उपायोको करके रुधिरकी उलटीको शातकरे ।

अत्यंतवमनहोनेसे अधिकतृषालगनेका यत्न ।

धात्रीरसांजनोशीरलाजाचंदनवारिभिः ॥ २८ ॥
मंथंकृत्वापाययेच्चसघृतक्षौद्रशर्करम् ॥
शाम्यंत्यनेनतृष्णाद्याःपीडाश्छर्दिसमुद्भवाः ॥ २९ ॥

अर्थ–१ ऑवले २ रसोत ३ खस ४ साली चावलोकी खील, ५ लालचंदन और ६ नेत्र-वाला इन छः औषधोका मथ करके उसमे घी सहत और मिश्री डालके पीवे तो वमनके कारण जो तृषादिक उपद्रव होते है वे दूर होवे ।

उत्तमवमनहोनेके लक्षण ।

हृत्कंठशिरसांशुद्धिंदीप्ताग्नित्वंचलाघवम् ॥
कफपित्तविनाशश्चसम्यग्वांतस्यचेष्टितम् ॥ ३० ॥

अर्थ–जो प्राणी उत्तम प्रकारकी उलटी करता है उसके लक्षण कहते हैं कि हृदय कठ और मस्तक इनमें जो कफादिक दोष उनको दूरकर उनकी शुद्धि होवे । अग्नि प्रदीप्त हो, अग हलके हों तथा कफदोप और पित्तदोप ये दोनों दूर होवे ।

ततोऽपराह्णेदीप्ताग्निंमुद्गषष्टिकशालिभिः ॥
हृद्यैश्चजांगलरसैःकृत्वायूषंचभोजयेत् ॥ ३१ ॥

---

१ दारुहल्दीका काढा करके उसके समान बकरीका दूध उसमे मिलायके औटावे जब खोहा होजावे तब सुखायके चूर्ण करलेवे । इसको रसोत वा रसाजन कहते हैं ।

२ ऑवले, आदि छः औषधोको एक पल ले जवकूट करके ४ पल जल हाँडीमे डाल औषध मिलायके मथ डाले फिर नितारके पानी छानलेवे इसको मथ कहते हैं ।

अर्थ—जब मनुष्य भले प्रकार वमन कर चुके तब तीसरे प्रहर अग्नि प्रदीत होवे। तब मूँग और साठी चाँवलें मनको प्रियकर्त्ता ऐसे वनके हरिणादिकोंके मासका रस इन सबका यूपै बनायके उसके साथ भोजन करे।

उत्तमवमनका फल।

तंद्रानिद्रास्यदौर्गंध्यंकंडूंचग्रहणींविषम्॥
सुवांतस्यनपीडायैभवंत्येतेकदाचन॥ ३२॥

अर्थ—जिस मनुष्यने उत्तम प्रकार वमन किया है उसके तंद्रा निद्रा मुखकी दुर्गंधि खाज संग्रहणीरोग और विषदोष ये उपद्रव कदाचित् भी नहीं होते।

अजीर्णंशीतपानीयंव्यायामंमैथुनंतथा॥
स्नेहाभ्यंगंप्रकोपंचादिनैकंवर्जयेत्सुधीः॥ ३३॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेणविरचितायांसंहितायामुत्तरखण्डे वमनविधिवर्णनोनाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

अर्थ—अजीर्णकर्त्ता (भारी) पदार्थ, शीतल पानी, दंड कसरत, मैथुन, देहमे तेलकी मालिस करना, तथा क्रोध करना, ये सब कर्म जिस दिन वमनकारी औषध लेवे उस दिन त्यागदेय।

इति माथुरीभाषाटीकाया तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः ४.

वमनके पश्चात्विरेचन।

स्निग्धस्विन्नस्यवांतस्यदद्यात्सम्यग्विरेचनम्॥ अवांतस्यत्वधःस्रस्तोग्रहणींछादयेत्कफः॥ १॥ मंदाग्निंगौरवंकुर्याज्जनयेद्वाप्रवाहिकाम्॥ अथवापाचनैरामंबलासंचविपाचयेत्॥ २॥

---

१ जो धान साठ दिनमे पक जाते हैं उनके चाँवलोंको साठीचावल कहते है।

२ मूँग और साठी चावल १ पल ले जल १ प्रस्थ डालके औटावे जब औटके पेयाके समान होजावे उसको यूप कहते हैं। इसी प्रकार हरिणादिकोंके मासमे जल डालके यूप बनावे इसको मांसरस कहते हैं।

अर्थ—प्रथम मनुष्यको स्निग्ध करे अर्थात् पूर्वोक्त विधिसे स्नेहपान करावे, फिर उसके देहसे पसीने निकाले, पश्चात् वांति (उलटी) करावे । जब भले प्रकार वमन कर चुके तव उत्तम प्रकारसे विरेचन देवे । इसका कारण यह है विना वमन कराये दस्तकरावे तो उसके अधोभागमें गयाहुआ कफ वह ग्रहणी (छटवी पित्तधरा तथा अग्निधरा कला) का आच्छादन करता है कि जिससे मदाग्नि गौरव (देहमें भारीपना) प्रवाहिका ये रोग उत्पन्न होते हैं अथवा अधोगत कफ और आमको शुष्क एरण्डमूलादिक करके पचावे१।

दस्तकी दूसरी विधि ।

स्निग्धस्यस्नेहनैःकार्यैस्वेदैःस्विन्नस्यरेचनम् ॥

अर्थ—घृत दुग्धादिक स्नेहद्रव्य तिनकरके स्निग्ध मनुष्य उसको और पिंडेष्टिकादि२ करके देहका पसीना निकालेहुए मनुष्यको दस्त करने चाहिये । यह वमनके विनाविरेचन देनेका दूसरा प्रकार है ।

दस्तोंका सामान्यकाल ।

शरद्दतौवसंतेचदेहशुद्धौविरेचयेत् ॥ ३ ॥
अन्यदात्ययिकेकालेशोधनंशीलयेद्बुधः ॥

अर्थ—शरद्३ ऋतुमे तथा वसन्त४ ऋतुमे मनुष्योकी शरीरशुद्धिके लिये जुलाब देवे तो देहकी शुद्धि होकर देह उत्तम होय । तथा उक्तकालके सिवाय दूसरे कालमें यदि रोग उत्पन्न होय तो उस कालमेंभी वैद्य रोगीका विचार करके दस्तकारी औषध देवे ।

विरेचनयोग्य रोगी ।

पित्तेविरेचनंदद्यादामोद्भूतेगदेतथा ॥ ४ ॥
उदरेचतथाध्मानेकोष्ठशुद्धौविशेषतः ॥

---

१ वमनके पश्चात् दस्त कैसे देवे ऐसी शंका होनेसे भेड चरक सुश्रुत और वाग्भट इत्यादि ग्रथोंका अभिप्राय है कि, वमन देकर छःदिन व्यतीत होनेपर पश्चात् तीन दिन स्निग्ध करे । तीन दिन देहसे पसीने निकाले । फिर तीन दिन हलका भोजन (खिचडीआदि) देकर सोल्हवे दिन जुलाब कर्त्ता औषधि देवे । यह ग्रंथकारका अभिप्राय है इसलिये श्लोकमे सम्यक् पद धरा है ।

२ मिट्टीका गोला ईटआदि ।

३ शरद् ऋतु कार कार्तिकके दिन ।

४ वसंत ऋतु चैत्रके दिन ।

अर्थ–पित्तविकार आमवात उदररोग[1] अफरा और बद्धकोष्ट इन रोगोंमें वैद्य विशेष करके विरेचन देवे।

दोषदूरकरनेमें विरेचनकी उत्कृष्टता।

दोषाःकदाचित्कुप्यंतिजितालंघनपाचनैः॥५॥
येतुसंशोधनैःशुद्धानतेषांपुनरुद्भवः॥

अर्थ–वातादिक दोष लंघन और पाचन करनेपर शमन होकर कदाचित् फिरभी कुपित हो जाते हैं परंतु जो संशोधन (वमनविरेचनादि) द्वारा शुद्ध हुए हैं। उनका फिर उद्भव (उत्पति) नहीं है।

दस्तकरानेयोग्य रोगी।

जीर्णज्वरीगरव्याप्तोवातरक्तीभगंदरी॥६॥ अर्शःपांडूदरग्रंथिहृद्रोगारुचिपीडिताः॥योनिरोगप्रमेहार्तागुल्मप्लीहव्रणार्दिताः ॥७॥ विद्रधिच्छर्दिविस्फोटविषूचीकुष्ठसंयुताः ॥ कर्णनासाशिरोवक्त्रगुदमेढ्रामयान्विताः॥८॥ यकृच्छोथाक्षिरोगार्ताःक्रमिक्षारानिलार्दिताः॥शूलिनोमूत्रघातार्ताविरेकार्हानरामताः॥९॥

अर्थ–जीर्णज्वर सिंगिया आदि विषदोष वातरक्त भगंदर बवासीर पांडुरोग उदररोग गाँठ हृदयरोग अरुचि प्रमेह योनिरोग गोला प्लीहा व्रण विद्रधि वमन विस्फोटक विषूचिका कोढ कर्णरोग नासारोग मस्तकरोग मुखरोग गुदाके रोग लिंगेन्द्रीके (उपदशादि) रोग यकृत् सूजन नेत्ररोग क्रमिरोग सोमल तथा क्षारजन्य विकार वादीके रोग शूलरोग तथा मूत्राघातरोग इन रोगोंसे यदि प्राणी अत्यन्त व्याप्त होवे तो उसको विरेचन (दस्त करानेकी औषधि) देवे।

दस्तकरानेमें अयोग्य।

बालवृद्धावतिस्निग्धक्षतक्षीणोभयान्वितः॥श्रांतस्तृषार्तःस्थूलश्चगर्भिणीचनवज्वरी॥१०॥ नवप्रसूतानारीचमंदाग्निश्चमदात्ययी॥ शल्यार्दितश्चरूक्षश्चनविरेच्याविजानता॥११॥

---

१ उदररोगीको दस्त करावे यह प्रथम कह आये हैं परतु विशेष करके देना, इस वास्ते फिर उदररोगको कहा है।

अर्थ—बालक, वृद्ध, अतिस्निग्ध, उरःक्षत करके क्षीण, भयकरके पीडित, थकाहुआ, प्यासा, स्थूलपुरुष, गर्भिणी, नवज्वर करके पीडित, नवप्रसूता स्त्री, मंदाग्नि, मदात्ययरोग करके पीडित, शल्य[१] करके पीडित और रूक्ष इतने मनुष्योंको विद्वान् वैद्य दस्त न करावे ।

दस्तोंमें मृदु मध्य और क्रूर कोष्ठ ।

बहुपित्तोमृदुःप्रोक्तोबहुश्लेष्माचमध्यमः ॥ बहुवातःक्रूरकोष्ठोदुर्विरेच्यःसकथ्यते ॥ १२ ॥ मृद्वीमात्रामृदौकोष्टेमध्यकोष्टेचमध्यमा ॥ क्रूरेतीक्ष्णामतातज्ज्ञैर्मृदुमध्यमतीक्ष्णकैः ॥ १३ ॥

अर्थ—जिस मनुष्यका कोठा अत्यत पित्त करके व्याप्त होय उसे मृदुकोष्ट जानना । एव जिसके कोठेमे अत्यत कफ होय उसे मध्यम कोष्ट एव जिसके कोठेमें अत्यन्त वादी है उसे क्रूरकोष्ठ जानना । जिस मनुष्यका क्रूर कोठा है ऐसे मनुष्यको दस्तकारी औषध देनेसे शीघ्र दस्त नही होते । जिस प्राणीका मृदु कोष्ठ है उसको मृदु औषधकी मृदु मात्रा देनी एव जिन मनुष्योका कोठा मध्यम है उनको मध्यम औषधकी मध्यम मात्रा देवे । तथा जिस प्राणीका अत्यत क्रूर कोष्ठ है उसको तीक्ष्ण औषधकी तीक्ष्ण मात्रा देनी चाहिये ।

मृदुमध्यमादिकोष्ठोंमें मृदुमध्यादिक औषधि ।

मृदुर्द्राक्षापयश्चंचुतैलैरपिविरिच्यते ॥ मध्यमस्त्रिवृतातिक्तारा-जवृक्षैर्विरिच्यते ॥१४॥क्रूरःस्नुकपयसाहेमक्षीरीदंतीफलादिभिः ॥

अर्थ—जिनका मृदु (नरम) कोठा है उनको दाख दूध और अडीका तेल इनसे ही दस्त हो सकते हैं । मध्यम कोष्ठवालेको निशोथ कुटकी और अमलतासका गूदा इनसे दस्त हो सकते हैं । तथा क्रूर कोठेवालेको थूहरका दूध तथा चौक जमालगोटाके बीज आदि शब्दसे इन्द्रायनकी जड इत्यादिक देनेसे रेचन होता है ।

उत्तमादिभेदकरके दस्तोंके प्रमाण ।

मात्रोत्तमाविरेकस्यात्रिंशद्वेगैःकफांतिका ॥ १५ ॥ वेगैर्विंशतिभिर्मध्याहीनोक्तादशवेगिका ॥

अर्थ—तीसवार दस्त होकर अन्तमें कफ (आम) गिरे तो उसे उत्तम मात्रा जाननी । और वीसवेग होकर कफ गिरने लगे तो उसे मध्यम मात्रा जाननी तथा दशवेगके अन्तमे कफ गिरनेसे हीन मात्रा जाननी । वेगनाम दस्तोका है ।

---

१ काँच अथवा नाखून अथवा बाल काँटा इत्यादिक शरीरमे रहनेसे पीडित जो मनुष्य हो उसको शल्यार्दित जानना ।

दस्त होनेमें कषायादिकी मात्राका प्रमाण।

द्विपलंश्रेष्ठमाख्यातंमध्यमंचपलंभवेत्॥ १६॥
पलार्धंचकषायाणांकनीयस्तुविरेचनम्॥

अर्थ–दस्त होनेसे दो पल प्रमाण कषाय (काढा) देनेसे जो दस्त होवे वे दस्त उत्तम जानने। एक पल प्रमाण काढा देनेसे दस्त होय तो मध्यम जानने। एवं अर्ध पलके प्रमाण काढेसे दस्त होना कनिष्ट जानना।

दस्त होनेमें कल्कादिकोंके प्रमाण।

कल्कमोदकचूर्णानांकर्षमध्वाज्यलेहतः॥ १७॥
कर्षद्वयंपलंवापिवयोरोगाद्यपेक्षया॥

अर्थ–कल्क मोदक और चूर्ण ये कर्ष प्रत्येक सहत घीमें मिलाय दस्त होनेमें देवे। अथवा अवस्था और रोगका तारतम्य देखके दो कर्ष अथवा एक पल देवे।

दोषोंके अनुकूल रेचन।

पित्तोत्तरेत्रिवृच्चूर्णंद्राक्षाक्काथादिभिःपिबेत्॥ १८॥
त्रिफलाक्काथगोमूत्रैःपिबेद्व्योषंकफार्दितः॥
त्रिवृत्सैंधवशुंठीनांचूर्णमम्लैःपिबेन्नरः॥ १९॥
वातार्दितोविरेकायजांगलानांरसेनवा॥

अर्थ–पित्तके आधिक्यमें निसोथका चूर्ण करके दाखके काढेमें मिलायके देवे। आदि शब्द करके गुलकंद गुलाबके फूल और सौंफ इत्यादिकोंके काढेमें देवे। कफका प्रकोप होनेसे त्रिफला का काढा और गोमूत्र इन दोनोंको एकत्र करके उसमें त्रिकुटा (सोंठ मिरच पीपल) का चूर्ण मिलायके देवे। यदि मनुष्य वादीसे पीडित हो तो उसको दस्त करानेके वास्ते निसोथ सैंधानमक और सोंठ इनका चूर्ण करके इमली या नींबूके रसमें देवे अथवा जंगली जीवोंके मासंरसमें देवे तो दस्त होवे।

अन्य औषधोंसे दस्तोंका विधान।

एरंडतैलंत्रिफलाक्काथेनद्विगुणेनच॥ २०॥
युक्तंपीत्वापयोभिर्वानचिरेणविरिच्यते॥

अर्थ–अंडीके तेलसे दुगुना त्रिफलेका काढा कर उसमें अंडीका तेल डाल देवे अथवा अंडीका तेल दूधमें मिलायके देवे तो तत्काल दस्त हो।

---

१ हरिण शशा आदिके मांसको पानीमें औटावे। जब खीजके पेयाके समान होजावे तब उतारले। इसको मासरस कहते हैं।

ऋतुभेदकरके दस्त।

त्रिवृताकौटबीजंचपिप्पलीविश्वभेषजम् ॥ २१ ॥
समृद्वीकारसःक्षौद्रंवर्षाकालेविरेचनम् ॥

अर्थ-निसोथ इन्द्रजौ पीपल सोंठ दाखोंका रस और सहत ये औषध दस्त होनेके वास्ते वर्षा-कालमें देना।

शरदृऋतुमें दस्त।

त्रिवृद्दुरालभामुस्ताशर्करादिव्यचंदनम् ॥ २२ ॥
द्राक्षांबुनासयष्टीकंशीतलंचघनात्यये ॥

अर्थ-निसोथ धमासा नागरमोथा उत्तम सफेदचंदन और मुलहटी इन सब औषधोंका चूर्ण कर दाखके पानीमे मिलायके शरद् ऋतुमे देवे तो दस्त होवे। यह दस्तकी औषध शीतल है।

हेमंतऋतुमें दस्त।

त्रिवृताचित्रकंपाठाह्यजाजीसरलावचा ॥ २३ ॥
हेमक्षीरीचहेमंतेचूर्णमुष्णांबुनापिबेत् ॥

अर्थ-निसोथ चीता पाढ जीरा देवदारु वच और चोक इनका चूर्णकर गरम जलमें मिलायके हेमतऋतुमें देवे तो दस्त होवे।

शिशिर वा वसंतऋतुमें दस्त।

पिप्पलीनागरंसिंधुश्यामात्रिवृतयासह ॥ २४ ॥
लिहेत्क्षौद्रेणशिशिरेवसंतेचविरेचनम् ॥

अर्थ-पीपल सोंठ सैंधानमक और काली निसोथ इन औषधोंका चूर्णकर सहतमे मिलाय शिशिर तथा वसत ऋतुमें चाटे तो दस्त होवे सही। कई श्यामा विधायरेको भी कहते हैं।

ग्रीष्मऋतुमें दस्त।

त्रिवृताशर्करातुल्याग्रीष्मकालेविरेचनम् ॥ २५ ॥

अर्थ-निसोथका चूर्ण करके उसमें मिश्री मिलाय दस्त होनेके वास्ते ग्रीष्म ऋतु (गरमियो) मे देवे।

अभयादिमोदक।

अभयामरिचंशुंठीविडंगामलकानिच ॥ पिप्पलीपिप्पलीमूलंत्व-
क्पत्रंमुस्तमेवच ॥ २६ ॥ एतानिसमभागानिदंतीचत्रिगुणाभवेत् ॥

त्रिवृदष्टगुणाज्ञेयाषड्गुणाचात्रशर्करा ॥ २७ ॥ मधुनामोदकं कृत्वाकर्षमात्रप्रमाणतः॥ एकैकंभक्षयेत्प्रातःशीतंचानुपिबेज्जलम्॥२८॥तावद्विरिच्यतेजंतुर्यावदुष्णंनसेवते ॥ पानाहारविहारेषुभवेन्नियंत्रणंसदा ॥२९॥ विषमज्वरमंदाग्निपांडुकासभगंदरान् ॥ दुर्नामकुष्ठगुल्मार्शोगलगंडभ्रमोदरान्॥३०॥ विदाहप्लीहमेहांश्चयक्ष्माणंनयनामयम् ॥वातरोगंतथाध्मानंमूत्रकृच्छ्राणिचाश्मरीम्॥३१॥पृष्ठपार्श्वोरुजघनकटचुदररुजंजयेत्॥ सततंशीलनादेपपलितानिविनाशयेत् ॥ ३२ ॥ अभयामोदकाह्येतेरसायनवराःस्मृताः ॥

अर्थ—१ हरड २ काली मिरच ३ सोंठ ४ वायविडंग ५ आँमले ६ पीपल ७ पीपरामूल ८ दालचीनी ९ पत्रज १० नागरमोथा ये दश औषध समान भाग लेवे। तथा दती तीन भाग निशोथ आठभाग तथा खाँड छः भाग इस प्रकार भाग लेकर सबका चूर्ण कर सहतमें मिलाय एक एक कर्षके मोदक (लड्डू) बनावे। इसमेंसे १ मोदक प्रातःकाल दस्त होनेके वास्ते भक्षण करे और ऊपरसे थोडा शीतल जल पीवे। फिर जबतक दस्त होते रहें तबतक गरम पदार्थका सेवन न करे तथा पान और आहार एव विहार कहिये श्रमादिक इनमें सर्वकाल नियमित रहे तो विषमज्वर, मदाग्नि, पांडुरोग, खाँसी, भगंदर, कुष्ठ, गोला, बवासीर, गलगड, भ्रम, उदररोग, विदाह, प्लीह, प्रमेह, राजयक्ष्मा, नेत्ररोग, वादीके रोग, पेटका फूलना, मूत्रकृच्छ्र, पथरी रोग, पीठ, पसली, कमर, जाँघ, पिडरी और उदर इनमें पीडाका होना इत्यादि सर्व रोग दूर होवें। इस मोदकको अभयादि मोदक कहते हैं इस अभयादिमोदकका निरंतर सेवन करनेसे पलित कहिये मनुष्यके सफेद बालोंका होजाना दूर हो अर्थात् सफेद बाल काले हो जावे तथा यह मोदक उत्तम रसायन है।

दस्तोंको सहायकर्ता उपचार।

पीत्वाविरेचनंशीतजलैःसंसिच्यचक्षुषी ॥ ३३ ॥
सुगंधिकिंचिदाघ्रायतांबूलंशीलयेन्नरः ॥

अर्थ—मनुष्यको दस्तकी औषध देकर पश्चात् उस प्राणीके नेत्रमे शीतल जलके छींटे देवे और अतर पुष्प आदि सुगंधि वस्तु सुँघावे। तथा पानका बीडा बनायके खाय। ये योग करनेसे उत्तम प्रकारके दस्त होते हैं।

दस्तहोनेपर किसप्रकार रहना ।

निर्वातस्थोनवेगांश्चधारयेन्नस्वपेत्तथा ॥ ३४ ॥
शीतांबुनस्पृशेत्क्वापिकोष्णनीरंपिबेन्मुहुः ॥

अर्थ—दस्त होनेके उपरात हवामें न बैठे, अधोवायु मल मूत्र इत्यादिकोंके वेग (हाजत) को रोके नहीं, सोवे नहीं, शीतल जलको छूवे नही तथा दस्तोंमें गरम जल वारवार पिया करे तो उत्तम जुल्लाव होवे (परतु अभयादि मोदकपर गरमजल न पीवे) ।

दस्तमें जो पदार्थ निकलते हैं ।

बलादौषधपित्तानिवायुर्वांतेयथाव्रजेत् ॥ ३५ ॥
रेकात्तथामलंपित्तंभेषजंचकफोव्रजेत् ॥

अर्थ—वमन (ओकारी) की औषध पीनेसे कफ और पीईहुई औषध, पित्त और वादी ये पदार्थ जैसे वमनके होनेसे वाहर निकालते हैं उसी प्रकार दस्तकारी औषध पीनेसे मल, पित्त, पीईहुई औषध और कफ ये पदार्थ दस्तके साथ गुदाके मार्ग होकर वाहर निकालते हैं ।

उत्तम दस्त न होनेसे उपद्रव ।

दुर्विरक्तस्यनाभेस्तुस्तब्धत्वंकुक्षिशूलता ॥ ३६ ॥
पुरीषवातसंगश्चकंडूमंडलगौरवम् ॥
विदाहोऽरुचिराध्मानंभ्रमश्छर्दिश्चजायते ॥ ३७ ॥

अर्थ—दस्त उत्तम न होनेसे इस प्राणीकी नाभिमे स्तब्धता, पसलियोंमें शूल, मल और अधोवायुकी अप्रवृत्ति, शरीरमे खुजली तथा चकत्ते ये उत्पन्न हो और अगका भारीपना, दाह, अरुचि, पेट फूलना, भ्रम तथा वमन ये उपद्रव होते है ।

उत्तम जुलाव न होनेपर उपचार ।

तंपुनःपाचनैःस्नेहैःपक्त्वासंस्नेह्यरेचयेत् ॥
तेनास्योपद्रवायांतिदीप्तोऽग्निर्लघुताभवेत् ॥ ३८ ॥

अर्थ—जिस मनुष्यको उत्तम दस्त न हुए हों उसको आरग्वधादिकाथका पाचन देकर आमको पचावे फिर उसको स्नेहपान करावे अर्थात् घी पिलायके उसके कोठेको स्निग्ध (चिकना) करके फिर जुलाव देवे तो उसके सपूर्ण उपद्रव दूर होकर जठराग्नि प्रदीप्त होय और देह हलका होवे ।

अत्यंतदस्तहोनेसे उपद्रव ।

विरेकस्यातियोगेनमूर्च्छाभ्रंशोगुदस्यच ॥

शूलंकफातियोगःस्यान्मांसधावनसंनिभम् ॥ ३९ ॥
मेदोनिभंजलाभासंरक्तंचापिविरिच्यते ॥

अर्थ—मनुष्यको अत्यन दस्त होनेसे मूर्च्छा, गुदामे पीडा, शूल, कफका अत्यत गिरना, मासके धोवनके जलसमान, मेदके समान तथा पानीके समान गुदाके रास्तेसे रुधिर गिरे ये उपद्रव होते है ।

अत्यंतदस्तजन्य उपद्रवोंका यत्न ।

तस्यशीतांबुभिःसिक्तंशरीरंतंदुलांबुभिः ॥ ४० ॥
मधुमिश्रैस्तथाशीतैःकारयेद्वमनंमृदु ॥

अर्थ—अत्यंत दस्त होनेसे मनुष्यके देहपर शीतल जलको छिडके उसी प्रकार शीतल चावलोंके धोवनमे सहत मिलायके पीनेको देवे अथवा हलकी वमन करावे ।

दस्तबंदकरनेकी औषधि ।

सहकारत्वचःकल्कोदध्नासौवीरकेणवा ॥ ४१ ॥
पिष्टोनाभिप्रलेपेनहंत्यतीसारमुल्बणम् ॥

अर्थ—आमकी छालको गौके दहीमे अथवा सौवीरमें पीसके कल्क करे उस कल्कको नाभिके ऊपर लेप करे तो दस्त होतेहुए बंद होंवे ।

दस्तरोकनेके यत्न ।

अजाक्षीरंपिबद्वापिवैष्किरंहारिणंतथा ॥ ४२ ॥
शालिभिःषष्टिकैःस्वल्पंमसूरैर्वापिभोजयेत् ॥
शीतैःसंग्राहिभिर्द्रव्यैःकुर्यात्संग्रहणंभिषक् ॥ ४३ ॥

अर्थ—दस्त बंद होनेके वास्ते बकरीका दूध पीवे । अथवा विष्किर पक्षियोंका मासरस तथा हरिणके मासका रस सेवन करे । अथवा साठी चावलोका भात करके थोडा भोजन करे । अथवा मसूरको सिजायकर खाय । और भी विलायती अनार आदिशब्दसे शीतल और ग्राहक ऐसे पदार्थोंका सेवन करे तो दस्तोका होना बंद होय ।

उत्तमदस्तहोनेके लक्षण ।

लाघवेमनसस्तुष्ट्यामनुलोमंगतेऽनिले ॥

---

१ सौवीर करनेकी विधि मध्यखंडमे सधान और आसव बनानेके प्रकरणमे कह आए हैं । परंतु टीकाकर्त्ताओंने दस्त बंद करनेको सौवीर शब्द करके काँजी लेना ऐसाकहा है ।

सुविरिक्तंनरंज्ञात्वापाचनंपाययेन्निशि ॥ ४४ ॥

अर्थ–जिस प्राणीका देह दस्त होनेसे हलका होगयाहो, चित्तमे प्रसन्नता तथा वायुकी स्वस्थानमें गमन, इतने लक्षण होनेसे उस मनुष्यको उत्तम जुलाव हुआ जानना । इसको रात्रिके समय पाचन औषधि देनी चाहिये ।

विरेचनकरनेके गुण ।

इंद्रियाणांवलंबुद्धेःप्रसादोवह्निदीप्तता ॥
धातुस्थैर्यंवयःस्थैर्यंभवेद्रेचनसेवनात् ॥ ४५ ॥

अर्थ–जुलाव लेनेसे इस प्राणीकी इन्द्रियोंमे वल आवे, बुद्धि प्रसन्न रहे, जठराग्नि प्रदीप्त होवे एवं धातु और अवस्था इनमे स्थिरता आवे ।

दस्तमें वर्जितपदार्थ ।

प्रवातसेवाशीतांबुस्नेहाभ्यंगमजीर्णताम् ॥
व्यायामंमैथुनंचैवनसेवेतविरेचितः ॥ ४६ ॥

अर्थ–इस प्राणीको दस्त होनेके बाद अत्यंत पवन नहीं खानी, शीतल जल, तेलकी मालिश, अजीर्ण, परिश्रम और मैथुन इनका सेवन न करे ।

शालिषष्टिकमुद्गाद्यैर्यवागूंभोजयेत्कृताम् ॥
जांगलैर्विष्किराणांवारसैःशाल्योदनंहितम् ॥ ४७ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरेउत्तरखंडे विरेचनविधिर्नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अर्थ–दस्त होनेके पश्चात् पथ्यमें साठी चावल और मूँग आदि धान्योकी यवागू करके सेवन करे तथा जंगली हरिणादि जीवोंके मांसका रस अथवा विष्किरपक्षी और मुरगा इत्यादिकोंके मांसका रस इस रसके साथ चावलोका भात खाय ।

इति श्रीमाथुरदत्तरामविरचितभाषामाथुरीटीकायामुत्तरखंडस्य चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

---

१ चंडकी जड सोंठ और धनिया इन तीन औषधोंका काढा करके पाचनार्थ देवे ।

२ चावल मूँग इत्यादि धान्यमेंसे जो अपनी प्रकृतिको हित हो उसको छः गुने जलमे औटायके पतली लेहीसी करे उसको यवागू कहते हैं ।

३ हरिणादि जंगली जीवोंके मांसको पानीमे सिजायके पेयाके समान पतली राखे उसको मांसरस कहते हैं ।

अथ पञ्चमोऽध्यायः ५.

वस्तिकी विधि।

बस्तिर्द्विधानुवासाख्योनिरूहश्चततःपरम् ॥ बस्तिभिर्दीयते यस्मात्तस्माद्वास्तिरितिस्मृतः ॥ १ ॥ यःस्नेहैर्दीयतेसस्याद-नुवासननामकः ॥ कषायक्षीरतैलैर्योनिरूहःसनिगद्यते ॥२॥

अर्थ—अंडकोशादिकरके गुदामे पिचकारी मारते हैं उस प्रयोगको वस्ति कहते हैं। वह बस्ति अनुवासन और निरूहण इन भेदों करके दो प्रकारकी है। जिनमे घी और तेल इत्यादिक स्नेह करके जो पिचकारी मारते हैं उसको अनुवासन वस्ति कहते हैं। और काढा दूध तेल इनको एकत्र करके जो पिचकारी मारते हैं उसको निरूहवस्ति कहते हैं।

अनुवासन वस्ति।

तत्रानुवासनाख्योहिवस्तिर्यःसोऽत्रकथ्यते ॥ पूर्वमेवततोबस्ति-र्निरूहाख्योभविष्यति ॥ ३ ॥ निरूहादुत्तरंचैवबस्तिःस्यादु-त्तराभिधः ॥ अनुवासनभेदश्चमात्रावस्तिरुदीरितः ॥ ४ ॥ प-लद्वयंतस्यमात्रातस्मादर्धापिवाभवेत् ॥

अर्थ—अनुवासन और निरूह इन दोनों वस्तियोंमे प्रथम अनुवासन नामक वस्तिको कहकर फिर निरूहवस्ति तथा उत्तरवस्तिको कहेंगे। तथा उस अनुवासनवस्तिका भेद मात्रावस्ति है उस मात्रावस्तिके स्नेहादिककी मात्रा दो अथवा एक पलकी जाननी इस प्रकार बस्तिके चार भेद हैं।

अनुवासनवस्तिके योग्य रोगी।

अनुवास्यस्तुरूक्षःस्यात्तीक्ष्णाग्निःकेवलानिली ॥ ५ ॥

अर्थ—रूक्ष कहिये स्नेहपानरहित और प्रदीप्त है अग्नि जिसकी तथा केवल वातरोगी इस प्रकारके मनुष्य अनुवासनवस्तिके योग्य जानने।

अनुवासनके अयोग्य।

नानावास्यस्तुकुष्ठीस्यान्मेहीस्थूलस्तथोदरी॥अस्थाप्यानानु-वास्याःस्युरजीर्णोन्मादतृड्युताः ॥ ६ ॥ शोकमूर्च्छारुचिभ यश्वासकासक्षयातुराः ॥

अर्थ—कुष्ठी, प्रमेही, स्थूल, उदरी अर्थात् उदररोगी, ये अनुवासनके योग्य नहीं हैं । अजीर्ण उन्माद प्यास शोक मूर्च्छा अरुचि भय श्वास खाँसी और क्षय इन रोगों करके पीडित जो मनुष्य वह अस्थाप्य कहिये निरूहवस्तिके योग्य हैं । उनकी अनुवासनवस्तिमें योजना न करे ।

वस्तिके सुखवनानेको सुवर्णादिकी नली ।

नेत्रंकार्यंसुवर्णादिधातुभिर्वृक्षवेणुभिः ॥ ७ ॥
नलैर्दंतैर्विषाणाग्रैर्मणिभिर्वाविधीयते ॥

अर्थ—नेत्र कहिये गुदामें पिचकारी मारनेकी नली वह सुवर्णादि धातु वा नरसल हाथीदांत सींगके अग्रभाग बिल्लोर अथवा सूर्यकांतादि मणिकी करानी चाहिये ।

रोगीकी अवस्थानुसार नलीका प्रमाण ।

एकवर्षात्तुषड्वर्षंयावन्मानंषडंगुलम् ॥ ८ ॥
ततोद्वादशकंयावन्मानंस्यादष्टसंमितम् ॥
ततःपरंद्वादशभिरंगुलैर्नेत्रदीर्घता ॥ ९ ॥

अर्थ—वस्तिकी नली एक वर्षसे लेकर छः वर्षपर्यंत छः अंगुल लंबी तथा छः वर्षसे लेकर बारह वर्षपर्यन्त आठ अंगुलकी नली बनावे एवं बारह वर्षसे उपरांत नली बारह अंगुलकी लम्बी बनानी चाहिये ।

नलीके छिद्रका प्रमाण ।

मुद्गछिद्रंकलायाभंछिद्रंकोलास्थिसन्निभम् ॥ यथासंख्यंभवेन्नेत्रंश्लक्ष्णंगोपुच्छसन्निभम् ॥ १० ॥ आतुरांगुष्ठमानेनमूलेस्थूलंविधीयते ॥ कनिष्ठिकापरीणाहमग्रेचगुटिकामुखम् ॥ ११ ॥ तन्मूलेकर्णिकेद्वेचकार्यैभागाच्चतुर्थकात् ॥ योजयेत्तत्रबस्तिंचबंधद्वयविधानतः ॥ १२ ॥

अर्थ—छः अंगुलवाली नलीका छिद्र (छेद) मूँगके दानेके प्रमाण करे और जो आठ अंगुलकी नली है उसमें मटरके समान छिद्र करे । बारह अगुलवाली नलीमें बेरकी गुठलीके समान छिद्र करना चाहिये । इस क्रम करके नलीके छिद्र करने चाहिये वह नली चिकनी होकर गौकी पुच्छके समान अर्थात् ऊपर नीचेसे छोटी और बीचमें मोटी बनावे । तथा उस नलीका मूल रोगीके अगूठेके प्रमाण मोटा करना चाहिये और अग्रभागमें कनिष्ठिका (छोटी उँगली) के प्रमाण मोटी होकर उसका मुख गोल करना चाहिये । उस नलीके तीन भागरया।। के चतुर्थ भागकी जडमें दो कर्णिका कम

लपत्रके समान करके हरिणादिकोंके अंडकी वस्ति उस जगह लगायके उन कर्णिकाओंसे उस वस्तिको बाँधके सधि मिलाय देवे।

वस्ति किसके अंडकी होनीचाहिये।

मृगाजसूकरगवांमहिषस्यापिवाभवेत् ॥
मूत्रकोशस्यबास्तिस्तुतदलाभेनचर्मजः ॥ १३ ॥
कषायरक्तःसुमृदुर्बस्तिःस्निग्धोदृढोहितः ॥

अर्थ—हरिण बकरा सूकर बैल अथवा भैसा इनके अडकी वस्तिकी योजना करे। यदि इनके अडकोश न मिले तो हरिणादिकोंके चमडेकी बनावे। और वह बस्ति बेर तथा आहुली (रग) इत्यादिकके छालके काढेमें रँगीहुई होकर नरम चिकनी तथा पुख्ता होनी चाहिये।

व्रणवस्तिका प्रमाण।

व्रणवस्तेस्तुनेत्रंस्याच्छ्लक्ष्णमष्टांगुलोन्मितम् ॥ १४ ॥
मुद्गच्छिद्रंगृध्रपक्षनलिकापरिणाहिच ॥

अर्थ—व्रणविषयमें जो नली लगाई जाती है उसकी नली आठ अगुल प्रमाण लंबी चिकनी तथा उसका छिद्र मूँगके समान तथा गीधके पाँखकी जितनी नली होती है इतनी मोटी हो। इसप्रकार व्रणवस्तिकी नली जानना।

वस्तिके गुण।

शरीरोपचयंवर्णबलमारोग्यमायुषः ॥ १५ ॥
कुरुतेपरिवृद्धिंचबस्तिःसम्यगुपासितः ॥

अर्थ—वस्तिको उत्तम प्रकारसे सेवन करनेसे शरीरकी वृद्धि कांति बल आरोग्य तथा आयुष्यकी वृद्धि ये गुण उत्पन्न होते हैं ॥

वस्तिके सेवनका काल।

दिवसांतेवसंतेचस्नेहबास्तिःप्रदीयते ॥ १६ ॥
ग्रीष्मवर्षाशरत्कालेरात्रौस्यादनुवासनम् ॥
नचातिस्निग्धमशनंभोजयित्वानुवासयेत् ॥ १७ ॥
मदंमूर्च्छांचजनयेद्विधास्नेहःप्रयोजितः ॥
रूक्षंभुक्तवतोऽत्यन्तंबलंवर्णचहीयते ॥ १८ ॥

अर्थ–वसंत ऋतुमें स्नेहवस्ति सायंकालमें देवे, ग्रीष्म ऋतु वर्षा ऋतु और शरद ऋतु इनमे रात्रिके समय देवे। रोगीको अत्यत स्निग्ध भोजन करायके अनुवासन वस्तिका प्रयोग न करे। यदि करे तो मद मूर्च्छा ये उत्पन्न होती हैं। एवं अत्यत रूक्ष भोजन करायके यदि वस्तिकर्म करे तो वल तथा काति इनकी हानि होय इसप्रकार दोनों प्रकारकी वस्ति देनसे ये उपद्रव होते हैं।

वस्तिमें हीनमात्रा अतिमात्राका फल।

हीनमात्रावुभौबस्तीनातिकार्यकरौस्मृतौ ॥
अतिमात्रौतथानाहक्लमातीसारकारकौ ॥ १९ ॥

अर्थ–अनुवासनवस्ति तथा निरूहणवस्ति इनमे अल्पमात्रा होनेसे उसके द्वारा अत्यंत कार्य नहीं होता अर्थात् रोग भले प्रकार दूर नहीं होता और यदि अनुवासन और निरूहकी अतिमात्रा होजावे तो आनाह ग्लानि और अतिसार ये रोग उत्पन्न होते हैं।

उत्तमादिमात्रा।

उत्तमस्यपलैःषड्भिर्मध्यमस्यपलैस्त्रिभिः ॥
पलाद्यर्धेनहीनस्ययुक्तामात्रानुवासने ॥ २० ॥

अर्थ–उत्तम वलवाले प्राणियोंको अनुवासनवस्तिमे छ. पलकी मात्रा, मध्यमवली मनुष्य उनकी तीन पल और हीनवल जो मनुष्य है उनको मात्रा १॥ डेढ पलकी जाननी।

स्नेहादिकमें सैंधवादिकका मान।

शताह्वासैंधवाभ्यांचदेयंस्नेहेचचूर्णकम् ॥
तन्मात्रोत्तममध्यांत्याःषट्चतुर्द्वयमाषकैः ॥ २१ ॥

अर्थ–शतावर और सैंधानमक इनका चूर्ण अनुवासनवस्तिमे देनेकी मात्रा छः मासेकी उत्तम, चार मासेकी मध्यम और दो मासेकी कनिष्ठ मात्रा जाननी। इस प्रकार मात्राका क्रम जानना।

दस्तदेनेके पश्चात् अनुवासनवस्तिदेनेका प्रकार।

विरेचनात्सप्तरात्रेगतेजातबलायच ॥
भुक्तान्नायानुवास्यायवस्तिर्देयोऽनुवासनः ॥ २२ ॥

अर्थ–मनुष्यको दस्त करायके जव सात दिन व्यतीत होजावें और देहमें पुरुषार्थ आय जावे तव उसको भोजन करायके अनुवासन नामक वस्तिके योग्य प्राणीको अनुवासन वस्ति देवे।

वस्तिदेनेकीविधि ।

अथानुवासांस्त्वभ्यक्तमुष्णांवुस्वेदितंशनैः ॥ भोजयित्वायथा शास्त्रंकृतचंक्रमणंततः ॥ २३ ॥ उत्सृष्टानिलविण्मूत्रंयोजये- त्स्नेहवस्तिना ॥सुप्तस्यवामपार्श्वेनवामजंघाप्रसारिणः॥२४॥ कुंचितापरजंघस्यनेत्रंस्निग्धगुदेन्यसेत्॥वद्धावस्तिमुखंसूत्रैर्वा- महस्तेनधारयेत्॥२५॥पीडयेद्दक्षिणेनैवमध्यवेगेनधीरधीः ॥ जंभाकासक्षयादींश्चवस्तिकालेनकारयेत् ॥ २६ ॥

अर्थ–अनुवासनवस्तिके योग्य मनुष्यके देहमें तेल लगाय गरमजलसे देहसे हलके पसीने निकाल उसको यथाशास्त्र भोजन कराय फिर उसको इधर उधर फिरायके तथा मल मूत्रकी इच्छा होय तो उससे निवृत्त करके, यदि अधोवायु त्यागनेकी इच्छा होय तो उसको त्याग करायके वस्तिकर्म करे । उसको बाँई करवट सुलायके बाँयाँ पैर पसरवा देवे । दहने पैरको सकोडके फिर गुदाके स्निग्ध कर वस्तिकी नली वस्तिके मुखपर डोरेसे बाँध उस नलीको गुदाके ऊपर धरे तथा कुशल वैद्य उस नलीको बाँएँ हाथमे रखके दहने हाथसे मध्यमवेग करके उसमें पिचकारी देवे अर्थात पिचकारी मारे तथा वस्तिके समय जमाई खाँसना तथा छींकना आदि ये रोगीको नहीं करने देवे ।

पिचकारीमारनेमें काल ।

त्रिंशन्मात्रामितःकालःप्रोक्तोवस्तेस्तुपीडने ॥
ततःप्राणिहितःस्नेहउत्तानोवाक्छतंभवेत् ॥ २७ ॥

अर्थ–पिचकारी मारनेमें तीस मात्रा पर्यंत काल जानना । फिर स्नेह भीतर पहुँचनेपर १०० अंक जितनी देरमें बोले जावें इतनी देरतक उस रोगीको चित्त लेटारहने देवे । उस मात्राका प्रमाण आगेके श्लोकमें लिखा है ।

कितनीकालकी मात्रा होती है ।

जानुमंडलमावेष्टचकुर्याच्छोटिकयाद्रुतम् ॥
एकमात्राभवेदेपासर्वत्रैपविनिश्चयः ॥ २८ ॥

अर्थ–घोटूपर हाथकी चुटकी बजावे इतने कालकी एक मात्रा जाननी । ऐसा निश्चय सर्वत्र जानना ॥

१ चावलकी पतली पेया । २ घी लगायके ।

पिचकारीमारनेके अंतरक्रिया ।

प्रसारितैःसर्वगात्रैर्यथावीर्यंप्रसर्पति॥ताडयेत्तलयोरेनंत्रीन्वारां
श्चशनैःशनैः ॥ २९ ॥ स्फिजश्चैवंततःश्रोणेशय्यांचैवोत्क्षिपे-
त्ततः ॥ जातेविधानेतुततःकुर्यान्निद्रांयथासुखम् ॥ ३० ॥

अर्थ—पिचकारी मारनेपर रोगीके हाथ पैर सपूर्ण अग ढीले छोडके लवे करे ऐसा करनेसे रसादिधातु अपने २ स्थानपर जाती है । तथा रोगीके हाथ पैरोंके तलभे तीनवार हलकी हलकी ताली मारे । उसी प्रकार कूलेमे तथा कटिके पश्चात् भागमे तीनवार ताली मारके उस रोगीको पलगपर वैठाय देवे । इस प्रकारकी विधि होनेके पश्चात् रोगीको स्वस्थतापूर्वक यथासुख शयन करावे ।

उत्तमबस्तिकर्मके गुण ।

सानिलःसपुरीषश्चस्नेहःप्रत्येतियस्यतु ॥
उपद्रवंविनाशीघ्रंससम्यगनुवासितः ॥ ३१ ॥

अर्थ—गुदाके भीतर गयाहुआ तैल वायु और मलके साथ मिलाकर उपद्रव रहित तत्काल बाहर निकले तो उस मनुष्यको वस्तिकर्म उत्तम हुआ जानना ।

स्नेहका विकार दूर होनेमें यत्न ।

जीर्णान्नमथसायाह्नेस्नेहेप्रत्यागतेपुनः॥लघ्वन्नंभोजयेत्कामंदी-
प्ताग्निस्तुनरोयदि॥ ३२ ॥ अनुवासितायदेयंस्यादितरेऽह्निसु-
खोदकम् ॥ धान्यशुंठीकषायोवास्नेहव्यापत्तिनाशनम्॥३३॥

अर्थ—गुदाके द्वारा स्नेह निःशेष बाहर आजानेसे उस मनुष्यकी अग्नि यदि प्रदीप्त होवे तो उसको सायंकालमें पुराने अन्न[१] नित्यके आहारकी अपेक्षा न्यून भोजनको देवे और अनुवासित मनुष्यको दूसरे दिन सुखोदक देय अर्थात् गरम जल पीनेको देवे अथवा धनिया और सोंठ इनका काढा करके देय तो स्नेहका विकार दूर होवे ।

वातादिकमें पिचकारी मारनेका प्रमाण ।

अनेनविधिनाषड्वासप्तचाष्टौनवांपिवा ॥
विधेयावस्तयस्तेषामंतेचैवनिरूहणम् ॥ ३४ ॥

अर्थ—पूर्वोक्त विधि करके वातादिक दोषोंमें छः वार सातवार आठवार अथवा नौवार पिचकारी मारे । फिर उस पिचकारी मारनेके पश्चात् निरूहणवस्तिकी योजना करे ।

---

१ एक वर्षके पुराने चावल अथवा साँठी चावलोंका भात पथ्यमे देवे ।

वस्तिकेक्रमसे गुण।

दत्तस्तुप्रथमोवस्तिःस्नेहयेद्वस्तिवंक्षणौ॥सम्यग्दत्तोद्वितीयस्तु मूर्धस्थमनिलंजयेत्॥३५॥बलंवर्णंचजनयेत्तृतीयस्तुप्रयोजितः॥ चतुर्थपंचमौदत्तौस्नेहयेतांरसासृजी ॥ ३६ ॥ षष्ठोमांसं स्नेहयतिसप्तमोमेदएवच ॥ अष्टमोनवमश्चापिमज्ज्ञानंचयथाक्रमम् ॥ ३७ ॥ एवंशुक्रगतान्दोषान्द्विगुणःसाधुसाधयेत् ॥ अष्टादशाष्टादशकान्बस्तीनांयोनिषेवते ॥ ३८ ॥ सकुंजरबलोऽप्यश्वंजयेत्तुल्योऽमरप्रभः ॥

अर्थ–प्रथम पिचकारी मारनेसे वह वस्ति और वक्षण अर्थात् अडोंकी संधि द्वारा शरीरमे स्नेह न करे अर्थात् धातु वढावे। दूसरी पिचकारी देनेसे मस्तककी वायु दूर हो। तीसरी पिचकारी मारनेसे शरीरमें बल और काति ये आवें। चौथी और पाचवीं पिचकारी मारनेसे रस और रुधिर इनकी वृद्धि होवे। छठीं और सातवीं पिचकारी मारनेसे मास और मेदामें चिकनाई आवे और आठवीं और नौंमी पिचकारी मारनेसे मज्जामें तथा श्लोकमें जो चकार है उस करके शुक्र धातुमें स्निग्धता करे है इसप्रकार अठारह पिचकारी देनेसे शुक्रधातुगत जो दोष उनका नाश होय। एव जो प्राणी छत्तीस पिचकारी सेवन करता है उसमे हाथीके समान बल आनकर वेगमें घोडेको जीतता है तथा देवताके समान कातिवाला होवे।

अनुवासनवस्ति तथा निरूहणवास्ति ये किसको देवे।

रूक्षायबहुवातायस्नेहवस्तिंदिनेदिने ॥ ३९ ॥ दद्याद्वैद्यस्तथान्येषामन्याबाधामपाहरेत्॥ स्नेहोऽल्पमात्रोरूक्षाणांदीर्घकालमनत्ययः ॥ ४० ॥ तथानिरूहःस्निग्धानामल्पमात्रःप्रशस्यते ॥

अर्थ–रूक्ष होकर जो अत्यन्त वादीकरके पीडित हो उसको वैद्य प्रतिदिन (नित्य) स्नेहवस्ति देवे दूसरेको अर्थात् स्थूलादिक मनुष्योको निरूहणवस्ति नित्यप्रति देवे तो वादीका रोग दूर हो। रूक्ष पुरुषके स्नेहकी हलकी पिचकारी मारनी परंतु रोगी बहुत दिन बचाहुआ होवे तो स्निग्ध मनुष्यके निरूहण वस्ति थोडी देवे।

केवल तैल गुदाके बाहर आवे उसका यत्न।

अथवायस्यतत्कालंस्नेहोनिर्यातिकेवलः ॥ ४१ ॥ तस्यान्योऽन्यतरोदेयोनहिस्निग्धस्यतिष्ठति ॥

अर्थ—स्निग्ध मनुष्यके गुदाके द्वारा पिचकारी मारनेके उपरात तत्कालही स्नेह बाहर निकले है ठैरे नहीं है । इस कारण स्नेहबस्ति देकर तत्काल निरूहबस्ति देवे इस प्रकार पलटकर दोनों प्रकारकी बस्ति देवे ।

तैल बाहर न निकले उसके उपद्रव और यत्न ।

अशुद्धस्यमलोन्मिश्रःस्नेहोनैतियदापुनः ॥ ४२ ॥ तदाशैथिल्यमाध्मानंशूलंश्वासश्चजायते ॥पक्काशयेगुरुत्वंचतत्रदद्यान्निरूहणम् ॥ ४३ ॥ तीक्ष्णंतीक्ष्णौषधियुताफलवर्तिर्हितातथा ॥ यथानुलोमनंवायुर्मलंस्नेहश्चजायते ॥ ४४ ॥ तथाविरेचनंदद्यात्तीक्ष्णंनस्यंचशस्यते ॥

अर्थ—वमन विरेचन इत्यादिक करके जिस मनुष्यकी शुद्धि नहीं करी उसकी गुदाके द्वारा यदि मलमिश्रित स्नेह बाहर नहीं आया होवे तो शरीरका शिथिलपना, पेटका फूलना, शूल, श्वास और पक्काशयमे भारीपना ये उपद्रव होते हैं । इनके दूर करनेको तीक्ष्ण निरूहणबस्ति देवे । इसप्रकार तीक्ष्ण औषधो करके मिली फलवर्त्ती जिससे वायु अधोगामी होकर मलमिश्रित स्नेह गुदाके द्वारा बाहर आवे इसप्रकार देवे । तथा तीक्ष्ण जुलाब तथा तीक्ष्ण नस्य देनी चाहिये ।

स्नेहबस्ति जिसको उपद्रव न करे उसका विधान ।

**यस्यनोपद्रवंकुर्यात्स्नेहबस्तिरनिःसृतः ॥ ४५ ॥
सर्वोऽल्पोवावृतोरौक्ष्यादुपेक्ष्यःसविजानता ॥**

अर्थ—स्नेहबस्ति कहिये स्नेहकी पिचकारी गुदामें मारनेके पश्चात् गुदाका संपूर्ण भाग आवृत कहिये व्याप्त होकर रहनेसे अथवा मनुष्यके रूक्षताके कारण गुदाके एक देशमे व्याप्त होकर रहनेसे शूलादिक उपद्रव नहीं करे उसको बहुतकाल पर्यंत रहने देवे ।

अहोरात्रिमेंभी जिसके तैल बाहर न निकले उसका यत्न ।

**अनायातंत्वहोरात्रेस्नेहंसंशोधनैर्हरेत् ॥ ४६ ॥
स्नेहबस्तावनायातेनान्यःस्नेहोविधीयते ॥**

अर्थ—जो स्नेह दिनरात्रिमेभी बाहर न आवे उसको जुलाब देकर बाहर निकाले । स्नेहकी पिचकारी मारनेसे जो स्नेह बाहर न आवे तो उसके दो बार स्नेहकी पिचकारी नहीं देवे ।

अनुवासन तैल ।

गुडूच्येरंडपूतीकभार्ङ्गीवृषकरोहिषम् ॥ ४७ ॥ शतावरीसह-

चरंकाकनासापलोन्मितम्॥यवमाषातसीकोलकुलित्थान्प्रसृतोन्मितान् ॥४८॥ चतुर्द्रोणांभसापक्त्वाद्रोणशेषेणतेनच ॥ पचेत्तैलाढकेपेष्यैर्जीवनीयैःपलोन्मितैः ॥४९॥ अनुवासनमेतद्धिसर्ववातविकारनुत् ॥

अर्थ–१ गिलोय २ अडकी जड ३ कजेकी छाल ४ भारगी ५ अडूसा ६ रोहिषतृण ७ शतावर ८ पियावासा और ९ काकनासा (कौआठोडी) ये नौ औषध एक २ पैल प्रमाण लेवे १ जो २ उडद ३ अलसी ४ बेरकी गुँठली तथा ५ कुलथी ये पाच औषध दो दो पल लेय । इन सब औषधोंको जवकूटकरके उसमें जल ४ द्रोण डालके औटावे । जब एक द्रोण मात्र जल शेष रहे तब उतारके छानलेय । फिर इसमें तिल्लीका तेल एक आढक डालके तथा जीवनीयगणकी औषध एक २ पलप्रमाण लेके बारीक चूर्ण करके उस तेलमे डालके फिर औटावे । जब काढा जलकर तेल मात्र शेष रहे तब उतारके तेलको किसीपात्रमें भरके धर रक्खे। इसको अनुवासन तेल कहते हैं यह तेल संपूर्ण वादीके रोगोंको दूर करता है ।

अनुवासनवस्तिके विपरीतहोनेसे जो रोगहोवें उनकी चिकित्सा ।

षट्सप्ततिव्यापदस्तुजायंतेबस्तिकर्मणः ॥ ५० ॥
दूषितात्समुदायेनताश्चिकित्स्यास्तुसुश्रुतात् ॥

अर्थ–वस्तीकर्ममें दोषरूप कुछभी विपरीतता होनेसे छियत्तर प्रकारके रोग उत्पन्न होतेहै उनकी चिकित्सा सुश्रुत ग्रंथमें कही है उस क्रमसे करे ।

वस्तिकर्ममें पथ्य ।

पानाहारविहारश्चपरिहारश्चकृत्स्नशः ॥
स्नेहपानसमाःकार्यानात्रकार्याविचारणा ॥ ५१ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरेउत्तरखण्डे स्नेहविधिःपंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

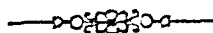
अर्थ–अन्न पान और विहारादिक इनके आचरण जैसे स्नेहपानप्रकरणमें कहेहैं उसी प्रकार संपूर्ण कार्य इस स्नेहवस्तीमें करे इसमें विचार न करे ।

इति श्रीशार्ङ्गधरे उत्तरखण्डे माथुरीभाषाटीकायां स्नेहविधिर्नामपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

---

१ पल और द्रोण आदिका मान प्रथमखण्डके परिभाषाप्रकरणमें है ।

अथ षष्ठोऽध्यायः ६.



निरूहवस्तीका विधान ।

निरूहबस्तिर्बहुधाभिद्यतेकारणांतरैः ॥
तैरेवतस्यनामानिकृतानिमुनिपुंगवैः ॥ १ ॥

अर्थ—निरूहवस्ती कारणभेद करके अनेक प्रकारकी होतीहै और जैसे २ कारणोंके नाम हैं उसी २ प्रकारके उसके नाम होते हैं । उदाहरण जैसे—उत्क्लेशनवस्ती दोषहरवस्ती दोषशमनवस्ती इत्यादिक ।

निरूवस्तीका दूसरा नाम ।

निरूहस्यापरंनामप्रोक्तमास्थापनंबुधैः ॥
स्वस्थानस्थापनाद्दोषधातूनांस्थापनंमतम् ॥ २ ॥

अर्थ—निरूहवस्तीका दूसरा नाम आस्थापन जानना । दोष तथा रसादिक धातु इनको अपने स्थानपर वसाती है इसीसे इसको आस्थापन कहते हैं । वातादिक दोष अथवा रोग इनको दूर करती है इसीसे इसको निरूह कहते हैं ।

निरूहवस्तीमें काढेआदिका प्रमाण ।

निरूहस्यप्रमाणंतुप्रस्थःपादोत्तरंमतम् ॥
मध्यमंप्रस्थमुद्दिष्टंहीनस्यकुडवास्त्रयः ॥ ३ ॥

अर्थ—निरूहवस्ती देनेमें कषायादिकोंका प्रमाण सवा प्रस्थ उत्तम, एक प्रस्थ मध्यम और तीन कुडव कनिष्ठ इस प्रकार जानना ।

निरूहवस्तीके अयोग्य मनुष्य ।

अतिस्निग्धोत्क्लिष्टदोषौक्षतोरस्कःकृशस्तथा ॥ अध्मानच्छर्दिहिक्कार्शःकासश्वासप्रपीडितः ॥४॥ गुदशोफातिसारार्तोविषूचीकुष्टसंयुतः॥गर्भिणीमधुमेहीचनास्थाप्यश्चजलोदरी॥५॥

अर्थ—अत्यत स्निग्ध, ऊर्द्ध्वगामी हैं दोष जिसके वह, उरःक्षत करके पीडित, कृश, पेटका फूलना, ओकारी, हिचकी, बवासीर, खाँसी, श्वास इन करके पीडित गुदामें पीडा, सूजन, अतिसार, विषूचिका और कुष्ट इन करके पीडित, गार्भिणी स्त्री, मधुप्रमेहवाला, जलंधरवाला इतने रोगी आस्थापन (निरूहवस्ती) के योग्य नहीं हैं ।

निरूहवस्तीमें योग्यप्राणी ।

वातव्याधावुदावर्तेवातासृग्विषमज्वरे ॥ मूर्च्छातृष्णोदराना-
हमूत्रकृच्छ्राश्मरीषुच ॥ ६ ॥ वृद्धासृग्दरमंदाग्निप्रमेहेषुनिरूह-
णम् ॥ शूलेऽम्लपित्तहृद्रोगेयोजयेद्विधिवद्बुधः ॥ ७ ॥

अर्थ—वातरोग, उदावर्त्तरोग, वातरक्त, विषमज्वर, मूर्च्छा, प्यास, उदर, आनाहरोग, मूत्रकृच्छ्र, पथरी रोग, बहुत दिनका रक्तप्रदर, मंदाग्नि, प्रमेह, शूलरोग, अम्लपित्त तथा हृद्रोग ये रोग निरूहवस्तीके योग्य जानने चाहिये ।

निरूहवस्तीदेनेका प्रकार ।

उत्सृष्टानिलविण्मूत्रंस्निग्धस्विन्नमभोजितम्॥मध्याह्नेगृहमध्ये
चयथायोग्यंनिरूहयेत् ॥ ८ ॥ स्नेहवस्तिविधानेनबुधःकुर्या-
न्निरूहणम् ॥ जातेनिरूहेचततोभवदुत्कटकासनः ॥ ९ ॥ ति-
ष्ठेन्मुहूर्तमात्रंचनिरूहगमनेच्छया ॥ अनायातंमुहूर्तेतुनिरूहं
शोधनैर्हरेत् ॥ १० ॥

अर्थ—जो मलमूत्रादिक त्याग चुकाहो, स्निग्ध, जिसका पसीना निकाल चुका हो, जिसने भोजन न कियाहो ऐसे मनुष्यको दुपहरके समय घरके बीच योग्यता विचार निरूहणवस्ती देवे । और निरूहणवस्तीके कर्म होनेके अनंतर वह निरूह बाहर आनेके लिये एक मुहूर्त (दोघडी) पर्यंत उकरू बैठा रक्खे । यदि एक मुहूर्त्तमेंभी निरूह बाहर नहीं निकले तो उसको शोधन करके बाहर निकालनेका यत्नकरे ।

निरूह बाहर न आनेपर उसके शोधनकी औषधि ।

निरूहैरेवमतिमान्क्षारमूत्राम्लसैंधवैः ॥

अर्थ—निरूहवस्ती बाहर न निकलनेपर जवाखार गोमूत्र नींबूका रस अथवा जंभीरीका रस और सैंधानमक इन चार औषधियोंको एकत्र करके गुदामें फिर निरूहवस्ती देवे तो निरूह बाहर निकले ।

उत्तमनिरूहवस्तहोनेके लक्षण ।

यस्यक्रमेणगच्छंतिविट्पित्तकफवायवः ॥ ११ ॥
लाघवंचोपजायेतसुनिरूढंतमादिशेत् ॥

अर्थ—जिस मनुष्यको निरूहवस्ती दी है उसका मल पित्त कफ और वायु ये क्रमकरके

---

१ जलोदरके सिवाय दूसरे उदररोगमे निरूहवस्ती देवे ।

गुदाके रास्तेसे बाहर आकर शरीरमें हलकापन आनेसे निरूहवस्तीका कर्म उत्तम हुआ जानना ।

जिसको निरूहवस्ती उत्तम न हुईहो उसके लक्षण ।

यस्यस्याद्वस्तिरल्पाल्पवेगोहीनमलानिलः ॥ १२ ॥
मूत्रार्तिजाड्यारुचिमान्दुर्निरूहंतमादिशेत् ॥

अर्थ–जिसको निरूहवस्ती दी उस वस्तीके बाहर आनेका वेग अल्प होवे इसीसे मळ और वायु ये जितने बाहर आने चाहिये उतने नहीं आवे और मूत्रके स्थानपर पीडा, शरीरका भारी होना तथा अरुचि इतने लक्षण करके युक्त मनुष्यको निरूहवस्ती उत्तम नहीं हुई ऐसा जानना ।

उत्तम निरूहवस्ती तथा स्नेहवस्तीके लक्षण ।

विविक्ततामनस्तुष्टिःस्निग्धताव्याधिनिग्रहः ॥ १३ ॥
आस्थापनस्नेहबस्त्योःसम्यग्दानेतुलक्षणम् ॥
अनेनविधिना युंज्यान्निरूहंबस्तिदानवित् ॥ १४ ॥

अर्थ–रोगीके देहमे हलकापन, मनकी प्रसन्नता, चिकनापन तथा रोगका नाश ये उत्तम आस्थापन तथा स्नेहनवस्तीके लक्षण जानने । इसी विधिसे वस्तीकर्मको जाननेवाले वैद्य निरूहवस्ती देवे ।

निरूहणवस्ती कितनीवार देवे उसका प्रकार ।

द्वितीयंवातृतीयंवाचतुर्थंवायथोचितम् ॥ सस्नेहएकःपवनेपित्ते द्वौपयसासह॥१५॥कषायकटुरूक्षाद्याः कफकोष्णास्त्रयोमताः ॥ पित्तश्लेष्मानिलाविष्टंक्षीरयूषरसैःक्रमात् ॥ १६ ॥ निरूहंयोजयित्वाचततस्तदनुवासयेत् ॥

अर्थ–दो वार तीनवार अथवा चारवार जैसा दोष होय उसके अनुसार वैद्य निरूहवस्ति देवे । वादीके रोगमे स्नेहयुक्त वस्ति एकवार देवे, पित्तरोग होय तो दुग्धयुक्त निरूहवस्ति दो वार देवे । तथा कफरोग होवे तो कषायै[1] कटु[2] और रूक्ष[3] इत्यादिक पदार्थ एकत्रकर कुछ गरम करके तीनवार निरूहवस्ती देवे अर्थात् इन औषधोंकी तीनवार पिचकारी मारे । अथवा पित्त और कफ वादी इन करके पीडित मनुष्य होय

१ हरड आमले इत्यादिक कषाय पदार्थ जानने ।

२ सोंठ मिरच आदि कटु पदार्थ जानने ।

३ कुलथी जौ आदि रूक्ष पदार्थ इनका काढा करके वस्ती देवे ।

तो दूध यूष और मासरसे इनकी क्रम करके निरूहवस्ति देवे फिर अनुवासन वस्ति देय अर्थात स्नेहकी पिचकारी मारे।

सुकुमारआदिमनुष्योंके निरूहवस्ति देना।

सुकुमारस्यवृद्धस्यबालस्यचमृदुर्हितः ॥ १७ ॥
वस्तिस्तीक्ष्णःप्रयुक्तस्तुतेषांहन्याद्बलायुषी ॥

अर्थ—सुकुमार (नाजुक) मनुष्य वृद्ध और बालक इनके हलकी पिचकारी मारे। तथा इनके तीक्ष्ण वस्ति देनेसे इनके बलका और आयुका नाश होता है। इसीसे सुकुमार आदिको तीक्ष्ण वस्ती न देवे।

आदि मध्य और अन्तमें वस्तिका देना।

दद्यादुत्क्लेशनंपूर्वंमध्येदोषहरंततः ॥ १८ ॥
पश्चात्संशमनीयंचदद्याद्बस्तिंविचक्षणः ॥

अर्थ—प्रथम दोषोंको उत्क्लेशित करनेवाली औषधोंकी वस्ति देवे तथा मध्यमें दोषनाशक औषधोंकी वस्ति देय। और अन्तमें संशमनीय अर्थात् अपने २ स्वस्थानमें दोष बैठजावे ऐसी वस्ति देय अर्थात् ऐसी औषधोंकी पिचकारी मारे।

उत्क्लेशनवस्ति।

एरंडबीजंमधुकंपिप्पलीसैंधवंवचा ॥ १९ ॥
हपुषाफलकल्कश्चवस्तिरुत्क्लेशनःस्मृतः ॥

अर्थ—१ अंडाके बीज २ महुआके फल ३ पीपल ४ सैंधानमक ५ वच और हाऊबेरके पत्ते और मैनफल ये औषध समान भाग ले कूटके कल्क करे फिर दोषोंको उत्क्लेशित करनेके लिये यह उत्क्लेशन वस्ति देवे।

दोषहरवस्ति।

शताह्वामधुकंबिल्वंकौटजंफलमेवच ॥ २० ॥
सकांजिकःसगोमूत्रोवस्तिर्दोषहरःस्मृतः ॥

अर्थ—१ सोवा २ मुलहटी ३ बेलगिरी और इन्द्रजौ ये चार औषध समान भाग ले कांजीमें बारीक पीस और इसमें गोमूत्र मिलाय गुदामें पिचकारी मारे तो वातादिक दोषोंका शमन होवे। इसको दोषहरवस्ती कहते हैं।

---

१ वमनाध्यायमे वमन करनेके पश्चात् पथ्य कहा है उस जगह टिप्पणीमें यूष कल्क बनानेकी विधि लिखी है सो जानना।

२ विरेचनाध्यायमें पथ्य कहा है उसी स्थानपर टिप्पणीमें मांसरसकी विधि कही है।

शोधनवस्ति ।

शोधनद्रव्यनिक्वाथस्तत्कल्कैःस्नेहसैंधवैः ॥ २१ ॥
युक्त्याखजेनमथिताबस्तयःशोधनाःस्मृताः ॥

अर्थ-निशोथादिक शोधन द्रव्योंका काढा करके और उन्हीं शोधनद्रव्योका कल्क कर तथा सैंधानमक उस काढेमें मिलाय युक्तिसे रई डालके मथ लेवे फिर दोषोंके शोधन करनेको इसकी वस्ती देवे ।

दोषशमन वस्ति ।

प्रियंगुर्मधुकोमुस्तातथैवचरसांजनम् ॥ २२ ॥
सक्षीरःशस्यतेबस्तिर्दोषाणांशमनेस्मृतः ॥

अर्थ-१ फूलप्रियगु २ महुआके फल ३ नागरमोथा और ४ रसोत इन चार औषधोंको समान भाग लेकर दूधमें वारीक पीस दोष शमन होनेके अर्थ वस्ती देवे अर्थात् पिचकारी मारे ।

लेखनवस्ति ।

त्रिफलाक्वाथगोमूत्रक्षौद्रक्षारसमायुताः ॥ २३ ॥
ऊषकादिप्रतीवापैर्बस्तयोलेखनाः स्मृताः ॥

अर्थ-त्रिफलाके काढेमे गोमूत्र सहत और जवाखार मिलावे तथा ऊपकादिक गणकी औषधोंका चूर्ण मिलायके वस्ति देनेको लेखन (कहिये मेदोरोगादिकोंका जो कृशीकरण) बस्ति कहते हैं ।

बृंहणवस्ति ।

बृंहणद्रव्यनिक्वाथःकल्कैर्मधुरकैर्युतः ॥ २४ ॥
सर्पिर्मांसरसोपेताबस्तयोबृंहणामताः ॥

अर्थ-मूसली गोखरू और कौंचके बीज इत्यादिक बृहण अर्थात् धातुवर्धक द्रव्योंका काढा कर उसमें महुआके पत्ते दाख और अनार इत्यादिक मधुर द्रव्योका कल्क, घी और मांसरस इन सबको डालके बृंहण होनेके वास्ते वस्ति देवे ।

पिच्छिलवस्ति ।

बदर्यैरावतीशेलुशाल्मलीधन्वनागराः ॥२५॥ क्षीरसिद्धाःक्षौद्रयुक्तानाम्नापिच्छिलसंज्ञिताः ॥ अजोरभ्रैणरुधिरैर्युक्तादेया विचक्षणैः ॥२६॥ मात्रापिच्छिलबस्तीनांपलैर्द्वादशभिर्मता ॥

अर्थ—१ वेरकी छाल २ नारगी ३ गोंदीकी छाल ४ सेमरकी छाल ५ धमासा और ६ सोंठ ये छः औषध समान भाग लेके दूधमें पीस उसमें बकरा मेढा और हरिण इनका रुधिर मिलायके कुशल वैद्य दोप पतले होनेके वास्ते इसकी वस्ति देवे। इस वस्तिको पिच्छिल वस्ती कहते हैं। इस वस्तीकी मात्राका प्रमाण बारह पलहै।

निरूहणवास्ति।

दत्त्वादौसैंधवस्याक्षंमधुनःप्रसृतिद्वयम् ॥२७॥ विनिर्मथ्यततोदद्यात्स्नेहस्यप्रसृतित्रयम् ॥एकीभूतेततःस्नेहेकल्कस्यप्रसृतिंक्षिपेत् ॥ २८ ॥ संमूर्च्छितेकषायेतुचतुःप्रसृतिसंमितम् ॥ क्षिप्त्वाविमथ्यदद्याच्चनिरूहंकुशलोभिषक् ॥ २९ ॥ वातेचतुःपलंक्षौद्रंदद्यात्स्नेहस्यषट्पलम्॥ पित्तेचतुःपलंक्षौद्रंस्नेहस्यच पलत्रयम् ॥ ३० ॥ कफेषट्पलिकंक्षौद्रंस्नेहस्यैवचतुःपलम् ॥

अर्थ—प्रथम सैंधानमक एक अक्षप्रमाण कहिये कर्ष प्रमाण तथा सहत दो प्रसृति अर्थात् चार पल इन दोनोंको एकत्र मर्दन करे। फिर उसमें घी अथवा तेल छः पलडालके एकत्र मिलाय दे। तब कल्ककी औषधि कही है उनका कल्क करके उस पूर्वोक्त स्नेहमे मिलावे अथवा उस कल्ककी औषधी समूर्च्छित कहिये औटायके काढाकर उस स्नेहमे मिलावे। कुशल वैद्य इसकी निरूहवस्ती दव अर्थात् गुदामें पिचकारी मारे। इसे निरूहवास्तिकी साधारण विधि जाननी। विशेष विधि—यदि वादीका रोग होवे तो चार पल सहत और स्नेह छः पल लेके एकत्रकर वस्ती देवे। पित्तरोग होय तो सहत चार पल और स्नेह तीन पल ले एकत्रकर वस्ति देवे।तथा कफरोग होय तो सहत छः पल तथा स्नेह चारपल इनको एकत्रकरके वस्ति देवे।

मधुतैलकवस्ति।

एरंडक्वाथतुल्यांशंमधुतैलंपलाष्टकम् ॥३१॥ शतपुष्पापलार्धेनसैंधवार्धेनसंयुतम् ॥मधुतैलकसंज्ञोऽयंबस्तिःखजविलोडितः ॥३२॥ मेदोगुल्मकृमिप्लीहमलोदावर्तनाशनः ॥ बलवर्णकरश्चैववृष्योबृंहणदीपनः॥ ३३ ॥

अर्थ—अंडकी जडका काढा ८ पल और सहत तथा तेल ये चार २ पल एवं सोंफ और सैंधानमक आध २ पल ले सबको एकत्रकर रईसे मथलेवे इसको मधुतैलक वस्ति कहते हैं। यह वस्ति देनेसे मेदोरोग, गुल्मरोग, कृमिरोग, प्लीहा, मल और उदावर्त्त वायु इनका नाश होय। तथा यह बल कांति स्त्रीविषयप्रीति तथा धातुओंकी वृद्धि इनको देती है और अग्निको प्रदीप्त करती है।

दीपनवस्ति ।

क्षौद्राज्यक्षीरतैलानांप्रसृतिःप्रसृतिर्भवेत् ॥
हपुषासैंधवाक्षांशौवस्तिःस्याद्दीपनःपरः ॥ ३४ ॥

अर्थ–सहत घी और दूध ये दो दो पल लेवे हाऊबेर और सैंधानमक ये दोनों औषध कर्षमात्र ले बारीक पीसके उस सहत घी और दूधमें भिगोयके जठराग्नि प्रदीत होनेके अर्थ वस्ति देवे ।

युक्तरथवस्ति ।

एरंडमूलनिःक्काथोमधुतैलंससैंधवम् ॥
एषयुक्तरथोवस्तिःसवचापिप्पलीफलः ॥ ३५ ॥

अर्थ–अंडकी जडका काढा करके उसमें सहत और तेल डाले । तथा सैंधानमक वच पीपल और मैनफल ये चार औषध समान भाग लेकर चूर्ण करे । उसको पूर्वोक्त काढेमें मिलाय गुदामें पिचकारी देवे । इसको युक्तरथ वस्ति कहते हैं । यह वस्ति सर्व-रोगोंपर है ।

सिद्धवस्ति ।

पंचमूलस्यनिक्काथस्तैलंमागधिकामधु ॥
ससैंधवःसमधुकःसिद्धबस्तिरितिस्मृतः ॥ ३६ ॥

अर्थ–बृहत्पंचमूलका काढाकरे तेल पीपलकाचूर्ण सैंधानमक महुआकी लकडीके भीतरका गाभा अथवा मुलहटी ये सब उस काढेमें डालके वस्ति देवे । इसको सिद्ध वस्ति कहतेहैं । इसे सर्व रोगों-पर देवे ।

वस्तिकर्ममें पथ्यापथ्य ।

स्नानमुष्णोदकैःकुर्यादिवास्वप्नमजीर्णताम् ॥
वर्जयेदपरंसर्वमाचरेत्स्नेहबस्तिवत् ॥ ३७ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरे उत्तरखंडे निरूहणवस्तिविधिः षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अर्थ–वस्तिकर्म कियेहुए मनुष्यको गरम जलसे स्नान करावे, दिनमें सोवे नहीं, अजीर्ण न होने देवे और आचरण स्नेह वस्तिके समान करे यह पथ्य है ।

इति श्रीशार्ङ्गधरेउत्तरखण्डे माधुरीभाषाटीकाया निरूहणवस्तिविधिर्नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः ७.

उत्तरवास्तिका क्रम ।

अतःपरंप्रवक्ष्यामिवस्तिमुत्तरसंज्ञितम्॥द्वादशांगुलकंनेत्रंमध्ये चकृतकर्णिकम् ॥१॥ मालतीपुष्पवृन्ताभंछिद्रंसर्षपनिर्गमम् ॥

अर्थ—अब इसके उपरात उत्तरवास्तिका प्रमाण कहताहूँ । बारह अगुल लंबी नली हो उस नलीका मध्यभाग कमलपत्रकी कार्णिकाके समान होना चाहिये । और वह नली मालतीके फूलके डठरेके समान मोटी हो उसके छिद्रमे एक सरसों चली जावे इतना बडा होना चाहिये ।

उत्तरवास्तिकी योजना कैसे करै।

पंचविंशतिवर्षाणामधोमात्राद्विकार्षिकी ॥ २ ॥
तदूर्द्ध्वंपलमानंचस्नेहस्योक्ताविचक्षणैः ॥

अर्थ—मनुष्यकी अवस्था पच्चीस वर्ष होनेपर्यंत विचक्षण वैद्य वस्तिमें स्नेहकी मात्रा दो कर्ष योजना करे । पच्चीस वर्षके पश्चात् १ पल देवे ।

उत्तरवस्तिकी योजनाका प्रकार ।

अथास्थापनशुद्धस्यतृप्तस्यस्नानभोजनैः ॥ ३ ॥ स्थितस्य जानुमात्रेणपीठेत्विष्टशलाकया ॥ स्निग्धयामेढ्रमार्गेचततोनेत्रं नियोजयेत् ॥ ४ ॥ शनैःशनैर्घृताभ्यक्तंमेढ्ररंध्रेऽगुलानिषट् ॥ ततोऽवपीडयेद्वस्तिंशनैर्नेत्रंचनिर्हरेत् ॥५॥ ततःप्रत्यागतेस्ने- हेस्नेहबस्तिक्रमोहितः ॥

अर्थ—जो आस्थापन कहिये निरूहणवस्ति करके शुद्ध हुआ तथा स्नान और भोजन करके तृप्त हुआ है ऐसे मनुष्यको आसनपर घोटुओंके बल बिठाकर यथायोग्य सचिक्कण सलाई देवे । उस नलीपर घी लगाय शिश्नमार्गमें योजना करके वस्तिका पीडन करे अर्थात् पिचकारी मारे । फिर उस नलीको धीरे २ बाहर निकाल लेवे । फिर उस स्नेहके बाहर आनेसे उत्तम वस्तिकर्म होताहै । इस प्रकार स्नेहवस्तिका क्रम जानना ।

स्त्रियोंके वस्ति देनेकी विधि ।

स्त्रीणांकनिष्ठिकास्थूलंनेत्रंकुर्याद्दशांगुलम् ॥ ६ ॥
मुद्गप्रवेशंयोज्यंचयोन्यंतश्चतुरंगुलम् ॥
द्व्यंगुलंमूत्रमार्गेचसूक्ष्मंनेत्रंनियोजयेत् ॥ ७ ॥

अर्थ-स्त्रियोंके वस्ती देनेके वास्ते नेत्र कहिये वस्तीकी नली छोटी उँगलीके बराबर मोटी हो वह दश अंगुलकी लंबी तथा जिसमें मूँग चलाजावे इतना छिद्र होना चाहिये उस नलीको योनिके भीतर चार अंगुल प्रवेश करके फिर पिचकारी मारे । स्त्रियोंके मूत्रमार्गमें बहुत बारीक नली लगा-यके उस नलीको दो अंगुल मूत्रमार्गमें प्रवेश करके पिचकारी मारे ।

बालकोंके वस्ति देनेका प्रमाण ।

सूत्रकृच्छ्रविकारेषुबालानांत्वेकमंगुलम् ॥
शनैर्निष्कंपमाधेयंसूक्ष्मनेत्रंविचक्षणैः ॥ ८ ॥

अर्थ—बालकोंके मूत्रकृच्छ्रविकार होनेसे वैद्य निष्कंप अर्थात् हाथ न हिले इस प्रकारसे बारीक नलीकी योजना करके धीरे २ उस नलीको शिश्नके भीतर १ अंगुल प्रमाण प्रवेश करके पिचकारी मारे ।

स्त्रियोंके तथा बालकोंके वस्ति देनेमें स्नेहकी मात्रा ।

योनिमार्गेषुनारीणांस्नेहमात्राद्विपालिकी ॥
मूत्रमार्गेपलोन्मानाबालानांचद्विकार्षिका ॥ ९ ॥
उत्तानायैस्त्रियैदद्यादूर्ध्वजान्वेविचक्षणः ॥
अप्रत्यागच्छतिभिषग्वस्तावुत्तरसंज्ञके ॥ १० ॥

अर्थ—स्त्रियोंके योनिमार्गमें वस्ति देनेमें स्नेहमात्रा अर्थात् स्नेहका प्रमाण दो पलका जानना । स्त्रियोंके मूत्रमार्गमे स्नेहमात्रा एक पलकी जाननी । बालकोंके दो कर्ष प्रमाण जाननी । उत्तरसंज्ञक वस्तिमें कुशल वैद्य उस स्त्रीको सीधी बैठाकर उसके घोंटू ऊपरको धर पिचकारी मारे । यदि स्नेह बाहर न आवे तो आगे लिखी विधि करे ।

शोधनद्रव्यकरके वस्तिका विधान ।

भूयोबस्तिंनिदध्याच्चसंयुक्तैः शोधनैर्गणैः ॥
फलवर्तिनिदध्याद्वायोनिमार्गेदृढांभिषक् ॥ ११ ॥
सूत्रैर्विनिर्मितांस्निग्धशोधनद्रव्यसंयुताम् ॥
दह्यमानेतथावस्तौदद्याद्वस्तिंविचक्षणः ॥ १२ ॥
क्षीरवृक्षकषायेणपयसाशीतलेनच ॥
बस्तिःशुक्रुजःपुंसांस्त्रीणामार्तवजारुजः ॥ १३ ॥

हन्यादुत्तरबस्तिस्तुनोचितोमोहिनांक्वचित् ॥

अर्थ—पीछे कहाहुआ उपायकरे शोधन द्रव्य (एरंडादि तैल समुदाय) की योनिमार्गमें पिच-कारी मारे। अथवा एरंडबीज दिक जो औषधि हैं वे उनको करडी बत्ती बनायके अथवा सूतकी बत्ती करके उस बत्तीके अंडी आदि औषध लपेटकर योनिमें योजना करे। उस बत्तीके अधो भागमें बस्तिस्थान है उसके विकृत होनेसे गूलर बड (आदि शब्दसे क्षीरवृक्ष) उनका काढा करके बस्ति देवे अथवा शीतल दूधकी बस्ति देवे तो बस्तिस्थान शुद्ध होवे। यह बस्ति शुक्रधातुसंबंधी पीडा होती है उस को तथा स्त्रियोंके रजोदर्शन संबंधी पीडा होतीहै उसको दूर करती है तथा जिन मनुष्योंके प्रमेह है उनको उत्तरबस्तिसे कदाचित् लाभ नहीं होता।

वस्तिकर्मके उत्तमहोनेके लक्षण।

सम्यग्दत्तस्यलिंगानिव्यापदःक्रमएवच ॥ १४ ॥
बस्तेरुत्तरसंज्ञस्यशमनंस्नेहवस्तिना ॥

अर्थ—उत्तरसंज्ञक बस्ति उत्तम होनेके लक्षण और दोष और उनकी शांति स्नेह बस्तिके समान जाननी चाहिये।

गुदामें फलवर्तीकी योजना।

घृताभ्यक्तेगुदेक्षेप्याश्लक्ष्णास्वांगुष्टसंनिभा ॥
मलप्रवर्तिनीवर्तिःफलवर्तिश्चसास्मृता ॥ १५ ॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेण विरचितायांसंहितायां चिकित्सास्थाने उत्तरखंडे उत्तरबस्तिवर्णनोनाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अर्थ—गुदामें घी लगायके रोगीको अँगूठेके बराबर उत्तम करडी बत्ती करके एरंड बीजादिक रेचक औषधोंका उस बत्तीपर लेप करके दस्त होनेके वास्ते उसको गुदामें प्रवेश करे। इसको फलवर्त्ती कहते हैं।

इति श्रीमाथुरदत्तरामविरचितभाषामाथुरीटीकाया-
मुत्तरखंडस्य सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथाष्टमोऽध्यायः ८.

नस्यविधि।

नस्यंतत्कथ्यतेधीरैर्नासाग्राह्यंयदौषधम् ॥
नावनंनस्यकर्मेतितस्यनामद्वयंमतम् ॥ १ ॥

अर्थ—नाकमें डालनेकी औषधोंको नस्य कहते हैं। उस नस्यके नावन और नस्यकर्म ऐसे दो नाम हैं।

नस्यके भेद ।

नस्यभेदोद्विधाप्रोक्तोरेचनंस्नेहनंतथा ॥
रेचनंकर्षणंप्रोक्तंस्नेहनंबृंहणंमतम् ॥ २ ॥

अर्थ—इस नस्यके भेद दो हैं—एक रेचन और एक स्नेहन तिनमें रेचन नस्य वातादि दोषोंको छेदन करता है और जो स्नेहन है वह धातुवृद्धि करता है।

नस्यका काल ।

कफपित्तानिलध्वंसेपूर्वमध्यापराह्णके ॥
दिनस्यगृह्यतेनस्यंरात्रावप्युत्कटेगदे ॥ ३ ॥

अर्थ—कफके नाश करनेको नस्य प्रातःकाल देवे पित्तके नाश करनेको दो प्रहर दिन चढे नस्य देवे तथा वायुके नाश करनेको सायंकालमें नस्य देना। यदि रोग अत्यंत प्रबलताके साथ होवे तो रात्रिके समय नस्य देवे।

नस्यका निषेध ।

नस्यंत्यजेद्भोजनांतेदुर्दिनेचापतर्पणे॥तथानवप्रतिश्यायीगार्भि
णीगरदूषितः॥४॥अजीर्णीदत्तवस्तिश्चपित्तस्नेहोदकासवः॥
क्रुद्धःशोकाभिभूतश्चतृषार्तोवृद्धबालकौ ॥ ५ ॥ वेगावरोधी
स्नातश्चस्नातुकामश्चवर्जयेत् ॥

अर्थ—भोजन करनेके पश्चात् नस्य न लेवे। जिस दिन आकाश बद्दलोंसे घिरा होवे उस दिन नस्य न ले। लंघन करके जिसको नवीन पीनसका रोग होवे, गर्भिणी स्त्री, विषदोषकरके और अजीर्ण करके पीडित मनुष्य, जिसके बस्तिप्रयोग किया हो, घी तेल इत्यादि स्नेह जल और मद्य इनका सेवन करनेवाला मनुष्य, क्रोध शोक तथा तृषाके पीडित, वृद्ध, बालक, वात मूत्र और मल इनका निरोध करनेवाला मनुष्य स्नान किया हुआ अथवा जिसको स्नान करना है वह इतने मनुष्योंको नस्य नहीं देना चाहिये।

नस्यकर्ममें योग्यायोग्य रोगी ।

अष्टवर्षस्यबालस्यनस्यकर्मसमाचरेत् ॥ ६ ॥
अशीतिवर्षादूर्ध्वंचनावनंनैवदीयते ॥

अर्थ—आठवर्षके बालकको नस्य कर्म करे और अस्सीवर्षके उपरांत अवस्थावाले मनुष्यके नस्यकर्म नहीं करना।

अथवैरेचनंनस्यंग्राह्यंतैलैःसुतीक्ष्णकैः ॥ ७ ॥
तीक्ष्णभेषजसिद्धैर्वास्नेहैःक्वाथैरसैस्तथा ॥

अर्थ—विरेचन नस्य, अजमायन राई आदिका तीक्ष्ण तेल काढके देना चाहिये । अथवा तीक्ष्ण औषधोंकेही साथ तैल सिद्धकरके अथवा तीक्ष्ण औषधोंका काढा करके अथवा रसमें स्नेह सिद्ध करके नस्य देवे ।

रेचकनस्यका प्रमाण ।

नासिकारंध्रयोरष्टौषट्चत्वारश्चबिंदवः ॥ ८ ॥
प्रत्येकंरेचनेयोज्यामुख्यमध्यांत्ययात्रया ॥

अर्थ—रेचनमें नाकके दोनो छिद्रों (नथनो) मे औषधकी आठ बिंदु डालना उत्तम मात्रा छः बिंदु (बूँद) डालना मध्यम मात्रा जाननी । और चार बिंदु डालना कनिष्ठ मात्रा कही जाती है ।

नस्यकर्ममें औषधका प्रमाण ।

नस्यकर्मणिदातव्यंशाणैकंतीक्ष्णमौषधम् ॥ ९ ॥ हिंगुस्याद्यवमात्रंतुमाषैकंसैंधवंस्मृतम् ॥ क्षीरंचैवाष्टशाणंस्यात्पानीयंचत्रिकार्षिकम्॥१०॥कार्षिकंमधुरंद्रव्यंनस्यकर्मणियोजयेत्॥

अर्थ—नस्यकर्ममे तीक्ष्ण औषध होय तो एक शाण डाले । हींग एक यवप्रमाण, सेंधानमक २ मासे, दूध आठ शाण, जल तीन कर्ष, तथा खाँड अनार इत्यादिक मधुर द्रव्य होंय वे प्रत्येक एक कर्ष प्रमाण डालने चाहिये । इसप्रकार औषधोंकी योजना करे ।

विरेचननस्यके दूसरे दो भेद ।

अवपीडःप्रधमनंद्वौभेदावपरौस्मृतौ ॥ ११ ॥
शिरोविरेचनस्थानेतौतुदेयौयथायथम् ॥

अर्थ—उस विरेचन नस्यके दो भेद हैं । एक अवपीड तथा एक प्रधमन । इन दोनोंकी मस्तकके रेचन करनेमे योजना करे ।

अवपीडन और प्रधमनके लक्षण ।

कल्कीकृतादौषधाद्यःपीडितोनिःसृतोरसः ॥ १२ ॥ सोऽवपीडःसमुद्दिष्टस्तीक्ष्णद्रव्यसमुद्भवः ॥ षडंगुलाद्विवक्त्रायानाडीचूर्णंतयाधमेत् ॥१३॥ तीक्ष्णंकोलमितंवक्त्रवातैःप्रधमनंहितत्॥

अर्थ—तीक्ष्ण औषधको पीसके कल्ककरके निचोडलेवे उस निचुडे हुए रसको अवपीड कहते हैं । छः अंगुल लंबी और दो मुखकी बनाकर उसमें तीक्ष्णचूर्ण १ कोल डालके मुखकी पवनसे नाकमें फूंक देवे । इसको प्रधमनसंज्ञक नस्य कहते हैं ।

रेचन और स्नेहनयोग्य प्राणी ।

ऊर्ध्वजत्रुगतेरोगेकफजेस्वरसंक्षये ॥ १४ ॥ अरोचकेप्रतिश्याये शिरःशूलेचपीनसे ॥ शोफापस्मारकुष्ठेषुनस्यंवैरेचनंहितम् ॥ ॥ १५ ॥ भीरुस्त्रीकृशबालानांनस्यंस्नेहेनदीयते ॥

अर्थ—ऊर्द्ध्व जत्रुगतरोग, कफसेभयी स्वरका क्षय, अरुचि, प्रतिश्याय, मस्तकशूल, पीनस, सूजन, अपस्मार और कुष्ठ इन रोगोंमे रेचक नस्य हितकारी जानना । डराहुआ मनुष्य, स्त्री-कृश और बालक इनको स्नेहयुक्त नस्य देवे ।

अवपीडननस्ययोग्य प्राणी ।

गलरोगेसन्निपातेनिद्रायांविषमज्वरे ॥ १६ ॥
मनोविकारेकृमिषुयुज्यतेचावपीडनम् ॥

अर्थ—गलरोग, सन्निपात, अत्यंत निद्रा, विषमज्वर, मनके विकार और कृमिरोग इनमे अवपीडन नस्य देना चाहिये ।

प्रधमननस्ययोग्य प्राणी ।

अत्यंतोत्कटदोषेषुविसंज्ञेषुचदीयते ॥ १७ ॥
चूर्णंप्रधमनंधीरैस्तद्धितीक्ष्णतरंयतः ॥

अर्थ—अत्यत उत्कट दोष (मूर्च्छा अपस्मारादिक तथा संज्ञा नष्ट हुई हो ऐसे संन्यासादिक रोग) इनमें अत्यत तीक्ष्ण ऐसी प्रधमनसंज्ञक चूर्ण नस्य देना चाहिये ।

रेचकसंज्ञक नस्य ।

नस्यंस्याद्गुडशुंठीभ्यांपिप्पल्यासैंधवेनच ॥ १८ ॥
जलपिष्टेनतेनाक्षिकर्णनासाशिरोगदाः ॥
हनुमन्यागलोद्भूतानश्यंतिभुजपृष्ठजाः ॥ १९ ॥

अर्थ—सोंठको गरम जलमें औटाय उसमें गुड मिलाय नासिकामें डाले । तथा पीपल और सैंधानमक इनको गरम जलमें औटाय नस्य देवे अर्थात् नाकमे डाले तो नेत्र कान नाक मस्तक ठोढी गर्दन भुजा (हाथ) और पीठ इनकी पीडाको दूर करे ।

---

१ सोंठ मिरच वच इत्यादिक तीक्ष्ण औषधोंको जलमें पीसे ।

रेचननस्यका दूसरा प्रकार।

मधूकसारकृष्णाभ्यांवचामरिचसैंधवैः ॥
नस्यंकोष्णजलेपिष्टंदद्यात्संज्ञाप्रबोधनम् ॥ २० ॥
अपस्मारेतथोन्मादेसन्निपातेऽपतंत्रके ॥

अर्थ—महुआकी लकडीके भीतरका गाभा पीपल वच काली मिरच और सैंधानमक इन सब औषधोंको गरम जलमें पीस नस्य देवे तो मृगी उन्माद सन्निपात और अपतन्त्रक वायु इनसे नष्ट हुई चेष्टा दूर होके मनुष्य सावधान होय।

रेचननस्यका तीसरा प्रकार।

सैंधवंश्वेतमरिचंसर्षपाःकुष्टमेवच ॥ २१ ॥
बस्तमूत्रेणपिष्टानिनस्यंतंद्रानिवारणम् ॥

अर्थ—सैंधानमक सफेद मिरच सफेदसरसों और कूठ ये औषध बकरेके मूत्रसे पीस नस्य देवे तो तन्द्रा (और पूर्वोक्त अपस्मारादिक रोग) दूर होवे।

प्रधमनसंज्ञक नस्य।

रोहीतमत्स्यपित्तेनभावितंसैंधवंवचा ॥ २२ ॥
मरिचंपिप्पलीशुंठीकंकोलंलशुनंपुरम् ॥
कट्फलंचेतितच्चूर्णंदेयंप्रधमनंबुधैः ॥ २३ ॥

अर्थ—सैंधानमक वच काली मिरच पीपल सोंठ कंकोल लहसुन गूगल और कायफर इनका चूर्ण कर रोहू मछलीके पित्तकी इस चूर्णमें पुट दे। जब सूख जावे तब पूर्वोक्त प्रधमननलीमें इस चूर्णको भरके नस्य देवे, तो पूर्वोक्त तंद्रादिक दोष दूर होवें। इस चूर्णको प्रधमन कहते हैं।

बृंहणनस्यकी कल्पना।

अथबृंहणनस्यस्यकल्पनाकथ्यतेऽधुना ॥ मर्शश्चप्रतिमर्शश्च द्वौभेदौस्नेहनेमतौ॥२४॥ मर्शस्यतर्पणीमात्रामुख्याशाणैःस्मृताष्टभिः ॥ मध्यमाचचतुःशाणैर्हीनाशाणमितास्मृता॥२५॥ एकैकस्मिंस्तुमात्रेयंदेयानासापुटेबुधैः ॥ मर्शस्यद्वित्रिवेलंवा वीक्ष्यदोषबलाबलम् ॥२६॥ एकांतरंद्व्यंतरंवानस्यंदद्याद्विचक्षणः ॥ त्र्यहंपंचाहमथवासप्ताहंवासुयंत्रितम् ॥ २७ ॥

अर्थ–बृहणं[1] (धातुको बढानेवाली) नस्यकी कल्पना कहता हूं बृंहण नस्यके दो भेद हैं–मर्श प्रतिमर्श ये स्नेहन विषयमें लेनी। तिनमें मर्शनस्यकी तर्पणी[2] मात्रा जाननी। वह आठ शाणकी मुख्य मात्रा होती है। चार शाणकी मध्यम मात्रा तथा एक शाणकी हीन मात्रा जाननी। उस मात्राको दोषोंका बलाबल विचार कर देवे। मनुष्यको वस्त्रादिकसे लपटके एक एक पुडिया नाकमें दो अथवा तीनवार एक दिन बीचमें देकर अथवा दो दिन तीन दिनको बीच देकर, पाचवें दिन अथवा सातवें दिन नस्य देवे।

नस्य अधिक होनेका यत्न।

मर्शेशिरोविरेकेचव्यापदोविविधाःस्मृताः॥ दोषोत्क्लेशात्क्षया- च्चैवविज्ञेयास्तायथाक्रमम्॥२८॥दोषोत्क्लेशनिमित्तासुयुंज्या- द्वमनशोधनम्॥अथक्षयनिमित्तासुयथास्वंबृंहणंमतम् ॥२९॥

अर्थ–मर्शनस्यकी मात्रा धात्वादिकों की तृप्ति करनेवाली है उसको आधिक्य होकर दोषोंका कोप होनेसे तथा मस्तकके विरेचन विषयमें विरेचनसंज्ञक नस्यकी मात्राके आधिक्यके कारण मस्तकमेंसे मेदादिकोंका क्षय होनेसे अनेक प्रकारकी पीडा होती है। तिनमें जिस दोषके उत्क्लेश निमित्त पीडा हो उसके दूर करनेको वमनकर्त्ता अथवा दस्त करनेवाली औषध देवे। और क्षय- निमित्तवाली पीडाको दूर करनेके लिये बृंहण औषध नाकमें अथवा पेटमें देवे।

बृंहणनस्ययोग्य प्राणी।

शिरोनासाक्षिरोगेषुसूर्यावर्तार्द्धभेदके॥ दंतरोगेबलेहीनेमन्या- बाह्वंसजेगदे॥३०॥मुखशोषेकर्णनादेवातपित्तगदेतथा॥ अ- कालपलितेचैवकेशश्मश्रुप्रपातने॥ ३१॥ युज्यतेबृंहणंनस्यं स्नेहैर्वामधुरद्रवैः॥

अर्थ–मस्तकरोग, नासारोग, नेत्ररोग, सूर्यावर्त्त रोग, अर्धावभेदक (आँधाशीशी) दन्तोका रोग, दुर्बल मनुष्यकी गर्दन, कधा और बाहु इनमें जो पीडा होती है वह मुखशोष, कर्णनादरोग, वातपित्तसंबंधी विकार, विना समय मनुष्यके सफेद बालोंके होनेको पलित रोग कहते हैं वह तथा मस्तकके बाल और डाढी मूँछोंके बाल झरकर गिर पडें वह इन्द्रलुप्त रोग, इन सर्व रोगोमें घृतआदि स्निग्ध पदार्थ तथा खाँड आदि मधुर पदार्थ इन करके बृंहण नस्यकी योजना करे।

---

१ धातुके बढानेके विषयमें।

२ धात्वादिको तृप्ति करनेवाली मात्राको तर्पणी कहते हैं।

बृंहण नस्य।

सशर्करंपयःपिष्टंअष्टमाज्येनकुंकुमम् ॥ ३२ ॥ नस्यप्रयोगतो हन्याद्वातरक्तभवारुजः ॥ भ्रूशंखाक्षिशिरःकर्णसूर्यावर्तार्धभेदकान् ॥३३॥ नस्यंस्याद्रुवुतैलेनतथानारायणेनवा ॥ माषादिनावापिसर्पिस्तत्तद्भेषजसाधितैः ॥ ३४ ॥ तैलंकफेस्याद्वातेच केवलेपवनेवसा ॥ दद्यान्नस्यंसदापित्तेसर्पिर्मज्जानमेवच॥३५॥

अर्थ—दूधमें खाँड डालके नस्य देवे। अथवा घीमें केशर डालके नस्य देय। इससे वातरक्तकी पीडा दूर होय अंडीके तेल करके अथवा नारायण तेल करके अथवा माषादि तेल करके अथवा उन २ औषधो करके सिद्ध किये हुए घृतकी नस्य देनेसे भृकुटी शख (कनपटी) नेत्र मस्तक कान इनके संबंधी रोग, तथा सूर्यावर्त्तरोग और आधाशीशी ये रोग दूर होवे। कफरोगपर तेलकी नस्य दे वातरोगपर वसा (चर्वी) की नस्य देवे। और केवल पित्तरोगपर घी और मज्जा इनकी नस्य देवे।

पक्षाघातादिकरोगोंपर नस्य।

माषात्मगुप्तारास्नाभिर्बलारुबुकरोहिषैः॥ कृतोऽश्वगंधयाक्राथो हिंगुसैंधवसंयुतः ॥ ३६ ॥ कोष्णनस्यप्रयोगेणपक्षाघातंसकंपनम् ॥ जयेदर्दितवातंचमन्यास्तंभापबाहुकौ ॥ ३७ ॥

अर्थ—१ उडद २ कौंचके बीज ३ रास्ना ४ गंगेरनकी जड ५ अंडकी जड ६ रोहिसतृण और ७ असगंध इन सात औषधोंका काढा करके उसमें भूनी हुई हींग और सेंधानमक डाल उस गरम २ जलकी नस्य देवे तो कंपसहित पक्षाघातवायु, अर्दित (लकवा) वायु, गरदनकी नसका जकडना और अपबाहुक वायु ये सब दूर हो।

प्रतिमर्शनस्यकी दो बिन्दुरूप मात्रा।

**प्रतिमर्शस्यमात्रातुद्विद्विबिंदुमितामता ॥
प्रत्येकशोनयनयोःस्नेहेनेतिविनिश्चितम् ॥ ३८ ॥**

अर्थ—घृतआदिशब्दसे जो स्निग्ध पदार्थ उनके दो दो बिंदु एक एक २ नयनमें डालते है उसे प्रतिमर्शनस्यकी दो बिंदुरूप मात्रा जाननी।

बिंदुसंज्ञक मात्रा।

स्नेहेग्रंथिद्वयंयावन्निमग्नाचोद्धृताततः ॥तर्जनीयंस्रवेद्विंदुंसामा-

त्राबिंदुसंज्ञिता ॥ ३९ ॥ एवंविधैर्बिंदुसंज्ञैरष्टभिःशाणउच्यते ॥
सदेयोमर्शनस्येतुप्रतिमर्शोद्विबिंदुकः ॥ ४० ॥

अर्थ—घृत तेल (आदिशब्दसे जो स्निग्ध पदार्थ उन) में दो पेरुआ बूडे इस प्रकार तर्जनी ऊँगलीको डबोयके बाहर काढे । उस पेरुएसे जो बिंदु टपके उसको बिंदुमात्रा कहते हैं । इस प्रकार बिंदुसंज्ञक आठ मात्राओंका एक शाण होता है । वह एक शाण मात्रा मर्शनस्यमें देवे और प्रतिमर्शनस्यमें दो बिंदु मात्रा देवे । इतनी मर्शनस्यमें विशेषता जाननी ।

प्रतिमर्शनस्यके समय ।

समयाःप्रतिमर्शस्यबुधैःप्रोक्ताश्चतुर्दश ॥ प्रभातेदंतकाष्ठांतेगृहान्निर्गमनेतथा ॥ ४१ ॥ व्यायामाध्वव्यवायांतेविण्मूत्रांतेऽजनेकृते ॥ कवलांतेभोजनांतेदिवास्वप्नोत्थितेतथा ॥ ४२ ॥
वमनांतेतथासायंप्रतिमर्शःप्रयुज्यते ॥

अर्थ--प्रतिमर्शनस्यके समय चौदह हैं १ प्रातःकाल २ मुखधोनेपर ३ घरसे बाहर निकलते समय ४ परिश्रमके अंतमें ५ मार्गचलकर आनेपर ६ मैथुनके अंतमें ७ मलत्यागके अंतमें ८ मूत्रत्यागके अंतमें ९ नेत्रोंमें अंजन आँजनेके पश्चात् १० ग्रासके अंतमें ११ भोजनके अंतमें १२ दिनमें सोनेके पश्चात् उठकर १३ वमनके अंतमें और १४ सायंकालमें । इतने समयोंमें प्रतिमर्शनस्य देवे ।

प्रतिमर्शनस्य करके तृप्तके लक्षण ।

ईषदुच्छिंदनात्स्नेहोयदावक्त्रंप्रपद्यते ॥ ४३ ॥
नस्येनिषिक्तंतंविद्यात्प्रतिमर्शप्रमाणतः ॥
उच्छिंदनंपिबेच्चैतन्निष्ठीवेन्मुखमागतम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—नस्य देनेपर अल्पछींक आकर उस स्नेहके मुखमें उतरनेसे, वह मनुष्य प्रतिमर्शनस्य करके तृप्त हुआ ऐसा जानना । वह मनुष्य मुखमें उतरे हुए स्नेहको निगले नहीं किन्तु खकारके द्वारा बाहर थूँकदेवे ।

प्रतिमर्शके योग्य रोगी ।

क्षीणतृष्णास्यशोषार्तेबालेवृद्धेचयुज्यते ॥
प्रतिमर्शेनशाम्यंतिरोगाश्चैवोर्ध्वजत्रुजाः ॥ ४५ ॥
वलीपलितनाशश्चबलमिंद्रियजंभवेत् ॥

अर्थ-धातुक्षीण मनुष्य तथा तृष्णाकरके तथा मुखशोषकरके पीडित मनुष्य बाल और वृद्ध इनको प्रतिमर्शसंज्ञक नस्य देवे । ऊर्ध्वजत्रुके रोग अर्थात् गरदनके ऊपरके रोग तथा त्वचाकी शिथिलता एव अकालमें वालोंका सफेद होना अर्थात् पलितरोग ये संपूर्ण रोग प्रतिमर्शनस्य करके दूर होतेहैं तथा चक्षुरादि इन्द्रियोंमें बल आवे ।

पतितहोनेमें नस्य ।

बिभीतनिंबगंभारीशिवाशेलुश्चकाकिनी ॥ ४६ ॥
एकैकंतैलनस्येनपलितंनश्यतिध्रुवम् ॥

अर्थ-बहेडा नीमकी छाल कभारी हरड गोंदी और कौआडोडी इनके बीजोंके भीतरकी मज्जाका तेल पृथक् २ निकालके एक एककी पृथक् पृथक् नस्य देय तो मनुष्यके अकालमें जो सफेद बाल हो जातेहैं सो तरुणावस्थाके समान काले होवें ।

नस्यकी विधि ।

अथनस्यविधिंवक्ष्येनस्यग्रहणहेतवे ॥ ४७ ॥ देशेवातरजोमुक्ते कृतदंतनिघर्षणम् ॥ विशुद्धंधूमपानेनस्विन्नभालंगलंतथा ॥ ४८ ॥ उत्तानशायिनंकिंचित्प्रलंबशिरसंनरम् ॥ आस्तीर्णहस्तपादं चवस्त्राच्छादितलोचनम् ॥ ४९ ॥ समुन्नामितनासाग्रंवैद्योनस्ये-नयोजयेत् ॥ कोष्णमच्छिन्नधारंचहेमताराादिशुक्तिभिः ॥ ५० ॥ शुक्त्यावायन्त्रयुक्त्यावाप्लोतैर्वानस्यमाचरेत् ॥

अर्थ-नस्य देनेमें नस्यकी विधि कहतेहैं । जिस स्थानमे पवन तथा धूर न होय उसमें मनुष्यको दाँतन और धूमपान कराके कपाल और गलेको शुद्ध कर पसीने युक्त करे । फिर चित्त लेटके मस्तकको कुछ थोडा लवा कर हाथपैरोंको लंबेपसार कपडेसे नेत्रोंको ढक देवे । फिर वैद्य इस प्राणीकी नाकको कुछ ऊँची करके उसमें नस्यकी औषधको गरम गरम सुहाती धार एकसी लगातार डाले । परंतु वह नस्य सोनेके पात्रमे अथवा चाँदीके पात्रमें करके गेरे अथवा सीप और कौडी अथवा फोहे (कपडेके टुकडे) इत्यादि करके नाकमें डाले ।

नस्यलेनेके पश्चात् नियम ।

नस्येष्वासिच्यमानेषुशिरोनैवप्रकंपयेत् ॥ ५१ ॥ नकुप्येन्नप्र-भाषेतनोच्छिदेन्नहसेत्तथा ॥ एतर्हिविहितःस्नेहोनैवांतःसंप्रपद्यते ॥ ५२ ॥ ततःकासप्रतिश्यायशिरोऽक्षिगदसंभवः ॥

अर्थ-मनुष्य नस्य लेनेके समय मस्तकको न हिलावे, क्रोध न करे, किसीसे बोले नहीं, छींके

नहीं और हँसे नहीं । यदि इसप्रकार आचरण करे तो वह स्नेह मस्तक भीतर अच्छी तरह नहीं जाता, तथा उससे खाँसी पीनस मस्तक तथा नेत्र इनमे पीडा इत्यादि उपद्रव होतेहैं ।

नस्यके संधारणका प्रकार ।

शृंगाटकमभिप्लाव्यस्थापयेन्नगिलेद्द्रवम् ॥ ५३ ॥ पंचसप्तदशैव स्युर्मात्रानस्यस्यधारणे॥ उपविश्याथनिष्ठीवेन्नासावक्त्रगतंद्रवम् ॥ ५४ ॥ वामदक्षिणपार्श्वाभ्यांनिष्ठीवेत्संमुखेनहि ॥

अर्थ—मनुष्यको नस्य देकर शृंगाटक कहिये नासावंशकी पुट भ्रूमध्य देशमें चतुष्पदहै उस जगह उस नस्य करके भिगोकर उस नस्यको रख देवे । उसका कारण पांच मात्रा सात मात्रा अथवा दश मात्रा कालपर्यंत करे । पश्चात् बैठकर नाकसे मुखमें उतरे हुए द्रव्यको खकार कर बाँईतरफ अथवा दहनीतरफ थूक देवे सम्मुख न थूके ।

नस्यकर्ममें त्याज्य कर्म ।

नस्येनीतेमनस्तापंरजःक्रोधंचसंत्यजेत् ॥५५ ॥ शयीतानिद्रं त्यक्त्वाचउत्तानोवाक्छतंनरः ॥ तथावैरेचनस्यांतेधूमोवाकवलोऽहितः ॥५६ ॥

अर्थ—नस्यकर्म होनेके पश्चात् मनको सताप न आने देवे, जहा धूल उडती हो वहापर बैठे नहीं, क्रोध न करे, जिस प्रकार नींद न आवे इसप्रकारसे सौ वाकपर्यंत सीधा (चित्त) लेटे । विरेचन नस्यके अंतमें धूम और ग्रास नहीं देना ।

नस्यमें शुद्धादिकभेद ।

नस्येत्रीण्युपदिष्टानिलक्षणानिसमासतः ॥
शुद्धिहीनातियोगानिविशेषाच्छास्त्रचिंतकैः ॥ ५७ ॥

अर्थ—नस्यमें शुद्धिलक्षण हीनयोगलक्षण और अतियोगलक्षण ये तीन लक्षण विशेष करके शास्त्रज्ञवैद्योंने कहेहैं वह वक्ष्यमाण संक्षेप करके कहताहूं ।

उत्तमशुद्धिके लक्षण ।

लाघवंमनसःशुद्धिःस्रोतसांव्याधिसंक्षयः ॥
चित्तेंद्रियप्रसादश्चशिरसःशुद्धिलक्षणम् ॥ ५८ ॥

---

१ अनुवासन बस्तिके अध्यायमें मात्राका प्रमाण लिखा है उससे जानलेना ।

अर्थ—नस्य करके मस्तककी उत्तम शुद्धि होनेसे शरीर हलका, मन्यानाडीकी शुद्धि मुख नाक कान और गुदा इत्यादि स्रोतसे (बाहरके छिद्रोंका) शोधन हो, शिरोरोगादिक दूर हो, अतःकरण तथा चक्षुरादि इन्द्री ये प्रसन्न रहै।

हीनशुद्धिके लक्षण।

कंडूपदेहोगुरुतास्रोतसांकफसंस्रवः॥
मूर्ध्निहीनविशुद्धेतुलक्षणंपरिकीर्तितम् ॥५९॥

अर्थ—नस्य करके मस्तककी अल्प शुद्धि होनेसे देहमें खुजली चले तथा देहका चिकट जाना ये लक्षण हों। एव स्रोते (मुखनासिकाआदि बाहरके मार्ग) से कफका स्राव होय।

अतिशुद्धिके लक्षण।

मस्तुलुंगागमोवातवृद्धिरिंद्रियविभ्रमः॥
शून्यताशिरसश्चापिमूर्ध्निगाढंविरेचिते.॥ ६० ॥

अर्थ—नस्यद्वारा मस्तककी अत्यंत शुद्धि होनेसे मस्तुलुग (मस्तक भीतर मगज) का नासिका आदिके द्वारा स्राव होने लगे, वायुकी वृद्धि होय, इन्द्रियोंको विभ्रम होय तथा मस्तकमें शून्यता आवे।

हीनशुद्ध्यादिकोंमें चिकित्सा।

हीनातिशुद्धेशिरसिकफवातघ्नमाचरेत् ॥
सम्यग्विशुद्धेशिरसिसर्पिर्नस्येनिषेचयेत् ॥ ६१ ॥

अर्थ—नस्यकरके मस्तककी अल्प शुद्धि तथा अत्यंत शुद्धि होनेसे कफवातनाशक नस्य देवे तथा उत्तम शुद्धि होनेसे उसकी नाकमे घृतकी नस्य देय।

अतिस्निग्धके लक्षण।

कफप्रसेकः शिरसोगुरुतेंद्रियविभ्रमः॥
लक्षणंतदतिस्निग्धंरूक्षंतत्रप्रदापयेत् ॥ ६२ ॥

अर्थ—नस्य करके मनुष्यका मस्तक अत्यंत स्निग्ध होनेसे कफका स्राव, मस्तकमें भारीपना और इन्द्रियोंमें भ्राति ये लक्षण होते है। इसमें रूक्षपदार्थ की नस्य देय।

नस्यमें पथ्य।

भोजयेच्चानभिष्यंदिनस्याचारिकमादिशेत् ॥

अर्थ—अभिष्यंदी पदार्थ कहिये भैंसका दही आदिशब्दसे कफकारक पदार्थ ये भक्षण न करे। तथा नस्यमे जैसे शिष्ट जन आचरण करते हैं उसी प्रकार इस नस्य लेनेवाले रोगीको आचरण करने चाहिये।

पंचकर्मकी संख्या ।

वमनंरेचनंनस्यंनिरूहमनुवासनम् ॥
एतानिपंचकर्माणिकथितानिमुनीश्वरैः ॥ ६२ ॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेणविरचितायां संहितायामुत्तरखंडे स्नेहविधिर्नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अर्थ–१वमन २ रेचन ३ नस्य ४ निरूहवस्ती और ५ अनुवासनवस्ति इन पांचोंको पंचकर्म ऐसा कहते हैं।

इति श्रीशार्ङ्गधरे चिकित्सास्थाने माथुरीभाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः ९.

धूमपानविधि ।

धूमस्तुषड्विधःप्रोक्तःशमनोबृंहणस्तथा ॥
रेचनःकासहाचैववामनोव्रणधूपनः ॥ १ ॥

अर्थ–धूम छः प्रकारका है। १ शमन २ बृंहण ३ रेचन ४ कासहा ५ वामन और ६ व्रणधूपन इस प्रकार छः प्रकारके धूम जानने ।

शमनादि धूमोंके पर्याय ।

शमनस्यतुपर्यायौमध्यःप्रायोगिकस्तथा ॥
बृंहणस्यापिपर्यायौस्नेहनोमृदुरेवच ॥ २ ॥
रेचनस्यापिपर्यायौशोधनस्तीक्ष्णएवच ॥

अर्थ–शमनधूमके पर्यायशब्द मध्य और प्रायोगिक ऐसे दो जानने । बृंहण धूमके पर्यायशब्द स्नेहन और मृदु जानने । तथा रेचनधूमके पर्यायशब्द शोधन और तीक्ष्ण जानने ।

धूमसेवन अयोग्य प्राणी ।

अधूमार्हाश्चखल्वेतेश्रांतोभीरुश्चदुःखितः ॥ ३ ॥ दत्तबस्ति-
र्विरिक्तश्चरात्रौजागरितस्तथा ॥ पिपासितश्चदाहार्तस्तालुशो-
षीतथोदरी॥४॥शिरोऽभितापीतिमिरीछर्द्याध्मानप्रपीडितः ॥
क्षतोरस्कःप्रमेहार्तःपांडुरोगीचगर्भिणी ॥५॥ रूक्षःक्षीणोऽभ्य-

वहतक्षीरक्षौद्रघृतासवः ॥ भुक्तान्नदधिमत्स्यश्चवालोवृद्धःकृश-
स्तथा ॥ ६ ॥ अकालेचातिपीतश्चधूमःकुर्यादुपद्रवान् ॥

अर्थ—थकाहुआ, डरनेवाला, दु.खकरके पीडित, जिसके बस्ति प्रयोग किया है, जिसका कोठा दस्तों करके खाली हो, रात्रिमे जागरण करनेवाला तृषा करके पीडित, तथा दाह करके पीडित, तालुशोषी. उदरी, शिरोभिताप करके पीडित, तिमिरी, वमन, आध्मान (बादीसे पेट फूलता है वह रोग) उर.क्षत प्रमेह और पाडुरोग इन करके पीडित, गर्भिणी स्त्री, रूक्ष, क्षीण, दूध सहत घी आसव (मद्य) और अन्न दही तथा मछली इनको खाय चुकाहो वालक वृद्ध और दुर्वल मनुष्य इतने प्राणी धूमपानमें अयोग्य जानने अर्थात् इन सबको धूमपान करना वर्जित है एवम् अकालमे और अत्यन्त धूमपान करनेसे उपद्रव होते हैं ।

धूमपानके उपद्रवोंमें क्या देवे सो कहते हैं ।

तत्रेष्टंसर्पिषःपानंनावनांजनतर्पणम् ॥ ७ ॥
सर्पिरिक्षुरसंद्राक्षांपयोवाशर्करांबुवा ॥
मधुराम्लौरसौवापिशमनायप्रदापयेत् ॥ ८ ॥

अर्थ—धूमपानके उपद्रव होनेसे उस मनुष्यको घी पीनेको देवे । नाकमें नस्य देय, नेत्रोंमें अजन लगावे, तथा तर्पण (देहमें तृप्तिकारी द्राक्षादिमंड) देय । घी ईखका रस दाख दूध सरबत और खॉड और जल अथवा मधुर और खट्टे पदार्थ ये भक्षण करनेको देवे जिनसे धूमसंबन्धी उपद्रव दूर हों ।

धूमपानका समय और गुण ।

धूमश्चद्वादशाद्वर्षाद्ग्राह्यतेऽशीतिकान्नरः ॥
कासश्वासप्रतिश्यायान्मन्याहनुशिरोरुजः ॥ ९ ॥
वातश्लेष्मविकारांश्चहन्याद्धूमःसुयोजितः ॥

अर्थ—धूमपान बारह वर्षकी अवस्थासे लेकर अस्सी वर्षकी अवस्था पर्यंत करे पश्चात् नहीं करना । तथा उस धूमकी योजना उत्तम होनेसे श्वास खॉसी पीनस गरदन ठोढी और मस्तक इनमें पीडा होती है वह और वातकफसम्बन्धी विकार ये सपूर्ण दूर होवें ।

धूमप्रयोगसे प्रकृति कैसी होती है ।

धूमोपयोगात्पुरुषःप्रसन्नेंद्रियवाङ्मनाः ॥ १० ॥

---

१ दूध सहत घी और अन्न इत्यादिक पदार्थ भक्षण करके तत्कालही धूमपान नहीं करना ।

दृढकेशद्विजश्मश्रुःसुगंधवदनोभवेत् ॥

अर्थ–धूमका उपयोग होनेसे मनुष्य चक्षुरादि इन्द्रिय वाणी और अंतःकरण इन करके प्रसन्न रहें और केश दाँत और श्मश्रु (मूँछ) तथा दाढी इनमें बल आवे।

धूममें नलीका विचार।

धूमनाडीभवेत्तत्रत्रिखंडाचत्रिपर्विका ॥ ११ ॥कनिष्ठिकापरीणाहाराजमाषागमांतरा ॥ धूमनाडीभवेद्दीर्घाशमनेरोगिणोऽगुलैः ॥ १२ ॥ चत्वारिंशन्मितैस्तद्वद्वात्रिंशद्भिर्मृदौस्मृता ॥ तीक्ष्णेचतुर्विंशतिभिःकासघ्नेषोडशोन्मितैः ॥ १३ ॥ दशांगुलैर्वामनीयेतथास्याद्व्रणनाडिका ॥ कलायमंडलंस्थूलाकुलित्थागमरंध्रिका ॥ १४ ॥

अर्थ–धूमसेवनमें नली तीन खण्ड और तीन ग्रंथि (गाँठ) करके युक्त तथा कनिष्ठिका उँगलीके बराबर मोटी तथा उसके छिद्रमें चौराका दाना भीतर चला जावे ऐसी पोली हो। इस प्रकारकी धूमसेवनकी नली रोगीको चालीस अंगुल लंबी लेनी चाहिये। मृदुसञ्ज्ञक धूमके सेवनमें बत्तीस अंगुलकी लंबी लेय। तीक्ष्ण सञ्ज्ञक धूमसेवनमें चौवीस अंगुलकी, काससंज्ञक धूमसेवनमें सोलह अंगुलकी, वामनीय[१] सञ्ज्ञक धूमके सेवनमे दश अंगुलकी लंबी नली लेनी, इसी प्रकार व्रणके धूनी देनेको नली दश अंगुलकी लंबी होनी चाहिये। तथा वह नली मटरके दानेके प्रमाण मोटी तथा उसका छिद्र कुलथीका दाना भीतर चला जाय इतना बारीक करे इस प्रकारकी नली व्रणकी धूनीको वैद्य लेवे।

धूमपानके अर्थ ईषिकाविधान।

अथेषिकांप्रलिंपेच्चसुश्लक्ष्णांद्वादशांगुलाम्॥धूमद्रव्यस्यकल्केन लेपश्चाष्टांगुलःस्मृतः ॥१५॥ कल्कंकर्षमितंलिप्त्वाछायाशुष्कंनकारयेत् ॥ ईषिकामपनीयाथस्नेहाक्तांवर्तिमादरात् ॥ १६॥ अंगारैर्दीपितांकृत्वाधृत्वानेत्रस्यरंध्रके ॥ वदनेनापिबेद्धूमंवदनेनैवसंत्यजेत्॥ १७॥नासिकाभ्यांततःपीत्वामुखेनैववमेत्सुधीः ॥ शरावसंपुटेक्षिप्त्वाकल्कमंगारदीपितम् ॥ १८ ॥ छिद्रेनेत्रंसुवेश्याथव्रणंतेनैवधूपयेत् ॥

---

१ वमन होनेके वास्ते जो धूम हो उसको वामनीय धूम कहते हैं।

अर्थ—ईषिका (नै) बारह अंगुल लम्बी लेवे और धूमसेवनकी औषधियाँ हैं उनका कल्ककरके उस कल्कको एक कर्ष लेकर उस ईषिका अर्थात् नै पर आठअंगुल पर्यंत लेप करे। फिर उसको सुखायके सूखनेपर उस ईषिकाको अलग निकास लेवे। फिर उस कल्कके छिद्रमें दूसरी स्नेहयुक्त वत्तीको रख उसके ऊपर अंगार रख जलायके नलीके छिद्रमें धरे। पश्चात् उस नली करके मुखसे धूएँको खींचकर मुखद्वाराही त्याग देवे। फिर नाकके रास्तेसे धूएँको खींचके मुखके द्वारा छोडे। तथा शरावसंपुटके ऊपरकी तरफ छिद्र कर उसमें अंगारे रखके उनके ऊपर व्रणकी धूनीकी औषधोंका कल्क कियाहुआ डालके उस शरावेके छिद्रपर नलीके छिद्रको रखके व्रणमें धूनी देवे।

कौनसी औषधका कल्क कौनसे धूममें देवे।

एलादिकल्कंशमनेस्निग्धंसर्जरसंमृदौ ॥ १९ ॥ रेचनेतीक्ष्णकल्कंचकासघ्नेक्षुद्रिकोषणम् ॥ वामनेस्नायुचर्माद्यंदद्याद्धूमस्यपानकम् ॥ २० ॥ व्रणेनिंबवचाद्यंचधूमनंसंप्रचक्षते ॥

अर्थ—शमनसंज्ञक धूपमें एलादिके औपधोंका गण है उसका कल्क करके देवे। मृदुसंज्ञक धूममें स्निग्ध (घृतादिक स्नेह) पदार्थोंमें शिलारस डालके कल्क करके देवे। रेचकसंज्ञक धूममें तीक्ष्ण औषधि (सरसो राई इत्यादिको) का कल्ककरके देवे। कासघ्नधूममे कटेरी काली मिरच इत्यादि औषधोंका कल्ककर देवे। वामनधूपमें (वमन करानेवाले धूममे) स्नायु और चर्मादिकें इनका कल्ककरके धूमपानार्थ देवे तथा व्रणमें नीम और वचका धूमपान करावे।

बालकग्रहनाशक धूनी।

अन्येऽपिधूमगेहेषुकर्तव्यारोगशांतये ॥ २१ ॥ सयथा ॥ मायूरपिच्छंनिंबस्यपत्राणिबृहतीफलम् ॥ मरिचंहिंगुमांसीचबीजं कार्पाससंभवम् ॥ २२ ॥ छागरोमाहिनिर्मोकंविष्ठाबैडालिकी तथा ॥ गजदंतश्चतच्चूर्णंकिंचिद्घृतविमिश्रितम् ॥ २३ ॥ गेहेषु-

---

१ वाग्भट्ट ग्रन्थमें एलादिक गण है उसकी औषधि ये हैं। १ इलायची २ बडी इलायची ३ शिलारस ४ कूठ ५ गधप्रियंगु ६ जटामांसी ७ नेत्रवाला ८ रोहिसतृण ९ कपूरी (शाकविशेष) १० किरमानी अजमायन ११ मोटी दालचीनी १२ तमालपत्र १३ तगर १४ अन्यपर्णिकाभेद दुर्वा १५ जाईका रस १६ नखद्रव्य १७ व्याघ्रनख १८ देवदारु १९ अगर २० विशेषधूम २१ केशर २२ कौंचकी जड २३ गूगल २४ राल २५ कुन्दरू और २६ नागचम्पा।

२ हरिणादिकोंके स्नायु नाडी और चर्म आदिशब्दसे खुर सींग हाड इत्यादि जानने।

धूपनंदत्तंसर्वान्बालग्रहांजयेत् ॥ पिशाचान्राक्षसाञ्जित्वा सर्व-ज्वरहरंभवेत् ॥ २४ ॥

अर्थ—बालग्रह दूर होनेके दूसरे प्रकारका धूम होता है तिसमेंसे मयूरपिच्छादि धूनी कहते हैं । १ मोरकी चन्द्रिका २ नीमके पत्ते ३ कटेरीके फल ४ मिरच ५ हींग ६ जटामांसी ७ कपासके विनोले ८ बकरेके बाल ९ सांपकी कांचली १० बिल्लीकी विष्टा ११ हाथीका दात इन ग्यारह औषधोंका चूर्ण कर उसमें थोडासा घी मिलायके इस चूर्णकी घरमें धूनी देवे तो संपूर्ण बालग्रह पिशाच और राक्षस इनके सर्व उपद्रव तथा संपूर्ण ज्वर दूर हों ।

धूमपानमें परिहार ।

परिहारस्तुधूमेषुकार्योरेचननस्यवत् ॥
नेत्राणिधातुजान्याहुर्नलवंशादिजान्यपि ॥ २५ ॥

इति श्रीदामोदरतनयशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायांचिकित्सास्थाने उत्तरखंडे धूमपानविधिर्नामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अर्थ—रेचकसंज्ञक नस्यमें रोगोंके परिहार विषयमें जो उपाय कहा है सो इस धूमपानमें करना चाहिये । नलीका मुख सुवर्णादि धातुका अथवा नरसल अथवा बाँस इत्यादिकोंका करे ।

इति श्रीमाथुरदत्तरामविरचितभाषामाथुरीटीकायामुत्तरखंडस्य नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः १०.

गंडूष और कवल तथा प्रतिसारणकी विधि ।

चतुर्विधः स्याद्गंडूषःस्नैहिकःशमनस्तथा ॥
शोधनोरोपणश्चैवकवलश्चापितद्विधः ॥ १ ॥

अर्थ—गंडूष[1] चार प्रकारका है १ स्नैहिक २ शमन ३ शोधन और ४ रोपण उसी प्रकार कवल[2]भी इन्हीं भेदों करके चार प्रकारका है ।

---

१ गंडूष कहिये द्रवपदार्थ करके कुल्ले करनेका प्रकार ।

२ कवल कहिये पदार्थको मुखमें गेरके चवानेका प्रकार ।

स्नैहिकादिकगंडूषोंकी दोषभेदकरके योजना।

**स्निग्धोष्णैःस्नैहिकोवातेस्वादुशीतैःप्रसादनः ॥ पित्तेकट्वम्ललव-
णैरुष्णैःसंशोधनःकफे ॥ २ ॥ कषायतिक्तमधुरैःकटुष्णोरोप-
णव्रणे ॥ चतुःप्रकारोगंडूषःकवलश्चापिकीर्तितः ॥ ३ ॥**

अर्थ—स्निग्ध और उष्ण इन पदार्थों करके जो कुरला (कुल्ला) करना उसे स्नैहिक गंडूष जानना । यह वायुरोगमें करे । मधुर और शीतल पदार्थोंकरके प्रसादन कहिये शमनगडूष जानना यह पित्तरोगमें देवे । तीक्ष्ण खट्टे खारी और उष्ण इन पदार्थोंकरके शोधनगंडूष जानना । यह कफरोगमें योजन करे । कषैले कडुए और मधुर इन पदार्थोंकरके रोपण गडूष जानना । यह गरम २ व्रणपर योजना करे । इसीप्रकार कवलभी चार प्रकारका जानना ।

गंडूष और कवलमें भेद।

**असंचारीमुखेपूर्णैर्गंडूषःकवलश्चरः ॥
तत्रद्रव्येणगंडूषःकल्केनकवलःस्मृतः ॥ ४ ॥**

अर्थ—काढे आदि जो द्रवपदार्थ है उनसे मुखको भरके जैसेका तैसाही रहने देवे । फिर थोडी देरके बाद मुखसे पटक देनेको गडूष (कुल्ला) कहते हैं । एवं कल्कादिक पदार्थको मुखमे इधर उधर फिरायके मुखमे रखनेको कवल कहते हैं ।

गंडूष और कवलीऔषधोंका प्रमाण।

**दद्याद्द्रवेषुचूर्णंचगंडूषेकोलमात्रकम् ॥
कर्षप्रमाणःकल्कश्चदीयतेकवलेबुधैः ॥ ५ ॥**

अर्थ—गडूषमें काढआदि द्रव द्रव्य है उनमें चूर्ण एक कोल डाले तथा कवलमें १ कर्ष प्रमाण कल्ककी योजना करे ।

कौनसी अवस्थामें और कितने कुल्ले करे।

**धार्यतेपञ्चमाद्वर्षाद्गंडूषकवलादयः ॥
गंडूषात्सुस्थितःकुर्यात्स्विन्नभालगलादिकः ॥ ६ ॥
मनुष्यस्त्रींस्तथापंचसप्तवादोषनाशनात् ॥**

अर्थ—पाचवर्षके पश्चात् अर्थात् पांचवर्षकी आयुके पीछे इस प्राणीको गडूप और कवल ग्रहण करने चाहिये । मनुष्य स्वस्थचित्त होके बैठे । फिर रोग दूर होनेको कपाल गला तथा आदिशब्दसे मुख इनमें थोडा पसीना आनेपर्यंत तीन अथवा पांच अथवा सात गंडूप करे। अथवा दोष दूर होने पर्यंत करे ।

गंडूषधारणमें दूसरा प्रमाण ।

कफपूर्णास्यतांयावच्छेदोदोषस्यवाभवेत् ॥ ७ ॥
नेत्रघ्राणस्रुतिर्यावत्तावद्गंडूषधारणम् ॥

अर्थ—कफसे मुखभर आवे तबतक अथवा दोषोंका छेदन होनेपर्यंत अथवा नेत्र नाक इनमें स्राव छूटने पर्यंत गडूष धारण करे ।

वादीके रोगमें स्नैहिकगंडूष ।

तिलकल्कोदकंक्षीरंस्नेहोवास्नैहिकेहितः ॥ ८ ॥

अर्थ—तिलोंका कल्क और जल तथा दूध और तेल आदि चिकने पदार्थ इनको स्नैहिक गडूषमें योजना करना चाहिये ।

पित्तरोगमें शमनसंज्ञक गंडूष ।

तिलानीलोत्पलंसर्पिःशर्कराक्षीरमेवच ॥
सक्षौद्रोहनुवक्त्रस्थोगंडूषोदाहनाशनः ॥ ९ ॥

अर्थ—तिल नीला कमल घी खाँड और दूध ये सब पदार्थ एकत्रकर इसमें सहत डालके कुल्लेकरे तो पित्तसबबी ठोढी और मुख इनमें जो दाह होय सो दूर होवे ।

व्रणादिरोगोंमें मधुगंडूष ।

वैशद्यंजनयत्यास्येसंदधातिमुखव्रणान् ॥
दाहतृष्णाप्रशमनंमधुगंडूषधारणम् ॥ १० ॥

अर्थ—सहतको जलमें मिलायके कुल्ले करे तो मुखके घाव और छाले पडें तथा दाह और तृषा ये रोग दूर होकर मुखमें स्वच्छता आती है ।

विषादिकोंपर गंडूष ।

विषक्षाराग्निदग्धेचसर्पिर्धार्यंपयोऽथवा ॥

अर्थ—विषदोष, क्षारादिजन्य विकार, अग्निदाहजन्य विकार इनमें घी अथवा दूधके कुल्ले करे ।

दाँतोंके हिलनेपर गंडूष ।

तैलसैंधवगंडूषोदंतचालेप्रशस्यते ॥ ११ ॥

अर्थ—तिलोंका तेल और सेंधानमक इनको एकत्रकरके कुल्ले करे तो हिलतेहुए दाँत जमकर मजबूत होजावें ।

मुखशोषपर गंडूष ।

शोषंमुखस्यवैरस्यंगंडूषःकांजिकोजयेत् ॥

अर्थ—मुखशोष तथा मुखकी विरसता इनमें काँजीके कुरले करे तो मुखशोष और विरसता दूर हो।

कफपर गंडूष।

सिंधुत्रिकटुराजीभिरार्द्रकेणकफेहितः॥ १२॥

अर्थ—सैंधानमक और त्रिकुटा (सोंठ मिरच और पीपल) तथा राई इनका चूर्णकर अदरखके रसमें मिलायके कुरले करे तो कफका दोष दूरहोवे।

कफ और रक्तपित्तपर गंडूष।

त्रिफलामधुगंडूपःकफासृक्पित्तनाशनः॥

अर्थ—त्रिफलाके चूर्णको सहतमें मिलाय कुल्ले करनेसे कफ और रक्तपित्त दूर होवे।

मुखपाक (छालेपर) गंडूष।

दार्वीगुडूचीत्रिफलाद्राक्षाजात्यश्वपल्लवः॥ १३॥ यवासश्वेति तत्क्वाथः षष्ठांशःक्षौद्रसंयुतः॥ शीतोमुखेधृतोहन्यान्मुखपाकं त्रिदोषजम्॥ १४॥

अर्थ—दारुहल्दी, गिलोय, त्रिफला, दाख, चमेलीके पत्ते और जवासा ये सब औषध समान भाग लेकर काढा करे। इस काढेका छठा भाग सहत मिलायके उस काढेको शीतल करके कुल्ले करे तो त्रिदोषजन्य मुखपाक (मुखके छाले) दूर होवें।

गंडूषके सदृश प्रतिसारण और कवल।

यस्यौषधस्यगंडूपस्तथैवप्रतिसारणम्॥
कवलश्चापितस्यैवज्ञेयोऽत्रकुशलैर्नरैः॥ १५॥

अर्थ—जिस औषधिका गंडूष उसी औषधका प्रतिसारण (मंजन) जानना तथा उसी औषधका कवलभी कुशल वैद्य जाने।

कवलका प्रकार।

केशरंमातुलिंगस्यसैंधवव्योपसंयुतम्॥
हन्यात्कवलतोजाड्यमरुचिंकफवातजाम्॥ १६॥

अर्थ—बिजोरेकी केशर सैंधानमक और त्रिकुटा (सोंठ मिरच पीपल) ये औषध एकत्र कर इनका कवल करनेसे मुखको जडता तथा कफवातजन्य अरुचि ये दूर हों।

प्रतिसारणके भेद।

कल्कोऽवलेहश्चूर्णंचत्रिविधंप्रतिसारणम्॥

अंगुल्यग्रगृहीतंचयथास्वंमुखरोगिणाम् ॥ १७ ॥

अर्थ–कल्क अवलेह और चूर्ण इन भेदोंसे प्रतिसारण तीन प्रकारका है । उसको मुखरोगी मनुष्यके जैसा दोष होय उसीके अनुसार उँगलीके आगेके पेरुआमे भरके जीभको तथा सपूर्ण मुखमें लगावे ।

प्रतिसारणचूर्ण ।

कुष्ठंदार्वीसमंगाचपाठातिक्ताचपीतिका ॥
तेजनीमुस्तलोध्रंचचूर्णंस्यात्प्रतिसारणम् ॥ १८ ॥
रक्तस्रुतिंदंतपीडांशोथंदाहंचनाशयेत् ॥

अर्थ–१ कूठ २ दारुहल्दी ३ लजालू ४ पाढ ५ कुटकी ६ मजीठ ७ हल्दी ८ नागरमोथा और ९ लोध इन नौ औषधोंका चूर्ण करके जीभपर तथा सपूर्ण मुखमें उँगलीके पेरुआसे रगडे तो दाँतोंके मसूढोसे रुधिरका गिरना, दाँतोंमे पीडाका होना, सूजन, दाह ये रोग दूरहो । इस चूर्णको प्रतिसारण अर्थात् मजन कहते है ।

गंडूषादिके हीनयोगादि होनेके लक्षण ।

हीनयोगात्कफोत्क्लेशोरसाज्ञानारुचीतथा ॥ १९ ॥
अतियोगान्मुखेपाकःशोषस्तृष्णाक्लमोभवेत् ॥

अर्थ–गडूषादिकोंका हीनयोग (अल्पयोग) होनेसे कफका आधिक्य होता है । मधुरादि-पदार्थोंसे रसका ज्ञान नही रहता और अन्नादिकोपर अरुचि होती है । गडूषादिकोका अत्यंत योग होनेसे मुखपाक अर्थात् मुखमे छाले होजावें तथा शोष और प्यास ये लक्षण होते हैं ।

शुद्धगंडूषके लक्षण ।

व्याधेरपचयस्तुष्टिर्वैशद्यंवक्त्रलाघवम् ॥
इंद्रियाणांप्रसादश्चगंडूषेशुद्धिलक्षणम् ॥ २० ॥
इति श्रीदामोदरसुतशार्ङ्गधरप्रणीतायांसंहितायां चिकित्सास्थाने
उत्तरखंडेगंडूषादिविधिर्नामदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अर्थ–गडूषादिकोंका उत्तम योग होनेसे व्याधिका नाश अतःकरणमे सतोष मुखमे निर्मलपन हलकापन रसनादिक इन्द्रियोंमे प्रसन्नता ये लक्षण होते हैं ।

इति श्रीमाथुरदत्तरामविरचितभाषामाथुरीटीकायामुत्तरखण्डस्य दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथैकादशोऽध्यायः ११.



लेपकी विधि।

आलेपस्यचनामानिलिप्तोलेपश्चलेपनम् ॥ दोषघ्नोविषहावर्ण्यो मुखलेपस्त्रिधामतः ॥ १ ॥ त्रिप्रमाणश्चतुर्भागस्त्रिभागार्धांगुलोन्नतः ॥ आर्द्रोव्याधिहरःसस्याच्छुष्कोदूषयतिच्छविम् ॥ २ ॥

अर्थ—लिप्त लेप और लेपन ये तीन नाम लेपके हैं उसीको आलेप कहते हैं। वह लेप दोषघ्न विषघ्न और वर्ण्य इन भेदोंकरके मुखलेप तीन प्रकारका है। उस लेपके प्रमाण तीन हैं जैसे एक अंगुल ऊँचेको दोषघ्न जानना, पौन अंगुलके प्रमाण ऊँचे लेपको विषघ्न जानना और जो आधे अंगुल ऊँचा होवे उसे वर्ण्य जानना। ऐसे तीन प्रमाण जानने। जो आर्द्र (गीला) लेप है उसे रोगहरणकर्त्ता जानना। जो शुष्क (करडा) लेप है उसे शरीरकी कांतिको दूषित करनेवाला जानना।

दोषघ्न लेप।

पुनर्नवांदारुशुंठीसिद्धार्थंशिग्रुमेवच ॥
पिष्टांचैवारनालेनप्रलेपः सर्वशोथहा ॥ ३ ॥

अर्थ—१ पुनर्नवा (सॉठ) २ देवदारु ३ सोंठ ४ सफेदसरसो और ५ सहजनेकी छाल ये पांच औषधि समान भाग लेकर कॉजीमें पीस सूजनपर लेप करे तो नौ प्रकारकी सूजन दूर होवे।

दाहशांतिका लेप।

विभीतफलमज्जातुलेपोदाहार्तिनाशनः ॥

अर्थ—बहेडेके भीतरकी गिरीको बारीक पीस देहमें लेप करे तो दाहसंबंधी पीडा दूर हो।

दशांगलेप।

शिरीषंमधुयष्टीचतगरंरक्तचंदनम् ॥ ४ ॥ एलामांसीनिशायुग्मंकुष्ठंवालकमेवच ॥ इति संचूर्णलेपोऽयंपंचमांशघृतप्लुतः ॥ ५ ॥

---

१ सूजन खुजली इत्यादि रोगोंका दूर कर्त्ता जानना।

२ मिलाए बच्छनाग इत्यादिकोंके विषको दूर करनेवाला।

३ मुख और त्वचाको कांति देनेवाला।

जलेनक्रियतेसुज्ञैर्दशांगइतिसंज्ञितः ॥ विसर्पान्विषविस्फोटा-
ञ्छोथदुष्टव्रणाञ्जयेत् ॥ ६ ॥

अर्थ–१ सिरसकी छाल २ मुलहटी ३ तगर ४ लालचदन ५ इलायची ६ जटामासी ७ हल्दी ८ दारुहल्दी ९ कूट और १० नेत्रवाला इन दश औषधोंको समान भागले बारीक पीस चूर्ण करे फिर जलमे सानके रोगके स्थानपर लेप करे तो विसर्परोग, विषदोष, विस्फोट, सूजन, दुष्टव्रण ये सर्व रोग दूर हों । इस लेपको दशागलेप कहते हैं ।

विषघ्नलेप ।

अजादुग्धतिलैर्लेपोनवनीतेनसंयुतः ॥
शोथमारुष्करंहंतिलेपोवाकृष्णमृत्तिकैः ॥ ७ ॥

अर्थ–बकरीके दूधमे तिलोको पीसके उसमे मक्खन मिलाय लेप करे अथवा काली मिट्टी और तिल इन दोनोंको एकत्र पीस इसमें मक्खन मिलाय लेप करे तो भिलायेकी सूजन दूर होवे ।

दूसरा प्रकार ।

लांगल्यतिविषालाबूजालिनीबीजमूलकैः ॥
लेपोधान्यांबुसंपिष्टःकीटविस्फोटनाशनः ॥ ८ ॥

अर्थ–१ कलियारी २ अतीस ३ कडुई तूंबीके बीज ४ कडुई तोरईके बीज ५ मूलीके बीज इन पाच औषधोंको समान भाग लेकर धान्याबु (काँजी) में पीसके कीटविशेषके दंशपर लेप करे तथा विस्फोटकरोगपर लेप करे तो ये विकार दूर हों ।

मुखकांतिकारक लेप ।

रक्तचंदनमंजिष्ठालोध्रकुष्ठप्रियंगवः ॥
वटांकुरमसूराश्चव्यंगघ्नामुखकांतिदाः ॥ ९ ॥

अर्थ–१ लालचदन २ मजीठ ३ लोध ४ कूठ ५ फूलप्रियंगु ६ वडके अंकुर ७ मसूर ये सात औषधी समभाग लेकर पानीमें पीस लेप करे तो झाई रोग दूरहो और यह लेप मुखपर कांति करता है ।

दूसरा प्रकार ।

मातुलुंगजटासर्पिःशिलागोशकृतोरसः ॥
मुखकांतिकरोलेपःपिटिकाव्यंगकालजित् ॥ १० ॥

अर्थ—बिजौरेकी जड घी मनशिल और गौके गोबरका रस ये चार औषध एकत्र कर मुखपर लेप करे तो यह लेप मुखपर कांति करे और मुँहाँसे व्यंग और नीलिका ये रोग दूर हों।

मुँहाँसेनाशक लेप।

लोध्रधान्यवचालेपस्तारुण्यपिटिकापहः॥ तद्वद्गोरोचनायुक्तं मरीचंमुखलेपनात्॥११॥सिद्धार्थकवचालोध्रसैंधवैश्चप्रलेपनम्॥

अर्थ-लोध धनिया और वच ये तीन औषधि समान भाग ले जलमें पीस लेप करे अथवा गोरोचन और काली मिरच इन दोनोंको जलसे बारीक पीसके लेप करे। अथवा सफेद सरसों वच लोध और सैंधानमक इन चार औषधोंको जलसे बारीक पीसके लेप करे। इस प्रकार ये तीन प्रकारके लेप मुखके मुँहाँसे दूर करनेके वास्ते जानने।

व्यंगरोगपर लेप।

व्यंगेषुचार्जुनत्वग्वामंजिष्ठावासमाक्षिकः॥१२॥ लेपःसनवनीतोवाश्वेताश्वखुरजामषी॥

अर्थ—कोहवृक्षकी छालका चूर्ण अथवा मंजीठका चूर्ण अथवा सफेद घोडेके खुरसंबंधी हाडकी राख ये तीन औषध पृथक् २ सहत और मक्खनमें मिलायके पृथक् २ लेप करे तो व्यंग रोग दूर होवे।

मुखकी झाईपर लेप।

अर्कक्षीरहरिद्राभ्यांमर्दयित्वाविलेपनात्॥१३॥ मुखकार्ष्ण्यंशमंयातिचिरकालोद्भवंध्रुवम्॥

अर्थ—आकके दूधमें हलदीको पीस लेप करे तो मुखकी बहुत दिनकी कालौंच (झाई) दूर होवे।

मुँहाँसे आदिपर लेप।

वटस्यपांडुपत्राणिमालतीरक्तचंदनम्॥१४॥कुष्ठंकालीयकं लोध्रमेभिर्लेपंप्रयोजयेत्॥तारुण्यपिटिकाव्यंगनीलिकादिवि-नाशनम्॥१५॥

अर्थ—बडके पीले पत्ते चमेली लालचंदन कूठ दारुहलदी और लोध इन सब औषधोंको एकत्र पीसके लेप करे तो जवानीके मुँहासे और व्यंग नीलिकादिक रोग दूर होवे।

अरुंषिकारोगपर लेप ।

पुराणमथपिण्याकंपुरीषंकुक्कुटस्यच ॥
मूत्रपिष्टःप्रलेपोऽयंशीघ्रंहन्यादरुंषिकाम् ॥ १६ ॥

अर्थ—तिलोकी पुरानी खल और मुरगेकी वींठ इन दोनोको गोमूत्रमें पीस लेप करे तो अरुंषिका दूर होवे ।

दूसरा प्रकार ।

खदिरारिष्टजंबूनांत्वग्भिर्वासूत्रसंयुतैः ॥
कुटजत्वक्सैंधवंवालेपोहन्यादरुंषिकाम् ॥ १७ ॥

अर्थ—खैर नीम और जामुन इन तीनोंकी छालका चूर्ण करके गोमूत्रसे पीस लेप करे अथवा कुडाकी छाल और सैंधानमक ये दो औषध गोमूत्रमें पीस लेप करे तो अरुंषिकारोग दूर होवे ।

दारुणरोगपर लेप ।

प्रियालबीजमधुककुष्ठमाषैःससैंधवैः ॥
कार्योदारुणकेमूर्ध्निप्रलेपोमधुसंयुतः ॥ १८ ॥

अर्थ—१ चिरोंजी २ मुलहटी ३ कूठ ४ उडद और ५ सैंधानमक ये पाच औषध समान ले वारीक पीस सहतमें मिलायके मस्तकमें दारुण (कहिये दारुणरोग) दूर होनेके वास्ते लेप करे ।

दूसरी विधि ।

दुग्धेनखाखसंबीजंप्रलेपाद्दारुणंजयेत् ॥ आम्रबीजस्यचूर्णंतुशि-
वाचूर्णसमंद्वयम् ॥ १९ ॥ दुग्धपिष्टःप्रलेपोऽयंदारुणंहंतिदारुणम् ॥

अर्थ—खसखसको दूधमें पीस मस्तकपर लेप करे तथा आमकी गुठली गिरी और छोटी हरड इन दोनोंको समान भाग ले चूर्ण कर दूधमें पीस लेप करे तो घोर दुर्धर दारुण रोग दूर होवे ।

इन्द्रलुप्तपर लेप ।

रसास्तिक्तपटोलस्यपत्राणांतद्विलेपनात् ॥ २० ॥
इंद्रलुप्तंशमंयातित्रिभिरेवादिनैर्ध्रुवम् ॥

अर्थ—कडुये पटोलके पत्तोंका रस काढके उसका तीन दिन लेप करे तो इन्द्रलुप्त रोग निश्चय दूर होवे ।

दूसरी विधि।

इंद्रलुप्तापहोलेपोमधुनाबृहतीरसः ॥ २१ ॥
गुंजामूलफलैर्वापिभल्लातकरसोऽपिवा ॥

अर्थ–कटेरीका रस निकाल उसमे सहत मिलायके लेप करे अथवा घूंघचीकी जडका अथवा घूंघची (चिरमिठी) के रसको सहतमें मिलायके लेप करे। अथवा भिलाएके प- त्तोंका रस निकाल उसमें सहत मिलाय लेप करे तो इन्द्रलुप्तरोग दूर हो।

केशवृद्धिपर लेप।

गोक्षुरस्तिलपुष्पाणितुल्येचमधुसर्पिषी ॥ २२ ॥
शिरःप्रलेपनंतेनकेशसंवर्धनंपरम् ॥

अर्थ–गोखरू तिलके फूल इन दोनोको समान भाग लेके चूर्ण करे। और सहत तथा घी ये दोनों बराबर लेके इसमें चूर्णको सानके मस्तकपर लेप करे तो केश बढें।

केश जमानेवाला लेप।

हस्तिदंतमषींकृत्वाछागीदुग्धंरसांजनम् ॥ २३ ॥
रोमाण्यनेनजायंतेलेपात्पाणितलेष्वपि ॥

अर्थ–हाथीके दाँतको जलायके उसकी राख कर लेवे यह राख और रसोत इन दोनोंको बकरीके दूधमे पीस जिस स्थानके बाल उडगये हों उस जगह लेप करे तो बाल उग आवे। यह लेप हाथोंको हथेली पर करनेसे हथेलीमें भी बाल अवश्य ऊगें।

इन्द्रलुप्तरोगपर लेप।

यष्टींदीवरमृद्वीकातैलाज्यक्षीरलेपनैः ॥ २४ ॥
इंद्रलुप्तःशमंयातिकेशाःस्युःसघनादृढाः ॥

अर्थ–मुलहटी कमल और दाख इन तीन औषधोंको तिलोंके तेल गौका दूध और घी इनमे पीसके लेप करे तो इन्द्रलुप्तरोग दूर हो तथा बाल दृढ और सघन होवें।

केश आनेपर दूसरा लेप।

चतुष्पदानांत्वग्रोमनखशृंगास्थिभस्मभिः ॥ २५ ॥
तैलेनसहलेपोऽयंरोमसंजननःपरः ॥

अर्थ–बकरीआदि चौपाए जीवोंकी त्वचा (चाम) बाल नख सींग और हाड इनकी भस्म कर तिलके तेलमें मिलायके लेप करे तो यह लेप नवीन केश (बाल) आनेमें अत्यत उत्तम है।

केश काले करनेका लेप ।

इंद्रवारुणिकाबीजतैलेनाभ्यंगमाचरेत् ॥ २६ ॥
प्रत्यहंतेनकालाग्निसन्निभाःकुंतलाघ्लम् ॥

अर्थ—इन्द्रायनके बीजोका तेल पातालयंत्र करके निकाललेय फिर इसको सफेद बालोंपर नित्य लेप करे तो बाल अत्यंत काले होवें ।

दूसरी विधि ।

अयोरजोभृंगराजस्त्रिफलाकृष्णमृत्तिका ॥ २७ ॥
स्थितमिक्षुरसेमासंलेपनात्पलितंजयेत् ॥

अर्थ—१ लोहका चूर्ण २ भाँगरा ५ त्रिफला (हरड बहेडा आँवला) ६ कालीमिट्टी ये छः औषध समान भाग ले चूर्ण कर ईखके रसमें डालके एक महीने पर्यंत धरा रहने दे । फिर अकालमे जो सफेद बाल हुए हों उनपर यह लेप करे तो काले बाल होवें ।

तीसरा प्रकार ।

धात्रीफलत्रयंपथ्येद्वेतथैकंबिभीतकम् ॥२८॥ पंचाम्रमज्जालोहस्यकर्षैकंचप्रदीयते ॥ पिष्ट्वालोहमयेभांडेस्थापयेदुषितं निशि ॥ २९ ॥ लेपोऽयंहंतिनचिरादकालपलितंमहत् ॥

अर्थ—आमले तीन, हरड दो, बहेडेका फल एक, आमकी गुंठलीके भीतरकी मिगी पाच, लोहचूर्ण एक कर्ष इन संपूर्ण औषधोंको लोहकी कढाहीमे बारीक पीस सब रात्रि उसी प्रकार धरी रहने दे। दूसरे दिन लेप करे तो जिस मनुष्यके थोडी अवस्थामे सफेद बाल होगएहों वे इस लेपसे तत्काल काले होवे ।

चतुर्थ प्रकार ।

त्रिफलानीलिकापत्रंलोहंभृंगरजःसमम् ॥ ३० ॥
अजामूत्रेणसंपिष्टंलेपात्कृष्णीकरंस्मृतम् ॥

अर्थ—त्रिफला और नीलके पत्ते तथा लोहका चूर्ण एवं भांगरा इन सब औषधोंको समान भाग लेके बकरीके मूत्रसे पीस लेप करे तो यह लेप सफेद बालोके काले करनेमे परमोत्तम है ।

पांचवाँ प्रकार ।

त्रिफलालोहचूर्णंचदाडिमत्वग्बिसंतथा ॥ ३१ ॥ प्रत्येकंपंच

पलिकंचूर्णंकुर्याद्विचक्षणः॥भृंगराजरसस्यापिप्रस्थषट्कंप्रदापयेत् ॥३२॥ क्षिप्त्वालोहमयेपात्रेभूमिमध्येनिधापयेत् ॥ मासमेकंततःकुर्याच्छागीदुग्धेनलेपनम् ॥३३॥ कूर्चेशिरसिरात्रौच संवेष्ट्यैरंडपत्रकैः ॥ स्नपेत्प्रातस्ततःकुर्यात्स्नानंतेनचजायते॥ ॥ ३४ ॥ पलितस्यविनाशश्चत्रिभिर्लेपैर्नसंशयः ॥

अर्थ—त्रिफला लोहका चूरा अनारकी छाल और कमलका कंद ये प्रत्येक पाच २ पल लेव। सबको बारीक पीस चूर्ण करे। फिर छः प्रस्थ भाँगरेका रस निकालके एक लोहेकी कढाहीमें भरके और पूर्वोक्त त्रिफला आदिका चूर्ण डालके एक महीने पर्यंत जमीनमे गाड देवे । पश्चात् बाहर निकालके इसमें बकरीका दूध मिलायके मस्तकमें रात्रिके समय लेप करे और उस लेपपर अंडके पत्ते बाँधके सोय जावे। प्रातःकाल उठके स्नान करे, इसप्रकार तीन लेप करे तो जिस मनुष्यके युवावस्थामें सफेद बाल होगए हों वे निश्चय बहुत जल्दी काले होजावे।

केशनाशक प्रयोग।

शंखचूर्णस्यभागौद्वौहरितालंचभागिकम् ॥३५॥ मनःशिला चार्धभागास्वर्जिकाचैकभागिका ॥ लेपोऽयंवारिपिष्टस्तुकेशानुत्पाट्यदीयते ॥ ३६ ॥ अनयालेपयुक्त्याचसप्तवेलंप्रयुक्तया ॥ निर्मूलकेशस्थानंस्यात्क्षपणस्यशिरोयथा ॥ ३७ ॥

अर्थ—शंखचूर्ण दो भाग हरताल एक भाग मनशिल आधा भाग सज्जीखार एक भाग इन सबको जलमें पीसके जिस जगहके बाल निर्मूल करनेहों उस जगह उस्तरासे बालोंको दूर करके इस औषधका लेप करे। इसप्रकार युक्तिसे सात लेप करे तो बालोंके आनेका स्थान निर्मूल होवे अर्थात् फिर उस जगह बाल नहीं आवें। संन्यासीके मस्तक प्रमाण चिकना होजाय।

दूसरी विधि।

तालकंशाणयुग्मंस्यात्षट्शाणंशंखचूर्णकम् ॥ द्विशाणिकंपलाशस्यक्षारंदत्वाप्रमर्दयेत् ॥३८॥ कदलीदंडतोयेनरविपत्ररसेनवा ॥ अस्यापिसप्तभिर्लेपैर्लोमशातनमुत्तमम् ॥ ३९ ॥

अर्थ—हरताल २ शाण और शंखका चूर्ण छः शाण तथा पलाश (ढाक) का खार २ शाण

इन सब औषधोंको केलाके डंडेके रसमें अथवा आकके पत्तोंके रसमें खरलकर केश दूर करनेकी जगह सातवार लेप करे । यह लेप केश दूर करनेके विषयमें परमोत्तम है ।

सफेदकोढ दूरहोनेका औषध ।

सुवर्णपुष्पीकासीसंविडंगानिमनःशिला ॥
रोचनासैंधवंचैवलेपनाच्छ्वित्रनाशनम् ॥ ४० ॥

अर्थ—१ पीली चमेली २ हीराकसीस ३ वायविडंग ४ मनशिल ५ गोरोचन ६ सेंधानमक ये छः औषध समान भाग ले गोमूत्रसे पीस लेप करे तो श्वित्रकुष्ट (सफेद कोढ) दूर हो ।

दूसरी विधि ।

वायस्यैडगजाकुष्ठकृष्णाभिर्गुटिकाकृता ॥
बस्तमूत्रेणसंपिष्टाप्रलेपाच्छ्वित्रनाशिनी ॥ ४१ ॥

अर्थ—१ काकतुंडी २ पनारके बीज ३ कूठ ४ पीपल ये चार औषध समान भाग लेकर बकरेके मूत्रसे पीसके लेप करे तो श्वित्रकुष्ट दूर होवे ।

तीसरी विधि ।

बाकुचीवेतसोलाक्षाकाकोदुंबरिकाकणा॥रसांजनमयश्चूर्णंति-
लाःकृष्णास्तदेकतः ॥ ४२ ॥ चूर्णयित्वागवांपित्तैःपिष्ट्वाचगु-
टिकाकृता ॥ अस्याःप्रलेपाच्छ्वित्राणिप्रणश्यंत्यतिवेगतः ॥४३॥

अर्थ—१ बावची २ अमलवेत ३ लाख ४ कठूमर ५ पीपल ६ सुरमा ७ लोहका चूर्ण ८ काले तिल ये आठ औषध समान भाग लेकर चूर्ण करे । फिर गौके पित्तसे इन सब औषधोंको खरल करके गोली करे । फिर लेप करे इस लेपके प्रभावसे श्वित्रकुष्ट बहुत जल्दी दूर होवे ।

विभूतपर लेपन ।

धात्रीसर्जरसश्चैवयवक्षारश्चचूर्णितैः ॥
सौवीरेणप्रलेपोऽयंप्रयोज्यःसिध्मनाशने ॥ ४४ ॥

अर्थ—१ आँवले २ राल ३ जवाखार इन तीन औषधोंको सौवीरसे अथवा काँजीमें पीसके विभूत (वनरफ) रोग दूर करनेको प्रयुक्त करे ।

---

१ सौवीर बनानेकी विधिमध्यमखण्डमें सन्धानप्रकरणमें लिखी है ।

दूसरा प्रकार।

दार्वीमूलकबीजानितालकंसुरदारुच॥ तांबूलपत्रंसर्वाणिकार्षिकाणिपृथक्पृथक्॥ ४५॥ शंखचूर्णंशाणमात्रंसर्वाण्येकत्रचूर्णयेत्॥ लेपोऽयंवारिणापिष्टःसिध्मनांनाशनःपरः॥ ४६॥

अर्थ—१ दारुहल्दी २ मूलीके बीज ३ हरताल ४ देवदारु ५ नागरबेलके पान ये पाच औषध एक २ कर्ष तथा शंखका चूर्ण १ शाण ले। इन सब औषधोंका चूर्ण करके जलसे पीसके लेप करे तो सिधून रोग दूर हो।

नेत्ररोगपर लेप।

हरीतकीसैंधवंचगैरिकंचरसांजनम्॥
बिडालकोजलेपिष्टःसर्वनेत्रामयापहः॥ ४७॥

अर्थ—१ हरड २ सैंधानमक ३ गेरू और ४ रसोत ये चार औषध समान भाग ले जलसे पीसके बिडालक अर्थात् नेत्रोके बाहर लेप करे। इसको बिडालक कहते हैं। इस लेप करके नेत्रके सर्व विकार दूर होवे।

दूसरी विधि।

रसांजनंव्योषयुतंसंपिष्टंवटकीकृतम्॥
कंडूपाकान्वितांहंतिलेपादंजननामिकाम्॥ ४८॥

अर्थ—१ रसाजन, व्योष कहिये २ सोठ ३ मिरच ४ पीपल ये चार औषध समान भाग ले पानीसे पीस गोली करे। इसको जलमें घिसके खुजलीयुक्त तथा पाकयुक्त अंजननामिका (गुहेरी) जो नेत्रोंके कोएनपर होती है उसके दूर करनेको लगावे तो गुहेरी दूर हो।

खुजलीआदिपर लेप।

प्रपुन्नाटस्यबीजानिबाकुचीसर्षपास्तिलाः॥
कुष्ठंनिशाद्वयंमुस्तंपिष्टातक्रेणलेपतः॥ ४९॥
प्रलेपादस्यनश्यंतिकंडूदद्रूविचर्चिकाः॥

अर्थ—१ पमारके बीज २ बावची ३ सरसों ४ नील ५ कूठ ६ हल्दी ७ दारुहल्दी ८ नागरमोथा ये आठ औषध समान भाग ले चूर्ण करे। छाछमें पीसके इसका लेपकरे तो खुजली दाद और विचार्चिका (पैरोंका फटना) ये रोग दूर होवें।

दादखुजली आदिपर लेप ।

हेमक्षीरीविडंगानिदरदंगंधकस्तथा ॥ ९० ॥ दद्रुघ्नःकुष्टसिंदूरं सर्वाण्येकत्रमर्दयेत् ॥ धत्तूरनिंवतांबूलीपत्राणांस्वरसैःपृथक् ॥९१॥ अस्यप्रलेपमात्रेणपामादद्रूविचर्चिकाः॥कंडूश्चरक्सश्चैवप्रशमंयांतिवेगतः ॥ ९२ ॥

अर्थ–१ चोक २ वायविडग ३ हींगलू ४ गधक ५ पमारके वीज ६ कूठ ७ सिंदूर ये सात औषध समान भाग लेकर धतूरेके पत्ते तथा नीमके पते और नागरवेलके पत्तोंका रस इनमें पृथक् २ खरलकर एक एकका लेप करे तो खाज दाद और विचर्चिका कडू और रक्स (सूखी खाज) रोग (कुष्टरोगका भेद) सपूर्ण दूर होवें ।

दूसरा प्रकार ।

दूर्वाभयासैंधवंचचक्रमर्दःकुठेरकः ॥
एभिस्तक्रयुतोलेपःकंडूदद्रूविनाशनः ॥ ९३ ॥

अर्थ–१ दूव २ छोठी हरड ३ सैंधानमक ४ पमारके वीज ५ वनतुलसी ये पांच औषध समान भाग ले छाछमे पीस लेप करे तो खुजली और दाद ये दूर हों ।

रक्तपित्तादिकोंपर लेप ।

चंदनोशीरयष्ट्याह्वाबलाव्याघ्रनखोत्पलैः ॥
क्षीरपिष्टैःप्रलेपःस्याद्रक्तपित्तशिरोरुजि ॥ ९४ ॥

अर्थ–१ लालचंदन २ नेत्रवाला ३ मुलहटी ४ गगेरनकी जड ५ ववनखी ६ कमल ये छः औषध समान भाग ले दूधमे पीस लेप करे तो रक्तपित्तसंबधी मस्तकपीडा दूर हो ।

उदर्दरोगपर लेप ।

सिद्धार्थरजनीकुष्ठप्रपुन्नाटतिलैःसह ॥
कटुतैलेनसंमिश्रमुदर्दघ्नंप्रलेपनम् ॥ ९५ ॥

अर्थ–१ सफेद सरसों २ हल्दी ३ कूठ ४ पमारके वीज ५ तिल इन पांच औषधोको समान भाग ले वारीक चूर्ण करके सरसोंके तेलमे मिलायके लेप करे तो शीतपित्तका भेद उदर्द रोग जो है वह दूर होवे ।

वातविसर्परोगपर लेप ।

रास्नानीलोत्पलंदारुचंदनंमधुकंबला ॥
घृतक्षीरयुतोलेपोवातवीसर्पनाशनः ॥ ९६ ॥

अर्थ—१ रास्ना २ नीला कमल ३ देवदारु ४ लालचंदन ५ मुलहटी ६ गंगेरनकी जड ये छः औषध समान भाग ले बारीक चूर्ण कर दूधमें अथवा घीमे सानके लेप करे तो वातविसर्प रोग दूर हो।

पित्तविसर्परोगपर।

मृणालंचंदनंलोध्रमुशीरंकमलोत्पलम् ॥
सारिवामलकंपथ्यालेपःपित्तविसर्पनुत ॥ ५७ ॥

अर्थ—१ कमलका डँठरा २ लालचंदन ३ लोध ४ नेत्रवाला ५ कमल ६ छोटा कमल ७ सारिवा ८ ऑवले ९ छोटी हरड ये नौ औषध समान भाग ले पानीसे पीस लेप करे तो पित्त-विसर्प दूर होवे।

कफविसर्पपर लेप।

त्रिफलापद्मकोशीरसमंगाकरवीरकम् ॥
नलमूलमनंताचलेपःश्लेष्मविसर्पहा ॥ ५८ ॥

अर्थ—त्रिफला कहिये १ हरड २ बहेडा ३ ऑवला ४ पद्माख ५ नेत्रवाला ६ धायके फूल ७ कनेर ८ नरसलकी जड ९ धमासा ये नौ औषध समान भाग ले जलसे पीस लेप करे तो कफ-विसर्प दूर हो।

पित्तवातरक्तपर लेप।

मूर्वानीलोत्पलंपद्मंशिरीषकुसुमैःसह ॥
प्रलेपःपित्तवातास्रेशतधौतघृतप्लुतः ॥ ५९ ॥

अर्थ—१ मूर्वा २ नीला कमल ३ पद्माख और ४ सिरसका फूल ये चार औषध समान भाग लेके चूर्ण करे तथा सौवार धुलेहुए घीमें इस चूर्णको मिलायके लेप करे तो पित्तवातरक्त दूर होवे।

नाकसे रुधिर गिरनेपर लेप।

आमलंघृतभृष्टंतुपिष्टंकांजिकवारिभिः ॥
जयेन्मूर्ध्निप्रलेपेनरक्तंनासिकयास्रुतम् ॥ ६० ॥

अर्थ—ऑवलेको घीमें भून कॉजीमे पीस मस्तकपर लेप करे तो नाकसे जो रुधिर गिरता है वह दूर होवे।

वातकी मस्तकपीडापर लेप।

कुष्ठमेरंडतैलेनलेपात्कांजिकपेषितम् ॥
शिरोऽर्तिवातजांहन्यात्पुष्पंवामुचुकुंदजम् ॥ ६१ ॥

अर्थ–कूठ अथवा मुचुकुदके फूलोको कॉजीमे पीस उसमें अंडीका तेल मिलायके वातसवधी मस्तकपीडा दूर होनेको लेपकरे ।

दूसरा प्रकार ।

देवदारुनतंकुष्ठंनलदंविश्वभेषजम् ॥
सकांजिकःस्नेहयुक्तोलेपोवातशिरोऽर्तिनुत् ॥ ६२ ॥

अर्थ–१ देवदारु २ तगर ३ कूठ ४ नेत्रवाला और ५ सोठ ये पाच औषध समान भाग ले कॉंजीसे पीस उसमे अंडीका तेल मिलायके लेप करे तो वातसंबधी मस्तकपीडा दूर होय ।

पित्तशिरोरोगपर लेप ।

धात्रीकसेरुह्रीबेरपद्मपद्मकचंदनैः ॥दूर्वोशीरनलानांचमूलैःकुर्यात्प्रलेपनम्॥६३॥शिरोर्तिंपित्तजांहन्याद्रक्तपित्तरुजंतथा ॥

अर्थ–१ आँवला २ कचूर ३ नेत्रवाला ४ कमल ५ पद्माख ६ रक्तचदन ७ दूबकी जड ८ नेत्रवाला और ९ नरसलकी जड इन नौ औषधोको जलमें पीसके लेप करे तो पित्तसंबंधी मस्तकपीडा दूर होवे ।

कफसंबंधी मस्तकपीडापर लेप ।

हरेणुनतशैलेयमुस्तैलागरुदारुभिः ॥ ६४ ॥
मांसीरास्नारुबूकैश्चकोष्णोलेपःकफार्तिनुत् ॥

अर्थ–१ रेणुका २ तगर ३ पत्थरका फूल ४ नागरमोथा ५ इलायची ६ अगर ७ देवदारु ८ जटामासी ९ रास्ना और १० अंडकी जड ये दश औषध समान भाग ले गरम जलमें पीसके कफसंबंधी मस्तकपीडापर लेप करे तो अच्छी होय ।

दूसरा प्रकार ।

शुंठीकुष्ठप्रपुन्नाटदेवकाष्ठैःसरोहिषैः ॥ ६५ ॥
मूत्रपिष्टैःसुखोष्णैश्चलेपःश्लेष्मशिरोऽर्तिनुत् ॥

अर्थ–१ सोंठ २ कूठ ३ पमारके बीज ४ देवदारु ५ रोहिषतृण ये पाच औषध समान भाग ले गोमूत्रमें पीस सुखोष्ण कहिये कुछ गरम करके लेप करे तो कफसंबंधी मस्तकपीडा दूर हो ।

सूर्यावर्त्त तथा अर्धभेदकपर लेप ।

सारिवाकुष्ठमधुकंवचाकृष्णोत्पलैस्तथा ॥ ६६ ॥
लेपःसकांजिकस्नेहःसूर्यावर्तार्धभेदयोः ॥

अर्थ-१ सारिवा २ कूठ ३ मुलहटी ४ वच ५ पीपल तथा ६ नीला कमल ये छः औषध समान भाग लेकर कॉजीमें पीस उसमें अंडीका तेल मिलायके लेप करे तो सूर्यावर्त्तरोग और आधासीसी ये रोग दूर हों।

कनपटी अनंतवात तथा सर्वशिरोरोगोंपर लेप।

वरीनीलोत्पलंदूर्वातिलाःकृष्णापुनर्नवा ॥ ६७ ॥
शंखकेऽनंतवातेचलेपःसर्वशिरोऽर्तिजित् ॥

अर्थ-१ विदारीकंद २ नीला कमल ३ दूब ४ काले तिल और ५ पुनर्नवा ये पांच औषध समान भाग लेकर पानीमें पीस लेप करे तो कनपटीकी पीडा अनंतवात और सर्व मस्तकके रोग दूर हों।

दूसरा प्रकार।

अथलेपविधिश्चान्यःप्रोच्यतेसुज्ञसंमतः ॥ ६८ ॥
द्वौतस्यकथितौभेदौप्रलेपाख्यप्रदेहकौ ॥

अर्थ-इसके अनंतर बुद्धिमानोंको मान्य ऐसे दूसरे लेपकी विधि है तिसमें एक प्रलेपाख्य और दूसरी प्रदेहक इस प्रकार दो भेद जानने।

उन दोनों लेपोंके उच्चत्वमें प्रमाण।

चर्मार्द्रमाहिषंयद्वत्प्रोन्नतंसमितिस्तयोः ॥ ६९ ॥
शीतस्तनुर्निर्विषीचप्रलेपःपरिकीर्तितः ॥
आर्द्रोघनस्तथोष्णःस्यात्प्रदेहःश्लेष्मवातहा ॥ ७० ॥

अर्थ-वे प्रलेपक और प्रदेहक ये दो लेप भैंसकी गीली चाम जितनी मोटी होती है इतने मोटे होने चाहिये। तथा उसके गुण कहते हैं कि शीतवीर्य तथा तनु अर्थात् सूक्ष्मरूप स्रोतसों (छिद्रों) में प्रवेश करनेवाले तथा निर्विषी ऐसा प्रलेपक जानना। आर्द्र कहिये द्रवयुक्त और जड तथा उष्ण कफवायुको दूर करनेवाला ऐसा प्रदेहक लेप जानना।

दोनों प्रकारके लेप किस जगह देने।

रोमाभिमुखमादेयौप्रलेपाख्यप्रदेहकौ ॥
वीर्यसम्यग्विशत्याशुरोमकूपैःशिरामुखैः ॥ ७१ ॥

अर्थ-प्रलेपाख्य और प्रदेहक ये दोनों लेप रोम सम्मुख करके देवे अर्थात् सब रोमोंको खडे करके लेप करे। इसका यह कारण है कि शिरारूप जो रोमरंध्र उनके द्वारा करके उस लेपका वीर्य उत्तम प्रकार करके शरीरमें प्रवेश करता है।

साधारणलेपविषयमें निषेध ।

नरात्रौलेपनंकुर्याच्छुष्यमाणंनधारयेत् ॥
शुष्यमाणमुपेक्षेतप्रदेहंपीडनंप्रति ॥ ७२ ॥

अर्थ—रात्रिमें लेप न करे । और उस लेपके सूखनेपर उसको धारण न करे । कारण यह है कि लेप सूखनेपर उसको लगा रहने देनेसे देहको अत्यंत पीडा होती है ।

रात्रिमें निषेधका हेतु ।

तमसापिहितोह्यूष्मारोमकूपमुखेस्थितः ॥
विनालेपेननिर्यातिरात्रौनोलेपयेत्ततः ॥ ७३ ॥

अर्थ—रात्रिमें अंधकार करके शरीरसंबंधी ऊष्मा आच्छादित हो रोमरंध्रमुखोंमें आकर रहे है और विना लेपके वह बाहर निकले है इसीसे रात्रिमें लेप न करे ।

रात्रिमें प्रलेपादिकोंकी विधि तथा योग्य प्राणी ।

रात्रावपिप्रलेपादिविधिःकार्योविचक्षणैः ॥
अपाकिशोथेगंभीरेरक्तश्लेष्मसमुद्भवे ॥ ७४ ॥

अर्थ—जिस सूजनका पाक नहीं हुआ हो उसपर तथा गंभीरसंज्ञक जो व्रण उसमें एवं रक्तकफसे उत्पन्न जो सूजन उसमें बुद्धिमान् वैद्य रात्रिमेंभी लेपादिकोंकी विधि करे अर्थात् लेप करे ।

व्रण दूर होनेपर लेप ।

आदौशोथहरोलेपोद्वितीयोरक्तसेचनः ॥ तृतीयश्चोपनाहःस्याच्चतुर्थःपाठनक्रमः॥७५॥पंचमःशोधनोभूयात्षष्ठोरोपणइष्यते॥
सप्तमोवर्णकरणोव्रणस्यैतेक्रमामताः ॥ ७६ ॥

अर्थ—प्रथम व्रणसंबंधी जो सूजन होती है उसके दूर करनेको लेप करे । दूसरा लेप व्रणमें जो रुधिर जमा रहताहै वह पिघल जावे ऐसा लेप करे । तीसरा लेप उपनाह कहिये पसीने निकालनेका प्रयोग है । चौथा लेप व्रण फूटे ऐसा करे । पांचवाँ लेप राध आदिका शोधन होय ऐसाकरे . छठा लेप रोपण कहिये व्रण भर आवे ऐसा करे । सातवाँ लेप व्रणके स्थानपर कांति आवे ऐसा करे इसप्रकार व्रण अच्छा होनेके विषयमें सात क्रम जानने । वे औषध आगे ग्रंथमें कहते हैं ।

व्रणसंबंधी वायुकी सूजनपर लेप ।

बीजपूरजटामांसीदेवदारुमहौषधम् ॥

रास्नाग्निमंथोलेपोऽयंवातशोथविनाशनः ॥ ७७ ॥

अर्थ—१ बिजोरेकी जड २ जटामांसी ३ देवदारु ४ सोंठ ५ रास्ना ६ अरनीकी जड ये छः औषध समान भाग लेके पानीमें पीस व्रणसंबंधी जो बादीकी सूजन उसके दूर करनेको लेप करे।

पित्तकी सूजपनर लेप।

मधुकंचंदनंमूर्वांनलमूलंचपद्मकम् ॥
उशीरंवालकंपद्मंपित्तशोथेप्रलेपनम् ॥ ७८ ॥

अर्थ—१ मुलहटी २ लालचदन ३ मूर्वा ४ नरसलकी जड ५ पद्माख ६ नेत्रवाला ७ खस ८ कमल ये आठ औषधि समान भाग ले जलसे पीस व्रणसबंधी पित्तकी सूजनपर लेप करे।

कफजन्य व्रणकी सूजनपर लेप।

कृष्णापुराणपिण्याकंशिग्रुत्वक्सिकताशिवा ॥
मूत्रपिष्टःसुखोष्णोऽयंप्रदेहःश्लेष्मशोथहृत् ॥ ७९ ॥

अर्थ—१ पीपल २ पुरानी खल ३ सहजनेकी छाल ४ खांड और ५ हरड ये पांच औषधि समान भाग ले गोमूत्रमें पीसके थोडा गरम करके कफसंबंधी सूजन दूर करनेको यह प्रदेहसंज्ञक लेप करे।

आगंतुक सूजन तथा रक्तजन्य सूजनपर लेप।

द्वेनिशेचंदनेद्वेचशिवादूर्वापुनर्नवा ॥ उशीरंपद्मकंलोध्रंगैरिकं चरसांजनम् ॥ ८० ॥आगंतुकेरक्तजेचशोथेकुर्यात्प्रलेपनम् ॥

अर्थ—१ हल्दी २ दारुहल्दी ३ चदन ४ लालचंदन ५ हरड ६ दूब ७ पुनर्नवा (सांठ) ८ नेत्रवाला ९ पद्माख १० लोध ११ गेरू १२ रसोत ये बारह औषध समान भाग ले जलमें बारीक पीस आगंतुक सूजन तथा रक्तजन्य सूजन दूर होनेके वास्ते यह लेप करे।

व्रण पकनेका लेप।

शणमूलकशिग्रूणांफलानितिलसर्षपाः ॥ ८१ ॥
सक्तवःकिण्वमतसीप्रदेहःपाचनःस्मृतः ॥

अर्थ—१ सनके बीज २ मूलीके बीज ३ सहजनेके बीज ४ तिल ५ सरसों ६ जव ७ लोहकी कीटी ८ अलसीके बीज ये आठ औषध समान भाग ले व्रण पकनेको यह प्रदेह संज्ञक लेप करे।

पके व्रण फोडनेका लेप ।

दन्तीचित्रकमूलत्वक्स्नुह्यर्कपयसीगुडः ॥ ८२ ॥
भल्लातकश्चकासीससैंधवंदारणेस्मृतः ॥

अर्थ-१ दतीकी जड २ चीतेकी छाल ३ थूहरका दूध ४ आकका दूध ५ गुड ६ भिलाए ७ हीराकसीस ८ सैंधानमक इन आठ औषधोंमेंसे छः औषधोंका चूर्ण करके उसको थूहरके दूध और आकके दूधमें सानके पकेहुए व्रणपर लगावे तो वह फूटजावे ।

दूसरा प्रकार ।

चिरबिल्वोग्निकोदंतीचित्रकोहयमारकः ॥ ८३ ॥
कपोतकंकगृध्राणांमलंलेपेनदारणम् ॥

अर्थ-१ कंजेके बीज २ भिलाए ३ दतीकी जड ४ चीतेकी छाल ५ कनेरकी जड इन पाच औषधोंका चूर्ण करे । फिर कपोत (कबूतर या पिडुकिया) कंक (सफेद चील) और गीध इन तीनोंकी बीठ समान भाग लेके उस चूर्णमे मिलायके पकेहुए फोडेपर लेप करे तो वह फोडा तत्काल फूटजावे ।

तीसरा प्रकार ।

सर्जिकायावशूकाख्याःक्षारालेपेनदारणाः ॥ ८४ ॥
हेमक्षीर्य्यास्तथालेपोव्रणेपरमदारणः ॥

अर्थ-सज्जीखार और जवाखार इनका लेप फोडा फोडनेको करे । उसी प्रकार हेमक्षीरी (चोक) का लेप फोडेके फोडनेको उत्तम कहा है ।

व्रणशोधन लेप ।

तिलसैंधवयष्ट्याह्वनिंबपत्रनिशायुगैः ॥ ८५ ॥
त्रिवृद्घृतयुतैः पिष्टैःप्रलेपोव्रणशोधनः ॥

अर्थ-१ तिल २ सैंधानमक ३ मुलहटी ४ नीमके पत्ते ५ हल्दी ६ दारुहल्दी ७ निसोथ ये सात औषध समान भाग ले बारीक चूर्ण कर घीमें सानके लेपकरे तो व्रणका शोधन होवे ।

व्रणके शोधन और रोपणविषयक लेप ।

निंबपत्रघृतक्षौद्रदार्वीमधुकसंयुतः ॥ ८६ ॥
तिलैश्चसहसंयुक्तोलेपःशोधनरोपणः ॥

अर्थ- १ नीमके पत्ते २ घी ३ सहत ४ मुलहटी ५ तिल इन पांच औषधोंमेंसे

तीन औषधोंका चूर्ण करके उसमें घी सहत मिलायके व्रणका शोधन और रोपण करनेके वास्ते लेप करे।

व्रणसम्बन्धी कृमि दूरकरनेपर लेप।

करंजारिष्टनिर्गुंडीलेपोहन्याद्व्रणक्रिमीन् ॥ ८७ ॥
लशुनस्याथवालेपोहिंगुनिंबभवोऽथवा ॥

अर्थ–१ करंज २ नीम ३ निर्गुंडी इन तीन औषधोंके पत्तोंको पीस व्रणसंबंधी कृमि दूर होनेको लेप करे। अथवा केवल लहसनको पीसके लेप करे अथवा हींग और नीमके पत्ते दोनोंको एकत्र पीसके लेप करे।

व्रणके शोधन और रोपणपर दूसरा लेप।

निंबपत्रंतिलादंतीत्रिवृत्सैंधवमाक्षिकम् ॥ ८८ ॥
दुष्टव्रणप्रशमनोलेपःशोधनरोपणः ॥

अर्थ–१ नीमके पत्ते २ तिल ३ दंती ४ निसोथ ५ सैंधानमक ये पांच औषध समान भाग ले बारीक चूर्णकर सहतमें सानके दुष्ट व्रणके शमन होने और शोधन तथा रोपण कहिये भरनेके वास्ते लेपकरे।

उदरशूलमें नाभिपर लेप।

मदनस्यफलंतिक्तांपिष्ट्वाकांजिकवारिणा ॥ ८९ ॥
कोष्णंकुर्यान्नाभिलेपंशूलशांतिर्भवेत्ततः ॥

अर्थ–१ मैनफल २ कुटकी इन दोनों औषधोंको समान भाग ले कांजीसे पीस कुछ गरम करके नाभीपर लेप करे तो पेटका शूल (दर्द) दूर होय।

वातविद्रधिपर लेप।

शिग्रुशेफालिकैरंडयवगोधूममुद्गकैः ॥ ९० ॥
सुखोष्णोबहुलोलेपःप्रयोज्योवातविद्रधौ ॥

अर्थ–१ सहजनेकी छाल २ निर्गुंडीके पत्ते ३ अंडकी जड ४ जौ ५ गेहूँ ६ मूँग ये छः औषध समान भाग लेकर पानीमे पीस वातविद्रधि रोग दूर होनेके वास्ते सहन होय ऐसा गरम करके गाढा लेप लगावे।

पित्तविद्रधिपर लेप।

पैत्तिकेसर्पिषालाजमधुकैःशर्करान्वितैः ॥ ९१ ॥
प्रलिंपेत्क्षीरपिष्टैर्वापयस्योशीरचंदनैः ॥

अर्थ–साली चावलकी खील मुलहटी इन दोनोका चूर्ण और खाँड इन दोनोंका घीमें सानके लेप करे। अथवा पयस्या कहिये क्षीरकाकोली उसके अभावमें असगंध नेत्रवाला और लालचंदन ये तीन औषध दूधमें पीसके लेप करे तो पित्तविद्रधि दूर होय।

कफविद्रधिपर लेप।

इष्टिकासिकतालोहकिट्टंगोशकृतासह ॥ ९२ ॥
सुखोष्णश्चप्रदेहोऽयंमूत्रैःस्याच्छ्लेष्मविद्रधौ ॥

अर्थ–१ ईंट २ वालूरेत ३ लोहकी कीट ४ गौका गोवर ये चार औषध समान भाग ले गोमूत्रमें पीसके यह प्रदेहसंज्ञक लेप कफविद्रधिपर करे तो कफकी विद्रधि दूर हो।

आगंतुकविद्रधिपर लेप।

रक्तचंदनमंजिष्ठानिशामधुकगैरिकैः ॥ ९३ ॥
क्षीरेणविद्रधौलेपोरक्तागंतुनिमित्तजे ॥

अर्थ–१ लालचंदन २ मजीठ ३ हलदी ४ मुलहटी ५ गेरू ये पाच औषध समान भाग ले दुधमें पीस अभिघात निमित्त करके दुष्टहुए रुधिरसे उत्पन्न विद्रधिपर लेप करे।

वातगलगंडपर लेप।

निचुलःशिग्रुबीजानिदशमूलमथापिवा ॥ ९४ ॥
प्रदेहोवातगंडेषुसुखोष्णःसंप्रदीयते ॥

अर्थ–१ जलवेतस२ सहजनके बीज इन दोनोको जलसे पीस वात गलगड दूर होनेके वास्ते यह प्रदेहसंज्ञक लेप सहन होय ऐसा थोडा गरम करके करे अथवा दशमूलको पीसके लेप करे।

कफकेगलगण्डपर लेप

देवदारुविशालाचकफगंडेप्रदेहकः ॥ ९५ ॥

अर्थ–१ देवदारु २ इन्द्रायणकी जड़ इन दोनों औषधोंको जलसे पीस कफगलगंड दूर होने को यह प्रदेह संज्ञक लेप करे।

सर्षपारिष्टपत्राणिदग्ध्वाभल्लातकैःसह ॥
छागमूत्रेणसंपिष्टमपचीघ्नंप्रलेपनम् ॥ ९६ ॥

अर्थ–१ सरसो २ नीमके पत्ते ३ भिलाए ये तीन औषध समान भाग लेके जलाय डाले। जब राख होजावे तब इस राखको बकरेके मूत्रसे सानके अपचीरोग जो गंडमालाका भेद है उसके दूर करनेको लेप करे।

गंडमाला अर्बुद तथा गलगंडपर लेप।

सर्षपाःशिवबीजानिशणबीजातसीयवान् ॥
मूलकस्यचबीजानितक्रेणाम्लेनपेषयेत् ॥ ९७ ॥
गण्डमालार्बुदंगंडंलेपेनानेन शाम्यति ॥

अर्थ—१ सरसों २ सहजनेके बीज ३ सनके बीज ४ अलसीके बीज ५ जौ ६ मूलीके बीज ये छः औषध समान भाग ले खट्टी छाछमें पीस गंडमाला अर्बुद और गलगंड ये रोग दूर करनेको यह लेप करे।

अपबाहुकवातरोगपर लेप।

तक्षयित्वाक्षुरेणांगंकेवलानिलपीडितम् ॥ ९८ ॥
तत्रप्रदेहंदद्याच्चपिष्टंगुंजाफलैःकृतम् ॥
तेनापबाहुजापीडाविश्वाचीगृध्रसीतथा ॥ ९९ ॥
अन्यापिवातजापीडाप्रशमंयातिवेगतः ॥

अर्थ—केवल बादीसे पीडित मनुष्यके अंगमें जिस जगह बादीका कोप होवे उस स्थानको छुरासे मूँड बाल दूर करके उस स्थानपर घूँघचीको जलमें पीसके लेप करे तो अपबाहुक वायु विश्वाची वायु (जो भुजामें होती है) तथा गृध्रसी वायु (जघारोग विशेष) ये वायु दूर हों तथा और प्रकारके वायुसंबंधी रोग इस लेप करके तत्काल दूर हों।

श्लीपदरोगपर लेप।

धत्तूरैरंडनिर्गुंडीवर्षाभूशिग्रुसर्षपैः ॥ १०० ॥
प्रलेपःश्लीपदंहंतिचिरोत्थमपिदारुणम् ॥

अर्थ—१ धतूरेके पत्ते २ अंडके पत्ते ३ निर्गुंडीके पत्ते ४ पुनर्नवा जडसहित ५ सहजनेकी छाल ६ सरसों इन छः औषधोंको पीस, बहुत दिनका तथा दारुण श्लीपद रोग दूर होनेके वास्ते यह लेप करे।

कुरंडरोगपर लेप।

अजाजीहपुषाकुष्ठमेरंडबदरान्वितम् ॥ १०१ ॥
कांजिकेनतुसंपिष्टंकुरंडघ्नंप्रलेपनम् ॥

अर्थ—१ जीरा २ हाऊबेर ३ कूठ ४ अंडकी जड ५ बेरकी छाल इन पाच औषधोंको समान भाग ले काँजीमें पीस कुरंड (अंडवृद्धि) रोग दूर होनेको यह लेप करे।

उपदंशरोगपर लेप ।

करवीरस्यमूलेनपरिपिष्टेनवारिणा ॥ १०२ ॥
असाध्यापिजरत्याशुलिंगोत्थारुक्प्रलेपनात् ॥

अर्थ–कनेरकी जडको जलमें पीसके लेप करे तो लिंगमें जो उपदंशसंबंधी पीडा वह असाध्यभी तत्काल दूर होवे ।

उपदंशपर दूसरा लेप ।

दहेत्कटाहेत्रिफलांसामषीमधुसंयुता ॥ १०३ ॥
उपदंशेप्रलेपोऽयंसद्योरोपयतिव्रणम् ॥

अर्थ–त्रिफलेको कडाहीमें जलायके उसकी राख सहतमें मिलायके लेप करे तो लिंगमे जो उपदंशसंबंधी व्रण होता है उसका तत्काल रोपण होय अर्थात् वह घाव तत्काल भर आवे ।

उपदंशपर तीसरा लेप ।

रसांजनंशिरीषेणपथ्ययाचसमन्वितम् ॥ १०४ ॥
सक्षौद्रंलेपनंयोज्यमुपदंशगदापहम् ॥

अर्थ–१ रसोत २ सिरसकी छाल ३ हरड ये तीन औषध ले समान भागका चूर्ण कर सहतमें मिलायके लिंगपर लेप करे तो उपदंशसंबंधी जो लिंगमें घावआदि उपद्रव होते हैं वे तत्काल नष्ट हों ।

अग्निदग्धपर लेप ।

अग्निदग्धेतुगाक्षीरीप्लक्षचंदनगौरिकैः ॥ १०५ ॥
सामृतैःसर्पिषा स्निग्धरालेपंकारयेद्भिषक् ॥
तंदुलीयकषायैर्वाघृतमिश्रैःप्रलेपयेत् ॥ १०६ ॥

अर्थ–१ वंशलोचन २ पाखर ३ लाल चंदन ४ गेरू ५ गिलोय इन पांच औषधोंका समान भाग लेके चूर्ण करे । फिर घीमें मिलाय जिस मनुष्यकी देह अग्निसे जल गई हो उसपर लेप करे । अथवा चौलाईका काढा करके उसमें घी डालके उसका लेप करे ।

दूसरा लेप ।

यवान्दग्ध्वामषींकायांतैलेनयुतयातया ॥
दद्यात्सर्वाग्निदग्धेषुप्रलेपोव्रणरोपणः ॥ १०७ ॥

अर्थ–जवोंको जलाय राख करके तिलके तेलमे मिलाय मनुष्यके देहपर अग्निसे जलेहु

स्थानपर लेप करे तो जलनेसे जो घाव हुआ हो वह भरके शरीर जैसाका तैसा हो जावे। अग्निका जलना प्लुष्टादि भेदसे चार प्रकारका है सो माधवनिदानसे जान लेना।

योनि कठोरकरनेका लेप।

पलाशोदुंबरफलैस्तिलतैलसमन्वितैः॥
मधुनायोनिमालिंपेद्गाढीकरणमुत्तमम्॥ १०८॥

अर्थ–१ पलास (ढाक) के फूल २ गूलरके फल इन दोनोंका चूर्ण कर तिलके तेलमें मिलायके तथा उसमें सहत मिलायके योनिमें लेप करे तो शिथिल हुईभी योनि इस लेपसे कठोर अर्थात् तंग होजावे।

दूसरा लेप।

माकंदफलसंयुक्तमधुकर्पूरलेपनात्॥
गतेऽपियौवनेस्त्रीणांयोनिर्गाढातिजायते॥ १०९॥

अर्थ–आमका कोमल फल तथा कपूर इन दोनोंका चूर्णकर सहतमे मिलाय योनिमें लेप करे तो, वृद्धा (बुड्ढी) स्त्रीकीभी योनी सुकडके अत्यंत तंग होजावे।

लिंग और स्तनादिक वृद्धिकरनेका लेप।

मरीचंसैंधवंकृष्णातगरंबृहतीफलम्॥ अपामार्गस्तिलाःकुष्ठंय-
वामापाश्वसर्षपाः॥ ११०॥ अश्वगंधाचतच्चूर्णमधुनासहयोज-
येत्॥ अस्यसंततलेपेनमर्दनाच्चप्रजायते॥ १११॥ लिंगवृ-
द्धिःस्तनोत्सेधःसंहतिर्भुजकर्णयोः॥

अर्थ–१काली मिचर २ सैंधानमक ३ पीपल ४ तगर ५ कटेरीके फल ६ ओंगाके बीज ७ काले तिल ८ कूठ ९ जौ १० उडद ११ सरसों १२ असगंध ये बारह औषध समान भाग ले चूर्ण कर सहतमें मिलाय लिंगपर निरंतर अर्थात् नित्य प्रति लेप कर मर्दन करे तो लिंग मोटा होय इसी प्रकार स्त्रियोंके स्तनोंपर करे तथा भुजा और कर्ण (कान) पर लेप कर मर्दन करे तो इनकी वृद्धि होवे।

लिंगवृद्धिपर दूसरा लेप।

सिताश्वगंधासिंधूत्थाच्छागक्षीरैर्घृतंपचेत्॥ ११२॥
तल्लेपान्मर्दनाल्लिंगवृद्धिःसंजायतेपरा॥

अर्थ–सफेद फूलकी असगंध और सैंधानमक ये दोनों औषध बारीक करके इस चूर्णसे चौगुना घी और घीसे चौगुना भेडका दूध ले सबको एकत्र करके चूल्हेपर चढाय नीचे अग्नि

जलावे जब सब वस्तु जलकर केवल घीमात्र शेष रहे तव इस घीको लिंगपर लेप करके मर्दन करे तो लिंग अत्यंत स्थूल होवे ।

योनिद्रावणकारी लेप ।

इंद्रवारुणिकापत्ररसैःसूतंविमर्दयेत् ॥ ११३ ॥
रक्तस्यकरवीरस्यकाष्ठेनचमुहुर्मुहुः ॥
तल्लिप्तलिंगसंयोगाद्योनिद्रावोऽभिजायते ॥ ११४ ॥

अर्थ—इन्द्रायणके पत्तोंका रस निकालके उस रसमें पारा मिलायके लाल फूलके कनेरकी लकडीसे उसको खरलकरे अर्थात् घोंटे । इसप्रकार वारंवार अर्थात् जब २ रस सूख जावे तब २ और रस डालके पारेको घोटे । इसप्रकार पाच सातवार घोटके लिंगपर लेप करे । पश्चात् शिश्न और योनिका सयोग होतेही पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रीका वीर्य तत्काल पतन हो स्त्री हतवीर्य होवे ।

देहदुर्गंधदूरकरनेका लेप ।

तांबूलपत्रचूर्णंतुचूर्णंकुष्ठशिवाभवम् ॥
वारिणालेपनंकुर्याद्गात्रदौर्गंध्यनाशनम् ॥ ११५ ॥

अर्थ—१ पान २ कूठ ३ हरड इन तीनोका चूर्ण कर जलमें मिलायके शरीरमे लेप करे तो देहसवधी दुर्गंध दूर होय ।

दूसरा लेप ।

कुलित्थसक्तवःकुष्ठंमांसीचंदनजंरजः ॥
सक्तवश्चणकस्यैवत्वक्चैवैकत्रकारयेत् ॥ ११६ ॥
स्वेददौर्गंध्यनाशश्चजायतेऽस्यावधूलनात् ॥

अर्थ—१ कुलथीका सत्तू २ कूठ ३ जटामांसी ४ सफेद चदन ५ चनेका भुनाहुवा चून इन सबका चूर्ण करके शरीरमें इस चूर्णका अवधूलन कहिये मालिश करे तो देहमें पसीनोंका आना और देहकी दुर्गंध दूर होवे ।

वशीकरण लेप ।

वचासौवर्चलंकुष्ठंरजन्योमरिचानिच ॥ ११७ ॥
एतल्लेपप्रभावेनवशीकरणमुत्तमम् ॥

अर्थ—१ वच २ सचरनमक ३ कूठ ४ हल्दी ५ दारुहल्दी ६ काली मिरच ये छः औषध समान भाग ले जलसे पीस शरीरमें लेप करे यह लेप वशीकरणकर्त्ता उत्तम प्रयोग है ।

मस्तकमें तेलधारण करनेके चार प्रकार।

अभ्यंगःपरिषेकश्चपिचुर्बस्तिरितिक्रमात् ॥ ११८ ॥
मूर्धतैलंचतुर्धास्याद्बलवच्चयथोत्तरम् ॥

अर्थ—अभ्यंग कहिये मस्तकमें तेलका मर्दन और परिषेक कहिये मस्तकमे तेलको चुपडना तथा पिचु कहिये रुईके गालेको अथवा कपडेके टुकडेको तेलमें भिगोयके मस्तकपर धारण करना । और बस्ति कहिये चमडेकी बस्ति बनायके मस्तकपर तेल धारण करनेका प्रयोग वह आगेके श्लोकमे कहा है इस प्रकार मूर्धतैलके कहिये मस्तकमें तेल धारण करनेके चार भेद हैं सो क्रमसे एककी अपेक्षा दूसरा बलवान् है।

शिरोबस्तीकी विधि।

त्रयोऽभ्यंगादयःपूर्वेप्रसिद्धाःसर्वतःस्मृताः ॥ ११९ ॥
शिरोबस्तिविधिश्चात्रप्रोच्यतेसुज्ञसंमतः ॥

अर्थ—पिछले श्लोकमे कहे हुए अभ्यंग परिषेकादिक तीन प्रकार वे सर्वत्र स्थलोमें प्रसिद्ध हैं। तथा शिरोवस्तिकी विधि नहीं कही इस वास्ते बुद्धिमानोंको मान्य ऐसी शिरोबस्तिकी विधि कहताहूं।

शिरोबस्तिका प्रकार।

शिरोबस्तिश्चर्मणःस्याद्विमुखोद्वादशांगुलः ॥ १२० ॥
शिरःप्रमाणंतंबद्ध्वामस्तकेमाषपिष्टकैः ॥
संधिरोधंविधायादौस्नेहैःकोष्णैःप्रपूरयेत् ॥ १२१ ॥

अर्थ—मस्तकपर धारण करनेकी जो बस्ति उसको शिरोबस्ति कहते हैं वह हरिणादिकोंके चमडेकी बनावे। उसका आकार बारह अंगुल ऊँची टोपीके समान बनायके दो मुख बनावे। तिसमें नीचेका मुख मस्तकपर आयजावे ऐसा करे और ऊपरका मुख छोटा करना चाहिये। उस टोपीको मनुष्यको पहनाय उसके नीचे जो छिद्र रहते हैं उसके चारों तरफ उडदके चूनको जलमें सानके सन्धियोंको बंद कर देवे। पश्चात् स्नेह सहन होय ऐसा थोडा गरम करके बस्तिके ऊपरके मुखसे मस्तकपर भर देवे।

शिरोबस्तिधारणमें प्रमाण।

तावद्धार्यस्तुयावत्स्यान्नासानेत्रमुखस्रुतिः ॥
वेदनोपशमोवापिमात्राणांवासहस्रकम् ॥ १२२ ॥

अर्थ—नाक नेत्र और मुख इनमें जबतक स्राव न होय तवतक अथवा मस्तकसंबंधी पीडा दूर हो तवतक अथवा वास्तिके अध्यायमें अ-वासनवस्तिकी मात्राका कालप्रमाण १००० एक-हजार मात्रा पूर्ण होनेपर्यंत मस्तकपर वस्तिको धारण करे ।

शिरोवस्तिधारणमें काल ।

विनाभोजनमेवात्रशिरोबस्तिःप्रशस्यते ॥
प्रयोज्यस्तुशिरोबस्तिः पंचसप्ताहमेववा ॥ १२३ ॥

अर्थ—विना भोजन किये हुए मनुष्यको शिरावस्ति कराना उत्तम है और यह शिरोवस्ति पाचवें दिन अथवा सातवें दिन करनी चाहिये ।

शिरोवस्तिके कर्म होनेके उपरांत क्रिया ।

विमोच्यशिरसेबस्तिगृह्णीयाच्चसमंततः ॥
ऊर्ध्वकायंततःकोष्णनीरैःस्नानंसमाचरेत् ॥ १२४ ॥

अर्थ—मस्तकपर धारण की हुई वस्तिके चारों तरफ एकसा उचलकर पटक देवे अर्थात् ऐसा न करे कि कहीं तो बस्ति लगी हुई है और कहींसे उखाडी हुई । जब बस्तिको उखाड चुके तब ऊर्ध्वकाय कहिये मस्तकपर सुहाता २ गरम जल डालके स्नान करे ।

शिरोवस्तिदेनेसे रोग दूर हों उनका कथन ।

अनेनदुर्जयारोगावातजायांतिसंक्षयम् ॥
शिरःकंपादयस्तेनसर्वकालेप्रयुज्यते ॥ १२५ ॥

अर्थ—दुर्जय कहिये दूर करनेको अगम्य ऐसे शिरःकंपादिक जो वादीके रोग हैं वे इस वस्तीके देनेसे दूर होते हैं । इसवास्ते इनमें इस वस्तिकी सर्व कालमें योजना करनी चाहिये ।

कानमें औषध डालनेकी विधि ।

स्वेदयेत्कर्णदेशंतुकिंचिन्नुःपार्श्वशायिनः ॥
मूत्रैःस्नेहैरसैःकोष्णैस्ततःकर्णप्रपूरयेत् ॥ १२६ ॥

अर्थ—मनुष्यको कुछ करवटकी तरफ सुलायके कानके चारों तरफ पसीने युक्त करके पश्चात् गोमूत्रादिक तैलादिक तथा औषधोंका रस सहन होय इस प्रकार थोडा २ गरम करके कानमें डाले ।

कानमें औषधडालनेके कितनीदेर ठहरे ।

कर्णेतुपूरितंरक्षेच्छतंपंचशतानिवा ॥

सहस्रंवापिमात्राणां श्रोत्रकंठशिरोगदे ॥ १२७ ॥

अर्थ—कर्णरोग कंठरोग और मस्तकरोग ये दूर होनेके लिये कानमें जो औषध डालीहो वह सौ मात्रा अथवा पांचसौ मात्रा अथवा एक हजार मात्रा होवे तावत्काल पर्यंत कानमें रक्खे। मात्राके लक्षण आगेके श्लोकमें कहेहैं सो जानना।

मात्राका प्रमाण।

स्वजानुनःकरावर्तंकुर्याच्छोटिकयायुतम् ॥
एषामात्राभवेदेकासर्वत्रैवैषनिश्चयः ॥ १२८ ॥

अर्थ—अपने घोंटूके चारों तरफ स्पर्श होय इसप्रकार हाथको फेरके चुटकी बजावे इतने कालकी एक मात्रा होतीहै ऐसा निश्चय सर्वत्र है।

रसादिक तथा तैलादिक इनका कानमें डालनेका काल।

रसाद्यैःपूरणंकर्णे भोजनात्प्राक्प्रशस्यते ॥
तैलाद्यैःपूरणंकर्णेभास्करेऽस्तमुपागते ॥ १२९ ॥

अर्थ—रसआदिकरके जो औषध कानमें डालना हो सो भोजन करनेके पूर्व डाले। तथा तैलादिक जो औषध कानमें डाले वह दिन मूंदनेके पश्चात् अर्थात् रात्रिमें डाले।

कर्णशूलपर औषध।

पीतार्कपत्रमाज्येनलिप्तमग्नौप्रतापयेत् ॥
तद्रसःश्रवणेक्षिप्तःकर्णशूलहरःपरः ॥ १३० ॥

अर्थ—आकके पके हुए पत्तेमें घी लगाय अग्निपर तपाय उसका रस निकालके कानमें डाले तो कर्णशूल दूर हो।

कर्णशूलपर मूत्रप्रयोग।

कर्णशूलातुरेकोष्णंबस्तमूत्रंससैंधवम् ॥
निक्षिपेत्तेनशाम्यंतिशूलपाकादिकारुजः ॥ १३१ ॥

अर्थ—बकरेके मूत्रमें सैंधानमक डालके कुछ थोडा गरम कर कानमें डाले तो कर्णशूल और व्रणसंबंधी पाकादिक उपद्रव दूर हों।

कर्णशूलपर तीसरा प्रयोग।

शृंगवेरंचमधुकंमधुसैंधवमामलम् ॥ तिलपर्णीरसस्तैलंटंकणं निंबुकद्रवम् ॥ १३२ ॥ कदुष्णंकर्णयोर्देयमेतद्वावेदनापहम् ॥

अर्थ—१ अदरखका रस २ मुलहटी ३ सहत ४ सैंधानमक ५ आवले ६ तिलपर्णीका रस

७सरसोंका तेल ८ सुहागा ९ नीमका रस ये नौ औषध एकत्र कर कुछ गरम करके कानमें डाले तो कर्णसबंधी पीडा दूर हो।

कर्णशूलपर चतुथ प्रयोग।

कपित्थमातुलुंगाम्लशृंगवेररसैःशुभैः॥ १३३॥
सुखोष्णैः पूरयेत्कर्णंकर्णशूलोपशांतये॥

अर्थ—१ कैंथके फलका रस २ विजोरेका रस अमलवेतका रस ४ अदरखका रस ये चार रस एकत्र कर कुछ २ गरम कर कर्णशूल दूर होनेके वास्ते कानमें डाले।

कर्णशूलपर पांचवाँ प्रयोग।

अर्कांकुरानम्लपिष्टांस्तैलाक्ताँल्लवणान्वितान्॥ १३४॥
संनिदध्यात्स्नुहीकांडेकोरितेतच्छदावृते॥
पुटपाकक्रमंकृत्वारसैस्तच्चप्रपूरयेत्॥ १३५॥
सुखोष्णैस्तेनशाम्यंतिकर्णपीडाःसुदारुणाः॥

अर्थ—आकके अंकुर अर्थात् आगेकी कोमल २ पत्ती इनको नींबूके रसमें खरलकर उसमें थोडासा तिलका तेल और सेंधानमक डाल गोला बनावे। फिर थूहरकी गीली लकडीको भीतरसे पोली करके उसमें उस गोलेको रखके उसके चारो तरफ थूहरके पत्ते लपेटके बाध देवे, फिर उसके ऊपर गीली मिट्टी लपेटके पुटपाककी विधिसे उस औषधका पाक होय ऐसी हलकी अग्नि देवे। पश्चात् उस गोलेको बाहर निकालके पत्ते वगैरहको दूर करे। फिर उस थूहरको लकडी सहित निचोडके रस निकाल लेवे। अग्निपर सुखोष्ण करके कानमें डाले तो कानमें जो वडी भारी दारुण पीडा होतीहो वह दूर होय।

कर्णशूलपर दीपिका तेल।

महतःपंचमूलस्यकांडान्यष्टांगुलानितु॥ १३६॥
क्षौमेणावेष्टचसंसिच्यतैलेनादीपयेत्ततः॥
यत्तैलंच्यवतेतेभ्यःसुखोष्णं तेनपूरयेत्॥ १३७॥
ज्ञेयंतद्दीपिकातैलंसद्योगृह्णातिवेदनाम्॥
एवंस्यादीपिकातैलंकुष्ठेदेवतरौतथा॥ १३८॥

---

१ अमलवेतके अभावमें चनेका खार अथवा चूकेका रस डालना चाहिये।
२ पुटपाककी विधि मध्यमखंडमें स्वरसके पश्चात् कही है सो देखलेना।

अर्थ—बडा पंचमूल अर्थात् बेल आदि पाच औषधोंकी जड आठ २ अंगुलकी ले उनको रेशमी वस्त्रमें अथवा कपडेमें लपेट तेलमे भिगोकर अग्निसे जलावे। तथा उन जडोंको सीधी रक्खे कि जिससे तेल टपक कर नीचे गिरे। उस तेलको कुछ थोडासा गरम करके कानमें डाले तो कानकी पीडा अर्थात् कानमें टीस मारना तत्काल दूर हो। इसको दीपिकातैल कहते हैं। इसी प्रकार कूठ अथवा देवदारुका तेल निकालके कानमे डाले तो कर्णशूल दूर होवे।

कर्णशूलपर स्योनाकतैल।

तैलंस्योनाकमूलेनमंदेऽग्नौपरिपाचितम् ॥
हरेदाशुत्रिदोषोत्थंकर्णशूलंप्रपूरणात् ॥ १३९ ॥

अर्थ—टेंटूकी जडको पीस कल्क करे तथा उस कल्कका चौगुना तिलका तेल लेकर दोनोंके एकत्र करे तथा उस तेलके पाक होनेके वास्ते उसमें कल्कका चौगुना जल डालके चूल्हेपर रखके मंद मंद आँचसे परिपक्व करे जब जलआदि सब जलके केवल तेलमात्र आय रहे तब उतारके तेलको छान किसी उत्तम शीशीआदि पात्रमें भरके रख देवे। इसको कानमे डाले तो त्रिदोषजन्य कर्णशूल तत्काल दूर होवे।

कर्णनादपर तैल।

कल्कक्वाथेनयष्ट्याह्वकाकोलीमाषधान्यकैः ॥
मकरस्यवसांपक्त्वाकर्णनादार्तिहारिणी ॥ १४० ॥

अर्थ—१ मुलहटी २ काकोलीके अभावमें असगंध ३ उडद ४ धनियाँ इन चार औषधोंका काढा करके उसमे इन्हीं औषधोंका कल्क करके डाल देवे। तथा सूअरकी वसा (अर्थात् मासका स्नेह) उस काढेमे डालके चूल्हेपर चढाय अग्नि देकर स्नेह मात्र रहे तबतक पाक करे फिर इसको कानमें डाले तो कर्णनाद (कानोंमें शब्द हुआ करे सो) दूर हो।

कर्णनादादिकोंपर तैल।

सर्जिकामूलकंशुष्कंहिंगुकृष्णासमन्वितम् ॥
शतपुष्पाचतैस्तैलंपक्वंसूक्तंचतुर्गुणम् ॥ १४१ ॥
प्रणादंशूलबाधिर्यंस्रावंकर्णस्यनाशयेत् ॥

अर्थ—१ सज्जीखार २ सूखी मूली ३ हींग ४ पीपल ५ सोफ ये पांच औषध समान भाग ले, पीस कल्क करे। उस कल्कका चौगुना तिलका तेल लेकर उस कल्कमें मिलावे।

तथा उस कल्कका चौगुना सूक्त (सिरका) लेकर तेलमें मिलावे । फिर इस तेलके पात्रको चूल्हेपर चढाय नीचे अग्नि जलावे । जब तेलका पाक हो चुके तब उतारके तेलको छानके किसी उत्तम पात्रमें भरके धर रक्खे । इस तेलको कानमें डाले तो कर्णप्रणाद कर्णशूल वहिरापना तथा कानसे पूय (राध) आदिका स्राव ये रोग दूर होंय ।

वहरेपनपर अपामार्गक्षारतैल ।

अपामार्गक्षारजलेतत्क्षारंकल्कितंक्षिपेत् ॥ १४२ ॥
तेनपक्वंजयेत्तैलंबाधिर्यंकर्णनादकम् ॥

अर्थ–औंगाकी राखकर किसी मिट्टीके पात्रमें धर उसमें उस राखसे चौगुना जल डालके रात्रिको चार प्रहर धरा रहनेदे । प्रातःकाल ऊपरके पानीको लोहेकी कडाहीमें निकाल उसमें उस जलसे चौथाई तिलका तेल डाले । फिर चूल्हेपर चढायके मंद २ अग्निसे पाक करे । जब तेल मात्र शेष रहे तब उतारके पात्रमें धर रक्खे । इस तेलको कानमे डाले. तो कानका वहरापन तथा कर्णनाद दूर होय ।

कर्णनाडीपर शम्बूकतैल ।

शंबूकस्यतुमांसेनपचेत्तैलंतुसार्षपम् ॥ १४३ ॥
तस्यपूरणमात्रेणकर्णनाडीप्रशाम्यति ॥

अर्थ–शंबूक कहिये छोटा शख अथवा शींपी उसका मांस और उस मांससे चौगुना सरसोंका तेल लेवे । उस तेलमें मांस डालके पकावे । जब पक्व होजावे तब मांसको निकालके दूर करे और इस तेलको कानमें डाले तो कर्णनाडी कहिये कर्णसम्बंधी फोडा दूर होय ।

कर्णस्रावपर औषध ।

चूर्णंपंचकषायाणां कपित्थरसमेवच ॥ १४४ ॥
कर्णस्रावेप्रशंसंतिपूरणंमधुनासह ॥

अर्थ–पंचकषाय कहिये पंचकषायसंज्ञक पांच औषध (कि जिनके नाम आगेके श्लोकमें कहे हैं) उनका चूर्ण करे । फिर कैथके रसमें इस चूर्णको और थोडा सहत डालके राधआदि स्राव दूर करनेको कानमे डाले ।

पंचकषायसंज्ञक वृक्षोंके नाम ।

तिंदुकान्यभयालोध्रं समंगाचामलक्यपि ॥ १४५ ॥
ज्ञेयाःपंचकषायास्तुकर्मण्यस्मिन्भिषग्वरैः ॥

अर्थ–१ तेंदू २ हरड ३ लोध ४ मजीठ ५ आँवला ये कर्णस्राव दूर होनेके वास्ते पंचकषायसंज्ञक वृक्ष जानने। इनके फल लेने। यह विचार प्रथमखंडके परिभाषा अध्यायमें कह आए है।

कर्णस्रावपर औषध।

सर्जिकाचूर्णसंयुक्तंबीजपूररसंक्षिपेत् ॥ १४६ ॥
कर्णस्रावरुजोदाहाःप्रणश्यंतिनसंशयः ॥

अर्थ–सज्जीखारके चूर्णको बिजोरेके रसमें मिलायके कानमें डाले तो कर्णस्रावसंबधी पीडा और दाह ये निश्चय करके दूर हों।

कानसे राध वहे उसपर औषध।

आम्रजंबूप्रवालानिमधूकस्यवटस्यच ॥ १४७ ॥
एभिःसंसाधितंतैलंपूतिकर्णोपशांतिकृत् ॥

अर्थ–आम जामुन महुआ और वड इन चारोंके कोमल पत्तोंको पीस कल्क करके उसमें तिलोंका तेल, उस कल्कका चौगुना डालकर अग्निपर पाक करे। पश्चात् यह तेल कानमेंसे जो राध वहती है उसके दूर होनेके लिये कानमें डाले।

कणके कीडे दूरहोनेपर तेल।

पूरणंहरितालेनगवांमूत्रयुतेनच ॥ १४८ ॥
अथवासार्षपंतैलंकर्णकीटहरंपरम् ॥

अर्थ–हरतालको गोमूत्रमें औटायके कानमें डाले अथवा सरसोंका तेल कानमें डाले तो कानके कीडेको हरण करता है।

कानका कीडा दूरहोनेका दूसरा प्रयोग।

स्वरसंशिग्रुमूलस्यसूर्यावर्तरसंतथा ॥ १४९ ॥
त्र्यूषणंचूर्णितं चैवकपिकच्छूरसंतथा ॥
कृत्वैकत्रक्षिपेत्कर्णेकर्णकीटहरंपरम् ॥ १५० ॥

अर्थ–सहँजनेकी छालका रस, हुलहुलका रस, त्र्यूषण (सोंठ मिरच पीपल) और कौंछकी जडका रस ये सब रस एकत्र करके उसमें पूर्वोक्त त्रिकुटेका रस मिलायके कानके कीडे दूर करनेको कानमें डाले।

तीसरा प्रयोग।

सद्योमद्यंनिहंत्याशुकर्णकीटंसुदारुणम् ॥

सद्योहिंगुनिहंत्याशुकर्णकीटंसुदारुणम् ॥ १५१ ॥

इति श्रीदामोदरात्मजशार्ङ्गधरेण निर्मितायां संहितायां चिकित्सास्थाने उत्तरखंडे लेपादिविधिवर्णनंनामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अर्थ-हींग और मद्य इन दोनोंमेंसे कोईसी एक वस्तु कानमें डाले तो कानके कीडे मरजावें ।

इति श्रीमाथुरदत्तरामविरचितमाथुरीभाषाटीकायामुत्तरखंडस्यैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः १२.

रक्तस्रावकी विधि ।

शोणितंस्रावयेज्जंतोरामयंप्रसमीक्ष्यच ॥
प्रस्थंप्रस्थार्धकंवापिप्रस्थार्धार्धमथापिवा ॥ १ ॥

अर्थ-मनुष्यके देहमें आमय कहिये रुधिरजन्य कुष्ठादिक रोगोंको देखके रक्तस्राव करे अर्थात् देहसे रुधिर निकाले उसका प्रमाण १ प्रस्थ अथवा अर्धप्रस्थ अथवा आधेका आधा अर्थात् चौथाई प्रस्थ कहिये १ कुडव प्रमाण जानना ।

रक्तस्रावका सामान्यकाल ।

शरत्कालेस्वभावेनकुर्याद्रक्तस्रुतिंनरः ॥
त्वग्दोषग्रंथिशोथाद्यानस्यूरक्तस्रुतेर्यतः ॥ २ ॥

अर्थ-देहसे रुधिर काढनेसे त्वचासबधी दोष व्रणादिक गॉठ और सूजन इत्यादिक रोग दूर होते हैं । इसीसे शरत्कालमें स्वभाव करके मनुष्योंका रुधिरस्राव करे अर्थात् फस्त खोले ।

रक्तका स्वरूप ।

मधुरंवर्णतोरक्तमशीतोष्णंतथागुरु ॥
शोणितंस्निग्धविस्रंस्याद्विदाहश्चास्यपित्तवत् ॥ ३ ॥

अर्थ-रुधिर, रस करके मीठा है वर्ण करके लाल और गुणों करके अशीतोष्ण कहिये मंदोष्ण भारी चिकना तथा आमगधी है । तथा उस रुधिरकी दाहशक्ति पित्तके समान है । इस प्रकार रुधिरके रस, वर्ण और गुण जानने ।

रुधिरमें पृथिव्यादिभूतोंके गुण ।

विषताद्रवतारागश्चलनंविलयस्तथा ॥
भूम्यादिपंचभूतानामेतेरक्तगुणाःस्मृताः ॥ ४ ॥

अर्थ–विस्त्रता कहिये आमगंधता यह पृथ्वीका गुण है । द्रवता अर्थात् पतलापन जलका गुण है । राग कहिये लाली अग्निका गुण है चलन वायुका गुण और लीनता आकाशका गुण है । इस प्रकार पृथिव्यादि पांच भूतोंके पाच गुण रुधिरमें हैं इस प्रकार जानना ।

दुष्टरुधिरके लक्षण ।

रक्तेदुष्टेवेदनास्यात्पाकोदाहश्चजायते ॥
रक्तमंडलताकंडूःशोथश्चपिटिकोद्गमः ॥ ५ ॥

अर्थ–मनुष्यका रुधिर दुष्ट होनेसे शरीरमे पीडा होय, अंग पकेके समान होकर दाह होय, तथा देहमें रुधिरके चकत्ते खुजली सूजन और फुन्सी होय ।

रुधिरवृद्धिके लक्षण ।

वृद्धेरक्तांगनेत्रत्वंशिराणांपूरणंतथा ॥
गात्राणांगौरवंनिद्रामदोदाहश्चजायते ॥ ६ ॥

अर्थ–रुधिरके वढनेसे शरीर और नेत्र ये लाल रंगके हो, धमन्यादि नाडी पूरित होवें अर्थात् फूल आवें । तथा देहका भारी होना निद्रा, मद होय ये उपद्रव होते हैं ।

क्षीणरुधिरके लक्षण ।

क्षीणेऽम्लमधुराकांक्षामूर्च्छाचत्वचिरूक्षता ॥
शैथिल्यंचशिराणांस्याद्वातादुन्मार्गगामिता ॥ ७ ॥

अर्थ–मनुष्यका रुधिर क्षीण होनेसे खटाई और मिष्टपदार्थोंके भोजनकी इच्छा होय, मूर्च्छा आवे, त्वचाका रूखापन, नाडियोंमे शिथिलता, तथा वायु ऊर्ध्वमार्ग होकर गमन करती है ।

वादीसे दूषितरुधिरके लक्षण ।

अरुणंफेनिलंरूक्षंपरुषंतनुशीघ्रगम् ॥
अस्कंदिसूचिनिस्तोदंरक्तंस्याद्वातदूषितम् ॥ ८ ॥

अर्थ–वादीसे रुधिरके दूषित होनेसे वह लाल रंगका, झागके समान, रूक्ष कठोर और हलका, शीघ्र गमन कर्ता और पतला होता है । तथा सूईके चुभानेके समान पीडा होती है ।

पित्तदूषितरुधिरके लक्षण ।

पित्तेनपीतंहरितंनीलंश्यावंचविस्त्रकम् ॥
अस्कंद्युष्णंमक्षिकाणांपिपीलीनामनिष्टकम् ॥ ९ ॥

अर्थ–पित्त करके रुधिरके दूषित होनेसे उसका रंग पीले रगका हरे रगका नीले रग अथवा श्याम रगका होता है । वह आमगधी (कचाईद मारे) उष्ण और चचलता रहित होता है तथा उसको चेंटी और मक्खी नही खाती ।

कफदूषितरुधिरके लक्षण ।

शीतंचबहलंस्निग्धंगैरिकोदकसन्निभम् ॥
मांसपेशीप्रभंस्कंदिमंदगंकफदूषितम् ॥ १० ॥

अर्थ–कफसे दूषित हुआ रुधिर स्पर्श करनेसे अत्यत शीतल होता है, स्निग्ध होकर गेरूके समान रंगवाला होता है, तथा मासपेशी कहिये मांसके छोटे २ टुकडोके समान हो स्कंदि कहिये घन तथा मदगमन करनेवाला होता है ।

द्विदोष तथा त्रिदोषसे दूषित रुधिरके लक्षण ।

द्विदोषदुष्टंसंसृष्टंत्रिदुष्टंपूतिगंधकम् ॥
सर्वलक्षणसंयुक्तंकांजिकाभंचजायते ॥ ११ ॥

अर्थ–दो दोषोंसे दूषित हुआ रुधिर दोनो दोषोके लक्षण करके युक्त होता है । एवं त्रिदोषसे दूषित हुए रुधिरमें सडीहुई वास आवे और वह तीनों दोपके लक्षण करके युक्त होकर काँजीके समान होता है ।

विषदूषितरुधिरके लक्षण ।

विषदुष्टंभवेच्छ्यावंनासिकोन्मार्गगंतथा ॥
विस्रंकांजिकसंकाशंसर्वकुष्टकरंबहु ॥ १२ ॥

अर्थ–विषसे दूषित हुआ रुधिर काले रगका होता है । ऊपरके मार्ग होकर नासिकासे गिरता है । आमगधि होकर काँजीके समान दीखता है तथा अतिशय करके यह दूषित रुधिर संपूर्ण कुष्टोंको उत्पन्न करता है ।

शुद्धरुधिरके लक्षण ।

इंद्रगोपप्रभंज्ञेयंप्रकृतिस्थमसंहतम् ॥

अर्थ–जिस रुधिरमे कोईसा विकार नहीं हो अर्थात् शुद्ध रुधिर जो अपनी प्रकृतिपर है वह इन्द्रगोप (वीरबहूटी इस नामका कीडा लाल रंगका जो वर्षाऋतुमें होता है उस) के समान रग-वाला और पतला होता है ।

रुधिरस्रावयोग्य रोग।

शोथेदाहेंगपाकेचरक्तवर्णेऽसृजःस्रुतौ ॥१३॥ वातरक्तेतथाकुष्ठेसपीडेदुर्जयेऽनिले ॥ पाणिरोगेश्लीपदेचविषदुष्टेचशोणिते ॥ ॥१४॥ ग्रंथ्यर्बुदापचीक्षुद्ररोगरक्ताधिमंथिषु ॥ विदारीस्तनरोगेषुगात्राणांसादगौरवे ॥ १५ ॥ रक्ताभिष्यंदतंद्रायां पूतिघ्राणस्यदेहके ॥ यकृत्प्लीहविसर्पेषुविद्रधौपिटिकोद्गमे ॥१६॥ कर्णौष्ठघ्राणवक्राणांपाकेदाहेशिरोरुजि ॥ उपदंशे रक्तपित्ते रक्तस्रावः प्रशस्यते ॥ १७ ॥

अर्थ–दाह सूजन तथा जिसके अंगका पाक तथा शरीर लाल रंगका हो ऐसा मनुष्य तथा जिसकी नासिका द्वारा रुधिर गिरा करे, वातरक्त कोढ तथा पीडायुक्त हो, जीतनेमे अशक्य ऐसा वादीका रोग, हाथोंका रोग, श्लीपदरोग तथा विषसे दूषित रुधिर, ग्रंथिरोग, अर्बुद, गंडमालाका भेद, अपची रोग, क्षुद्ररोग, रक्ताधिमथ (नेत्रोका रोग), विदारीरोग, स्तनरोग, अंगोंकी शिथिलता, तथा शरीरका भारी होना, रक्ताभिष्यद, तन्द्रा, दुर्गंधयुक्त हैं नाक मुख और देह जिसके, यकृत् कहिये कालखडरोग, प्लीहा, विसर्प, विद्रधि तथा अंगोपर फुन्सीका होना कान और होठ नाक तथा मुख इनका पाक, दाह, मस्तकपीडा, उपदंश, रक्तपित्त ये विकार जिन मनुष्योंके देहमें होयँ उनका रुधिर वैद्यको निकालना चाहिये। ये रुधिर काढनेके योग्य हैं।

रुधिरनिकालनेके प्रकार।

एषुरोगेषुशृंगैर्वाजलौकालाबुकैरपि ॥
अथवापिशिरामोक्षैःकुर्याद्रक्तस्रुतिंनरः ॥ १८ ॥

अर्थ–पूर्वोक्त रोगोंमें वैद्य सींगी जोक तूंबी अथवा फस्त खोलकर रुधिर निकाले।

फस्तखोलने अयोग्य रोगी।

नकुर्वीतशिरामोक्षंकृशस्यातिव्यवायिनः ॥ क्लीवस्यभीरोगर्भिण्याःसूतिकापांडुरोगिणः ॥ १९ ॥ पंचकर्मविशुद्धस्यपीतस्नेहस्यचार्शसाम् ॥ सर्वांगशोथमुक्तानामुदरश्वासकासिना-

---

१ अंग पके फोडेके समान होता है।

२ ये कर्णादिक पकेके समान होकर प्रतीत हो।

म् ॥ २० ॥ छर्द्यतीसारयुक्तानामतिस्विन्नतनोरपि ॥ ऊनषो-
डशवर्षस्यगतसप्ततिकस्यच ॥ २१ ॥ आघातस्रुतरक्तस्याशि-
रामोक्षोनशस्यते ॥ एषांचात्ययिकेयोगेजलौकाभिस्तुनिर्हरेत्
॥ २२ ॥ तथापिविषयुक्तानांशिरामोक्षोऽपिशस्यते ॥

अर्थ—कृश (दुबलाहुआ) मनुष्य, स्त्रीका संग करनेमें अत्यंत आसक्त, नपुसक, डरपोक, गर्भिणी स्त्री, प्रसूतास्त्री पाडुरोगी, वमनादि पच कर्म करके शुद्धहुआ मनुष्य, जिसने स्नेह पान किया हो, बवासीररोग, जिसका सर्वांग सूजगया हो, उदररोग, श्वास, खाँसी, वमन और अतिसार इत्यादि रागोंसे पीडित, तथा जिसके अगोका पसीना निकाला हो, जिस मनुष्यकी अवस्था सोलह वर्षसे न्यून (कम) हो, तथा जिसकी सत्तर वर्षसे ऊपर अवस्था (ऊमर) होगईहो, चोट लगनेसे नासिकादिद्वारा रुधिर गिरताहो ऐसा मनुष्य, इन सब रोगियोंकी फस्त नही खोलनी । यदि रुधिर निकालनाही ठीक समझाजावे तो जोक लगायके रुधिर निकाले । कदाचित् ये रोगी विष-प्रयोगसे व्याप्त होवे तो उनकी फस्त खोलकरही रुधिर निकाले ।

वातादिकसे दूषितरक्तके निकालनेका प्रकार ।

गोशृंगेणजलौकाभिरलाबुभिरपित्रिधा ॥२३॥ वातपित्तकफै-
र्दुष्टंशोणितंस्रावयेद्बुधः ॥ द्विदोषाभ्यांतुसंसृष्टंत्रिदोषैरपि-
दूषितम् ॥ २४ ॥ शोणितंस्रावयेद्युक्त्याशिरामोक्षैःपदैस्तथा॥

अर्थ—वादीसे दूषितहुआ जो रुधिर उसको गौके सींगसे अर्थात् सींगी देकर निकाले । पित्तसे दूषित रुधिरको जोक लगायके निकाले । कफसे दूषित रुधिरको तूमडी लगायके निकाले । और जो दो दोषों करके अथवा तीन दोषों करके दूषित रुधिर है उसको युक्तिपूर्वक फस्त खोलक अथवा पछनेसे निकालना चाहिये ।

सींगी आदिको रुधिरग्रहणमें प्रमाण ।

गृह्णातिशोणितंशृंगंदशांगुलमितंबलात् ॥ २५ ॥
जलौकाहस्तमात्रंचतुंबीचद्वादशांगुलम् ॥
पदमंगुलमात्रेणाशिरासर्वांगशोधिनी ॥ २६ ॥

अर्थ—सिंगी लगानेसे सिंगी अपने बलसे दश अंगुलके रुधिरको खींचलेती है जोक लगानेसे एक हाथके रुधिरको खींचे । तुबी बारह अंगुलका उस्तरा एक अंगुलके रुधिरको खींचके निकाले । एव फस्त खोलनेसे संपूर्ण अंगका शोधन होता है ।

जिनके अंगसे रुधिर नहीं निकले उसका कारण।

शीतेनिरन्नेमूर्च्छार्तितंद्राभीतिमदश्रमैः ॥
युतानांनस्रवेद्रक्तंतथाविण्मूत्रसंगिनाम् ॥ २७ ॥

अर्थ—शीतकालमें जिस मनुष्यने उपवास किया हो, मूर्च्छा तंद्रा भयभीत मद और श्रम इन करके युक्त हो, मल और मूत्र ये जिसने भले प्रकार न किये हों ऐसे मनुष्योंके देहसे रुधिर नहीं निकलता।

रुधिर न निकलनेमें औषधि।

अप्रवर्तिनिरक्तेचकुष्ठचित्रकसैंधवैः ॥
मर्दयेद्व्रणवक्त्रंचतेनसम्यक्प्रवर्तते ॥ २८ ॥

अर्थ—फस्त देनेसे यदि रुधिर बाहर न आवे तो कूठ चित्रक और सैंधानमक इन तीन औषधोंका चूर्ण करके व्रणके मुखपर चुपडे तो रुधिर उत्तम प्रकारसे निकलने लगे।

रुधिरनिकालनेमें काल।

तस्मान्नशीतेनात्युष्णेनास्विन्नेनातितापिते ॥
पीत्वायवागूंतृप्तस्यशोणितंस्रावयेद्बुधः ॥ २९ ॥

अर्थ—शीतकाल तथा अत्यत गरमी न हो ऐसे समयमे मनुष्यके अगका पसीना विना निकाले और शरीर अत्यंत तप्त न होनेपर जौंकी यवागू पीकर तृप्त हुए मनुष्यका वैद्य रुधिर निकाले।

अत्यंत रुधिर निकलनेमें कारण।

अतिस्विन्नस्योष्णकालेतथैवातिशिराव्यधात् ॥
अतिप्रवर्ततेरक्तंतत्रकुर्यात्प्रतिक्रियाम् ॥ ३० ॥

अर्थ—मनुष्यके अगका अत्यत पसीना निकालकर गरमीकी ऋतुमें रुधिर निकालनेसे तथा फस्त खोलते समय अधिक नसके कट जानेसे देहसे रुधिर अधिक निकलता है उसके बंद करनेका यत्न आगेके श्लोकोंमें कहा है।

अत्यंत रुधिर निकलनेपर उपाय।

अतिप्रवृत्तेरक्तेचलोध्रसर्जरसांजनैः॥यवगोधूमचूर्णैर्वाधवधन्वनगैरिकैः ॥३१॥ सर्पनिर्मोकचूर्णैर्वाभस्मनाक्षौमवस्त्रयोः ॥
मुखंव्रणस्यबद्ध्वाचशीतैश्चोपचरेद्व्रणम् ॥३२॥ विध्येद्दूध्वैशि-

रांतांवादहेत्क्षारेणवाग्निना ॥ व्रणंकषायःसंधत्तेरक्तंस्कंदयतेहि-
मम् ॥ ३३ ॥ व्रणास्यंपाचयेत्क्षारोदाहःसंकोचयेच्छिराम् ॥

अर्थ–नसमेसे रुधिर अत्यत निकलने लगे तो उसके बंद करनेको लोध राल और रसोत इन तीनोका चूर्ण अथवा जौ और गेहू इनका चून अथवा धामिन जवासा और गेरू इन तीनोका चूर्ण अथवा सांपकी कांचलीका चूर्ण अथवा रेशम और कपडेकी राख इन सव औषधोमें जो समयपर मिल जावे उसको उस घावके मुखपर भरके दाब देवे फिर उस व्रणपर चदनादिक शीतल लेपादिक उपचार करे तो रुधिरका अत्यंत निकलना वद होवे । यदि इतने उपाय करने-पर भी रुधिर बंद न होय तो उस नसके ऊपर फिर शस्त्रसे फस्त खोले । अथवा उस व्रणके मुखको अग्निसे दाग देवे । इत्यादि उपायों करके रुधिर वद होताहै इसमें हेतु कहते हैं कि कषाय कहिये लोध्रादिक चूर्ण व्रणके मुखको पकडता है और शीतोपचार करके रुधिर थमता है । क्षार करके व्रणका पाचन होता है । तथा अग्न्यादि दाह करके शिरा (नस) का सकोच होता है ।

दागदेनेसे जो रोग दूरहो उनके नाम ।

वामांडशोथेदक्षस्यपरस्यांगुष्ठमूलजाम् ॥ ३४ ॥ दहेच्छिरां
व्यत्ययेतुवामांगुष्ठशिरांदहेत् ॥ शिरादाहप्रभावेणशुष्कशोथः
प्रशाम्यति ॥३५॥ विषूच्यांपाददाहेनजायतेऽग्नेःप्रदीपनम् ॥
संकुचंतियतस्तेनरसश्लेष्मवहाःशिराः ॥ ३६ ॥यदावृद्धिर्यकृ-
त्प्लीह्नोःशिशोःसंजायतेऽसृजः ॥तदातत्स्थानदाहेनसंकचंत्य-
सृजःशिराः ॥ ३७ ॥

अर्थ–मनुष्यको वाएँ तरफके अडकोशपर सूजन होवै तो दहने हाथके अँगूठेकी जडमे शिराको दाग देवे और दहने अडकोशपर सूजन होय तो बाएँ हाथके अँगूठेकी जडमें दाग देवे तो अडकोशकी सूजन दूर होवे । विषूचिका होनेसे लोहकी पत्ती अथवा कलछीको तपायकर पैरोंके तलुवेको तपावे ऐसा करनेसे रसवाहिनी शिरा तथा कफवाहिनी शिरा हैं उनका सकोच होकर अग्नि प्रदीप्त तथा विषूचिका (हैजा) दूर होती है । जिस समय बालकके पेटमें दहिने तरफ यकृत् कहिये कलेजा और वाई तरफ प्लीहा इनकी वृद्धि होय उस कालमें उस जगहपर दाग देवे तो यकृत् और प्लीहा ये सुकड जाते हैं ।

दुष्टरुधिर निकालनेपर जो अवशिष्टरहे उसके गुण ।

रक्तदुष्टेऽवशिष्टेऽपिव्याधिर्नैवप्रकुप्यति ॥अतःस्राव्यंसावशेषंर-

क्तेनातिक्रमोहितः ॥ ३८ ॥ आंध्यमाक्षेपकंतृष्णांतिमिरंशिर-
सोरुजम् ॥ पक्षघातंश्वासकासौहिक्कांदाहंचपांडुताम् ॥ ३९ ॥
कुरुतेविस्रुतंरक्तंमरणंवाकरोतिच ॥

अर्थ—शरीरसे दुष्ट रुधिर निकलकर थोडा अवशिष्ट रहनेसे रोगोका प्रकोप नही होता इसीसे जब २ रुधिर निकाले तभी २ थोडासा अवशिष्ट छोड देना चाहिये तो हितकारी होता है संपूर्ण रुधिर काढनेसे अधापन, आक्षेपवायु, प्यास, तिमिर, मस्तकपीडा, पक्षाघातवायु, श्वास, खाँसी, हिचकी, दाह और पाडुरोग ये उपद्रव होते हैं तथा मनुष्य मरणावस्थाको पहुँच जाता है। इसी वास्ते इस प्राणीका संपूर्ण रुधिर नहीं काढना चाहिये।

रुधिरसे देहकी उत्पत्तिआदिका प्रकार।

देहस्योत्पत्तिरसृजादेहस्तेनैवधार्यते ॥ ४० ॥
विनातेनव्रजेज्जीवोरक्षेद्रक्तमतोबुधः ॥

अर्थ—रुधिरसे दहकी उत्पत्ति है तथा रुधिरहीसे देहका धारण होता है और रुधिरके विना जीव रहता ही नहीं है अतः बुद्धिवान् वैद्य रुधिरका रक्षण करे।

रुधिर निकालनेपर दोष कुपित होनेका उपाय।

शीतोपचारैःकुपितेस्रुतरक्तस्यमारुते ॥ ४१ ॥
कोष्णेनसर्पिषाशोथंसव्यथंपरिषेचयेत् ॥

अर्थ—रुधिर काढनेपर व्रणस्थानमें पित्तका प्रकोप होनेसे चदनादिक शीतल उपचार करे, वादीका प्रकोप होनेसे यदि उस व्रणके स्थानमें पीडायुक्त सूजन आयजावे तो उस स्थानमें थोडे घीको गरम करके लगावे।

रुधिर निकालनेपर पथ्य।

क्षीणस्यैणशशोरभ्रहरिणच्छागमांसजः ॥ ४२ ॥
रसःसमुचितःपानेक्षीरंवापष्टिकाहिताः ॥

अर्थ—शरीरसे रुधिर काढनेसे जो मनुष्य क्षीण होगया हो उनको हरिण ससा मेंढा काला हरिण तथा बकरा इनके मासका रस सिद्ध करके पिलावे। तथा साँठीचावलोंको गौके दूधमें डालके खीर करके भोजन करना अथवा गौका दूध पिलावे। साँठीचावलका भात खानेको दे। इसप्रकार ये पदार्थ सेवन करना हितकारी होता है।

उत्तम प्रकारसे रुधिर निकलनेके लक्षण ।

पीडाशांतिर्लघुत्वंचव्याधेरुद्रेकसंक्षयः ॥ ४३ ॥
मनःस्वास्थ्यंभवेच्चिह्नंसम्यग्विस्राविते‌ऽसृजि ॥

अर्थ–पीडाका नाश, देहमे हलकापन, रोगोके उत्कर्षका भले प्रकार नाश, मनमें प्रसन्नता ये लक्षण उत्तमप्रकार रुधिर निकालनेसे होते हैं ।

रुधिर निकलनेपर वर्जित वस्तु ।

व्यायाममैथुनक्रोधशीतस्नानप्रवातकात् ॥ ४४ ॥
एकाशनंदिवानिद्राक्षाराम्लकटुभोजनम् ॥
शोकंवादमजीर्णंचत्यजेदाबलदर्शनात् ॥ ४५ ॥

इति श्रीदामोदरात्मजशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायामुत्तरखंडे चिकित्सास्थाने रक्तमोक्षणविधिवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अर्थ–परिश्रम, मैथुन, क्रोध, शीतल जलसे स्नान करना, बहुत हवा खाना, एकही धान्यका भोजन करना, दिनमें सोना, जवाखारादि खारे खट्टे तथा चरपरे पदार्थ भक्षण करना, शोक और वाद करना तथा बहुभोजनजन्य अजीर्ण इस प्रकार ये सर्व कारण शरीरमे जबतक पुरुषार्थ न आवे तबतक त्याग देना चाहिये ।

इति श्रीमाथुरदत्तरामविरचितमाथुरीभाषाटीकायामुत्तरखंडस्य द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः १३.

नेत्र अच्छे होनेके वास्ते उपचार ।

सेकआश्चोतनंपिंडीबिडालस्तर्पणंतथा ॥
पुटपाकोऽजनंचैभिःकल्कैर्नेत्रमुपाचरेत् ॥ १ ॥

अर्थ–१ सेक २ आश्चोतन ३ पिंडी ४ विडाल ५ तर्पण ६ पुटपाक और ७ अजन ये सात प्रकार नेत्ररोगमे कहे है । इनका कल्क करके जिस रीतिसे नेत्ररोगपर उपचार करना कहा है उसी प्रकार करे ।

सेकके लक्षण ।

सेकस्तुसूक्ष्मधाराभिःसर्वस्मिन्नयनेहितः ॥

मीलिताक्षस्यमर्त्यस्यप्रदेयश्चतुरंगुलम् ॥ २ ॥

अर्थ—मनुष्यके नेत्र बन्द करायके दूध घी रस इत्यादिकोंकी संपूर्ण नेत्रपर चार अंगुलके अंतरसे धार डालनेको सेक कहते हैं।

उस सेकके स्नेहनादिभेदकरके तीन प्रकार।

सचापिस्नेहनोवातेरक्तेपित्तेचरोपणः ॥
लेखनश्चकफेकार्यस्तस्यमात्राधुनोच्यते ॥ ३ ॥

अर्थ—वातरोग होनेसे स्नेहन सेक करे। रक्तपित्तका कोप होनेसे रोपण सेककरे तथा कफरोग होनेसे लेखन सेककी योजना करे। अब उसकी मात्रा कहते हैं।

सेककी मात्रा।

षड्वाक्छतैःस्नेहनेषुचतुर्भिश्चैवरोपणे ॥
वाक्छतैश्चत्रिभिःकार्यःसेकोलेखनकर्मणि ॥ ४ ॥

अर्थ—स्नेहनकर्ममें छःसौ अंक होनें पर्यंत नेत्रोंपर जिस औषधकी कही है उसकी धार दे। रोपण कर्म होय तो चारसौ अंकहोय तबतक धार डाले तथा लेखनकर्म होनेसे तीनसौ अंक होय तबतक धार डाले।

सेककरनेका काल।

कार्यस्तुदिवसेसेकोरात्रौचात्ययिकेगदे ॥

अर्थ नेत्रोपर सेक करना होय तो दिनमें करे। यदि रोगकी आविश्यताहोवे तो रात्रिके समयकरे।

वाताभिष्यंदरोगपर।

एरंडत्वक्पत्रमूलैःशृतमाजंपयोहितम् ॥ ५ ॥
सुखोष्णंसेचनंनेत्रेवाताभिष्यंदनाशनम् ॥

अर्थ—अंडकी छाल पत्ते और जड ये संपूर्ण बकरीके दूधमें औटावे। पश्चात् सुखोष्ण करके गरम २ की धार वाताभिष्यंदरोग दूरहोनेकेवास्ते नेत्रोपर देवे।

वाताभिष्यंदपर दूसरा सेक।

परिषेकोहितोनेत्रेपयःकोष्णंससैंधवम् ॥ ६ ॥

---

१ दूध घी इत्यादि स्नेहन द्रव्यों करके नेत्रोपर धार देना।

२ लोध मुलहटी त्रिफला इत्यादिक जो औषध उनको दूधमें अथवा पानीमे पीस नेत्रोपर धार देवे।

३ सोंठ मिरच इत्यादि लेखन औषधोंको जलमें पीसके अथवा काढा करके नेत्रोपर धार देवे।

रजनीदारुसिद्धं वा सैंधवेनसमन्वितम् ॥
वाताभिष्यंदशमनंहितंमारुतपर्यये ॥ ७ ॥
शुष्काक्षिपाकेचहितमिदंसेचनकंतथा ॥

अर्थ-वकरीके दूधमे सैंधानमक डाल गरम करके सहन होय ऐसी गरम २ दूधकी धार नेत्रोपर देय । अथवा हल्दी देवदारु और सैंधानमक इनका चूर्ण कर उसको दूधमे डालके गरम २ नेत्रोपर धार डाले तो वाताभिष्यद रोग वातविपर्यय तथा शुष्काक्षिपाक ये रोग दूरहों ।

रक्तपित्त तथा अभिघातपर सेक।

शाबरंमधुकंतुल्यंघृतभृष्टंसुचूर्णितम् ॥ ८ ॥
छागक्षीरघृतंसेकात्पित्तरक्ताभिघातजित् ॥

अर्थ-लोध और मुलहटी ये दोनों औषध समान भाग ले घीमे भून चूर्ण करके वकरीके दूधमें डाल नेत्रोंपर सेक करे । अर्थात् उस दूधकी गरम २ नेत्रोपर धार देवे तो पित्तविकार, रुधिरविकार और अभिघातजन्य विकार दूर होवे ।

रक्ताभिष्यंदपर सेक ।

त्रिफलालोध्रयष्टीभिःशर्कराभद्रमुस्तकैः ॥ ९ ॥
पिष्टैःशीतांबुनासेकोरक्ताभिष्यंदनाशनः ॥

अर्थ-त्रिफला (कहिये हरड वहेडा आँवळा) लोध मुलहटी खाँड और नागरमोथेका भेद भद्रमोथा ये सब औषध समान भाग ले शीतल जलमें पीस उस पानीका नेत्रोंपर सेक करे तो रक्ताभिष्यदरोग दूर हो । रक्ताभिष्यद अर्थात् जिसके नेत्र रुधिरविकारसे दूखें ।

रक्ताभिष्यंदपर दूसरा सेक ।

लाक्षामधुकमंजिष्ठालोध्रकालानुसारिवा ॥ १० ॥
पुंडरीकयुतःसेकोरक्ताभिष्यंदनाशनः ॥

अर्थ-१ लाख २ मुलहटी ३ मजीठ ४ लोध ५ सारिवा ६ सफेद कमल इन छःऔषधोंको जलमें पीसके उस पानीकी नेत्रोंपर धार डाले तो रक्ताभिष्यदरोग दूर होवे ।

नेत्रशूलनाशक सेक ।

श्वेतलोध्रघृतेभृष्टंचूर्णितंपटविस्तृतम् ॥ ११ ॥
उष्णांबुनाविमृदितंसेकाच्छूलघ्नसंवके ॥

अर्थ-सफेद लोधको घृतमें भूनके चूर्ण कर लेवे फिर उसको कपड छानके गरम जलसेपीस उस जलको नेत्रोंपर धार डाले तो नेत्रोंमें पीडाहोना दूर होवे।

आश्चोतनके लक्षण।

अथह्याश्चोतनंकार्यंनिशायांनकथंचन ॥ १२ ॥
उन्मीलितेऽक्षिणदङ्मध्येबिंदुभिर्द्व्यंगुलाद्धितम्॥

अर्थ-मनुष्यके नेत्रोंको उघाड नेत्रोंमें दो अंगुलके अंतरसे दूध काढा इत्यादिककी बूँद डाल ना इसको आश्चोतन कहते हैं। यह आश्चोतन कर्म रात्रिमें कदापि न करे।

लेखनादि आश्चोतनमें कितनी बिंदु डाले उसका प्रमाण।

बिंदवोऽष्टौलेखनेषुस्नेहने दशबिंदवः ॥ १३ ॥
रोपणेद्वादशप्रोक्तास्तेशीतेकोष्णरूपिणः ॥
उष्णेचशीतरूपाःस्युःसर्वत्रैवैषनिश्चयः ॥ १४ ॥

अर्थ-लेखन कर्म होय तो नेत्रमें आठ बूँद डाले। स्नेहकर्ममें दशबिंदु, रोपणकर्ममें बारह बिंदु डाले। वे बिंदु शीतकालहोय तो मंदोष्ण करके डाले और गरमीकी ऋतु हो तो शीतल डाले यह सर्वत्र निश्चय है।

वातादिकोंमें देनेकी योजना।

वातेतिक्तंतथास्निग्धंपित्तेमधुरशीतलम् ॥
तिक्तोष्णरूक्षंचकफेक्रमादाश्चोतनंहितम् ॥ १५ ॥

अर्थ-वातरोगमें कटु और स्निग्ध ऐसा आश्चोतन करे पित्तरोग होय तो मधुर तथा शीतल ऐसा करे, कफरोग होय तो कटु और उष्ण तथा रूक्ष ऐसा आश्चोतन करे इस प्रकार आश्चोतन योजना करनेसे हितकारी होता है।

आश्चोतनकी मात्राके लक्षण।

आश्चोतनानांसर्वेषांमात्रास्याद्वाक्छतंहितम् ॥
निमेषोन्मेषणंपुंसामंगुल्योश्छोटिकाथवा ॥ १६ ॥
गुर्वक्षरोच्चारणंवावाङ्मात्रेयंस्मृताबुधैः ॥

अर्थ-मनुष्यके नेत्रोंका निमेषोन्मेष कहिये पलकोंका खुलना मूँदना अथवा चुटकी बजाना अथवा गुरु कहिये दीर्घ अक्षरका उच्चारण करना अर्थात् एक अंक बोलना इतने कालको एक वाङ्मात्रा कहते हैं। ऐसी सौ वाङ्मात्रा संपूर्ण आश्चोतन कर्मोंमें हितकारी होती है।

वाताभिष्यंदपर आश्चोतन ।

विल्वादिपंचमूलेनबृहत्येरंडाशिग्रुभिः ॥ १७॥
क्वाथआश्चोतनेकोष्णोवाताभिष्यंदनाशनः ॥

अर्थ-विल्वादि पांच औषधोंकी जड कटेरी अडकी जड तथा सहँजनेकी छाल इन सब औषधों का काढा करके उसको सुहाता २ गरम करके नेत्रोंमें बूँद डाले तो वाताभिष्यदरोग दूर होवे ।

वातजन्य तथा रक्तपित्तसे उत्पन्न हुये अभिष्यन्दपर आश्चोतन ।

अंबुपिष्टैर्निंबपत्रैस्त्वचंलोध्रस्यलेपयेत् १८ ॥
प्रताप्यवह्निनापिष्ट्वातद्रसोनेत्रपूरणात् ॥
वातोत्थंरक्तपित्तोत्थमभिष्यंदंविनाशयेत् ॥ १९ ॥

अर्थ-नीमके पत्तोंको जलमें पीसके लोधकी छालपर लेप कर देवे । फिर उस छालको अग्निपर तपायके पीस लेवे । तब उसका रस निकालके नेत्रोंमें बूँद डाले तो वातजन्य तथा रक्तपित्त जन्य जो अभिष्यन्द होता है वह दूर होवे ।

सर्वप्रकारके अभिष्यन्दोंपर आश्चोतन ।

त्रिफलाश्चोतनंनेत्रेसर्वाभिष्यंदनाशनम् ॥

अर्थ-त्रिफलेके काढेकी गरम २ बूँद नेत्रोंमें डाले तो सर्व प्रकारके अभिष्यंदरोग दूर हों ।

रक्तपित्तादिजन्य अभिष्यन्दपर आश्चोतन ।

स्त्रीस्तन्याश्चोतनंनेत्रेरक्तपित्तानिलार्तिजित् ॥ २० ॥
क्षीरसर्पिर्घृतंवापिवातरक्तरुजंजयेत् ॥

अर्थ-स्त्रीके दूधकी बूँद नेत्रोंमें डालेतो रक्तपित्त तथा वादीसे होनेवाली पीडा दूरहोवे । इसी प्रकार दूध मलाई अथवा घी इनकी विंदु नेत्रोंमें छोडे तो वातरक्तसंबंधी पीडा दूरहोवे ।

पिंडीके लक्षण ।

पिंडीकवलिकाप्रोक्ताबध्यतेपट्टवस्त्रकैः ॥ २१ ॥
नेत्राभिष्यंदयोग्यासाव्रणेष्वपिनिबध्यते ॥

अर्थ-औषधको पीस टिकिया बनाय नेत्रोंपर रखके रेशमी कपडेकी पट्टीसे बाँधे इसको पिंडी अथवा कवलिका इस प्रकार कहते हैं । यह पिंडीनेत्राभिष्यंद रोगपर हितकारी है तथा व्रणपर भी इसको बाँधते हैं ।

कफाभिष्यंदपर शिरोविरेचन।

अभिष्यंदेऽधिमंथेचसंजातेश्लेष्मसंभवे ॥ २२ ॥
स्निग्धस्विन्नोत्तमांगस्यशिरस्तीक्ष्णैर्विरेचयेत् ॥

अर्थ–कफसंबंधी अभिष्यन्द तथा अधिमन्थ ये रोग जिस मनुष्यके होवें उसके मस्तकमें तेल मलकर स्निग्ध करे अर्थात् मस्तकके पसीने निकाले। फिर मस्तकके शोधन होनेके वास्ते तीक्ष्ण औषधकी नाकमें नस्य देवे।

अधिमंथरोगपर दूसरा उपचार।

अधिमंथेषुसर्वेषुललाटेवेधयेच्छिराम् ॥ २३ ॥
अशांतेसर्वथामंथेभ्रुवोस्तुपरिदाहयेत् ॥

अर्थ–संपूर्ण अधिमथोमें ललाटस्थ शिरा अर्थात् मस्तककी फस्त खोलके रुधिर निकाले तो सर्व प्रकारके अधिमन्थ शान होवें। यदि इस प्रकार करनेपरभी रोग शांति न होवे तो भ्रुकुटीमें दाग देवे।

अभिष्यंदमें क्रिया।

अभिष्यंदेषुसर्वेषुबध्नीयात्पिंडिकांबुधः ॥ २४ ॥
वाताभिष्यंदशांत्यर्थंस्निग्धोष्णापिंडिकाभवेत् ॥

अर्थ–संपूर्ण अभिष्यंद रोगोंमे नेत्रोंपर जो औषध कही है उसकी टिकिया करके बाँधे और वाताभिष्यंद शमन होनेको स्निग्ध कहिये चिकनी और गरम ऐसी टिकिया बाँधे।

वाताभिष्यंदपर तथा पित्ताभिष्यंदपर पिंडी।

एरंडपत्रमूलत्वग्भिर्निर्मितावातनाशिनी ॥ २५ ॥
पित्ताभिष्यंदनाशायधात्रीपिंडीसुखावहा ॥

अर्थ–अडके पत्ते जड और छाल इन सबको पीसके टिकिया बनावे इस टिकियाको वाताभिष्यंद नाश करनेको नेत्रोंपर बाँधे। तथा पित्ताभिष्यद दूर करनेको आँवलोको पीस टिकिया बनायके नेत्रोंपर बाँधे।

पित्ताभिष्यंदपर दूसरी पिंडी।

महानिंबफलोद्भूतापिंडीपित्तविनाशिनी ॥ २६ ॥

अर्थ–बकायनके फलोंको पीस टिकिया बनाय पित्ताभिष्यंद नाश करनेको नेत्रोंपर बाँधे।

कफाभिष्यंदपर पिंडी।

शिग्रुपत्रकृतापिंडीश्लेष्माभिष्यंदनाशिनी ॥

अर्थ–सहँजनेके पत्तोंको पीस टिकिया बनाय कफाभिष्यंद नाश करनेको नेत्रोंपर बाँधे ।

कफपित्ताभिष्यंदपर पिंडी ।

निंबपत्रकृतापिंडीश्लेष्मपित्तहराभवेत् ॥ २७ ॥
त्रिफलापिंडिकाप्रोक्तानाशनेश्लेष्मपित्तयोः ॥

अर्थ–कफपित्ताभिष्यद दूर करनेको नीमके पत्ते पीस टिकिया बनाय नेत्रोंपर बाँधे अथवा त्रिफलाको पीस टिकिया बनायके नेत्रोंपर बाँधे तो कफपित्ताभिष्यंद रोग दूर हो ।

रक्ताभिष्यंदपर पिंडी ।

पिष्टाकांजिकतोयेनघृतभृष्टाचपिंडिका ॥ २८ ॥
लोध्रस्यहरतिक्षिप्रमभिष्यंदमसृग्दरम् ॥

अर्थ–लोधको कॉजीमे पीस घीमे भूनके टिकिया बनावे । इसको नेत्रोंपर बाँधे तो रक्ताभिष्यंद नेत्ररोग दूर हो ।

सूजनखुजली इत्यादिकोंपर पिंडी ।

शुंठीनिंबदलैःपिंडीसुखोष्णास्वल्पसैंधवा ॥ २९ ॥
धार्याचक्षुषिसंयोगाच्छोथकंडूव्यथापहा ॥

अर्थ–सोठ और नीमके पत्ते इनको एकत्र पीस उसमें थोडासा सेंधानमक डालके टिकिया बनावे । इसको सूजन और खुजली दूर होनेके वास्ते कुछ गरम करके नेत्रोंपर बाँधे ।

विडालकके लक्षण ।

विडालकोबहिर्लेपोनेत्रपक्ष्मविवर्जितः ॥ ३० ॥
तस्यमात्रापरिज्ञेयामुखलेपविधानवत् ॥

अर्थ–नेत्रोंको छोड पलकोंके बाहरके अंगमें नेत्रोंके चारोतरफ लेप करनेको विडालक कहैं हैं. इसके लेपकी मात्रा मुखलेपका विधान कहाहै उसी प्रकार जाननी ।

सर्वनेत्ररोगोंपर लेप ।

यष्टीगैरिकसिंधूत्थदार्वीतार्क्ष्यैःसमांशकैः ॥ ३१ ॥
जलपिष्टैर्बहिर्लेपःसर्वनेत्रामयापहः ॥

अर्थ–१ मुलहटी २ गेरू ३ सेंधानमक ४ दारुहल्दी ५ खपरिया इन सबको समान भाग ले पानीमें पीस नेत्रोंके बाहरके भागमें चारों तरफ लेप करे तो सर्व अभिष्यद रोग दूर हो ।

सर्वनेत्ररोगपर दूसरा लेप।

रसांजनेनवालेपः पथ्याविश्वदलैरपि ॥ ३२ ॥
कुमारिकाग्निपत्रैर्वादाडिमीपल्लवैरपि ॥
वचाहरिद्राविश्वैर्वातथानागरगैरिकैः ॥ ३३ ॥

अर्थ—रसोतको जलमें पीस लेपकरे अथवा हरड सोंठ और पत्रज ये तीन औषध जलमे पीसके लेप करे। अथवा घीगुवार और चीतेके पत्ते दो औषध जलमे पीसके लेपकरे। अथवा अनारकी पत्तियोंको पीस लेप करे। अथवा वच हल्दी आर सोंठ ये तीन औषध जलमे पीसके लेप करे। उसी प्रकार सोंठ और गेरू ये दो औषध जलसे पीसके लेपकरे। ये छः प्रकारके लेप नेत्रके वाहरले भागमें चारोंतरफ करनेसे सर्व प्रकारके नेत्ररोग दूर होवे।

सर्वनेत्ररोगोंपर तीसरा लेप।

दग्ध्वाग्नौसैंधवंलोध्रंमधूच्छिष्टयुतेघृते ॥
पिष्टमंजनलेपाभ्यांसद्योनेत्ररुजापहम् ॥ ३४ ॥

अर्थ—सैंधानमक और लोध इन दोनों औषधोंको अग्निमें जलायके मोम और घीमें सानलेवे। फिर खूब वारीक करके नेत्रोंमें अंजन करे और वाहरके भागमें उन औषधोंका लेप कर तो नेत्रसंबधी पीडा तत्काल दूर होवे।

चौथा लेप।

लोहस्यपात्रेसंघृष्टोरसोनिंबुफलोद्भवः ॥
किंचिद्घनोबहिर्लेपान्नेत्रबाधांव्यपोहति ॥ ३५ ॥

अर्थ—लोहेके पात्रमें नींबूके रसको घोटे। जब कुछ गाढा होजावे तब नेत्रोंके वाहरके भागमे लेप करे तो नेत्रसबंधी पीडा दूर होय।

अर्मरोगपर लेप।

संचूर्ण्यमरिचंकेशराजस्वरसमर्दनात् ॥
लेपनादर्मणांनाशंकरोत्येषप्रयोगराट् ॥ ३६ ॥

अर्थ—कालीमिरचोंको भाँगरेके रसमें पीसके नेत्रोपर लेप करे तो शुक्लार्म तथा अधिमांसार्म इत्यादिक नेत्ररोगमें जो अर्मरोग है वह दूर होवे।

अंजननामिकाफुन्सीपर लेप।

स्विन्नांभित्त्वाविनिष्पीड्यभिन्नामंजननामिकाम् ॥

शिलैलानतसिंधूत्थैःसक्षौद्रैःप्रतिसारयेत् ॥ ३७ ॥

अर्थ—नेत्रके कोयेंमे अंजननामिका फुन्सी होती है उसको स्वेदयुक्त करके अर्थात् वफारेसे पसीने निकालके फोडडाले और चारोंतरफसे दावके मलवा निकाल डाले। फिर मनशिल इलायची तगर और सैंधानमक इन चार पदार्थोंका चूर्णकर सहतमें मिलाय उस फुन्सीमें प्रतिसारण करे अर्थात् उस औषधको उस फुन्सीके ऊपर चुपडे तो अंजननामिका फुन्सी (गुहेरी) दूर होवे।

नेत्ररोगपर तर्पण।

अथतर्पणकंवच्मिनेत्रतृप्तिकरंपरम् ॥ यद्रूक्षंपरिशुष्कंचनेत्रंकुटिलमाविलम् ॥ ३८ ॥ शीर्णपक्ष्मशिरोत्पातकृच्छ्रोन्मीलनसंयुतम् ॥ तिमिरार्जुनशुक्राद्यैरभिष्यंदाधिमंथकैः ॥३९॥ शुक्राक्षिपाकशोथाभ्यांयुक्तंवातविपर्ययैः ॥ तन्नेत्रंतर्पणेयोज्यंनेत्रकर्मविशारदैः ॥ ४० ॥

अर्थ—नेत्रोंको तृप्त करता ऐसा तर्पण कहताहू। जिन नेत्रोंमे रूक्षता शुष्कता वा कोपन तथा गदलाहट होवे ऐसे प्रकारके नेत्ररोग तथा जिसमे पलकोंके वाल जाते रहेहो, शिरोत्पात, कृच्छ्रोन्मीलन, तिमिर, अर्जुन, शुक्र कहिये फूला, अभिष्यद, अधिमंथ, शुक्राक्षिपाक, सूजन, वातविपर्यय इतने रोगों करके व्याप्त जो नेत्र उनमें वैद्य तर्पण करे अर्थात् नेत्रोंकी तृप्तिकारी औषध उनमे डाले।

तर्पणअयोग्य प्राणी

दुर्दिनात्युष्णशीतेषुचिंतायासभ्रमेषुच ॥
अशांतोपद्रवेचाक्ष्णितर्पणंनप्रशस्यते ॥ ४१ ॥

अर्थ--दुर्दिन कहिये मेघाच्छादित दिवस अत्यत गरमी और शीतकाल होनेसे शरीरमें चिंता परिश्रम और भ्रम ये उपद्रव होनेसे तथा नेत्रसंवंधी शूलादिक उपद्रव शात न होनेसे यह तर्पण मात्राकी योजना न करे।

तर्पणका विधान।

वातातपरजोहीनेदेशेचोत्तानशायिनः ॥ आधारामाषचूर्णेनक्लिन्नेनपरिमंडलौ॥ ४२ ॥ समौदृढावसंबाधौकर्तव्यौनेत्रकोशयोः ॥ पूरयेद्धृतमंडेनविलीनेनसुखोदकैः ॥ ४३ ॥ अथवाशतधौते-

नसर्पिषाक्षीरजेनवा॥ निमग्नान्यक्षिपक्ष्माणियावत्स्युस्तावदे- वहि ॥ ४४ ॥ पूरयेन्मीलितेनेत्रेततउन्मीलयेच्छनैः ॥

अर्थ—पवन गरमी तथा धूल ये जिस जगह न होवे उस स्थानमें मनुष्यको चित्त लेटायके नेत्रको शमें अर्थात् नेत्रके चारों ओर भीगेहुए उडदोंके चूनका दृढ तथा उत्तम गोल और समान मेंडरु बनावे। फिर नेत्रोंको बंद करके उस मंडलमें पतला घी भर देवे। अथवा मंड कहिये मॉड अथवा सुखोष्णजल अथवा सौवार धुलाहुआ घी अथवा दूध ये पदार्थ जहांतक नेत्रोंके पलक न डूबे तहांतक भरे अर्थात् तबतक पतली २ धार डाले फिर धीरे २ नेत्रोंको खोले।

तर्पणमात्राका प्रमाण।

धारयेद्वर्त्मरोगेषुवाङ्मात्राणांशतंबुधः ॥ ४५ ॥ स्वच्छेकफे- संधिरोगेमात्रापंचशतंहितम् ॥ शुक्लेचषट्शतंकृष्णरोगेसप्तश तंमतम् ॥ ४६ ॥ दृष्टिरोगेष्वष्टशतमधिमंथेसहस्रकम् ॥ सह स्रंवातरोगेषुधार्यमेवंहितर्पणम् ॥ ४७ ॥

अर्थ—नेत्रसंबंधी पलकोंके रोग उनमें भी वाङ्मात्रा होनेपर्यंत तर्पणरूप औषध नेत्रोंमे धारण करे केवल कफरोग होय तो नेत्रोंके संधिगत रोग होनेसे पांचसौ मात्रा धारण करे। नेत्रोंके सफेद भागमें रोग होनेसे छः सौ मात्रा, काली, पुतलीमे रोग होनेसे सातसौ मात्रा, दृष्टिरोग होनेसे आठसौ, अधिमंथरोग होनेसे एक हजार मात्रा तथा वातरोग होनेसे एक हजार मात्रा तर्पणरूप औषधको धारणकरे इस प्रकार मात्राका प्रमाण जानना।

तर्पणद्वारा कफकी आधिक्यता होनेमें उपाय।

स्विन्नेनयवपिष्टेनस्नेहवीर्यैरितंततः ॥
यथास्वंधूमपानेनकफमस्यविशोधयेत् ॥ ४८ ॥

अर्थ—तर्पणके स्नेह वीर्य करके उत्पन्नहुए कफको जो भिगोकर पीस लेवे। इसको हुक्केमें धरके पीय। इसप्रकार शोधन करना चाहिये।

तर्पणप्रयोग कितने दिन करे उसकी मर्यादा।

एकाहंवाज्यहंवापिपंचाहंचेष्यतेपरम् ॥

अर्थ—नेत्रोंमे तर्पणप्रयोग करना होय तो एक दिन अथवा तीन दिन अथवा पांच दिनपर्यंत करे। यह उत्कृष्ट प्रमाण जानना।

तर्पणकी तृप्तिके लक्षण।

**तर्पणेतृप्तिलिंगानिनेत्रस्येमानिभावयेत् ॥ ४९ ॥
सुखस्वप्नावबोधत्वंवैशद्यंवर्णपाटवम् ॥
निवृत्तिर्व्याधिशांतिश्चक्रियालाघवमेवच ॥ ५० ॥**

अर्थ–सुखपूर्वक निद्राका आना और यथेष्ट जागना, नेत्रोंकी कांति उत्तम होय, दृष्टि (नजर) स्वच्छ (साफ) हो, रोगोका नाश और क्रियालाघव कहिये नेत्रोंका खुलना मूँदनारूप क्रियाका हलकापन होय। ये लक्षण तर्पण करके नेत्र तृप्त होनेसे होते हैं।

तर्पण अधिकहोनेके लक्षण।

अथसाश्रुगुरुस्निग्धंनेत्रंस्यादतितर्पितम ॥

अर्थ–तर्पण करके नेत्र अत्यंत तृप्त होनेसे नेत्रोंसे जल आवे नेत्रोका भारीपन तथा उनसे चिकनाहट होती है।

हीनतर्पणके लक्षण।

रूक्षमस्राविलंरुग्णंनेत्रंस्याद्धीनतर्पितम् ॥ ५१ ॥

अर्थ–तर्पणकरके नेत्र तृप्त होनेसे तेज रहित हों लाल रंगके हों दूखें तथा रोगोकरके व्याप्त हों।

तर्पणकरके नेत्र अतिस्निग्ध तथा हीनस्निग्ध होनेसे यत्न।

रूक्षस्निग्धोपचाराभ्यामेतयोःस्यात्प्रतिक्रिया ॥

अर्थ–तर्पण करके अतिस्निग्ध नेत्र उनको रूक्ष उपायोकरके अच्छा करे। हीनस्निग्ध नेत्रोंकी स्निग्धोपचारोंकरके चिकित्सा करे अर्थात् रूक्षोंको चिकने पदार्थों करके और चिकनोको रूक्ष पदार्थ करके अच्छा करना चाहिये।

पुटपाक।

अतऊर्ध्वंप्रवक्ष्यामिपुटपाकस्यसाधनम् ॥ ५२ ॥ द्वौबिल्वमात्रौ मांसस्यपिंडौस्निग्धौसुपेषितौ ॥ द्रव्याणांबिल्वमात्रंतुद्रवाणांकुडवोमतः ॥ ५३ ॥ तदेकस्थंसमालोडयपत्रैःसुपरिवेष्टितम् ॥ पुटपाकेनतत्पक्त्वागृह्णीयात्तद्रसंबुधः ॥ ५४ ॥ तर्पणोक्तविधानेनयथावदुपचारयेत् ॥

अर्थ—इसके उपरांत पुटपाक साधनकी क्रिया कहते हैं। हरिणादिकोंका मांस दो बिल्व लेकर उसको घृतादिक स्नेहपदार्थके साथ मिलायके बारीक पीस सूखी औषध जो कही है वह एक बिल्व ले। तथा दूध जल इत्यादिक द्रव पदार्थ एक कुडव ले। ये सब वस्तु उस मासमे मिलायके उस मांसका गोला बनावे। फिर जामुन अथवा आम इत्यादिकोंके पत्तोंको उस मांसके गोलेके चारो तरफ लपेटके उसपर मिट्टीको लेप करै। पश्चात् पुटपाककी विधिसे उस गोलेको अग्निमें सिद्ध करे। फिर उसकी मिट्टी और पत्तोंको दूर करके उस गोलेको निचोडके रस निकास लेवे और तर्पणकी विधिके अनुसार इस रसको नेत्रोंमे डाले (बिल्व नाम पलका है) मध्यखंडमे स्वरसाध्यायमें पुटपाककी विधि कही है।

पुटपाकसम्बन्धीरस नेत्रोंमें डालनेका विधान।

दृष्टिमध्येनिषेच्यःस्यान्नित्यमुत्तानशायिनः ॥ ५५ ॥
स्नेहनोलेखनश्चैवरोपणश्चेतिसत्रिधा ॥

अर्थ—वह पुटपाकसंबन्धी रस स्नेहन लेखन और रोपण इन भेदो करके तीन प्रकारका है। उसे मनुष्यको चित्त लेटायके नेत्रोमें दृष्टिके मध्यभागमें नित्य डाले।

स्नेहनादि भेदकरके पुटपाककी योजना।

हितःस्निग्धोऽतिरूक्षस्यस्निग्धस्यापिहिलेखनः ॥ ५६ ॥
दृष्टेर्बलार्थमितरःपित्तासृग्व्रणवातनुत् ॥

अर्थ—रूक्षनेत्रोमें स्निग्ध पुटपाक और स्निग्ध नेत्रोंमें लेखन पुटपाक योजना करे तथा दृष्टिमें बल आनेके लिये इतर कहिये रोपण पुटपाककी योजना करे। वह पुटपाक नेत्रसंबंधी दुष्टहुए पित्त रुधिर व्रण और वायु इनको दूर करे। इनकी पृथक् २ योज्ना आगेके श्लोकोंमें कही है।

स्नेहनपुटपाक।

सर्पिर्मांसवसामज्जामेदःस्वाद्वौषधैःकृतः ॥ ५७ ॥
स्नेहनःपुटपाकस्तुधार्योद्वेवाक्छतेदृशोः ॥

अर्थ—घी हरिणादिकोंका मास वसा मज्जा और मेदा ये सब घीमें मिलायके पीसे। तथा स्वादु औषध कहिये काकोल्यादि गणकी औषधोंका चूर्ण करके उस मांसादिकमे मिलायके गोला

१ तर्पण और पुटपाक दोनोमे नेत्रोके चारो तरफ उडदका थामलामाथा बनाय करके रस डाल्ते हैं परन्तु तर्पणरूप औषध नेत्र मूँदके ऊपर गेरते हैं और पुटपाक सबंधी रस नेत्रोको खोलकर नेत्रोंके बीचा-बीचमें डाला जाता है केवल इतनाही भेद है।

करे। उस गोलेके चारोतरफ जामुन आँब इत्यादिकोंके पत्ते लपेट उसपर मिट्टी लगायके पुटपाककी विधिसे अग्नि देवे। पश्चात् उस गोलेको वाहर निकाल मिट्टी और पत्तोंको दूर करके रस निचोड लेवे। इस रसको नेत्रमे डाले और जवतक दोसौ मात्रा होवे तवतक इसको धारण करे। इसको स्नेहनपुट पाक कहते हैं।

लेखनपुटपाक।

जांगलानांयकृन्मांसैर्लेखनद्रव्यसंयुतैः ॥५८॥ कृष्णलोहरज-स्ताम्रशंखविद्रुमसिंधुजैः ॥ समुद्रफेनकासीसस्रोतोजलधिम-स्तुभिः ॥ ५९ ॥ लेखनोवाक्छतंधार्यस्तस्यतावद्विधारणम् ॥

अर्थ—हरिणादिकोंके कलेजेका मास लोहचूर्ण तांबेका चूर्ण शख मूँगा सैंधानमक समुद्रफेन हीराकसीस सुरमा तथा वकरीके दहीका तोड ये नौ लेखन द्रव्य जानना। इनका चूर्ण करके उसे मासमे मिलाय दे। तथा उसमें दहीका तोड (दहीका जल) मिलायके गोला करे। और इसको पुटपाककी विधि (जो पूर्व कह आए है उसी प्रकार) से सिद्ध करे। पश्चात् उसको वाहर निकाल निचोडके रस निकाल लेवे। इसको नेत्रमें डालके सौ वाङ्मात्रा होने पर्यंत धारण करे। इसको लेखन पुटपाक कहते हैं।

रोपणपुटपाक।

**स्तन्यजांगलमध्वाज्यतिक्तकद्रव्यपाचितः ॥ ६० ॥
लेखनात्त्रिगुणोधार्यःपुटपाकस्तुरोपणः ॥
वितरेत्तर्पणोक्तांतुक्रियांव्यापत्तिदर्शने ॥ ६१ ॥**

अर्थ—स्त्रीके स्तनका दूध हरिणादिकोंका मांस सहत घी और कुटकी इन संपूर्ण औषधोंका पूर्वोक्त हरिणादिकके मांसमें मिलायके गोला वनावे। तथा इसको पुटपाककी विधिसे परिपक्व करके वाहर निकाल पत्ते मिट्टी दूर करके रस निचोड लेवे इसको नेत्रोमे डालके तीनसौ वाङ्मात्रा होने-पर्यंत धारण करे। इसको रोपणपुटपाक कहते हैं। यदि पुटपाकके अधिक अथवा न्यून होनेसे नेत्रोंमें भारीपना तथा निस्तेजता इत्यादिक उपद्रव होवें तो तर्पणमे जैसी क्रिया लिखी है उसी प्रकार इस पुटपाकके हीनाधिक्य होनेमें करे।

संपकदोष होनेसे अञ्जन तथा साधारण अञ्जनका विधान।

अथसंपकदोषस्यप्रातमंजनमाचरेत्॥ हेमंतेशिशिरेचैवमध्या-

ह्नेंजनमिष्यते ॥ ६२ ॥ पूर्वाह्णेचापराह्णेचग्रीष्मेशरदिचेष्यते ॥ वर्षासुनाभ्रेनात्युष्णेवसंतेचसदैवहि ॥ ६३ ॥

अर्थ–दोषोंको परिपाक होनेपर अर्थात् पाच दिनके पश्चात् अंजनादिक करे। तथा अंजन की साधारण विधि कहते हैं कि हेमंतऋतु (मार्गशिर और पौष) तथा शिशिर ऋतु (माघ फाल्गुन) इनमें मध्याह्नकालमें (दो प्रहर दिन चढनेपर) नेत्रोंसे अंजन करे। ग्रीष्मऋतु (ज्येष्ठ आषाढ) और शरद्ऋतु (आश्विन कार्तिक) इनमें दो प्रहर दिन चढनेके पूर्व और तीसरे प्रहरमें अंजन करे। वर्षाऋतु तथा अत्यंत गरमीमें अंजन न करे। एवं वसंत ऋतुमें सर्वकाल अंजन आँजना चाहिये।

अंजनके भेद।

लेखनंरोपणंचैवतथातत्स्नेहनांजनम् ॥ लेखनंक्षारतीक्ष्णाम्लरसैरंजनमिष्यते ॥ ६४ ॥ कषायतिक्तरसयुक्तसस्नेहंरोपणंमतम् ॥ मधुरस्नेहसंपन्नमंजनंचप्रसादनम् ॥ ६५ ॥

अर्थ–लेखन रोपण और स्नेहन इन भेदों करके अंजन तीन प्रकारका है उनमें खारी तीक्ष्ण और खट्टा ये रस जिस अंजनमें हैं वह लेखन अंजन कहाता है। कषाय कहिये कषैला, तिक्त कहिये कडुआ, इन दो रसों करके युक्त जो अंजन स्नेहयुक्त हो उसे रोपणांजन जानना। मधुरस करके युक्त और स्नेहयुक्त जो होय उस अंजनको प्रसादन कहिये स्नेहनांजन जानना।

गुटिकादिभेदकरके अंजनके तीन भेद।

गुटिकारसचूर्णानित्रिविधान्यंजनानिच ॥ कुर्याच्छलाकयांगुल्याहीनानिचयथोत्तरम् ॥ ६६ ॥

अर्थ–गुटिका कहिये गोली तथा रसरूप (द्रवपदार्थ युक्त)अंजन एवं चूर्ण इस प्रकार अञ्जन तीन प्रकारके जानने। गुटिकाकी अपेक्षा (बनिस्बत) रस गुणोंमे न्यून है। तथा रसांजनकी अपेक्षा चूर्णांजन गुणोंमें न्यून है इसप्रकार उत्तरोत्तर गुणोंमें हलकेहैं। तथा उन अंजनोंको शलाका कहिये सलाई करके अथवा उँगुलियोंसे नेत्रोंमें लगावे।

अंजनविषयमें अयोग्य।

श्रांतेप्ररुदितेभीतेपीतमद्येनवज्वरे ॥

---

१ जिस प्राणीके नेत्र जिस दिन दूखनेको आवे उस दिनसे लेकर पाच दिनके पश्चात् दोष परिपक्व होते हैं।

अजीर्णेवेगघातेचनांजनंसंप्रचक्षते ॥ ६७ ॥

अर्थ–श्रमसे थकाहुआ, रुदन करनेवाला, डरपोक, मद्यपान करनेवाला, नवीन ज्वरवाला और अजीर्ण होनेवाला, मूत्रादिकोंका अवरोध करनेवाला ऐसे मनुष्यको अजन नहीं करना चाहिये ।

अंजनवर्तीका प्रमाण ।

हरेणुमात्रांकुर्वीतवर्तितीक्ष्णांजनेभिषक् ॥
प्रमाणंमध्यमेऽध्यर्धंद्विगुणंतुमृदौभवेत् ॥ ६८ ॥

अर्थ–तीक्ष्ण अजन (जो नेत्रोंको अत्यंत पीडाकरे) की हरेणु (मटर) के समान लम्बी वत्ती वनावे । उसी प्रकार मध्यम अंजनमें हरेणुके डेढ वीजके वरावर लंवी गोली वनावे और मृदु अजनमे मटरके दो वीजोंको वरावर गोली वत्तीके आकार करे ।

अंजनमें रसका प्रमाण ।

रसक्रियातूत्तमास्यात्त्रिविडंगमिताहिता ॥
मध्यमाद्विविडंगास्याद्धीनात्वेकविडंगका ॥६९ ॥

अर्थ–रसक्रिया कहिये द्रवरूप अंजनकी मात्रा तीन वायविडंगके समान नेत्रोंमें डालनेसे उत्तम रसक्रिया जाननी । दो वायविडगके समान मात्रा नेत्रोंमें डालनेको मध्यम रसक्रिया जाननी । एक वायविडगके प्रमाणकी मात्रा हीनरसक्रिया अर्थात् कनिष्ठ जाननी ।

विरेचनअजनमें चूर्णका प्रमाण ।

वैरेचनिकचूर्णंतुद्विशलाकंविधीयते ॥
मृदौतुत्रिशलाकंस्याच्चतस्रःस्नैहिकेंजने ॥ ७० ॥

अर्थ–वैरेचनिकचूर्ण (जिस चूर्णसे नेत्रोसे अधिक जल गिरे) उसको द्विशलाक अर्थात् सलाईको दोवार चूर्णमे सानके दो वार नेत्रोंमें फेरके निकास लेवे मृदु अंजनमें औषधोंके चूर्णमें तीनवार सलाईको डुवोयके तीनवार नेत्रोंमें फेरके निकाल लेय । घी आदि जो चिकने पदार्थ हैं उनसे मिले हुए अंजनोंमें सलाईको चारवार डुवोयके सलाईको चारवार नेत्रोंमें फेरको निकाल लेय ।

सलाईका प्रमाण और वह किसकी वनावे ।

मुखयोःकुंठिताश्लक्ष्णाशलाकाष्टांगुलोन्मिता ॥
अश्मजाधातुजावास्यात्कलायपरिमंडला ॥ ७१ ॥

अर्थ—पाषाण (पत्थर) की अथवा सुवर्णादि धातुओंकी ऐसी सलाई आठ अंगुलकी करके उसका मुख गोल करे परंतु बारीक न करे । तथा वह मटरके दानेके समान सुंदर गोल होनी चाहिये ।

लेखनादिकोंमें सलाईका प्रमाण ।

ताम्रलोहाश्मसंजाताशलाकालेखनेमता ॥
स्वर्णरजतोद्भूताशलाकास्नेहनेमता ॥ ७२ ॥
अंगुलीचमृदुत्वेनकथितारोपणेवुधैः ॥

अर्थ—लेखन अंजनमें ताँबेकी अथवा लोहेकी अथवा पत्थरकी सलाईकी योजना करे । स्नेहन अंजनमें सोनेकी अथवा रूपे (चाँदी) की सलाईकी योजना करे तथा उँगलीमें नम्रता है इसी वास्ते रोपण अंजनमें उँगलीकी योजना करे अर्थात् उँगलीहीसे लगावे ।

कौनसे समय तथा कौनसे भागमें अंजन करे ।

सायंप्रातश्चांजनंस्यात्तत्सदानैवकारयेत् ॥ ७३ ॥
नातिशीतोष्णवाताभ्रवेलायांसंप्रशस्यते ॥

कृष्णभागादधःकुर्यादपांगंयावदंजनम् ॥ ७४ ॥

अर्थ—सायंकाल और प्रातःकाल अंजन करे । सर्वकाल अंजन नहीं करे अत्यंत शीतकाल, अत्यंत उष्णकाल, वायु (अत्यंत हवा) चलनेके समय और जिस समय बद्दल होवें उस समय अंजन न करे । नेत्रके काले भागके नीचेके पलकमें अंजन करे ।

चंद्रोदयावर्त्ती ।

शंखनाभिर्बिभीतस्यमज्जापथ्यामनःशिला ॥ पिप्पलीमरिचं-कुष्ठंवचाचेतिसमांशकम् ॥ ७५ ॥ छागीक्षीरेणसंपिष्यवर्तिं-कुर्याद्यवोन्मिताम् ॥ हरेणुमात्रांसंघृष्यजलैःकुर्यादथांजनम् ॥ ॥ ७६ ॥ तिमिरंमांसवृद्धिंचकाचंपटलमर्बुदम् ॥ रात्र्यंधंवार्षि-कंपुष्पंवर्तिश्चंद्रोदयाजयेत् ॥ ७७ ॥

अर्थ—१ शंखकी नाभी २ बहेडेके फलके भीतर की गिरी ३ हरड ४ मनशिल ५ पीपल ६ काली मिरच ७ कूठ और ८ वच ये आठ औषधि समान भाग ले बकरीके दूधमें बारीक पीस जौके समान गोली वत्तीके सदृश लम्बी बनावे । इसको चन्द्रोदयावर्त्ती कहते हैं । पश्चात्

एक गोलीको रेणुकाके बीजके समान जलमें घिसके नेत्रोंमे अंजन करे तो तिमिर, मांसवृद्धि, कॉचबिंदु, पटलगतरोग, अर्बुद, रतौंध तथा एक वर्षका फूला ये सब रोग दूर हों ।

फूलआदिपर वत्ती ।

पलाशपुष्पस्वरसैर्बहुशःपरिभाविता ॥
करंजबीजवर्तिस्तुशुक्रादीञ्छस्त्रवल्लिखेत् ॥ ७८ ॥

अर्थ—कजेके बीजोंका चूर्ण करके पलासके फूलोंके रसकी अनेक भावना अर्थात् पुट देकर बहुत बारीक खरल कर वत्तीके समान लंबी गोली बनावे । फिर इस गोलीको जलमें घिसके नेत्रोंमें आँजे तो शुक्र कहिये फूला आदिशब्द करके मांसवृद्धि जड इत्यादिक रोग शस्त्रसे काटनेके समान दूर होवे ।

दूसरा प्रकार ।

ससमुद्रफेनसिंधूत्थशंखदक्षांडवल्कलैः ॥
शिग्रुबीजयुतैर्वर्तिःशुक्रादीञ्छस्त्रवल्लिखेत् ॥ ७९ ॥

अर्थ—१ समुद्रफेन २ सैंधानमक ३ शख ४ मुर्गेके अंडेके ऊपरका वक्कल ५ सहजनके बीज ये पाच औषध समान भाग ले जलसे पीस वत्तीके समान गोली करके नेत्रोमें अंजन करे तो फूला छर इत्यादिक रोग शस्त्रसे काटनेके समान दूर हो ।

लेखनीदन्तवर्त्ती ।

दंतैर्दंतिवराहोष्ट्रगोहयाजखरोद्भवैः ॥ शंखमुक्तांभोधिफेनयुतैःसवैर्विचूर्णितैः ॥ ८० ॥ दंतवर्तिःकृताश्लक्ष्णाशुक्राणांनाशिनीपरा ॥

अर्थ—हाथी सूअर ऊँट बैल घोडा बकरा और गधा इनके दाँत तथा शख मोती और समुद्रफेन इन सबका चूर्ण करके पानीमे पीसके वत्तीके सदृश गोली बनावे । इस गोलीको दतवर्त्ती कहते हैं । इसको जलमे घिसके नेत्रोमें अंजन करे तो फूला दूर होय ।

तंद्रा दूर होनेको लेखनीवर्त्ति ।

नीलोत्पलंशिग्रुबीजंनागकेशरकंतथा ॥ ८१ ॥
एतत्कल्कैःकृतावर्तिररतितंद्रांविनाशयेत् ॥

अर्थ—नीला कमल सहजनेके बीज तथा नागकेशर ये तीन पदार्थ समान भाग ले जलमें खरल करके लंबी गोली बनावे । इसको जलमें घिसके नेत्रोंमें आँजे तो तंद्रा दूर हो

रोपिणीकुसुमिका वर्ती।

तिलपुष्पाण्यशीतिःस्युःषष्टिसंख्याःकणाकणाः ॥८२॥ जातीसुमानिपंचाशन्मरिचानिचषोडश॥ सूक्ष्मंपिष्ट्वाजलेवर्तिःकृताकुसुमिकाभिधा ॥ ८३ ॥ तिमिरार्जुनशुक्राणांनाशिनीमांसवृद्धिहृत् ॥ एतस्याश्चांजनमात्राप्रोक्तासार्धहरेणुका ॥ ८४ ॥

अर्थ—तिलके फूल ८० पीपलके भीतरके दाने ६० चमेलीके फूल ५० तथा कालीमिरच १६ इन सबको एकत्रकर जलसे पीसके गोली बनावे। इसको कुसुमिकावर्ती कहते हैं। यह गोली हरेणुकाके डेढ १॥ बीजके बराबर जलमें पीसके नत्रोंमे अंजन करे तो तिमिर अर्जुन फूला और मांसवृद्धि ये रोग दूर होवें।

रतोंध दूरकरनेकी वर्त्ती।

**रसांजनंहरिद्रेद्वेमालतीनिंबपल्लवाः ॥
गोशकृद्रससंयुक्तावर्तिर्नक्तांध्यनाशिनी ॥ ८५ ॥**

अर्थ—१ रसोत २ हल्दी ३ दारुहल्दी ४ चमेलीके पत्ते ५ नीमके पत्ते इन पाच औषधोंको समान भागले गौके गोवरके रसमें वारीक पीसके गोली बनावे। इसको जलसे घिसके लगावे तो रतोंध दूर होय।

नेत्रस्रावपर स्नेहनीवर्ती।

धान्यक्षपथ्याबीजानिह्येकद्वित्रिगुणानिच ॥ पिष्ट्वावर्तिंजलैःकुर्यादंजनंद्विहरेणुकम् ॥ ८६ ॥ नेत्रस्रावंहरत्याशुवातरक्तरुजंतथा ॥

अर्थ—ऑवलेके भीतरका बीज १ भाग बहेडेके फलका बीज २ भाग हरडके भीतरका बीज गोली ३ भाग इन सब बीजोंको एकत्र करके जलमें बारीक पीस लवी गोली करे। पश्चात् उस गोलीमेंसे दो हरेणुकाके बीज समान जलमे घिसके नेत्रोंमें ऑजे तो नेत्रोंसे जलका बहना तत्काल दूर हो तथा वातरक्तसंबधी पीडा दूर होय।

रसक्रिया।

तुत्थमाक्षिकसिंधूत्थसिताशंखमनःशिलाः ॥८७॥ गैरिकोदधिफेनौचमरिचंचेतिचूर्णयेत् ॥ संयोज्यमधुनाकुर्यादंजनार्थंरसक्रियाम् ॥ ८८ ॥ वर्त्मरोगार्मतिमिरकाचशुक्रहरांपराम् ॥

अर्थ—१ लीलाथोथा २ स्वर्णमाक्षिक ३ सैंधानमक ४ मिश्री ५ शंख ६ मनशिल ७ गेरू

समुद्रफेन औ ९ काली मिरच ये नौ औषध समान भाग ले वारीक चूर्ण कर सहतमें मिलाय नेत्रोंमें अंजन करे तो पलकोंके रोग अर्मरोग तिमिर काचबिंदु और फूला ये रोग दूर होंय ।

फूलादूरकरनेकी रसक्रिया ।

वटक्षीरेणसंयुक्तोमुख्यःकर्पूरजःकणः ॥ ८९ ॥
क्षिप्रमंजनतोहंतिकुसुमंचद्विमासिकम् ॥

अर्थ—वडके दूधमें कपूरको घिस नेत्रोंमें अजन करनेसे दोमहीनाका फूला शिघ्र दूर होवे ।

अतिनिद्रानाशक लेखनी रसक्रिया।

क्षौद्राश्वलालासंघृष्टैर्मरिचैर्नेत्रमंजयेत् ॥ ९० ॥
अतिनिद्राशमंयातितमःसूर्योदयेयथा ॥

अर्थ—सहत और घोडेकी लार इन दोनोंमें काली मिरच पीसके जिसको अत्यत निद्राआती हो उसके नेत्रोंमें लगावे, तो जैसे सूर्यके उदय होनेसे अंधकार नष्ट होता है इसी प्रकार इस गोलीके अंजन करनेसे निद्रा तत्काल दूर होवे ।

तंद्रानाशक रसक्रिया ।

जातीपुष्पंप्रवालंचमरिचंकटुकीवचा ॥ ९१ ॥
सैंधवंबस्तमूत्रेणपिष्टंतंद्राघ्नमंजनम् ॥

अर्थ—चमेलीके फूल चमेलीके अकुर काली मिरच कुटकी वच और सैंधानमक ये औषध समान भागले वकरेके मूत्रमें सबको वारीक पीस नेत्रोंमें अजन करे तो तंद्रा दूर होय ।

संनिपातपर रसक्रिया ।

शिरीषबीजंगोमूत्रेकृष्णामरिचसैंधवैः ॥ ९२ ॥
अंजनंस्यात्प्रबोधायसरसोनशिलावचैः ॥

अर्थ—१ सिरसके बीज २ पीपल ३ काली मिरच ४ सैंधानमक ५ लहसन ६ मनशिल और ७ वच ये सात औषध समान भागले गोमूत्रमें पीसके जो मनुष्य सनिपातमें बेहोस पडाहो उसके नेत्रोंमें आँजे तो उसको तत्काल होश होजावे ।

दाहादिकोंपर रसक्रिया ।

दार्वीपटोलंमधुकंसनिंबपद्मकोत्पलम् ॥ ९३ ॥ सपौंडरीकंचैतानिपचेत्तोयेचतुर्गुणे ॥ विपाच्यपादशेषंतुश्रृतंनीत्वापुनःपचेत् ॥ ९४ ॥ शीतेतस्मिन्मधुसितांदद्यात्पादांशकांनरः॥ रसक्रियेयंदाहाश्रुरक्तरोगरुजोहरेत् ॥ ९५ ॥

अर्थ–१ दारुहल्दी २ पटोलपत्र ३ मुलहटी ४ नीमकी छाल ५ पद्माख ६ कमल ७ सफेद कमल ये सात पदार्थ समान भाग ले जौकूटकर उसमें सब औषधोसे चौगुना जल डालके औटावे। जब चतुर्थांश शेष रहे तब उतारले। फिर उसको छानके फिर औटावे। जब गाढा होनेपर आवे तो उस अवलेहसे चौथाई सहत और मिश्री मिलाय नेत्रोंमें अंजन करे तो दाह स्राव रुधिरके विकारसे नेत्रोंका लालरंग होना ये सर्व रोग दूर होवे।

नेत्रोंके पलकोंके बालआनेको तथा खुजलीआदिपर रोपणीरसक्रिया।

रसांजनंसर्जरसोजातीपुष्पंमनःशिला॥ समुद्रफेनोलवणंगैरिकं मरिचानिच॥ ९६॥ एतत्समांशंमधुनापिष्टाप्रक्लिन्नवर्त्मनि॥ अंजनंक्लेदकंडूघ्नंपक्ष्मणांचप्ररोहणम्॥ ९७॥

अर्थ–१ रसोत २ राल ३ चमेलीके फूल ४ मनशिल ५ समुद्रफेन ६ सैंधानमक ७ गेरू और ८ काली मिरच इन आठ औषधोंका चूर्ण कर सहत मिलाय नेत्रोंमें अंजन करे तो पलकोंके रोगोंमें उत्क्लिष्ट वर्त्म रोग है वह तथा नेत्रोंका मैल युक्त होना एव खुजली ये रोग दूर होवे तथा पलकोंके झडेहुए बाल फिर उग आवे।

तिमिरपर रसक्रिया।

गुडूचीस्वरसःकर्षःक्षौद्रंस्यान्माषकोन्मितम्॥ सैंधवंक्षौद्रतुल्यं स्यात्सर्वमेकत्रमर्दयेत्॥ ९८॥ अंजयेन्नयनंतेनापिल्लार्मतिमि- रंजयेत्॥ काचंकंडूंलिंगनाशंशुक्लकृष्णगतान्गदान्॥ ९९॥

अर्थ–गिलोयका स्वरस एक कर्ष निकालके उसमे सहत और सैंधानमक एक एक मासा मिलायके अच्छी रीतिसे खरल करे। फिर नेत्रोंमें अंजन करे तो पिल्लार्म, तिमिर, काचबिंदु, खुजली, लिंगनाश तथा नेत्रोंके सफेद भागमे और काले भागमे होनवाले ये सब रोग दूर हो।

अंजनमें पुनर्नवाका योग।

दुग्धेनकंडूंक्षौद्रेणनेत्रस्रावंचसर्पिषा॥
पुष्पंतैलेनतिमिरंकांजिकेननिशांधताम्॥ १००॥
पुनर्नवाजयेदाशुभास्करस्तिमिरंयथा॥

अर्थ–पुनर्नवा (सोंठ) को दूधमे घिसके नेत्रोंमें अंजन करनेसे नेत्रोकी खुजली दूर होय। सहतमे घिसके लगावे तो नेत्रोंसे जलका वहना दूर हो। घीमें घिसके लगावे तो फूला दूर होवें। तेलमें घिसके लगावे तो तिमिर रोग नष्ट होय। कांजीमें घिसके लगावे तो रतोंध दूर होय। इस

विषयमें दृष्टांत है कि जैसे सूर्य नारायण अंधकारका तत्काल नाश करे उसी प्रकार पुनर्नवा अनुपानके भेद करके सर्व रोगोंको दूर करती है ।

नेत्रस्रावपर रोपणीरसक्रिया ।

बब्बूलदलनिष्क्राथोलेहीभूतस्तदंजनात् ॥ १०१ ॥
नेत्रस्रावंजयत्येषमधुयुक्तोनसंशयः ॥

अर्थ—बबूरके पत्तोके काढेको गाढा होने पर्यन्त औटावे । फिर इसमें थोडासा सहत डालके नेत्रोंमें अंजन करे तो यह नेत्रोंसे जलके बहनेको निश्चय दूर करे ।

दूसरा प्रकार ।

हिज्जुलस्यफलंघृष्ट्वापानीयेनित्यमंजनम् ॥१०२॥
चक्षुःस्रावोपशांत्यर्थंकार्यमेतन्महौषधम् ॥

अर्थ—हिज्जुलके फलको पानीमें घिसके नित्य अंजन करे तो नेत्रोंसे जल गिरनेको दूर करे ।

नेत्रस्वच्छ होनेको स्नेहनीरसक्रिया ।

कनकस्यफलंघृष्ट्वामधुनानेत्रमंजयेत् ॥ १०३ ॥
ईषत्कर्पूरसहितंस्मृतंनेत्रप्रसादनम् ॥

अर्थ—निर्मलीके फलको सहतमें घिसके उसमें थोडासा कपूर मिलायके नेत्र प्रसन्न होनेकेवास्ते अंजन करे ।

शिरोत्पातरोगपर अंजन ।

सर्पिःक्षौद्रंचांजनंस्याच्छिरोत्पातस्यशातने ॥ १०४ ॥

अर्थ—घी और सहत दोनोको एकत्र कर नेत्रोंमें अंजन करे तो नेत्र रोगमें जो शिरोत्पात रोग है वह दूर होय ।

अंधापनदूरहोनेकी रसक्रिया ।

कृष्णसर्पवसाशंखःकतकाफलमंजनम् ॥
रसक्रियेयमचिरादंधानांदर्शनप्रदा ॥ १०५ ॥

अर्थ—काले सर्प (काले साँप) की वसा कहिये मांसस्नेह शंख और निर्मलीके बीज इन तीनोंको एकत्र खरलकर नेत्रोंमें अंजन करे तो मनुष्यको बहुत जल्दी दीखने लगे ।

लेखनचूर्णांजन।

दक्षांडत्वक्शिलाकाचैः शंखचंदनगैरिकैः ॥
द्रव्यैरंजनयोगोऽयंपुष्पामांदिविलेखनः ॥ १०६ ॥

अर्थ—१ मुरगेके अंडेकी सफेदी २ मनशिल ३ सफेद कॉच ४ शंख ५ सफेद चंदन और ६ स्वर्णगैरिक अर्थात् नम्र जातका गेरू ये छः पदार्थ समान भाग ले बारीक पीसके चूर्ण करे। फिर इसको नेत्रोंमें अंजन करे तो फूला और मासार्मादिक रोग दूर हो।

रतौंधदूर होनेका लेखनचूर्ण।

कणाच्छागयकृन्मध्येपक्त्वातद्रसपेषिता ॥
अचिराद्धंतिनक्तांध्यंतद्वत्सक्षौद्रभूषणम् ॥ १०७ ॥

अर्थ—बकरेके कलेजेके मासमें पीपल रखके अंगारोंपर पाक करे। पश्चात् उस मासका रस तथा पीपल इन दोनोंको पीसके जिस प्राणीके रतौंध आती है उसके अंजन करे तो रतौंध जाती रहे।

खुजलीआदिपर लेखनचूर्णाञ्जन।

शाणार्धंमरिचंद्वौचपिप्पल्यर्णवफेनयोः॥ शाणार्धंसैंधवंशाणानव सौवीरकांजनम् ॥ १०८ ॥ पिष्टंसुसूक्ष्मंचित्रायांचूर्णांजनमिदंशुभम् ॥ कंडूकाचकफार्तानांमलानांचविशोधनम् ॥ १०९ ॥

अर्थ—काली मिरच अर्ध शाण, पीपल और समुद्रफेन ये दोनों दो दो शाण ले। सैंधानमक अर्ध शाण तथा सुरमा नौ शाण इन सब औषधोको जिस दिन चित्रा नक्षत्र होय उस दिन अत्यंत बारीक पीस चूर्ण करे। फिर इस चूर्णका नेत्रोंमें अंजन करे तो खुजली तथा कॉचबिंदु ये दूर हों। कफकरके पीडित नेत्रोंका तथा मलोंका शोधन होय।

सर्वनेत्ररोगोंपर मृदुचूर्णांजन।

शिलायांरसकंपिष्ट्वासम्यगाप्लाव्यवारिणा ॥ गृह्णीयात्तज्जलंसर्वं त्यजेच्चूर्णमधोगतम् ॥ ११० ॥ शुष्कंचतज्जलंसर्वंपर्पटीसन्निभंभवेत् ॥ विचूर्ण्यभावयेत्सम्यक्त्रिवेलंत्रिफलारसैः ॥ १११ ॥ कर्पूरस्यरजस्तत्रदशमांशेनानिक्षिपेत् ॥ अंजयेन्नयनेतेनसर्वदोषहरंहितत् ॥ ११२ ॥ सर्वरोगहरंचूर्णंचक्षुषोःसुखकारिच ॥

अर्थ—खपरियाको पत्थरके खरलमे उत्तम रीतिसे खरल करके काजलसमान बारीक चूर्ण करे । पश्चात् उस चूर्णको जलमें डालके मिलाय देवे फिर उस जलको नितारके दूसरे पात्रमें निकाल लेवे और उस पात्रमे जो नीचे खपरियाके बडे २ टुकडे रह गए हों उनको दूर पटक देवे । फिर उस नितारे हुए पानीको दूसरे पात्रमें करके सुखाय ले इस प्रकार करनेसे उस खपरियाके चूर्णकी पपडी जम जावेगी, उसको निकालके चूर्ण करे । उस चूर्णको त्रिफलेके काढेकी तीन भावना देवे । पश्चात् उस चूर्णका दशवॉ भाग भीमसेनी कपूर मिलायके नेत्रोंमे अजन करे तो सर्व दोष तथा सर्व रोग दूर होकर नेत्रोंको सुख होय । खपरियाको वैद्य परीक्षा करके लेवे। (यह मुंबईमें मिलती है) ।

सर्वनेत्ररोगोंपर सौवीरांजन ।

अग्नितप्तंचसौवीरंनिषिंचेत्रिफलारसैः ॥ ११३ ॥ सप्तवेलंतथा स्तन्यैःस्त्रीणांसिक्तंविचूर्णितम् ॥ अंजयेन्नयनेतेनप्रत्यहंचक्षुषो-र्हितम् ॥ ११४ ॥ सर्वानक्षिविकारांस्तुहन्यादेतन्नसंशयः ॥

अर्थ—सुरमेको अग्निमें तपायके उसपर त्रिफलेके काढेको छिरक देवे । जब शीतल होजावे तब फिर अग्निमे तपावे और त्रिफलेका काढा छिडकके शीतल करे । इसप्रकार सातवार करे तथा इसी प्रकार सातवार स्त्रीका दूध छिडकके शीतल करे । फिर इसको बहुत बारीक पीसके सलाईसे अजन करे तो यह अंजन नेत्रोंको बहुत हितकारी होय इसमें संदेह नहीं है ।

शीशेकी सलाई बनानेकी विधि ।

त्रिफलाभृंगशुंठीनांरसैस्तद्वच्चसर्पिषा ॥ ११५ ॥
गोमूत्रमध्वजाक्षीरैःसिक्तोनागःप्रतापितः ॥
तच्छलाकाहरत्येवसर्वान्नेत्रभवान्गदान् ॥ ११६ ॥

अर्थ—त्रिफलेका काढा, भागरेका रस, शुठीका काढा, घी, गोमूत्र, सहत और बकरीका दूध, इन एक एकमें सात २ वार शीशेको वुझावे । फिर उस शीशेकी सलाई वनावे । इस सलाईको नेत्रोंमें फेरा करे तो सपूर्ण नेत्रके रोग दूर होवें ।

प्रत्यंजन करनेकी विधि ।

गतदोषमपेताश्रुसंपश्यन्सम्यगंभसि ॥
प्रक्षाल्याक्षियथादोषंकार्यंप्रत्यंजनंततः ॥ ११७ ॥

अर्थ—उस शीशेकी सलाईको नेत्रोंमे फेरनेसे दोष दूर हो नेत्रोंसे पानी निकल जानेके पश्चात् रोगी क्षणमात्र शीतल जलको देखे फिर उसके नेत्र जलसे धोयके नेत्रोंमे प्रत्यंजन करे। वह प्रत्यंजन आगे इसी ग्रंथमें लिखा है।

सदोष नेत्र होनेसे निषेध।

नवानिर्गतदोषेऽक्ष्णिधावनंसंप्रयोजयेत् ॥
प्रत्यंजनंतीक्ष्णततेनेत्रेचूर्णःप्रसादनः ॥ ११८ ॥

अर्थ—नेत्रोंसे जबतक दोष निःशेष न निकले तबतक नेत्रोंको जलसे नही धोवे तथा तक्षिण अंजन करके नेत्र संतप्त होनेसे उसमें प्रत्यंजन चूर्ण लगावे। वह आगेके श्लोकमें कहा है अथवा प्रसादनचूर्ण नेत्रोमे लगावे।

प्रत्यंजनचूर्ण।

शुद्धेनागेद्रुतेतुल्यंशुद्धंसूतंविनिक्षिपेत् ॥
कृष्णांजनंतयोस्तुल्यंसर्वमेकत्रचूर्णयेत् ॥ ११९ ॥
दशमांशेनकर्पूरंतस्मिंश्चूर्णेप्रदापयेत् ॥
एतत्प्रत्यंजनंनेत्रगदजिन्नयनामृतम् ॥ १२० ॥

अर्थ—शीशेको शुद्ध[१] करके अग्निपर पतला करे। तथा शीशेको समभागशुद्ध किया हुआ पारा लेकर उस तपेहुए शीशेमें मिलाय देवे। पश्चात् इन दोनोंका समान भाग सुरमा लेके दोनोमें मिलाय दे। फिर सबका चूर्ण करके उस चूर्णका दशवॉ हिस्सा भीमसेनी कपूर उस चूर्णमे मिलावे। इसको प्रत्यंजन चूर्ण कहते हैं। इस करके सपूर्ण नेत्ररोग दूर होते हैं तथा यह चूर्ण नेत्रोंको अमृतके समान गुण कर्ता है।

सर्पविषपर अंजन।

जयपालस्यमज्जांचभावयेन्निंबुकद्रवैः ॥
एकविंशतिवेलंतत्ततोवर्तिंप्रकल्पयेत् ॥ १२१ ॥
मनुष्यलालयाघृष्टाततोनेत्रेतयांजयेत् ॥
सर्पदष्टविषंजित्वासंजीवयतिमानवम् ॥ १२२ ॥

अर्थ—जमालगोटेके भीतरकी मज्जा अर्थात् बीजोके भीतरका बीज उसको नींबूके रसकी २१ इक्कीस पुट देके बारीक पीस लबी गोली बनावे पश्चात् उसको मनुष्यकी लारमें घिसके नेत्रोंमे अंजन करे तो सर्पके काटनेसे जो विषबाधा होय वह दूर होकर मनुष्य सावधान होय।

---

१ सुवर्णादि धातुओंका शोधन मध्यखडमे लिखा है उसी जगह शीशेका शोधन सो जानना अथवा शीशेकी सलाई बनानेमे जिस प्रकार शुद्धि लिखी है उस प्रकार करनी चाहिये।

हाथोंकी हथेलीसे नेत्र पोंछनेके गुण ।

भुक्त्वापाणितलंघृष्ट्वाचक्षुषोर्यदिदीयते ॥
जातारोगाविनश्यंतितिमिराणितथैवच ॥ १२३ ॥

अर्थ—भोजन करनेके पश्चात् हाथोको धो, गीले हाथोकी दोनों हथेली आपसमें घिसके नेत्रोमें लगावे तो उत्पन्नहुए रोग तथा तिमिर रोग ये दूर होवें[1] ।

शीतांबुपूरितमुखःप्रतिवासरंयःकालत्रयेणनयनद्वितयं जलेन ॥ आसिंचतिध्रुवमसौनकदाचिदक्षिरोगव्यथा- विधुरतांभजतेमनुष्यः ॥ १२४ ॥

अर्थ—प्रतिदिन दिनमें तीनवार शीतल जलसे मुखको भरके शीतल जलसे नेत्रोंको तीनवार छिडके तो अति दुःख देनेवाली नेत्ररोगसबंधी पीडा वह कभी भी नहीं होवे ।

ग्रंथको समूलत्वसूचनापूर्वक स्वाभिमानका परिहार ।

आयुर्वेदसमुद्रस्यगूढार्थमणिसंचयम् ॥
ज्ञात्वाकैश्चिद्बुधैस्तैस्तुकृताविविधसंहिताः ॥ १२५ ॥
किंचिदर्थंततोनीत्वाकृतेयंसंहितामया ॥
कृपाकटाक्षविक्षेपमस्यांकुर्वंतुसाधवः ॥ १२६ ॥

अर्थ—समुद्रके समान (दुरवगाहन) आयुर्वेद, तत्सबंधी जो मणिके समान गूढार्थ उनके समुदायोंको उत्तमप्रकार जानके अग्निवेश चरकादिक मुनीश्वरोने अनेक प्रकारकीजो संहिता कीहैं उन सब संहिताओका कुछ २ सारांश लेकर यह शार्ङ्गधरसंहिता की हैं । इसपर महात्माजन कृपा करके अवलोकन करो ।

ग्रंथ पढनेका फल ।

विविधगदार्तिदारिद्र्यनाशनंयाहरिरमणीवकरोतियोगरत्नैः॥वि- लसतुशार्ङ्गधरसंहितासाकविहृदयेषुसरोजनिर्मलेषु॥१२७॥

अर्थ—योग कहिये काढे, चूर्ण, गुटिका, अवलेह इत्यादिक येही हुए रत्न इन करके अनेक प्रकारके ज्वरादिक जो रोग तत्सबंधी पीडारूप जो दारिद्र उसको दूर करनेवाली ऐसी यह शार्ङ्गधरसंहिता कमलके समान निर्मल कविके हृदयमें शोभित होवे । इस विषयमें दृष्टांत है कि, जैसे लक्ष्मी अनेक प्रकारके रत्नोंकरके अपने आश्रित (भक्तजनों) के दारिद्रको दूर करती है तैसेही यह संहिताभी ।

---

१ शर्यातिं च सुकन्यां च च्यवनं शक्रमश्विनौ । भोजनांते स्मरेन्नित्यं चक्षुस्तस्य न हीयते ।

अल्पायुषामल्पधियामिदानींकृतंसमस्तश्रुतिपाठशक्ति ॥
तदत्रयुक्तंप्रतिबीजमात्रमभ्यस्यतामात्महितप्रयत्नात् ॥ १२८ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायामुत्तरखंडः परिपूर्णः ॥

अर्थ—इस कलियुगमे प्रायः मनुष्य अल्पायुषी तथा अल्पबुद्धिवाले है इसीसे लोग (प्राणी) सर्वआयुर्वेद पढनेमे समर्थ नहीं हैं अतएव इस युगमें आत्माको हितकारी योग्य साररूप ऐसा जो यह तंत्र उसका बडे प्रयत्न करके अभ्यास करो।

इति श्रीमाथुरपाठकज्ञातीयभारद्वाजकुलकैरवानंददायिराकेशश्रीकृष्णलाल-
पुत्रदत्तरामनिर्मितमाथुरीशार्ङ्गधरव्याख्या समाप्तिमगमत्।

समाप्तोऽयं ग्रन्थः।

